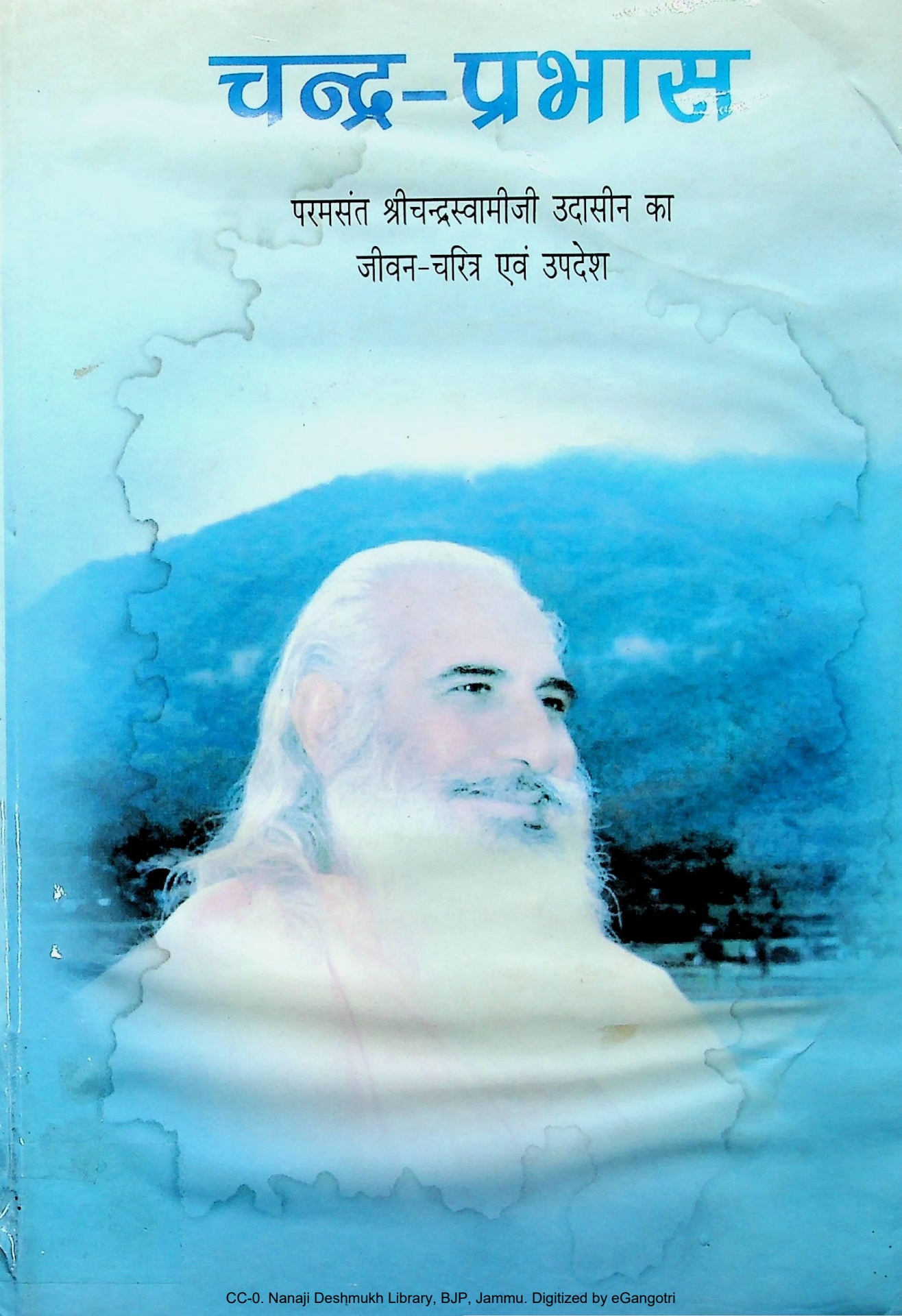
चन्द्र-प्रभास

परमसंत श्रीचन्द्रस्वामीजी उदासीन का
जीवन-चरित्र एवं उपदेश



CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

A1-7 R6

नानाजी देशमुख पुस्तकालय (भाजपा)
कमांक 6688

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

ॐ

चन्द्र-प्रभास

(परमसंत श्रीचन्द्रस्वामीजी उदासीन—जीवन-चरित्र एवं उपदेश)

लेखक एवं संकलनकर्ता

स्वामी प्रेमविवेकानन्द

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

प्रकाशक : सीकर्स ट्रस्ट
साधना केन्द्र आश्रम
ग्राम–डुमेट, डाकखाना–अशोक आश्रम
जनपद–देहरादून, उत्तरांचल
भारत, पिन–248125, दूरभाष–01360-22204

प्रथम संस्करण : 4000 प्रतियां,
5 जुलाई, 2001, गुरुपूर्णिमा के पावन पर्व पर

कॉपी राइट : © 2001, सीकर्स ट्रस्ट

लेज़र कम्पोज़िंग : श्रीविजय कुमार तोमर,
बाड़वाला, देहरादून

आवरण चित्र : श्रीसुरेश रावत, रूपसागर फोटो स्टुडियो,
विकास नगर, देहरादून

मुद्रक : शिवा ऑफसेट प्रैस, देहरादून

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



चन्द्र-प्रभास

परमसंत श्रीचन्द्रस्वामीजी उदासीन का जीवनचरित एवं उपदेश

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

समर्पण

जो सच्चिदानन्दघन परमात्मा में भली-भाँति आरुढ़ हैं;

जो अपने प्राणधन, भगवत्ता और महाभाव की प्रतिमूर्ति, पूज्यचरण बाबा भूमनशाहजी की सनातन सन्तान हैं;

जिनकी भीनी-भीनी उपस्थिति नित्य उत्सवस्वरुप है;

विधि निषेध से परे होने पर भी जो साधकों के कल्याण एवं लोकमर्यादा हेतु कठोर आत्मानुशासन तथा युक्तियुक्त, निर्मल आचार-विचार को सहज ही धारण किये हुए हैं;

जिनका अम्लान मुख पूर्णचन्द्र की तरह आत्मा के रस से परितृप्त होने के कारण सदा शान्त, शीतल व प्रफुल्लित रहता है;

भगवद्कान्ति से उद्भासित जिनके श्रीविग्रह से सदा ज्ञान, प्रेम, प्रसन्नता, शान्ति, सौम्यता, सरलता, समरसता, असंगता, निर्विकारिता और निर्पेक्षता झरते रहते हैं;

जिनके अधरों पर मन्द-मन्द विमल हास्य नित्य नर्तन करता रहता है;

जिनका समस्त श्रीविग्रह, इन्द्रियाँ, मन और प्राणादि आत्म-प्रेम से छके होने के कारण सदैव उस प्रेम की रसमाधुरी को विकीर्ण करते रहते हैं;

जिनके नयन कटोरे करुणा-कृपा के जल से सदा भरे ही रहते हैं;

जो अपने मौन द्वारा ही भक्तों से मधुर सम्भाषण किया करते हैं;

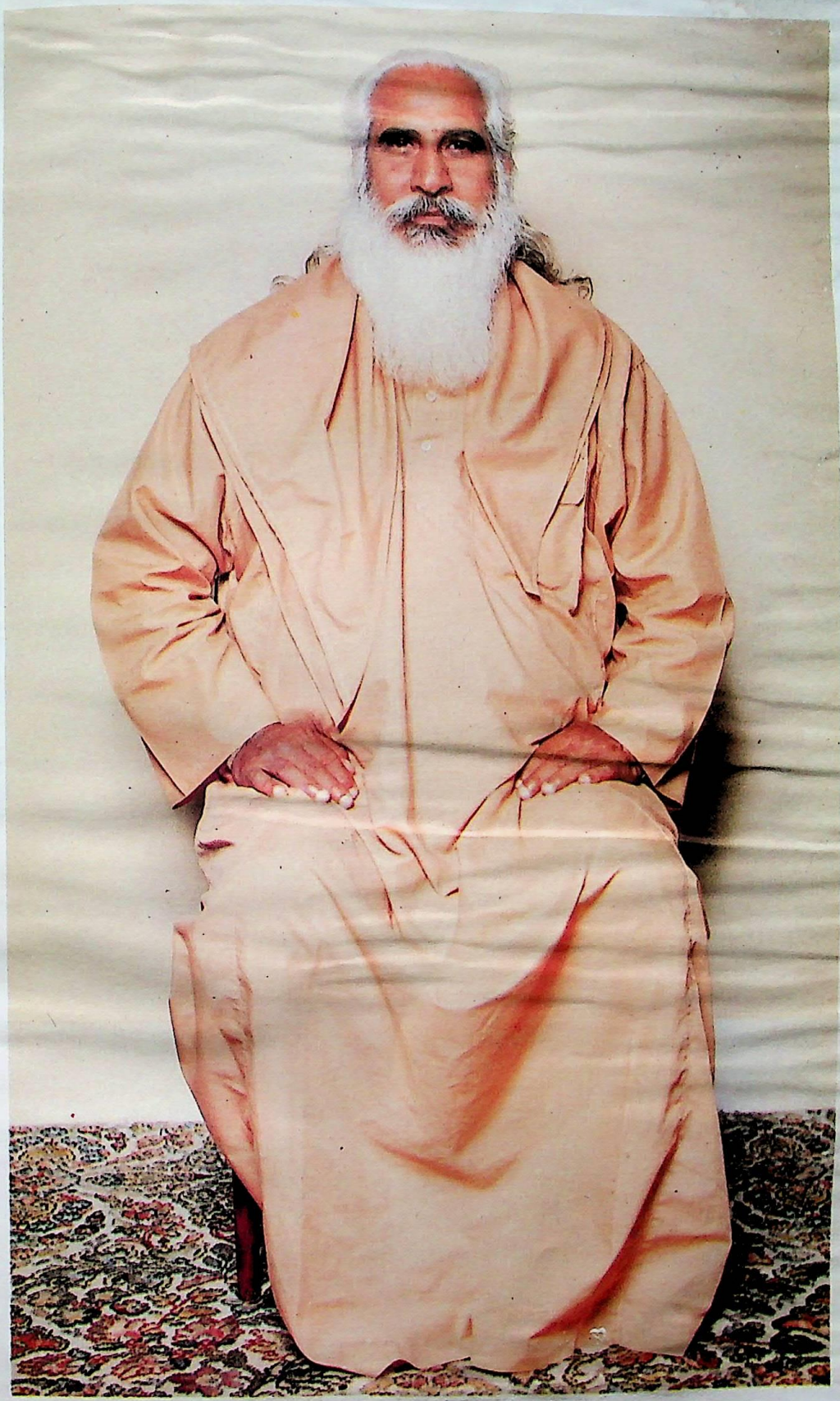
जिनका दिव्य जीवन भगवद्महिमा के प्राकट्य का पावन आधार है तथा उच्च लौकिक आदर्शों की सुन्दर व्याख्या है;

जो अपनी स्वाभाविक करुणावश भक्तों, साधकों के कल्याण में सदा संलग्न रहते हैं;

जिनका मंगल-दर्शन नयनों को आनन्दित कर हृदय में भगवद्भाव को उद्दीप्त कर जाता है—ऐसे परम सुहृद, करुणासिन्धु गुरुदेव भगवान का पावन लीलागान उन्हीं के चरण-कमलों में सादर-सप्रेम समर्पित।

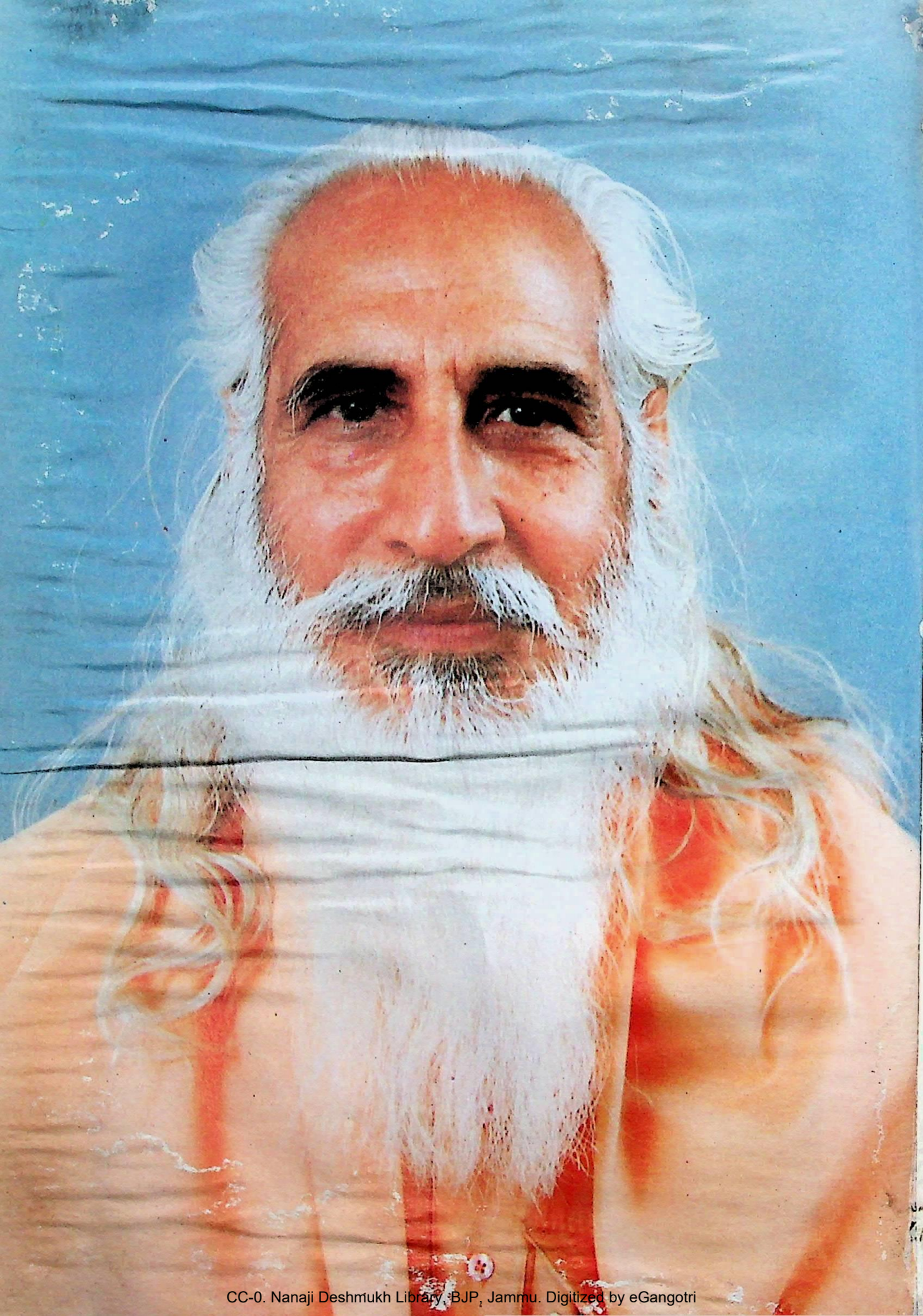


CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



परमसंत श्रीचन्दस्वामीजी उदासीन

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

अनुक्रमणिका

विषय वस्तु	पृष्ठ संख्या
आमुख	1-4
वन्दना	5-7
भाग–1 जीवनलीला — पूज्य श्रीचन्द्रस्वामीजी	9-259
कथा प्रवेश	11-14
उदासीन पंथ	14-15
बाबा भूमनशाहजी	15-17
पूर्वाश्रम की बातें—जन्म, परिवार तथा आरम्भिक जीवन	17-28
विचित्र घटना	28-30
सूरज चन्द्र बना	30-39
पढ़ाई छोड़ी—स्वाध्याय तथा एकान्तवास	39
बहाउद्दीन प्रवास	40-42
गैरिक वस्त्र धारण करना	42-44
हिमालय यात्रा	44-46
परम विरक्त संत गुरमुखसिंहजी	46-49
दिव्य हस्तक्षेप	49-53
परमपूज्य स्वामी कृष्णदासजी महाराज	53-56
रहस्यमय साधु संतसिंहजी	56-61
उद्यान में सत्संग सुमन	61-66
गुफा-मन्दिर में समाधि	66-68
साधुओं के संग अमरनाथ यात्रा	68-70
वेद मन्दिर—परित्यक्त पूजागृह	71-73
क्या भूत-प्रेत होते हैं	73-77
भिक्षा का अनुभव	77-79
तवी नदी के तट पर गुफावास	79-83
गुफा में हनुमानजी का प्रसंग	83-86
कठिन साधना	86-89
गहन साधना काल के कुछ आन्तरिक अनुभव तथा दर्शन	89-91
गाँव में दंगल	91-93
कश्मीरी पण्डितों का श्रद्धा प्रतीक हरिपर्वत	93-98

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

विषय वस्तु	पृष्ठ संख्या
आत्म-साक्षात्कार	98-99
भक्तों के प्रेमास्पद	99-100
हरिद्वार सप्तसरोवर के निकट वनाच्छादित द्वीप (झाड़ी) में	100-104
पुनः जम्मू में	104-105
झाड़ी में पुनः आगमन	105-108
झाड़ी में भक्तों का आगमन	108-109
आध्यात्मिक उपलब्धि	109-111
झाड़ी में जीवन	111-121
सेवक निवास आश्रम	121-133
लम्बा अनिश्चित मौन	133-134
एक महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक कदम	134-135
साधना केन्द्र आश्रम	135-151
स्वामी प्रबोध चेतन	151-155
फिर फैलने लगी कीर्ति रश्मियां	155-158
जम्मू की गुफा का जीर्णोद्धार	159-162
साधना केन्द्र आश्रम में दिनचर्या	162-164
ध्यान-सत्र	165-166
दिनचर्या के अन्य अंग	166-172
वर्तमान छवि के मंगल दर्शन	172-173
जीवन रंगमंच के अनूठे कलाकार	173-187
आज म्हारे आंगन में प्रभुजी पधार्‌या	187-193
कार्यशैली व अन्य निपुणताएं	194-198
प्रश्नोत्तर की सत्संग बेला	198-201
स्वामीजी का विश्व बन्धुत्व	201-207
फ्रांसीसी सन्त युवान अमर (श्रीआनन्दजी)	207-219
गुरुदेव के विदेशी भक्त	219-222
विदेश यात्राएं	222-224
एक विदेश यात्रा का वृतान्त	224-245
विद्वान लेखक के रूप में	245-253
सन्देश-उपदेश	254-257
उपसंहार	257-259

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

विषय वस्तु	पृष्ठ संख्या
भाग–2 उदासीनाचार्य भगवान श्रीचन्द्रजी– जीवन परिचय तथा रचनाएं।	261-314
भाग–3 संक्षिप्त जीवनी—परमसंत बाबा भूमनशाहजी उदासीन।	315-327
भाग–4 संकलन—स्वामीजी द्वारा अपने भक्तों को लिखे कुछ पत्र।	329-369
भाग–5 संकलन—स्वामीजी द्वारा साधकों/ भक्तों के प्रश्नों के कुछ उत्तर।	371-419
भाग–6 संकलन—लगभग पैंतालीस वर्ष पुरानी स्वामीजी की डायरी से उन्हीं के दिव्य उद्‌गारों तथा उनकी कुछ अन्य स्फुरित अभिव्यक्तियां।	421-470
भाग–7 संकलन—स्वामीजी द्वारा कही गयी कुछ बोध कथाएं।	471-513

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

ॐ

॥ ॐ हरिः शरणम् ॐ ॥

॥ ॐ भूमनशाह देवाय नमः ॐ ॥

आमुख

परमपूज्य गुरुदेव की मंगललीला व उपदेशादि विषयक इस पुस्तक के पूर्ण होने के समय हृदय में गहन तृप्ति व आनन्द का अनुभव हो रहा है मानो अन्तस्तल की कोई गहन प्यास शान्त हो गयी हो; मानो जीवन की सुन्दरतम सम्भावना साकार हो उठी हो। यह मंगलकार्य श्रीभगवान की असीम कृपा से ही पूर्ण हो सका है। सेवक की अक्षमता, अज्ञता और उस द्वारा अकारण, अक्षम्य विलम्ब के बावजूद उनकी ही कृपा से यह पूर्ण होकर भक्तजन के हाथों में है।

सेवक को गुरुदेव की जीवनी लिखने की प्रेरणा इस सात्विक वासना से हुई कि श्रीचन्द्रस्वामीजी जैसे दिव्य भावसम्पन्न, समग्र मानव तथा आध्यात्मिकता की प्रतिमूर्तिरूप पूर्ण संत का निर्मल जीवन-चरित्र जितने अधिक से अधिक लोग पढ़-सुन सकें उतना कल्याणप्रद होगा। एक वासना और भी थी—अपने प्रेमास्पद की विस्मयकारी, सर्वमंगलकारी, भगवद्भाव से सराबोर तथा पतितपावनी गंगाजी सम मंगललीला में डुबकियां लगाकर स्वयं कृतार्थ होने की।

सन् 1964 में सात वर्ष की आयु में सर्वप्रथम सेवक ने गुरुदेव के दर्शन सप्तसरोवर, हरिद्वार के निकट गंगाजी के तट पर, जंगल में अपने पूज्य माता-पिता के साथ किये थे। उनकी पर्ण कुटी के बाहर उनकी वह नयनाभिराम, तेजस्वी छवि आज भी उसके हृदय पर अंकित है। तब से लेकर अब तक सेवक महाराजजी के पावन सम्पर्क में रहा है। सन् 1988 से, अर्थात् गत बारह वर्षों से तो सेवक सतत श्रीचरणों में वास कर रहा है—न जाने किन पुण्य कर्मों के फलस्वरूप!

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

इस प्रकार गत सैंतीस वर्षों के सुदीर्घ काल में सेवक को इन महापुरुष को बहुत निकट से देखने का अवसर मिला — एक भोले बालक की दृष्टि से, एक विद्रोही नवयुवक की कठोर आलोचनात्मक दृष्टि से एवं एक श्रद्धावान शिष्य की दृष्टि से। अतः इन महापुरुष की यह जीवनी वस्तुतः सेवक द्वारा आँखों देखा विवरण है।

सेवक ने स्वयं में अनगिनत दुर्गुण तथा विकार होने के बावजूद भी निर्लज्जतापूर्वक अपने लीलानायक को जितना ही परखा, उनका पावन तथा निर्मल चरित्र शुद्ध सुवर्ण की भाँति उतना ही अधिक प्रखरता के साथ उभरकर आलोकित हुआ। सभी सच्चे संतों की तरह उनका जीवन भी एक खुली किताब की तरह है।

यह जीवनी सन् 1990 में Song of Silence-I में दी गयी महाराजजी की संक्षिप्त जीवनी को आधार बनाकर लिखी गयी है। अंग्रेज़ी भाषा में लिखी गयी वह जीवनी महाराजजी के अनेक भक्तों ने मिलकर लिखी थी। उसके अतिरिक्त प्रस्तुत जीवनी में कुछ अतिरिक्त सामग्री का समावेश भी किया गया है जो हमें बाद में महाराजजी की लेखनी तथा उनके भक्तों से प्राप्त होती रही।

स्मरण रहे, पूज्य स्वामीजी सम ऋषियों की जीवनलीला के पीछे गुप्त रहस्य तथा आशय छिपे रहते हैं। उनकी मंगललीलाएं पुराणों, सद्कथाओं की तरह ही परम कल्याणकारी होती हैं। उन्हें पढ़-सुनकर अनेक गूढ़ आध्यात्मिक रहस्य मन में सहज ही हृदयंगम हो जाते हैं। महापुरुषों की जीवनियों को पढ़ने-सुनने की हमारे देश में प्राचीन परम्परा रही है। पौराणिक गाथाएं इस परम्परा की ही अभिव्यक्ति हैं।

परम आश्चर्य की बात है कि लेखन धर्म का कुछ अनुभव न होने पर भी तथा अज्ञ, प्रमादी, व्यसनी व भजन-साधन से हीन इस व्यक्ति द्वारा यह परम पावनी जीवनी लिखी किस प्रकार गयी! किन्तु सर्वसमर्थ भगवान के लिये क्या असम्भव है? वे तो अनाधिकारी तथा पतितों से भी, महान् कार्य करवा लेते हैं। यह तो निश्चित है कि इस जीवनी में असंख्य त्रुटियां रह गयी होंगी। गुणी पाठक इसे क्षमा करेंगे। चूँकि पूज्य गुरुदेव स्वयं इस पुस्तक की विषयवस्तु हैं अतः सेवक जैसे अनाधिकारी द्वारा लिखी जाने पर भी यह परम कल्याणकारी है, ऐसा विश्वास है।

वस्तुतः इस जीवनी के वास्तविक लेखक तो गुरु महाराजजी के अगणित भक्त हैं जिन्होंने सेवक को गुरुदेव के बारे में उनके अनेक अनुभव तथा प्रसंग आदि

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

बतलाए तथा जिनके गुरुदेव के साथ प्रेम, समर्पण और अहोभाव से पोषित मधुर सम्बन्ध इस जीवनलीला की प्रामाणिकता व प्राण हैं। अनेक भक्त ऐसे भी हैं जो अपनी भावनाओं को व्यक्त नहीं कर सकते। उनके मनोभाव भी पुस्तक में सहज ही अभिव्यक्त हुए हैं। सेवक को इस बात का बहुत संकोच है कि स्थानाभाव के कारण गुरुदेव के अनेक भक्तों तथा उनके मधुर अन्तर्सम्बन्धों का इस पुस्तक में उल्लेख नहीं हो सका।

वास्तव में इस जीवनी में गुरुदेव के जीवन से जुड़ी थोड़ी सी बाहर से दिखने वाली घटनायें तथा प्रसंग ही हैं। उनके विराट चरित्र का अधिकांश भाग तो हिमनद की तरह अभी भी जल के नीचे छिपा ही हुआ है। वस्तुतः संत का चरित्र तो भगवान की तरह अगम्य ही होता है।

इस पुस्तक को हमने सात भागों में बाँटा है। पहले भाग में पूज्य गुरुदेव की जीवनी है। हमारे कथानायक बहुत नयनाभिराम हैं, मनोरम हैं, प्रियदर्शन हैं। पिछले कुछ वर्षों से उनके भक्त सदा उनकी अनगिनत तस्वीरें खींचते रहते हैं। वे वाणी के लम्बे, अखण्ड मौन में हैं अवश्य, किन्तु गाम्भीर्य और माधुर्य, दोनों से लबालब भरे उनके नयन, उनकी निर्मल मुस्कुराहटें, उनकी मधुर भंगिमाएं—सब मिलकर प्रतिपल सबसे प्रीत की बातें बतियाते रहते हैं। फिर उनकी छवि बहुत आनन्द और शान्ति प्रदायनी है। उनकी एक झलक हमारे हजारों-हज़ारों शब्दों पर भारी है। उनकी जीवनी में स्थान-स्थान पर उनके अनेक चित्र भी दे दिये गये हैं।

गुरुदेव महाराज के आदेशानुसार पुस्तक के दूसरे भाग में राष्ट्र की महान् विभूति, उदासीनाचार्य भगवान श्रीचन्द्रजी का संक्षिप्त जीवन परिचय तथा उनकी कुछ रचनाएं दी गयी हैं।

तीसरे भाग में गुरुदेव द्वारा लिखित 'आनन्द-दर्पण' पुस्तिका से, उन्हीं के प्रेमास्पद संत शिरोमणि बाबा भूमनशाहजी का संक्षिप्त जीवन-चरित्र लिया गया है। स्वामीजी का विचार था कि जब कभी यह पुस्तक अंग्रेजी, फ्रेंच, हिब्रू आदि भाषाओं में अनूदित होगी तो इन दोनों महान् विभूतियों की जीवनियां भी सहज ही विश्व के अन्य देशों में भी पहुँच जायेंगी। इन दोनों ही महापुरुषों के साथ गुरुदेव के गहन आत्मिक सम्बन्ध रहे हैं।

चौथे भाग में पूज्य गुरुदेव द्वारा अपने भक्तों को लिखे ढेरों पत्रों में से कुछ पत्रों का संकलन है। पांचवें भाग में महाराजजी द्वारा जिज्ञासुओं के कुछ प्रश्नों के

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

उत्तरों का संकलन है। छठे भाग में महाराजजी द्वारा समय-समय पर सन्दर्भवश लिखे गये कुछ अमूल्य उपदेशों/सुवचनों का संकलन है। इन सुवचनों की अधिकाँश सामग्री हमने महाराजजी की लगभग पैंतालीस वर्ष पुरानी हस्तलिखित डायरी से ली है। पाठक पायेंगे कि अपनी साधना के आरम्भिक काल में भी उनके विचारों में कैसा अद्‌भुत पैनापन, अध्यात्म की गहरी समझ तथा पूर्णता की झलक थी। सातवें और अन्तिम भाग में हमने बोध-कथाओं के नाम से महाराजजी द्वारा समय-समय पर लिखे गये कुछेक चुटकुलों/कहानियों का समावेश किया है। अक्सर ऐसी कहानियाँ/चुटकुले कहकर गुरुदेव भक्तों के साथ विनोद भी किया करते हैं तथा साथ ही उनमें निहित गूढ़ अर्थों की ओर भी संकेत करते रहते हैं। हर बोध-कथा के अन्त में हमने भावार्थ भी दिया है जिसे कृपापूर्वक गुरुदेव ने स्वयं एक बार देखकर ठीक भी कर दिया है।

इस प्रकार हमने एक ही पुस्तक में महाराजजी की जीवनी के साथ-साथ उनके अमूल्य सुवचनों की झलक भी देने की चेष्टा की है।

अन्त में लेखक जम्मू के श्रीमोहनलालजी गुप्ता के प्रति अपना प्रेमाभार व्यक्त किये बिना नहीं रह सकता, जो समय-समय पर उसे प्रेमपूर्वक, उसके प्रमाद से झकझोरकर, पुस्तक कार्य को पूर्ण करने में लगाये रहते थे तथा जिन्होंने इस पुस्तक के सम्पादन में भी अपना अमूल्य योगदान दिया। इनके अतिरिक्त महाराजजी के परम भक्त श्रीविक्रमसिंहजी बावा तथा श्रीशेरसिंहजी काम्बोज को भी बार-बार धन्यवाद, जिन्होंने बहुत परिश्रम करके अपने मूल्यवान व सुन्दर सुझावों द्वारा पुस्तक के सम्पादन में अपनी प्रेमपूर्ण सेवाएं दीं।

अब हे भगवद्‌स्वरूप गुरुमहाराज! कृपापूर्वक यह विनम्र भेंट श्रीचरणों में स्वीकार करें तथा हम सभी को शुद्ध हृदय, निर्मल बुद्धि, तथा श्रीचरणों में भक्ति का महादान प्रदान करें।

27 दिसम्बर, 2000 — सेवक,
बाबा भूमनशाहजी का निर्वाण दिवस — स्वामी प्रेम विवेकानन्द

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

ॐ

वन्दना

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्, विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहराणमेनो, भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ॥

ऋक्० 189.1

हम उस ज्योतिर्मय प्रभु की आनन्दविभोर हृदय से निशिदिन वन्दना करते हैं जो स्वयं आनन्दमय है, अतिशय प्रेममय है, मधुर है और जिसकी प्रज्वलित ज्योतिशिखा तन-मन को पवित्र करने वाली है ।

यत्र ज्योतिरजस्रम् यस्मिन् लोके स्वर्हितम् ।
तस्मिन् मां धेहि पवमानः, अमृते लोके अक्षिते,
इन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥ ऋक्० 9.113.7
यत्रानन्दाश्च मोदाश्च, मुदः प्रमुद आसते ।
कामस्य यत्राप्ताः कामाः तत्र माममृत् कृधिइन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥

ऋक्० 9.113.11

हे सर्वशक्तिसम्पन्न विधाता ! मुझे उस अमृतलोक में ले चल और स्थिर कर दे जिसकी अखण्ड ज्योति का प्रकाश कभी मन्द नहीं होता । जहाँ आनन्द, मोद और प्रमोद का अनन्त सागर है । जहाँ कामना जागृत होने से पूर्व ही पूर्ण तृप्त हो जाती है । हे मेरे मन, अपनी समस्त प्रवृत्तियों का प्रवाह प्रभु की ओर कर ।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

ॐ नमो भगवते तस्मै यत एतच्चिदात्मकम् ।
पुरुषायादिबीजाय परेशायाभिधीमहि ।।

श्रीमद्भागवत

जिनके प्रवेश करने पर (जिनकी चेतनता को पाकर) ये जड़ शरीर और मन आदि भी चेतन बन जाते हैं (चेतन की भाँति व्यवहार करने लगते हैं), ओ३म् शब्द के द्वारा लक्षित तथा सम्पूर्ण शरीरों में प्रकृति एवं पुरुष रूप से प्रविष्ट हुए उन सर्वसमर्थ परमेश्वर को हम मन ही मन नमन करते हैं।

यस्मिन्निदं यतश्चेदं येनेदं य इदं स्वयम् ।
योऽस्मात्परस्माच्च परस्तं प्रपद्ये स्वयम्भुवम् ।।

श्रीमद्भागवत

जिनके सहारे यह विश्व टिका है, जिनसे यह निकला है, जिन्होंने इसकी रचना की है और जो स्वयं ही इसके रूप में प्रकट हैं—फिर भी जो इस दृश्य जगत् से एवं उसकी कारणभूता प्रकृति से सर्वथा परे (विलक्षण) एवं श्रेष्ठ हैं—उन अपने आप—बिना किसी कारण के बने हुए भगवान की मैं शरण लेता हूँ।

न विद्यते यस्य च जन्म कर्म वा, न नामरूपे गुणदोष एव वा ।
तथापि लोकाप्ययसम्भवाय यः, स्वमायया तान्यनुकालमृच्छति ।।
तस्मै नमः परेशाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ।
अरूपायोरुरूपाय नम आश्चर्यकर्मणे ।।

श्रीमद्भागवत

जिनका हमारी तरह कर्मवश न तो जन्म होता है और न जिनके द्वारा अहंकारप्रेरित कर्म ही होते हैं, जिनके निर्गुण स्वरूप का न तो कोई नाम है न रूप ही, फिर भी जो समयानुसार जगत् की सृष्टि एवं प्रलय (संहार) के लिये स्वेच्छा से जन्म आदि को स्वीकार करते हैं। उन अनन्तशक्तिसम्पन्न परब्रह्म परमेश्वर को नमस्कार है। उन प्राकृत आकार रहित एवं अनेकों आकारवाले अद्भुतकर्मा भगवान को बार-बार नमस्कार है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

ब्रह्मानदं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं,
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्वमस्यादिलक्ष्यं ।
एकं नित्यं विमलम्अचलं सर्वधीसाक्षिभूतम्,
भावातीतं त्रिगुणरहितं सदगुरुं तम् नमामि ।।

जो अद्वितीय ज्ञान की मूर्ति, परमसुख, और ब्रह्मानन्द स्वरूप हैं। सभी द्वन्द्वों से रहित, आकाश के समान (व्यापक और अनन्त), तत्त्वमसि आदि वेदान्त महावाक्यों के लक्ष्यार्थ रूप, एक, नित्य, परमशुद्ध,अचल तथा सम्पूर्ण बुद्धि-वृत्तियों के परम साक्षी हैं, सभी भावों तथा तीनों गुणों के अतीत हैं—उन ब्रह्मस्वरूप सद्गुरुदेव को हम नमस्कार करते हैं।



CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

जीवनलीला
पूज्य श्रीचन्द्रस्वामीजी उदासीन

पहला भाग

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

ॐ

॥ श्रीगुरुचरणकमलेभ्यो नमः ॥

कथा प्रवेश

दृश्य जगत् की सर्वोत्कृष्ट समझी जाने वाली कृति मानव वास्तव में एक अबूझ रहस्य है। अभी तक के मानव जाति के इतिहास में बहिर्जगत् एवं अन्तर्जगत् की जिन विलक्षण एवं महानतम् सम्भावनाओं को उसने व्यक्त किया है, उससे भी यही सिद्ध होता है। अभी भी वह सतत इस असीम जगत् के असंख्य रहस्यों की ओर लालायित टकटकी लगाये देख रहा है तथा अपनी इस अनूठी और नित नूतन यात्रा में विभिन्न पड़ावों को तय करता हुआ, अपने रहस्यमय, अनदेखे, अनजाने लेकिन फिर भी जैसे पूरे जाने-पहचाने, गन्तव्य की ओर धीरे-धीरे अग्रसर हो रहा है। खोज किसी की भी हो, किसी के भी द्वारा हो, कहीं पर भी हो, किसी समय तथा कैसे भी हो, अन्ततोगत्वा यही प्रतीत होता है कि परम आनन्द, परम स्वतन्त्रता, परम सत्य तथा अनन्त, अविनाशी तत्त्व की प्यास ही इस महान् यात्रा के सर्वशक्तिशाली, सार्वभौमिक तथा शाश्वत प्रेरक तत्त्व हैं। तथा मानव जाति के जिन महानायकों ने इस परम आनन्द एवं परम स्वतन्त्रता स्वरुप परमात्मा का समग्र अनुभव किया, वे ही इस जगत्रूपी कठिन पहेली को आत्यान्तिक रुप से सुलझा पाये; उनका पावन जीवन ही पूरी मानव जाति का उच्चतम् आदर्श बन गया। इन सभी महापुरुषों ने अपने परम लक्ष्य का सच्चा केन्द्र किसी भी भौतिक, मानसिक या बाहरी जगत् की वस्तु या परिस्थिति को नहीं माना। उन्होंने जीव को स्वयं ही इस परम लक्ष्य का अन्तिम केन्द्र माना, जो अपनी स्वयंभू चेतना और अस्तित्व के प्रकाश में अपनी स्वयं की दिव्यता की सतत उद्घोषणा करता रहता है। भौतिक एवं मानसिक राज्य के उच्चतम् आदर्श कभी भी शाश्वतता, परम आनन्द एवं परम स्वतन्त्रता की कसौटी पर खरे न उतर

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

सके। वे सभी प्रकारान्तर से यान्त्रिक,सीमित तथा नश्वर थे। इसीलिये हम देखते हैं कि सदा ही मानव जाति के महानतम् नायक आध्यात्मिक महापुरुष ही रहे हैं।

इस जगत् में इन परम पावन आध्यात्मिक महापुरुषों की उपस्थिति, प्रकृति माता के उच्चतम् आशय की पूर्ति का ही एक अंग है। वह आशय है मानव जाति का आध्यात्मिक आरोहण; वह आशय है कि मानव काम, क्रोध, लोभ एवं मोह, ईर्ष्या व अहंकार के विस्तार रूपी इस नश्वर जगत् को पहचानकर, सत्य और प्रेम-ज्ञान की डोर के सहारे अपने परम आनन्द एवं स्वतन्त्रता रूपी सच्चे घर की ओर चले तथा अपने स्वरूपभूत गौरव को उपलब्ध हो सके।

यदि हम अपने चारों ओर निष्पक्षता और गहराई से दृष्टिपात करें तो सहज ही देख पायेंगे कि मानव किस प्रकार अपने ही स्वार्थों, अनन्त तृष्णाओं और अज्ञान की ज्वाला में जला जा रहा है; अपने सुख एवं सुरक्षा के तमाम साधनों के बावजूद वह कितना आशंकित, दुःखी और भयभीत है। हर वस्तु, व्यक्ति और परिस्थिति को मृत्यु अपना ग्रास बनाती जा रही है। सभी सम्बंध और सम्बंधी झूठे साबित होते जा रहे हैं। जीवन मानो पीड़ा और अवसाद से भरा एक दुःस्वप्न मात्र है। एक छलावे की तरह जीवन बीता जा रहा है और हाथ रह जा रही है केवल हताशा, हैरानी, वह भी उन थोड़े से भाग्यवानों के लिए जो कुछ-कुछ सजग से हैं, जाग रहे हैं।

इसी संदर्भ में सच्चे संतों, अवतारों और महापुरुषों का जीवन प्रासंगिक हो उठता है। उनका भगवद् ज्ञान-प्रेममय व्यक्तित्व और शील, संतोष, सादगी, नम्रता, परोपकार आदि सद्गुणों से पूरित जीवन मानो दिव्यता का वह शाश्वत झरना होता है जिसके सान्निध्य में जीव मात्र की सांसारिक ज्वाला शान्त होती है। वे उच्चतम आदर्शों की ऐसी प्रतिमूर्ति होते हैं जिनके रूप में मानवता को अपने सच्चे लक्ष्य के दर्शन होते हैं; जिनके सहारे और कृपा से जीव अपने सच्चे घर की ओर यात्रा करता है; जिनका स्वयं का कठिन त्याग, तपस्या तथा सबके प्रति समता और ममता भरा जीवन इस यात्रा हेतु व्यावहारिक आदर्श स्थापित करता है। सचमुच सच्चे संत मानवता को परमात्मा की सर्वोत्तम भेंट हैं।

पर स्वारथ के कारने, संत लिया औतार।
संत लिया औतार, जगत् को राह बतावैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

भक्ति करैं उपदेश ज्ञान दे, नाम सुनावैं ॥
प्रीत बढ़ावैं जगत् में, धरनी पर डोलें ।
कितनौ कहै कठोर बचन, वे अमृत बोलें ॥
उनको क्या है चाह, सहत हैं दुःख घनैरा ।
जिव तारन के हेतु, मुलुक फिरते बहुतेरा ॥
पलटू सतगुरु पाय के, दास भया निरवार ।
पर स्वारथ के कारने, संत लिया औतार ॥

श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ, सदा भगवद्मय, सौम्यता, माधुर्य, विनम्रता और सम्यक् आचार-विचार के जीवंत विग्रह — परमपूज्य सद्गुरुदेव श्रीचन्द्रस्वामीजी का जीवन भी ऐसे ही दुर्लभ संतों की श्रेणी में आता है। वस्तुतः वे सच्चे सन्तत्व की मूर्तिमती व्याख्या ही हैं। उनकी अति पावन और कल्याणकारी जीवनलीला से अवगत होकर अन्य साधकगण भी सत्य के मार्ग पर चलने या अधिक दृढ़ता से चलने का सम्बल प्राप्त कर सकें, इसी भावना से प्रेरित होकर हम महाराजजी का जीवन प्रसंग लिखने को उद्यत हुए हैं। एक हेतु और भी है — श्रीभगवान और पतितपावन संतों की लीला का गुणगान करने से अधिक कल्याणकारी और दूसरा कौन सा कृत्य है ? अतः आत्मकल्याण और प्रभु की लीला कहने-सुनने के दिव्य रस-लोभ से भी हम इस सर्वकल्याणकारी मगंलकार्य में प्रवृत्त हुए हैं।

यहाँ एक बात हम पाठकों से निवेदन कर दें कि महाराजजी सदा अपने जीवन और साधना के बारे में चर्चा से बचते ही रहे हैं। जैसा कि सेवक ने पहले निवेदन किया है यह जीवनी महाराजजी की अंग्रेजी में प्रकाशित संक्षिप्त जीवनी— Song of Silence-I नामक पुस्तक पर आधारित है। उस पुस्तक की सामग्री उनके सेवकों, पुराने साथियों तथा उनके परमप्रिय दिवंगत फ्रांसीसी शिष्य, संत युवान अमर (श्रीआनन्दजी, जिनकी चर्चा बाद में आयेगी) द्वारा प्राप्त जानकारियों के आधार पर एकत्रित की गयी थी । इसके अतिरिक्त बीच-बीच में कभी पूज्य महाराजजी भी प्रसंगवश जो लिखते रहे, उसे भी हमने नोट कर लिया। कुछेक बार तो हमारी अनुनय-विनय पर उन्होंने कृपापूर्वक कुछ बातें हमें बतला भी दीं। हम जो कुछ भी जान सके, हमने आपकी सेवा में प्रस्तुत कर दिया है। चूँकि उनके जीवन के सभी पहलुओं पर हमें सुविस्तृत जानकारी नहीं है अतः उनके पूर्वाश्रम तथा साधनाकाल

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

के बारे में पर्याप्त जानकारी की कमी हमें भी बहुत खटकती है; इसी कारण कभी-कभी पाठकों को पुस्तक में क्रमबद्धता तथा तारतम्यता का अभाव सा प्रतीत हो सकता है। खैर, जैसी गुरुदेव की इच्छा !

हमारे बहुत आग्रह पर ही गुरुदेव ने उनकी जीवनी लिखने की स्वीकृति अति कृपापूर्वक हमें दी। उनकी जीवनी के प्रसंग में ही जब एक सेवक उनसे उनके परिवार, भाई, बहिनों आदि के बारे में पूछने लगे तो उन्होंने लिख दिया,"आप मुझसे ऐसी बातें पूछें जिनका भगवान या परमात्मा से सम्बन्ध हो। साधु का इतिहास कभी नहीं लिखा जाता, न उसकी जात-पात ही लिखनी चाहिये। यह मर्यादा के विरुद्ध है। जो भगवान से सम्बंधित रहा हो वही लिखना चाहिये। पुराने जमाने में लोग ऐसा ही करते थे, साधु की जात-पात तक लिखते थे। साधु का जन्म तो तब होता है जब वह भगवान में जागता है।" किन्तु सेवक ने प्रार्थना की कि महाराजजी, परिवार आदि के बारे में कुछ जानकारी होने से एक तो पाठकों को यह ज्ञात हो जाता है कि किस प्रकार के पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक परिवेश तथा बाल्यावस्था आदि में उस संत के जीवन में भगवद्भाव का विकास हुआ, साथ ही यह भी पता चलता है कि किस प्रकार भागवती शक्ति अपने भक्तों का सभी परिस्थितियों तथा अवस्थाओं में अद्भुत प्रकार से विकास करती है। फिर, सर्वोपरि भक्तों को अपने प्रभु की सभी लीलाओं के रसास्वादन की पावन वासना भी होती है। इस पर महाराजजी ने मुस्कुराकर लिखा, 'तो फिर शीर्षक पूर्वजन्म दे देना।' उनके इसी संकेत के अन्तर्गत हमने वे सभी जानकारियां 'पूर्वाश्रम की बातें' शीर्षक के अन्तर्गत दी हैं। उनकी इच्छानुसार हमने यथासम्भव यह भी प्रयास किया है कि इस जीवनी में केवल आध्यात्मिकता से सम्बन्ध रखने वाली परोक्ष या अपरोक्ष बातों/घटनाओं का ही समावेश हो।

उदासीन पंथ

वेदों और पुराणों में ब्रह्माजी के चार मानसपुत्र ऋषियों—सनक, सनन्दन, सनातन तथा सनतकुमारजी का प्रसंग आता है। जिन्हें सप्तर्षियों, नारदजी आदि से भी पूर्ववर्ती काल का माना गया है। इन ऋषियों के बारे में कहा जाता है कि वे सदा बालावस्था में बने रहकर नित्य भगवद्स्मरण में लीन रहते हैं। उनकी छवि अति

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

सुन्दर, सुकोमल है तथा वे संयम का प्रतीक कोपीन धारण किये सदा सर्वदा 'हरिः शरणम्', इस दिव्य मंत्र का जाप करते हुए ब्रह्माण्ड में स्वछन्द विचरण करते रहते हैं। ये ऋषि सृष्टि के आदि काल से ही हैं तथा अपने परम आराध्य श्रीहरि की ही तरह नित्य हैं। इन्हीं चारों कुमार बन्धुओं में सनतकुमार ऋषि अग्रणी हैं तथा इन्हें ही सनातन हिन्दु धर्म के प्राचीन, पावन एवं प्रतिष्ठित उदासीन पंथ का प्रवर्तक अथवा आदि आचार्य माना जाता है। जैसा कि हम बाद में पढ़ेंगे, इन कुमार ऋषियों की इस पुस्तक के कथानायक पूज्य श्रीचन्द्रस्वामीजी पर विशेष कृपा रही तथा इन्होंने श्रीस्वामीजी को अपने साक्षात् दर्शनों, उपदेशों तथा संरक्षण से कृतार्थ किया। उदासीन पंथ की श्रृंखला में पीढ़ी दर पीढ़ी अनेक महान् आचार्य व संत हो गये हैं। बालयति, बालसिद्ध आचार्य श्रीचन्द्रजी महाराज इसी श्रृंखला के एक सौ पैंसठवें महान् आचार्य हुए हैं। अतः कुछ लोगों का यह मत कि उदासीन पंथ आचार्य श्रीचन्द्रजी से आरम्भ हुआ है—ठीक नहीं है।

क्योंकि भारत के इस महान् आध्यात्मिक नायक के जीवन के विषय में जनसाधारण को पूरा और ठीक-ठीक ज्ञान नहीं है इसलिये उनका संक्षिप्त जीवन परिचय तथा उनकी कुछ रचनाएं हम इस पुस्तक के द्वितीय भाग में दे रहे हैं।

बाबा भूमनशाहजी

लगभग तीन शताब्दियों पूर्व पाकिस्तान के पंजाब प्रांत के मिन्टगुमरी जिले के भूमनशाह गाँव में एक महान् रहस्यदर्शी, सिद्ध संत बाबा भूमनशाहजी उदासीन (सन् 1687ई०–1747ई०) हो गये हैं। बाबा भूमनशाहजी उपरोक्त, प्रतिष्ठित उदासीन संत परम्परा से थे। वे एक जन्मसिद्ध महान् योगी थे तथा उन्हें आचार्य श्रीचन्द्रजी का अवतार भी माना जाता है।

पूज्य श्रीचन्द्रस्वामीजी कृत छोटी सी पुस्तिका 'आनन्द-दर्पण' में हमें बाबाजी के पावन एवं दिव्य जीवन का संक्षिप्त परिचय भी मिलता है। हम उसे वैसे का वैसा ही पाठकों के ज्ञान-लाभ एवं कल्याण हेतु इस पुस्तक में अलग से दे रहे हैं। यही बाबा भूमनशाहजी हमारे चरितनायक पूज्य श्रीचन्द्रस्वामीजी के सद्गुरु और सर्वस्व हैं; इन्हीं बाबाजी की अनन्त आध्यात्मिक सम्पदा के वे वर्तमान उत्तराधिकारी हैं; इन्हीं बाबाजी का वे नवीनतम् दिव्य संस्करण हैं; इन्हीं बाबाजी के प्रेम-प्रकाश से आपूरित

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

वे स्वयं अविरल भगवत्ता की भागीरथी बहा रहे हैं। यहाँ हम स्वयं पूज्य स्वामीजी द्वारा बाबा भूमनशाहजी के बारे में समय-समय पर कहे गये कुछ शब्दों को उद्धृत कर रहे हैं जिससे पाठकों को उनके आपसी अलौकिक सम्बंध का किंचित आभास हो सके।

"बाल्यकाल से ही बाबाजी महाभाव की दुर्लभ एवं अत्युच्च स्थिति को उपलब्ध थे। इस स्थिति में साधक के शरीर तथा इन्द्रियों तक का दिव्यीकरण होकर साधक हमेशा उच्चतम दिव्य प्रेम एवं आनन्द में डूबा रहता है। वे बाल ब्रह्मचारी थे और उनका सम्पूर्ण जीवन सतत भगवद्स्मरण में बीता। वे आजीवन लोगों को प्रेम, अहिंसा, ईमानदारी, न्याय, करुणा, मैत्री एवं भीतर तथा बाहर की पवित्रता का उपदेश देते रहे। परिवर्तनशील जगत् की क्षुद्रता और निरर्थकता का सतत चिंतन तथा परम आनन्ददायक शाश्वत, अनन्त भगवान का निरन्तर स्मरण उनके पूरे जीवन के केन्द्रीय बिन्दु रहे। बाबाजी पूर्ण आध्यात्मिकता की साक्षात् मूर्ति ही थे। वे संकल्प मात्र से किसी भी योग्य साधक में आध्यात्मिकता जगा सकते थे। जहाँ तक मेरा प्रश्न है, तो मेरा तो उनसे इतना गहरा एवं रहस्यमय सम्बंध है कि जो कुछ भी मैंने जाना या पाया है वह उन्हीं की सुरक्षा में, मार्गदर्शन में तथा उन्हीं की कृपा से पाया है। वे मेरे अस्तित्व के प्राण हैं; मेरे जीवन का जीवन हैं। उनके बिना मेरा स्वतन्त्र अस्तित्व ही नहीं है—ऐसा उन्हीं की कृपा से मुझे प्रतिक्षण बोध बना रहता है।"

"मैं बाबाजी की रचना हूँ। उन्होंने जैसा बनाया, वैसा मैं बन गया। मेरी साधना के दौरान वे जैसा कराते रहे वैसा ही मैं करता रहा। जगत् के प्रति मेरा तीव्र वैराग्य तथा परमात्मा के प्रति प्रेम वास्तव में मेरे बाबाजी के प्रति गहन प्रेम का ही परिणाम था। जब मैं बालक ही था तो उनके प्रेम में रोता रहता था। मुझे उनकी उपस्थिति का भान तो होता ही था, साक्षात् दर्शन भी प्रायः होते रहते थे।"

"मैं किन शब्दों में बाबाजी की महिमा का गान करूँ। वे तो सब प्रकार से मेरा सर्वस्व हैं। बाबाजी ने जो मुझे दिया है उसका भार तो मैं हजारों जन्मों में भी नहीं उतार सकता। जगत् का सब धन-धान्य, मान, पद-पदवी उसकी तुलना में तुच्छ हैं। जो मुझको मिला है और जिसका शब्दों में वर्णन नहीं हो सकता, उसका पूर्ण श्रेय बाबाजी को ही है। और जो मुझे नहीं मिला वह मुझे मिलना ही नहीं

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

चाहिये था। उसके न मिलने में ही मेरा हित है। उसके न मिलने में भी बाबाजी की अपार कृपा का अनुभव मुझे होता है।"

"अगर मैं उन चमत्कारों के बारे में लिखने लगूँ जो बाबाजी द्वारा मेरे जीवन में घटित हुए तो एक हज़ार पृष्ठों की किताब बन जायेगी और उन असाधारण बातों पर कोई यकीन नहीं करेगा"

"बाबाजी के दरबार में सब कुछ है। जो मांगते हैं वही मिल जाता है। अगर उनसे कुछ नहीं मांगते तो वे अपने आप को ही दे देते हैं और अपने भक्त को कृत-कृत्य कर देते हैं। उनकी करुणा का कोई पार नहीं है। उनकी शरण में आने से जीव की जन्म-जन्म की भूख मिट जाती है; सब प्रकार के संशय दूर हो जाते हैं तथा दिव्य प्रेम और ज्ञान से जीवन आलोकित हो जाता है।"

"बाबाजी की महिमा अपार है। वे चाहें तो नीचातिनीच को भी पावन कर उसे प्रभु प्राप्ति का पात्र बना सकते हैं। उनकी करुणा भरी एक नजर से ही जीव के मल-विक्षेप दूर होने लगते हैं। ऐसे परम शुद्ध, परम करुणासागर बाबा भूमनशाहजी को बारम्बार प्रणाम!"

बाबाजी तथा स्वामीजी के अन्तर्सम्बन्धों की अलौकिक घटनाएं विस्तार से तो हमें मालूम नहीं हैं किन्तु उपरोक्त वर्णित भाव उनके जन्म-जन्म के दिव्य, मधुर सम्बंधों का सार जैसे हैं। इनके परस्पर आत्मिक सम्बन्ध की कल्पना तक हम अपने शरीर में सात्विक स्पंदन अनुभव किये बिना नहीं कर सकते। इनके इस दिव्य भाव का स्मरण मात्र साधक को पावन करके परमात्मा के प्रति आत्मदान के लिये प्रेरित करता है; उसे उच्च प्रेम-राज्य में मानसिक रूप से प्रविष्ट कराता है; गुरु-शिष्य सम्बन्ध के सार तत्त्व को हृदय में आलोकित करता है। अस्तु।

पूर्वाश्रम की बातें—जन्म, परिवार तथा आरम्भिक जीवन

दिनाँक 5 मार्च, 1930 को उपरोक्त वर्णित भूमनशाह गाँव में एक सम्मान्य एवं धर्मनिष्ठ परिवार में एक दिव्य बालक ने जन्म लिया। बालक का नाम सूरजप्रकाश (अब श्रीचन्द्रस्वामीजी) था। इस महान् आत्मा की जननी का नाम माता वासुदेवीजी एवं पिताजी का नाम लाला रूपचन्दजी था। बालक अतीव सुन्दर और प्यारा था। सूरजप्रकाश से बड़े दो भाई तथा एक बड़ी बहिन थीं। माता वासुदेवीजी

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

अपने समय के प्रसिद्ध गृहस्थ संत, बाबा गुलाबदासजी की पुत्री थीं। वे सात भाइयों की इकलौती बहिन थीं। माताजी का व्यक्तित्व बड़ा भव्य तथा शालीन था। वे स्वभाव से बड़ी सरल, उदार, मृदुल तथा भक्तिमती थीं। बड़ी मिलनसार भी थीं। गाँव के गरीब लोगों से उनका बड़ा प्रेम एवं मेलजोल था। उनके घर के पास ही मुसलमानों व कुम्हारों के घर थे। वे लोग बड़े ग़रीब थे, पर उनके बच्चे इनके घर आकर भोजन कर जाते थे तथा बालक सूरजप्रकाश भी उनके घर जाकर खा पी आता था। चूँकि माता वासुदेवी एक संत की पुत्री थीं अतः धर्म/अध्यात्म में उनकी सहज ही गहरी रुचि थी। उनकी बाबा भूमनशाह, भगवान कृष्ण तथा श्रीगुरुनानकदेवजी में गहरी श्रद्धा थी। वे ब्राह्मणों का भी बड़ा सत्कार करती थीं। एक बड़े गरीब ब्राह्मण थे। उनको महीने में दो बार तो जरूर भोजन कराती थीं। कई बार उनके घर सामान भी भेजती रहती थीं। वे नियमित रुप से एकादशी, अमावस्या और अन्य व्रत रखा करती थीं। गाँव में या डेरे में बाहर से कोई भी साधु-संत आ जाये तो उसे आदर से बुलाकर भोजन कराती थीं तथा दक्षिणा आदि देतीं थीं। वे गुरुमुखी पढ़ लेती थीं तथा गीताजी और श्रीगुरुग्रन्थसाहब का पाठ गुरुमुखी में ही करती थीं। स्वामीजी बतलाते हैं कि जब वे छः-सात वर्ष के थे तो गुरुमुखी पढ़ लिया करते थे। उन दिनों उनकी माताजी उन्हें गीताजी और गुरुबानी पढ़कर सुनाने को कहतीं। उन्होंने गाँव की कई अनपढ़ महिलाओं को गुरुमुखी सिखाई जिन्होंने बाद में गुरुद्वारे बनाए। उन्होंने अपने घर में एक अलग मन्दिर सा बना रखा था। उस मन्दिर में दोनों तरफ लकड़ी के दो तख्त रखे थे। एक पर श्रीगुरुग्रन्थसाहब तथा दूसरे पर श्रीमद्भगवद् गीताजी को आदरपूर्वक रखा हुआ था। बीच में बाबा भूमनशाहजी, भगवान बालकृष्ण तथा श्रीगुरुनानकदेवजी के फोटो रखे हुए थे। दीवारों को सुन्दर कपड़ों से ढांका हुआ था। अपने इसी मन्दिर में वे नियमित रुप से पूजा-पाठ और जाप आदि किया करती थीं। स्वामीजी बतलाते हैं कि जाप में उनकी विशेष निष्ठा थी और वे माला से बहुत जाप किया करती थीं। माला हर समय उनके सिरहाने के पास रखी रहती थी। कितनी ही बार बालक सूरजप्रकाश ने उन्हें देर रात तक अपनी शैय्या पर जाप करते देखा था। एक बार स्वामीजी ने स्वयं अपनी माताजी के बारे में हमें लिखकर बताया, "अब मुझे लगता है कि वे बहुत ऊँची स्थिति में पहुँची हुई

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

साधिका थीं। अब मैं अपने अनुभव और धारणा के अनुसार ऐसा कह सकता हूँ। उस समय मैं उनको नहीं पहचानता था।"

सन् 1948 में माता वासुदेवीजी ने अपना दैहिक चोला त्यागा था। स्वामीजी बताते हैं कि बाद में उन्हें कई बार स्वप्न में और एक-दो बार ध्यान में भी माताजी के दर्शन हुए।

उनकी माताजी एक आदर्श भारतीय महिला थीं। उनका उच्च जीवन इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण था कि किस प्रकार अपने दैनिक कार्यों को करते हुए भी कोई स्त्री अपनी सरलता, पवित्रता और भगवद्भाव के सहारे अध्यात्म के मार्ग पर अग्रसर हो सकती है।

स्वामीजी के पूज्य पिता लाला रूपचन्दजी ऊँचे, हृष्ट-पुष्ट और बहुत आकर्षक व्यक्तित्व वाले व्यक्ति थे। वे स्वभाव से बड़े ही उदार, संकोची और सौम्य थे। उन दिनों लोग पढ़े-लिखे कम ही होते थे। लेकिन वे तब डी. ए. वी. स्कूल, लाहौर से मैट्रिक पास थे। हाई-स्कूल की शिक्षा के बाद उन्हें सीधे ही पुलिस अधीक्षक के पद पर नौकरी मिल रही थी लेकिन भूमनशाह डेरे के तत्कालीन महन्त हरभजनदासजी ने उनको नहीं जाने दिया। लालाजी ने भी पद-प्रतिष्ठा वाली नौकरी के बजाये डेरे की सेवा करना ही उचित समझा। स्वामीजी के शब्दों में, "पिताजी ने तो अपना जीवन डेरे को अर्पित कर दिया था।"

वे उस विशाल डेरे के आम मुख्तार थे तथा सारा कामकाज सम्भालते थे। पूरे क्षेत्र में उनका बड़ा दबदबा था। पुलिस का एस. पी. भी पहले उनसे सलाह-मश्वरा किये बिना गाँव के किसी व्यक्ति को गिरफ्तार नहीं करता था। जीवनपर्यन्त उन्होंने असाधारण ईमानदारी, निष्ठा और लगन से डेरे की सेवा की। स्वामीजी बताते हैं कि साठ वर्ष की आयु के बाद तो उनके मन की स्थिति बिल्कुल बदल गयी थी; उनका भक्ति-भाव बहुत प्रगाढ़ हो गया था। उन्हें गुरुनानकदेवजी में बड़ी श्रद्धा थी और वे नित्य गुरुद्वारे भी जाते थे। वे दान भी बहुत करते थे, अपनी सामर्थ्य से भी अधिक। वे बैठकर भजन तो बहुत नहीं करते थे पर उनका भक्ति-भाव बहुत छुपा हुआ और गहरा था। उनके जीवन में अनेक कठिन से कठिन परिस्थितियाँ आयीं लेकिन वे डेरे की सेवा करते ही रहे। देश के विभाजन के बाद भारत में भी वे

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

बहाउद्दीन में, डेरे की सेवा करते रहे। सन् 1981 में उन्होंने यह पार्थिव चोला छोड़ दिया।

बालक सूरजप्रकाश के कोमल चित्त पर माता-पिता के पवित्र तथा धर्मनिष्ठ जीवन ने गहरी और अमिट छाप छोड़ी। और इस आदर्श दम्पति के सदाचार व भक्तियुक्त चरित्र के कारण ही तो इस अत्युच्च जीवात्मा को भागवती शक्ति ने उनके घर भेजा।

भूमनशाह गाँव तो पूरे का पूरा ही डेरे के नाम था। गाँव में ही इस परिवार का भी मकान था। मकान कच्चा लेकिन काफी बड़ा और दुमंजिला था। पाँच-छः कमरे तथा रसोई नीचे थे। ऊपर की मंजिल पर दो कमरे थे तथा मकान के अहाते में हैंडपम्प लगा था। मकान कच्ची ईंटों का था लेकिन सब कमरों तथा आँगन के फर्श पक्के बने हुए थे। हर दूसरे साल बाहर से घर की लिपाई तथा अन्दर से सफेदी हुआ करती थी। सभी कमरे सामान से भरे हुए थे। इस मकान के सामने एक मकान और था, जिसमें पाँच-छः कमरे थे तथा जिसे गोदाम के रूप में प्रयोग किया जाता था। इन कमरों में गेहूँ, कपास आदि भरी रहती थी। माता वासुदेवीजी के नाम उनके संत पिता बाबा गुलाबदासजी के गाँव में भी जमीन लगाई हुई थी, वहाँ से भी अनाज आता था। लाला रूपचन्दजी पास के गाँव में भी ठेके पर जमीन ले लिया करते थे। वहाँ से भी आमदनी होती थी। स्वामीजी को याद है कि डेरे से उनके घर लगभग बारह किलो दूध सुबह और बारह किलो दूध शाम को आता था। अपनी भी भैंसें थीं, उन्हें नौकर देखते थे। देश के बँटवारे के समय जब गाँव छोड़ा तो घर में कोई तीन सौ मन गेहूँ गोदाम में पड़ा था।

उन दिनों भूमनशाह गाँव की आबादी लगभग पाँच हज़ार की थी। कोई सत्तर प्रतिशत हिन्दू और तीस प्रतिशत मुसलमान थे। लेकिन विभाजन से पहले तक सभी लोग आपस में प्रेम से, मिल-जुलकर रहा करते थे। डेरे की ओर से गाँव में काफी कुएं खुदवाए हुए थे। पर साधारणतया लोग गरीब ही थे।

अब पुनः इस धार्मिक परिवार की ओर लौटें। लाला रूपचन्दजी के परिवार में संत-प्रेम एक उदात्त परम्परा थी। इस कथन की पुष्टि के लिये हम यहाँ एक छोटी सी घटना का उल्लेख करना चाहते हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

बालक सूरजप्रकाश के दादाजी का नाम लाला लक्ष्मणदासजी था। वे पश्चिमी पंजाब सूबे के मुल्तान डिवीज़न के मुज़्ज़फ़रपुर नगर में रहते थे तथा खजूर के थोक व्यापारी थे। एक बार वे अपने व्यापार के सिलसिले में रेल द्वारा मुल्तान से लाहौर जा रहे थे। लालाजी संतो के प्रेमी थे। रेलगाड़ी में ही उन्होंने बाबा भूमनशाह डेरे तथा वहाँ के तत्कालीन नौवें गद्दीनशीन महन्त बाबा हरभजनदासजी की महिमा के बारे में सुना। उन्हें महन्तजी के दर्शन करने की इच्छा हुई तो वे हवेली लक्खा के पास वसावेवाला रेलवे स्टेशन पर ही उतर गये। वहाँ से पैदल चलकर वे महन्तजी के दर्शन करने भूमनशाह डेरे की ओर चल पड़े। महन्तजी के दिव्य दर्शन करके वे निहाल हो गये। उनकी दिव्यता से वे गहरे प्रभावित हुए और कुछ दिन उनके सान्निध्य में बिताने के लिये वहीं रुक गये। इन कुछ ही दिनों में महन्तजी के प्रति उनमें इतनी गहरी श्रद्धा व प्रेम उत्पन्न हो गया कि उन्होंने उन्हें अपना सद्गुरु मान लिया। साथ ही साथ मन में यह भी दृढ़ निश्चय कर लिया कि जीवन में पर्याप्त धन कमा लिया है तथा अब जीवन के बाकी दिन सद्गुरु के चरणों में रहकर प्रभु-प्रेम का धन कमाना है। सचमुच ही डेरे से मुज़्ज़फ़रपुर लौटकर उन्होंने अपनी दुकान बेच दी और काम-धन्धा समेटकर पूरे परिवार के साथ भूमनशाह गाँव में सदा के लिये सद्गुरु की सेवा में आ गये।

उपरोक्त घटना के प्रकाश में हमारे लिये यह समझना आसान होगा कि क्यों हमारे प्रिय गुरुदेव ने इस पवित्र परिवार को ही अपनी आध्यात्मिक यात्रा की पूर्णाहूति हेतु चुना। अतः भौतिक जगत् की दृष्टि से लाला लक्ष्मणदासजी ने ही इस परिवार में बाबा भूमनशाहजी के प्रति प्रेम के बीज बोए और पूज्य गुरुदेव के द्वारा तो यह प्रेमरूपी वट-वृक्ष अनन्त शाखा-प्रशाखायें धारण करके निरन्तर संवर्धन को प्राप्त हो रहा है। आज पूज्य गुरुदेव के माध्यम से हजारों प्रेमी साधक दुनिया भर में बाबाजी का दिव्य एवं निर्मल प्रेम पाकर कृतकृत्य हो रहे हैं। जो भी देश-विदेश के साधक महाराजजी के सम्पर्क में आते हैं उनकी श्रद्धा उनमें ही नहीं अपितु बाबा भूमनशाहजी में भी सहजरूप से हो जाती है।

अब बालक सूरजप्रकाश की ओर चलें। बचपन से ही सूरजप्रकाश में बाबा भूमनशाहजी के प्रति सहज एवं अलौकिक आकर्षण था। यहाँ तक कि उन्हें बाबाजी की समाधि के प्रति भी बहुत गहरा खिंचाव था। समाधि पर बैठकर वे अक्सर घन्टों

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

व्यतीत किया करते थे, जैसे समय मिलते ही कोई दौड़कर अपने प्रियतम से मिलने चला जाये। उनके लिये समाधि बाबाजी का ही स्थूल रूप थी। उसके पावन-संग में उन्हें बाबाजी के सान्निध्य की अनुभूति होती। उस भोले-भाले ग्रामीण बालक को प्रतीत होता कि उसके अस्तित्व का केन्द्र उसमें नहीं, बाबाजी की समाधि में है, बाबाजी में है। और यह प्रगाढ़ आकर्षण उनके लिये बहुत सहज-स्फूर्त था, मानो जन्मों जन्मों का प्रेम-प्रसंग हो। स्वामीजी के बाद के अत्युच्च आध्यात्मिक जीवन का उनके बचपन में यदि हम कोई सूत्र खोजें तो वह यही अलौकिक प्रेम है। स्वामीजी ने स्वयं कहा भी है, "बचपन में मेरी परमात्मा के प्रति कोई विशेष रुचि नहीं थी। हाँ, घर का वातावरण धार्मिक था। संतों का संग भी होता था। वस्तुतः बाद में परिलक्षित होने वाला जगत् के प्रति मेरा तीव्र वैराग्य तथा परमात्मा के प्रति प्रेम तो मेरे बाबाजी के प्रति प्रेम पर ही आधारित था। बाबाजी के प्रेम में ही सब कुछ हो गया।"

अभी बाद में दी जाने वाली घटनाओं से हम अनुमान लगा पाएंगे कि निश्चित रूप से इस बालक की चेतना अध्यात्म की अति उच्च भूमिका को लेकर अवतरित हुई तथा उसे सहज ही में ऐसे अनुभव होते रहते थे जो उच्च साधकों के लिये भी दुर्लभ हैं।

उनके बाल्यकाल की घटनाओं के सम्बंध में हमारे पास उन्हीं की लेखनी से निकले कुछ दुर्लभ तथ्य हैं जो अपने एक सेवक के साथ वार्त्तालाप के दौरान उन्होंने स्वयं ही कृपापूर्वक उद्घाटित किये थे।

सेवक : श्रीआनन्दजी ने लिखा है कि आपको बचपन में ही कई संतों के दर्शन तथा कई आध्यात्मिक अनुभव हुआ करते थे।

स्वामीजी : बचपन में मुझे आकाश में उड़ने की प्रतीति बहुत हुआ करती थी। जैसे मैं ऊपर ही ऊपर जा रहा हूँ। कभी-कभी ऐसा भी होता था कि ऊपर आकाश में उड़ते-उड़ते नीचे आने लगता था, तो नीचे आने की इच्छा नहीं होती थी। उस समय जैसे आकाश में तैरते रहने के वास्ते बड़ा प्रयत्न करना पड़ता था। बालपन में ऐसा बहुत होता था। तब मैंने कभी सोचा नहीं कि ऐसा क्यों होता है। आकाश में उड़ने की प्रतीति तब होती है जब प्राण-शक्ति का आरोहण नीचे के चक्रों से ऊपर के चक्रों में तीव्र गति से होता है। आकाश में उड़ने की प्रतीति प्रायः साधकों को होती

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

है। या कभी-कभी प्राणशक्ति के आरोहण से साधक को ऐसी भी प्रतीति होती है कि उसका शरीर ध्यान में आसन से ऊपर उठ गया हो। इसके अतिरिक्त शरीर में प्रेम आदि के भावों के कम्पन भी होते थे। किसी भाव की प्रगाढ़ता के कारण से या प्राणशक्ति के शरीर में विशेष रुप से सक्रिय होने पर ऐसा होता है। जैसे प्रेम में रोमांच होता है या क्रोध अधिक हो तो शरीर कांपने लगता है।

सेवक : श्रीआनन्दजी ने लिखा है कि आपको अक्सर कई सिद्ध संतों के व बाबाजी के दर्शन हुआ करते थे। कई आध्यात्मिक अनुभव भी हुआ करते थे।

स्वामीजी : हाँ, पर बचपन में तो अब की पहचान वाले संतो के कभी दर्शन नहीं हुए सिवाय बाबा भूमनशाहजी के। कभी-कभी भगवान श्रीकृष्ण के बालरुप में भी दर्शन होते थे पर अब उसकी स्मृति कम है।

वैसे संतों के दर्शन तो साधकों को होते ही हैं। ध्यान में ही नहीं, स्वप्न में ही नहीं, कभी-कभी प्रत्यक्ष में भी दर्शन होते हैं। संतों के दर्शन मात्र से ही चित्त शुद्ध होता है एवं उनके सूक्ष्म स्पंदनों से आदान-प्रदान होता है।

सेवक : क्या इस प्रकार के दर्शनों का कोई प्रभाव भी होता है ?

स्वामीजी : प्रसन्नता होती है। मन पर तो उसका प्रभाव होता ही है, पर चित्त पर उसका गहरा प्रभाव होता है। जैसे आप दूध पीते हैं तो वह शरीर में क्या और कैसे प्रभाव डालता है यह आप नहीं जानते। एक शक्ति एवं पुष्टि का आप अनुभव करते हैं।

एक बार एक सेवक ने महाराजजी से कहा कि उनके जीवन के अवलोकन से स्पष्ट है कि उन्होंने बोध एवं निश्चयपूर्वक अपनी साधना लगभग सत्रह वर्ष की आयु में मंत्र-दीक्षा के बाद ही शुरु की। फिर उन्होंने यह स्पष्ट करना चाहा कि इस प्रकार उनके पूर्व-जन्म की साधना तथा वर्तमान जीवन की साधना के बीच लम्बा अन्तराल (gap) सा प्रतीत होता है। इसका महाराजजी ने बड़ा सुन्दर निम्न स्पष्टीकरण दिया—

"संस्कार तो किसी भी आयु में उद्‌भूत हो सकते हैं। रमण महर्षि को पन्द्रह वर्ष की आयु तक कभी कोई विचार भी परमात्मा का नहीं आया। पन्द्रह वर्ष की आयु में शिवपुराण में अरुणाचल का प्रसंग पढ़ा तो एकदम उनके पूर्व संस्कार जाग्रत हो गये। अगर विकास का कोई बाह्य चिह्न न दिखे तो उसे gap कहोगे ?"

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

"विकास conscious (चेतन) स्तर पर भी होता है, subconscious (अवचेतन) स्तर पर भी होता है। conscious (चेतन) पर होता है तो बाह्य चिन्ह भी प्रकट होते हैं। जब बीज पृथ्वी के अन्दर विकसित होता है तो दिखायी नहीं देता, पृथ्वी के बाहर आने पर ही दिखायी देता है। तो क्या पृथ्वी के अन्दर उसकी growth (विकास) नहीं होती ?"

"अगर किसी को बिना चाहे या बिना प्रयास के संतों के दर्शन हों, या visions हों, चाहे उस समय उनका कोई भी अर्थ समझ में ना भी आये, तो यह पूर्व संस्कारों को ही सिद्ध करता है। पन्द्रह वर्ष की आयु में सबका लक्ष्य भगवद्प्राप्ति तो निर्धारित नहीं हो जाता। जिसका भी होता है तो मानना पड़ेगा कि उसकी भूमिका दूसरों से अलग होगी। जैसे शरीर के एक सीमा तक बढ़ने पर उसके कई लक्षण प्रकट होते हैं ऐसे ही जीव के पूर्व संस्कार, शरीर व मन के एक सीमा तक mature (परिपक्व) होने पर सक्रिय होते हैं। फिर शरीर और मन के विकास पर पूर्व जन्म के संस्कारों के साथ-साथ वातावरण, माता-पिता का व्यक्तित्व आदि भी प्रभाव डालते हैं।"

अतः हम देखते हैं कि बचपन में होने वाले इन अनुभवों को बालक सूरजप्रकाश सहज रूप से लेता था। इन अनुभवों का आनन्ददायी और कल्याणकारी प्रभाव तो उस पर होता था लेकिन उसका बालक मन उनके आध्यात्मिक अर्थ नहीं निकाल पाता था। स्वामीजी फिर एक स्थान पर लिखते हैं, "जरूरी नहीं कि ऐसे प्रभावों का पता आपके स्थूल मन को भी लगे। आध्यात्मिक विकास का पता भौतिक मन को बहुत कम चलता है। वह तो आपको तब पता चलेगा जब आपका मन उन गुणों का विश्लेषण करके उनको समझने (interpret) का प्रयास करेगा। जैसे छोटे बच्चे के मन में झूठ का भाव नहीं होता, पर उसे यह प्रतीत नहीं होता कि मैं सच्चा हूँ। और, वह मूल्यांकन भी नहीं कर सकता।"

अपने एक अन्य अनुभव के बारे में भी पूछने पर महाराजजी ने यह लिखकर अनुमोदन किया—"हाँ भविष्य में घटने वाली घटनाओं का आभास भी बचपन में हो जाता था। एक घटना मुझे याद है। तब मैं शायद आठवीं कक्षा में था। पिताजी लाहौर गये थे तो उन्होंने एक साइकिल खरीदकर भेज दी थी। उसके बारे में हमसे कभी चर्चा नहीं की थी। जिस दिन मुझे रेलवे की रसीद (आर. आर.) ग्यारह बजे

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

के करीब मिली और मैंने स्टेशन जाकर साइकिल ली, उसी दिन सवेरे चार बजे मुझे वह साइकिल और उसके स्टेशन से लाने का पूरा दृश्य स्वप्न में दिख गया था। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह सब कैसे और क्यों हुआ। कई बार घर में कोई बाहर से आने वाला हो तो मुझे पहले से आभास हो जाता था। कई बार तो मैं बता भी देता था घर में।"

बचपन में सूरजप्रकाश का स्वभाव, शर्मीला, संकोची व चंचलता लिये हुए था। स्वामीजी स्वयं लिखते हैं—"मुझे या तो खेलने का शौक था या माताजी की संगत के कारण धार्मिक कार्यो में रुचि थी। बाबाजी का जहाँ दरबार था, जहाँ आरती होती थी वहाँ मैं रोज़ जाता था—सवेरे भी, शाम को भी।" लेकिन इन पंक्तियों के आगे उन्होंने जो लिखा वैसी अवस्था सम्भवत: अत्युच्च साधकों की ही होती होगी। उन्होंने लिखा, "वहाँ दरबार में मेरी इच्छा छिपकर किसी कोने में भजन करने की होती। कई बार मैं सवेरे उठकर बाबा दर्शनदासजी की समाधि के अन्दर बैठता क्योंकि बाबाजी की समाधि में तो लोग माथा टेकने आते रहते थे। कई बार अँधेरे में मुझे समाधि के अन्दर डर भी लगता। कई बार मुझे अन्दर किसी की उपस्थिति महसूस होती थी, जैसे कोई मुझे छू रहा हो। शुरु-शुरु में डर भी लगता था क्योंकि पूरा अँधेरा होता था और कुछ दिखता नहीं था। किसी के अन्दर चलने की भी आवाज आती थी पर दिखता कुछ नहीं था। पर जैसे-जैसे आयु बढ़ती गयी डर लगना बन्द हो गया। कभी-कभी ध्यान में सुध-बुध नहीं रहती थी और बड़ा आनन्द सा प्रतीत होता था। जब समाधि का भाई (पुजारी) आकर दरवाजा खोलता, तब पता लगता था। उस समय शायद मैं चौथी या पाँचवी कक्षा में पढ़ता था।"

इनके अतिरिक्त सूरजप्रकाश को बाबा भूमनशाहजी, बाबा श्रीचन्द्रजी तथा भगवान बालकृष्ण के दर्शन भी बालपन में अक्सर होते रहे। उन्हीं के शब्दो में, "मुझे मेरी और बाबाजी (भूमनशाहजी) की अत्यन्त निकटता का बोध तो निरन्तर रहता था परन्तु कभी-कभी उनके साक्षात् रुप में भी दर्शन हुए। लेकिन मैंने उनका जानबूझकर कभी ध्यान नहीं किया। जब किसी की उपस्थिति का बोध रहे तो ध्यान की आवश्यकता नहीं होती। ध्यान का क्या अर्थ होता है ?— awareness (बोध)।"

स्वामीजी के जन्म से सम्बन्धित एक अन्य अलौकिक घटना हम यहाँ दे रहे हैं जिसकी जानकारी हमें एक दिन अनायास उन्हीं की कलम से मिली।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

गाँव भूमनशाह में ही ज्योति नाम की एक वृद्धा, विधवा माता रहा करती थीं। इस माता ने सूरजप्रकाश की माता वासुदेवीजी से गुरुमुखी पढ़ी थी तथा वह गाँव के बच्चों, अधिकांशतः काम्बोज बच्चों को गुरुमुखी पढ़ाती थीं। घर में श्रीगुरुग्रन्थसाहबजी भी रखे हुए थे। चूँकि वह माता सूरजप्रकाश के घर बहुत रहा करती थीं अतः उन्हीं के सामने इस बालक का जन्म हुआ तथा उनकी गोदी में बालक खेला भी। वह ज्योति माता बहुत शुद्ध हृदया और निष्ठावान थीं तथा सूरजप्रकाश से कहा करती थीं जब मैं बाबाजी (श्रीगुरुग्रन्थसाहब) को रात को पंखा करके सुलाती हूँ तो मुझे रात को गर्मी नहीं लगती। देश के विभाजन के समय वह माता पाकिस्तान से निकलीं तो केवल श्रीगुरुग्रन्थसाहब को उठाकर ले आयीं, और बाकी पूरा भरा घर पीछे छोड़ आयीं। भारत आकर उस माता ने हरियाणा में सिरसा से छः-सात किलोमीटर दूर एक छोटा सा कच्चा गुरुद्वारा बनाया जिसमें गाँव के लोग आरती-पाठ किया करते थे।

सन् 1951-52 में स्वामीजी तीव्र वैराग्य से आभूषित हो अपनी पढ़ाई इत्यादि छोड़कर देहरादून से बहाउद्दीन गाँव में, महन्त गिरधारीदासजी के पास आ गये थे। एक दिन वे महन्तजी के पिताजी के साथ पैदल ही निकटस्थ उस गाँव में गये जहाँ माता ज्योति अपने गुरुद्वारे में रहा करती थीं। अब आगे का वृत्तान्त स्वामीजी के ही शब्दों में पढें—

"वे मुझे बहुत प्यार करती थीं। मुझे मिलकर वे बहुत खुश हुईं तथा मेरे बचपन की कई बातें भी मुझे सुनायीं। एक विशेष बात जो उन्होंने सुनाई वह यह थी कि जब मैं पैदा हुआ तो मैंने एक महीने तक आँखें नहीं खोली थीं। तो माताजी को तथा उनको संदेह हुआ कि शायद मैं अन्धा ही पैदा हुआ हूँ। तो माताजी ने उनसे कहा कि किसी को बताना नहीं, शायद बाद में आँखें खुल जायें, वरना पहले ही अफवाह फैल जायेगी कि अन्धा बच्चा पैदा हुआ है। मुझे बताया कि आपने एक महीने के बाद आँखें खोली थीं। इस तरह की मेरे बचपन की बहुत सी बातें सुनाती रहीं। वह कहती थीं कि अब आपकी ईश्वर में तीव्र रुचि और वैराग्य देखकर अनुमान होता है कि आप अपने जन्म के समय से एक महीने तक गहरी समाधि में थे।"

इस घटना की कल्पना करके हमें रोमांच होता है कि पूर्व जन्म में स्वामीजी का भगवद्भाव कितना गहन व दृढ़भूमि रहा होगा कि वह नवीन जन्म के चोले में भी

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

सावेग उपस्थित हो गया। सम्भवत: वर्तमान जन्म में इस दिव्य आत्मा द्वारा अध्यात्म के शिखर पर आरोहण हेतु तथा उसकी आवश्यकताओं के अनुरूप बालक सूरजप्रकाश के शरीर-मन के समुचित विकास हेतु, वह दिव्य भाव बालक के जन्म के कुछ ही दिनों बाद बाहरी रूप से शान्त हो गया।

भूमनशाह गाँव से चौथी कक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् सूरजप्रकाश को आठ-दस किलोमीटर दूर गाँव हवेलीलक्खा में आगे की पढ़ाई के लिये भेजा गया क्योंकि उन दिनों पाँचवी कक्षा से अंग्रेजी भाषा केवल पास के हवेलीलक्खा गाँव के विद्यालय में ही पढ़ायी जाती थी। हवेलीलक्खा में सूरजप्रकाश होस्टल में रहते थे तथा इतवार अथवा छुट्टियों में ही घर आते थे।

लेकिन युवा होते इस बालक में एक अजीब व दुर्लभ वृत्ति थी। उसमें अपने माता-पिता अथवा सगे सम्बन्धी आदि किसी के भी प्रति बहुत अधिक आसक्ति का सर्वथा अभाव था जैसा कि सामान्यतया बालकों में देखा जाता है। बाबाजी की कुछ ऐसी अद्‌भुत और रहस्यमयी कृपा रही कि चौथी कक्षा के बाद सूरजप्रकाश कभी भी लम्बे समय के लिये अपने परिवार के साथ नहीं रहे। श्रीभगवान स्वयं भिन्न-भिन्न प्रकार से अपने इस परमप्रिय और योग्य साधक के उत्तर जीवनकाल में उद्‌घाटित होने वाली तीव्र वैराग्य की भूमिका के सुयोग बना रहे थे। कुछ समय पहले सौभाग्यवश हमारा परिचय श्रीजमनादासजी, निवासी जलालाबाद, पंजाब से हुआ। आप पूज्य स्वामीजी के बचपन के सहपाठी और मित्र हैं। इनका स्वामीजी से सम्पर्क हवेली लक्खा के सरकारी हाईस्कूल में अप्रैल, 1945 में तब हुआ था जब स्वामीजी होस्टल में रहकर नवीं कक्षा में पढ़ रहे थे। श्रीजमनादासजी ने हमें बताया कि वे स्वामीजी की भोली-भाली सूरत, सरल स्वभाव तथा सुन्दरता पर मोहित थे। होस्टल में सरदार केसरसिंहजी वार्डन हुआ करते थे। वे दार्शनिक प्रकृति के थे और सूरजप्रकाश से बहुत प्रेम किया करते थे। शायद उन्हें इस विद्यार्थी में कुछ विशिष्टता दिखती थी। सूरजप्रकाश को वालीबाल खेलने का बहुत शौक था। वे बांसुरी भी बजाया करते थे। श्रीजमनादासजी अपनी गर्मियों की छुट्टियों में दो बार भूमनशाह डेरे के बुर्ज (अतिथिगृह) में भी रुके। वहाँ सूरजप्रकाश ने इन्हें डेरा तथा सब स्थान भ्रमण कराये। मेहमान के तौर पर वहाँ इन्हें बढ़िया विशेष भोजन मिलता था। उन दिनों डेरे

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

के अस्तबल में लगभग सौ घोड़े थे। सूरजप्रकाश बढ़िया घुड़सवार थे तथा हवेललक्ख्रा अक्सर घोड़े पर ही आते-जाते थे।

युवा सूरजप्रकाश हमेशा प्रसन्नचित्त रहा करते थे। उन्हें खाने-पीने का विशेष शौक नहीं था। कभी घर से बढ़िया पकवान आते, तो मिल बाँटकर खाते थे। वहाँ भी उन्हें खेलने का बहुत शौक था। विद्यालय में पँजाबी के प्राध्यापक ज्ञानी दिलीपसिंहजी भी इनसे बहुत प्यार करते थे। दसवीं कक्षा में ये दोनों मित्र एक ही कमरे में साथ-साथ रहे। उस वर्ष छब्बीस में से केवल छः छात्र पास हुए थे जिनमें सूरजप्रकाश भी एक थे। इसके बाद ये दोनों लाहौर में एस. डी. कॉलेज में दाख्रिल हुए थे। सूरजप्रकाश तीक्ष्ण बुद्धि वाले छात्र थे, लेकिन वे स्कूल/कॉलेज में जो पढ़ लेते बस वहीं तक था। बाद में बिल्कुल नहीं पढ़ते थे। लेकिन खेलों के प्रति तो उनमें जुनून जैसा था।

उन्हें फिल्में देखने का भी शौक था। लेकिन कैसी विचित्र बात! जब भी फिल्म में कोई प्रेम-प्रसंग आता, तो वे बाबाजी को याद करके छुप-छुपकर सिनेमा हाल में ही रोने लगते। यह अतिकठिन प्रलोभन रूपी अनन्त शाखा-प्रशाखाओं वाला जगत्रूपी मायाजाल, इस नवयुवक में तीव्र वैराग्य तथा भगवद्प्रेम जगाने के सिवाय उसका कुछ न बिगाड़ सका।

अतः हम देखते हैं कि सूरजप्रकाश कई प्रकार के अति उच्च आध्यात्मिक अनुभवों के बीच पले तथा बड़े हुये जो चुपचाप भीतर ही भीतर उन्हें रूपान्तरित कर रहे थे। इसी बीच बाहरी तौर पर युवा सूरजप्रकाश की खेलों में, खासकर वालीबाल में रुचि बढ़ती ही गयी। दसवीं कक्षा उत्तीर्ण करने के बाद सूरजप्रकाश को आगे की पढ़ाई के वास्ते लाहौर भेजा गया।

विचित्र-घटना

सन् 1947 में सूरजप्रकाश लाहौर में बारहवीं कक्षा के छात्र थे। वे अपनी गर्मियों की छुट्टियाँ बिताने अपने गाँव आये हुए थे। इसी अवधि में, कुछ दिनों तक लगातार, बाबा भूमनशाहजी उनके स्वप्न में आने लगे। बड़ी गहराई तथा प्रेमभरी दृष्टि से वे सूरजप्रकाश की आँखों में आँखें डालकर उसे निहारते रहते। सम्भवतः बाबाजी की दृष्टि में सूरजप्रकाश अपनी आध्यात्मिक यात्रा की तैयारी हेतु परिपक्व

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

होने लगे थे। धीरे-धीरे अतीत के कितने ही जन्मों के आवरण सूरजप्रकाश की आँखों से छंटने लगे। जन्मों-जन्मों के अपने प्रेमास्पद बाबा भूमनशाहजी के साथ उसके प्रगाढ़ आत्मिक सम्बन्धों की स्मृतियों के दीप प्रज्वलित हो उठे। सूरजप्रकाश को शीघ्र ही पता चल गया कि वह कौन है और किस हेतु इस जगत् में आया है। जगत् के प्रति तीव्र वैराग्य की तरंगों ने उन्हें आच्छादित कर लिया। वे बाबाजी के प्रेम-प्रवाह में पूरे डूब गये।

इस घटना के कुछ ही दिनों के उपरान्त एक अन्य विचित्र घटना हुई। एक रात बाबाजी सूरजप्रकाश के पिता लाला रूपचन्दजी के स्वप्न में आये और उनसे कहने लगे, देखो,"सूरज मेरा आध्यात्मिक पुत्र है। उसे अपने समस्त पारिवारिक सम्बधों का त्याग करके इसी जन्म में अपनी आध्यात्मिक यात्रा पूरी करनी है। इसलिये तुम सूरज को मुझे सौंप दो। मैं हर प्रकार से उसका योग-क्षेम वहन करूंगा।" स्वप्न में बाबाजी के दर्शन करके तथा उनकी भव्यता से लाला रूपचन्दजी इतने अभिभूत हो गये कि उन्होंने एकदम बाबाजी की हर बात मान ली। लेकिन सुबह आँख खुलने पर उन्हें प्रतीत हुआ जैसे गयी रात की घटना एक स्वप्न मात्र हो तथा उन्होंने किसी से भी उस घटना की चर्चा तक नहीं की।

लेकिन अगली ही रात बाबाजी दुबारा लालाजी के स्वप्न में आये और मानो रोष से कहने लगे,"तुमने कल रात की बात को एक स्वप्न मात्र ही समझ लिया; अपना वचन भी पूरा नहीं किया। तुम्हारी इतनी हिम्मत ! और यह देखो ! सूरज मर चुका है।" इतना सुनना था कि भयभीत लालाजी ने एकदम सोये हुए सूरज पर दृष्टि डाली। और वास्तव में उन्हें सूरज अपनी शैय्या पर निष्प्राण पड़ा दिखा। बाबाजी फिर कहने लगे, "अगर तुम्हें सूरज का जीवन प्यारा है तो उसे मुझे सौंप दो।" यह सुनकर लालाजी जोर-जोर से रोने लग गये। उन्हें रोता देख बाबाजी पुनः बड़े प्यार एवं सान्त्वना भरे शब्दों में कहने लगे,"तुम बिल्कुल चिन्ता न करो। सूरज हमेशा मेरे अपरोक्ष संरक्षण में रहेगा।" फिर बाबाजी ने उनसे दो कार्य करने को कहा—पहला तो भूमनशाह डेरे के तत्कालीन महन्त गिरधारीदासजी से सम्पर्क करना और दूसरा जब भी सूरजप्रकाश परमात्मा/सत्य की खोज में संसार का त्याग करना चाहे तो उसमें कोई बाधा न डालना तथा उसे जाने देना। इन दोनों बातों के प्रति लालाजी से वचन लेकर बाबाजी अन्तर्धान हो गये। सुबह होते ही लालाजी ने पूरी बात अपनी

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

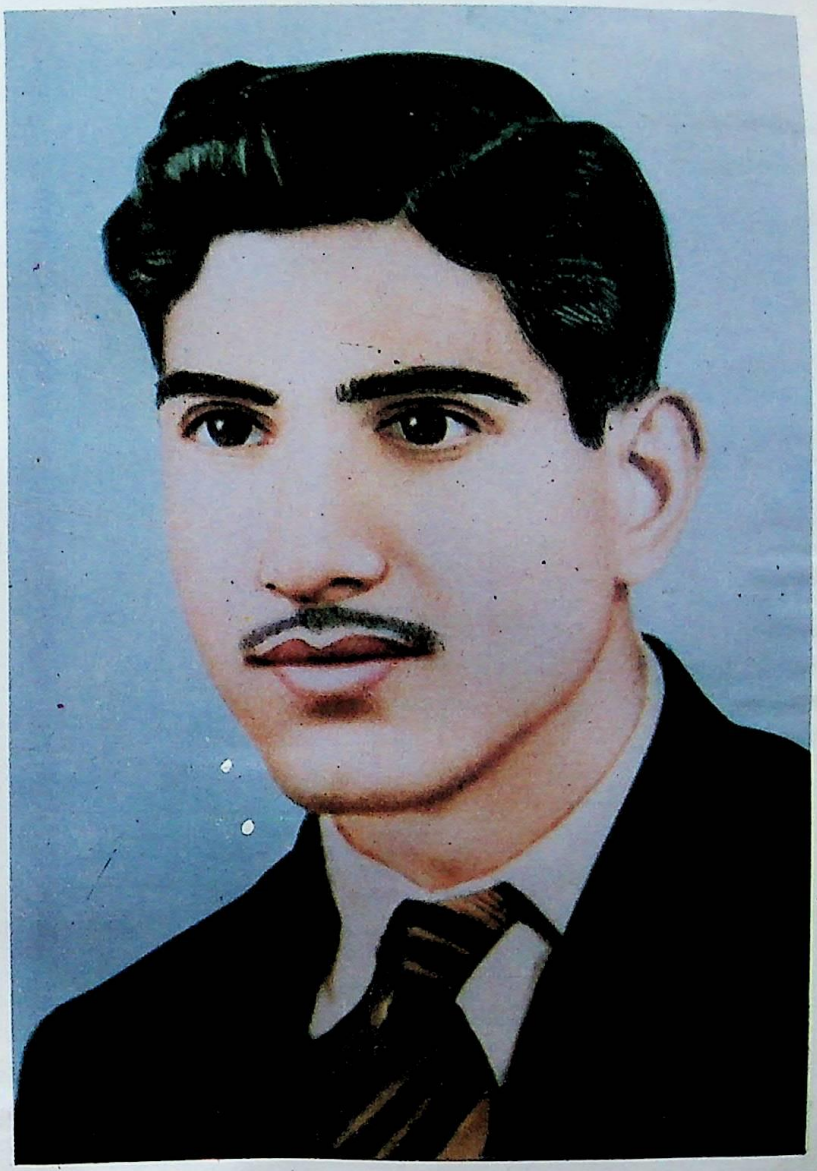
सहधर्मिणी वासुदेवी को सुनायी। कुछ डरे-डरे तथा हतप्रभ, वे दोनों महन्त गिरधारीदासजी के पास डेरे को चल दिये। उन्हें यह जानकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि महन्तजी भी उन्हीं की प्रतीक्षा कर रहे थे। इससे पहले कि वे एक शब्द भी बोलते, महन्तजी स्वयं ही कहने लगे, "कल रात बाबाजी स्वप्न में आये थे तथा मुझे कुछ विशेष निर्देश दे गये हैं।" फिर उन्होंने विस्तार से सब कुछ सूरज के माता-पिता को बताया।

सूरज चन्द्र बना

दिनाँक 15 जून, 1947 को भूमनशाह डेरे के दरबार हाल में चहल-पहल थी। वहाँ डेरे के सभी संत तथा बहुत बड़ी संख्या में गाँव वाले इकट्ठे हुए थे। आज के पावन अवसर पर विशेष रूप से श्रीगुरुग्रन्थसाहब का पाठ आयोजित किया गया था। सूरजप्रकाश को एक विशेष आसन पर बिठाया गया। महन्त गिरधारीदासजी ने परम्परा के अनुसार उनके सिर के कुछ बाल स्वयं काटे। फिर उन्होंने श्रीगुरुग्रन्थसाहब के पृष्ठों में से एक पृष्ठ खोलकर एक अक्षर निकाला तथा उसी के आधार पर इस पुण्यात्मा का नाम सूरजप्रकाश से बदल कर चन्द्रप्रकाश रख दिया। इसके बाद महन्तजी द्वारा चन्द्रप्रकाश के कान में पवित्र गुरुमन्त्र उच्चारित किया गया। उन्हें पहनने के लिये नवीन कोपीन दिया गया। उदासीन परम्परा के अनुसार एक टोपी तथा सेहली (काला धागा) भी पहनाया गया। कार्यक्रम पूरा हो जाने के बाद उनके सिर के सारे बाल उतारे गये तथा सभी को प्रसाद वितरण किया गया। इस प्रकार मात्र सत्रह वर्ष की आयु में स्वामीजी उदासीन पंथ के साधु के रूप में दीक्षित हो गये। सचमुच ऐसे राही जगत् में विरले ही होंगे, जिसका स्वयं गंतव्य (मंजिल) भी अधीरता से राह देखता हो तथा जो स्वयं अनेक आयोजन करके उसका पथ प्रशस्त कर रहा हो। स्वामीजी तो बस बाबाजी के प्रेम भरे शीतल अंक में खेलते रहे। बाकी सब अपने आप होता रहा। दीक्षा के बाद चन्द्रप्रकाश लगभग डेढ़ महीना डेरे में रहे।

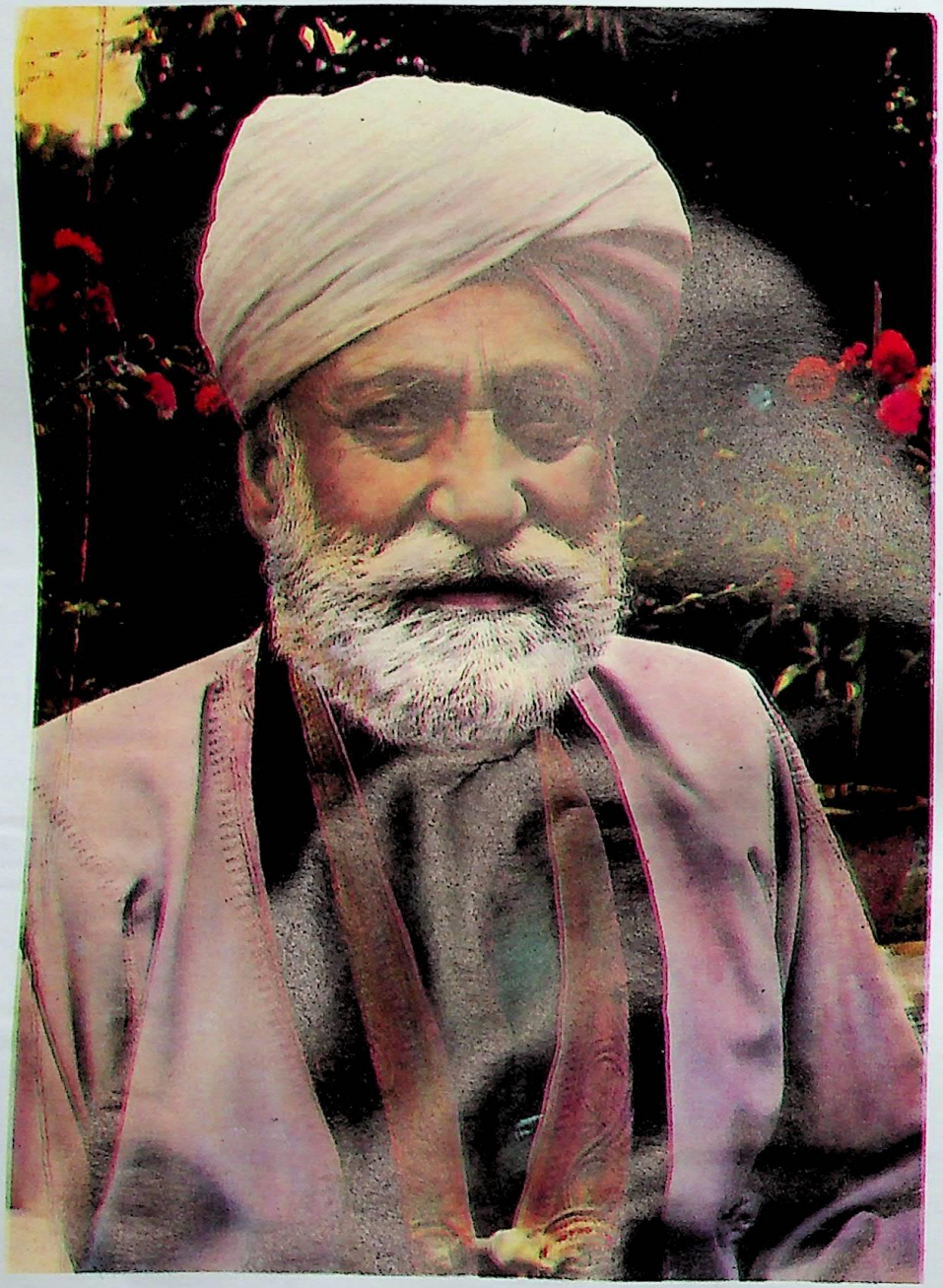
सूरजप्रकाश का नाम चन्द्रप्रकाश रखते समय महन्तजी ने विनोद करते हुए कहा था, "तुम सूरज की तरह बहुत गर्म (क्रियाशील) थे। अब तुम चन्द्रमा की तरह शीतल (शांत) हो जाओगे।" इस प्रकार हम देखते हैं कि बाबाजी ने स्वयं महन्त

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



फरवरी, 1947 में लाहौर में ग्यारहवीं कक्षा के छात्र के रूप में सूरजप्रकाश (अब श्रीचन्द्रस्वामीजी)।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



पूज्य महन्त गिरधारीदासजी

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

गिरधारीदासजी के माध्यम से स्वामीजी को उदासीन पंथ में दीक्षित कर लिया। वास्तव में बाबाजी ही स्वामीजी के असली सद्गुरुदेव भगवान हैं।

दीक्षा लेने के बाद चन्द्रप्रकाश साधुत्व की उच्चतम मर्यादाओं के अनुरूप कभी भी अपने घर पर नहीं रहे। वे महन्तजी के पास डेरे पर ही रहते थे। वह दीक्षा केवल नाम मात्र की ही नहीं थी। उसने मानो उनके पूरे जीवन मूल्यों तथा दिशा को ही बदल दिया था। चन्द्रप्रकाश तीव्र वैराग्य-प्रेम से आप्लावित हो गये थे। अपने उस समय के वैराग्य के बारे में स्वामीजी कहते हैं, "अब मैं कह सकता हूँ कि उस समय का तीव्र वैराग्य वास्तव में बाबाजी के प्रति मेरे गहन प्रेम पर आधारित था। वह उनकी अहेतुकी कृपा के कारण था।" इस प्रकार उस छोटी सी उम्र में ही उन्हें यह मालूम हो गया कि वे अध्यात्म के पथ पर पिछले कई जन्मों के तीर्थयात्री हैं। अपने जीवन का सच्चा लक्ष्य उनके सामने बिना किसी परोक्ष या अपरोक्ष कारण के, सुस्पष्ट व आलोकित हो उठा। अतः जब उनकी आयु के अन्य युवक काम, क्रोध, अहंकार रूपी इस दुस्तर माया में फँसना आरम्भ ही करते हैं, इस युवा साधु ने मन ही मन भीष्म प्रतिज्ञा ले ली कि वह हर हालत में इसी जीवन में परिपूर्ण भगवद् उपलब्धि करके रहेगा। इस घटना के बाद चन्द्रप्रकाश के अन्तःकरण में भगवद्-प्रेम तथा वैराग्य की भागीरथी सतत रूप से बहने लगी। लेकिन बाहर से लोगों को उनकी अन्तःस्थिति का पता न चल सका। बाहरी तौर पर तो चन्द्रप्रकाश पुनः अपने विद्यार्थी जीवन तथा खेल-कूद की प्रवृत्तियों में संलग्न हो गये।

चन्द्रप्रकाश के जीवन में परमात्मोन्मुख होने की घटना मानवता के लिये असाधारण और महत्वपूर्ण संदेश है। वे परमात्मा के प्रति किसी सांसारिक अभाव, असफलता, दुःख, दुर्बलता, भय, रोग या वृद्धावस्था के कारण नहीं मुड़े। वरन् जगत् के प्रति उनका वैराग्य और परमात्मा के प्रति उनका प्रेम नितान्त अकारण और मौलिक था। भला 'अपने सच्चे घर' लौटने की आकांक्षा के लिये क्या कारण ? अपने सच्चे स्वरुप में प्रतिष्ठित होने के लिये किससे सलाह लेनी ? अपने प्रियतम से मिलने के लिये क्यों देर करनी ? अनन्त ज्ञान, अनन्त प्रेम, अनन्त आनन्द, परमसत्य और अमरत्व की भूख मिटाने के लिये कैसा सोच-विचार ? अतः आइये, हम सब भी अकारण ही उस परमात्मा की प्राप्ति हेतु पूरी शक्ति से संलग्न हों।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

इस घटना के लगभग एकदम बाद ही देश का दु:खद बँटवारा हो गया। हिन्दुओं तथा सिक्खों को अपना सब कुछ वहीं छोड़कर, भागकर आना पड़ा। जहाँ खंडित भारत अपनी उदार परम्परा के अनुसार पुन: एक धर्मनिरपेक्ष देश बना, पाकिस्तान एक कट्टर इस्लामी देश बन गया। तब तक बाबाजी का डेरा एक भव्य स्थान के रूप में विकसित हो चुका था जिसकी चर्चा भाग तीन में बाबा भूमनशाहजी के जीवन-परिचय में की गयी है। बड़े-बड़े भवन, हजारों एकड़ जमीन, बाबाजी की पवित्र समाधि, दरबार साहब — सब कुछ वहीं रह गया। तत्कालीन गद्दीनशीन महन्त गिरधारीदासजी अपने परम निष्ठावान सेवक तथा पूज्य महाराजजी के पिताजी लाला रूपचन्दजी के परिवार के साथ तथा कई अन्य सेवकों और संतों के साथ इस ओर आ गये। बँटवारे के समय चन्द्रप्रकाश देहरादून के निकट मसूरी में थे।

देश के टूटने के साथ ही चन्द्रप्रकाश का दिल भी बुरी तरह टूटा। उनके परम प्रेमास्पद बाबाजी की समाधि, उनकी लीलास्थली — सब चीज़ें उनसे छिन गयी थीं। उस स्थान का वियोग उनके लिये असहनीय था। स्वामीजी ने स्वयं लिखा, "बँटवारे के बाद मैं बाबाजी की समाधि की याद में एकान्त में छुप-छुपकर रोया करता था। कितने ही महीनों तक मन में यह धुन सवार रही कि भाग कर वहीं चला जाऊँ तथा भेष बदल कर हमेशा समाधि के निकट ही रहूँ।"

दूर वीरानों के सीने में करती रही कोई बाँसुरी क्रन्दन;
देख, तेरी याद कहाँ तक मेरे सीने में उतर जाती है।

उनकी इस बात को सुनकर अनायास ही हीर-रांझा के अपूर्व लौकिक प्रेम की लोकगाथा मानस में उतर आती है। राँझा भी अपनी प्रेमिका के प्रेम में भेष बदलकर उसके गाँव में वर्षों तक भैंसे चराता रहा था। चन्द्रप्रकाश के दिल की हालत भी ऐसी ही थी—

तेरी यादों में शाम होती है, तेरी यादों में सहर होती है;
तेरी यादों में होंठ हँसते हैं, तेरी यादों में आँख रोती है।

लेकिन चन्द्रप्रकाश की जीवनगाथा में उनका प्रेमास्पद केवल समाधि के आस-पास ही नहीं बल्कि उन्हीं के भीतर उनकी अपनी ही आत्मा के रूप में भी था। समाधि तो उसका मात्र एक बाहरी प्रतीक थी और चन्द्रप्रकाश को बाबाजी की कृपा

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

से इसका आभास भी था। खैर, बड़ी मुश्किल से बाबाजी की कृपा द्वारा उनके हृदय में उस स्थान के विरह की पीड़ा का आंशिक उपशम हुआ।

तथाकथित भारत आकर महन्त गिरधारीदासजी ने हरियाणा में जिला सिरसा के एक गाँव बहाउद्दीन में बाबाजी के डेरे की स्थापना की। कालान्तर में उन्होंने बहाउद्दीन के पाँच-सात किलोमीटर निकट गाँव संघरसाधां में डेरे की स्थापना की जो आज भी वहाँ है। लाला रुपचन्दजी हमेशा डेरे के अनन्य सेवक के रूप में महन्तजी के अंग-संग रहे। बाबाजी के सेवक भी देश के बँटवारे के बाद उत्तर भारत के विभिन्न स्थानों पर जाकर बस गये। धीरे-धीरे उन्होंने स्थान-स्थान पर बाबाजी के मन्दिर बना दिये जहाँ नियमित रूप से बड़ी प्रेम-श्रद्धा के साथ बाबाजी की आरती-पूजा की जाती है।

देश के विभाजन के बाद सन् 1948 में चन्द्रप्रकाश ने सनातन धर्म कॉलेज, अम्बाला से एफ. एस. सी. (बारहवीं कक्षा) की परीक्षा उर्त्तीण की। उन्होंने स्नातक की परीक्षा डी. ए. वी. कॉलेज, देहरादून से सन् 1951 में उर्त्तीण की। इसी अवधि में उन्होंने खेल-कूद के कई क्षेत्रों में विशेष दक्षता का प्रदर्शन किया। वालीबाल तो उनका प्रिय खेल था ही। कॉलेज में उन्होंने एथलैटिक्स में भी अपनी विशिष्ट योग्यता का परिचय दिया।

युवा चन्द्रप्रकाश का शरीर लम्बा, छरहरा, सुगठित एवं बहुत आकर्षक था। तीखे नैन-नक्श तथा उज्ज्वल गेहुँवा रंग था। प्रवृत्ति में होने के बाद भी मुखचन्द्र पर वैराग्य, सरलता, उदासीनता, असंगता और सौम्यता के भाव छाये रहते थे।

एक बार कॉलेज के दिनों में खेलों के सम्बन्ध में चर्चा करते हुए उन्होंने हमें बताया कि— "जनपद स्तर की एथलैटिक्स प्रतियोगिता में भाग लेने के वास्ते डी.ए.वी. कॉलेज की एथलैटिक्स की टीम का चुनाव होना था। उस दिन कॉलेज की छुट्टी थी। कॉलेज ने टीम के चुनाव के लिये सैंट जोसेफ एकेडमी का ग्राउन्ड एक दिन के लिए किराये पर लिया था। वहाँ ट्रैक्स बने हुए थे। जिले के ओपन खेलकूद भी वहीं पर हुआ करते थे। वह ग्राउन्ड राजपुर रोड पर है। मुझे तो पता भी नहीं था कि उस दिन एथलैटिक्स की टीम का चुनाव होना है। अकस्मात मैं उस दिन सड़क पर ग्राउन्ड के सामने से निकला तो बाहर गेट पर खड़े कॉलेज के दो लड़के मैंने देखे। मैं साइकिल पर था। मैंने रुककर उनसे पूछा, यहाँ क्यों खड़े हो तो उन्होंने

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

बताया कि उस दिन वहाँ जिले की खेलकूद प्रतियोगिता में भाग लेने के लिये कॉलेज की एथलैटिक्स की टीम चुनी जानी थी। मैं भी अन्दर चला गया। तब चुनाव शुरू नहीं हुआ था। ऊँची कूद के स्टैण्ड पर लड़के कूदने का अभ्यास कर रहे थे। मैंने पैंट और जूते पहने हुए ही जम्प लगायी तो पहले ही जम्प में मैनें 5'-6" क्रास कर लिया। हमारे कॉलेज में जो सर्वश्रेष्ठ ऊँची कूद लगाने वाला था उसका रिकार्ड 5'-8" का था। मेरे दोस्त ने मुझे कहा कि जब तुम पैंट-जूते पहिने ही 5'-6" पार कर सकते हो तो तुम्हें जरूर भाग लेना चाहिये। तो उस दिन पहली बार मैंने एथलैटिक्स के मुकाबले में भाग लिया। ऊँची कूद में मैं प्रथम आया — 5'-9" कूद करके। सौ मीटर तथा दो सौ मीटर की दौड़ में दूसरे नम्बर पर रहा। शार्ट पुट में तीसरे स्थान पर रहा। तब मेरी रुचि एथलैटिक्स में हुई। पहले प्रतिदिन वालीबाल ही खेला करता था। एक महीने बाद थोड़ा अभ्यास करके जिला स्तर के खेलकूद में कॉलेज की टीम की तरफ से भाग लिया तो पाँच events में मैंने स्थान प्राप्त किया। अट्ठारह वर्ष से कम आयु वर्ग के चुनाव में मैं जिले भर में प्रथम आया। ओपन चुनाव में जिले में तीसरे स्थान पर रहा।

"अगले वर्ष जिले के ओपन खेलकूदों में मैं प्रथम आया। फिर जितने वर्ष देहरादून में रहा, प्रथम ही आता रहा। एक वर्ष जिले की ओर से उत्तर प्रदेश की meet में भी तीन events में represent किया था।"

"कॉलेज में मेरे पास sports championship के तीन वर्ष के colours थे। जिले के दो वर्षों के colours/प्रमाण-पत्र तो कम से कम पच्चीस-तीस होंगे। बाद में ब्लेज़र पर लगाने वाले कलर्स मैंने हरिद्वार में एक लड़के को दे दिये थे।"

इस प्रकार उनका एक अति प्रतिभाशाली खिलाड़ी का जीवन पूर्ण रूप से विकसित होने के पहले ही समाप्त हो गया, लेकिन साथ ही अति प्रतिभाशाली साधक के लिये एक भव्य मार्ग प्रशस्त हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि खिलाड़ी का जीवन तो स्वयं श्रीभगवान द्वारा प्रदत्त उनके जीवन में एक संक्षिप्त सुअवसर था जिस अवधि में उन्होंने अदम्य लगन, साहस, कड़ी मेहनत, दूसरों के लिये त्याग की भावना, धैर्य, योजनाबद्ध तरीके से कार्य करना, ध्यान, सजगता आदि सद्गुणों को अपनी कठोर आध्यात्मिक साधना के संपादन हेतु स्वयं में विकसित किया।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

अपने देहरादून प्रवास की अवधि में स्वामीजी महन्त गिरधारीदासजी की राजपुर रोड स्थित कोठी के एक कमरे में रहा करते थे। महन्तजी स्वामीजी का सब प्रकार से ध्यान रखते थे। स्वामीजी की ध्येय-निष्ठा इतनी गहन थी कि उस स्थान पर भजन-साधन के लिये बहुत अनुकूल वातावरण न होने पर भी उनके जीवन पर इसका कोई प्रतिकूल असर न पड़ सका। वे वहाँ भी नियमपूर्वक अपने सभी दैनिक-कार्य स्वयं करते तथा अपना कमरा हमेशा साफ-सुथरा और सुव्यवस्थित रखते। भजन-साधन में भी नियमित रूप से बैठते थे।

उन दिनों के उनके एक घनिष्ठ मित्र एवं सहपाठी कलकत्ता निवासी श्रीजगदीशजी मारवाह से दो वर्ष पहले हमारा दैवयोग से मिलना हो गया। उन्होंने हमें बताया कि विद्यार्थी के रूप में भी स्वामीजी सौम्यता और शालीनता की मूर्ति तो थे ही, साथ ही मितभाषी, मृदुभाषी और प्रसन्न मुख भी थे। समाज में ऐसे रहते थे जैसे अजनबी से हों— किसी से भी बहुत मेल-मिलाप नहीं था। श्रीजगदीशजी की माताजी भी चन्द्रप्रकाश से बहुत प्रेम रखती थीं तथा प्रायः उन्हें बुलाकर घर में प्यार से भोजन भी कराती थीं। श्रीजगदीशजी ने यह भी बताया कि स्वामीजी बीच-बीच में कई-कई दिनों के लिये देहरादून से कहीं बाहर चले जाते थे तथा वे जब भी वापस लौटते थे, तो उनमें और अधिक नम्रता, गम्भीरता तथा शालीनता स्पष्ट दिखायी पड़ती थी। किन्तु नवयुवक जगदीश कभी भी यह अनुमान न लगा सका कि उसका मित्र परमार्थ के मार्ग का साहसी पथिक है तथा 'एकला चलो' की धुन पर अकेले ही लम्बे-लम्बे डग भरकर अपनी यात्रा पर द्रुत गति से दौड़ रहा है। स्वामीजी ने अपने अत्यन्त अन्तर्मुख स्वभाववश श्रीजगदीशजी को कभी भी अपने जीवन के एकमात्र लक्ष्य या अपने भजन-साधन की दूसरी दुनिया के बारे में कुछ नहीं बताया।

उन दिनों की बातें पूछने पर स्वामीजी ने हमें बताया कि वे उन दिनों अक्सर हरिद्वार या ऋषिकेश चले जाया करते थे। हरिद्वार में वे कनखल स्थित नारायण-निवास आश्रम में रहते थे। उन दिनों ऋषिकेश में स्वर्ग-आश्रम से गंगापार लक्ष्मण झूला को जो मार्ग जाता है, उस मार्ग पर स्वर्ग-आश्रम की कई कुटियाँ थीं। उन कुटियाओं में कई महात्मा एकान्त सेवन करते हुये भजन करते थे। उस समय वहाँ घना जंगल था तथा बाघ और हाथी भी अक्सर आ जाया करते थे। स्वामीजी वहाँ एक कुटिया में एक महात्माजी के पास दो बार चार-पाँच दिन के लिये ठहरे थे। रात

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

को वे उस कुटिया में सोते तथा दिनभर गंगाजी के किनारे बैठते थे। इस प्रवास की अवधि में वे खूब चिन्तन-स्वाध्याय किया करते थे। इस प्रकार अपनी लौकिक शिक्षा के साथ ही साथ वे चुपचाप दृढ़तापूर्वक अपने सच्चे ध्येय के लिये भी तैयारी कर रहे थे।

हम यहाँ यह भी पाते हैं कि महाराजजी तो आरम्भ से ही नदी की निराविछिन्न जलधारा की तरह सतत अपने ध्येय की ओर चलते रहे। कभी तटों में आसक्ति नहीं रखी; उन्हें अपनी स्वाभाविक शीतलता से शीतल अवश्य किया, किन्तु फिर असंग भाव से आगे बढ़ गये।

संन्यास लेने के बाद स्वामीजी ने अपने सारे प्रमाण-पत्र फाड़कर गंगाजी में फेंक दिये थे तथा अपने सारे कपड़े भी मित्रों में बाँट दिये थे। वह नवयुवक कैसे लौह संकल्प का रहा होगा! उसका वैराग्य कितना ज्वलंत होगा! उसकी लगन कैसी विलक्षण होगी! — हमें कल्पना करके भी रोमाँच होता है।

मुहब्बत के लिये कुछ दिल मख़सूस होते हैं,
ये वो नग़मा है जो हर साज़ पे गाया नहीं जाता।

इससे पहले कि हम चन्द्रप्रकाश के संसार-त्याग की चर्चा करें हम उनके बारे में कुछ दुर्लभ जानकारी दे रहे हैं। दुर्लभ इसलिये क्योंकि सामान्यतया स्वामीजी अपने बारे में चर्चा करना कम ही पसन्द करते हैं। एक बार किसी प्रसंगवश किसी सेवक ने चतुराई से, बालसुलभ जिद करके, उनसे उनके स्वयं के बारे में कई अति महत्वपूर्ण जानकारियाँ उद्‌घाटित करवायीं थीं। निम्नप्रकार से वह वार्तालाप हुआ था—

सेवक : प्रभु! आपकी आध्यात्मिक यात्रा का यह अंतिम पड़ाव प्रतीत होता है। यह कठिन व अत्यन्त दुरुह यात्रा कब से चल रही है?

स्वामीजी : अनेक जन्मों से।

सेवक : कितने जन्मों से?

स्वामीजी : कुछ स्मरण नहीं, कितने जन्मों से।

सेवक : इन सभी पिछले जन्मों में आप कभी गृहस्थ आश्रम में भी रहे क्या?

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

स्वामीजी : (संकेत से बताया कि वे अपनी लम्बी आध्यात्मिक यात्रा के दौरान हमेशा साधु भेष में ही रहे।)

सेवक : ओह ! तो आपने एक सधे हुए साधक तथा व्यावसायित्मिका बुद्धि वाले व्यक्ति की तरह हमेशा न्यूनतम कठिनाइयों वाला मार्ग ही चुना।

स्वामीजी : एक पौधा भी अपनी जड़ें तथा शाखायें न्यूनतम बाधाओं वाली दिशा में फैलाता है; एक कीड़ा तक न्यूनतम बाधाओं वाली दिशा की ओर रेंगता है। केवल मूर्ख ही अपने जीवन में अनावश्यक बाधाओं को अकारण बुलाते हैं। लेकिन हमें ध्यान रखना चाहिये कि सभी साधकों के लिये साधु का जीवन ही सर्वोत्तम अथवा न्यूनतम बाधाओं वाला हो, यह आवश्यक नहीं।

सेवक : ऐसा प्रतीत होता है कि भगवद् अनुभव हो जाने के बाद भी उसके स्थिर तथा स्थायी होने में अनेक जन्म भी लग सकते हैं क्योंकि साधक के व्यक्तित्व के सभी अंगों यथा—भाव, बुद्धि आदि का दिव्यीकरण होना होता है ?

स्वामीजी : हाँ।

सेवक : हमने ऐसा सुना है कि आप भगवान ईसामसीह से भी सम्बन्धित हैं।

स्वामीजी : उनके तो मुझे दर्शन हुए हैं। सम्बन्ध भी हो सकता है—मुझे स्मरण नहीं।

सेवक : आप अपने संन्यासी जीवन के दौरान हिन्दू धर्म/परम्परा में ही संन्यासी बने या अन्य धर्मों/परम्पराओं में भी बने।

स्वामीजी : केवल हिन्दू-धर्म की परम्पराओं में ही।

सेवक : आपने यह हिन्दू-धर्म का वातावरण ही क्यों चुना ?

स्वामीजी : मैंने कब चुना। चुनाव तो भागवती शक्ति करती है तथा व्यक्ति को उसके कर्मो और स्थिति के अनुसार वातावरण, घर और धर्म में भेजती है।

सेवक : महाराजजी धृष्टता क्षमा करें, कई सेवकों का यह विश्वास है कि आप बाबा भूमनशाहजी के समय भी शरीर में थे। आपका उनके साथ क्या सम्बन्ध था ?

स्वामीजी : सम्बन्ध तो सेवक और स्वामी का ही था जो आज भी है।

(लेकिन सेवक मधुर धृष्टता करके फिर पूछने लगा)

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

सेवक : महाराजजी, बाबाजी के प्रति आपका अपूर्व व अलौकिक प्रेम-श्रद्धा है। निश्चित ही आप उनके सबसे प्रिय सेवक रहे होंगे।

स्वामीजी : उनके हजारों प्रिय शिष्य हो सकते हैं। पर मेरे लिये तो वे सर्वप्रिय हैं। मैं यह तो कह सकता हूँ कि मुझे उनसे सर्वाधिक प्रेम है पर यह कैसे कह दूं कि वे भी मुझे सर्वाधिक प्रेम करते हैं। उनका प्रेम मुझे मिलना उनकी ही कृपा थी। पर यह मैं कैसे मानूं कि मैं ही उनका सर्वाधिक प्रिय हूँ।

महाराजजी की नम्रता और बाबाजी के प्रति प्रेम-समर्पण की कोई सीमा नहीं। वे आगे फिर लिखते हैं—"बाबाजी का प्रेम तो सार्वभौमिक है। मुझे भी मिल गया। यह उनकी महान् कृपा और मेरा सौभाग्य है। परमात्मा के प्रेम में सभी पूरे के पूरे भागीदार हो सकते हैं तो भी वह अनन्त बना रहता है।"

लेकिन वह सेवक महाराजजी और बाबाजी के सम्बन्ध में और अधिक जानकारी के लिये नम्रता और प्रेम से बाल-सुलभ जिद करने लग गया। बार-बार उनसे कुछ लिख देने को प्रार्थना करने लगा, तो महाराजजी ने थोड़ा तंग आकर, लेकिन मुस्कुराकर, लिख दिया—"क्या लिख दूं ? प्रेम क्या लिखने या बताने की बात होती है ? उसे तो छिपाया जाता है।"

सेवक : (नम्रता से) आप अकारण ही हमसें सब कुछ छुपाते रहते हैं।

स्वामीजी : (हँसकर) मुझे जैसा बाबाजी ने बना दिया, वैसा मैं बन गया। (फिर स्वयं ही लिख दिया)

जिनका इश्क सादक हो, वे कब फरियाद करते हैं।
लबों पर मुहरे ख़ामोशी, दिलों में याद करते है ॥

सेवक : कृपया कुछ तो बताएं।

स्वामीजी : बतलाना चाहता हूँ पर लिख नहीं सकता।

"इह पढ़ना इल्म ज़रूर होया,
पर दसणा ना मंज़ूर होया।
जिस दसया, ओ मंसूर होया ॥"

"बाबाजी और मेरे बारे में ऐसा ही एक प्रश्न किसी ने मुझसे फ्राँस में पूछा था। मुझे याद नहीं उस समय मैंने क्या उत्तर दिया था। जब वे प्रश्नोत्तर वहाँ से

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

आयेंगे तो पढ़ने पर पता लगेगा कि उस समय मुझसे क्या कहलवाया गया।" पाठक जरा 'कहलवाया गया' शब्दों पर ध्यान दें। वस्तुतः महाराज जी का एक-एक शब्द, एक-एक भावभंगिमा प्रभु-चालित है।

फिर आप ही हँसकर कहने लगे—"आज तो आप मुझसे वकीलों की तरह सीधे-सीधे और blunt सवाल कर रहे हैं। वकील लोग ऐसे ही पूछते हैं। आध्यात्मिक जीवन की सभी बातों को नहीं बतलाया जाता।

सेवक : चलिये, कुछ तो बता दीजिये।

स्वामीजी : जब बतलाने की 'आज्ञा' होगी तो आपके बिना पूछे ही बतला दूंगा।

सेवक : महाराजजी, यह आज्ञा कब तक मिलेगी।

स्वामीजी : (हँसकर) यह तो आज्ञा देने वाले को ही पता होगा। आज्ञा लेने वाले को कैसे पता होगा।

जन्मों-जन्मों के इस विलक्षण योगी के बाबाजी के साथ मधुर सम्बन्धों के आभास का रसास्वादन करने के बाद हम पुनः महाराजजी की वर्तमान जीवनलीला के उस अध्याय की ओर लौटेंगे जहाँ चन्द्रप्रकाश संन्यास की सर्वाहारी अग्निदीक्षा में परिष्कृत होकर गेरुए वस्त्र धारण करने की तैयारी कर रहे थे।

पढ़ाई छोड़ी—स्वाध्याय तथा एकान्तवास

सन् 1951 में चन्द्रप्रकाश देहरादून के डी.ए.वी. कॉलेज में स्नातकोत्तर (M.Sc.) स्तर के प्रथम वर्ष के छात्र थे। गणित उनका विषय था। वैराग्य की फल्गु नदी जो अभी तक भीतर ही भीतर अदृष्य होकर बह रही थी, प्रबल वेग से सभी सीमाएं तोड़कर बाहर फूट पड़ी। जगी हुई अन्तर्प्रज्ञा तथा पवित्र हृदय वाले उस चन्द्रप्रकाश को रोज़ी-रोटी तथा पद-प्रतिष्ठा दिलाने वाली पढ़ाई भला कैसे रास आती ? उसकी चेतना तो उस परम समाधान-स्वरूप सत्य का समग्र अनुभव करने को व्यग्र थी जो जीव की सब तरह की तृष्णाओं को सदा के लिये शान्त कर देती है। बाबाजी की इच्छा के यन्त्रस्वरुप चन्द्रप्रकाश के लिये फिर परीक्षा में बैठना संभव न हो सका। उन्होंने अपनी पढ़ाई, खेल-कूद आदि सब कुछ बीच में ही छोड़ दिया तथा फरवरी, 1952 में महन्त गिरधारीदासजी के पास बहाउद्दीन गाँव में आ गये।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

बहाउद्दीन प्रवास

बहाउद्दीन में जहाँ देश के विभाजन के बाद अस्थायी तौर पर बाबाजी का डेरा बना था, चन्द्रप्रकाश लगभग दस महीने रहे। वहाँ उनका अपने पिता लाला रूपचन्दजी से भी लगभग रोज ही मिलना होता था क्योंकि लालाजी ही डेरे का सारा काम-काज देखा करते थे। लेकिन भूलकर भी चन्द्रप्रकाश अपने माता-पिता के घर नहीं गये। पूर्वजन्म के प्रबल संस्कारों के कारण उनमें शुरू से ही यह भावना रही कि साधु को अपने माता-पिता अथवा पूर्व आश्रम के सगे सम्बन्धियों अथवा मित्रों आदि से कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहिये। और हमने देखा है कि संन्यास आश्रम की सम्भवतः इस कठिनतम एवं उच्चतम लौकिक मर्यादा का उन्होंने आज तक किस सहजता लेकिन पूर्णता के साथ पालन किया है।

बहाउद्दीन आकर चन्द्रप्रकाश ने केश तथा दाढ़ी रख लिये थे तथा वे ब्रह्मचारी के वेश में श्वेत वस्त्रों में रहने लगे थे। हम अक्सर अपने मानसिक नेत्रों से उनकी युवावस्था वाली पावन, भोली-भाली और वैराग्यमयी मंगलछवि निहारा करते हैं।

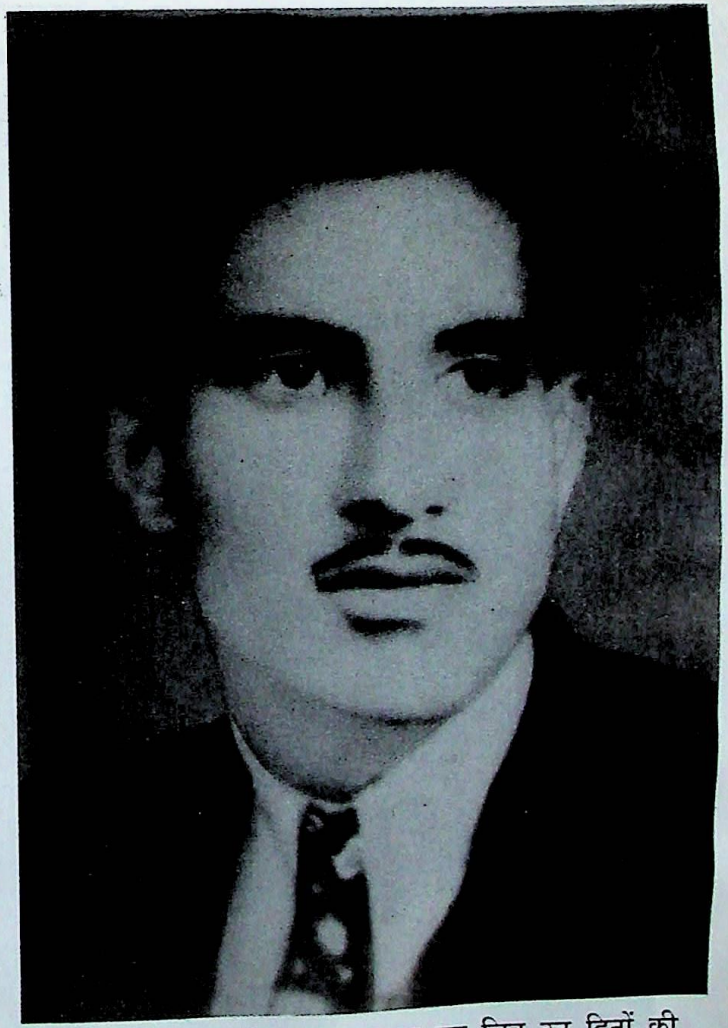
उन दिनों चन्द्रप्रकाश बहुत तड़के ही उठ जाते तथा नित्यप्रति प्रातः एवं सायं दो-दो घंटे साधना में बैठा करते थे। भजन में बैठते ही उनका मन सहज ही भगवान में टिक जाया करता था। इन्हीं दिनों उन्होंने खूब स्वाध्याय भी किया। उन्होंने गीताजी, विचार-सागर (वेदान्त ग्रन्थ), गीता प्रेस की कल्याण पत्रिका तथा स्वामी विवेकानन्द तथा स्वामी रामतीर्थ के साहित्य का भी अध्ययन किया। स्वामीजी ने अपने विद्यार्थी जीवन में हिन्दी भाषा नहीं पढ़ी थी। केवल स्वाध्याय द्वारा ही उन्होंने इस भाषा पर अच्छा अधिकार प्राप्त कर लिया। विद्याध्ययन के साथ-साथ उनके हृदय में विरह भाव भी लहरियां मार रहा था। अक्सर प्रभुमिलन के लिये वे चुपचाप रोते रहते।

इस अवधि में वे महन्त गिरधारीदासजी की भी कई प्रकार से सेवा किया करते थे। वे उनकी चरण सेवा करते, उनके पत्रों के जवाब देते, उनके बताए कार्य करते अथवा उनका संदेश दूसरों तक पहुँचाने डेरे से बाहर चले जाते थे। फिर जब भी मौका लगता, वे अपना प्रिय खेल वालीबाल भी खेला करते थे। इन्हीं दिनों उनकी मुलाकात उनके बाल्यकाल की मातृतुल्य ज्योति माता से हुई थी जिनका

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

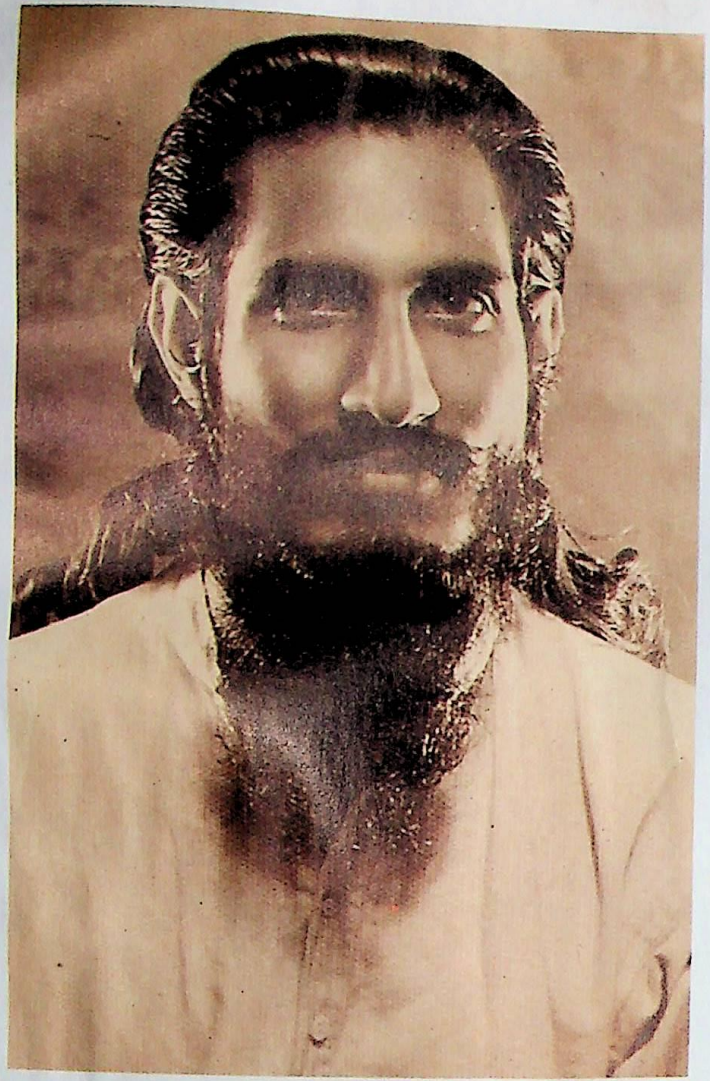


डी. ए. वी. कॉलेज, देहरादून के दिन। दीक्षा के बाद 19 वर्ष (सन् 1949-50) की आयु में चन्द्रप्रकाश — जिला स्तर की खेलकूद प्रतियोगिताओं में सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ी की ट्राफी हाथ में लिये।



20 वर्ष की आयु में चन्द्रप्रकाश का यह चित्र उन दिनों की (सम्भवतः 1950-51) कॉलेज मैग्ज़ीन में कॉलेज के सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ी के रूप में छपा था।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri





स्नातकोत्तर पूर्वार्ध (गणित) की पढ़ाई बीच में छोड़कर बहांउद्दीन गांव स्थित भूमनशाह डेरे में आ जाने के समय की उपरामता भरी छवियां। उस समय चन्द्रप्रकाश की आयु 21 वर्ष (सन् 1951-52) थी।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

परिचय हम ऊपर दे चुके हैं तथा जिनकी समझ से उनके जन्म के बाद पूरे एक महीने तक बालक सूरजप्रकाश (स्वामीजी) गहरी समाधि में थे।

मानो पंख लगाकर दिन जल्दी-जल्दी बीतते गये; विदा की बेला आन पहुँची। अपने प्रियतम के वियोग में विरहिणी का एक-एक पल काटना मुश्किल हो रहा था। उसकी सारी आशाओं, प्रत्याशाओं, स्वप्नों व आकांक्षाओं का एक ही नायक था—परमात्मा। चन्द्रप्रकाश परमात्मा की विरहाग्नि में जलने लगे। जन्मों-जन्मों के उत्कट भगवद्प्रेम और वैराग्य के फलस्वरूप सब वासना-विकारों को भस्म करने वाली, पतितपावनी विरह महारानी ने हमारे चन्द्रप्रकाश का वरण कर लिया। कहा भी है—

जनम-जनम की लगन फले जब,
प्यास पिया की माँग भरे जब;
तब ही प्रियतम अगन लगाये,
परम प्रसाद विरह का पाये।

बहाउद्दीन में अब और अधिक रुकना उनके लिये मुश्किल हो गया। स्वामीजी के ही शब्दों में, "उन दिनों मेरे मन में बड़ा ही तीव्र वैराग्य था—यूँ कहिये कि अन्ध वैराग्य था। वहाँ मैं टिक ही नहीं सकता था। अतः मैंने महन्तजी से कहा कि मुझे संस्कृत पढ़नी है—थोड़ी इच्छा भी थी कि सब शास्त्र मैं खुद देखूं—पर असल में यह तो वहाँ से आने का बहाना था।"

इस प्रकार सन् 1952 के दिसम्बर माह में महन्तजी से आज्ञा लेकर संस्कृत अध्ययन करने के बहाने चन्द्रप्रकाश बहाउद्दीन से हरिद्वार आ गये। उन्होंने मन ही मन दृढ़ निश्चय कर लिया कि साधु होकर अब केवल भगवद् दर्शन के निमित्त भजन-साधन करना ही उनका एक मात्र कर्तव्य है। यही वह क्षण था जब चन्द्रप्रकाश अपना सब कुछ छोड़कर अपने परमधन बाबाजी के सहारे, रहस्यमयी तथा अज्ञात सी, कठिन और लम्बी आध्यात्मिक यात्रा के अंतिम पड़ाव के लिये निकल पड़े। इस कठिन यात्रा में दो ही साधन उनके परमधन थे। एक तो बाबाजी की सतत सुरक्षा व मार्गदर्शन तथा दूसरा उनका स्वयं का अदम्य सकंल्प, साहस और अभूतपूर्व पुरुषार्थ।

बहाउद्दीन से आने के बाद डेढ़ साल तक स्वामीजी ने किसी को अपने बारे में कुछ पता ही नहीं लगने दिया। बस कभी-कभी वे अपनी कुशलता का पत्र

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

महन्तजी और पिताजी को लिख दिया करते थे। हमने सुना है कि एक बार काफी समय बाद लाला रूपचन्दजी अपने पुत्र को ढूंढते-ढूंढते जम्मू की गुफा में पहुँच गये थे। महाराजजी परम वैरागी तो थे ही, साथ ही कठिन परिस्थितियों से निपटने में भी बड़े कुशल थे। सो कई प्रकार से समझा बुझाकर, सान्त्वना देकर पिताजी को वापिस भेज दिया।

गैरिक वस्त्र धारण करना

हरिद्वार में स्वामीजी लगभग तीन महीने रहे। वहाँ वे कनखल स्थित नारायण-निवास नाम के उदासीन आश्रम में रहे। यह आश्रम पाकपट्टन, पाकिस्तान के महान् संत बाबा प्रीतमदासजी के डेरे का था। पाठकों को ध्यान दिला दें कि यह बाबा प्रीतमदासजी ही बाबा भूमनशाहजी के गुरु थे। इसी स्थान पर चन्द्रप्रकाश की भेंट उच्च उदासीन संत स्वामी कृष्णदासजी से हुई। वे स्वामी कृष्णदासजी की सरलता, पवित्रता व कठिन साधना से बहुत प्रभावित हुए। स्वामीजी के मुखमण्डल पर दिव्य तेज था। वे बड़े कोमल तथा मधुर स्वभाव के थे। स्वामी कृष्णदासजी तब श्रीनगर (कश्मीर) में रहा करते थे लेकिन अक्सर हरिद्वार, ऋषिकेश आते रहते थे। सन् 1947 में जब कश्मीर में गड़बड़ हुई तो आप हरिद्वार चले आये थे। तब ऋषिकेश में गंगाजी के उस पार स्वर्गाश्रम के आगे जंगल में संतों, महात्माओं के भजन-तप करने के लिये आश्रम ने कुटियाएं बनाई हुईं थीं। तब वहाँ इतनी भीड़-भाड़ भी नहीं थी। स्थान शान्त तथा भजन के लिये अनुकूल था। महाराजजी भी श्रीनगर से आकर इस स्थान पर भजन किया करते थे। महाराजजी से मिलने के बाद हमारे स्वामीजी उनके दर्शन करने लक्ष्मणझूला के रास्ते से पाँच-सात मील पैदल चलकर इसी स्थान पर जाया करते थे।

स्वामीजी ने हमें बताया कि महाराजजी (स्वामी कृष्णदासजी) के पास कई सिद्धियाँ भी थीं लेकिन उन्होंने कभी प्रसिद्धि पाने के लिये उनका प्रदर्शन नहीं किया। कश्मीर के प्रसिद्ध तान्त्रिक पंडित नित्यानन्दजी कहा करते थे कि स्वामी कृष्णदासजी इच्छानुसार विश्व में कहीं भी कुछ ही क्षणों में पहुचनें की सिद्धि रखते थे। दूसरों के विचार जान लेने की सिद्धि भी उनमें थी परन्तु वे कदाचित् ही उसका प्रयोग करते थे। बहुत से तर्कवादियों तथा नास्तिकों तक को भी ये बातें स्वयं अनुभव

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

करने के बाद मानने पर बाध्य होना पड़ा था। महाराजजी के पास कितने ही उच्चशिक्षा प्राप्त नवयुवक आकर उन्हें अपने गुरु रुप में स्वीकार करने के लिये प्रार्थना करते रहे, किन्तु उन्होंने आजीवन अपना कोई शिष्य नहीं बनाया।

चन्द्रप्रकाश कुछ दिनों तक स्वामी कृष्णदासजी के पास कनखल में रुके और उन्होंने पाया कि स्वामीजी केवल सिद्धियों के ही धनी नहीं थे, अपितु अति दुर्लभ भगवद्प्रेम-ज्ञान के भी भण्डार थे। मार्च, 1953 की बात है। एक दिन तीव्र वैराग्य से भरे चन्द्रप्रकाश ने स्वामीजी से प्रार्थना की, "महाराजजी, कृपा करके मुझे संन्यासी का भगवा वस्त्र प्रदान करें। इस जगत् की किसी भी वस्तु में मेरी रुचि नहीं है। मैं अपना पूरा जीवन एक मात्र भगवान के दर्शन के लिये ही व्यतीत करना चाहता हूँ।" स्वामी कृष्णदासजी ने तो पहले ही अपनी दिव्यशक्ति से चन्द्रप्रकाश के चेतन तथा अवचेतन मन की परतों को भेदकर जान लिया था कि उस नवयुवक की भगवद् अभीप्सा कितनी गहन है तथा वह उस मार्ग का कितना सुयोग्य अधिकारी है। वे स्वयं उनसे बड़े प्रभावित थे। बड़ी प्रसन्नतापूर्वक उन्होंने चन्द्रप्रकाश का निवेदन स्वीकार कर लिया। फिर शुभ दिन, शुभ मुहूर्त को उन्होंने कुछ मन्त्रों के उच्चारण के साथ चन्द्रप्रकाश को पावन भगवा वस्त्र पहना दिया। लेकिन साथ ही साथ यह भी कहा, "देखो, मैं तुम्हारा गुरु नहीं हूँ। मैंने जीवन में कोई शिष्य नहीं बनाया। तुम्हारे गुरु पहले ही हैं। मैंने तो इस समय केवल वही किया है जो तम्हारे गुरु को बहुत पहले कर देना चाहिये था।" फिर उन्होंने बड़े ही स्नेह से चन्द्रप्रकाश को 'चन्द्रस्वामी' कहकर सम्बोधित किया और उन्हें संन्यासी के जीवन की कठोर मर्यादाओं को पूरी निष्ठा से पालन करने की हिदायत दी। उन्होंने चन्द्रस्वामीजी को आजीवन बाबा भूमनशाहजी के पावन जीवन का अनुकरण करने की भी सलाह दी और कहा, "कभी भी बाबा श्रीचन्द्रजी तथा बाबा भूमनशाहजी में भेद न करना। वे एक ही दिव्य आत्मा भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न चोलों में अवतरित हुई है।" इसी समय से चन्द्रप्रकाश, चन्द्रस्वामी हो गये तथा विधिवत् रुप से संन्यस्त हुए। इस प्रकार हम देखते हैं कि किस प्रकार चन्द्रस्वामीजी के गुरुदेव बाबा भूमनशाहजी ने देह में न होते हुए भी पहले तो सत्रह वर्ष की आयु में महन्त गिरधारीदासजी से उन्हें नाम-दीक्षा दिलवायी, फिर बाईस वर्ष की आयु में स्वामी कृष्णदासजी के द्वारा उन्हें भगवे वस्त्र धारण करवाकर विधिवत् रुप से संन्यास दिलवाया।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

एक दिन बड़ी नम्रता से स्वामीजी (श्रीचन्द्रस्वामीजी) ने महाराजजी (स्वामी कृष्णदासजी महाराज) से अपनी एक प्रबल इच्छा व्यक्त करते हुए कहा,"महाराजजी मैं अपने बचे हुए जीवन में धन को बिल्कुल हाथ नहीं लगाना चाहता। अपना सारा जीवन मैं केवल श्रीभगवान में पूर्ण विश्वास के सहारे ही काटना चाहता हूँ।" महाराजजी हँसे और कहने लगे,"मैं भगवान में तुम्हारे श्रद्धा-विश्वास की बड़ी कद्र करता हूँ, लेकिन क्या तुम्हें मालूम है कि धन का अर्थ केवल रुपया-पैसा ही नहीं होता। धन तो वस्तुओं के लेन-देन का केवल एक व्यावहारिक साधन मात्र है। वास्तव में धन के अन्तर्गत सभी जागतिक वस्तुएं आ जाती हैं। अगर तुम्हें धन को नहीं छूना है तो फिर तुम्हें किसी से भोजन, वस्त्र या कोई अन्य वस्तु भी नहीं मांगनी चाहिये। खैर, फिर भी, सभी परिस्थितियों में भगवान में पूर्ण विश्वास रखने के अभ्यास के लिये तुम तीन वर्ष तक 'धन को बिल्कुल न छूने' के नियम का पालन कर सकते हो। वास्तव में तो तुम्हारे द्वारा किसी भी भौतिक वस्तु पर आधिपत्य अथवा अनाधिपत्य का भगवान में श्रद्धा से कुछ लेना-देना नहीं हैं। यहाँ तक कि तुम्हारा शरीर भी एक भौतिक पिण्ड है और वह तो तुम्हें साधना के लिये भी धारण करना ही पड़ेगा।" स्वामीजी ने महाराजजी की आज्ञा को शिरोधार्य कर अपने कठिन व्रत का पूरे तीन वर्ष तक दृढ़तापूर्वक पालन किया। कुछ दिन बाद स्वामीजी ने महाराजजी से हिमालय में पैदल भ्रमण करने तथा संतों, महात्माओं के दर्शन करने की आज्ञा माँगी। महाराजजी ने उन्हें सहर्ष आज्ञा दे दी। अभी मार्च का महीना ही चल रहा था।

हिमालय यात्रा

हरिद्वार से स्वामीजी पैदल चलकर सबसे पहले ऋषिकेश गये। वहाँ उन्होंने दिव्य जीवन संघ के संस्थापक पूज्य स्वामी शिवानन्दजी के दर्शन किये। उनके आश्रम में वे तीन दिन रुके। शिवानन्द आश्रम उन दिनों अपनी शैशवावस्था में था। आश्रम में केवल कुछ कमरे थे। ब्रह्मचारियों एवं साधुओं के लिये रसोईघर तथा सहभोजशाला टिनशेड के बने हुए थे। शिवानन्द आश्रम से चलकर स्वामीजी ऋषिकेश से कुछ ही किलोमीटर दूर भगवान शिव के ऐतिहासिक स्थल 'नीलकंठ' गये तथा वहाँ दो दिन रुके। वहाँ से चलकर वे वशिष्ठ गुफा पहुचें जहाँ उन्होंने उस समय के सिद्ध एवं

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

महान् संत स्वामी पुरुषोत्तमानन्दजी के दर्शन किये। यह वही वशिष्ठ गुफा है जहाँ परमसंत स्वामी रामतीर्थजी को 'आत्म साक्षात्कार' हुआ था। वशिष्ठ गुफा से स्वामीजी पुनः ऋषिकेश लौट आए तथा वहाँ से टिहरी और धरासू होते हुए उन्होंने उत्तरकाशी जाने के लिये पैदल प्रस्थान किया।

जब वे पैदल चलकर धरासू पहुँचे तो इस कठिन तथा थका देने वाले रास्ते के अनभ्यस्त उनके कोमल चरण सूज गये थे। अतः विश्राम एवं पुनः चुस्त-दुरुस्त होने के लिये उन्हें वहाँ तीन दिन रुकने के लिये बाध्य होना पड़ा। आगे यात्रा आरम्भ की तो मार्ग में एक रात एक गुफा में व्यतीत की। गुफा जंगली कीड़े-मकोड़ों से भरी पड़ी थी। प्रातःकाल गुरुदेव का सुदृढ किन्तु कोमल शरीर कीड़ों के काटने से जगह-जगह पर सूज गया था। जैसे भी, बिना अपने कष्टों की परवाह किये महाराजजी उत्तरकाशी पहुँच गये। रास्ते में उन्हें भिक्षा नहीं करनी पड़ी। प्रभु ऐसे सुयोग बनाते रहे कि बिना माँगे ही भोजन मिलता रहा। उत्तरकाशी पहुँचकर वे पहले दो दिन कैलाश-आश्रम में रुके। उत्तरकाशी में ही उन्होंने वयोवृद्ध व प्रसिद्ध विद्वान-संत स्वामी तपोवनजी के भी दर्शन किये।

आगे का विवरण उन्हीं की लेखनी से पढ़ें—

"मैं वहाँ गंगाजी के किनारे जाता था तो वहाँ एक गुफा थी जो खाली पड़ी थी। गुफा में रहने वाले संत सर्दी में नीचे गये थे। गुफा में कुछ नहीं था। तो वहाँ चला गया। उस गुफा के पास में थोड़ी दूर गंगा के किनारे ही एक गर्म पानी का झरना भी था। तो वहाँ आ गया। बीस-बाईस दिन वहाँ रहा। वह भजन के वास्ते बड़ा सुन्दर स्थान था। वहाँ कोई साधु ही ठहर सकता था। पहले भी वहाँ साधु ही ठहरते होंगे— एकान्तप्रिय ! वहाँ के स्पन्दन भी बड़े अच्छे थे। भजन में सहज ही मन लग जाता था। जब थोड़ी गर्मी शुरु हुई और नीचे से साधु आने शुरु हो गये तो मैं नीचे चला आया। मेरे मन में यह भी था कि उस गुफा के महात्मा भी तो वहाँ रहने के वास्ते आएंगे।" तब उनके मन में धरती के स्वर्ग—'कश्मीर' जाने की भी स्फुरणा होने लगी। उन्होंने पहले ही स्वामी कृष्णदासजी महाराज से कश्मीर की प्राकृतिक सुन्दरता तथा साधना-भजन हेतु उसकी अनुकूलता की बातें सुन रखी थीं। अतः उन्होंने उत्तरकाशी से कश्मीर जाने का मानस बना लिया। भगवदेच्छा से

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

संचालित होते हुए इस युवा संन्यासी ने अप्रैल के महीने में कश्मीर जाने के लिये पुनः हरिद्वार का रुख किया।

परमविरक्त संत गुरमुखसिंहजी

धरासू से नरेन्द्र नगर की ओर पैदल यात्रा करते समय उन्हें एक ट्रक ड्राईवर ने अपने ट्रक पर बैठा लिया तथा आदरपूर्वक नरेन्द्र नगर में छोड़ दिया। बदले में उसने इस युवा संन्यासी से उसका आशीर्वाद मांगा। नरेन्द्र नगर से हरिद्वार तक की पैदल यात्रा के दौरान स्वामीजी के पैर कट-फटकर पुनः सूज गये। अतः उन्होंने कुछ दिन हरिद्वार में ही विश्राम करने का निर्णय लिया।

स्वामीजी ने एक संत से वयोवृद्ध तथा भगवद्प्राप्त संत गुरमुखसिंहजी का बहुत नाम सुना था। संत गुरमुखसिंहजी सप्तसरोवर के निकट झाड़ी नाम से जाने जाने वाले, गंगाजी की कई धाराओं से घिरे जंगली टापू में फूस की झोंपड़ी बनाकर एकान्त में रहा करते थे। स्वामीजी के मन में भी इन पावन संत के दर्शनों की अभिलाषा हुई तथा सात्विक इच्छा हुई कि यदि वे आज्ञा दे दें तो कुछ दिन उनके पास रहूं। शीघ्र ही वे संत के दर्शनों हेतु झाड़ी में चले गये। जब वे जंगली टापू स्थित उस संत की झोंपड़ी पर पहुँचे तो देखा कि गंगाजी के तट पर, अपनी झोंपड़ी के बाहर, बाँस की बनी हुई कुर्सी पर संत गुरमुखसिंहजी आँखें बन्द करके, ध्यानस्थ बैठे हुए थे। स्वामीजी के अपने शब्दों में—

"मैंने उन संत के आगे माथा नवाया और चुपचाप उनके सामने बैठ गया। उनके निकट मुझे किसी शक्तिशाली, दिव्य सत्ता की उपस्थिति महसूस हुई लेकिन मैं समझ नहीं सका कि वह क्या था।"

"संत गुरमुखसिंहजी दसवें गुरु गोविन्दसिंहजी द्वारा स्थापित निर्मल पंथ की परम्परा के संत थे। वे स्वभाव से बड़े शान्त और कोमल प्रकृति के थे। उनके मुख मण्डल से सदा शक्ति एवं तेज निःसृत होते रहते थे। वे संस्कृत भाषा के भी उच्च विद्वान थे।"

"लगभग तीस मिनट बाद उन्होंने धीरे से अपनी आँखें खोलीं और मुझे सामने देखकर मुझसे मेरा परिचय एवं मेरे वहाँ आने का उद्देश्य पूछा। मुझे दो-तीन मिनट शान्ति और धैर्यपूर्वक सुनने के उपरान्त उन्होंने कहा, "मैंने बहुत से लोगों द्वारा

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

बाबा भूमनशाहजी की महिमा सुनी है। वे बहुत ही उच्च कोटि के संत थे। लेकिन यह पहला अवसर है जब मैं उन्हीं की परम्परा के किसी साधु से मिल रहा हूँ।"

"वे मेरे प्रति बड़े कृपालु थे तथा मुझे पुत्रवत् प्यार किया करते थे। उन्होंने कृपापूर्वक मुझे अपनी झोंपड़ी में रहने की आज्ञा दे दी।"

"उस झोंपड़ी में अपने प्रवास की प्रथम रात्रि की मुझे एक मनोरंजक घटना याद आ रही है। आधी रात को मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि जिस चटाई पर मैं सोया हुआ था उसके नीचे मानो श्S-S श्S-S श की आवाज के साथ ही कोई वस्तु हिल रही है। मैं थोड़ा डर सा गया। मैंने अपनी आँखें खोलीं तथा झोंपड़ी के रोशनदान से भीतर आती हुई चाँदनी के मद्धम आलोक में देखा कि मुझसे लगभग पाँच फुट दूरी पर वे संत पालथी मारकर गहरे ध्यान में निमग्न थे। भय के कारण रात्रि के बचे हुए चार घन्टे मैं सो नहीं सका। लेकिन वे भगवद्स्वरुप संत बिना हिले-डुले उसी आसन में ध्यानावस्थित बैठे रहे। प्रातःकाल सूर्योदय होने पर मैंने बीती रात की सारी घटना उन संत को बतायी। सब सुनकर वे हँसे और कहने लगे, 'एक अजगर का बच्चा है जो अक्सर इस झोंपड़ी में आता है और रात भी यहीं व्यतीत करता है। लगभग चार बार से भी अधिक मैं उसे एक बर्तन में पकड़कर एक किलोमीटर दूर जंगल में छोड़कर आ चुका हूँ। लेकिन वह फिर रात व्यतीत करने इसी झोंपड़ी में आ जाता है। इसलिये मैंने उसे अब झोंपड़ी से बाहर निकालने की कोशिश करना ही छोड़ दिया है। वह अजगर का बच्चा बड़ा प्यारा और समझदार है। अगर गलती से कभी उसके ऊपर पैर भी रख दो तो वह तुम्हें काटेगा नहीं।' "

उपरोक्त घटना से रोमांच तथा बोध होता है कि दिव्य संत बाहरी तौर पर तो एक साधारण व्यक्ति जैसे ही दिखायी देते हैं किन्तु भीतर से परमात्मा के प्रति पूर्ण समर्पण और कृपा पर आश्रित हो वे कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी माँ की गोद में नन्हें बालक की तरह सदा सुरक्षित और आश्वस्त रहते हैं।

सप्तसरोवर के निकट झाड़ी नामक इस जंगली टापू में हमारे गुरुदेव कोई पन्द्रह दिन रहे। नित्यप्रति उन संत के कोई भक्त सप्तऋषि आश्रम से उनके लिये नाश्ता लाया करते थे। उसी में से हमारे महाराजजी भी भर पेट नाश्ता लेकर दस बजे गंगाजी के तट के किनारे-किनारे ऊपर की ओर लगभग एक किलोमीटर चले जाते

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

थे। वहाँ वे पूरा दिन प्रार्थना, जाप, ध्यान तथा स्वामी विवेकानन्दजी के साहित्य के स्वाध्याय में व्यतीत करते तथा सूर्यास्त होने के पश्चात् लौटते।

इस ऐतिहासिक एवं पवित्र स्थल का सप्तसरोवर नाम सप्तऋषियों के नाम से पड़ा है। प्राचीन ग्रन्थों के अनुसार इन ऋषियों ने इस स्थान पर तप किया था। इस वन में जंगली केले, बाँस तथा साल के वृक्ष बहुतायत में थे। इसका उल्लेख भागवत् महापुराण में भी आता है। इस वन में हाथी, बाघ तथा अन्य जंगली जानवर भी रहते थे जो गंगाजी के इस ओर 'झाड़ी' में भी अक्सर रात को आते रहते थे। इन जानवरों के खतरे के बावजूद उस जंगली टापू का वातावरण बड़ा शान्त, शुद्ध तथा आध्यात्मिक स्पन्दनों से पूर्ण था। हमारे गुरुदेव को साधना के लिये यह स्थान बड़ा उपयुक्त लगा।

संत गुरमुखसिंहजी स्वामीजी के प्रति बड़े प्रेमपूर्ण और कृपालु थे। उन्होंने स्वामीजी को कहा, "मैं तुम्हारी आध्यात्मिक लगन से बड़ा प्रभावित हूँ। तुम जब तक चाहो इस स्थान पर रह सकते हो।" इस पर स्वामीजी ने उन्हें नम्रतापूर्वक बार-बार धन्यवाद दिया और बताया कि वे पहले ही कश्मीर जाने का निर्णय कर चुके हैं तथा अगर भगवदेच्छा हुई तो वे पुनः इस स्थान पर आयेंगे। चूँकि उन संत को स्वामीजी के तीन वर्षों तक धन को हाथ न लगाने के व्रत का पता लग गया था, उन्होंने अपने एक भक्त से कहकर स्वामीजी के लिये हरिद्वार से पठानकोट तक का रेलगाड़ी का टिकिट ले दिया था। उन दिव्य एवं मधुर संत, जिन्होंने पन्द्रह दिन तक स्वामीजी पर मातृवत् वात्सल्य एवं प्रेम की वर्षा की थी, ने स्वामीजी को इन शब्दों में आशीर्वाद दिया और कहा, "मुझे तुम्हारा आध्यात्मिक भविष्य बड़ा ही उज्ज्वल दिख रहा है और मुझे ऐसा भी प्रतीत हो रहा है जैसे परम भागवती चेतना में अंतिम डुबकी लगाने के लिये तुम्हें एक बार फिर इसी स्थान पर आना पड़ेगा।" (उन संत के मुख से ये उच्चारित वचन बाद में किस प्रकार अक्षरशः सत्य सिद्ध हुए यह हम बाद में देखेंगे।) प्रेम एवं कृतज्ञतापूर्ण हृदय से उन संत की चरणवन्दना करके स्वामीजी वहाँ से लौट आये।

हरिद्वार रेलवे स्टेशन से रेलगाड़ी पर चढ़कर अगले दिन प्रातः स्वामीजी पठानकोट पहुँच गये। उन्होंने बचपन में पठानकोट के निकटस्थ ममून गाँव के बारे में बाबा श्रीचन्द्रजी से सम्बन्धित एक ऐतिहासिक घटना सुन रखी थी। कहते हैं कि आचार्य श्रीचन्द्रजी महाराज अपनी इहलीला के अंतिम दिनों में, इस गाँव में रुके थे।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

इसी दौरान एक दिन जब वे एक बिल्कुल मृत एवं सूखे हुए पीपल के वृक्ष के नीचे तप कर रहे थे तो वह वृक्ष लहलहाते हुये हरे-भरे वृक्ष में बदल गया था। यह घटना लगभग साढ़े चार सौ वर्ष पहले की है। आज भी उदासीन साधु ममून गाँव की यात्रा बड़ी श्रद्धा-भक्ति से करने जाते हैं। स्वामीजी को भी वहाँ जाने की अभिलाषा हुई। उन्होंने पठानकोट रेलवे स्टेशन से ही ममून गाँव के बारे में जानकारी ली तथा उसकी ओर पैदल चल पड़े। वह पठानकोट से कुछ ही किलोमीटर दूर था।

वे बाबाजी से सम्बन्धित स्थान पर पहुँच गये। जो साधु वहाँ रहते थे वे उस समय कहीं बाहर गये हुए थे। वहाँ उपर्युक्त वर्णित पीपल का वृक्ष वैसे ही था। साथ ही दो कमरे थे। उस स्थान के साथ कुछ जमीन भी थी। स्वामीजी उस वृक्ष के नीचे बैठकर ध्यानस्थ हो गये। गम्भीर ध्यान में कोई दो घन्टे बैठे रहे। ध्यान में ही भगवान श्रीचन्द्रजी ने दर्शन देकर कृतार्थ किया। हमारा विश्वास है कि स्वामीजी की ममून गाँव की यात्रा का कुछ विशेष प्रयोजन था तथा उन्हें भगवान श्रीचन्द्रजी ने दर्शन देकर कुछ विशिष्ट निर्देश भी दिये थे।

इसी बीच उस स्थान के महात्मा भी लौट आये। उन्होंने स्वामीजी का प्रेमपूर्वक स्वागत किया तथा सत्तू का पानी पिलाया। फिर टिक्कड़ बनाकर दोनों ने भोजन पाया। उस साधु से स्वामीजी को पता लगा कि उन दिनों सभी भारतीय नागरिकों को कश्मीर जाने के लिये परमिट की आवश्यकता पड़ती थी। यह परमिट जम्मू-कश्मीर राज्य के पठानकोट स्थित ट्रेड कमिश्नर के कार्यालय से मिला करता था। अतः परमिट लेने स्वामीजी ममून गाँव से सीधा पठानकोट ट्रेड कमिश्नर के कार्यालय में आ गये।

दिव्य हस्तक्षेप

परमिट प्राप्त होने का प्रसंग स्वामीजी की लेखनी द्वारा ही पढ़ें—

"मेरे पास केवल एक थैला था जिसमें एक पतली शाल, एक स्वामी रामतीर्थ की पुस्तक, एक स्वामी विवेकानन्द की पुस्तक, एक कोपीन तथा जल के लिये एक पात्र— बस इतना सामान था। जब मैं ऑफिस में गया तो ट्रेड कमिश्नर वहाँ नहीं थे। क्लर्क ने मुझे एक फार्म दे दिया और कहा इसे भर दें और उनके आने की प्रतीक्षा करें, वे ही हस्ताक्षर करते हैं। लगभग दो बजे का समय हो गया। मैं एक

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

घन्टा बैठा रहा दफ्तर में, पर ट्रेड कमिश्नर नहीं आए। श्री डी. एन. जलाली उनका नाम था। जब वे आए तो उन्होंने मुझसे पूछा कि आपको यहाँ कोई जानता है। मैंने कहा, नहीं। फार्म पर पहचान के लिये किसी राजपत्रित अधिकारी द्वारा सत्यापन होना चाहिये था। उन्होंने मुझसे कई प्रश्न पूछे। वे परमहंस रामकृष्ण के भक्त थे। कुछ देर बातचीत के बाद मुझे कहा कि मैं चाहता हूँ कि आपको परमिट दे दूं परन्तु कश्मीर में बहुत जासूस जाते हैं। पहले मैंने दो साधुओं को ऐसे ही संतों में श्रद्धा के कारण परमिट दे दिये थे किन्तु वे जासूस निकले और वहाँ पकड़े गये"। हालाँकि कुछ ही देर की मुलाकात में वे स्वामीजी के दिव्य व्यक्तित्व से अत्यन्त प्रभावित हो गये थे किन्तु उस समय की अस्थिर राजनैतिक स्थिति के कारण ट्रेड कमिश्नर ने भरे मन से स्वामीजी को परमिट देने से मना कर दिया।

निराश होकर स्वामीजी उस कार्यालय से लौटकर चल दिये। मन ही मन सोचने लगे कि कैसे कश्मीर पहुँचूं ! कभी मन में ख्याल आता कि किसी ऐसी जगह से सीमा पार कर लूं जहाँ कोई पहरा न हो। अभी वे इन्हीं विचारों में डूबे थे कि उन्हें अचानक अपने समीप अपने प्रेमास्पद, बाबा भूमनशाहजी की उपस्थिति महसूस हुई। ठीक उसी समय उन्होंने पीछे से किसी को उन्हें पुकारते सुना। पलट कर देखा तो ट्रेड कमिश्नर के कार्यालय का चपरासी भागकर उनकी ओर आता दिखाई दिया। पास आकर चपरासी बोला, "साहब आपको बुलाते हैं।" कुछ आश्चर्यचकित, स्वामीजी दुबारा कार्यालय को चल दिये। कार्यालय पहुँचने पर कमिश्नर ने मुस्कुराकर स्वामीजी का स्वागत किया और कहा, "हमने आपके मामले में पुनर्विचार किया है और हम आपको परमिट दे रहे हैं।" न केवल इतना ही , कार्यालय बन्द होने पर वे स्वामीजी को आदरपूर्वक अपने घर ले गये। घर पर उन्होंने इस दिव्य प्रेम-वैराग्य से भरे-पूरे अति सुन्दर संन्यासी से परिचय कराने हेतु अपने मित्रों तथा बन्धु-बान्धवों को भी आमन्त्रित किया हुआ था। अगले दिन बिना किसी को बताए उन्होंने स्वामीजी को पठानकोट से श्रीनगर तक का बस-टिकिट ले दिया तथा उन्हें स्वयं बस पर विदा कराने भी गये। विदाई से पहले उन्होंने स्वामीजी से उनके कश्मीर प्रवास के बारे में जानकारी भी चाही। स्वामीजी ने उन्हें बताया कि वे श्रीनगर में रेज़ीडेन्सी रोड स्थित श्रीचन्द्रचिनार आश्रम में ठहरेंगे तथा अमरनाथ यात्रा पर भी जायेंगे। इससे अधिक उन्हें स्वयं ही कुछ मालूम नहीं था। बाद के वर्षों में श्रीजलाली स्वामीजी से मिलने

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

बराबर आते रहे। जब भी अवसर मिलता वे उन्हें आदरपूर्वक रैनाबाड़ी स्थित अपने बंगले पर आमंत्रित करके भोजन भी कराते। एक बार वे स्वामीजी को कश्मीर के प्रसिद्ध शैव संत स्वामी लक्ष्मणझू के दर्शन हेतु भी ले गये थे।

भगवान श्रीकृष्ण गीताजी में घोषणा करते हैं—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

अर्थात्, जो जन अनन्य भाव से मेरा चिन्तन करते हैं व मेरी उपासना करते हैं, उन मेरे में निरन्तर युक्त जनों का योग-क्षेम मैं वहन करता हूँ।

सुबह-सुबह जम्मू से श्रीनगर के लिये बस रवाना हो गयी। स्वामीजी के बगल में ही मिलिटरी की पोशाक पहने एक सरदारजी बैठे थे। वे नामधारी सिख थे तथा पंजाब के रहने वाले थे। वे कश्मीर जा रहे थे जहाँ उनकी पोस्टिंग थी। आमतौर पर नामधारी सिख बड़े श्रद्धालु, धार्मिक व उदारमना होते हैं तथा सभी धर्मों के साधु-संतों को यथोचित आदर-सम्मान देते हैं। यह सज्जन भी बड़े धार्मिक तथा अध्यात्म में गहरी अभिरुचि वाले थे। पवित्रता, सरलता तथा जीवंत भगवद्प्रेम के पुंज इस युवा संन्यासी के सान्निध्य से अभिभूत होकर वे अपने पर अधिक देर नियन्त्रण न रख सके। लगभग पन्द्रह मिनट बाद उन्होंने नम्रता से निज परिचय स्वामीजी को देकर उनसे भगवद्चर्चा आरम्भ कर दी। स्वामीजी की दिव्य उपस्थिति तथा युक्ति-युक्त विचार सुनकर शीघ्र ही वे उन पर मुग्ध हो गये। उन्होंने स्वामीजी से बड़े व्यावहारिक और गहरे आध्यात्मिक प्रश्न पूछे। स्वामीजी ने उन्हें श्रीगुरुग्रन्थसाहब द्वारा प्रमाणित संक्षिप्त, सरल व सारगर्भित उत्तर दिये।

इधर जल्दी-जल्दी समय व्यतीत हो रहा था। दिन के एक बजे जम्मू से नब्बे किलोमीटर दूर, टेढ़े-मेढ़े, ऊँचे-नीचे रास्तों को पार करती बस कुद्ध गाँव पहुँच गयी। सभी यात्री बस से उतरकर भोजन इत्यादि लेने रेस्टोरैन्ट में चले गये। शान्ति की मूर्ति केवल वह संन्यासी ही बस में बैठा रहा। धन स्पर्श न करने के अपने व्रत के अनुसार उनके पास रुपया पैसा नहीं था और किसी से कुछ भी मांगना उन्हें हरगिज़ मंज़ूर नहीं था। अतः खाली बस में उन्होंने आँखें बन्द कीं, सीट पर ही सरककर शरीर को थोड़ा ढीला किया तथा अपने 'प्रियतम्' के ध्यान में डूब गये।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

अभी मुश्किल से पाँच मिनट ही बीते होंगे कि बस का कन्डक्टर बस में आकर जोर से बोला, "बाबाजी यह चाय का कप आपके लिये है। यह आपके लिये सड़क के किनारे चाय वाले ने भेजा है। उसने आपको बस में बिना कुछ खाये-पिये अकेले बैठे देखा। वह चाय वाला गरीब जरूर है, पर है बड़ा धार्मिक। उसे साधु-संतों को भोजन कराकर बड़ी प्रसन्नता होती है। वह आपसे इस चाय की कीमत नहीं लेगा।" बोलते-बोलते वह भावुक हो गया था। स्वामीजी ने कृतज्ञ शब्दों में उत्तर दिया, "मुझे चाय की आवश्यकता नहीं है। मैंने सुबह ही काफी नाश्ता ले लिया था। लेकिन भगवान का प्रसाद समझकर मैं इसे वापिस नहीं लौटाऊँगा। उस चाय वाले सज्जन को मेरी ओर से धन्यवाद देना।" स्वामीजी ने वह चाय ऐसे पी मानो कोई शाही शरबत हो। और आखिर क्यों नहीं! प्रियतम् के घर से जो आयी थी।

लगभग चालीस मिनट बाद ड्राइवर समेत सभी यात्री बस में आकर बैठ गये। ड्राइवर ने कई बार हॉर्न दिया ताकि कोई यात्री पीछे न रह जाये। सब यात्री आ गये लेकिन सेना में सेवारत वे नामधारी सिख बन्धु नहीं आये। स्वामीजी ने कन्डक्टर को बता दिया और उनके कहने से ड्राइवर उनके आने की प्रतीक्षा करने लगा। पाँच मिनट बाद ही वे सरदारजी भाग कर बस में आ गये और अपनी सीट पर बैठ गये। बस फिर चल पड़ी। बस के चलते ही सरदारजी ने अपने पास से चपाती और सब्जी वाला एक पैकेट निकाला और नम्रतापूर्वक स्वामीजी को दे दिया और कहा, "महाराजजी यह आपके लिये है। यहाँ से थोड़ी ही दूर मिलिटरी कैम्प में भोजनालय है। मैं अपना भोजन लेने वहीं गया था। वहाँ मेरे कई मित्र भी रहते हैं। वहीं से यह भोजन का पैकेट मैं आपके लिये भी लाया हूँ। कृपा करके इसे स्वीकार करें।" फिर उसने अपनी थर्मस से स्वामीजी के लिये कुछ पानी भी निकालकर दिया। अहेतुकी, ममतामयी भगवद्कृपा का स्मरण कर संन्यासी का मन भर आया। मन ही मन अचरज करने लगे कि भगवान किस-किस प्रकार से, माता की तरह उनकी देख-रेख कर रहे हैं। इन सब दिव्य आयोजनों के पीछे स्वामीजी को भगवद्स्वरूप बाबा भूमनशाहजी की कृपा का वरद्हस्त ही कार्य करता दिखा।

रात को लगभग दस बजे बस श्रीनगर पर्यटक बस-स्टैण्ड पर पहुँची। संयोगवश सरदारजी श्रीचन्द्रचिनार आश्रम में पहले जा चुके थे एवं उससे परिचित थे। आश्रम और बस-स्टैण्ड के बीच केवल पन्द्रह-बीस मिनट का पैदल रास्ता था।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

सरदारजी ने स्वामीजी को आश्रम का पता देते हुए कहा, "भगवान की इच्छा हुई तो मैं फिर आपके दर्शन करूँगा।" सरदारजी से विदा लेकर स्वामीजी अपना छोटा सा झोला उठाये आश्रम की ओर चल दिये। इस प्रकार मई, 1953 में स्वामीजी श्रीनगर पहुँच गये।

परमपूज्य स्वामी कृष्णदासजी महाराज

जब स्वामीजी आश्रम पहुँचे तो पूज्य स्वामी कृष्णदासजी, जिन्हें प्रेम व श्रद्धा से हमारे स्वामीजी महाराजजी कहकर पुकारते थे, आश्रम में ही थे। वे अपना सायं का भोजन लेने जा रहे थे। स्वामीजी को देखकर उनके हर्ष की सीमा न रही और आगे बढ़कर उन्होंने स्वामीजी को गले लगा लिया। वास्तव में वे उन्हीं की प्रतीक्षा कर रहे थे क्योंकि कुछ ही दिन पहले उन्होंने एक साधु से सुना था कि स्वामीजी पैदल कश्मीर आने की सोच रहे हैं। लेकिन उन्हें उनके पैदल कश्मीर आने की बात अच्छी नहीं लगी थी। वे अपने किसी सेवक द्वारा स्वामीजी को पठानकोट से श्रीनगर तक बस-टिकिट दिलवाने की सोच रहे थे परन्तु उन्हें स्वामीजी के बारे में कुछ मालूम ही नहीं था। अब अपने प्रिय चन्द्रस्वामी को कुछ ही दिनों में वहाँ देखकर उन्होंने हर्षित होकर कहा, "भगवान सब जानते हैं कि उनके भक्त के लिये क्या सर्वोत्तम है एवं उसके मंगल के लिये वे सदा उपयुक्त संयोग भी बिठाते रहते हैं।"

बड़े प्रेम से दोनों संतों ने साथ-साथ भोजन पाया। भोजन उपरान्त स्वामीजी ने अपने और महाराजजी के जूठे बर्तन साफ करने चाहे तो तब उन्हें बड़ा संकोच हुआ जब महाराजजी भी दोनों के जूठे बर्तनों को धोने के लिये आग्रह करने लगे। स्वामीजी ने बड़ी नम्रता से कहा, "महाराजजी ऐसा करके आप मुझे शर्मिन्दा कर रहे हैं। कृपया सब बर्तन मुझे दे दीजिये।" तब कोमल हृदय महाराजजी कहने लगे, "अगर माँ अपने बालक के बर्तन साफ करे तो क्या बालक को शर्मिन्दा होना चाहिये ?" इसी मीठी नोक-झोंक के बीच आश्रम का नौकर आकर दोनों के बर्तन उठाकर साफ करने ले गया।

एक बार महाराजजी ने स्वामीजी को एक घटना सुनायी जिससे उनकी गहरी विनम्रता का पता चलता है। कुछ निम्नप्रकार से उन्होंने वह घटना सुनायी, "एक बार मैं गाँव के रास्ते पर जा रहा था तो एक व्यक्ति नंगे पैर, मैले-कुचैले कपड़े पहने

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

मेरे पास आया और मेरे सामने उसने एक दस पैसे का सिक्का फैंक दिया। मैंने समझा कि उस व्यक्ति ने मुझे भिखारी समझकर ही वह सिक्का फैंका है। अतः कुछ अपमानित सा अनुभव करके मैंने वह सिक्का उठाकर उसे लौटा दिया। उस व्यक्ति ने मुझसे वह सिक्का लिया और उल्टी दिशा में चला गया। लेकिन क्षणभर में ही मुझे बोध हो गया कि मुझे वैसी प्रतिक्रिया नहीं करनी चाहिये थी। मैं पलटा और उस व्यक्ति को रुकने के लिये आवाज दी। मैं एकदम उसके पीछे गया, अपने व्यवहार के लिये मैंने उससे क्षमा मांगी और उस व्यक्ति से वह दस पैसे का सिक्का वापिस मुझे देने की प्रार्थना की। व्यक्ति ने सिक्का तुरन्त मुझे दे दिया।"

महाराजजी ने फिर कहा, "मैने खूब सोचा और अनुभव किया कि आखिर मैं एक भिखारी ही तो हूँ चाहे 'आदरणीय' ही सही। सामान्यतया अगर मुझे कोई अन्य भक्त बड़ी-बड़ी भेंटें या रुपये देते तो मैं उन्हें स्वीकार कर लेता। लेकिन अपने जीवन-यापन के लिये मैं स्वयं तो कुछ नहीं कमाता। मुझे उस अशिक्षित तथा निर्धन व्यक्ति द्वारा दिये गये दस पैसे लौटाने नहीं चाहिये थे। क्या हुआ यदि उसने वे पैसे मुझे आदरपूर्वक नहीं दिये! लेकिन दिये तो अपनी स्वैच्छा से ही।"

इसके बाद हमारे स्वामीजी ने हमें बताया, "सम्भवतः महाराजजी इस घटना को बताकर मुझे शिक्षा देना चाहते थे। अतः जब भी कोई व्यक्ति मुझे भेंट देता है, मुझे महाराजजी के शब्द याद आ जाते हैं।" फिर आगे हँसते-हँसते लिखा, "एक बार जर्मनी के फ्रैंकफर्ट हवाईअड्डे पर एक अधिकारी ने मेरे पासपोर्ट की जाँच करते समय मुझसे पूछा, 'तुम्हारा व्यवसाय क्या है?' मैने कहा, 'मान्यवर, मैं एक आदरणीय भिखारी हूँ।'"

पूज्य महाराजजी के निर्मल चरित्र का महिमागान हमारे गुरुदेव ने निम्नलिखित शब्दों में किया है —

"स्वामी कृष्णदासजी महाराज नम्रता की साक्षात् मूर्ति थे। छोटे से छोटे व्यक्ति को भी बहुत आदर देते थे। वे महानतम् संतों में से थे तो भी इतने सरल, विनम्र और मानवीय कि कई बार तो उनके व्यवहार से उनके निकट के सेवक भी उनकी महानता को न समझ पाने के कारण भ्रम में पड़ जाते थे। अहंकार तो उनमें लेशमात्र भी न था। स्वंय को ऊँचा व महान् संत समझने का भाव तो उनके पास फटक भी न सकता था। वे सदा बालसुलभ सरलता व सहजता के साथ जीवन जीये।"

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

"वे एक अमूल्य आध्यात्मिक रत्न थे। लेकिन नाम, पद व सत्ता के भूखे आज के तथाकथित बुद्धिमान किन्तु वास्तव में मूर्ख व्यक्ति, उन्हें पहचान न सके। उनका काम तो जीवनभर परछाइयों को पकड़ने का प्रयास करना ही है। जब तक मैं उनके साथ रहा, वह सीखने का एक महान् अवसर था। उनका छोटे से छोटा कृत्य भी मुझे बाबाजी, रामकृष्ण परमहंस जैसी महान् विभूतियों के पद-चिन्हों पर चलने के लिये प्रेरित करता। मैं 1953 में चिनार आश्रम, श्रीनगर में महाराजजी के साथ लगभग पाँच महीने रहा। फिर 1957 में सर्दी के दिनों में, सप्तसरोवर झाड़ी में कोई तीन महीने वे कृपा करके मेरे साथ रहे। (इस जंगली टापू में हमारे गुरुदेव 1961 में लम्बे समय के लिये आने से पूर्व सन् 1957 में भी कुछ समय रहे थे। इसके अतिरिक्त लगभग चार महीने यहाँ-वहाँ, भिन्न-भिन्न समय पर वे महाराजजी के साथ रहे।) लेकिन इस संक्षिप्त अवधि में ही मैंने महाराजजी के व्यावहारिक जीवन से इतना कुछ सीखा कि आज तक उसे अपने जीवन में आत्मसात् करने का प्रयास कर रहा हूँ।"

हममें से भी कुछ सेवकों ने स्वामी कृष्णदासजी महाराज का दर्शन-लाभ किया है। उनका व्यक्तित्व बड़ा आकर्षक था। गौरवर्ण, ऊंचा कद, छरहरा शरीर, तीखे नैन-नक्श, अति सुन्दर लालिमा लिये हुए चेहरा, मुख-मण्डल पर दिव्य तेज तथा विनोदप्रिय, बालसुलभ सरल स्वभाव ! वे बड़े ही कोमल व मधुर स्वभाव वाले संत थे। अपने प्रिय चन्द्रस्वामी के साथ, जिन्हें उन्होंने स्वयं संन्यास दीक्षा दी थी, उनका निराला ही सम्बन्ध था। प्रेम से वे हमारे गुरुदेव को चन्दर-चन्दर कहकर बुलाते थे। बाद के दिनों में स्वामीजी के बारे में वे अक्सर कहा करते थे, "यह छुपा हुआ है, सब कुछ कर सकता है।" एक बार जम्मू के डाक्टर सतपालजी ने महाराजजी से कहा, कि महाराजजी, क्या हमें भगवान के दर्शन होंगे ? उन्होंने झट उत्तर दिया, "भगवान के दर्शन तो तुम्हें हो गये हैं। चन्द्रस्वामी भगवान के ही रुप हैं। उनके दर्शन तो आप करते ही रहते हैं।" प्रगाढ़ प्रेम के साथ-साथ वे हमारे स्वामीजी का इतना सम्मान करते थे कि जब उनसे मिलते तो उनके चरण छूने का भी प्रयास करते थे। हमारे स्वामीजी तो उनके चरण छूते ही थे। और इस देव दुर्लभ नम्रता की दो मूर्तियों का प्रेमालाप देखकर भक्तों की आँखों में प्रेमाश्रु आ जाते थे।

नब्बे वर्ष से भी अधिक आयु में, सन् 1994 को महाराज कृष्णदासजी ने अपना दैहिक चोला दिल्ली में अपने एक अनन्य भक्त श्री डी. डी. शर्माजी के घर

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

छोड़ा। अन्त समय की उनकी अत्यन्त रुग्णावस्था में श्री डी. डी. शर्मा तथा उनकी धर्मपत्नी श्रीमती लज्जा शर्मा ने महाराजजी की अपूर्व प्रेम-भाव से सेवा की। अस्तु !

पुनः गुरुदेव प्रसंग उन्मुख होते हैं। स्वामीजी आश्रम में सितम्बर, 1953 के अन्त तक रुके। उन दिनों आश्रम में रह रहे तीन संतों में सबसे वरिष्ठ गुरुभाई स्वामी गोविन्ददासजी आश्रम के महन्त थे। मंझले गुरुभाई स्वामी रामशरणदासजी आश्रम की व्यवस्था देखा करते थे। सबसे छोटे गुरुभाई स्वामी कृष्णदासजी महाराज सारा समय भजन-साधन में ही लगाते थे। तीनों संत अपने समय के महान् संत स्वामी हरनामदासजी के शिष्य थे। सारा दिन महाराजजी अपने छोटे से कमरे में ही रहते थे। दिन में कुछ देर के लिये प्रतीक्षा कर रहे भक्तों से मिलने बाहर आते थे। आश्रम की व्यवस्था आदि में वे जरा भी भाग नहीं लेते थे। स्वामी गोविन्ददासजी हमारे स्वामीजी को उनके विद्यार्थी जीवन से ही जानते थे। हालाँकि स्वामी गोविन्ददासजी और स्वामी रामशरणदासजी हमारे स्वामीजी से बहुत प्यार करते थे तथा उनका ध्यान रखते थे, फिर भी यह महाराज कृष्णदासजी का अतिशय प्रेम तथा आध्यात्मिक मार्गदर्शन ही था जिसने उन्हें श्रीचन्द्रचिनार आश्रम में पाँच महीने रोके रखा।

आश्रम में स्वामीजी को रहने के लिये स्वामी रामशरणदासजी का कमरा दिया गया था। वे स्वयं तो दिनभर आश्रम की व्यवस्था में ही व्यस्त रहते थे। केवल रात को सोने के वास्ते ही कमरे में आते थे। दिन के भोजन तक स्वामीजी कमरे के अन्दर रहकर ही अपना अधिकांश समय साधना में व्यतीत करते थे। फिर दोपहर में इस कमरे के पीछे खुले लेकिन एकान्त बरामदे में बैठकर भी साधन-भजन करते। उन दिनों वे ध्यान, जाप तथा स्वाध्याय किया करते थे। वे दिन के भोजन के समय और फिर दोपहर को महाराजजी के दर्शन करते थे। दोपहर के बाद महाराजजी जिज्ञासुओं का शंका समाधान किया करते थे। तब स्वामीजी चुपचाप बैठकर, ध्यान से उनके सारगर्भित उत्तर/सत्संग सुना करते।

रहस्यमय साधु संतसिंहजी

स्वामी कृष्णदासजी के जीवन से जुड़ी एक और विलक्षण घटना हमने सुनी है जिसके यहाँ उल्लेख का लोभ संवरण हम नहीं कर पा रहे हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पंजाब के जिला लुधियाना से कोई बीस किलोमीटर दूर एक गाँव जस्सड़ है। गाँव में अधिकांश निवासी सिख हैं। सन् 1938 में उस गाँव में एक सरल साधु का आगमन हुआ। कहते हैं सबसे पहले गाँव वालों ने उसे एक वृक्ष के नीचे भजन करते देखा था। किसी को नहीं मालूम कि वह साधु कौन था, कहाँ से आया था तथा उसका असली नाम क्या था। धीरे-धीरे लोग उन्हें संतसिंह के नाम से पुकारने लगे थे।

वह साधु देखने में बहुत तेजस्वी, सुन्दर, गौरवर्ण, लम्बा व छरहरे शरीर वाला था। उसे किसी ने सोते हुए नहीं देखा था। जब वह आरम्भ में आया था तो कई दिन तक उसने भोजन नहीं किया। किसी ने उससे भोजन के लिये पूछा ही नहीं और न ही उसने किसी से कुछ माँगा। बाद में प्रतिदिन गाँव वाले एक-एक करके उसे अपने घर ले जाकर भोजन कराया करते थे। दिनभर में वे एक ही समय भोजन करते थे।

वे उस गाँव में अक्तूबर 1959 तक रहे। वह साधु क्या था उस गाँव तथा उसके आस-पास के गाँवों के लोगों के लिये एक परोपकारी देवता था। उन्हें वैल्डिंग, टेलरिंग, बढ़ईगिरी, राजगिरी, भोजन बनाना तथा चिकित्सा आदि क्षेत्रों में विशेष निपुणताएं प्राप्त थीं। उन्हें यूनानी, एलौपैथिक, होम्योपैथिक तथा आयुर्वेद का भी अच्छा ज्ञान था। कई प्रकार की दवाएं वे स्वयं बनाते थे। लगभग पचास-साठ मरीजों को तो वे नित्य दवा देते ही होंगे। इसके अतिरिक्त स्वयं साइकिल पर घूम-घूमकर आस-पास के गाँवों में भी दवा बाँटने जाते थे। कोई आधी रात को बुला ले तो दवा देने को बीस-बीस किलोमीटर पैदल चले जाते थे। दवा भी निःशुल्क देते थे। हाँ, कभी कोई दवा खरीदने या बनाने के लिये कुछ धन दे तो स्वीकार कर लेते थे। उस अनोखे साधु को हिन्दी, अँग्रेजी, उर्दू, पँजाबी तथा तब पाकिस्तान में लिखी जाने वाली लन्डेह-मुण्डेह भाषा का भी ज्ञान था। वे गाँव के लोगों के सभी प्रकार के कार्यों में अनेक प्रकार से सेवा करते रहते थे—यहाँ तक कि बहन-बेटियों के विवाह पर दुल्हन के लिये बाजार से सामान खरीदना, स्वयं शादी की मिठाई बनाना, बारात का भोजन बनाना आदि-आदि। अपनी सुख-सुविधाओं पर उन संत की जरा भी दृष्टि नहीं थी। उनकी स्वयं की तो जैसे कोई आवश्यकता थी ही नहीं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

वे साधु सुन्दर चित्रकार भी थे तथा उन्हें अपने सहजज्ञान से छठे सिख्र गुरु श्रीहरगोविन्दजी साहब के जीवन की एक घटना का भी पूरा ज्ञान था। उस गाँव में एक स्थान पर गुरुजी ने एक डाकू को धनुष से तीर मारकर समाप्त कर दिया था। अत: उन साधु ने ठीक उसी स्थान पर एक गुरुद्वारे की भी स्थापना करवाई जो अब तीर साहब के नाम से जाना जाता है। गुरुद्वारे में उन साधु द्वारा बनाया हुआ गुरु हरगोविन्द साहब का तैलचित्र भी है। गुरुद्वारे के परिसर में ही एक छोटा सा कमरा भी है जिसमें गुरुद्वारा बनने के बाद वे साधु रहा करते थे। कमरे में उन द्वारा बनाये गये अन्य देवी-देवताओं के सुन्दर तैलचित्र भी हैं।

इन अगणित सद्गुणों के अतिरिक्त उन साधु का स्वभाव इतना मधुर तथा कोमल था कि आज भी उसका स्मरण करके गाँव के बड़े-बूढ़े रोने लग जाते हैं। स्वभाव के बहुत कोमल होने पर भी वे बहुत संकोची थे। अक्सर मौन ही रहते थे तथा आवश्यकतानुसार कम से कम शब्दों में लोक-व्यवहार कर लेते थे। लोगों से व्यवहार तथा बातचीत करते समय उनकी आँखें अक्सर भूमि पर ही गड़ी रहती थीं मानो मां की सी ममता से दीन-दुखियों की सेवा के बाद भी उनकी इस जगत्रूपी प्रपंच के प्रति तीव्र आन्तरिक उपरति थी; मानो हर कार्य करते हुए भी वे परमात्मा से सतत जुड़े रहते थे। वस्तुत: आस-पास के गाँवों के सभी लोग उन साधु को कोई परोपकारी फरिश्ता ही समझते थे।

वे साधु प्रतिवर्ष कुछ दिनों के लिये पठानकोट की ओर अज्ञात स्थान को चले जाया करते थे। 10.10.59 को वे साधु वह गाँव छोड़कर हमेशा के लिये कहीं चले गये। गाँव छोड़ने के समय उन संत ने गाँव वालों को अपने पास आने के लिये मना कर दिया था। उस समय उनको विदायी देने के लिये उनके अन्तरंग भक्त सर्वश्री सुरजीतसिंहजी, शामप्रकाशजी तथा दयालसिंहजी थे। ये भक्त उनका सामान साइकिल पर रखकर अश्रुपूर्ण नेत्रों से उन्हें जालंधर जाने वाली एक बस में बिठा आये। वहाँ से वे संत कहाँ गये इसका उन्हें भी पता नहीं था।

उसी गाँव के सरदार बुद्धसिंहजी ने हमें बताया कि जाने के एक दिन पहले उन संत ने उन्हें संकेत दिया था कि वे गाँव छोड़कर जा रहे हैं। बुद्धसिंहजी तब छोटे बालक ही थे। उन्होंने भोलेपन से संतसिंहजी से कहा, "फिर मुझे दवा कौन देगा ? मैं तो आपकी दवा से ही ठीक होता हूँ।" बालपन में बुद्धसिंहजी को दमा बहुत रहता

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

था। इस पर उन संत ने एक होम्योपैथिक दवा की कुछ गोलियां प्यार से उनके मुख में डाल दीं। श्रीबुद्धसिंहजी बताते हैं कि उस दिन के बाद उन्हें दुबारा दमे की शिकायत नहीं हुई। इसी प्रकार हमें उस गाँव के श्रीहरविन्दरसिंहजी ने भी उन संत के करुणा-प्रेम तथा सेवा की ढेरों घटनाएं बतायीं। हरविन्दरजी तब बालक ही थे, अब तो वे कनाडा में रहते हैं।

संत द्वारा सदा के लिये गाँव छोड़ देने के बाद उनके प्रेम में पागल बेचारे उस गाँव के सिख समुदाय के लोग उन्हें गाँव-गाँव, शहर-शहर दूर-दूर तक ढूँढते रहे, लेकिन उनका कुछ पता न चल सका। इस घटना के वर्षों बाद, सम्भवतः 1970 में घवद्दी गाँव के सरदार श्रीजसवंतसिंहजी सपत्नीक कश्मीर भ्रमण के दौरान श्रीनगर गये तो वहाँ स्थित श्रीचन्द्रचिनार आश्रम भी गये। वहाँ स्वामी कृष्णदासजी महाराज को देखते ही उनके हर्ष और आश्चर्य का ठिकाना न रहा। यह क्या! यह संत तो उन्हीं के खोये हुए साधु संतसिंह थे। लेकिन एक दूसरा आश्चर्य, उससे भी बड़ा— महाराजजी ने उन्हें पहचानने तक से साफ इन्कार कर दिया। जब उन्होंने महाराजजी को पूरी बात सुनायी तो उन्होंने उन सरदारजी को प्रेम से बताया, "मैं आपका खोया हुआ साधु नहीं हूँ, आपको गलतफहमी हुई है।" लेकिन बहुत समझाने पर भी सरदारजी नहीं माने। सब कुछ तो वही था। उन्हें लगा कि महाराजजी किसी अज्ञात कारण से उस गाँव से अब सम्बन्ध नहीं रखना चाहते। खैर, उन्होंने गाँव में आकर सारी बात गाँव वालों को बतायी। तुरन्त ही सरदार दयालसिंहजी भी श्रीनगर के श्रीचन्द्रचिनार आश्रम में पहुँच गये। महाराजजी से मिले तो उनके प्रेम में इतने अभिभूत हो गये कि तीन दिन तक कोई बात न कर सके, केवल रोते रहे। यहाँ यह बता देना अनुचित न होगा कि इन गाँव वालों में, जो स्वामी कृष्णदासजी महाराज को वही साधु मानते थे, सभी अशिक्षित व भावुक लोग नहीं थे। इन भक्तों में बड़े शिक्षित और उच्च पद प्राप्त लोग भी हैं जिनमें गुप्तचर विभाग के एक एस. एस. पी., फौज में मेजर, पटियाला में भाषा विभाग के एक अधिकारी तथा अन्य जाने माने लोग भी हैं।

जल्दी ही गाँव से बीसियों बड़े-बूढ़े चिनार आश्रम अपने प्रिय साधु को मिलने पहुँच गये। सबने उन्हें एकदम पहचान लिया, पर महाराजजी नहीं माने। गाँव के वयोवृद्ध सरदार दयालसिंहजी ने तो हमें यहाँ तक बताया कि श्रीनगर आश्रम में जो

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

लकड़ी की खड़ाऊँ का जोड़ा महाराजजी का है वह जस्सड़ के निकट बल्लोवाल गाँव के कारीगर के हाथ का बना है। ठीक उसी के साथ का दूसरा जोड़ा आज भी उस साधु के छोटे से कमरे में पड़ा है। वे खड़ाऊँ उन्होंने इस सेवक को दिखायीं भी थीं। इसके अतिरिक्त लोग यह भी बताते हैं कि कई बार अनजाने में महाराजजी ऐसी बातें कह देते थे अथवा कर देते थे जिससे सिद्ध होता था कि उन्हें जस्सड़ गाँव की भौगोलिक स्थिति और तत्कालीन कई बातों का ज्ञान था।

इस बात को वर्षों हो गये, पर न तो महाराजजी ही कभी माने कि वे वही साधु थे और न ही गाँव वाले कभी यह माने कि वे उनके साधु नहीं हैं। तभी से गाँव के लोगों ने नियमित रूप से महाराजजी के पास श्रीनगर जाना आरम्भ कर दिया। उनकी महाराजजी में अटूट श्रद्धा है। वहाँ जाकर वे ठहरा करते, आश्रम की सेवा करते, लंगर में भोजन बनाते और प्रेमपूर्वक महाराजजी के दर्शनों का लाभ लिया करते। किन्तु गाँव वालों के अत्यन्त आग्रह करने पर भी, एक बार भी, महाराजजी कभी उनके गाँव नहीं गये।

कभी-कभी महाराजजी विनोद करते हुए जस्सड़ वालों की ओर इशारा करके कहते थे, "भई, इन बेचारों का कोई साधु गुम हो गया है। उसको ढूंढ रहे हैं।"

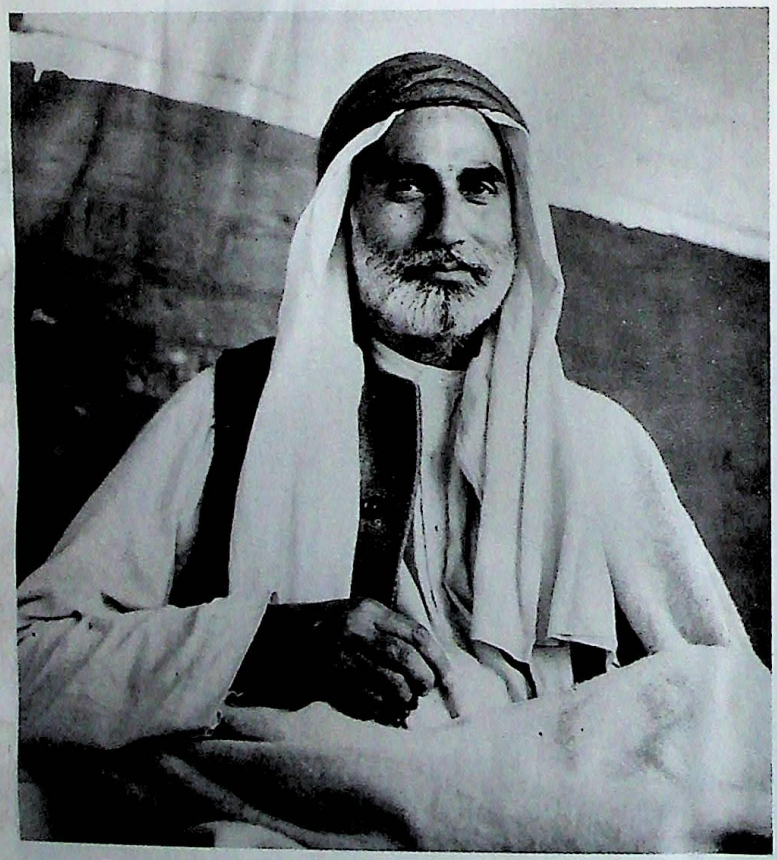
महाराजजी, ग्रामवासियों के अत्यन्त आग्रह पर एक बार भी जस्सड़ गाँव क्यों नहीं गये, यह एक रहस्य ही है। कोमलता तथा नम्रता की मूर्ति महाराजजी अगर गाँव नहीं गये तो उसका कोई कारण अवश्य रहा होगा जो सामान्य बुद्धि से समझना कठिन है।

जोगी किसके पाहुने, पंछी किसके मीत।

सितम्बर, 1994 में महाराज कृषणदासजी ने जब देह त्यागी तो जस्सड़ गाँव से बड़ी संख्या में उनके भक्त हरिद्वार में उनकी अन्त्येष्टि के समय पहुँचे थे। संतसिंहजी से सम्बन्धित सभी बातें सेवक ने स्वयं जस्सड़ गाँव के अनेक व्यक्तियों से बातचीत करके एकत्रित की हैं जो वर्षों तक संतसिंहजी के मंगल सान्निध्य में रहे हैं।

महाराज कृष्णदासजी का शरीर छूटने के बाद वह पूरा गाँव हमारे गुरुदेव, श्रीचन्द्रस्वामीजी महाराज में बहुत श्रद्धा-भक्ति रखने लगा है। वहाँ से सैकड़ों लोग भण्डारे पर आकर आश्रम की तरह-तरह से सेवा करते हैं। कई बार वे स्वामीजी को बड़े प्रेम और आदर से अपने गाँव भी ले गये हैं। स्वामीजी के आने की खुशी में

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

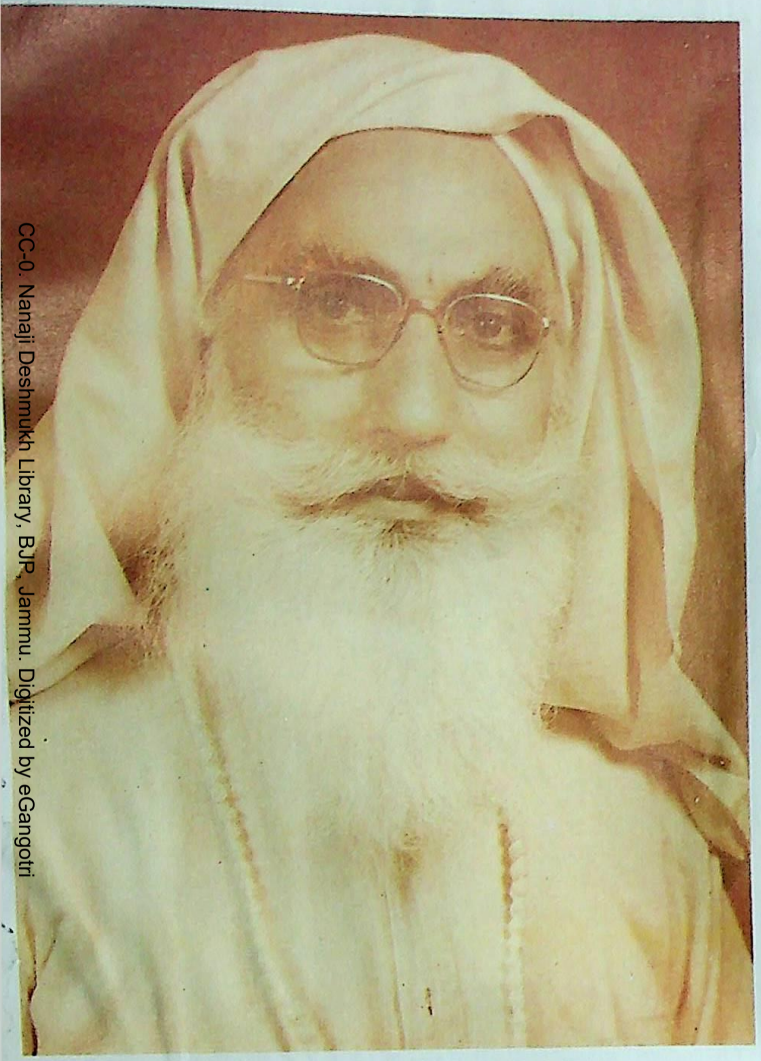


↑ सिर पर लम्बी जटाओं का मुकुट पहने स्वामी कृष्णदासजी।

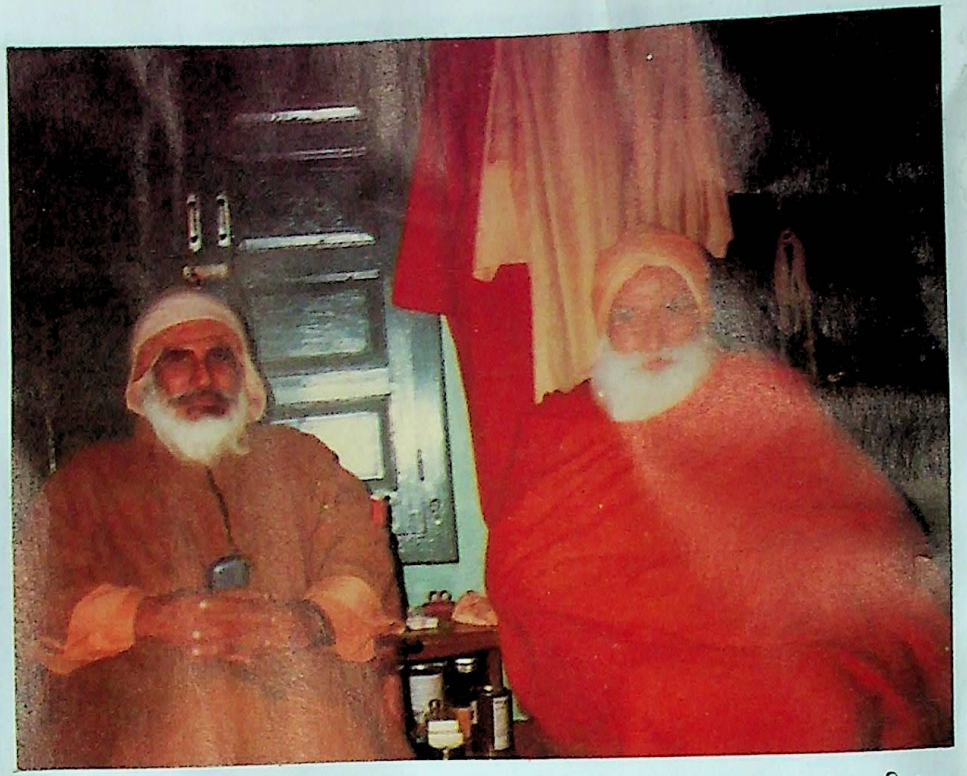


जस्सड़ गांव के भक्तों से मिला ध्यानस्थ स्वामी कृष्णदासजी का पुराना चित्र। →

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

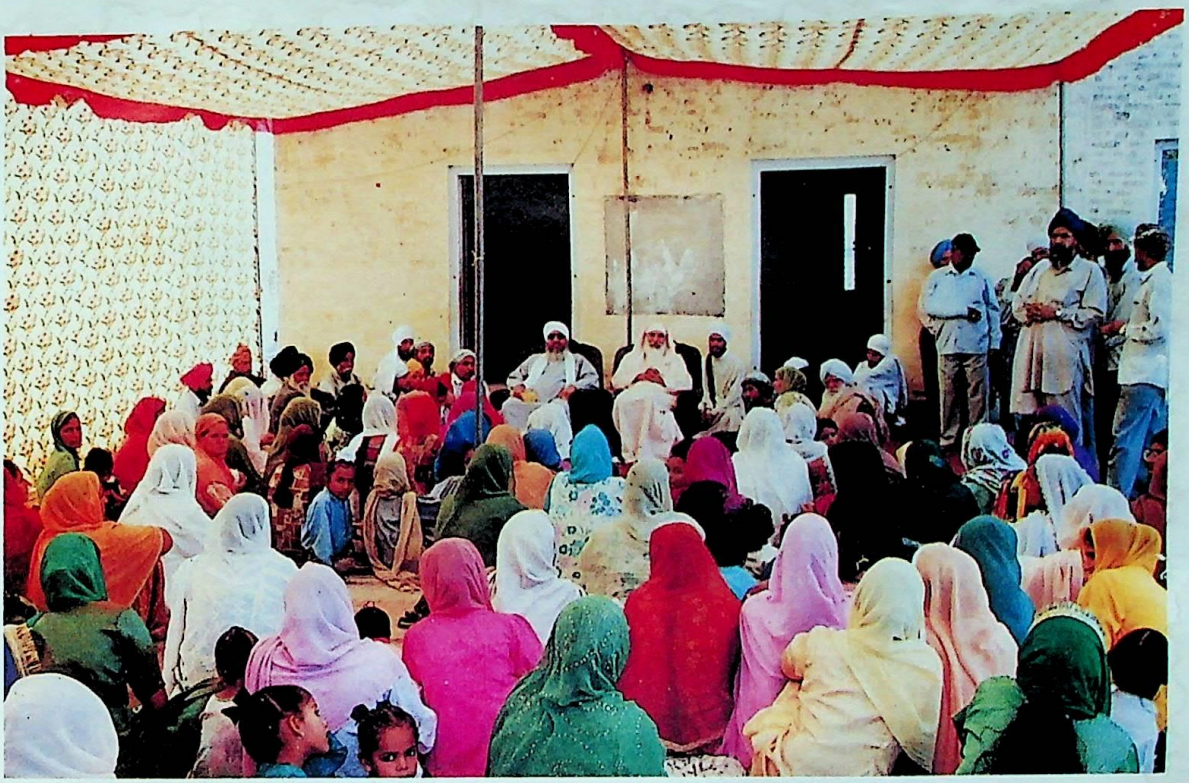


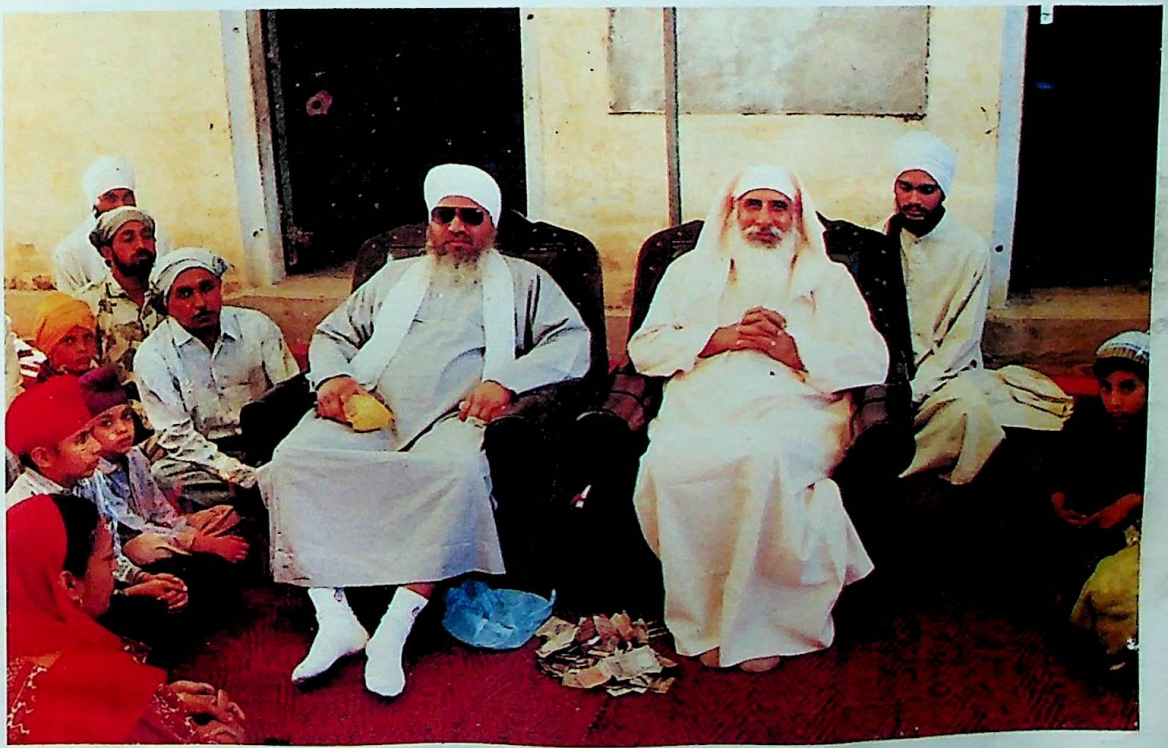
स्वामी कृष्णदासजी की तेजस्वी छवि ।



सेवक निवास आश्रम, हरिद्वार में हमारे गुरुदेव के साथ महाराज कृष्णदासजी ।

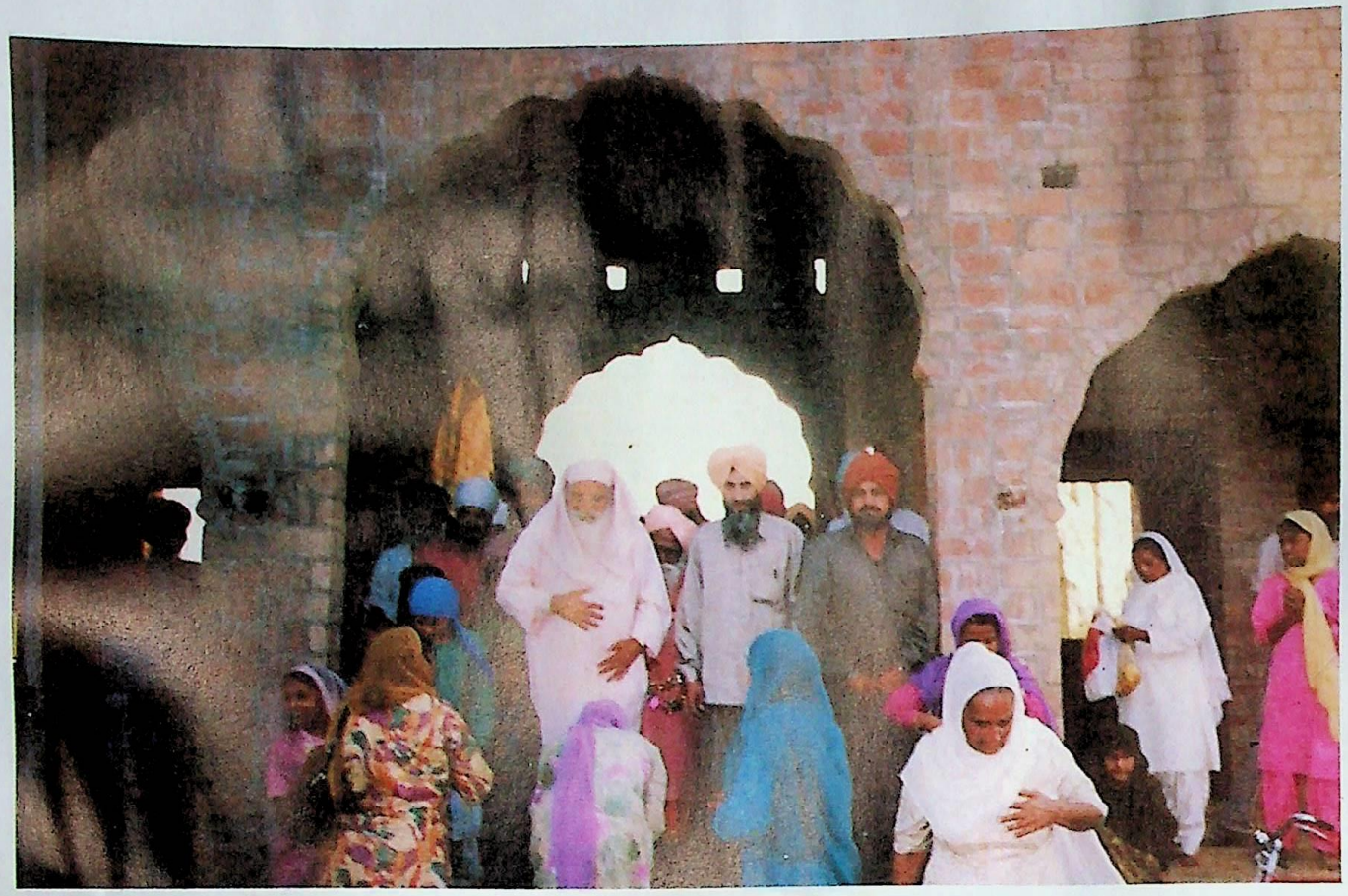
CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri





लुधियाना के निकट जस्सड़ गांव के गुरुद्वारे के परिसर में भक्तों के साथ गुरुदेव, जहां कभी रहस्यमय साधु संतसिंहजी तपस्या और सेवामय जीवन व्यतीत किया करते थे। महाराजजी के साथ ही निकट के एक अन्य गुरुद्वारे के संत बैठे हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



गुरुद्वारे में महाराजजी की अगवानी करते जस्सड़ गांव के भक्त।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

अखण्ड पाठ व लंगर का आयोजन करते हैं तथा उन्हें गुरुद्वारे के परिसर में स्थित उसी छोटे से कमरे में ठहराते हैं जहाँ कभी वे रहस्यमय साधु उपकारी व तपस्वी जीवन व्यतीत किया करते थे।

इस सम्बन्ध में जब हमने और अधिक जानकारी एकत्र की तो पता चला कि जिन दिनों वे साधु संतसिंह जस्सड़ में रह रहे थे, उन्हीं दिनों महाराज कृष्णदासजी भी श्रीनगर के श्रीचन्द्रचिनार आश्रम में रह रहे थे। अतः सामान्य दृष्टि से यह स्पष्टतः विरोधाभास था। जब किसी ने गुरुदेव से इस विरोधाभास के बारे में चर्चा की तो उन्होंने उत्तर दिया, "आपने तो योगवाशिष्ठ पढ़ा है—एक ही समय में एक से अधिक शरीर धारण करना योगी के लिये सम्भव है।" अतः इस पूरे प्रकरण से हमें यही प्रतीत होता है कि महाराज श्रीकृष्णदासजी किन्हीं कारणों से एक ही समय दो शरीरों में रहे। एक शरीर से तो वे मुक्त रूप से खूब भजन-साधन करते रहे और दूसरे शरीर से खूब सेवा-परोपकार करते रहे। वैसे ऊपर उनकी सिद्धियों की भी चर्चा हमारे गुरुदेव ने स्वयं की है इससे भी इसी मत को मान्यता मिलती है।

एक बार सेवक ने जस्सड़ के सरदार बुद्धसिंहजी से पूछा कि आपके पास क्या प्रमाण है कि महाराज कृष्णदासजी ही उनके खोये हुये संतसिंहजी हैं। तो उन्होंने इसका बड़ा सुन्दर उत्तर दिया; उन्होंने कहा, "हमें इस बात की कोई फिक्र नहीं कि वे वही थे या नहीं लेकिन उनके माध्यम से हम महाराज कृष्णदासजी और चन्द्रस्वामीजी जैसे सिद्ध संतों के सम्पर्क में आ सके—यह उन्हीं संतसिंहजी की कृपा का फल है। और यह हम ग्रामवासियों के लिये विलक्षण सौभाग्य की बात है।" संतों के प्रति भक्ति तथा सारतत्व पर दृष्टि रखने का यह कैसा सुन्दर भाव है!

उद्यान में सत्संग-सुमन

आइये, पुनः श्रीचन्द्रचिनार आश्रम प्रवास के दिनों की गुरुदेव की ललित लीलाओं का रसपान करें। रोज़ शाम को स्वामीजी लगभग चालीस मिनट सैर करने जाते थे। सैर के बाद आश्रम से आधा किलोमीटर दूर एक पार्क के कोने में अकेले एक बैंच पर चुपचाप बैठा करते थे। यह उनका लगभग नित्यप्रति का नियम था।

एक दिन जब स्वामीजी उस पार्क में बैंच पर बैठे हुए थे तो दो अधेड़ आयु के सज्जन भी आकर उसी बैंच पर बैठ गये। हालाँकि पहली बार में देखने से ही वे

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

उस तेजस्वी साधु की ओर आकृष्ट हुए लेकिन कुछ बोले नहीं तथा न उनमें विचार-विमर्श ही हुआ। नवयुवक संन्यासी के आकर्षण से खिंचे वे दूसरे दिन फिर वहीं, उसी समय आ गये। तीसरे दिन फिर स्वामीजी का खिंचाव उन्हें पार्क में ले आया। चौथे दिन उनमें से एक सज्जन, पंडित आज़ाराम डोगरा और अधिक धीरज न रख सके। उन्होंने नम्रतापूर्वक स्वामीजी को अपना परिचय दिया।

पंडित आज़ाराम डोगरा जम्मू-कश्मीर राज्य के सेवा-निवृत रिसैप्शन अधिकारी थे तथा लगभग पिचासी वर्ष के दूसरे सज्जन, सरदार हरिसिंहजी थे। वे जम्मू-कश्मीर राज्य के सेवा-निवृत्त सैटलमैन्ट अधिकारी थे। दोनों मित्र ग्रीष्म-ऋतु व्यतीत करने कश्मीर आये हुए थे। पंडितजी आर्यसमाजी विचारधारा के एक धर्मनिष्ठ व्यक्ति थे। सन् 1947 में जब देश का बंटवारा हुआ तो साम्प्रदायिक दंगों में हजारों निर्दोष, बल्कि भले लोग, क्रूरता और हिंसा की बलि चढ़ गये; हजारों को, बिना उनके किसी अपराध के अमानवीय यातनाएं झेलनी पड़ीं। यह सब अपनी आँखों से देखकर पंडितजी का मन अत्यन्त व्यथित हो उठा तथा उनका भगवान पर से मानो विश्वास ही उठ गया। उन्होंने त्रिकाल संध्या करना बंद कर दिया। कर्मफल तथा भगवान को लेकर हजारों संदेहों ने उनको घेर लिया। इस अन्यायपूर्ण तथा क्रूर व्यवस्था का नियामक वह परमात्मा कैसे हो सकता है जिसे न्यायवान, परमकृपालु तथा सर्वशक्तिमान माना जाता है!

अपना परिचय देने के उपरान्त पंडितजी ने स्वामीजी से उनका नाम, निवास, शिक्षा, इस अल्प आयु में संन्यासी बनने के कारण, इत्यादि जानकारियाँ लीं। उन्होंने स्वामीजी से जगत् में व्याप्त दुःख, परमात्मा तथा अन्य अनेक विषयों पर गम्भीर प्रश्न भी किये। स्वामीजी ने सभी प्रश्नों के संक्षिप्त, सारगर्भित व तर्कसंगत उत्तर दिये। उस दिन उनका आपस में वार्तालात कुछ निम्न प्रकार से हुआ—

स्वामीजी : मैंने परमात्मा के आह्वान को सुना है; बहुत गहराई से उठे उस माधुर्यपूर्ण गहन निमन्त्रण को नकारना तो दूर, मैं उसे एक पल के लिये भी विस्मृत नहीं कर सकता। मैंने 'उसकी' अपरोक्ष और समग्र अनुभूति का दृढ़ संकल्प लिया है। मेरा हृदय 'उसके' दर्शन की विरहाग्नि से दग्ध हो रहा है।

पंडितजी : परमात्मा कहाँ है ? आपको कैसे मालूम कि वास्तव में वह है भी

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

या नहीं ? कहाँ रहता है वह ? अपना बहुमूल्य जीवन एक कपोल कल्पित वस्तु के पीछे क्यों नष्ट कर रहे हो ?

स्वामीजी : मैं परमात्मा को नहीं जानता। मुझे यह भी नहीं मालूम कि वे क्या हैं और क्या करते हैं ? और तो और, मुझे इस जगत् के बारे में भी अधिक जानकारी नहीं है। पर हाँ, मुझे परमात्मा तथा संतों-महात्माओं की वाणी में पूर्ण श्रद्धा है।

पंडितजी : परमात्मा द्वारा रचित इस जगत् में इतना दुःख, इतनी पीड़ा क्यों ? जहाँ जल की आवश्यकता नहीं, वहाँ मनुष्य, पशु, खेत-खलिहान तथा धन-सम्पत्ति का विनाश करती प्रलयंकारी बाढ़ आ जाती है, किन्तु जहाँ जल की आवश्यकता है वहाँ वह अकाल भेज देता है। फसलें जलाभाव से सूख जाती हैं तथा जन-साधारण त्राहि-त्राहि कर उठता है। फिर, इस जगत् में अगणित ऐसे अभागे लोग हैं जो दो समय की रोटी के अभाव में काल कवलित हो जाते हैं तो दूसरी ओर कुछ ऐसे भी हैं जो झूठ-फरेब तथा अनीति द्वारा एकत्र की गयी विपुल धन-सम्पत्ति से राजा-महाराजाओं की तरह विलासितापूर्ण जीवन जी रहे हैं। परमात्मा— वह परमात्मा जो न्यायप्रिय तथा परमकृपालु है, कैसे यह सब सहन करता है ?

स्वामीजी : मेरा सोचना है कि मनुष्य स्वयं इन सब दुःख-दारिद्रय तथा अव्यवस्था के लिये उत्तरदायी है। आज उसने वनों को नष्ट करके (जिसे आज की भाषा में पर्यावरण असंतुलन कहेंगे) रख दिया है। इसी कारण से बाढ़ तथा सूखे जैसी आपदाएं आ रही हैं। समाज में आये मानवीय तथा नैतिक अवमूल्यन तथा अनेक तरह की विसंगतियों के कारण मानव अवसादग्रस्त होता जा रहा है। अधिकाधिक सुख-सुविधाओं की अन्धी दौड़ में उसने अपने चारों ओर के वातावरण को दूषित बना डाला है तथा साथ ही साथ स्वयं के लिये भी दुःख विपत्ति मोल ले ली है। उसकी अनियन्त्रित स्वार्थपरता मर्यादा की सभी सीमाओं को लांघ गयी है तथा बदले में उसने स्वयं को ही एक आक्रामक, हिंसक तथा आतंकवादी जन्तु बनाकर पृथ्वी पर मानो साक्षात् नरक का ही सृजन कर छोड़ा है।

पंडितजी : आप दूसरों की सेवा क्यों नहीं करते ? अपने माता-पिता, समाज तथा देश की सेवा करिये। क्या केवल स्वयं की मुक्ति के लिये ही प्रयास करना स्वार्थ परायणता नहीं है ?

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

स्वामीजी : मैं आपके उच्च विचारों का सम्मान करता हूँ तथा आपके सुझावों के कदापि विरोध में नहीं हूँ। इस जगत् में सभी लोग एक ही प्रकार की भावनाएं, विचार तथा मौलिक प्रवृत्तियां लेकर नहीं जन्मते। कुछ लोग केवल स्वयं के लिये जीते एवं मरते हैं तथा इससे अधिक उन्हें कुछ मालूम नहीं। अन्य कुछ के लिये उनका परिवार ही सब कुछ होता है। फिर, कम संख्या में, कुछ ऐसे भी व्यक्ति होते हैं जो बिना किसी की भी परवाह किये हुए अपना सब कुछ अपने देश पर न्यौछावर कर देते हैं। लेकिन कुछ अति दुर्लभ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो परमात्मा के, सत्य के साक्षात्कार के लिये ही जीते हैं एवं उसी के लिये प्राण भी दे देते हैं। ऐसे गिने-चुने लोगों को स्वार्थी कहना तो बिल्कुल असंगत है। मनुष्य में अमरत्व तथा अनन्तता की चाह तो मौलिक व स्वाभाविक है—मानव की मौलिकतम तथा दुःरोध्य अनिवार्यता है। इस तथ्य में भला कैसा संशय अथवा विरोध !

इस प्रकार आपस में सम्भाषण करते-करते रात हो चली और सभी ने एक दूसरे से विदा ली।

अगली साँझ जब स्वामीजी उस पार्क में आये तो देखा कि सरदारजी और पंडितजी बैंच पर बैठे उन्हीं की प्रतीक्षा कर रहे थे। और क्यों नहीं ? पहली बार उन्हें एक ऐसा व्यक्ति मिला था जिससे विकीर्ण होती शान्ति को जैसे छुआ जा सकता था; जिसकी मधुर एवं आश्वासन भरी दिव्य वाणी ने उनके संसार दावानल से दग्ध हृदय में शान्ति, समाधान एवं सुख का संचार किया था।

शीघ्र ही उद्यान में सत्संग एक नित्य क्रम सा बन गया। धीरे-धीरे इन दो सज्जनों के अतिरिक्त समाज के विभिन्न वर्गों से अन्य लोग भी स्वामीजी के सहज सत्संग का लाभ पाने हेतु उद्यान में आने लगे। इनमें से एक सेवानिवृत्त मुसलमान अधिकारी थे तथा दूसरे यातायात के व्यापारी एक सूफी हाज़ी थे। उस सत्संग परिचर्चा की ख़ूबी तथा सौन्दर्य इसमें था कि परिचर्चा का वातावरण बड़ा ही मैत्रीपूर्ण तथा अनौपचारिकता लिये हुए होता था तथा स्वामीजी के सहज मार्गदर्शन में सभी लोग उसमें खुले मन से भाग लेते थे। स्वामीजी के विज्ञान सम्मत, मधुर तथा विश्वासोत्पादक उत्तर सभी के मन में घर कर जाते—तर्कप्रधान बुद्धिजीवियों के भी तथा भावुकता प्रधान लोगों के भी। शीघ्र ही स्वामीजी सभी के प्रिय ही नहीं, प्रियतम् बन गये। गहरी श्रद्धा के फलस्वरूप अनेक लोगों ने उन्हें अपने घरों में भोजन

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

हेतु भी आमन्त्रित करना आरम्भ कर दिया। अनेक लोगों के हृदयपटल पर उन दिनों की मधुर स्मृतियाँ आज भी जीवन्त रूप से अंकित हैं। जो लोग स्वामीजी के गहरे भक्त बन गये थे, उनमें से एक भाग्यवान उपर्युक्त सरदार हरिसिंहजी भी थे। उन्होंने स्वामीजी को कई बार एक बड़ी विलक्षण बात बतायी। उन्होंने स्वप्न में कई बार संतों की भव्य सभा देखी जिसमें बड़े-बड़े जटाधारी और बहुत तेजस्वी संत उपस्थित थे। वे कहते थे," उस सभा में मैंने आप को भी देखा।"

"सरदारजी बड़े ही सरल और पवित्र आत्मा थे। स्वामीजी से स्पष्ट कहते थे मैं जाप तो करता हूँ पर मेरा मन नहीं लगता।" कुछ वर्षों बाद, उनके शरीर छूटने के समय वे अपनी अग्र यात्रागमन के पहले सूक्ष्म शरीर में स्वामीजी के पास आए थे। स्वामीजी ने दो-तीन बार हमें स्वयं ही इस प्रकार बताया है—

"उन दिनों मैं सप्तसरोवर झाड़ी में रहता था। आधी रात को मुझे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे कमरे में कोई और भी है। मैं अपने बिस्तर पर उठकर बैठ गया। तो देखा, सरदार हरिसिंहजी जमीन पर पालथी मारकर बैठे हुए हैं। उनके चेहरे पर मुस्कुराहट थी तथा वे बड़े शान्त लग रहे थे। लेकिन बोले कुछ नहीं। लगभग पन्द्रह मिनट के बाद वे लोप हो गये। दूसरे दिन प्रातः मैंने यह घटना जम्मू से आये हुए एक सेवक को बतायी। उसी शाम मुझे तार मिला कि पिछली रात सरदारजी का शरीर छूट गया है।" अस्तु !

इसी दौरान सेना में कार्यरत वे नामधारी सिख, जिन्होंने स्वामीजी के साथ बस में यात्रा की थी, यदा-कदा श्रीचन्द्रचिनार आश्रम में स्वामीजी के दर्शनार्थ रविवार को आ जाया करते थे। एक दिन उन्होंने स्वामीजी से आश्रम से कुछ दूरी पर एक गुफा में चलने की प्रार्थना की जिसमें एक प्राकृतिक शिवलिंग भी था। सरदारजी श्रीनगर से कुछ किलोमीटर दूर खू गाँव में अपने कैम्प में रहते थे। खू नामक वह गाँव एक पहाड़ी की तलहटी में था। उसी पहाड़ी के शिखर पर एक कोने में वह प्राकृतिक गुफा थी। आस-पास के ग्रामवासी उस प्राकृतिक गुफा के बारे में जानते थे। कुछ कश्मीरी पंडित वर्ष में एक बार उस गुफा में भगवान शिव की पूजा-अर्चना के लिये भी जाया करते थे। वैसे भी कश्मीर शैवमत परम्परा के वैभव के लिये विख्यात रहा है। चूँकि उस गुफा का प्रवेशद्वार बहुत संकरा तथा छिपा हुआ सा था, उस तक पहुँचने के लिये किसी स्थानीय ग्रामीण मार्गदर्शक का साथ होना आवश्यक

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

था। तलहटी से ऊपर तक लगभग तीन किलोमीटर की सीधी चढ़ायी थी। सब कुछ सुन-जानकर स्वामीजी ने वहाँ जाने का निश्चय कर लिया।

गुफा-मन्दिर में समाधि

आइए देखें, कि उस रोमांचक घटना के पैंतालीस वर्ष बाद भी गुरुदेव अपनी तीक्ष्ण तथा सूक्ष्मदर्शी स्मृति की सहायता से, स्वयं उस घटना का विवरण किस स्पष्टता तथा सुविस्तार से दे रहे हैं। उन्हीं की लेखनी से—

"हमने गाँव से एक मार्गदर्शक को साथ लिया। उसने हमें बताया कि उस मार्ग पर कभी-कभी रीछ से भी सामना होने का भय रहता है। सर्दियों में तो कई बार कुछ रीछ उस गुफा में ही आश्रय लेते हैं। उसी ने हमें यह भी बताया कि एक बार तिब्बत में एक लामा को ध्यान में उस गुफा का दर्शन हुआ था। उसके बाद उन लामा ने यहाँ आकर चार महीने तक उस गुफा में रहकर भजन-साधन किया था। हमारे मार्गदर्शक बन्धु ने रास्ते के लिये कुछ सूखी लकड़ियां, फटे-पुराने कपड़े तथा मिट्टी का तेल भी साथ में ले लिया था ताकि आवश्यकता पड़ने पर आग जलाकर रीछों को भगाया जा सके। उसने अपने साथ एक टार्च तथा लालटेन भी ले ली क्योंकि गुफा में दिन के समय भी हमेशा अंधेरा रहता था। जलपान के लिये हमने एक थर्मस में दूध तथा कुछ खाने-पीने का सामान साथ में ले लिया था। लगभग डेढ़ घन्टे की चढ़ाई के बाद हम उस गुफा के प्रवेश पर पहुँच गये। सौभाग्य से रास्ते में किसी जंगली रीछ से सामना नहीं हुआ। चूँकि गुफा का प्रवेश बहुत ही संकरा था, उसमें एक बार में एक ही व्यक्ति प्रविष्ट हो सकता था, वह भी किसी प्रकाश के आलोक में। सबसे पहले वे ग्रामीण मार्गदर्शक ही अन्दर घुसे तथा उन्होंने अन्दर जाकर लालटेन जलाई। फिर लालटेन के प्रकाश में एक-एक करके हम सभी ने उस गुफा में प्रवेश किया।"

"जैसे ही मैं उस गुफा में प्रविष्ट हुआ, मुझे उसमें बहुत ही सघन तथा स्पष्टरूप से किसी उपस्थिति का अनुभव हुआ। उस रहस्यमय उपस्थिति ने मेरे सब विचारों का एकदम पूर्णरूप से निरोध कर दिया तथा मेरे शरीर में ऊर्जा की सूक्ष्म तरंगों को विशिष्ट प्रकार के गमन-प्रत्यागमन में निविष्ट कर दिया। मुझे गुफा में कुछ कदम चलने के लिये भी सरदारजी का सहारा लेना पड़ा। मैं अधिक देर खड़ा न रह

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

सका तथा बलात् एकदम भूमि पर बैठ गया जो मुझे गीली-गीली सी लगी। बलात् ही मेरी आँखें बन्द हो गयीं तथा मेरी चेतना ऊर्ध्वगामी होकर भ्रूमध्य स्थित आज्ञा-चक्र पर जाकर टिक गयी। तुरन्त ही मुझे अनेक संतों, महात्माओं तथा ऋषियों के दर्शन होने लगे। शरीर का भान पूरी तरह विलोप हो गया। दिव्यातिरेक की उस अवस्था में मैं पन्द्रह मिनट तक रहा। उस दौरान जिन संतों-महात्माओं के मैंने दर्शन किये उनमें से मैं केवल बाबा श्रीचन्द्रजी को ही जानता था। उनमें से दो घुटे हुए सिर वाले तिब्बती साधुओं जैसे थे तथा तीन-चार लम्बे श्वेत चोगे पहने हुए थे (जिन्हें कश्मीर में फिरन कहते हैं) तथा सिर पर पगड़ी पहने हुए थे। ये बाद वाले कश्मीरी ऋषि थे। प्रत्येक संत के दर्शन लगभग दो-दो मिनट तक हुए। इन दर्शनों से मैं दिव्य भावाविष्ट हो गया तथा आंतरिक आनन्दातिरेक की ऐसी अवस्था में पहुँच गया जो वर्णनातीत है।"

"लगभग पन्द्रह मिनट बाद मेरी आँखें धीमे से खुलीं। मैंने अपने चारों ओर देखा और पाया कि वे ग्रामीण मार्गदर्शक तथा सरदारजी शान्ति से मेरे निकट बैठे हुए हैं। वे लोग सोच रहे थे कि मैं ध्यान कर रहा हूँ। मेरे श्वास की गति बहुत ही धीमी हो गयी थी। आँखें खोलने के बाद कुछ क्षणों तक मुझे सब कुछ धुंधला सा दिखा; मैं मुंह से कुछ बोल भी न सका। मुझे अपने शरीर में अत्यधिक कमजोरी का अनुभव हुआ। धीरे-धीरे, लगभग पाँच मिनट में मैं स्वयं को सामान्य अनुभव करने लगा तथा उठकर खड़ा हो गया।"

"अब मार्गदर्शक ने हमें शिवलिंग दिखाया। वह शिवलिंग हाथ से बनाया हुआ नहीं था। वह एक चट्टान का भाग था जो गुफा के बीचों-बीच स्थापित था। गुफा अन्दर से इतनी विस्तृत थी कि उसमें पचास-साठ व्यक्ति बैठ सकते थे। और एक अद्‌भुत बात उसमें यह थी कि गुफा की असमतल छत से नियमित रुप से कुछ मिनट बाद पानी की बूंद ठीक शिवलिंग के ऊपर गिरती थी जिससे फर्श गीला हो गया था। जून के महीने में गुफा के अन्दर का तापमान 20°C रहा होगा।"

"गुफा के अन्दर प्रवेशद्धार के सामने एक संकरा सा रास्ता कहीं जा रहा था। हमने टार्च की सहायता से उस अन्धेरे मार्ग की टोह लेनी चाही लेकिन टार्च की रोशनी आठ-दस फुट से आगे न जा सकी। मार्गदर्शक बन्धु ने हमें बताया कि कुछ लोगों के अनुसार वह रास्ता तिब्बत तक जाता था।"

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

"उस गुफा में लगभग डेढ़ घन्टा रहने के बाद हम बाहर आ गये। बाहर आकर एक वृक्ष के नीचे हमने जलपान लिया। लगभग एक घन्टा विश्राम लेने के बाद हम उस पहाड़ी की तलहटी स्थित अपने गाँव की ओर चल पड़े। मन ही मन मैं उस गुफा में रहकर वहाँ कुछ महीने भजन-साधन में व्यतीत करने की सोच रहा था। इस सम्बन्ध में मार्गदर्शक से मैंने कुछ जानकारियां भी लीं। उन्होंने मुझे बताया कि गुफा के आस-पास पानी की कोई व्यवस्था नहीं थी। एक तिब्बती लामा भी उस गुफा में चार माह रहे थे, उन्हें भी पहाड़ी के नीचे दो किलोमीटर दूर गाँव से पानी लाना पड़ता था।"

"गाँव पहुँचने पर वहाँ से पक्की सड़क तक हम पैदल गये तथा वहाँ से बस द्वारा शाम को श्रीनगर पहुँचे।"

"उसी शाम मैंने महाराजजी को अपने सारे अनुभवों के बारे में तथा मेरी उस गुफा में रहने की इच्छा के बारे में भी बताया। लेकिन महाराजजी ने मुझे वहाँ रहने के बारे में हतोत्साहित ही किया। उन्होंने मुझे उसी गुफा के निकट उनके एक युवा कश्मीरी सेवक की जंगली रीछ के साथ मुठभेड़ की रोमांचक घटना भी सुनायी, जिसमें वह दैवयोग से जीवित बच गया था।"

साधुओं के संग अमरनाथ यात्रा

एक दिन आश्रम में देहरादून से एक पर्यटक आए। उनके साथ उनकी बहिन तथा दो बच्चे भी थे। वे धनाढ्य व्यक्ति थे तथा महाराजजी से पूर्व परिचित थे। महाराजजी ने उनका परिचय स्वामीजी से कराया। स्वल्पकाल में ही वे स्वामीजी के प्रति बड़ी आदर-भक्ति रखने लगे। जब भी वे बाहर भ्रमण के लिये जाते तो अत्यन्त आग्रहपूर्वक स्वामीजी को भी अपने साथ ले जाते। इस प्रकार आठ-दस दिन में ही स्वामीजी ने कश्मीर घाटी के सभी नैसर्गिक, सौन्दर्याच्छादित दर्शनीय स्थल देख लिये।

उन दिनों प्रतिवर्ष जुलाई से सितम्बर के मध्य में पूरे देश भर से साधु-सन्तों समेत कोई तीस हजार यात्री ऐतिहासिक एवं प्रसिद्ध अमरनाथ यात्रा के लिये श्रीनगर आते थे। श्रीचन्द्रचिनार आश्रम भी इस यात्रा में आए सैकड़ों साधुओं के ठहरने, भोजन आदि की व्यवस्था प्रतिवर्ष किया करता था। अमरनाथ श्रीनगर से एक सौ बीस किलोमीटर दूर स्थित भगवान शिव की गुफा है। यह हिन्दुओं के पवित्रतम तीर्थ

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

स्थलों में से एक है। यह वही गुफा है जहाँ स्वामी विवेकानन्दजी को भगवान शिव के दर्शन/अनुभूति हुई थी। गुफा में बर्फ का एक प्राकृतिक शिवलिंग बनता है जो क्रमशः वर्धित होता हुआ श्रावण की पूर्णिमा को अपने पूर्ण आकार को प्राप्त करता है। आश्रम में ठहरे हुए साधुओं के साथ ही हमारे प्रभु ने भी पवित्र अमरनाथ की यात्रा की थी। उन दिनों स्वामीजी लकड़ी की खूँटी वाली खड़ाऊँ ही पहनते थे तथा उन्होंने यह कठिन पहाड़ी यात्रा खड़ाऊँ पहनकर ही सम्पन्न की थी।

सितम्बर माह में भगवान श्रीचन्द्रजी के जन्मोत्सव पर समारोह में भाग लेने के बाद स्वामीजी श्रीनगर छोड़ने को उद्यत हुए क्योंकि तब तक काफी ठण्ड भी पड़ने लगी थी।

जैसा कि हम जानते हैं इन कुछ महीनों में पंडित आज़ारामजी तथा सरदार हरिसिंहजी स्वामीजी के अत्यन्त निकट आ गये थे। स्वामीजी की प्रेरणा से पंडितजी का भगवान में विश्वास पुर्नस्थापित हो गया था और एक बार फिर वे श्रद्धा सम्पन्न होकर भजन-साधन तथा नियमित रूप से त्रिकाल संध्या करने में प्रवृत्त हुए थे। पवित्र आत्मा सरदारजी की चर्चा हम ऊपर कर ही चुके हैं। उनकी पत्नी को सभी बेजी कहकर बुलाते थे। वह वृद्धा माता बड़ी धार्मिक वृत्ति की थीं। हालाँकि वे पढ़ी-लिखी नहीं थीं तो भी श्रीगुरुग्रन्थसाहब पर उनका अच्छा अधिकार था तथा वे गुरुबाणी पर बड़ा ही अच्छा प्रवचन करती थीं। अनेक लोग उनके श्रद्धालु एवं भक्त थे। लोगों का यह दृढ़ विश्वास था कि अगर बेजी उनके लिये भगवान से किसी कार्य के निमित्त प्रार्थना कर दें तो वह कार्य अवश्य सिद्ध हो जायेगा तथा उनके दुःख-दर्द दूर होकर उनका सब प्रकार से मंगल होगा। लोग उन्हें आमन्त्रित करके आदरपूर्वक अपने घर भी लिवा ले जाते थे। वे भजन बहुत करती थीं पर कंजूस थीं। इसके विपरीत उनके पति सरदार हरिसिंहजी इतना भजन नहीं करते थे, पर दानी थे। वे गुप्तरूप से अनेक गरीब विद्यार्थियों को पढ़ाते थे तथा अनेक गरीबों और विधवा महिलाओं की आर्थिक सहायता करते रहते थे। बेजी के बारे में स्वामीजी बताते हैं—"पर बेजी ने मुझे बहुत धन दिया। कहती थीं, 'जीवन में बस आपको ही दिया, पता नहीं क्यों ?' उनके मकान में एक किरायेदार रहते थे। वे गरीब थे। कभी किराया नहीं दे पाते थे तो बेजी उनसे झगड़ा करती थीं। सरदारजी, उनके पति उस किरायेदार को चुपके

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

से पैसे दे देते थे और कहते थे कि मेरी पत्नी मांगने आएगी तो दे देना पर बताना नहीं कि मैंने दिये हैं।"

"बेजी की श्रीगुरुग्रन्थसाहब में अटूट श्रद्धा तो थी ही। उन्होंने घर में श्रीगुरुग्रन्थसाहब का प्रकाश कर रखा था। अलग कमरा था। एक बार गर्मी के दिनों में वे छत पर सो रहे थे तो नीचे चोरी हो गयी। तो बेजी ने गुरुग्रन्थसाहब वाले कमरे में बैठकर बाबाजी के सामने अनशन कर दिया कि आपके होते मेरे घर में चोरी कैसे हो गयी ? चोरी के चौथे दिन ही एक अवधूत संत उनके घर आये और उन्होंने सरदारजी को बताया कि आपके घर से चोरी किया हुआ सामान चोर लोग अमुक टापू पर बांट रहे हैं। तो सरदारजी उसी समय पुलिस को लेकर वहाँ गये और चोरों को रंगे हाथों पकड़ लिया। पूरा सामान मिल गया।"

शीघ्र ही बेजी भी स्वामीजी के प्रति बहुत श्रद्धा-भक्ति रखने लगीं, बल्कि उन्हें मातृभाव से प्रेम-स्नेह करने लगीं। उन्होंने जम्मू-कश्मीर के कई परिवारों को स्वामीजी से परिचित कराया जिन्होंने उनसे सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा पायी। बेजी अक्सर अपने भक्तों से कहा करती थीं कि स्वामीजी के सत्संग के प्रभाव से ही वे एक रूढ़िवादी धार्मिक महिला से एक ऐसे उदार आध्यात्मिक व्यक्ति के रूप में परिणत हो गयी थीं जो सभी धर्मों तथा उनके संत-महात्माओं को आदर देता है।

जब पंडितजी तथा सरदारजी को पता लगा कि स्वामीजी ने कश्मीर छोड़ने का निर्णय ले लिया है तो उन्होंने उनसे जम्मू आकर वहाँ ठहरने की प्रार्थना की। उन्होंने स्वामीजी को बताया कि जम्मू को मन्दिरों की नगरी के नाम से जाना जाता है तथा वहाँ बहुत से साधनानुकूल स्थान भी हैं। सरल स्वभाव स्वामीजी ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। पंडितजी ने स्वामीजी के लिये जम्मू तक की बस टिकिट बुक कर दी। उन्होंने जम्मू के प्रतिष्ठित एवं देशविख्यात, परोपकारी पंडित प्रेमनाथजी डोगरा को भी स्वामीजी के बारे में सूचना कर दी तथा उनसे उनके साधन-भजन के लिये किसी एकान्त तथा उपयुक्त स्थान की व्यवस्था करने के लिये भी निवेदन किया। सरदारजी ने भी अपने अधीनस्थ एक रिटायर्ड कर्मचारी को स्वामीजी का समुचित स्वागत करने तथा पंडित प्रेमनाथजी डोगरा की सलाह तथा सहायता से उनके सुविधापूर्वक ठहरने आदि की व्यवस्था करने को कह दिया था।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

वेद-मन्दिर— परित्यक्त पूजागृह

विदा होने के दिन स्वामीजी ने पूज्य महाराजजी के चरण स्पर्श किये और उनकी आज्ञा से प्रस्थान किया। पंडितजी तथा सरदारजी उन्हें बस स्टैंड पर छोड़ने आये हुए थे। बस के जम्मू पहुँचने पर सरदारजी द्वारा नियुक्त व्यक्ति महाराजजी की अगवानी करने वहाँ आये हुए थे। उन्होंने स्वामीजी का बड़े प्रेम और आदर से स्वागत किया तथा रात्रि विश्राम के लिये सुप्रसिद्ध रघुनाथ मन्दिर में ले गये।

अगले दिन सुबह वे सज्जन स्वामीजी को शहर के दूर-दराज स्थान दिखाने के लिये ले गये। पंडित प्रेमनाथजी डोगरा ने इन्हें पहले ही कह रखा था कि जो भी स्थान स्वामीजी अपने निवास हेतु चुनेंगे वह उन्हें उपलब्ध करा दिया जायेगा। जम्मू के आस-पास लगभग एक दर्जन स्थान देखने के पश्चात स्वामीजी ने वेद-मन्दिर स्थान के निकट के खाली, परित्यक्त मन्दिर को चुना। वह नाम मात्र का ही मन्दिर था तथा उसमें कोई मूर्ति नहीं थी। उस मन्दिर से कुछ ही दूरी पर एक पुराना सा बड़ा हाल था जो खाली पड़ा हुआ था। इसके अतिरिक्त वेद-मन्दिर के साथ लगी कई एकड़ में फैली हुई भूमि थी जिस पर जंगल सा खड़ा था। इस भूमि के एक कोने में उस स्थान की सार-सम्भाल करने वाले एक व्यक्ति, श्रीशास्त्रीजी रहा करते थे।

पूज्य स्वामीजी के जम्मू निवासी परम भक्त श्रीमोहनलालजी गुप्ता ने यत्नपूर्वक वेद-मन्दिर का संक्षिप्त इतिहास तथा स्वामीजी के उस स्थान पर प्रवास से सम्बन्धित कुछ सूचनाएं हमें दी हैं जो हम उन्हीं के शब्दों में उद्धृत कर रहे हैं—

"कभी वेद-मन्दिर वाले स्थान पर घना जंगल हुआ करता था। इस वेद-मन्दिर में चारों वेद रखे हुए हैं। इसी स्थान पर पवित्र सहजन का एक वृक्ष हुआ करता था। किंवदन्ती के अनुसार किसी समय अपने वनवास काल में भगवान राम इस वृक्ष के नीचे बैठा करते थे। इसी वृक्ष के नीचे एक सिद्ध महात्मा स्वामी चम्पानन्दजी भी साधना किया करते थे। रियासत के महाराजा प्रतापसिंह बड़ी धार्मिक वृत्ति के थे तथा संतों-महात्माओं में अटूट श्रद्धा रखते थे। वे प्रायः इन महात्माजी के दर्शनार्थ वहाँ आते थे। एक दिन उन महात्माजी ने उस स्थान पर वेद-मन्दिर के निर्माण की अपनी इच्छा महाराजा के आगे व्यक्त की तो तुरन्त ही उन्होंने उस जंगल का चौरासी कैनाल रकबा 20-12-1916 अर्थात् 8 पौह (पूस), 1973

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

विक्रमी को विद्या के प्रचारार्थ, गौशाला और गरीबों-यतीमों के कल्याण के लिये दान में दे दिया। तब महात्मा चम्पानन्दजी ने वहाँ वेद-मन्दिर का निर्माण करवाया और उसके प्रबन्ध के लिये एक ट्रस्ट कायम कर दिया। जब स्वामीजी वहाँ गये तो पंडित प्रेमनाथजी डोगरा उस ट्रस्ट के अध्यक्ष थे तथा लाला ईश्वरदासजी मैंगी उसके सैक्रेट्री थे। अन्य ट्रस्टी पंडित आज़ारामजी, पंडित लाभूरामजी आदि थे।"

"महात्माजी के ब्रह्मलीन होने के बाद में वह मन्दिर तो रहा लेकिन वहाँ कोई गतिविधि नहीं होती थी। जब श्रीचन्द्रस्वामीजी ने यह स्थान देखा तो चारों ओर झाड़ियां ही झाड़ियां थीं। केवल प्रातःकाल मन्दिर के सामने मैदान में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की शाखा लगा करती थी। पूर्व की ओर एक छोटा सा मन्दिर वीरान पड़ा था; उसमें कोई मूर्ति भी नहीं थी। कुछ समय पहले वेद-मन्दिर का पुजारी, जिसका वेद-मन्दिर के साथ एक लम्बे समय से मुकदमा चल रहा था, उस मन्दिर को छोड़ते समय भगवान श्रीराम की मूर्ति को यह बताकर ले गया था कि मन्दिर का पुजारी बनने पर वह स्वयं उसे अपने खर्चे से वहां लाया था। ट्रस्ट की ओर से पुजारी को निकाल दिये जाने के पश्चात् मन्दिर वीरान हो गया और मूर्ति न होने से वहां उस ओर कोई भी न आता था। तब से वह मन्दिर वीरान ही था। स्वामीजी ने वहाँ रहना पसन्द किया। उनके भोजन आदि की सारी व्यवस्था पंडित प्रेमनाथजी डोगरा ने कर दी थी। एक व्यक्ति रोज सवेरे-शाम स्वामीजी के लिये दूध, भोजन आदि दे जाया करता था। श्रीचन्द्रस्वामीजी के मन्दिर में रहते ही वहां बहार आ गयी। जो लोग पुजारी के मूर्ति उखाड़कर ले जाने के कारण से दुःखी थे और उसे भला-बुरा कहते रहते थे, वे नहीं जानते थे कि यह प्रभु इच्छा से ही हो रहा है और प्रभु तो स्वयं साकार रूप से मन्दिर में विराजने के लिये आ रहे हैं।"

पंडित प्रेमनाथजी डोगरा ने उन्हें दो चटाईयां, एक बाल्टी तथा एक मग भी उपलब्ध करवा दिये थे। स्वामीजी के लिये भोजन शास्त्रीजी के घर में ही बनता था। दूध की व्यवस्था पंडित आज़ारामजी ने कर दी थी। जब सरदार हरिसिंहजी तथा उनकी पत्नी कश्मीर से जम्मू लौटे तो वे भी अक्सर स्वामीजी को बड़े प्रेम-सत्कार से अपने घर लिवाकर भोजन कराते थे। वे उनके लिये फल इत्यादि भी भेजते रहते थे।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

वेद-मन्दिर में स्वामीजी कोई तीन महीने ठहरे। शुरू-शुरू में वे दिनभर अपने कमरे के अन्दर ही रहकर साधना किया करते थे। वे केवल तभी बाहर निकलते थे जब उन्हें किसी भक्त के निमन्त्रण पर दिन के भोजन हेतु जाना होता था। उन दिनों वे मुख्यतः जाप किया करते थे। साथ ही साथ ध्यान तथा स्वाध्याय भी करते थे। इस अल्प अवधि में स्वामीजी की पावन कीर्ति शहर के भक्त समुदाय में फैल गयी। शीघ्र ही जम्मू के अनेक सम्भ्रान्त तथा सम्मान्य व्यक्ति आकृष्ट होकर स्वामीजी के निकट उपस्थित हुए। इनमें प्रमुख थे, श्री आर. डी. लाकड़ा, सरदार हरनामसिंहजी सचदेव, जम्मू-कश्मीर राज्य के मुख्य चिकित्सा अधिकारी डॉ. मेलारामजी छाबड़ा , लाला ईश्वरदासजी मैंगी, उनके सुपुत्र डॉ. ओ. पी. मैंगी, राज्य के वरिष्ठतम आई. ए. एस. अधिकारी सरदार अमरसिंहजी, ठाकुर ज़फरसिंहजी, चीफ इन्जीनियर पंडित लाभूरामजी आदि। सभी इस युवा संन्यासी को बड़ा प्रेम व आदर देते थे तथा तरह-तरह से उसकी सेवा करने की चेष्टा करते थे। इनके अतिरिक्त कुछ ज्ञानपिपासु भी श्रीशास्त्रीजी के माध्यम से स्वामीजी के पास ज्ञान-लाभ हेतु आने-जाने लगे। स्वामीजी के अनुसार उनमें से श्रीनिरंजनदासजी कमोत्रा तथा श्रीमुंशीरामजी कपड़े वाले, बड़ी ही लगन वाले थे। वे स्वामीजी के निकट बैठकर अक्सर ध्यान किया करते थे तथा स्वामीजी से मार्गदर्शन भी लेते रहते थे। लाला ईश्वरदासजी मैंगी भी बड़े कर्मयोगी तथा विद्वान थे तथा श्रीबालगंगाधर तिलक द्वारा रचित गीता-रहस्य, नित्यप्रति स्वामीजी के पास आकर लगभग आधे घन्टे तक पढ़ा करते थे।

क्या भूत-प्रेत होते हैं ?

स्वामीजी के वेद-मन्दिर में प्रवास के दौरान उनके साथ एक विचित्र घटना घटी। साधना केन्द्र आश्रम में एक बार भूत-प्रेतों के सम्बन्ध में चर्चा चल रही थी। तब किसी सेवक द्वारा स्वामीजी से इस सम्बन्ध में प्रश्न पूछे जाने पर उन्होंने उत्तर दिया, "मैंने भूत को कभी नहीं देखा, पर हाँ एक बार मुझे भौतिक शरीर विहीन प्रेतात्मा का अनुभव हुआ था।"

घटना इस प्रकार से है कि जिन दिनों हमारे गुरुदेव वेद-मन्दिर में विराज रहे थे उन्हीं दिनों निकटस्थ गाँव से एक सेवानिवृत्त सूबेदार उनके पास आने-जाने लगे। पहले-पहले तो वे स्वामीजी से केवल धर्म और आध्यात्मिकता की ही बातें करते थे

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

किन्तु वस्तुतः उनके आने का प्रयोजन केवल आध्यात्मिक ही न था। वे तथा उनका परिवार एक भयानक त्रासदी से गुजर रहे थे। एक दिन उनकी पीड़ा और दुःख शब्दों में बह निकले। गहरी वेदना तथा नम्रता भरे निम्नलिखित शब्दों में उन्होंने स्वामीजी को निवेदन किया—

"महाराजजी, मेरे घर पर भयावह विपदा आई हुई है। एक प्रेत मेरे घर प्रत्येक रात्रि को आता है तथा मुझे और मेरे परिवार को बहुत सताता है। वह प्रेत बारी-बारी से घर के सभी सदस्यों के शरीर में घुसकर उनका गला दबाता है। वे चीखना चाहते हैं पर चीख नहीं पाते। इस प्रकार वह प्रेत पूरी रात हम लोगों को यातना देता है। इस प्रेत से अपना पिंड छुड़ाने के लिये मैंने हर संभव प्रयास किया किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। मैंने कई तान्त्रिक भी बुलाये जिन्होंने कुछ तान्त्रिक क्रियाओं द्वारा उस प्रेत को दूर भगाने की कोशिश की लेकिन कुछ नहीं हुआ। तान्त्रिक कहते हैं कि वह प्रेत बड़ा शक्तिशाली है तथा वह उन्हें ही तंग करने लग गया है। इतना ही नहीं हमारे घर कोई भी बन्धु-बान्धव आये तो वह प्रेत उन्हें भी नहीं छोड़ता, उन्हें भी सताने लगता है। मेरा एक मित्र बड़ा ही योग्य डाक्टर है। वह भूत-प्रेतों में विश्वास नहीं करता था तथा इस पूरी घटना को एक पारिवारिक, मानसिक बीमारी बताकर मेरा उपहास उड़ाया करता था। एक दिन मैंने उसे अपने घर में रहने के लिये आमन्त्रित किया। उस डाक्टर मित्र के विस्मय मिश्रित भय की सीमा न रही जब उस प्रेत ने रात्रि को उसका भी वही हाल किया जो प्रतिरात्रि हम सब परिवार वालों का करता था। और अब वह डाक्टर मित्र मेरे घर की तरफ रुख भी नहीं करते। सब ओर से हारकर मैंने तो, महाराजजी, वह घर ही छोड़ दिया तथा लगभग छः महीने के लिये रहने के लिये दूसरे गाँव में चला गया। पर उस जिद्दी प्रेत ने वहाँ भी हमारा पीछा नहीं छोड़ा। वह उस गाँव में भी पहुँच गया। हम जहाँ भी जायें वह हमारा पीछा नहीं छोड़ता।"

अपनी दुःख भरी कहानी सुनाते-सुनाते सूबेदारजी की आँखों में आँसू भर आये। रुंधे हुए कंठ से उन्होंने कहना जारी रखा, "महाराजजी, मैं एक बहादुर सिपाही हूँ, किसी प्रकार इस यातना को झेलते हुए अपना बचा हुआ जीवन व्यतीत कर ही लूंगा। परन्तु मेरे बच्चों का क्या होगा ? महाराजजी, मुझे बचा लीजिये; मैं आपके पास बड़ी आस लेकर आया हूँ।"

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

सब कुछ सुनकर महाराजजी ने प्रेम भरे शब्दों में उन्हें सांत्वना दी ओर कहा, "भाई, मैं तन्त्र विद्या के बारे में कुछ नहीं जानता तथा न ही कभी किसी भूत-प्रेत से मेरा वास्ता पड़ा है। लेकिन मेरे मन में आपके तथा आपके परिवार के प्रति गहरी सहानुभूति है। मैं भगवान से प्रार्थना करूंगा कि यदि कोई भूत-प्रेत है तो आप उससे मुक्ति पा जाएं। आप एक सप्ताह बाद पुनः मेरे पास आकर मुझे अपने हाल-चाल से अवगत कराइयेगा।" आशा की सुनहरी किरण लिये, कुछ आश्वस्त होकर, सूबेदारजी अपने घर को लौट गये।

दस दिन बाद सूबेदारजी स्वामीजी के पास आये और उन्हें प्रणाम करके बड़ी राहत भरे शब्दों में बोले, "महाराजजी, मैं आपके प्रति अपनी कृतज्ञता किन शब्दों में व्यक्त करूं ! कई वर्षों बाद, जब से इस प्रेत का आतंक आरम्भ हुआ, केवल इस सप्ताह हम लोगों ने चैन की सांस ली है तथा उस प्रेत ने हमें तंग नहीं किया है। किन्तु पिछले दो दिनों से वह फिर रात को आने लगा है हालाँकि उसने हमें पहले की तरह तंग नहीं किया है। वह केवल मेरे बच्चों के शरीर में घुसा और बिना तंग किये तुरन्त ही बाहर निकल गया। अब मेरा पूर्ण विश्वास हो गया है कि आप कृपापूर्वक मेरे बच्चों की भी रक्षा करेंगे। हालाँकि मैं आपको अधिक कष्ट नहीं देना चाहता तो भी मेरा आपसे यह विनम्र एवं हार्दिक निवेदन है कि चाहे एक रात के लिये ही सही, आप मेरे घर में जरूर पधारें। यदि आप आज्ञा दें तो मैं आपको लेने के लिये एक तांगा ले आऊँगा तथा अगले ही दिन आपको वापस यहाँ पर छोड़ जाऊँगा।"

कृपासिन्धु प्रभु ने तुरन्त ही सूबेदारजी का निवेदन स्वीकार कर लिया। दो कारणों से उन्होंने ऐसा किया। प्रथम तो सूबेदारजी के परिवार का दुःख निवारण तथा दूसरा स्वयं प्रेत का अनुभव करना, चाहे इसमें कष्ट ही क्यों न उठाना पड़े।

दूसरे दिन सूबेदारजी निर्धारित समय पर तांगा ले आये और स्वामीजी को अपने घर ले गये। उनके घर आस-पड़ोस के लोग और सूबेदारजी के कुछ रिश्तेदार भी स्वामीजी के स्वागतार्थ आये हुए थे। स्वामीजी के आदेशानुसार सायंकाल के भोजन के उपरान्त बड़े कमरे में, जहाँ परिवार के सभी लोग सोया करते थे, संकीर्तन का कार्यक्रम रखा गया। लगभग साढ़े नौ बजे संकीर्तन समाप्त हुआ। तब स्वामीजी ने कहा, "इस कमरे में, जिसमें भूत आता है एवं आप सबको तंग करता है, मैं रात्रि

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

को अकेला सोऊँगा। आप सब लोग साथ वाले कमरे में सोएं तथा दोनों कमरों के बीच का दरवाजा खुला रहने दें।" आदेशानुसार सबने वैसा ही किया।

अपनी विस्मयकारी तीव्र स्मृति का परिचय देते हुए स्वामीजी ने आगे के रोमांचकारी प्रसंग का और ब्योरा इस प्रकार दिया—"साढ़े नौ बजे से साढ़े दस बजे तक मैं ध्यान में बैठा तथा उसके बाद सोने के लिये लेट गया। आधी रात के समय जब मैं पूरी तरह से सोया नहीं था, मुझे अपने कमरे में किसी अन्य की उपस्थिति का भान हुआ। मैंने टार्च जलाकर चारों ओर देखा। कुछ भी, कोई भी दिखायी नहीं दिया लेकिन कमरे में किसी दूसरे के होने का भान बना रहा। कुछ ही मिनटों के बाद मुझे ऐसा लगा जैसे कोई अदृश्य शक्ति मेरे शरीर में प्रवेश कर गयी है लेकिन तुरन्त ही शरीर से बाहर भी निकल आयी है। इसके कुछ क्षणों के भीतर ही साथ वाले कमरे से सूबेदारजी के एक बच्चे के चीखने की आवाज सुनायी दी। हम सब झटपट उठे और हमने तुरन्त लालटेन जलायी। लगभग एक मिनट के बाद ही उस बच्चे ने चीखना-चिल्लाना बन्द कर दिया। इसके बाद बाकी की रात कुछ नहीं हुआ और हम सब सुबह छः बजे तक गहरी नींद में सोये।"

"प्रातः अपने दैनिक ध्यान और जाप के बाद मैंने नाश्ता लिया। सूबेदारजी ने तांगा मंगवा दिया जिस पर बैठकर मैं वेद-मन्दिर के लिये चल पड़ा। चलते समय मैंने सूबेदारजी से कहा कि मैं आपके लिये भगवान से प्रार्थना करूंगा और आशा करता हूँ कि अब सब ठीक-ठाक हो जायेगा।"

दिन के भोजन के पहले ही स्वामीजी वेद-मन्दिर पहुँच गये। इसके बाद कई दिनों तक स्वामीजी उस प्रेतात्मा की उपस्थिति अपने शरीर में अनुभव करते रहे। लेकिन वह प्रेतात्मा स्वामीजी को तंग नहीं करती थी। लगभग बीस दिन बाद सूबेदारजी फिर स्वामीजी के पास आए, अपनी कृतज्ञता और अहोभाव के पुष्प लेकर। कहने लगे, "अब हमें बड़ी राहत है। उस प्रेत ने हमारे घर आना तथा हम लोगों को तंग करना बन्द कर दिया है। केवल पिछली रात वह आया था लेकिन उसने किसी को तंग नहीं किया।"

इसके लगभग छः महीने बाद, जब स्वामीजी वेद-मन्दिर से गुफा में आ गये थे, सूबेदारजी फिर स्वामीजी के पास आये थे और उन्हें बताया था कि हालाँकि तब

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

भी वह प्रेत कभी-कभी उनके घर आ जाता था किन्तु किसी को तंग नहीं करता था। दूसरा, धीरे-धीरे उसका आना भी कम होता जा रहा था।

इस प्रकार उन सूबेदारजी तथा उनके पूरे परिवार का उस प्रेतात्मा से छुटकारा स्वामीजी की कृपा से हुआ। घटना पर दृष्टि डालने से कुछ बातें स्पष्ट ही समझ में आती हैं। एक तो स्वामीजी की कोमल प्रकृति का परिचय। शीघ्र ही आर्त के दुःख से आर्द्र होकर दुःख निवारण में संलग्न हो गये। संत तुलसीदासजी के शब्दों में—

संत हृदय नवनीत समाना, कहा कविन पै कहा न जाना।
निज दुःख दाह द्रवइ नवनीता, पर दुःख द्रवहि संत सुपुनीता॥

दूसरा, उनकी सरलता, निश्छलता। स्पष्ट कह दिया कि मैं भूत-प्रेतों को भगाने की विद्या नहीं जानता। तीसरा, श्रीभगवान पर व प्रार्थना की शक्ति में अटूट विश्वास। बिना किसी तन्त्र-मन्त्र अथवा टोने-टोटके का सहारा लिये अखिल ब्रह्माण्ड के एकमात्र स्वामी, करुणासिन्धु, सर्वसमर्थ, परात्पर प्रभु को ही पुकारा। और पुकारा नन्हें बालक की सरलता और सहज विश्वास के साथ। प्रभु ने भी प्रतीक्षा नहीं करवायी। तुरन्त ही अभीष्ट फल दिया। चौथा, रहस्यवादिता के आवरण को चीरकर सत्य को प्रत्यक्ष करने की लगन तथा स्वयं के अमंगल तथा हानि आदि के प्रति निर्भयता का भाव। इन देव-दुर्लभ गुणों के कारण ही तो वे इस कठिन पथ के पथिक बन पाये एवं उसे सफलतापूर्वक पार भी किया।

भिक्षा का अनुभव

एक अन्य अवसर पर बातों ही बातों में, भिक्षावृत्ति के बारे में किसी सेवक द्वारा पूछे जाने पर, पूर्वप्रसंग को स्मरण करके हँसते हुए उन्होंने विस्तार से स्वयं द्वारा एक बार मधुकरी की घटना अपने कर कमलों से निम्न शब्दों में लिख दी—

"वेद-मन्दिर प्रवास के दौरान एक दिन मेरे मन में भिक्षा करने की स्फुरणा हुई। अतः मैंने शास्त्रीजी को उस दिन मेरे लिये दिन का भोजन न लाने को कह दिया। ध्यान-जाप के अपने नित्यकर्म से निवृत्त होकर अपनी चिप्पी लेकर मैं पास के एक गाँव में भिक्षा के लिये चला गया। मैंने एक अधखुले दरवाजे वाले मकान के सामने खड़े होकर पुकारा, 'हरि ओम् ! भिक्षा दे दो'—वैसे ही जैसे भारत में भ्रमणकारी साधु परम्परागत ढंग से भिक्षा याचना करते हैं। लेकिन मकान से कोई

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

बाहर नहीं निकला, न ही कोई प्रतिक्रिया हुई। मैंने एक बार फिर आवाज लगाई। लेकिन कुछ न हुआ। पाँच मिनट दरवाजे के सामने प्रतीक्षा करने के बाद मैं चलकर अगले घर के सामने आ खड़ा हुआ। इस घर का दरवाजा बंद था। मैंने पुनः आवाज लगायी, लेकिन इस बार जरा जोर से, 'हरि ओम् ! भिक्षा दे दो।' शीघ्र ही एक वृद्ध महिला मुट्ठी भर आटा लिये बाहर निकली तथा मुझे देने के लिये हाथ बढ़ाया। मैंने नम्रता से इन्कार करते हुए कहा, 'माताजी, मुझे पका हुआ भोजन चाहिये।' वृद्धा ने कहा, 'पका हुआ भोजन तो घर में नहीं है' तथा वापिस घर में चली गयी। मैं अब भिक्षा के लिये तीसरे घर के द्वार के बाहर जा खड़ा हुआ। 'हरि ओम् ! द्वार पर साधु आया है, भिक्षा दे दो'— कहकर मैंने एक बार फिर पुकार लगायी। एक कसरती तथा मजबूत शरीर वाला नवयुवक बाहर निकला। उसने मेरे चेहरे की ओर देखा, फिर झुककर मुझे प्रणाम किया तथा मुझसे घर में अन्दर आने की प्रार्थना की। उस नवयुवक के पीछे-पीछे मैं उसके साधारण से ग्रामीण मकान के अन्दर चला गया। उसने मुझे बड़े आदरपूर्वक एक खाट पर बिठाया तथा स्वयं नीचे भूमि पर चटाई बिछाकर बैठ गया। उस नवयुवक की भगवान तथा साधु-संतों में बड़ी श्रद्धा थी। उसने पहले मुझे पीने के लिये जल दिया और कहा, 'खिचड़ी चूल्हे पर चढ़ी हुई है। अभी पन्द्रह मिनट में तैयार हो जाती है, तब आप भोग लगाइयेगा।' फिर उसने नम्रतापूर्वक अपना परिचय देते हुए बताया कि वह सेना में जवान था तथा छुट्टियों में गाँव अपने माँ-बाप को मिलने आया हुआ था। उस नवयुवक को भगवद्दर्शन की गहरी चाह थी तथा उसने कई ग्रन्थों का अध्ययन भी किया प्रतीत होता था। उसने परमात्मा तथा साधना के बारे में मुझसे कुछ गूढ़ प्रश्न किये। मैं उसकी सत्यनिष्ठा व लगन देखकर बहुत प्रभावित हुआ तथा अपनी समझ और ज्ञान के अनुसार मैंने उसके प्रश्नों के उत्तर देने का प्रयास किया। मैंने उसे अध्यात्म के शिखर पर पहुँचे हुए एक साधु के बारे में बताया जो पहले सेना में जवान थे। यह सुनकर वह बड़ा प्रसन्न हुआ तथा मुस्कुराकर बोला, 'महाराजजी मेरा जीवन भी आत्मसंयम तथा त्याग को अपनाकर एक संत का सा जीवन है। सीमा पर, जहाँ दोनों देशों की सेनाओं के बीच गोलाबारी होती ही रहती है, किसी भी क्षण जीवन मृत्यु की गोद में सरक सकता है, मैं प्रतिक्षण परमात्मा का स्मरण करता रहता हूँ।' "

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

"तब तक खिचड़ी भी तैयार हो गयी थी। पहले उसने मेरे हाथ धुलवाये फिर काफी मात्रा में ताजे मक्खन के साथ खूब सारी खिचड़ी परोसी। उसकी श्रद्धा तथा भाव देखते ही बनता था। उसके प्रेम से भोजन और भी प्रीतिकर हो गया था। खाते-खाते मैं मन ही मन आश्चर्य मान रहा था कि मैं भिक्षा पा रहा हूँ या भोज!"

तवी नदी के तट पर गुफावास

वेद-मन्दिर में लगभग तीन महीने निवास करने के उपरान्त हमारे महाराजजी को किसी और अधिक निर्जन तथा एकान्त स्थान में वास करने की इच्छा हुई ताकि अपने अन्यतम ध्येय, सत्य के साक्षात्कार के निमित्त स्वयं को पूर्णरूप से समर्पित कर सकें। स्वामी रामतीर्थ तथा परमहंस श्रीरामकृष्णदेव के ज्वलंत उदाहरणों ने उनके भीतर एक आग सी लगा दी थी। भगवद्दर्शन हेतु उनकी आत्मा छटपटा रही थी; भगवद् चेतना की अतल गहराइयों की थाह लेने हेतु उनके प्राण व्याकुल थे। बाबा भूमनशाहजी की अहेतुकी कृपा ने अपने आध्यात्मिक पुत्र के मन-प्राणों में दुर्लभतम् विरह का भाव भर दिया था। उनमें 'करो या मरो' वाली स्थिति का उदय हो गया था। अपरोक्ष भगवदानुभूति के बिना उन्हें जीवन निस्सार एवं निष्प्रयोजन लगने लगा था।

एक दिन उन्होंने वेद-मन्दिर छोड़कर किसी अन्य शान्त एवं एकान्त स्थान में जाकर साधना करने की तीव्र इच्छा अपने एक भक्त ठाकुर जफरसिंह के सामने व्यक्त की। तब ठाकुरजी ने तवी नदी के तट पर स्थित एक छोटी सी गुफा के बारे में स्वामीजी को बतलाया जो पुंछ प्रान्त की महारानी के गुरु स्वामी शान्तानन्दजी के रहने के उद्देश्य से उन्हीं के द्वारा आवास योग्य ठीक-ठाक की गयी थी। ठाकुरजी ने अपनी राय व्यक्त करते हुए कहा, "वह स्थान भजन-साधन के लिये बहुत उपयुक्त है। हालाँकि पिछले दस वर्षों से गुफा वीरान पड़ी है किन्तु यदि आपकी वहाँ रहने की इच्छा हो तो मैं गुफा के मुँह पर एक दरवाजा लगवा दूँगा तथा उसे रहने योग्य बनवा दूँगा।"

दूसरे दिन प्रातःकाल ठाकुरजी स्वामीजी को वह स्थान दिखलाने ले गये। गुफा तक पहुँचने का कोई पथ अथवा पगडण्डी नहीं थी अतः तवी नदी के तट के किनारे-किनारे, बड़े-बड़े शिलाखण्डों को पार करते हुए, लगभग चालीस मिनट में

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

वे दोनों कोई एक किलोमीटर की दूरी तय करके गुफा तक पहुँचे। आगे स्वयं स्वामीजी की लेखनी से —

"मैंने उस गुफा को देखा। उसके सामने एक कमरा तथा एक रसोई थी। गुफा तथा कमरे के लकड़ी के दरवाज़े चोरों ने उखाड़ लिये थे। वहाँ केवल सीमेन्ट और ईंटों का बुरी तरह टूटा हुआ ढाँचा ही खड़ा था। कमरे के आगे बना हुआ चबूतरा आधा टूट चुका था तथा टूटे हुए भाग को तवी नदी बहाकर ले गयी थी। अभी भी उस टूटे हुए चबूतरे को स्पर्श करती हुई वहाँ से आठ फुट नीचे नदी की धारा बह रही थी। नदी के उस पार दूर तक सूखे पत्थरों तथा रेत की विशाल चादर थी। उसके पार वहाँ से लगाकर सामने की पहाड़ी तक लगभग एक किलोमीटर तक फैला हुआ सघन वन था। नदी के बहाव की दिशा में कोई आधा किलोमीटर की दूरी पर कुछ लोग उसमें स्नान करते दिखायी दे रहे थे। उस स्थान पर पूर्ण नीरवता छायी हुई थी। उस स्थान के स्पंदनों के अनुभव करने के लिये मैं उस टूटे चबूतरे पर पन्द्रह मिनट चुपचाप बैठा रहा। मुझे वहाँ के स्पंदन साधनानुकूल प्रतीत हुए। मैंने ठाकुरजी को बताया कि मुझे यह स्थान पसन्द आ गया है और मैं शीघ्र ही यहाँ रहने के लिये आ जाऊँगा।"

उस मनोरम स्थान का वर्णन स्वामीजी के भक्त श्रीमोहनलालजी गुप्ता ने निम्न शब्दों में किया है—

"गुफा के समीप बहती सूरजपुत्री तवी नदी—जिसके दोनों किनारों के साथ-साथ चाँदी के समान चमकती रेत की दूर तक बिछाई गयी सफेद चादर और उसके आगे छोटी-छोटी पहाड़ियों पर दूर तक फैली हरियाली ही हरियाली ! गुफा के आस-पास घना जंगल था। उस एकान्त, प्राकृतिक उद्यान में बहती सूरजपुत्री तवी की शोभा देखते ही बनती थी। चिड़ियाँ यहाँ पर सुबह और शाम अपनी-अपनी बोली में चहचहा कर हरि नाम के मीठे-मीठे गीत सुना रही होतीं। वायु के मीठे-मीठे झोंके एक अद्‌भुत सी लोरी गा रहे होते; नदी की लहरों से निकलने वाले संगीत के सुरीले सुर तथा पक्षियों की चहचाहट, दोनों मिलकर ऐसा संगीत पैदा करते मानो अपनी बोली में सर्वशक्तिमान प्रभु की वन्दना गा रहे हों। उस पार छोटी-छोटी पहाड़ियों का कभी न समाप्त होने वाला सिलसिला था। जितनी दूरी तक दृष्टि जाये पहाड़ियां ही पहाड़ियां और उन पर फैली हरियाली और दूर सामने त्रिकुटा की वे

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पहाड़ियाँ जिनमें माँ भगवती वैष्णोदुर्गा विराजमान होकर युगों-युगों से हर किसी पर अपना वरद्हस्त रखे हुए सब के मन को शान्ति प्रदान कर रही थी।"

अगले दिन ही प्रातः नौ बजे स्वामीजी वेद-मन्दिर से विदा होकर उस गुफा की ओर चल दिये। आगे का वृतान्त स्वयं गुरुदेव के शब्दों में पढ़ें —

"तवी नदी के तट पर बहुत ठण्ड हुआ करती थी। शाम होते-होते मैं इसे बहुत अनुभव करने लगा। सूर्य दिन में तीन बजे ही पहाड़ियों के पीछे छिप जाता था। मेरे पास गर्म कपड़े अथवा बिस्तर आदि कुछ नहीं था।"

"सायं साढ़े सात बजे तक काफी अंधेरा हो गया था। मैं गुफा के अन्दर चला गया। उन दिनों मैं शरीर पर केवल एक धोती पहनता था जैसे आप फोटो में स्वामी रामतीर्थ को पहने देखते हैं। मैंने उस धोती के दो टुकड़े कर लिये। एक टुकड़ा मैंने कमर पर बाँध लिया तथा दूसरे को गुफा के दरवाजे वाले स्थान पर परदे के रूप में टाँग दिया।"

"रात को लगभग आठ बजे एक भक्त मुंशीरामजी बिस्तर उठाये हुए एक मजदूर के साथ गुफा में आ पहुँचे। उन्हें उस समय वहाँ देखकर मेरे विस्मय की सीमा न रही। मैंने उनसे उनके वहाँ आने का प्रयोजन पूछा तो मुंशीरामजी ने मुझे बताया कि वे कई दिन से मेरे लिये बिस्तर लाने की सोच रहे थे। लेकिन उस दिन दोपहर एक-दो बजे उनके मन में मुझे बिस्तर देकर आने की प्रबल भावना हुई।"

"उनकी कपड़े की दुकान थी। उन्होंने अपनी दुकान से कपड़ा लेकर एक गद्दा, एक रजाई तथा एक तकिया बनाने के लिये दर्जी को दिया। दर्जी ने सब कुछ दो-तीन घन्टे में तैयार कर दिया। उन्होंने स्वयं सब खोलों में रुई भरकर साढ़े छः बजे तक सब तैयार कर लिया। बिस्तर लेकर वे तुरन्त वेद-मन्दिर की ओर चल पड़े। वेद-मन्दिर पहुँचकर उन्हें विदित हुआ कि मैं तवी नदी के तट पर, वाटर वर्क्स के समीप किसी गुफा में चला आया हूँ। बड़ी हिम्मत से उन्होंने अंधेरे में गुफा ढूंढ निकाली और अपने साथ लायी हुई सभी वस्तुएं मुझे दे दीं। मैंने गद्दा व चद्दर गुफा में नीचे बिछा दी। तकिया व रजाई लपेटकर उन्हें वापिस करनी चाही पर उन्होंने वापिस लेने से इन्कार कर दिया। और वे वापिस चले गये यह कहकर कि पहले ही बहुत अंधेरा हो गया है और मार्ग भी सरल नहीं है।"

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

"इसके अतिरिक्त पहले ही दिन, पंडित आज्ञारामजी ने शास्त्रीजी के हाथों मुझे एक चटाई, एक बाल्टी, एक मग तथा देसी घी से बनी पंजीरी का एक डिब्बा भिजवा दिया था।"

"दूसरे दिन प्रातः छः बजे तक शौच आदि से निवृत्त होकर मैं गुफा के अन्दर भजन में बैठ गया। जब नौ बजे बाहर निकला तो मैंने देखा कि कमरे में आटा, दाल, चावल, अंगीठी, कोयलों की एक बोरी, आलू और आग सुलगाने के लिये माचिस तथा रसोई बनाने के कुछ बर्तन व सामान रखे हैं। मैं चकित था कि बर्तन कौन रख गया। साढ़े ग्यारह बजे मैंने अंगीठी जलाई और अपने हाथों से खिचड़ी बनाकर खाई। स्वयं हाथ से अपना भोजन बनाकर खाने का यह मेरा पहला दिन और अनुभव था।"

"शाम के पाँच-छः बजे मुंशीरामजी गुफा में आये और उन्होंने बताया कि सवेरे वे ही रसोई का सामान दो मजदूरों से उठवाकर लाये थे और बाहर कमरे में रख गये थे। वे कहने लगे, 'आपने कल रात को बताया था कि आप सवेरे से मौन हो जायेंगे। यहाँ इतनी दूर रोज कौन आपको भोजन पहुँचाता ? मैं गुफा का मार्ग तो देख ही गया था। प्रभु-प्रेरणा से मैं ही सवेरे यह सब सामान ले आया था। आप गुफा में भजन में थे। आपको बुलाना ठीक नहीं समझा; अतः चुपचाप बाहर के कमरे में सब सामान रखकर हम चले गये थे।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि भक्तवत्सल भगवान/बाबाजी ने एक दिन के लिये भी अपने प्रिय भक्त को किसी प्रकार का कष्ट नहीं होने दिया। प्रिय पाठकों केवल चन्द्रस्वामीजी ही भगवान के पीछे पड़े थे, ऐसा नहीं; भगवान स्वयं भी चन्द्रस्वामीजी के पीछे पड़े हुए थे। जिस प्रकार माँ अपने बालक के पीछे-पीछे भोजन-मिष्ठानादि हाथ में लिये दौड़ती फिरती है उसी प्रकार प्रभु भी पल-पल अपने भक्त के कल्याण के निमित्त संलग्न थे।

भगवान पर गुरुदेव के सरल विश्वास और भोले भाव तथा भगवान का अपने अनन्य भक्त के प्रति अप्रतिम मातृभाव, वात्सल्य भाव का स्मरण करके भला किसका हृदय न भर आयेगा ! जिन प्रभु ने प्राणियों के पालन-पोषण हेतु जगत् में माता का, मातृभाव का, वात्सल्यभाव का सृजन किया, उन अहेतुक करुणासिन्धु प्रभु की कृपा-ममता-वात्सल्य की थाह भला कौन ले सकता है ! ऐसे करुणासिन्धु श्रीभगवान के

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



भगवान आपको कब मिलेंगे ?— जब उनका वियोग आपसे एक क्षण के लिये भी सहन नहीं होगा। जब तक आप भगवान की प्राप्ति के बिना जी सकते हैं, तब तक भगवद्प्राप्ति नहीं होगी।

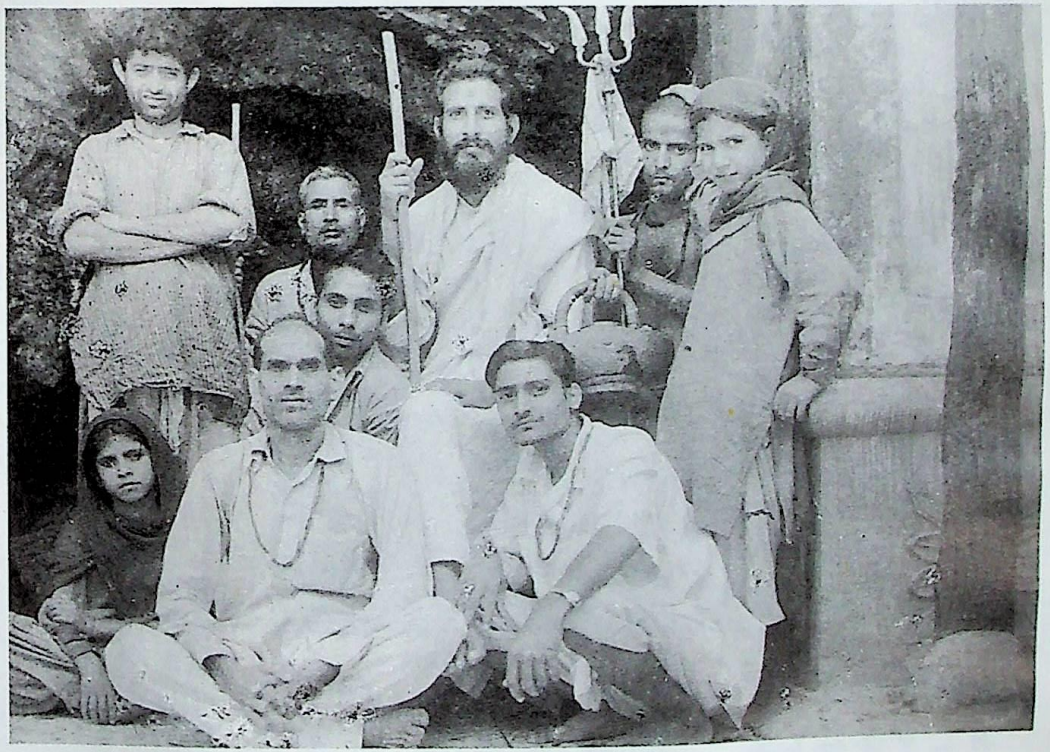
जम्मू में दिवंगत श्री आर. डी. लाकड़ाजी के घर सन् 1954 में।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

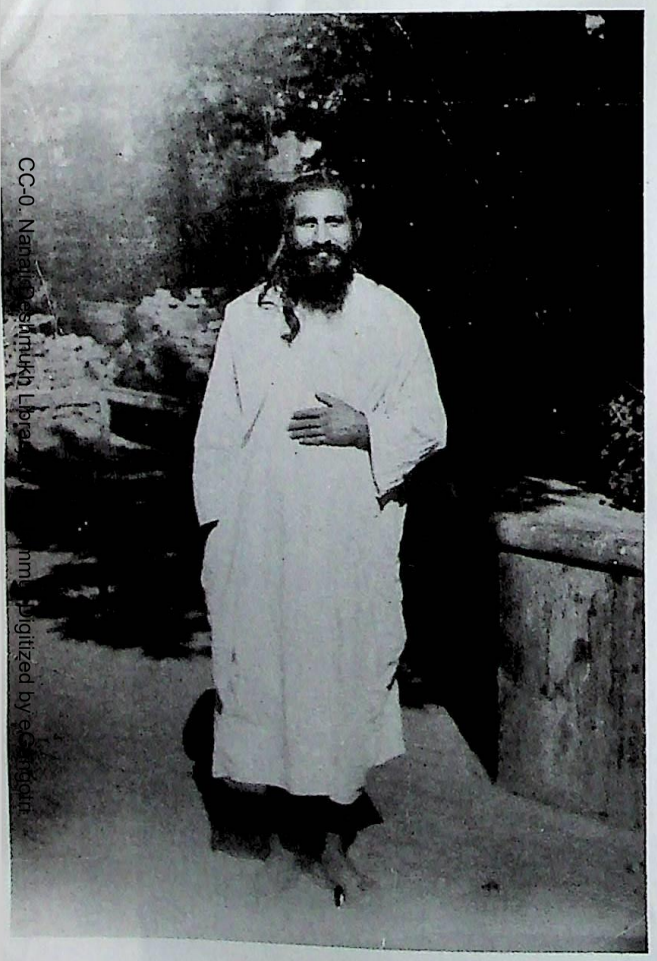


जिहि बिखिया सगली तजी लीओ भेख बैराग।
कहु नानक सुनु रे मना तिह नर माथै भाग॥
सन् 1955 में जम्मू में तवी नदी के तट के निकट गुफा में।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



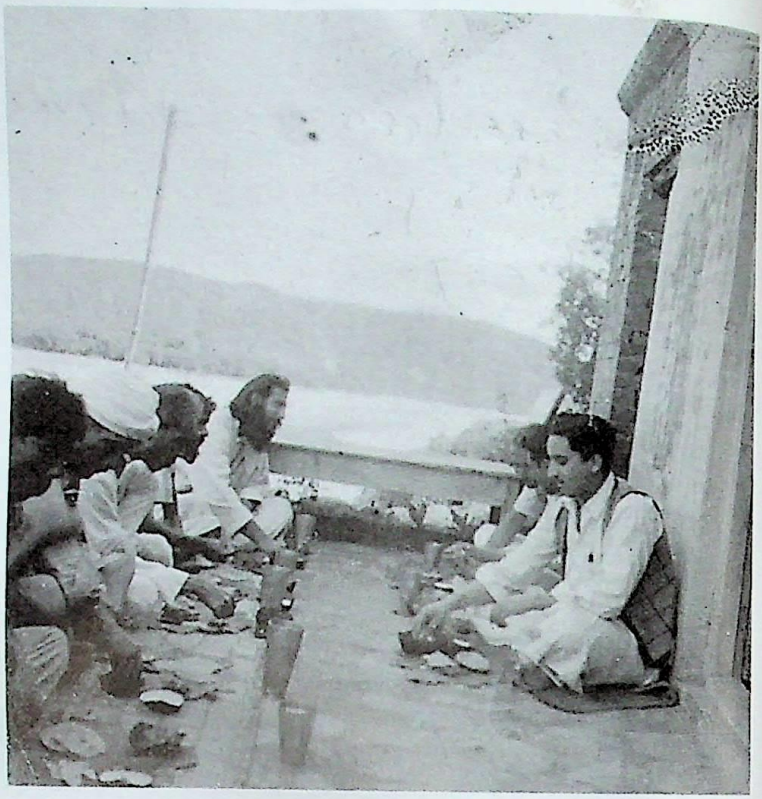
↑ जुलाई, 1957 में भक्तों के साथ माता वैष्णों देवी की यात्रा पर जाते हुए।



←
जम्मूवास के आरम्भिक दिनों में किसी भक्त के घर में।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, Chitrakoot. Digitized by eGangotri

तवी के तट पर स्थित गुफा के आगे एक टूटा-फूटा कमरा था। कमरे के आगे नदी से लगता हुआ चबूतरा था। उस पर प्रायः भक्त एकत्रित होकर भण्डारा किया करते थे। अप्रैल, 1956 के इस चित्र में स्वामीजी भक्तों के साथ भोजन कर रहे हैं। →





गुफा के ठीक सामने तवी नदी, जंगल तथा उस पार पर्वत श्रृंखला का एक दृश्य। सन् 1999 में लिया गया चित्र।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

प्रति कोटि-कोटि प्रणाम् और भगवद्कृपाश्रित ऐसे अनन्य भक्तों के प्रति भी कोटि-कोटि प्रणाम् ! देखें, पवित्र गुरुबानी सद्गुरु द्वारा अपने सेवक पर वरद्हस्त और उसके योग-क्षेम के बारे में कैसा मधुर और सांत्वना भरा मीठा गीत गा रही है !

गुर का बचन बसै जी नाले !
जल नहीं डूबे तस्कर नहीं लेवे, पाहे ना सके जाले। गुर का .....
सिमरो सिमर, सिमर सुख पावो, साँस साँस सम्भाले,
लोक परलोक संग सहायी, जत तत मोहे रखवाले, गुर का .....
अंगले को टिक, निर्धन को धन, मात दूध जैसे बाले।
सागर में बोहिथ पायो हर नानक, करी किरपा किरपाले। गुर का

अस्तु। गुफा में आने के एक महीना तक तो स्वामीजी स्वयं भोजन बनाते रहे। उसके बाद रोज श्री आर. डी. लाकड़ाजी के घर से भोजन व दूध आने लग गया।

गुफा में हनुमानजी का प्रसंग

एक बात हमने महाराजजी से स्वयं सुनी है कि उस गुफा में हनुमानजी की छाया अप्रत्यक्ष रूप में रहा करती थी। जैसा की सब जानते ही हैं कि हनुमानजी एक अत्यन्त शक्तिशाली तथा परम सात्विक देवता हैं। अतः साधारण व्यक्ति के लिये उनके तेज तथा उपस्थिति को अनुभव करना सम्भव न था। आरम्भ में तो महाराजजी भी उनकी उपस्थिति से कुछ भयभीत से हुए। किन्तु शीघ्र ही वह भय जाता रहा। चूँकि वे अत्यन्त निर्भीक, पवित्र हृदय तथा उच्च कोटि के साधक थे, अतः कई वर्षों तक गुफा में वास करने पर भी उनका कुछ अमंगल नहीं हुआ। बल्कि हमारा तो विश्वास है कि प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से उन्हें हनुमानजी से सहायता ही मिली थी। नीचे उस गुफा में हनुमानजी की उपस्थिति के सम्बन्ध में एक घटना दी जा रही है जो स्वामीजी ने स्वयं ही किसी सेवक को एक बार लिख कर बताई थी—

"जब लाकड़ाजी जम्मू से बाहर जाते थे तो मेरे लिये बाजार से दूध लगा जाते थे। एक रिटायर्ड वृद्ध व्यक्ति तवी नदी पर रोज स्नान करने आते थे तो साथ ही दूध भी ले आते थे। मैं गुफा के अन्दर भजन में बैठा होता था और बाहर के कमरे के दरवाजे को अन्दर से बंद नहीं करता था। वे धीरे से बाहर के कमरे में दूध रखकर

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

चले जाते थे। एक दिन पता नहीं उनके मन में क्या आया कि उन्होंने दूध रखकर गुफा के आगे जो परदा लगा था उसे हटाकर अंदर देखना चाहा कि मैं क्या कर रहा हूँ, तो उन्हें (उनके कहे अनुसार) सामने हनुमानजी दिखे जो गदा लेकर आक्रामक मुद्रा में खड़े थे। वे डर गये। मुझे तो इस बात का पता भी नहीं चला। वे घर गये तो उन्हें जाते ही बुखार हो गया और कुछ दिमाग पर भी असर पड़ा। रात भर वे बिजली जलाकर कमरे में ही चलते रहे और दो दिन तक उन्होंने किसी से कुछ बात भी नहीं की। दूध भी लाना बंद कर दिया। चौथे दिन उनकी पत्नी और लड़का उन्हें मेरे पास लाये। वे बड़े कमजोर हो गये थे। चलना भी कठिन था। उन्हें पकड़-पकड़कर लाये और मेरे पाँव पकड़कर कहने लगे कि इन्हें क्षमा कर दें। रोने लगे। मैं मौन में था। मेरे संकेत द्वारा पूछने पर उन्होंने मुझे पूरी बात बताई। वे इतवार को आये थे। मैंने लिखकर कहा कोई बात नहीं। ये ठीक हो जायेंगे। परसों मंगलवार को हनुमानजी के मंदिर में जाकर नैवेद्य चढ़ाना और उनसे क्षमा माँगना। हर मंगलवार को ऐसा करना जब तक ये पूरी तरह ठीक न हो जाएं। उनके अन्दर कभी-कभी हनुमानजी के क्रोध का आवेश भी आता था। उस समय वे सब घर वालों को गालियाँ भी देते थे। वैसे उनका स्वभाव बड़ा शान्त था। मंदिर में जाने से वे धीरे-धीरे ठीक होने लगे। कमजोरी भी दूर हो गयी। दूध भी फिर लाने लगे। पर छः महीने के अन्दर ही उनका शरीर छूट गया।"

घटना सुनकर उस सेवक ने गुरुदेव से निम्नलिखित प्रश्न किया—

प्रश्न : महाराजजी, ऐसा क्यों हुआ। हनुमानजी तो पवित्रता, सेवा और भक्ति के देवता हैं ?

स्वामीजी : अनेक घटनायें ऐसी होती हैं जिनका कोई तर्कसंगत उत्तर नहीं मिलता। वे तर्क के विरोध में नहीं होती पर तर्क से प्रमाणित (testify) भी नहीं होती। मुझे इन बातों का ज्ञान नहीं है। मुझे तो पंडित नित्यानन्दजी (कश्मीर के प्रसिद्ध तान्त्रिक) ने बताया था कि किसी ने उस गुफा में हनुमानजी को वश में करने का अनुष्ठान किया था जो गलत हो गया था। इसलिए हनुमानजी की छाया उस गुफा में रुष्ट रूप में थी।

"जब शुरु में मैं गुफा में जाकर रहने लगा था तो मेरे अन्दर भी हनुमानजी आने लगे थे। हर दस-पन्द्रह दिन के अन्दर शरीर में प्रवेश किया करते थे। पूरे शरीर

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

में कम्पन होने लगता था। पहले दो-तीन बार तो थोड़ा भय सा लगा। पर मुझे पता नहीं था कि वे हनुमानजी थे। रात को आते। मेरा मौन था। दिन को मैं सोचता क्या है, क्यों होता है। तीन-चार बार ऐसा लगा। जब वे शरीर में आते थे तो मेरी भावना होती थी कि तुरन्त बाहर चले जायें। मैं जाप भी करता पर वे तीस-चालीस मिनट रहकर ही जाते। बाद में मैंने सोचा कि कोई भी आता है तो क्या, मुझे कोई कष्ट या हानि तो होती नहीं। मुझे डरना क्यों चाहिये। तो धीरे-धीरे उनके आने का अन्तर (gap) बढ़ता गया। फिर कभी छः महीने में एक बार आते। फिर धीरे-धीरे उन्होंने मेरे अन्दर प्रवेश करना बन्द कर दिया। इसके तीन-चार वर्ष बाद उस वृद्ध व्यक्ति के साथ वह घटना हुई।" एक और घटना से भी यही सिद्ध होता है कि वहाँ हनुमानजी की छाया थी। स्वामीजी ने स्वयं ही बताया था—

"जब 1957 में, मैं उस गुफा को छोड़कर हरिद्वार में झाड़ी में रहने आया तो पीछे एक ब्रह्मचारी को छोड़ आया था। गुफा में सब सामान था। ब्रह्मचारी गढ़वाली लड़का था। उससे मेरा विशेष परिचय नहीं था। मैंने उससे कहा, 'मैं हरिद्वार रहने जा रहा हूँ। शायद मैं झाड़ी में रहूँ। आपको सूचना दूँगा। आपकी मरज़ी हो तो मेरे पास आ जाना। यहाँ दिल लग जाये तो यहीं रहना।' उसे पहले की बात का पता नहीं था। हरिद्वार आकर मैंने सप्तसरोवर झाड़ी में झोंपड़ी बना ली। तब मैंने उसे पत्र लिखा कि यहाँ आना चाहो तो आ जाओ। वहाँ रहना चाहो तो वहाँ रहो। वह मेरे पास झाड़ी में आ गया। दो महीने उस कुटिया में रहा। उसने मुझे आकर सुनाया कि वह नित्य शाम को हनुमान चालीसा का पाठ किया करता था। पहले दिन ही उसने गुफा में जोत जलाई और हनुमान चालीसा का पाठ करने लगा तो उसे लगा की पूरा कमरा और गुफा हिल रही है। उसने सोचा शायद भूकम्प आ गया है। वह भागकर बाहर निकल आया। बाहर आया तो कोई भूकम्प नहीं था। अंदर जाये तो वैसे ही गुफा व कमरा हिले। बाहर आये तो ठीक। उसे बड़ा डर लगा। वह रात भर बाहर ही बैठा रहा। फिर जब भी वह हनुमान चालीसा का पाठ करने लगे तो वैसा ही हो। तो उसने पाठ करना बंद कर दिया।" इस वृतान्त को सुन रहे सेवक ने महाराजजी से इस बारे में पुनः प्रश्न पूछा—

प्रश्न : आप इस घटना की व्याख्या कैसे करेंगे ?

स्वामीजी : मुझे इन बातों का पता नहीं। एक शब्द सर्वज्ञ है, एक सर्वविद्।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

ये दोनों शब्द उपनिषद में आते हैं। सर्वज्ञ तो केवल ईश्वर होता है। ज्ञानी तो केवल सर्वविद् होता है जो 'सार तत्त्व' को जानता है। साधक तो परमात्मा का साक्षात्कार करना चाहता है न कि जगत् की घटनाओं के रहस्यों को जानना चाहता है।

उपर्युक्त घटनाक्रम की पर्यालोचना करने पर स्पष्ट संकेत मिलता है कि उस गुफा में रुष्ट रूप में हनुमानजी की छाया का वास था परन्तु अत्यन्त पवित्र तथा अध्यात्म की अत्युच्च अवस्था में स्थित स्वामीजी को उनसे कुछ भी हानि/अमंगल न होकर सहायता ही मिली।

कठिन साधना

गुफा में आगमन के बाद स्वामीजी की कठिन, नियमित और व्यवस्थित साधना का श्रीगणेश हुआ। युवा संन्यासी अपने गन्तव्य की खोज में अपने अस्तित्व की गहराइयों में पूरे उतर गये। तब उनकी साधना के प्रमुख अंग थे—ध्यान, जाप, प्राणायाम (श्वास-प्रश्वास क्रियाएं), साक्षी भाव अभ्यास तथा सर्वोपरि, श्रीभगवान के प्रति अनन्य शरणागति भाव। किन्तु इन सब साधनों की पृष्ठभूमि में तो थी प्रभुमिलन की उत्कट और प्रगाढ़ प्यास। अक्सर दिन-रात वे भगवान की याद में रोते रहते; बिस्तर पर पड़े-पड़े तकिया आँसुओं से गीला हो जाता। उन दिनों भगवद्दर्शन की व्याकुलता ही उनका बिछोना था; हर पल प्रियतम की प्रतीक्षा उनका आवास था। अंजलि भर-भरकर आंसुओं से वे अपनी प्यास बुझाते और सतत विरह वेदना का भाव-भोजन पाते। उन्हीं दिनों वे प्रतिदिन सायं अकेले ही तवी नदी के तट पर हाथ में खड़ताल लेकर महामंत्र—

हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

का संकीर्तन भी किया करते थे। महाराजजी ने हमें बताया, "मेरी भगवान बालकृष्ण तथा देवी (शक्ति)— इन दोनों में ही गहरी श्रद्धा थी। अतः मेरे लिये तत्वतः ये दोनों एक ही थे—शक्ति तथा शक्तिमान। मेरी साधना भक्ति प्रधान रही। हालाँकि मुझे उपनिषदोक्त वेदान्त के अद्वैत मत में पूरी श्रद्धा थी पर मैं अद्वैत मत में श्रद्धा के कारण कभी दिग्भ्रमित नहीं हुआ तथा उससे मेरी भक्ति भावना पर कभी कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा। जब मैं भक्ति के ग्रन्थ पढ़ता था तो रोने लगता था।" इसी

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

संदर्भ में किसी सेवक के यह कहने पर कि भक्ति मार्ग में तो द्वैत भाव होता है, आपने लिख दिया, "साधना की सभी पद्धतियां परोक्ष अथवा अपरोक्ष रूप से द्वैत मूलक होती हैं। अर्थात्, साधना काल में तो द्वैत भाव रहता ही है लेकिन अन्तिम उपलब्धि अद्वैत वस्तु की होती है।" वस्तुतः आज भी हम स्वामीजी के पावन चरित्र में भक्ति और ज्ञान का अनूठा सामन्जस्य देखते हैं।

आइये, देखें कि साधना के आरम्भिक दिनों में महाराजजी की साधना सम्बन्धी दिनचर्या क्या रहती थी। भाग्य से हमें महाराजजी की लगभग पैंतीस वर्ष पुरानी एक हस्तलिखित डायरी मिल गयी। उसी डायरी में से हमें निम्नलिखित यह कार्यक्रम मिला—

दैनिक कार्यक्रम

• प्रातः उठना	2 बजे मध्यरात्रि
• प्रार्थना	2 से 3 बजे मध्यरात्रि
• प्राणायाम	3 से 4 बजे प्रातः
• ध्यान	4 से 5 बजे प्रातः
• शौचादि	5 से 6 बजे प्रातः
• जाप	6 से 7 बजे प्रातः
• अल्पाहार तथा स्थान की सफाई, तथा वस्तुओं को व्यवस्थित करना।	7 से 8 बजे प्रातः
• स्वाध्याय	8 से 9 बजे प्रातः
• योगासन, व्यायाम तथा स्नान	9 से 10.30 बजे प्रातः
• नित्यकर्म (पूजा), पवित्र ग्रन्थों से श्लोकों को उच्चारित करना तथा सभी की मंगलकामना हेतु प्रार्थना	10.30 से 11.30 बजे प्रातः
• प्राणायाम तथा ध्यान	11.30 से 1 बजे मध्याह्न

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

• भोजन तथा विश्राम	1 से 4 बजे अपराह्न
• आगंतुकों से मिलना अथवा स्वाध्याय	4 से 5.30 बजे अपराह्न
• अल्पाहार	5.30 से 6.30 बजे संध्या
• योगासन	6.30 से 7.30 बजे संध्या
• प्राणायाम	7.30 से 8.30 बजे रात्रि
• ध्यान, जाप तथा प्रार्थना	8.30 से 10 बजे रात्रि
• शयन	10 बजे रात्रि
• कपड़े धोना	बुधवार को
• पत्रोत्तर देना	रविवार को

स्वामीजी की एकदम ठोस तथा सुव्यवस्थित आध्यात्मिक दिनचर्या से परिचय के बाद हम उनकी इसी डायरी में साधना के बारे में लिखे कुछ बहुत उपयोगी अंशों पर भी नज़र डालें—

निम्नलिखित तीन शक्तियां प्रत्येक व्यक्ति में होती हैं।

(क) क्रिया-शक्ति : वह शक्ति जिसके द्वारा कार्य सम्पादित किये जाते हैं।

(ख) भाव-शक्ति : अनुभव (feel) करने की शक्ति।

(ग) ज्ञान-शक्ति : जानने की शक्ति।

साधक के समग्र विकास के लिये इन तीनों शक्तियों का शुद्धिकरण कर उन्हें भगवद्प्राप्ति हेतु नियोजित करना होता है।

इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये उस डायरी में निम्नलिखित विधियों से अभ्यास करने को कहा गया है :

(अ) क्रिया-शक्ति के विकास हेतु प्राणायाम, श्वास-प्रश्वास की क्रियाएं, प्रार्थना तथा नाभि केन्द्र (मणिपुर चक्र) पर ध्यान करना।

(ब) भाव-शक्ति के विकास हेतु कीर्तन, जाप, प्रार्थना तथा हृदय केन्द्र (हृदय चक्र) पर ध्यान करना।

(स) ज्ञान-शक्ति के विकास हेतु स्वाध्याय (प्रेरणाप्रद ग्रन्थों का पाठ), सत्संग, अध्यात्म विषयक विचार-विमर्श, जाप तथा आज्ञा चक्र पर ध्यान।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

उक्त साधना के दैनिक कार्यक्रम पर दृष्टि डालने से पता चलता है कि तब भी स्वामीजी की साधना कितनी व्यवस्थित, संतुलित तथा समग्र थी। हम आज गुरुदेव के जीवन का अवलोकन करें तो पता चलता है कि किस प्रकार उनके जीवन में क्रिया-शक्ति, भाव-शक्ति तथा ज्ञान-शक्ति का दिव्यीकरण होकर उनका अपूर्व समन्वय हुआ है।

गहन साधनाकाल के कुछ आंतरिक अनुभव तथा दर्शन

गुफा में आ जाने के पश्चात् अगले दिन से ही स्वामीजी ने मौन रख लिया था। मौन पर यह उनका प्रथम प्रयोग था। तीव्र वैराग्य तथा अपने सच्चे स्वरूप को उपलब्ध करने की गहरी अभीप्सा लिये उस नवयुवक योगी का मन मौन द्वारा अधिकाधिक अन्तर्मुखी होता गया। धीरे-धीरे उनका मन आन्तरिक अनुभवों के विशाल राज्य में प्रविष्ट हो गया। आरम्भ में होने वाले कुछ अनुभव तो बड़े ही भयावह थे जबकि कुछ अन्य आनन्ददायी थे। इन अनुभवों के बाद उनका मन एक ऐसे भाव-राज्य में प्रविष्ट कर गया जहाँ उन्हें अगणित संतों, योगियों तथा देवी-देवताओं के दर्शन होने लगे।

इस विषय पर हम उन्हीं की पावन लेखनी को उद्धृत कर रहे हैं—"गुफा में आने के लगभग पन्द्रह दिन तक तो मुझे बहुत ही भयानक तथा पीड़ादायक अनुभव हुए। ध्यान के समय तथा स्वप्न में भी, मुझे ऐसा प्रतीत होता मानो मैं मल-मूत्र से भरे गड्ढे में डूब रहा हूँ। कभी मुझे भयानक आकार-प्रकार वाले प्राणी दिखायी देते; कभी मुझे लगता जैसे मैं आग की भीषण लपटों में से गुजर रहा हूँ और कभी, जैसे सागर की विशाल तरंगों के बीच डूब-उतरा रहा हूँ। मुझे कुछ समझ नहीं आता था कि वह सब क्या हो रहा था, क्यों हो रहा था। उन कठिन दिनों में कृपासिन्धु बाबाजी तथा भगवान में मेरी अटूट श्रद्धा ने ही मुझे बचाया, अन्यथा उन भयानक अनुभवों के कारण मैं सम्भवतः उस स्थान को त्यागकर साधन विमुख ही हो बैठता। मैं भगवान से बार-बार प्रार्थना करता कि हे दीनबन्धु, अशरणशरण, कृपासिन्धु प्रभु, मुझे इस विपदा से बाहर निकालो। धीरे-धीरे वे भयानक अनुभव कम होते गये तथा अन्त में, लगभग बीस दिन बाद, बिल्कुल बन्द हो गये।"

"इसके बाद आन्तरिक अनुभवों का 'प्रकार' एकदम बदल गया। पीड़ादायक

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

अनुभवों का स्थान आनन्ददायक अनुभवों ने ले लिया। ध्यान के समय मैं नदी पहाड़ों से सुसज्जित भव्य तथा अन्य अति सुन्दर दृश्य देखने लगा। दायें कान में कई प्रकार की संगीतमय ध्वनियाँ सुनायी देने लगीं। अक्सर आज्ञाचक्र पर रंग-बिरंगे प्रकाशों का अति सम्मोहक नृत्य/आँख-मिचौनी भी देखने में आते। इन अनुभवों से उत्साहित होकर मैं अपने भीतर और अधिक गहरे में प्रवेश करने के लिये प्रयास करने लगता। धीरे-धीरे इस प्रकार के अनुभव होने बन्द हो गये। इनके बाद अनुभवों का एक नया क्रम आरम्भ हो गया। मुझे दिव्य संतों-महात्माओं के दर्शन होने लगे। इनमें से कइयों के बारे में मैं जानता था तथा कईयों के बारे में कभी सुना भी नहीं था। हालाँकि इनमें से कई संतों के प्रति मेरी गहरी श्रद्धा थी, पर मैंने कभी भी साधना के अंग के रूप में उनका ध्यान-चिन्तन नहीं किया था।"

उन्हीं दिनों उन्हें महर्षि रमण, श्रीअरविन्द, गुरुनानकदेव तथा बाबा श्रीचन्द्रजी के दर्शन हुए।

एक दिन उन पर अद्‌भुत कृपा हुई। उन्हें ब्रह्माजी के मानसपुत्रों, विश्व में गुरु-शिष्य परम्परा के प्रवर्तक, उदासीन पंथ के आदि आचार्य, अहर्निश 'हरिः शरणम्' दिव्य मंत्र का जाप करने वाले, तथा वेद-पुराणों द्वारा समादृत, कुमार बन्धुओं—सनक, सनन्दन, सनातन तथा सनतकुमार ऋषियों के दर्शन हुए। ऋषि सनतकुमारजी ने कृपापूर्वक स्वामीजी को एक विशेष मंत्र में दीक्षित किया तथा उसे एक विशिष्ट विधि द्वारा एक निश्चित संख्या में उच्चारित करने का आदेश दिया। इस मंत्र के जाप की अवधि में आपने प्राणायाम, स्वाध्याय तथा ध्यान सहित साधना के अन्य सभी अंग बंद कर दिये थे। लेकिन पहले की ही तरह आपने प्रातः एवं सायं नियमित रूप से प्रार्थना करना बंद नहीं किया क्योंकि भगवान के प्रति अनन्य शरणागति भाव तो आपकी साधना का प्राणस्वरूप ही था। इससे हमें महाराजजी की प्रार्थना की शक्ति में गहन आस्था का भी प्रमाण मिलता है।

रात्रि में जागकर नित्यप्रति आठ घन्टों से भी अधिक महाराजजी ऋषि सनतकुमारजी द्वारा प्रदत्त मंत्र का जाप किया करते थे। जाप करते-करते रात्रि अथवा दिन में अगर कभी उन्हें नींद घेरने लगती तो वे तुरंत ही उठ खड़े होते तथा विशेष रूप से इसी हेतु बनवायी गयी एक टांग वाली लम्बी बैरागन के सहारे, खड़े-खड़े ही जाप करते थे।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

इस मन्त्र-जाप की चर्चा हम कुछ देर बाद भी प्रसंगवश करेंगे। गुफा में प्रथम आगमन के बाद स्वामीजी उसमें लगभग डेढ़ वर्ष तक लगातार रहे।

गाँव में दंगल

अब, उनके जम्मू-प्रवास के कठिन साधनामय जीवन से थोड़ा विश्राम लें तथा देखें कि गुफा प्रवास की अवधि में एक दिन हमारे क्रीड़ाप्रिय प्रभु ने क्या कौतुक किया। घटना गुफा के सामने पहाड़ी गाँव में एक ग्रामीण दंगल की है। घटना का दर्शन स्वयं महाराजजी की लेखनी से ही करें—

"जब मैं जम्मू गुफा में रहता था तो तवी नदी के पार पहाड़ पर एक दिन मैंने ढोल बजने की आवाज सुनी। शाम के चार बजे का समय होगा। गर्मी के दिन थे। मैंने तैरकर तवी नदी पार की और गीली कोपीन पहने हुए ही आगे जंगल में उस ओर चला गया जिधर से ढोल की आवाज आ रही थी। वहाँ पहुँचा तो देखा कि दंगल हो रहा था। आस-पास के गाँव वालों ने वह करवाया था। जब आठ-दस कुश्तियां हो गयीं तो एक गुज्जर जो वहाँ एक कुश्ती ज़ीत चुका था तथा उस क्षेत्र का माना हुआ पहलवान था, ने झंडी गाड़ दी। तीस-चालीस पहलवान थे वहाँ पर, परन्तु कोई भी अखाड़े में नहीं आया। तो मैं अन्दर चला गया अखाड़े के बीच में। सब तालियां बजाने लगे। वहाँ तीन-चार सौ लोग थे। उस गुज्जर पहलवान को बड़ा गुस्सा आया। वह भी मैदान में आ गया।"

"मैं जब लाहौर कॉलेज में पढ़ता था तब छात्रावास में रहता था। तब वहाँ छात्रावास में एक पहलवान कॉलेज के लड़कों को कुश्ती सिखाता था। कुश्ती पंजाब विश्वविद्यालय का गेम भी था। तब मैंने एक महीने कुश्ती सीखी थी।"

"एक लड़का वहाँ खड़ा था जो मेरी गुफा के सामने आकर नदी पर नहाया करता था। मेरी उससे शक्ल से जान-पहचान थी। मेरा मौन था। मैंने उसे इशारे से कहा कि मैं इसके साथ कुश्ती लड़ूँगा। मुझे पहनने के वास्ते जांघिया चाहिये। तो उसने एक बैठे हुए पहलवान का जांघिया मुझे ला दिया। मैंने वह कोपीन के ऊपर ही पहन लिया और अखाड़े में आ गया। पहलवान पहले हाथों से एक दूसरे के जोर का अनुमान लगाते हैं। मैंने देखा कि वह शक्ति में मुझसे तीन गुना होगा। उसके हाथ इतने सख़्त थे जैसे लकड़ी के हों। कुश्ती शुरु हुई। मैंने दाव लगाकर उसे नीचे गिरा

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

लिया पर उसमें ताकत इतनी अधिक थी कि एक-दो मिनट में ही वह स्वयं को मुझसे छुड़ाकर उठ गया। चार-पाँच मिनट में मेरा दम फूल गया। फिर उसने मुझे गिराया। मैंने सोचा छः-सात मिनट में कुश्ती का फैसला हो जाना चाहिये, चाहे मेरी हार ही हो जाये, क्योंकि अधिक देर तक मैं लड़ भी नहीं सकूँगा। उसने मुझे नीचे गिराकर एक ऐसा दाव लगाना चाहा जिसमें नीचे गिरने वाला मुर्गी की तरह बन जाता है। उसकी मंशा थी कि मुर्गी बनाकर वह मुझे ख़ूब तंग करेगा। जैसे ही वह दाव लगा रहा था तो मैंने पूरे जोर से नीचे से उठने और उसे नीचे गिराने की कोशिश की। मुझे पता भी नहीं लगा कि वह धड़ाम से पीछे की तरफ गिरा और उसकी पीठ जमीन पर लग गयी। चारों तरफ से लोग आ गये और उन्होंने कुश्ती छुड़वा दी क्योंकि गुज्जर पहलवान की पीठ जमीन पर लग गयी थी। मैं भी हैरान था कि क्या हो गया। सब लोगों ने मुझे घेर लिया। कोई पाँच रुपया दे, कोई एक रुपया दे, कोई कंधा थपथपाए। मैंने जल्दी से जांघिया उतार कर फैंक दिया और वहाँ से भाग कर गुफा में आ गया। उनमें से एक आदमी वे सब पैसे इकट्ठे करके दूसरे दिन गुफा पर तीन किलो घी ले आया।"

तो इस प्रकार कौतुक किया उस दिन हमारे गुरुदेव ने। ऊपर लिखी घटना पर गौर करें तो महाराजजी के व्यक्तित्व पर गहरा प्रकाश पड़ता है। एक तो पुनः-पुनः उनकी विलक्षण स्मृति देखें कि पूरी घटना का मिनटवार ब्योरा दिया। फिर यह देखें कि वह कुश्ती उन्होंने बल और बुद्धि दोनों की सहायता से जीती। प्रतिद्वन्द्वी को अपने से कहीं बलवान जानकर उन्होंने तत्काल युक्ति और साहसपूर्वक अपनी रणनीति में परिवर्तन करके विजय प्राप्त की । अपने इन्हीं गुणों के द्वारा निश्चय ही वे काम, क्रोध आदि दुर्जेय रिपुओं पर विजय पा सके होंगे।

उधर स्वामीजी के पूज्य पिताजी को अपने संन्यासीं पुत्र का वियोग सता रहा था। किसी प्रकार पूछते-पड़ताल करते लालाजी अपने पुत्र को मिलने एक दिन अचानक गुफा में ही आ पहुँचे। यथोचित आदर-सत्कार के बाद बहुत प्रकार से सान्त्वना देकर चतुर शिरोमणि स्वामीजी ने पूज्य पिताजी को आश्वस्त कर दिया कि बाबाजी के दिव्य संरक्षण में उन्हें न तो कोई कष्ट हुआ और न ही आगे होगा। अपने संन्यासी पुत्र का तीव्र वैराग्य तथा बाबाजी की असाधारण कृपा स्वयं अपनी आँखों से देखकर लालाजी ने अधिक आग्रह नहीं किया और वापिस लौट गये।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

इस जगत् में गुप्त रूप से एक दिव्य शक्ति कार्य कर रही है। कई बार यह शक्ति योग्य जिज्ञासुओं को आत्मतृप्त संतों अथवा आध्यात्मिक रूप से उन्नत व्यक्तियों के पास ले जाती है। इस डेढ़ वर्ष की अवधि में स्वामीजी के पास कुछ और सच्चे जिज्ञासु भी आने लगे। उनमें से रैनाबाड़ी, श्रीनगर के श्रीवासुदेवजी कौल भी एक थे। वे सरकारी कर्मचारी थे तथा सर्दियों में सरकारी कार्यालयों के जम्मू स्थानान्तरित हो जाने के कारण जम्मू आये हुए थे। वे रैनाबाड़ी, श्रीनगर के सुप्रसिद्ध समाजसेवी एवं धर्मनिष्ठ व्यक्ति थे। उन्होंने स्वामीजी को बताया कि रैनाबाड़ी के निकट एक बड़ा सुन्दर स्थान है जो आध्यात्मिक ऊर्जा से भरपूर तथा साधना के लिये सर्वथानुकूल है। उन्होंने स्वामीजी को उस पवित्र स्थान पर कम से कम गर्मियां व्यतीत करने के लिये राज़ी कर लिया। वह स्थान था हरि पर्वत।

कश्मीरी पण्डितों का श्रद्धा प्रतीक, हरि पर्वत

हरि पर्वत श्रीनगर की सीमा पर रैनाबाड़ी के निकट एक छोटी सी पहाड़ी है। यह स्थान सिद्धपीठ माना जाता है जहाँ कई हिन्दू तथा मुसलमान संतों ने भजन-साधन करके आध्यात्मिक पूर्णता प्राप्त की थी। उन दिनों प्रतिदिन सैंकड़ों कश्मीरी पंडित इस पहाड़ी के चारों ओर बड़े भक्ति-भाव से पैदल चलकर लगभग चार किलोमीटर की परिक्रमा करते थे। वहाँ का वातावरण स्वास्थ्य एवं साधना, दोनों ही दृष्टियों से बड़ा अनुकूल था।

श्रीवासुदेव कौल स्वामीजी को हरि पर्वत पर ले गये तथा वहाँ उन्होंने पहाड़ी के शिखर पर एक शहतूत के वृक्ष के नीचे उनके रहने के लिये एक छोटा सा टैन्ट लगा दिया।

जब प्रभु का विशेष कृपापात्र यह अनूठा योगी हरि पर्वत पर आ विराजा तो सदैव की तरह प्रभु भी उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति के निमित्त विशेष सतर्क हो गये। बहुत शीघ्र ही रैनाबाड़ी के निम्न मध्यमवर्गीय परिवार के कुछ युवा कश्मीरी पंडितों ने स्वामीजी के प्रति आकृष्ट होकर उनके लिये प्रतिदिन भोजन तथा दूध लाना आरम्भ कर दिया। रैनाबाड़ी के सर्वश्री मोहनलाल कौल, श्यामलाल पीर, रामकृष्ण डुल्लू, मोहनलाल अम्बड़दार आदि ऐसे ही उन पंडितों में से थे जिन्होंने स्वामीजी की, विशेषकर उनके हरि पर्वत प्रवास के दौरान, गहरी श्रद्धा-भक्ति से सेवा की। आज भी

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

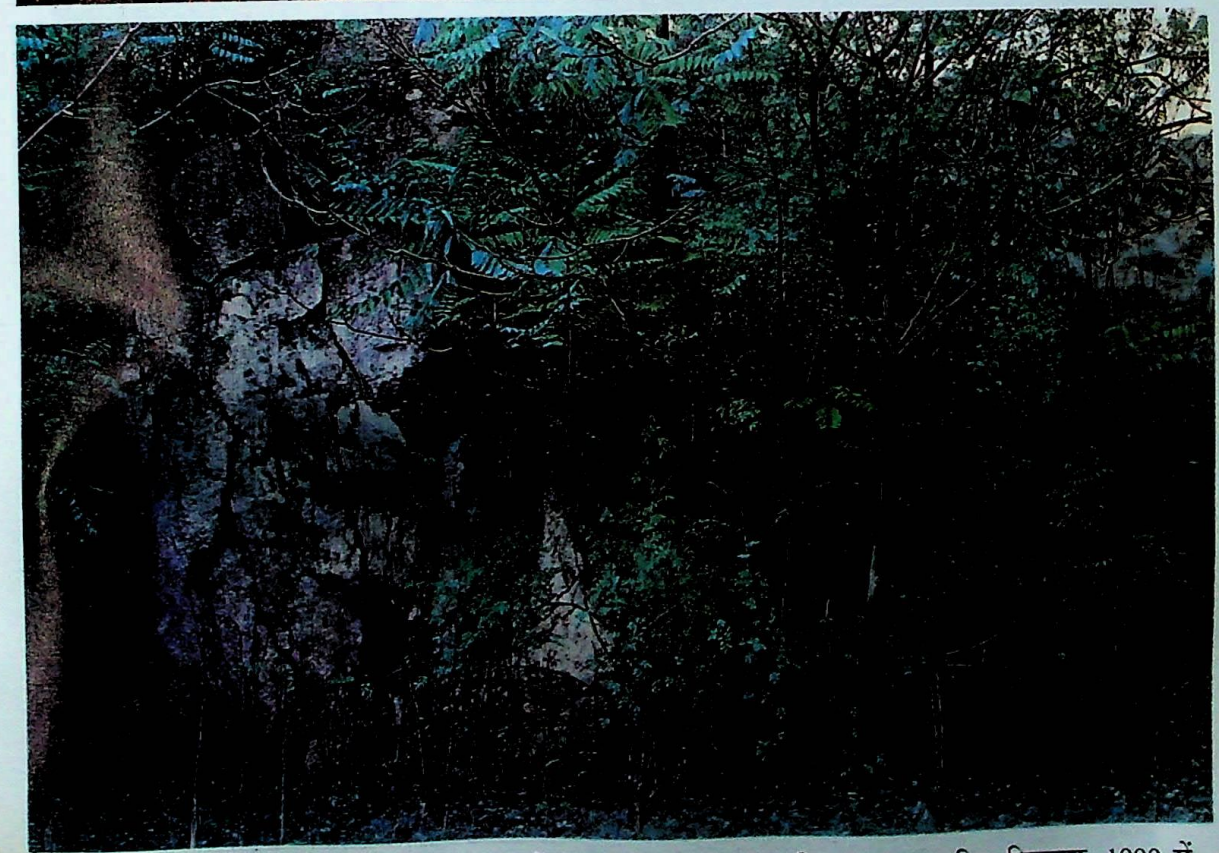
स्वामीजी उन दिनों को याद करके कहते हैं कि उन दिनों कश्मीरी पण्डितों ने जो उनकी सेवा की उससे वे कभी उऋण नहीं हो सकते।

अब जरा देखें कि हरि पर्वत का वह पवित्र स्थान किस प्रकार के परिवेश-वातावरण से घिरा था। स्वामीजी के अनन्य भक्त दिवंगत प्रोफेसर टी. एन. भान, सेवा निवृत्त प्रधानाध्यापक, राजकीय कॉलेज, सोपोर, कश्मीर, ने स्वामीजी की प्रसिद्ध पुस्तक The Practical Approach to Divinity, की प्रस्तावना में उस स्थान के प्राकृतिक सौन्दर्य तथा वहाँ स्वामीजी की भव्य उपस्थिति का बड़ा सुन्दर और सजीव वर्णन किया है। यहाँ उसके कुछ अंश के अनुवाद को हम उद्धृत करना चाहेंगे —

"लगभग एक दशक पूर्व, दूर एक पहाड़ी के ऊपर स्थित शहतूत के वृक्ष के नीचे लगे छोटे से एकमात्र टैन्ट की ओर लक्ष्य करके मैं उस पहाड़ी पर, धीरे-धीरे, उसी दिशा में जा रहा था। सूर्यदेव अस्त होने को ही थे; सुन्दर कश्मीर घाटी को चारों ओर से घेरे हुए उच्च तथा भव्य पर्वत श्रृंखलाओं पर मानो सुनहरी किरणों की रिमझिम हो रही थी। मध्य ग्रीष्म काल की बेला में स्थान-स्थान पर सुन्दर झीलों और नदियों से सुसज्जित, चारों ओर हरे-भरे जंगल, खेत-खलिहान तथा मैदानों का दृश्य बड़ा ही नयनाभिराम तथा मनमोहक था। पहाड़ी के ठीक सामने, कुछ ही फर्लांग की दूरी पर कमल पुष्पों से खचित झील थी, जो तरह-तरह के मनमोहक रंगों के झुटपुटे में उन कमल दलों के विकसित होने के साथ ही उस साँझ के आकर्षण तथा शोभा को छिटका रही थी। चारों ओर वातावरण में गहरी शान्ति और नीरवता थी जो जगत् की सर्वाधिक चंचल वस्तु, मन में भी शांति का संचार करती प्रतीत होती थी। जब मैं ऊपर उस स्थान पर पहुँचा तो मैंने देखा कि कुछ नवयुवक उस वृक्ष के नीचे रखे एक खाली आसन के चारों ओर अर्धचन्द्राकार बनाकर चुपचाप बैठे हैं। उस वृक्ष की पत्तियों तथा टहनियों की सरसराहट के अलावा वहाँ कोई आवाज, कोई हलचल नहीं थी। यहाँ तक कि पहाड़ी के दायीं तथा बायीं ओर, जहाँ- तहाँ विचरण कर रही भेड़ें भी कोई आवाज नहीं कर रही थीं। मैं भी चुपचाप उस छोटी सी मौन मण्डली में शामिल हो गया और मुझे पता भी न चला कि कुछ ही क्षणों में कब उस स्थान की निःस्तब्धता तथा मौन ने मुझे अपने में आवेष्टित कर लिया। थोड़ी देर के पश्चात टैंट के भीतर एक हल्की सी हलचल से मैं सजग हो गया। शीघ्र ही टैंट के

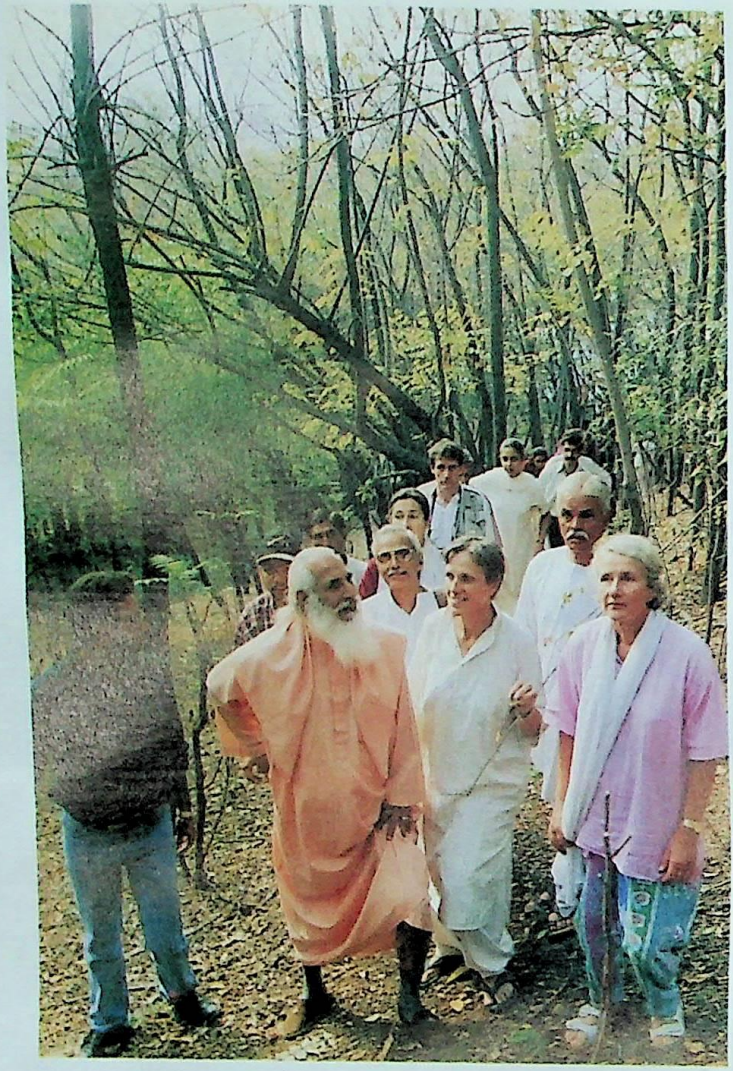
CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri





हरि पर्वत का वह प्लेटफार्म जहाँ पांचवें दशक में स्वामीजी ने कठिन तप किया था। यह चित्र सितम्बर, 1999 में उन दिनों लिया गया था जब स्वामीजी अपने भारतीय व विदेशी भक्तों के साथ श्रीचन्द्रचिनार आश्रम में ठहरे थे तथा भक्तों के अनुरोध पर हरि पर्वत की अधिष्ठात्री, 'हरि देवी' के दर्शन करने गये थे। ऊपर वाले चित्र में स्वामीजी उसी प्लेटफार्म पर खड़े हैं जो कभी भक्तों द्वारा सिंदूर से पुता होता था तथा जिसके निकट लकड़ी के केबिन में वे रहा करते थे।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



सितम्बर, 1999 में भक्तों के संग हरि पर्वत पर जाते हुए।
←

हरि पर्वत पर 'हरि देवी शिला' के निकट ही एक अन्य पवित्र स्थल पर भक्तों के साथ, जिसकी अधिष्ठात्री 'लक्ष्मी देवी' मानी जाती है।
↓



CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



जम्मू-कश्मीर से आ जाने के बाद अपने संक्षिप्त जम्मू प्रवास के समय किसी सेवक के घर भक्तवृंद के संग। भक्तगण तो कहते हैं— जम्मू-कश्मीर महाराजजी का मायका है।



हम भक्तन के भक्त हमारे।

जम्मू में ही किसी सेवक के घर में।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

बाहर का पर्दा उठा तथा उसमें से संन्यासी का चोला धारण किये एक सौम्य आकृति निकल कर बाहर आयी तथा उसने अपना आसन ग्रहण किया। हम सब उठे और हमने उन्हें प्रणाम किया। अपने आसन पर विराजमान वे मुझे शान्ति और आन्तरिक आनन्द की सुस्थिर एवं निष्कम्प लौ प्रतीत हुए। उनके नेत्र उनके मन की शांत अवस्था का दर्पण थे। वे थे श्रीचन्द्रस्वामी ! उन्हें देखते ही मैं सदा के लिये उनके प्रेमपाश में बंध गया।"

यह संयोग ही है कि ढाई दशक बाद पुनः प्रोफेसर भान ने स्वामीजी की नवीनतम पुस्तक Song of Silence-I का भी परिचय लिखा है। वर्षों बाद जब वे सपत्नीक अपने प्रिय गुरुदेव से सन् 1994 में जम्मू में मिले तो आनन्दातिरेक से हतप्रभ होकर अश्रुपात करते हुए निर्निमेष नेत्रों से महाराजजी को निहारते रहे। कश्मीर में आतंकवाद के चलते सभी पण्डित वहाँ से उजड़ गये हैं। प्रोफेसर भान भी कई वर्षों से अपनी मातृभूमि को छोड़ ऊधमपुर में रह रहे थे। अपनी पुण्यभूमि से दूर होने की पीड़ा को हृदय में दबाये ही सन् 1998 में उनका देहान्त हो गया। अस्तु।

हरि पर्वत पर स्वामीजी दिन भर मौन रहते थे लेकिन शाम को डेढ़ घन्टे के लिये युवा जिज्ञासुओं से अध्यात्म विषयक चर्चा हेतु बोला करते थे। जिज्ञासुओं की संख्या भी दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी। यहाँ तक कि हरि पर्वत के निकट रहने वाले कुछ मुसलमान जिज्ञासु भी स्वामीजी के पास शंका निवारण के लिये आने लगे थे। सूफी मत का अच्छा ज्ञान होने तथा उर्दू भाषा पर अच्छा अधिकार रखने के कारण स्वामीजी उन्हीं की मान्यताओं के आधार पर उन्हें विश्वासोत्पादक उत्तर देते जिससे वे बड़े प्रभावित होते थे।

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है उन दिनों स्वामीजी अन्य सभी साधन छोड़कर केवल सनतकुमार ऋषि प्रदत्त मंत्र के जाप का अनुष्ठान कर रहे थे। प्रायः पूरी रात वे एक हजार से अधिक मनकों वाली माला के साथ जाप करते रहते थे। दिन में भी वे लगभग चार घन्टे तक उस मंत्र का जाप करते थे। धीरे-धीरे वह मंत्र उनके मन के अवचेतन तल में प्रविष्ट हो उनके श्वास-प्रश्वास के साथ समलय हो गया। स्वयं महाराजजी के शब्दों में, "वह मंत्र मुझे पूर्णरूप से अभिभूत करके मेरे सब बाहरी तथा आन्तरिक क्रियाकलापों में रच-बस गया था। मैं मंत्र के साथ अपना

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

भोजन लेता, मंत्र के साथ चलता-फिरता, यहाँ तक कि मंत्र के साथ ही सोता था। हर क्षण मंत्र मुझे घेरे रहता। मेरी पूरी चेतना और व्यक्तित्व मंत्र से सराबोर हो गये थे। उस मंत्र का एक विचित्र सा आनन्ददायी नशा मुझ पर हर समय छाया रहता और क्षण भर को भी उसमें व्यतिक्रम नहीं होता था। मैं आपको भगवान के पावन नाम से आविष्ट मंत्र के मल-विक्षेपहर्त्ता, पावनकारी प्रभाव का वर्णन किन शब्दों में करूं ? भगवान का पवित्र नाम वास्तव में दिव्यामृत है।"

गर्मियों के महीने हरि पर्वत पर व्यतीत करने के बाद स्वामीजी जम्मू में तवी नदी के तट पर उसी गुफा में आ गये। उसी समय से स्वामीजी गर्मियों में हरि पर्वत पर चले जाते थे तथा सर्दियों में उसी गुफा में आ जाते थे। यह व्यवस्था अक्तूबर, 1961 तक जारी रही। बीच में, सन् 1957 में, स्वामीजी डेढ़ वर्ष के लिये सप्तसरोवर झाड़ी में रहे थे जिसकी चर्चा हम बाद में करेंगे।

अपने हरि पर्वत प्रवास के प्रथम दो वर्षों में महाराजजी उसी छोटे से टैन्ट में रहते थे। बाद में उनके भक्तों ने उनके लिये एक छोटा सा लकड़ी का केबिन बना दिया था। सर्दियों में जब स्वामीजी जम्मू वाली गुफा में जाते तो उनके सेवक उस केबिन को खोलकर एक सेवक के घर रख लेते थे। बाद में जब वे दुबारा हरि पर्वत आते तो उस केबिन को जोड़कर पुनः उसी स्थान पर लगा दिया जाता था।

सनकादिक ऋषियों के अपरोक्ष मार्गदर्शन, संरक्षण तथा अपने अदम्य साहस, धैर्य और लौह संकल्प के द्वारा स्वामीजी ने निर्दिष्ट संख्या में उपर्युक्त मंत्र का जाप निरन्तर एक हजार रातें जागकर सफलतापूर्वक पूर्ण किया। उसके बाद वे साधना के अपने पहले वाले दैनिक कार्यक्रम में पुनः पूर्ण मनोयोग से संलग्न हो गये। साधना की उस अवधि में उन्हें वनवेशधारी भगवान राम, ईसामसीह, स्वामी रामतीर्थ, स्वामी विवेकानन्द, सिंह पर सवार माँ दुर्गा तथा भगवान शंकर आदि के दर्शन हुए। उन्हें यूनान के हर्मिस ट्रैमिजिस्टस के भी दर्शन हुए जिनके मस्तक की विचित्र वेशभूषा से वे पहले परिचित नहीं थे। उन्होंने अपने दर्शन के आधार पर ठीक-ठीक अपने एक सेवक को वह वेषभूषा बतायी जो वास्तव में यूनानी (मिस्री) फरोह के सिर की वेषभूषा से मिलती जुलती थी। उन्हें कई सिद्ध संतों के भी दर्शन हुए जिनके बारे में उन्होंने पहले कभी देखा-सुना नहीं था। ये सभी दर्शनादि सहज ही अपने आप हुआ करते थे क्योंकि साधना के रूप में स्वामीजी ने कभी भी इन संतों अथवा देवी-

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

देवताओं का ध्यान नहीं किया था। एक अन्य अनुभव जो उन्हें रात्रि में अक्सर हुआ करता था वह यह था कि सुनहरे रंग का एक प्रकाश उनके पूरे केबिन में भर जाता था। ऐसा कुछ क्षणों के लिये होता था।

बाबा श्रीचन्द्रजी के दर्शनों के बारे में स्वामीजी ने बताया कि हालाँकि उन्होंने कभी भी बाबाजी के चित्र/मूर्ति का ध्यान-अभ्यास नहीं किया तो भी उन्हें अक्सर उनके ध्यान में या स्वप्न में दर्शन हुआ करते थे। आरम्भ में कभी-कभी तो विश्वास नहीं होता था कि सचमुच दर्शन हो रहे हैं या वे कोई चित्र देख रहे हैं। महाराजजी के मन में ऐसा संदेह का भाव आते ही बाबाजी के शरीर में उन्हें कोई हलचल/गति अनुभव होने लगती अथवा वे पलकें झपकाने लगते या मुस्कुराने लगते। और तब उनके मन से वैसा भाव तिरोहित हो जाता। बचपन में स्वामीजी को आचार्य श्रीचन्द्रजी द्वारा रचित मात्राशास्त्र कंठस्थ था तथा वे उसका पाठ भी करते थे।

अपने अनेक दर्शनों में से दो अन्य दर्शनों के बारे में उन्होंने हमें स्वयं स्पष्टता से बताया है। उन्होंने स्वयं लिखा था—

"एक बार मुझे एक वृक्ष के नीचे अपने भक्तों, सेवकों के साथ उनका संकीर्तन सुनते हुए दिव्योन्माद में श्रीगुरुनानकदेवजी के दर्शन हुये थे। यह पृथ्वी की बात नहीं, किसी अन्य लोक की बात है।"

हालाँकि अपने गुरुदेव बाबा भूमनशाहजी के दर्शन उन्हें जब से ब्रह्मचारी वेष में थे तभी से कई बार क्षणिक रूप से होते रहते थे। बाबाजी की उपस्थिति का भान तो प्रायः उन्हें सदा ही बना रहता था। फिर भी उन्होंने बाबाजी के एक दर्शन के बारे में हमें बताया जो उन्हें 1968-69 के बीच अपने झाड़ी प्रवास के दौरान हुआ था। महाराजजी के ही शब्दों में—

"मैंने उन्हें ध्यान की अवस्था में किसी दूसरे लोक में देखा था। वह दृश्य अभी भी मुझे पूरी तरह से याद है।" महाराजजी ने कागज पर नक्शा बनाकर बताते हुये बताया—"एक मकान में एक बरामदे के बाहर कोई साधु खड़े थे। मैंने उनसे पूछा कि बाबाजी के दर्शन करने हैं। उन साधु ने अपना नाम काहनदास बताया और मुझे अन्दर ले गये जहाँ कमरे में पलंग पर बाबाजी लेटे हुए थे। कमरे के अन्दर जाकर मैंने उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया। बाबाजी ने हाथ उठाकर मुझे आशीर्वाद

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

दिया। तो वहाँ उनके दर्शन हुए। मैं बाबाजी को प्रणाम करके उनके सामने बैठ गया। फिर पता नहीं कितनी देर बैठा रहा।"

"मैंने संत काहनदासजी को कभी देखा नहीं था, ना उनके बारे में कभी सुना ही था। बाद में कभी मैंने इस दर्शन के बारे में महंत गिरधारीदासजी को कहा तो उन्होंने मुझको बताया कि उनके डेरे में कभी काहनदास नाम से संत रहे थे जो डेरे के ही संत थे।"

इन दर्शनादि के बारे में महाराजजी ने हमें अनेक बार बताया है कि—"संतों के दर्शन का चित्त पर एक विशेष प्रभाव होता है चाहे वे मुख से कुछ बोलें या न बोलें। शाब्दिक मार्गदर्शन देना दूसरी बात है। पर संतों के दर्शन का एक आध्यात्मिक प्रभाव होता है जो आपको spiritually evolve करता है (आध्यात्मिक रूप से ऊपर उठाता है) भले ही conscious mind (चेतन मन) को इसका पता चले या न चले। किसी भी इस प्रकार के दर्शन का चित्त पर लम्बे समय तक आनन्ददायक, सकारात्मक प्रभाव रहता है।" अस्तु !

आत्म-साक्षात्कार

उन अगणित अनुभवों के कल्याणकारी प्रभाव को आत्मसात् करते हुए स्वामीजी सदैव विरही चातक की तरह भगवदोन्मुख बने रहे। धीरे-धीरे उन उच्च से उच्चतर लोकों का भी अतिक्रमण होता गया जिनके वे सहज ही सम्पर्क में थे तथा वे दर्शनादि भी बंद होते गये। और अब उनका स्थान सब ओर विस्तीर्ण होते एक ऐसे आनन्द ने ले लिया जो उनके समूचे व्यक्तित्व को अधिकाधिक अपने में आप्लावित करता चला गया। उनकी निर्मल चेतना ऊँचे तथा और ऊँचे शिखरों पर आरोहण करने लगी। अन्ततः अटल, निश्चल, निर्विकार, शाश्वत, सच्चिदानन्द तत्त्व का साक्षात्कार उन्हें अपने ही सच्चे तथा मौलिक स्वरूप में हुआ। तब महाराजजी की आयु केवल उन्तीस वर्ष की थी। इस दुर्लभ, अत्युच्च स्थिति को आत्म-साक्षात्कार की संज्ञा दी जा सकती है।

यह साक्षात्कार उन्हें हरि पर्वत पर शहतूत के वृक्ष के नीचे बैठे हुए हुआ था। उस समय महाराजजी शान्त भाव से वृक्ष के नीचे बैठे हुए थे, कोई अभ्यास नहीं कर रहे थे। यहाँ पाठकों से निवेदन कर दें कि यह आत्म-साक्षात्कार अपने आत्मस्वरूप

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

प्रियतम की झलक की तरह था। किन्तु झलक तो सदा स्थायी नहीं रहती; वह आती है, चली जाती है। अतः इस दुर्लभ साक्षात्कार के स्थायी तथा सतत बोध में परिणत होने की यात्रा यहीं से शुरु हुई। यहीं से उनका अपने प्रेमास्पद में पूर्ण विलय होने तक लुका-छिपी का खेल शुरु हुआ। यहीं से उनकी विरह-पीड़ा में अपने प्रियतम की झांकी के अनिर्वचनीय सौंदर्य की टीस भी घुल गयी। धीरे-धीरे यह आत्म-बोध प्रगाढ़ तथा पुनः-पुनः होने लगा तथा इसके स्थायी और दृढ़भूमि होने की प्रक्रिया आरम्भ हो गयी।

भक्तों के प्रेमास्पद

जम्मू-कश्मीर में अपने साधनाकाल की अवधि में स्वामीजी अधिकांशतः एकान्त तथा मौन ही रहे। तो भी अपने भक्तों एवं जिज्ञासुओं से उनका कुछ सम्पर्क बना ही रहा। और यह आकस्मिक प्रतीत नहीं होता। इसके द्वारा श्रीभगवान उन्हें निवृत्ति तथा आंशिक प्रवृत्ति, दोनों मार्गों से सम्यक्, युक्ति-युक्त आध्यात्मिक जीवन व्यतीत कराने का अभ्यास करा रहे थे। इस अवधि में उन्होंने एक सच्चे संत और सद्गुरु के रूप में समाज के सभी क्षेत्रों के बड़ी संख्या में लोगों को प्रभावित किया। बुद्धिजीवी, प्राध्यापक, संत, व्यवसायी, समाजसेवी, कर्मचारीगण, स्त्री-पुरुष, विद्यार्थी, बच्चे—सभी समान रूप से इन अत्यन्त रूपवान तथा तेजस्वी योगी को प्यार व सम्मान देते थे तथा उनके पास आया-जाया भी करते थे। उन दिनों भक्त लोग उन्हें अपने घरों में आमन्त्रित करके प्रेम से भोजन कराते थे। किसी-किसी परिवार में वे एक-एक दो-दो दिन तक रह भी जाया करते थे। वहाँ वे छोटे-छोटे बच्चों के साथ सहज भाव से खेलते थे। लेकिन उन्होंने कभी भी इन प्रवृत्तियों के कारण अपनी साधना में शिथिलता नहीं आने दी। आज तक भी जम्मू-कश्मीर के लोगों के दिलों में स्वामीजी के साथ उनके पुराने दिनों की स्मृतियां ताजा हैं। आज भी किसी पुराने भक्त से स्वामीजी की चर्चा करो तो उसकी आँखें तथा होंठ अनायास ही मुस्कुराने से लगते हैं तथा भाव-भीनी यादों में डूबकर, खोया-खोया सा, नम आँखों से वह स्वामीजी की मधुर लीला सुनाने लगता है। एक-दो ही नहीं, वे सभी के प्रिय थे। वहाँ के भक्तों से उनके अंतरंग सम्बन्ध के कारण कोई-कोई भक्त कहते हैं कि जम्मू-कश्मीर तो महाराजजी का मायका है। जम्मू-कश्मीर में बहुत से भक्तों ने उनसे प्रार्थना करके

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

मंत्र दीक्षा ली तथा अपने सद्गुरुदेव के रूप में धारण किया। उनसे सर्वप्रथम नाम-दीक्षा लेने का गौरव श्री आर. डी. लाकड़ाजी की बेटी, माता पद्मा सिब्बल को प्राप्त हुआ। तब उनका विवाह भी नहीं हुआ था। उन्होंने तभी-तभी हिन्दी से स्नातकोत्तर (M. A.) पास किया था और शास्त्रीय संगीत सीख रही थीं। कभी-कभी जम्मू रेडियो पर वे भजन भी गाती थीं। उनके द्वारा कुछ भक्तों को शिष्य रूप में स्वीकार करने से यह भी आभास होता है कि जगत के कल्याणार्थ, गहन अनुभूति के उपरांत, भगवदेच्छा से उनमें तब कुछ-कुछ गुरुभाव का भी आविर्भाव हुआ था। लेकिन इन सबके बावजूद महाराजजी सदैव बालवत् सरल व सहज बने रहे।

हरिद्वार सप्तसरोवर के निकट वनाच्छादित द्वीप (झाड़ी) में

मार्च, 1957 के आस-पास भगवदेच्छा से महाराजजी की तीव्र इच्छा झाड़ी में रहकर भजन-साधन करने की हुई। यह स्थान हरिद्वार में सप्तसरोवर से दो-तीन किलोमीटर दूर गंगाजी की कुछ धाराओं के घिरे हुए छोटे-छोटे वन द्वीपों का समूह था। इस स्थान को ही झाड़ी कहते थे। वहाँ के जंगलों में खैर और शीशम के विशालकाय वृक्ष भरे पड़े थे। इसी स्थान पर अपनी साधना के आरम्भिक दिनों में महाराजजी महान संत गुरमुखसिंहजी के साथ भी रहे थे। बाद के वर्षों में गंगाजी की मुख्य धारा के पार 'चिल्ला' बिजलीघर भी बन गया था। सप्तसरोवर उन दिनों प्रायः खाली और वीरान ही था। सप्तऋषि आश्रम के अलावा एक-दो आश्रम ही और थे। कच्छी आश्रम भी नया-नया ही बना था। इस सम्बन्ध में अधिक जानकारी गुरुदेव की कलम से ही प्राप्त करें—

"सन् 1957 में जब मैं जम्मू गुफा में था, मार्च के अन्त में मुझे हरिद्वार स्थित सप्तसरोवर झाड़ी में आने की तीव्र अन्तर्प्रेरणा हुई। तभी संयोग से एक ब्रह्मचारी जम्मू गुफा में मुझसे मिलने आया। उसने दो-तीन दिन गुफा में मेरे पास रहना चाहा। उसके दो दिन रहने के बाद मैंने उसे कहा मुझे तीव्र अन्तर्प्रेरणा सप्तसरोवर झाड़ी में जाने की हो रही है। तुम चाहो तो यहाँ पर जितनी देर मर्ज़ी है रहो। यदि मेरा हरिद्वार झाड़ी में रहने का तय हो गया तो मैं आपको पत्र लिखूँगा। आपकी मर्ज़ी हो तो मेरे पास आ जाना, मर्ज़ी हो तो यहीं गुफा में रहना। और कोई विशेष परिचय उस ब्रह्मचारी से नहीं था। उस गुफा में दो-तीन महीनों के वास्ते पर्याप्त राशन पड़ा

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

था। हरिद्वार पहुँचने पर सप्तसरोवर झाड़ी में गया जहाँ एक बार संत गुरमुखसिंहजी के पास यह शरीर कुछ दिन कश्मीर जाने से पहले ठहरा था।"

"पता चला कि संत गुरमुखसिंहजी का देहान्त हो चुका है। झाड़ी में वहाँ उस समय कोई महात्मा नहीं था। उस जगह से नीचे कोई आधा किलोमीटर हरिद्वार की तरफ गंगा के किनारे रेत में दो छोटी-छोटी नई झोंपड़ियाँ बनी हुई थीं। एक झोंपड़ी में एक विरक्त संत स्वामी शंकरानन्दजी रहते थे। वे दिन में एक बार सप्तसरोवर से भिक्षा कर आते थे। दूसरी झोंपड़ी खाली थी। पता चला कि वह एक विरक्त साधु ने बनायी थी जिन्हें अचानक दस दिन के वास्ते पंजाब जाना पड़ा।"

"मेरे पास उस समय 145-150 रुपये थे। सन् 1957 तक मेरा धन स्पर्श न करने का संकल्प पहले ही पूर्ण हो चुका था। ये पैसे जम्मू के भक्तों में से किसी-किसी ने थोड़े-थोड़े करके दिये थे। मैं बाजार से दस-बारह दिन के वास्ते सत्तू ले आया और उस खाली झोंपड़ी में आकर ठहर गया। उसी दिन शाम को एक ग्वाला जंगल में मिला। मैंने उस जगह एक झोंपड़ी बनाने की ग्वाले से बात की। उससे कुल पचास रुपये में झोंपड़ी बनाना तय हो गया। बाँस व रस्सी बाजार से खरीदकर लाये। बाकी सब फूस व लकड़ी ग्वाले ने जंगल से काटे। छः-सात दिन में उसने झोंपड़ी तैयार कर दी। कोई पचास रुपये का राशन व थोड़े बर्तन खाना पकाने के वास्ते खरीदकर उस ग्वाले ने ला दिये और मैं झाड़ी में रहने लगा। उस ग्वाले के साथ मैं भी झोंपड़ी बनाने का काम करता रहा और मैंने भी झोंपड़ी बनाना सीख लिया। एक पत्र मैंने जम्मू में गुफा में रह रहे उस ब्रह्मचारी को भेजा कि आप आना चाहें तो यहां आ जायें और जम्मू में रहना चाहें तो जम्मू में रहें। वह ब्रह्मचारी अप्रैल के अंत में मेरे पास आ गया। हम दोनों ने मिलकर जंगल से लकड़ी वगैरह काटकर एक छोटी सी झोंपड़ी भण्डार के वास्ते बनायी। चारों ओर बाड़ (fence) भी लगायी। एक पुरानी तिरपाल खरीदकर लाये जो रात को सोने के वास्ते बाहर लगा ली।"

ख़ुदा ख़ानाबदोशों की करे ख़ुद कार सामानी।
नयी मंजिल, नया बिस्तर, नया दाना, नया पानी॥

इधर ब्रह्मचारी जो जम्मू की गुफा से स्वामीजी के पास रहने के लिये आ गये थे वे अक्तूबर, 1957 में वहाँ से चले गये। महाराजजी तो मौन में थे पर ब्रह्मचारीजी

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

को मौन का अभ्यास नहीं था। अतः अक्टूबर में गंगाजी का पानी कम होते ही वे चले गये।

महाराजजी ने बताया कि कितनी ही बार रात को झोंपड़ी के पास हाथी आ जाया करते थे। किन्तु प्रभु अपने आश्रित बालक की रक्षा करते रहे।

उधर अप्रैल, 1957 में ही सप्तसरोवर स्थित कच्छी आश्रम वालों को पता चल गया था कि कोई पहुँचे हुये, तेजस्वी साधु झाड़ी में आकर रहने लगे हैं। आश्रम के प्रमुख तथा महान् संत महाराज वालदासजी और उनकी माताजी ने तब ही पहली बार गुरुदेव के दर्शन किये थे। कच्छी आश्रम से अक्सर भक्त लोग राशन, दूध आदि भी ले आते थे। उन्हीं दिनों एक बार प्रभु ने अपने पुत्र की परीक्षा भी ली। बरसातों में स्वामीजी के पास रखे आटे में कीड़े पड़ गये। तब वे चने तथा दालों में जंगली बथुवा डालकर खाते रहे। जंगली बेल भी तब आग में पकाकर दो महीनों तक उन्होंने खाये।

झाड़ी में जाने से पहले महाराजजी का परिचय सप्तऋषि आश्रम के संस्थापक पूज्य स्वामी गणेशदत्तजी गोस्वामी से भी हुआ था। वे उनसे बड़ा स्नेह रखते थे। जब उन्हें महाराजजी की झाड़ी में जाकर रहने की इच्छा का पता लगा तो उन्होंने उनसे कहा—"सप्तऋषि आश्रम में ही रहो। जब ज्यादा उपरामता हो तो गंगा किनारे चले जाया करो।" उन्होंने संत गुरमुखसिंहजी की बात भी उन्हें सुनायी कि एक बार एक हाथी उनकी पूरी झोंपड़ी को तोड़कर उनका सारा राशन खा गया था। एक अन्य घटना में एक विरक्त महात्मा जो उस जंगल में रह रहे थे, उनकी झोंपड़ी रात को हाथी ने उठा दी। महात्मा अन्दर ही सो रहे थे। झोंपड़ी की लकड़ी की बीम उनके ऊपर गिरी तो उन्हें चोट भी आई और उनकी चीख निकल गयी। चीख सुनकर हाथी उनके ऊपर से भागा। उसके पाँव का थोड़ा सा हिस्सा उनके पेट के साथ टकरा गया जिससे अन्दर कचूमर बन गया। पास में ही दो कुटियां और भी थीं। उसमें रहने वाले महात्मा उनको उठाकर सप्तऋषि आश्रम में ले आये। गोस्वामीजी अपनी कार पर उन्हें रामकृष्ण मिशन अस्पताल ले गये। अस्पताल वालों ने गोस्वामीजी के कहने से महात्माजी को भर्ती तो कर लिया पर साथ ही यह भी कहा कि जब इतनी शक्ति नहीं है तो क्यों ऐसे खतरनाक स्थान पर ठहरते हो। महात्माजी को छः महीने अस्पताल में रहना पड़ा। बाद में चलने-फिरने तो लग गये पर जीवनभर पीड़ा में जीये। उन विरक्त महात्माजी ने भी हमारे महाराजजी को सावधान किया, गोस्वामीजी ने भी

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

डराया। किन्तु स्वामीजी अपने दृढ़ संकल्प से विरत न हो सके। और होते भी कैसे। उनका तो छोटे से छोटा कृत्य भी दिव्य शक्ति के स्पष्ट संकेतों, मार्गदर्शन तथा संरक्षण में संपादित होता था। और इसीलिये उनमें अपने हर निर्णय के प्रति गहरा तथा सहज आत्म-विश्वास होता था। उनकी यह प्रवृत्ति आज भी उनके छोटे से छोटे क्रियाकलाप में प्रत्यक्ष की जा सकती है।

महाराजजी ने गोस्वामीजी व उन महात्माजी को बड़ी नम्रता से स्पष्ट किया और कहा— "मैं जम्मू से इसी संकल्प के साथ आया हूँ। जम्मू में भी साधना की बड़ी सुन्दर जगहें थीं। अब यहाँ झाड़ी में रहने के संकल्प से आया हूँ तो वहीं पर रहूँगा।" भला ऐसे कृतसंकल्प योगी को कौन रोक सका है! तब गोस्वामीजी ने कृपापूर्वक कहा कि वे प्रतिदिन भोजन की व्यवस्था सप्तऋषि आश्रम से कर देंगे। महाराजजी ने नम्रतापूर्वक मना करते हुए कहा कि वे अपना भोजन स्वयं ही बनायेंगे। अस्तु।

उस स्थान पर महाराजजी ने अपने रहने के लिये 12'x14' माप की एक झोंपड़ी बनायी। भजन करने तथा बैठने के लिये एक खुला छप्पर तथा राशन रखने के लिये भी एक छोटी सी कोठरी बनायी। भोजन बनाने के लिये एक दूसरा खुला छप्पर बनाया। बाद में जब पूज्य स्वामी कृष्णदासजी इस झाड़ी में महाराजजी के साथ तीन महीने रहे तो स्वामीजी ने उनके लिये भी एक अन्य कुटिया बनायी थी।

झोंपड़ी के चारों ओर घना जंगल था। सामने पूर्व दिशा में माता जाह्नवी दक्षिण वाहिनी होकर बह रही थीं। वह निर्जन और एकान्त वन भगवद्प्रेम में डूबे उस योगी का सहज आवास था। उस पवित्र स्थान की निर्जनता, निबिड़ता व एकान्त और उस संन्यासी की शान्त, धीर-गम्भीर, अद्वैत आत्मा के रस में डूबी अंतःस्थिति, मानो एक ही तल पर स्पन्दित हो रहे थे। गुरुदेव ने हमें बताया कि झाड़ी में उनका वह संक्षिप्त प्रवास बड़ी तीव्र साधना में बीता।

स्वामीजी महाराज कृष्णदासजी का पूरा ख्याल रखते थे और सब प्रकार से उनकी सेवा भी करते थे। दोनों संत दिन में केवल एक बार ही भोजन किया करते थे जो हमारे गुरुदेव स्वयं बनाते थे। आगे के दूसरे द्वीप पर अक्सर गुज्जर डेरा डाले रहते थे। उनसे कुछ दूध बेचने वाले दूध खरीदने आते थे। उन्हीं से स्वामीजी दूध खरीद लेते थे। इस प्रकार उस निर्जन वन में श्रीभगवान द्वारा संरक्षित व प्रेरित होकर

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

दोनों दिव्य संत भगवद्भाव में दिन रात आकण्ठ डूबे रहते। अहा ! वह कैसा अनूठा समय रहा होगा !

लौकिक व्यवहार के सम्बन्ध में स्वामीजी की वृत्ति आरम्भ से ही हर कार्य को ठीक तरीके से एवं कायदे कानून से करने की रही। अतः उन्होंने अपने वन प्रवास के दौरान ही काफी प्रयास करके अपनी झोंपड़ी की भूमि का पट्टा (लीज़) वन विभाग से ले लिया था। इस सम्बन्ध में उन्होंने स्वयं ही हमें एक बार लिखकर बताया—

"मैंने बिना किसी से पूछे झोंपड़ी बना ली थी। मुझे पता भी नहीं था कि जंगल में बिना पूछे झोंपड़ी बनाना गैरकानूनी है। झोंपड़ी बनाने के एक महीने बाद एक फोरेस्टर वहाँ आये और उन्होंने मुझसे कहा, 'झोंपड़ी उठाइये।' तो मैंने उनसे कहा, 'संत गुरमुखसिंहजी भी तो रहते थे।' इस पर वे कहने लगे, 'उनके पीछे भी तो सरकार पड़ी हुई थी झोंपड़ी उठाने के वास्ते। फिर वे कई सालों से लगातार वहाँ झाड़ी में रह रहे थे। तब वन संरक्षण का कानून भी नहीं था। इसलिये उनको उठाने में कठिनाई थी।' "

"अतः मैंने लीज़ के लिये प्रार्थना पत्र दिया। इस सम्बन्ध में मैं स्वयं देहरादून के डी० एफ० ओ० से भी मिला था। उन्होंने मुझे लीज़ देने का आश्वासन दिया और हरिद्वार में रेंजर को चिट लिख दी कि फोरेस्टर मुझे तंग ना करे। मैं बारह वर्ष की लीज़ लेना चाहता था। फोरेस्टर ने मुझे misguide करके (धोखे में रखकर) प्रार्थना पत्र पर तीन वर्ष लिखवा दिया। वह स्वयं ही फार्म भरवाने के लिये झोंपड़ी में आया था और मेरे हस्ताक्षर करा कर ले गया। तब मुझे तीन वर्ष की लीज़ मिल गयी। मैं सन् 1958 में वापस जम्मू चला गया।

पुनः जम्मू में

सन् 1958 में जब स्वामीजी सप्तसरोवर से पुनः जम्मू वापस आ गये तो मालूम हुआ कि तवी वाली गुफा में कोई चलते फिरते साधु ठहरे हुए हैं। तो आप जम्मू से लगभग पाँच किलोमीटर दूर तलाब-तिल्लो नाम की जगह में अपने प्रिय भक्त सरदार हरिसिंहजी के बाग में स्थित एक कुटिया में कोई तीन महीने रहे थे। इन पूरे तीन महीने आप मौन रहे। जम्मू शहर से उनके भक्त दर्शनार्थ आते रहते थे। जिस दिन महाराजजी ने तीन महीने बाद अपना मौन खोला, वहाँ एक विशाल भण्डारे का

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

आयोजन किया गया। सभी भक्तों ने और आस-पास के क्षेत्र के सैंकड़ों लोगों ने बड़े प्रेम से भण्डारे का प्रसाद पाया।

इस पुण्यभूमि भारतमाता को भी बार-बार प्रणाम करने का मन करता है जिसके जनमानस में संतों-फकीरों के प्रति अकारण ही असीम प्रेम और श्रद्धा है; जो युगों-युगों से सच्चे संतों की पदधूलि में ही अपनी व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, राजनैतिक व आध्यात्मिक पूर्णता के अर्थ ढूंढा करता है; और जिसकी इस महती प्रवृत्ति के कारण ही इतिहास की अनेक उथल-पुथलों के बावजूद यह पुण्यभूमि कभी भी संत विहीन नहीं रही तथा अपने शाश्वत गौरव को सुरक्षित रख सकी। धन्य है वह संस्कृति, वह परम्परा, वह धरणी, जिसकी सौंधी मिट्टी में पलकर कोई सूरजप्रकाश चन्द्रस्वामी बन जाता है, जीवन के परम अर्थ को पा लेता है—स्वयं के लिये भी और सारी मानवता के लिये भी।

झाड़ी में पुनः आगमन

हरिद्वार में सन् 1962 में कुंभ पड़ा था। जम्मू-कश्मीर की धरती को प्रायः नौ वर्षों तक अपनी साधना स्थली बनाये रखने के बाद हमारे गुरुदेव को अब हरिद्वार में माँ जान्ह्वी के भक्तवत्सल, ममतामय अंक में बैठकर दीर्घकाल तक भगवान का भजन-स्मरण करने की तीव्र अन्तर्प्रेरणा हुई। जैसा कि ऊपर बताया गया है कि सन् 1957 से डेढ़ वर्ष तक वे सप्तसरोवर के निकट जंगली टापू में रहकर पतित पावनी माँ भागीरथी की छत्र-छाया में खूब भजन-साधन कर गये थे। वह निर्जन व एकान्त वनद्वीप हमारे प्रभु को बड़ा प्रिय लगा था। सो अक्तूबर, 1961 में, भगवदेच्छा से वे पुनः हरिद्वार आ गये।

जरा सोचें—साधारण व्यक्ति कभी भी अपने सुपरिचित तथा सुरक्षा प्रदान करने वाले स्थान को आसानी से नहीं छोड़ता किन्तु महाराजजी ने आत्म-साक्षात्कार की अति दुर्लभ अवस्था में प्रतिष्ठित हो जाने के बाद भी, समग्र दिव्य अनुभूति के अपने लक्ष्य से आँखें नहीं हटायीं तथा वर्षों की अपनी तपस्थली तथा अपना विशाल प्रेमी, भक्तवृन्द सदा के लिये छोड़कर वे अपनी आगे की और भी कठिन आध्यात्मिक यात्रा तय करने के लिये वन्य प्राणियों से भरे निर्जन वन प्रदेश में दीर्घ काल तक साधना हेतु आ गये। उनके इस निर्णय से अपने ध्येय के प्रति उनकी असाधारण

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

लगन, दृढ़ संकल्प शक्ति तथा सतत भागवती शक्ति के निर्देशन में कार्य करने की प्रकृति का पता चलता है।

पहले सन् 1957 में झाड़ी के जिस स्थान पर वे ठहरे थे। उसके निकट ही उन्होंने एक फूस की झोंपड़ी बिल्कुल गंगाजी के निकट बना ली। तब हरिद्वार में अप्रैल, 1962 में कुंभ था अतः दिसम्बर, 1961 से ही महात्मा उस टापू में झोंपड़ियां बनाकर रहने लगे थे। वह पूरा टापू झोंपड़ियों से भर गया था। लगभग छः महीने तक वहाँ दो सौ महात्मा रहे थे, अतः कुंभ के बाद वहाँ बहुत प्रदूषण हो गया था। कुंभ लगभग मई तक रहा। अतः स्वामीजी जून, 1962 में श्रीनगर चले गये और वहाँ से सितम्बर, 1962 में तीन महीने बाद लौटे। सितम्बर में आकर उन्होंने वहाँ एक नई और बड़ी झोंपड़ी बनायी। इसी संदर्भ में महाराजजी ने एक बार हमें बताया कि–

"जब 1962 में मैंने नई झोंपड़ी बनाई तो वन विभाग वाले फिर मेरे पीछे पड़ गये। तब लीज़ करवाना बड़ा कठिन हो गया था। बड़ी सख्ती हो गई थी। इस लीज़ का देहरादून वाले गुप्ताजी (डी.ए.वी. कॉलेज, देहरादून में छात्र जीवन के समय स्वामीजी से बहुत प्रेम रखने वाले एक प्राध्यापक) को भी पता लग गया। डी.एफ.ओ. (जिला वन अधिकारी) उनके छात्र रह चुके थे। उन पर गुप्ताजी ने जोर डाला कि चाहे कैसे भी हो इस काम को कराना है। चूंकि नई लीज़ तो हो ही नहीं सकती थी, एक डी.एफ.ओ. ने इस आधार पर पुरानी लीज़ का नवीनीकरण कर दिया कि मैं कुछ समय के लिए बाहर गया हुआ था अतः उसे नवीनीकृत नहीं करवा सका। उन्होंने पांच वर्षों की लीज़ दे दी जो हर पांच वर्ष बाद नवीनीकृत हो सकती थी। शुल्क केवल एक रुपया प्रति वर्ष के हिसाब से नाम मात्र का था।"

उक्त जानकारी द्वारा हमें उनकी एक आदर्श नागरिक की छवि का दर्शन होता है जो संन्यासी होकर भी अपने सब सामाजिक व कानूनी दायित्वों के पालन के प्रति सदा सजग हैं।

अब पाठकगण जरा उस झाड़ी के निर्जन अरण्य में पुनः प्रविष्ट हों जहां वे युवा संन्यासी आत्मरति के महारस में निमज्जित थे।

नयी कुटिया के ठीक सामने गंगाजी दक्षिण वाहिनी होकर बहा करती थीं। कुछ ही आगे चलकर बाँयी ओर एक बड़ा सा घूमाव लेकर और भी चौड़ी हो जाती थीं। कुटिया के चारों ओर प्रहरी के रूप में ऊँचे-ऊँचे पेड़ थे। उत्तर की ओर

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

ऋषिकेश के निकट दूर तक फैली पर्वत श्रृंखलाएं दिखायी देती थीं। चारों ओर घना वन था। खैर, शीशम व बेल आदि के दीर्घकाय वृक्षों से पूरा जंगल भरा पड़ा था। दूर-दूर तक कोई प्राणी नहीं था। पूरे वातावरण में गहरी शान्ति और नीरवता थी जो बरबस ही व्यक्ति के चित्त को स्थिर करके उसे शांत, निर्विकार आत्मा की खोज के लिये प्रेरित करती थी। वहाँ का मौन, और निबिड़ एकान्त परम सत्य की खोज में सिर पर कफन बाँधकर निकले हुए योगी के लिये साधना हेतु सर्वोपयुक्त स्थान था। निकट बहती ब्रह्मद्रवा गंगाजी का कलकल स्वर हमेशा उनकी कृपा का आभास कराता रहता था। हाँ, उस शान्ति को अक्सर जंगली हाथियों की भीषण चिंघाड़ें तथा अन्य जंगली जानवरों की आवाज़ें यदा-कदा भंग करती रहती थीं। लेकिन उससे योगी के भगवद्भाव में कोई अन्तर नहीं आता था, अपितु वह और प्रगाढ़ होता था। प्रातः और सायं सप्तसरोवर स्थित दो चार मन्दिरों से घंटा ध्वनि के क्षीण स्वर आस-पास बस्ती होने का आभास कराते थे।

अपने स्वभाव के अनुकूल अरण्य में भी उस वन के राजकुमार ने अपनी झोंपड़ी तथा आस-पास का स्थान बड़ा साफ़-सुथरा, व्यवस्थित और सुन्दर बना रखा था। ऐसा लगता था जैसे भगवान ने यत्नपूर्वक उस योगी के लिये ही गंगाजी की धाराओं से घिरे उस वन-द्वीप की रचना की हो। वल्कल धारण किये, मुख मण्डल पर वैराग्य और तप के तेज से सुशोभित उनकी सौम्य मूर्ति को देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो सच्चे संन्यास के सभी आभूषणों से सुशोभित कोई राजकुमार अपने महल में रह रहा हो। तब महाराजजी का श्रीविग्रह इतना रूपवान था तथा उनके लम्बे बलिष्ठ शरीर का अंग सौष्ठव ऐसा आकर्षक और दिव्य था कि किसकी मजाल जो एक बार उन्हें देखकर उन पर से नजरें हटा ले। हममें से अनेक भक्तों ने तब उनकी नूरानी मूरत का जी भरकर दर्शन किया है। अभी भी उस वैराग्योद्दीपक अतिसुन्दर छवि से मन हटने को नहीं करता। अस्तु।

महाराजजी बताते हैं कि वह स्थान आध्यात्मिक स्पन्दनों से भरपूर था तथा आज भी वहाँ सूक्ष्म शरीर से कई ऋषि निवास कर रहे हैं।

सन् 1964 में वहाँ बहुत बाढ़ आयी थी और स्वामीजी की रक्षा भगवान ने बड़े अलौकिक तरीके से की थी। उसकी चर्चा हम बाद में करेंगे। झोंपड़ी के आगे गंगाजी का तट कटने के कारण महाराजजी को दो बार अपनी झोंपड़ी तट से पीछे को

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

सरकानी पड़ी थी। किन्तु उस टापू की बनावट ऐसी थी कि उसके पिछले हिस्से में बरसात का पानी भर जाता था। अतः सन् 1968 में स्वामीजी ने उस टापू से एक-डेढ़ किलोमीटर और अन्दर की ओर दूसरे टापू में कुटिया बनाने का निर्णय लिया।

सन् 1964 में झाड़ी में उन्होंने अपना आवास 50' x 50' माप की भूमि पर बनाया था। शयन की तथा ध्यान की कुटियाएं अलग-अलग थीं। मुख्य कुटिया के आगे बरामदा था। दो फूस के बने खुले शैड थे।

सन् 1968 में गंगाजी में बाढ़ के डर से जो नये टापू पर आवास बनाया था उसमें भी महाराजजी ने रहने की कुटिया, भजन की कुटिया तथा रसोई अलग-अलग बनायी थीं। बाड़ के भीतर ही एक हैन्ड पम्प भी भक्तों ने लगा दिया था ताकि बरसातों में भी गुरुदेव को शुद्ध पानी मिल सके। बाड़ के भीतर ही एक खुला हुआ एस्बेस्टस चद्दरों का शैड था। कुटियाओं के आस-पास सौन्दर्यप्रिय प्रभु ने सुन्दर-सुन्दर पुष्पों की क्यारियां लगाई हुई थीं। बाड़ से लेकर गंगाजी तक का रास्ता समतल और साफ-सुथरा बनाया हुआ था। गंगाजी के तट पर एक फूस का एक शैड भी बनाया था। पूरे के पूरे आवास में महाराजजी ने सुखद सुव्यवस्था तथा स्वच्छता रखी हुई थी।

वस्तुतः बाह्य जीवन में सम्यक् आचार-विचार से सजग, स्वस्थ एवम् सुदृढ़ चित्त का निर्माण होता है जिसके द्वारा हम परमात्मा का ठीक प्रकार से ध्यान-स्मरण कर सकते हैं। पूज्य उड़ियाबाबा कहा करते थे, जो साधक ठीक-ठीक झाड़ू नहीं लगा सकता वह ठीक-ठीक ध्यान भी नहीं कर सकता। अस्तु।

अपने झाड़ी प्रवास के अन्त तक, अर्थात् अक्टूबर, 1970 तक, महाराजजी इसी कुटिया में वास करते रहे।

झाड़ी में भक्तों का आगमन

देशभर में हिन्दुओं का पावनतम् तीर्थ तथा धार्मिक स्नायु केन्द्र होने के कारण हरिद्वार में भारतभर के सभी प्रान्तों से जिज्ञासु व भक्त आते ही रहते थे। अतः महाराजजी के झाड़ी में सन् 1962 से सन् 1970 के प्रवास की अवधि में भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तों से आये बहुत से जिज्ञासु उनके सम्पर्क में आये तथा शीघ्र ही उनके गहरे भक्त अथवा शिष्य बन गये। उस समय के भक्तों में से कुछ के नाम इस प्रकार

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

हैं— करनाल के दिवंगत लाला खुशीरामजी (श्रीकौड़ाराम), श्रीकिशनचन्दजी सलूजा, पटना के श्रीयोगप्रेमानन्दजी वानप्रस्थी (पूर्व नाम श्रीमोहनलाल अरोड़ा), हरिद्वार की पंडिताइन शिमलादेवी, सहारनपुर के दिवंगत श्रीमुकुन्दलालजी गर्ग, दिल्ली के श्री डी. आर. मौंगा, दिवंगत भगत मदनलालजी तथा श्री के. के. कपूरजी, मेरठ के श्रीकिशनचन्दजी गोयल, कोटा के श्री जे.एन. मल्होत्राजी, अमृतसर के दिवंगत श्री सी.एल.सहगलजी, फाज़िल्का के दिवंगत चौधरी बिहारीलालजी चुग, हस्तिनापुर के श्रीदौलतरामजी, तथा और भी अन्य कई।

पंडिताइन शिमलादेवी हरकी पौड़ी के निकट रहती थीं तथा उनकी महाराजजी में अनन्य श्रद्धा-भक्ति थी। वे तब भी बहुत बूढ़ी थीं। उनका मन हमेशा जंगल में महाराजजी के दर्शनों को लालायित रहता था। किन्तु वृद्ध शरीर होने के कारण वे अकेली स्वयं नहीं जा सकती थीं। अतः हरकी पौड़ी या अन्य स्थान पर उन्हें सच्चे संत/सद्गुरु की खोज में कोई भी योग्य जिज्ञासु/भक्त दिखता तो वे उसे तुरन्त महाराजजी के पास जाने को प्रेरित करतीं। इससे उस भक्त का तो कल्याण होता ही था, चतुर पंडिताइनजी को भी बार-बार महाराजजी का दर्शन लाभ हो जाता था। इस प्रकार पंडिताइनजी ने कितने ही भक्तों पर उपकार करके उन्हें महाराजजी से मिलवाया। महाराजजी ने हमें बताया कि पंडिताइनजी को तम्बाकू खाने का बहुत व्यसन था। पंडितजी तथा दूसरे लोग समझा-समझाकर हार गये थे पर वे उस व्यसन को छोड़ न सकीं। एक दिन महाराजजी ने लीला की। पंडिताइनजी को कहा कि तम्बाकू और मेरे में से किसी एक को चुन लो। बस यह सुनना था कि पंडिताइनजी एक घंटे तक रोती रहीं और फिर जीवन में कभी तम्बाकू को हाथ नहीं लगाया। यह स्वयं तथा किसी विकार-व्यसन में से एक का चुनाव करने वाला कठिन वाक्य बोलकर महाराजजी ने अपने कितने ही भक्तों से शराब, जुआ, बीड़ी, सिगरेट, मांस आदि जैसे बुरे व्यसन छुड़वाये हैं। यह है उनके प्रेम का प्रताप!

आध्यात्मिक उपलब्धि

इसी झाड़ी क्षेत्र में गुरुदेव अपने चिरप्रतीक्षित परम अनुभव में सदा के लिये प्रतिष्ठित होकर कृतकृत्य हुए। वे अनूठे योगी आत्मानुभव की गहन शान्ति और महान सुख का रसास्वादन पहले ही कर रहे थे। लेकिन वे वहीं पर रुक नहीं गये थे।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

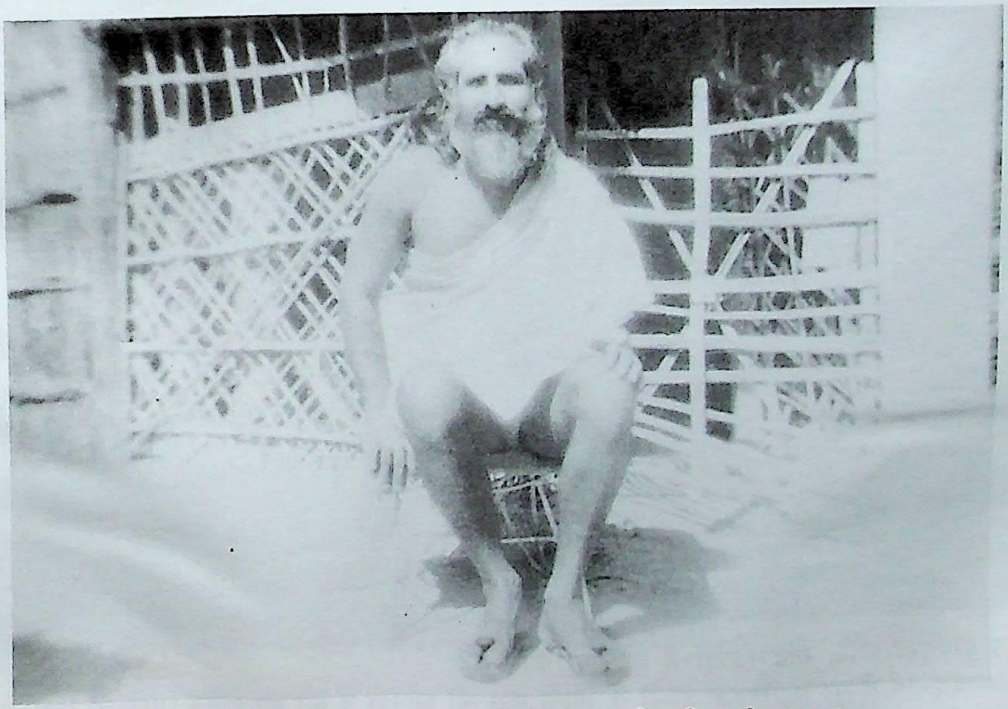
वे स्वयं लिखते हैं, "हालाँकि आत्मसाक्षात्कार एक बहुत ही ऊँचा आध्यात्मिक अनुभव है, किन्तु यह भी अन्तिम लक्ष्य नहीं है। यह ब्रह्म के केवल निर्गुण, निराकार, अचल, निष्क्रिय आयाम का अनुभव है।" अतः अध्यात्मतीर्थ के जिस पड़ाव पर बड़े-बड़े सिद्ध, साधक अटक जाते हैं, श्रीचन्द्रस्वामीजी वहाँ से भी आगे की ओर बढ़ते गये। स्वयं को पर्याप्त विनयशील, पूर्वाग्रहों से मुक्त, सजग तथा भगवद्कृपा के सुकोमल, सूक्ष्म स्पर्शों के प्रति संवेदनशील बने रहकर वे धीरजपूर्वक आगे बढ़ते ही गये। लेकिन अब यह यात्रा दुर्गम पथ वाली और संघर्षों से भरी न थी; अब पथ अन्धकारपूर्ण और कण्टकाकीर्ण न था। अब तो यह रथारूढ़ राजकुमार की दिन के प्रखर प्रकाश में, राजपथ द्वारा अपने राजमहल को लौटने की स्वाभाविक यात्रा थी। ध्येय की कौन कहे, स्वयं यात्रा ही परम आनन्दमयी थी। पग-पग पर प्रभु से सम्भाषण, सान्निध्य व प्रेमालाप का महारस!

धीरे-धीरे महाराजजी के आत्मानुभव ने विस्तीर्ण होकर अन्दर-बाहर पूरे अस्तित्व को ही अपने में समाहित कर लिया। अंत में श्रीभगवान की असीमकृपा से उन्हें ब्रह्म का, परमसत्य का पूर्ण तथा समग्र अनुभव हो गया। अगर समय की भाषा में उनकी पूर्णता के समयातीत अनुभव की बात करें तो वह अनुभव उन्हें प्रातः चार बजे ध्यान के समय हुआ था। तब उनकी आयु मात्र पैंतीस वर्ष की थी। जन्मों-जन्मों की आध्यात्मिक यात्रा की पूर्णाहूति हुई। वे कृतकृत्य हुए। उनके समग्र भगवद्अनुभव के विमल आलोक में पूर्ण ब्रह्म के अनेक विरोधाभासी भावपूर्ण रूप से समन्वित हो गये। पहले का आत्मविहार अब सर्वात्मविहार में बदल गया। अब तक जो ब्रह्म केवल उनके स्वयं का केन्द्र था, अब सारे जगत् में विस्तीर्ण होकर व्याप्त हो गया। सब कुछ ब्रह्म ही है ऐसा जान पड़ने लगा। अनन्त अखण्ड ब्रह्म के पूर्णबोध ने 'स्व' तथा 'पर' के भेद को तिरोहित कर दिया। 'हूँ' और 'है' के बीच की दीवार गिर गयी। तब उन्हें निष्क्रिय, शान्त, साक्षी आत्मा तथा सार्वभौमिक भागवती शक्ति के बीच और निर्गुण, निराकार, सर्वातीत ब्रह्म तथा सर्वव्यापी, सर्वाधार, सगुण साकार ब्रह्म के मध्य, पूर्ण सामन्जस्य का अनुभव हो गया। कठिन माया का सम्मोहन सदा के लिये टूट गया और परमसत्य का यह समग्र अनुभव उनके अस्तित्व में सदा-सदा के लिये आत्मसात् होकर स्थायी हो गया।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

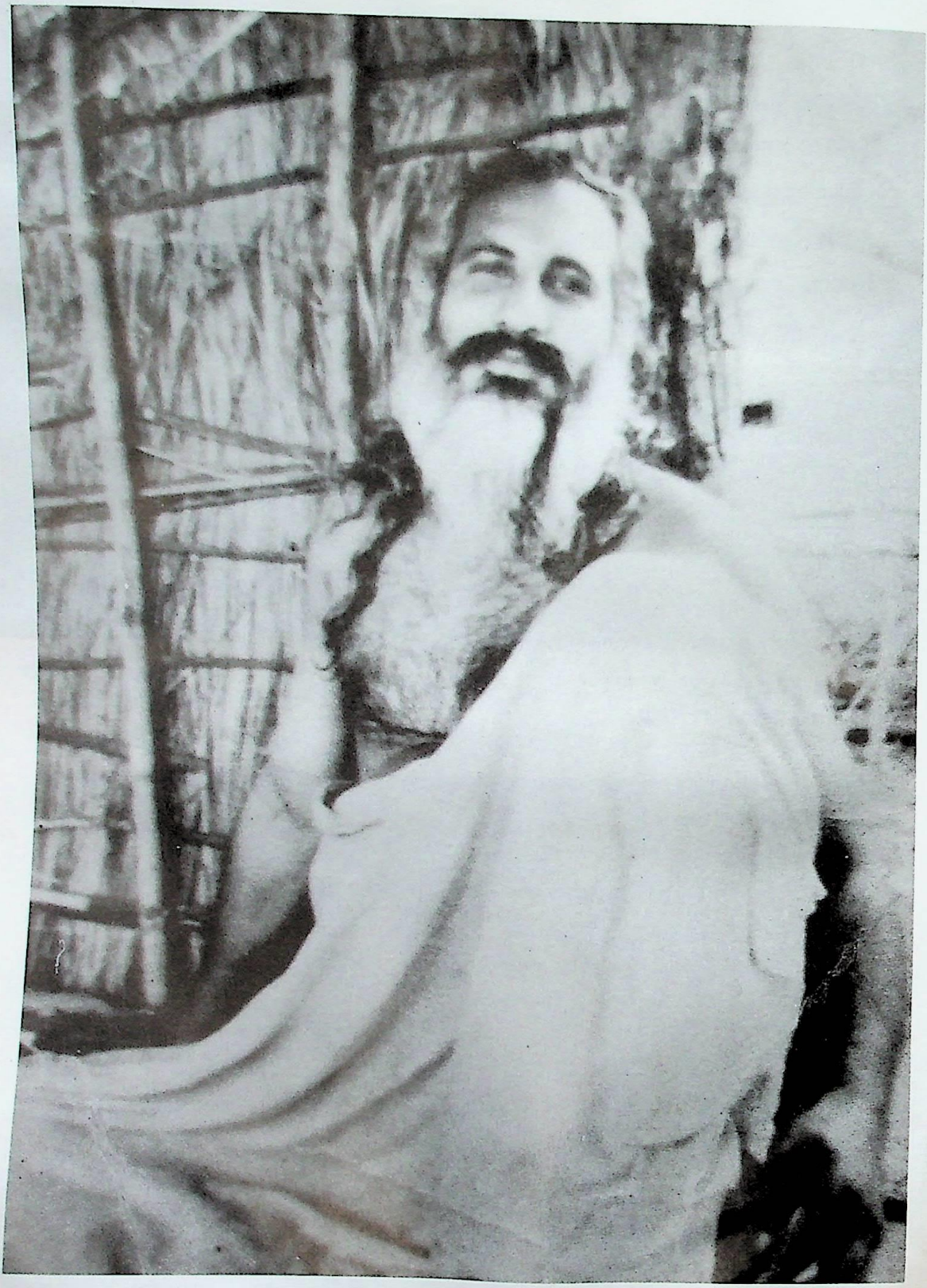


सप्तसरोवर झाड़ी, हरिद्वार के वनद्वीप में उस स्थान की झलक जहां गंगाजी के तट पर झोंपड़ी बनाकर स्वामीजी लगभग नौ वर्ष रहे।



सन् 1965-66 के आस-पास झाड़ी स्थित अपनी कुटिया के बाहर।

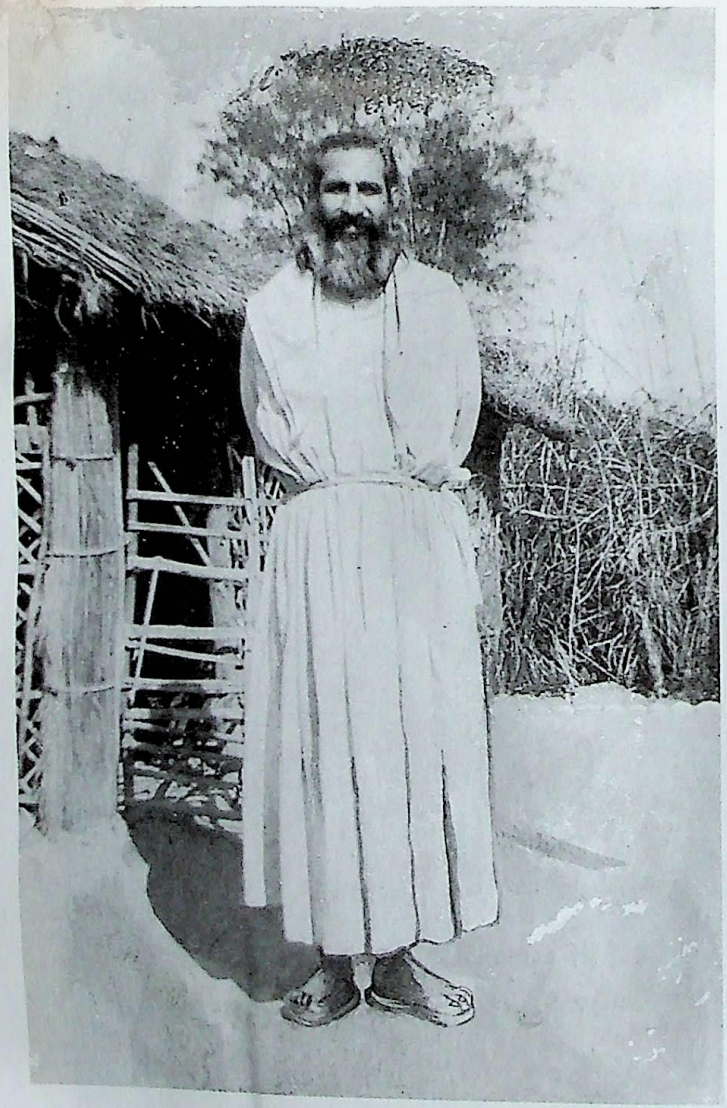
CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

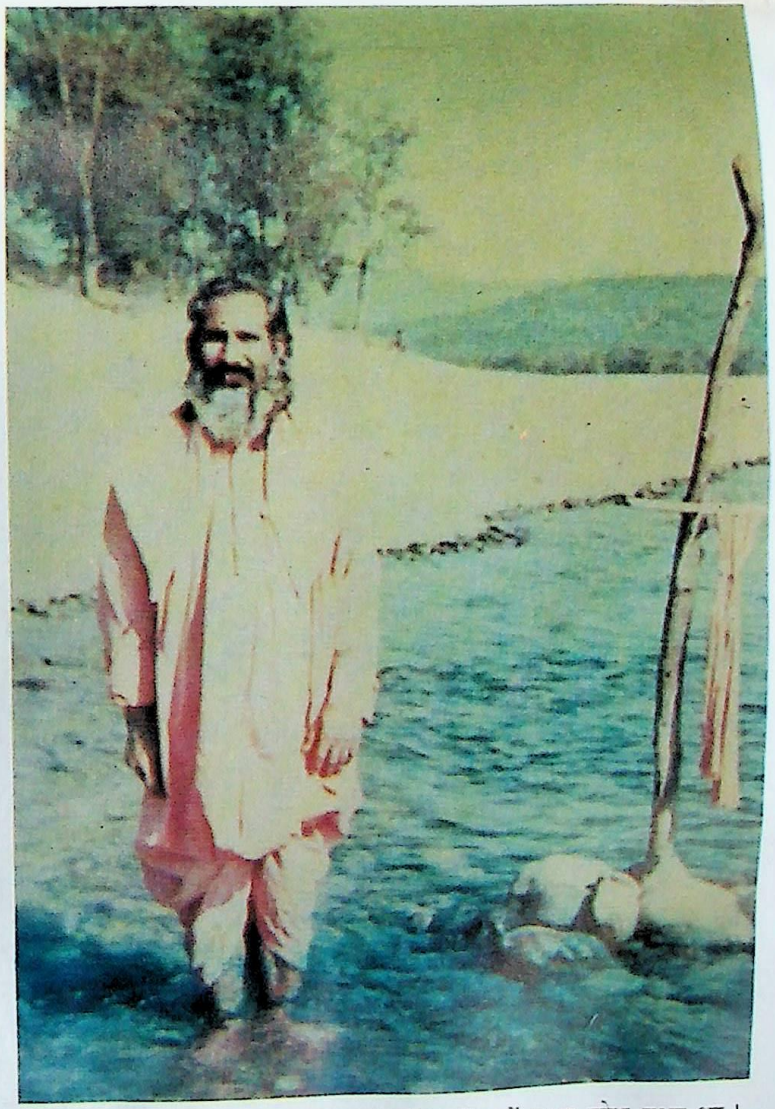


प्रभुविमुख व्यक्ति यदि जिन्दा है तो मुर्दा कौन है ?

भगवद्भाव में चूर महाराजजी झाड़ी में अपनी फूस की झोंपड़ी में बैठे हुए। सन् 1968 के आस-पास का चित्र।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri





वह निर्जन और एकान्त वन भगवद् प्रेम-ज्ञान में डूबे योगी का सहज आवास था। यहीं माता जान्हवी की गोद में उन्हें परम बोध हुआ था। एक चित्र में स्वामीजी अपनी कुटिया के बाहर खड़े हैं। दूसरे चित्र में वे झोंपड़ी के ठीक सामने गंगाजी की धारा में खड़े हुए हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



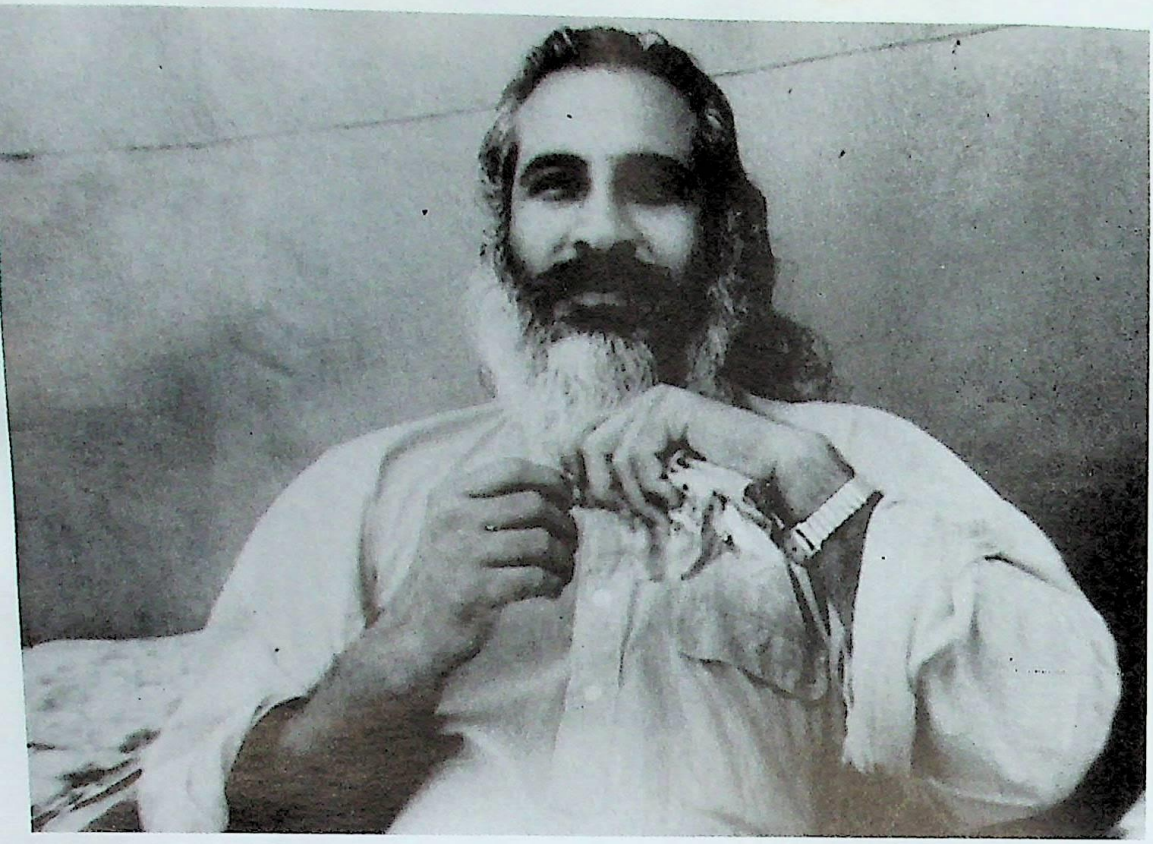
पुष्प में मधु के विकसित होने पर स्वतः ही भ्रमरों का आना आरम्भ हो जाता है।
झाड़ी में दूर-दूर से भक्त गंगाजी की कई धाराओं को पार करके आते थे तथा वनवासी योगी का दर्शन करके कृतकृत्य हो जाते थे।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



सीतल चन्दन चन्द्रमा तैसे सीतल संत ।।
तैसे सीतल संत जगत की ताप बुझावैं, जो कोई आवै जरत मधुर मुख वचन सुनावैं।
धीरज सील सुभाव छिमा ना जात बखानी, कोमल अति मृदु बैन बज्र को करते पानी।
रहन चलन मुस्कान ज्ञान को सुगन्ध लगावैं, तीन ताप मिट जायें संत का दरसन पावैं।
पलटू ज्वाला उदर की रहै न मिटे तुरंत, सीतल चन्दन चन्द्रमा तैसे सीतल संत।
झाड़ी में दर्शन-सत्संग को आये भक्तों के संग।

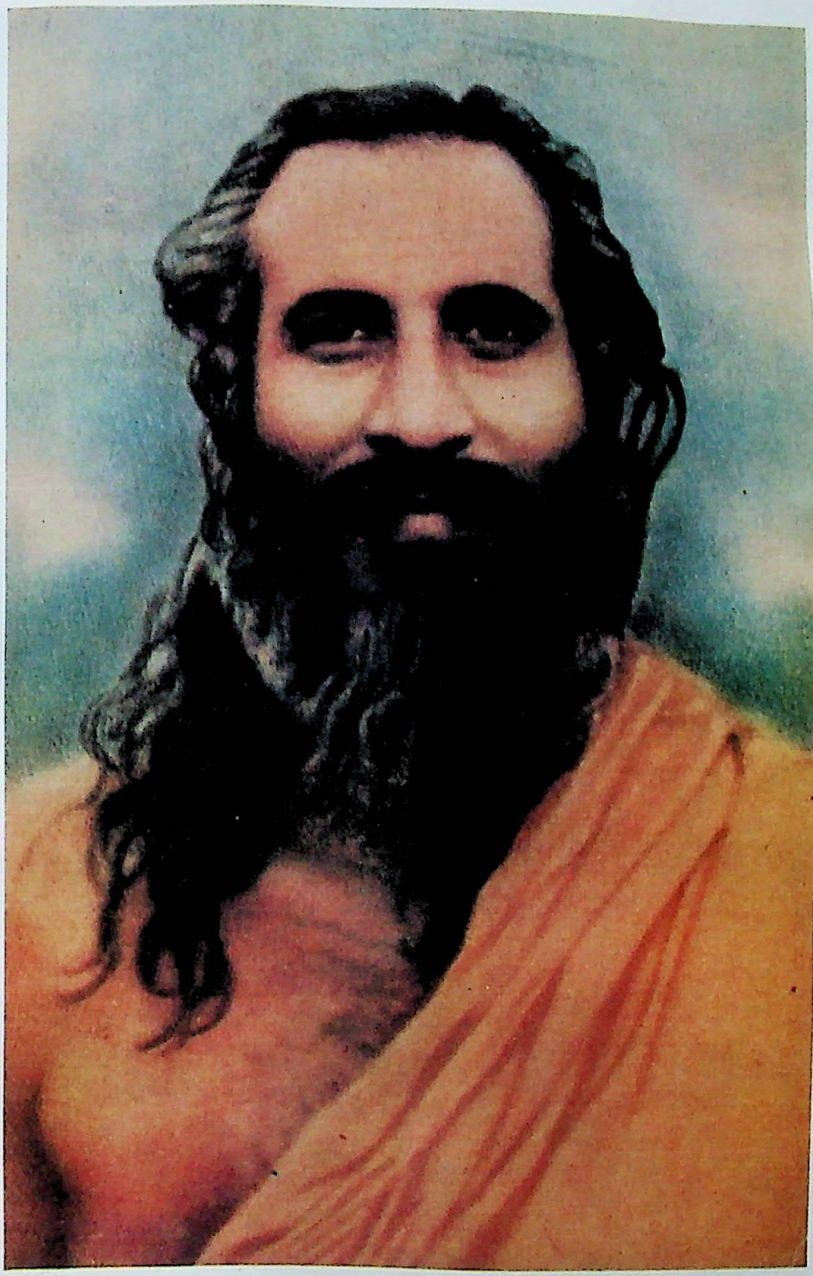
CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri





उनकी समाधि. चेतना जन्य सहज भव्यता। सन् 1968-69 के आस-पास झाड़ी में कुटिया के अन्दर लिये गये चित्र।

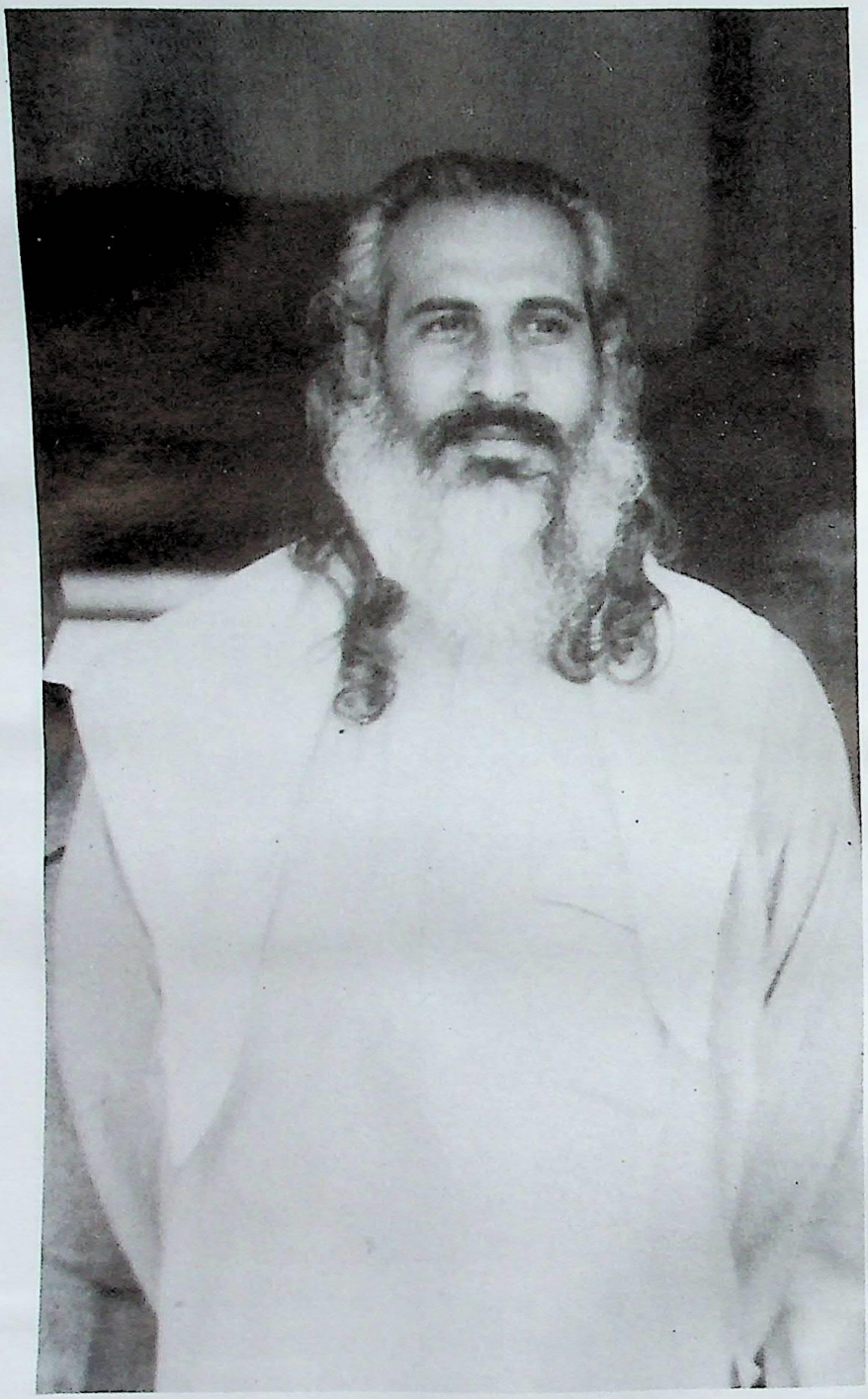
CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



परमात्मा के साक्षात्कार से अथवा मिलन से मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। उसकी सारी शंकाएं मिट जाती हैं। जैसे सूर्य के उदय से अंधकार तिरोहित हो जाता है, ऐसे ही परमात्मा के साक्षात्कार से मनुष्य का अज्ञान और मोह-जाल छिन्न-भिन्न हो जाता है तथा वह सदा सर्वदा अपने स्वरूपभूत आनन्द में डूबा रहता है। प्रभु उपलब्ध मनुष्य से यह आनन्द सहज रूप से सम्पूर्ण जगत् में प्रेम और शान्ति के रूप में विकीर्ण होता रहता है।

झाड़ीवास काल में अद्‌भुत रूप लावण्यमयी उनकी एक अन्य तेजस्वी छवि।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



कर्तव्य और अकर्तव्य के समीक्षा रूपी वन में भटक जायेंगे, तो उससे बाहर निकलना अति कठिन हो जायेगा। अपने क्षुद्र अहं को छोड़ दीजिये और मानसिक निष्क्रियता की अवस्था में जैसी प्रेरणा प्रभु दें वैसे ही सामने आये कार्य को सहज रूप से कर दीजिये। कर्म-बन्धन से मुक्त होने का यह अचूक सूत्र है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

यहां 'साक्षात्कार' (enlightnment) तथा 'उपलब्धि' (realization) में जो भेद गुरुदेव बतलाते हैं उसके बारे में हम निवेदन कर दें। साक्षात्कार तो आता है फिर चला जाता है। वह स्थायी नहीं होता। बार-बार वैसा अनुभव होने से साधक के व्यक्तित्व के सभी अंग यथा— शरीर, इन्द्रियां, मन, बुद्धि, प्राणादि—भगवद् अनुभव को वहन तथा आत्मसात् करने के धीरे-धीरे योग्य बन जाते हैं; और अन्त में साक्षात्कार अविछिन्न, अखण्ड, तैलधारावत् सतत और सुदृढ़ अनुभूति में परिणत हो जाता है। पूर्णता का यह समग्र अनुभव भी धीरे-धीरे महाराजजी में आत्मसात् होकर स्थिर, दृढ़भूमि और स्थायी हो गया। तभी से हमारे प्रियतम गुरुदेव सतत श्रीभगवान में स्थित, पूर्णतया भगवदेच्छा द्वारा संचालित होकर, दिव्य अन्तर्प्रेरणा द्वारा हमें अपनी दिव्य लीला की रसमाधुरी का रसास्वादन करा रहे हैं। पूज्य महाराजजी अपनी लगन, भागीरथ प्रयासों और परम उपलब्धि का सारा श्रेय अपने प्रेमास्पद, प्राणधन, अपनी आत्मा के स्वामी, सद्गुरु बाबा भूमनशाहजी को देते हैं।

महाराजजी के पूर्ण बोध के सन्दर्भ में एक बार किसी ने उनसे स्पष्ट करना चाहा था कि पूर्ण बोध के बाद तो उनमें मृत्यु का भय सदा के लिये निवृत्त हो गया होगा। इस पर उन्होंने बताया, "मृत्यु का भय तो उस अनुभव के पहले ही समाप्त हो जाता है। वह भय तो मन और शरीर के साथ तादात्म्य के कारण होता है। जैसे-जैसे साधना से शरीर-मन से तादात्म्य टूटता जाता है तो मृत्यु का भय निवृत्त होता जाता है। वह भय अन्तिम उपलब्धि से बहुत पहले ही समाप्त हो जाता है।"

झाड़ी में जीवन

आइये, अब झाड़ी में गुरुदेव के पावन जीवन से जुड़े कुछ पहलुओं एवं रोमांचकारी घटनाओं पर दृष्टि डालने का प्रयास करें।

झाड़ी प्रवास के नौ वर्षों का सुदीर्घ काल नियमित तीव्र साधना, परम अनुभूति के स्थायीकरण एवं कठोर नियम-संयम एवं कठिनतम परिस्थितियों-परीक्षाओं के मध्य बीता।

झाड़ी में भी महाराजजी की साधना का पुराने वाला कार्यक्रम ही था किन्तु वन प्रदेश होने के कारण शौच इत्यादि दिन निकलने के बाद ही जाना होता था।

अनुभव से वे फूस की कुटिया बनाने में बड़े निपुण हो गये थे। जंगल से

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

लकड़ी आदि काटकर झोंपड़ी की मरम्मत, बाड़ आदि लगाना स्वयं ही किया करते थे। वे लकड़ी और रस्सी की बड़ी सुन्दर कुर्सी बनाकर उपयोग में लाते थे।

झाड़ी में स्वतः ही पूरा समय पूर्ण मौन में बीतता था तो भी सत्य के जिज्ञासु तथा अनेक भक्त वहाँ भी उनके पास आते रहते थे। अतः आपने सन् 1963 से अपने एकान्तवास की अवधि में मौन रहने के लिये बड़ा ही कठिन लेकिन खूब सोच-समझकर एक कार्यक्रम बना लिया था। इसके अनुसार वे वर्ष के छः माह—एक जनवरी से अट्ठाइस फरवरी तक दो महीने के लिये तथा पन्द्रह जून से चौदह अक्तूबर तक चार महीने के लिये काष्ठ मौन में रहते थे। इस मौन की अवधि में वे न तो किसी भक्त अथवा सेवक से मिलते थे तथा न किसी से पत्र व्यवहार ही करते थे। पूर्ण एकान्तवास की इस अवधि में वे पूर्ण निवृत्ति का जीवन व्यतीत करते थे। काष्ठ मौन एक पारिभाषिक शब्द है जिसकी अवधि में बोलना, लिखना तथा संकेत आदि से व्यवहार करना—सभी का निषेध होता है। अन्य छः माह—पहली मार्च से चौदह जून तक तथा पन्द्रह अक्तूबर से इकत्तीस दिसम्बर तक की अवधि में भी महाराजजी सारा समय मौन ही रहते थे लेकिन प्रतिदिन दोपहर के बाद एक-डेढ़ घंटे के लिये उनके दर्शनों व सत्संग के लिये दूर-दूर से आये हुए भक्तों के लिये उपलब्ध होते थे। इस मौन को साधारण मौन कहा जाता था। साधारण मौन की अवधि में प्रभु भक्तों से पत्र-व्यवहार भी करते थे। मौन का यह कार्यक्रम महाराजजी ने बहुत सोच समझकर बनाया था। पन्द्रह जून से पन्द्रह अक्तूबर तक तो वर्षा ऋतु होती थी। मई महीने में ही पहाड़ों पर बर्फ पिघलने और गंगाजी में जल बढ़ जाने के कारण गंगाजी की सभी धाराओं से वह टापू चारों ओर से घिरकर बाहरी जगत् से कट सा जाता था। इस अवधि में किसी भी व्यक्ति का वहाँ आना असम्भव सा था। इसलिये अरण्यवास के नितान्त एकान्तवास की इस अवधि में हमारे प्रभु, बिना किसी व्यवधान के माँ जाह्नवी के वरद्हस्त के नीचे, भगवान के साथ प्रगाढ़ तथा परम माधुर्यपूर्ण प्रेमालाप में निमग्न रहते। काष्ठ मौन की दूसरी दो माह की अवधि में मौसम बिल्कुल साफ होता परन्तु ठण्ड बहुत होती थी। अतः यह काल भी प्रभु ने अपनी आध्यात्मिक शीतकालीन निष्क्रियता (spiritual hibernation) हेतु चुना। यह भी सम्भव है कि प्रभु ने अपने काष्ठ मौन को वर्ष में दो भागों में विभक्त इसलिये किया कि उसका प्रभाव पूरे वर्ष भर रहे। शास्त्र कहता है —

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

'न मृष्यते प्रथमं नापरं वचो अस्य क्रत्वा सचते अप्रद्दपित,'

ऋग्वेद की ऋचा–7

"अर्थात् वह अग्नि देवता अपने बोलने से पहले किसी बोल को और न बाद में ही, किसी के वचन (वाद-विवाद) को सहन करता है। निरभिमान होकर आया पुरुष ही इस अग्नि के कर्म तथा प्रज्ञा से अपने आपको जोड़ सकता है। तात्पर्य यह है कि आत्मारूपी अग्नि के साक्षात्कार से पूर्व शास्त्रीय वाद-विवाद तथा साक्षात्कार के बाद प्रचार-प्रसार से तत्ववेत्ता को दूर रहना चाहिये।" यह उक्ति महाराजजी पर पूर्णरूप से चरितार्थ होती है।

इसके विपरीत साधारण मौन की अवधि प्रभु ने ऐसे मौसम में चुनी जिसमें इच्छुक भक्तों द्वारा उस कठिन स्थान पर आसानी से पहुँचा जा सके।

जैसा कि हम जानते हैं वह द्वीप हिंसक पशुओं तथा विशेषकर जंगली हाथियों से भरा हुआ था। यह परमाश्चर्य की बात है कि नौ वर्षों की लम्बी अवधि में उन्हें एक खरोंच भी नहीं आयी।

झाड़ी में गुरुदेव एक ही समय भोजन करते थे। जैसा कि हमने देखा है, छोटे से छोटे कार्य को करने में भी उनकी योजनाबद्ध, दक्ष तथा वैज्ञानिक कार्यपद्धति का दर्शन होता है। वे हमें बताते हैं कि वे लगभग पचास-साठ मिनट में सब भोजन बनाकर तथा भोजन स्वयं ग्रहण करके निवृत्त हो जाते थे। आइये उन्हीं के शब्दों को पढ़ें—

"सवेरे दूध पीकर उसी समय गर्म करके थर्मस में शाम के वास्ते रख देता था। खाना बारह बजे बनाना शुरु करता था और एक बजे तक खाना खाकर, बर्तन साफ करके रख देता था। कुकर में सब्ज़ी या दाल या दोनों चीजें (कुकर के दो भागों में) उबाल लेता था। बाहर मिट्टी के चिकने प्याले में निकालकर उसमें एक चम्मच घी डाल लेता था। उसी समय कुकर में थोड़ा सा गर्म पानी डाल कर ढक्कन बन्द कर देता था। मेरे खाना खाने तक उसमें पानी गुनगुना हो जाता था। क्योंकि कुकर में कभी घी तो डालता ही नहीं था इसलिये चिकनाहट नहीं होती थी इसलिये उसी पानी से धोकर रख देता था। कभी आलस आ जाये तो कुकर में चावल व सब्ज़ी इकट्ठी बना लेता था। क्योंकि सब्ज़ी पकने के बाद कुकर में से गैस निकलने में पाँच-सात

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

मिनट लगते थे तब तक रोटी बना लेता था। रोटी को बनाने में अलग से समय नहीं देना पड़ता था।"

जीवनोपयोगी आवश्यक वस्तुएं भक्तों के माध्यम से भगवान जुटा देते थे। धन को न छूने के संकल्प के पूरा होने के बाद सम्भवतः सन् 1960-1961 में आपने ओरियंटल बैंक ऑफ कॉमर्स की सप्तसरोवर शाखा में अपना बचत ख़ाता भी खुलवा लिया था। झाड़ी में आने के कुछ समय पश्चात् ही आपका सप्तऋषि आश्रम वालों से परिचय हो गया था। परिचय होने के पश्चात् महाराजजी भक्तों द्वारा उन्हें भेंट चढ़ाये गये धन को कभी झोंपड़ी में नहीं रखते थे बल्कि भेंट देने वाले भक्त के हाथ ही उसे सप्तऋषि आश्रम के मैनेजर पंडित मोहनलालजी बहुगुणा को भेज दिया करते थे। जिस भी वस्तु की आवश्यकता होती, पंडितजी को लिख भेजने पर पण्डितजी स्वयं वह वस्तु ख़रीदकर महाराजजी को भेज देते थे। वे महाराजजी के धन का पाई-पाई का हिसाब रखते थे। जो रुपया पैसा बचता वे स्वामीजी के खाते में जमा करा देते। महाराजजी के प्रति उनकी अनन्य श्रद्धा-भक्ति थी। अब उनका स्वर्गवास हो गया है।

सन् 1961 में ही महाराजजी की बाह्यलीला के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण घटना हुई। महाराजजी के एक भक्त श्रीमुलखराज गम्भीर (भगतजी) जो तब दिल्ली में रह रहे थे, ने उन्हें सप्तसरोवर हरिद्वार में भूमि ख़रीदने के लिये पन्द्रह सौ रुपये का ड्राफ्ट भेजा। उस धन से महाराजजी के नाम से सप्तसरोवर क्षेत्र में एक प्लाट ख़रीद लिया गया। सन् 1961 से 1970 तक एक महात्मा स्वामी प्रकाशानन्दजी वहाँ उस प्लाट पर झोंपड़ी बनाकर रहते रहे। सन् 1970 में भगवदेच्छा से उस स्थान पर 'सेवक निवास' नाम के छोटे से आश्रम का निर्माण हुआ जिसमें महाराजजी कृपा करके भक्तों के अनुरोध पर जंगल छोड़कर रहने आ गये। बाद में सन् 1990 में इसी सेवक निवास को बेचकर उस धनराशि से साधना केन्द्र आश्रम बना।

सेवक निवास बनने के बाद स्वामी प्रकाशानन्दजी आश्रम के पास ही ख़ाली पड़े एक कमरे में रहने लगे थे। वे भिक्षा करते थे। उनके लिये चाय-चीनी आदि की व्यवस्था महाराजजी आश्रम से ही करवा दिया करते थे। उन्हें दमे की बीमारी थी। उनके अन्त समय में उनकी देख-रेख हेतु महाराजजी उनके पास अपने सेवक

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

श्रीजे.एन. मल्होत्राजी को भेजा करते थे। उन्हीं के सामने उन संत का शरीर छूटा था। अस्तु।

झाड़ी में भी महाराजजी बड़े सुव्यवस्थित ढंग से रहा करते थे। जैसा कि हमने पहले बताया वे अपने रहने का स्थान हमेशा बड़ा साफ-सुथरा रखते थे। झोंपड़ी के बाहर फूलों की क्यारियां लगाई हुई थीं। झोंपड़ी से लेकर गंगाजी तक चालीस-पचास गज़ की दूरी पर एक तीन फुट चौड़ी साफ-सुथरी पगडण्डी बना रखी थी। मजाल कि उस पगडण्डी में जरा सी भी घास दिखाई दे जाये। पगडण्डी के दोनों ओर गंगा तट से चुने हुए गोल, चिकने पत्थर लगा रखे थे। प्रभु अकेले रहते थे तो भी सब चीजों की व्यवस्था इतनी सुन्दर कर रखी थी मानो किसी राजा के आगमन की प्रतीक्षा हो।

कभी-कभी गंगाजी के पार सामने के वन में दूर-दूर तक अकेले विहार कर आते थे। कभी गंगाजी के तटपर बैठकर देर तक बतखों का विहार देखते रहते। कभी गंगाजी में टायर की ट्यूब पर सवार होकर घंटों जल-क्रीड़ा किया करते। कभी सावन की कालीरात में बरसती हुई घटाओं में तथा कड़कड़ाकर चमकती हुई बिजली में निर्भय होकर अपने प्रियतम का घनघोर गान सुनते तो कभी भयंकर चिंघाड़ करते हुए जंगली हाथियों के झुंड को देखा करते। अपनी आत्मा के परमरस में लीन वे उस वन में भगवान की कितनी ही लीलाओं को देखा करते थे। आखिरी वाले टापू में (यहाँ महाराजजी अपने झाड़ी प्रवास के अन्तिम चरण में रहे थे। इसकी चर्चा बाद में की गयी है।) तो झोंपड़ी के ऊपर एस्बेस्टस की शीटें डाल दी थीं। अतः गर्मियों में वह झोंपड़ी भट्टी की तरह गर्म हो जाती थी। इसलिये महाराजजी जहाँ भी गंगाजी में किसी वृक्ष की छाया पड़ती थी, वहाँ लकड़ी की बैंच डाल लिया करते थे तथा उस पर बैठकर पानी में पैर डुबाये सारा दिन जाप किया करते थे। कभी-कभार वे बांसुरी भी बजाया करते थे। कई बार जब भक्त झाड़ी में सत्संग-दर्शन हेतु जाते तो बड़े प्रेमपूर्ण आग्रह से महाराजजी से बांसुरी सुना करते थे।

ये सब तो बाहर के जगत् की बातें हैं। बोध के स्तर पर तो हमारा दृढ़ विश्वास है कि झाड़ी का सुदीर्घ नौ वर्षों का काल एक अनुपम, घनीभूत दिव्यरस के आस्वादन में तथा भगवान की दिव्य-लीला के किसी दुर्लभतम अंश के रूप में व्यतीत

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

हुआ। जैसा कि ऊपर वर्णन किया है कि इसी स्थान पर महाराजजी को सर्वोच्च भगवदानुभूति हुई थी।

सम्भवतः सन् 1962 में मध्य प्रदेश के गुना जिले के प्रसिद्ध 'परमहंस अद्वैत-मत' डेरे के संत, राजा महात्मा गुरुदेव की कुटिया में कुछ दिन रहे थे। अनेक वर्षों बाद उन्होंने अपने एक सेवक को बताया था कि एक दिन जब उन्होंने प्रातःकाल तीन बजे महाराजजी को झोंपड़ी में ध्यान करते देखा तो उस समय उनके भ्रूमध्य भाग, जिसे आज्ञाचक्र भी कहते हैं, से तेज प्रकाश निकल रहा था। यह बात हमें उन महात्मा के सेवक, कोटा निवासी श्रीमोतीलालजी ने स्वयं बतायी थी। जब महाराजजी से इस घटना के बारे में पूछा गया तो उन्होंने लिखकर दिया कि आज्ञाचक्र प्रकाश का केन्द्र है तथा वहाँ का प्रकाश बाहर भी प्रकट हो सकता है। यह भी बताया कि उन्हें और कई सेवकों ने भी इसी प्रकार के दर्शन की बात उनसे कही थी। जो दूसरी बात राजा महात्मा ने अपने सेवक को बतायी थी वह यह कि महाराजजी को इच्छामृत्यु की भी सिद्धि है। हमें तो गुरुदेव ने स्वयं कभी इस प्रकार की कोई बातें नहीं बतायीं, अतः उनकी लीला वे ही जाने!

अब हम संक्षेप में झाड़ी में महाराजजी के जीवन में घटी कुछ रोमांचकारी घटनाओं से पाठकों का परिचय करायेंगे जो हमारी जानकारी में आ सकी हैं।

एक बार एक उत्पाती जंगली हाथी महाराजजी की झोंपड़ी के निकट उन पर झपट पड़ा। महाराजजी ने हाथियों से भरे उस जंगल में रहने के निर्णय के बाद हाथियों के बारे में काफी पुस्तकें पढ़ी थीं तथा बहुत सी जानकारियां प्राप्त की थीं। वे जानते थे कि जंगली हाथी का स्वभाव सामने आये व्यक्ति को पैरों तले कुचल देने का होता है। अतः भीमकाय रूप में साक्षात् मृत्यु को सामने देखकर उन्होंने भय से आँखें बन्द कर लीं एवं भगवान पर सब कुछ छोड़कर भूमि पर बैठ गये। लेकिन जब कुछ क्षण बीत जाने के बाद भी कुछ नहीं हुआ तो उन्होंने धीरे से आँखें खोलीं। देखा, वह विशालकाय हाथी गंगा पार करते हुए दूसरी ओर जा रहा था। साथ ही साथ पीछे मुड़कर भी देख रहा था, मानो अचम्भित होकर पश्चात्ताप कर रहा हो कि भगवान के उस सुन्दर और दिव्य बालक पर आखिर उसे क्यों कर क्रोध आया!

एक अन्य अवसर पर, रात्रि में दो हाथियों ने उनकी एक कुटिया को पूरी तरह तहस-नहस कर दिया लेकिन उस कुटिया को, जिसमें महाराजजी स्वयं सोये हुए

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

थे, छुआ तक नहीं। इस घटना के संदर्भ में महाराजजी ने एक सेवक को बताया था कि इस घटना के दो-तीन दिन पहले से उन्हें ऐसा आभास होता था मानो बाबा भूमनशाहजी उनकी कुटिया के आस पास घूम रहे हों। अतः बाबाजी ने ही उन हाथियों से उनके शरीर की रक्षा की। प्रिय बन्धु, जिसने परमात्मा का हाथ पकड़ा हो उसका हाथ तो असावधानी या प्रमादवश कभी छूट भी सकता है किन्तु जिसका हाथ परमात्मा ने स्वयं पकड़ रखा हो उसका भला कब-कैसे अहित हो सकता है—

जिसके सिर ऊपर तू स्वामी, सो दुःख कैसा पावै।

अक्सर और विशेषकर वर्षा ऋतु में, भंयकर विषधर सर्प उनकी झोंपड़ी में आ जाया करते थे। कोमल हृदय स्वामीजी ने कभी भी उन्हें मारने की कोशिश नहीं की। लेकिन हिंसक प्रकृतिवश वे सांप कभी पक्षी तथा कभी अन्य छोटे जीव-जन्तु पकड़कर झोंपड़ी में ले आते थे तो इससे स्वामीजी को बड़ी असुविधा होती थी और सफाई भी करनी पड़ती थी। अतः जब कभी वे उन्हें झोंपड़ी में नहीं चाहते थे तो हाथ से भूमि थपथपा कर उनसे मन ही मन वहाँ से चले जाने का निवेदन करते थे। और आश्चर्य ! वे हिंसक प्राणी उनके सात्विक निश्चय के पवित्र बल से तुरन्त ही झोंपड़ी से चले जाते थे। कितनी ही बार भयंकर नाग, अजगर भी झोंपड़ी में हमारे महाराजजी के साथ-साथ रहते थे।

एक बार वर्षा ऋतु के दौरान जब उनका वनद्वीप सभी बाहरी सम्पर्कों से कट गया था, उनका सारा राशन खराब हो गया। उसमें फफूंद लग गयी तथा कीड़े पड़ गये। तब महाराजजी इसे भगवान की इच्छा मानकर बड़े प्रेम से काफी समय तक जंगली घास और जंगली फल-फूल पकाकर खाते रहे थे। एक अन्य बार, झाड़ी के आरम्भिक वर्षों में गंगाजी का बारिश का पानी बिना उबालकर पीने से उन्हें सख़्त पेचिश हो गयी थी। उन दिनों सहारनपुर के श्री एम० एल० गर्गजी उन्हें बरसात के दिनों में भी नाव के माध्यम से फल इत्यादि भेजा करते थे। जब उन्हें इसका पता चला तो उन्होंने तुरन्त, आग्रहपूर्वक महाराजजी को कनखल स्थित रामकृष्ण मिशन अस्पताल में भरती कराकर उनका उपचार कराया। स्वस्थ होकर महाराजजी पुनः झाड़ी में आ गये।

एक अन्य रोमांचकारी घटना में भगवान ने बड़े अद्भुत ढंग से महाराजजी की कठिन परीक्षा ली और उनके शरीर की रक्षा भी की।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

सन् 1964 में गंगाजी में भंयकर बाढ़ आयी थी। तब गंगाजी की कई धाराओं से घिरे उस वनद्वीप में हमारे गुरुदेव अकेले ही थे। सभी धाराओं में बहुत पानी आ गया था। प्रचण्ड वेग से भयंकर आवाज़ करता हुआ चारों ओर जल ही जल था। झोंपड़ी के सामने मुख्य धारा में बाढ़ की चपेट में आये गाँवों की झोंपड़ियाँ, सामान, मवेशी आदि बहे चले जा रहे थे। उस भयावह स्थिति में भी महाराजजी अपने प्रियतम के प्रेम में डूबे रहे; उनकी भक्ति भावना में तनिक भी व्यभिचार न आ सका। आइये, उस घटना का अधिक वर्णन उन्हीं की लेखनी से पढ़ें—

"दिन के बारह बजे झोंपड़ी के सामने गंगाजी ने आगे का किनारा काटना शुरू किया। शाम को साढ़े पाँच बजे तक झोंपड़ी के आगे की बाड़ कटने लगी थी। उसके पहले ही मैं बाहर निकल आया था। झोंपड़ी में एक बड़ा कमरा था। उस कमरे की छत के दो पल्ले थे। कमरे के आगे बरामदे की छत का तीसरा पल्ला था। बरामदे के आधे हिस्से में भजन के वास्ते छोटा कमरा बना रखा था। सामने से जमीन कटती जा रही थी। पीछे से टापू कट नहीं रहा था पर टापू के ऊपर पानी चढ़ता आ रहा था। उन दिनों लोग दूध न देने वाली गायों को बरसात के दिनों में उन टापुओं पर चरने के वास्ते छोड़ देते थे। तब उस टापू में केवल दो गायें थीं। आगे के एक टापू, जिसमें मैंने बाद में सन् 1968 में shift किया था तथा एक इस टापू को छोड़कर सब टापुओं पर पानी चढ़ आया था। पर उन दोनों टापुओं में भी जिसमें झोंपड़ी थी, लगभग 80' x 100' की जगह ही जो ऊँची थी, वहाँ पानी नहीं आया था। आगे वाले टापू पर ऊँचे स्थान पर गुज्जरों का डेरा था। बाढ़ में केवल उनके डेरे की जगह तथा मेरे टापू में मेरी कुटिया वाली जगह ही सुरक्षित बची थी।"

"जब आगे की जमीन कटती जा रही थी और बाड़ भी कट गयी और अन्दर का शेड भी पानी से कट गया तब मैंने बैठने के लिये मूढ़ा और भजन के कमरे का तख़्त बाहर निकाल लिया। थोड़ा सा रसोई का सामान भी निकाल लिया। कुटिया के बरामदे की छत का पल्ला झुक गया था क्योंकि भजन वाले कमरे और बरामदे की जमीन कट गयी थी। विचित्र बात तो यह है कि किनारा तो कुटिया के दोनों तरफ पीछे तक कट गया पर शायद कुटिया इस वास्ते खड़ी रही क्योंकि कुटिया के आगे वाला बरामदे का छप्पर पानी में झुक गया था और उसने पानी की टक्कर को झेलकर कुटिया को बचाये रखा। मैं तो बाहर था उस समय जब छप्पर झुका। मैं पीछे खड़ा

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

प्रतीक्षा कर रहा था कि कुटिया अब गयी, अब गयी क्योंकि दोनों ओर से किनारा कटकर कुटिया के पीछे तक आ गया था। आगे से टापू कट रहा था और तीन तरफ से पानी चढ़ता आ रहा था।"

"इधर मैं देखता था कि सामने गंगाजी में कई गायें, कई झोंपड़ियाँ, लोगों का सामान बहकर जा रहा है। ऊपर एक प्रीतपुर गाँव पूरा का पूरा बह गया था। कोई-कोई लोग घर के रजाईयों के बड़े बक्से या कनस्तरों पर बैठे देखे जो बाढ़ में बहते जा रहे थे। रात के दो बजे पानी कम होना शुरु हुआ।"

"बाद में सुबह होने पर मैंने उस कमरे की बची हुई दीवार का फूस काटा और अन्दर घुसा।"

"वहाँ बाढ़ के पाँच दिन बाद तक कोई नहीं पहुँच सका। न गुज्जर ही सप्तसरोवर में अपने घरों को जा सके। पाँच दिन के बाद जब वे घरों को लौटे तो वहाँ लोगों ने उनसे पूछा कि मेरा क्या हुआ। कुछ लोगों ने वहाँ यह अफवाह फैला दी थी कि उन्होंने बाढ़ में मेरी झोंपड़ी बहती देखी थी और मैं उस पर बहा जा रहा था। तब श्रीराम और मैकू गुज्जरों ने उन्हें बताया कि उन्होंने अपने टापू से ही मेरी गिरी हुई झोंपड़ी देखी थी लेकिन दूसरे दिन उन्होंने मुझे गंगाजी के किनारे चलते देख लिया था। तो कहा कि वे जिन्दा तो हैं पर शायद भूखे होंगे। तो सप्तसरोवर के व्यवस्थापक पंडित मनोहरलालजी बहुगुणा ने पाँचवे दिन एक आदमी को भेजा जो लौकी के बेड़े पर तैरकर आया। उन्होंने पत्र में लिखा कि हमनें सुना है कि आपकी झोंपड़ी व सब राशन बह गया है। आप या तो यहाँ आ जायें या लिखें कि आपको क्या सामान भेजें। मैंने उनको लिखा कि राशन सुरक्षित है, एक कमरा भी सुरक्षित है।"

वास्तव में हम उस कठिन रात्रि की कल्पना करें तो शरीर में सिहरन सी कौंध जाती है। कुटिया के अगले हिस्से को गंगाजी ने काट दिया है। कुटिया के दोनों ओर बगल में भी पीछे तक मिट्टी कट गयी है तथा पानी आ गया है। पीछे से टापू में पानी चढ़ रहा है। ऊपर से कालरात्रि में घनघोर वर्षा हो रही है। चारों ओर बियाबान वन। कुटिया मानो स्वयं बाबाजी ने अपनी दिव्य हथेली बढ़ाकर थाम ली हो। गंगाजी की विकराल लहरों ने अपने पुत्र को बहुत डराया, बहुत आजमाया लेकिन मौत के मुँह में भी उस वीर संन्यासी की अपने 'प्रियतम' के प्रति प्रगाढ़ व शुद्ध भक्ति-भावना में

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

तनिक भी संदेह-भय-अश्रद्धा रूपी व्यभिचार न आया। वह भयावह बाढ़ हमारे गुरुदेव का कुछ भी न ले जा सकी—न तो सामान और न ही ईमान!

इस घटना के बारे में एक सेवक ने भोले भाव से गुरुदेव से पूछा कि क्या उन्हें परीक्षा की उस घड़ी में डर नहीं लगा; क्या परमात्मा पर उनका विश्वास डोल नहीं गया! इस पर उन्होंने विनम्रता से लिपटे शब्दों में यह मार्मिक उत्तर दिया—

"मेरे मन में डर नहीं था क्योंकि मैं पेड़ पर चढ़ सकता था। कुटिया के पीछे टापू में तो पानी चल रहा था लेकिन वहाँ पेड़ वैसे के वैसे खड़े थे। तब मेरे मन में यही भाव आया कि प्रभु, शरीर चला गया तो कोई बात नहीं। पर जब मैं उस स्थान पर ठहरा था तो लोग मना करते थे कि बरसात में वहाँ मत रहो। कहते थे कि एक तो कुटिया बहने का डर है और दूसरा हाथियों का। जान का खतरा मत लो। मैं यही कहता था कि प्रभु रक्षा करेंगे। तो उस समय यही भाव आया कि प्रभो, कुटिया बह गयी या शरीर चला गया तो लोग कहेंगे कि भगवान-भगवान करता था। तो आपके नाम पर आँच आयेगी। वैसे डर नहीं लगा।" ओ संन्यासी! तुम्हारी भक्ति को प्रणाम; तुम्हारी श्रद्धा को प्रणाम; तुम्हारी वीरता को प्रणाम; तुम्हारी नम्रता को प्रणाम।

उस वर्ष गंगाजी में इतना अधिक पानी आया था कि अगर दो फुट पानी और चढ़ जाता, तो सप्तसरोवर के बन्ध के ऊपर से बहकर पूरे सप्तसरोवर में फैल जाता।

खराब से खराब वस्तु के भी सदुपयोग में प्रवीण महाराजजी ने बाढ़ के बाद अपनी टूटी-फूटी झोंपड़ी के आगे का पल्ला जो पानी में लटक रहा था, उतार लिया। उसको काटकर उसके दो टुकड़े बनाकर बगल में एक दूसरा शैड बना लिया। अगली सर्दियों तक महाराजजी उसी झोंपड़ी में रहे। बाद में फिर कुछ पीछे हटकर नयी झोंपड़ी बनाई। बाद में सन् 1968 के कुंभ के बाद में महाराजजी ने वह टापू छोड़ दिया क्योंकि गंगाजी पुनः धीरे-धीरे भूमि काटती हुई नयी कुटिया तक पहुँच गयी थीं। कुंभ के तीन चार महीने पहले ही कच्छी आश्रम वालों ने फूस की झोंपड़ी पर पुरानी एस्बेस्टस शीटें डलवा दी थीं। वही शीटें दूसरे टापू पर नयी कुटिया के ऊपर डाल दी गयीं। महाराजजी ने हमें बताया कि नयी कुटिया के लिये चारों तरफ की टीन की शीटें दिल्ली वाले श्रीमदनलालजी ने भेजीं। साल की लकड़ी के खंबे बाज़ार से मंगवाये थे। ऊपर एस्बेस्टस शीटों के नीचे का बोर्ड श्रीमोंगाजी ने दिल्ली से भिजवाया। कुछ धन सहारनपुर के श्रीगर्गजी ने भी नई कुटिया पर खर्च किया।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

कुटिया के आँगन में पक्का फर्श करवाया गया था। शौचालय व हैण्डपम्प की भी व्यवस्था की थी। चारों ओर खिड़कियों आदि में मच्छरजाली लगाई हुई थी। एक मक्खी भी अन्दर नहीं आ सकती थी। कुटिया के चारों ओर पूरी सफाई व रख-रखाव का वातावरण था। उस स्थान पर कुटिया के पक्के आंगन के अवशेष आज भी मौजूद हैं तथा उसी की पहचान के आधार पर यदा-कदा भक्तगण महाराजजी के साथ उस बीहड़ वन में उनकी पुरानी तपस्थली को ढूँढकर उसका दर्शन किया करते हैं।

इसी स्थान पर फ्राँस के प्रसिद्ध दिवंगत संत श्रीयुआन अमर (स्वामी आनन्द चेतन) ने अपने आध्यात्मिक गुरु की खोज में पहली बार महाराजजी के दर्शन किये थे एवं फिर सदा के लिये उन्हीं के होकर रह गये थे।

महाराजजी इस स्थान पर 15 अक्तूबर, 1970 तक रहे। इस प्रकार उस एकान्त वन-द्वीप में लगभग नौ वर्ष प्रभु ने व्यतीत किये।

सेवक निवास आश्रम

इसी दौरान महाराजजी की निर्मल कीर्ति धीरे-धीरे दूर-दूर तक फैलने लगी। देश-विदेश से सत्य के पिपासु उनके पास आने लगे। सारगर्भित, सरल और विश्वसनीय उत्तर प्राप्त करने से भी पहले, भक्तगण उनके पावन दर्शन मात्र से ही तृप्त/आश्वस्त हो जाते थे। उस सुन्दर विग्रह की एक झलक भी उनका पूर्ण परिचय थी। झाड़ी में उनके भक्तों में स्त्री-पुरुष, बच्चे, निर्धन, धनी, अध्यापक, दार्शनिक, संत, गृहस्थी आदि सभी शामिल थे। यह सब स्वयं भगवदेच्छा से होता रहा क्योंकि स्वयं तो वे प्रसिद्धि एवं लोकैषणा से सदैव कोसों दूर थे। किन्तु मान-सम्मान अगर उनका जंगल में भी पीछा करें तो यह दैव इच्छा ही कहा जायेगा।

लेकिन उस वनद्वीप तक पहुँचने में भक्तों को बड़ा कष्ट होता था। एक तो वहाँ केवल दिन में ही जाया जा सकता था क्योंकि अंधेरा होने से पहले लौटना होता था। फिर रास्ते में जंगली जानवरों का भय, रास्ता भटकने का खतरा और गंगाजी की दो-तीन धाराओं को पार करना। बच्चे, बूढ़े और बीमार तो वहाँ जा ही नहीं सकते थे। अतः काफी समय से भक्त महाराजजी को झाड़ी से सप्तसरोवर में आ जाने का आग्रह कर रहे थे। सन् 1970 में भी बाढ़ आयी थी जिससे गंगाजी की दिशा में कुछ परिवर्तन आ गया था। सप्तऋषि आश्रम के सामने वाली धारा में इतना पानी हो गया

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

था कि उसे पार नहीं किया जा सकता था। अन्त में करुणासागर गुरुदेव ने भगवदेच्छा से भक्तों का आग्रह स्वीकार कर लिया। सप्तसरोवर में महाराजजी के नाम से ही एक प्लाट एक भक्त ने खरीदा था जिसकी चर्चा हम पहले कर चुके हैं। उसी प्लाट पर भक्तों ने एक छोटा सा आवास अपने प्रिय गुरुदेव हेतु बना दिया। करनाल के परमभक्त श्रीकिशनचन्दजी सलूजा, श्रीखुशीरामजी तथा अन्य कई सेवकों ने विशेष परिश्रम करके वह निर्माण कार्य करवाया। उस स्थान का नाम 'सेवक निवास आश्रम' रखा गया। 15 अक्तूबर, 1970 को पूज्य गुरुदेव अपनी द्वितीय तपस्थली झाड़ी को छोड़कर, ढाई महीने कच्छी आश्रम की गंगा के किनारे बनी हुई झोंपड़ी में रहे। इन ढाई महीनों में सेवक निवास आश्रम का स्वामीजी के आवास वाला खण्ड बनकर तैयार हो गया। 30 दिसम्बर, 1970 को स्वामीजी ने सेवक निवास आश्रम में प्रवेश किया और 01 जनवरी, 1970 से पूर्ववत् दो महीने का काष्ठ मौन नये आश्रम सेवक निवास में ही आरम्भ किया।

माह फरवरी, 1970 में प्रस्तावित सेवक निवास आश्रम के संचालन हेतु महाराजजी की प्रेरणा से सीकर्स ट्रस्ट (अर्थात जिज्ञासु ट्रस्ट) नाम से संस्था का गठन कर लिया गया था। बाद में सन् 1975 में सीकर्स ट्रस्ट को क्रमशः आयकर अधिनियम की धारा 12A के तहत रिलीजियस एंड चैरिटेबल संस्था के रूप में तथा दि सोसायटीज़ अधिनियम के अन्तर्गत संस्था के रूप में भी पंजीकृत किया गया।

कालान्तर में भक्तों की संख्या अधिक होने पर आश्रम का विस्तार भी किया गया। जब आश्रम पूरा बन गया था तो लगभग डेढ़ बीघा जमीन पर लगभग 30'x30' के दो सत्संग हाल, एक सामूहिक रसोईघर, भोजन कक्ष तथा सत्रह कमरे थे। इनके अतिरिक्त महाराजजी का कमरा तथा उसके साथ उनके साधन-भजन हेतु एक साउंड प्रूफ कमरा, एक रसोई तथा उनके कार्यालय हेतु छोटा सा स्थान था। महाराजजी का आवास प्रथम तल पर था तथा उसके ऊपर द्वितीय तल पर किसी आगन्तुक संत आदि के रहने के लिये इसी प्रकार का एक सैट और था। आश्रम के पीछे एक छोटा सा आँगन और बगीचा था जिसमें कुछ फल-फूल लगा रखे थे। आश्रम के आगे भी पक्का आँगन था तथा वाहन हेतु गेराज भी था। इसी सामने के आँगन में महाराजजी भक्तों के साथ बैडमिंटन भी खेला करते थे। आश्रम में कहीं भी साज-सजावट आदि

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पर व्यर्थ धन व्यय नहीं किया गया था। लेकिन आश्रम छोटी सी जगह पर ही बड़े सुन्दर और व्यवस्थित ढंग से बना हुआ था। महाराजजी सारे आश्रम की व्यवस्था स्वयं ही देंखते थे। आश्रम के सामने ही दो सौ फुट की दूरी पर गंगाजी का बन्ध था। आश्रम की छत से हिमालय श्रंखला की पृष्ठभूमि में माता जाह्नवी के उनकी अनेक धाराओं के साथ भव्य दर्शन होते थे। महाराजजी की ममतामयी छत्रछाया में वह आश्रम क्या था, छोटा सा स्वर्ग था। आश्रम के आस-पास दूर-दूर तक जगह ख़ाली थी। तब वहाँ आस-पास दो-चार आश्रम ही थे।

सेवक निवास में महाराजजी पूरे बीस वर्ष रहे। इस लम्बी अवधि में उनके बहुत से अन्तरंग भक्तों ने अपने इष्ट गुरुदेव को ढूँढ निकाला। इन भक्तों के माध्यम से सैंकड़ों अन्य साधक-भक्त महाराजजी के सम्पर्क में आए एवं उनका भक्तवृन्द धीरे-धीरे विस्तृत होता गया। संतों से जुड़े होने की भारत की यह बड़ी ही मौलिक, अनूठी और पवित्र परम्परा है। इसी परम्परा के द्वारा बिना किसी संस्थागत व संगठित प्रचार-प्रसार के हजारों-लाखों भक्त लोग किसी न किसी संत से जुड़े रहते हैं।

उन दिनों के बारे में पूज्य महाराजजी ने हमें स्वयं बताया कि करनाल से सबसे पहले श्रीकिशनचन्दजी ही महाराजजी के पास आये थे। उन्हीं के माध्यम से करनाल निवासियों का महाराजजी से मिलन हुआ था। वे लोग महाराजजी से दीक्षा लेने के लिये प्रार्थना करते तो संकोच मिश्रित विनोद के साथ महाराजजी कहते,"पानी पीजै छान के गुरु कीजै जान के।" लेकिन महाराजजी को तो देखना ही उनको जानना था। सो भक्त तो जल्दी से जल्दी दीक्षा लेकर ही मानते। करनाल के अनेक भक्तों ने महाराजजी से दीक्षा ले रखी है। उन्हीं में उनके परम भक्त श्रीखुशीरामजी भी थे। महाराजजी की उनके प्रति बहुत कृपा रही। खुशीरामजी में संतों की सेवा करने की बहुत भावना थी। सेवा वे अपनी सामर्थ्य से भी अधिक करते थे। सेवक निवास के निर्माण में भी उन्होंने अपनी शक्ति से अधिक सेवा की। खुशीरामजी के जीवन की एक प्रेरणादायी घटना है जो महाराजजी ने हमें कई बार लिखकर बतायी है—

देश के विभाजन के बाद भारत आकर उन्हें जीवन निर्वाह के लिये कई काम-धन्धे करने पड़े। इसी क्रम में करनाल में उन्होंने हलवायी की दुकान खोली। कुछ दुधारु पशु पालकर अन्य हलवाइयों को दूध भी बेचते थे। दूध देते समय दूध वाले बरतनों में लगे दूध को साफ करने के लिये जो थोड़ा सा पानी प्रयोग करते थे,

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

वह भी वे दूध में ही मिला लेते थे। ऐसा वर्षों तक चलता रहा। जब महाराजजी के सम्पर्क में आकर उनका जीवन बदला और उनमें परमात्मा का प्रेम जागा तो उन्हें अपनी गलती का बोध हो गया कि वह थोड़ा सा पानी भी उन्हें दूध में नहीं मिलाना चाहिये था। हृदय पश्चाताप से भर गया। अपने इस अपराध का परिमार्जन करने के लिये उन्होंने हिसाब लगाकर उन सब हलवाड़यों को उनके नुकसान के लिये पिछले सभी वर्षों के ब्याज सहित पैसे वापिस करके क्षमा माँगी। बाद में तो उन्होंने उनके पास जो थोड़ी सी जमीन थी वह तथा एक छोटा सा दूसरा मकान जो उनके पास था, उसे भी बेच दिया। उससे जो पैसा मिला उसी से गुजारा करते हुए उन्होंने अपना पूरा जीवन भगवान के भजन में लगा दिया। उनका शरीर भी बड़े सुन्दर ढंग से छूटा। रात नौ बजे बिस्तर में लेटे हुए माला फेर रहे थे। साथ में टेप-रिकार्डर पर भजन सुन रहे थे। इसी दशा में उनका शरीर छूट गया। जब बुलाने से भी वे नहीं बोले तो घरवालों को पता लगा कि उनका शरीर छूट गया। उसी दिन मृत्यु से पहले वे सूक्ष्म शरीर से महाराजजी के पास आये तथा उन्हें प्रणाम किया। अगले दिन करनाल से सूचना आते ही महाराजजी अपने भक्त श्रीछूनामलजी के साथ उनके दाह संस्कार पर स्वयं करनाल गये।

उन्हीं दिनों सेवक निवास में दिल्ली के सेवक और मधुर स्वभाव वाले भगत मदनलालजी निश्चल और अपूर्व गुरुभक्ति वाले श्रीदौलतरामजी मौंगा व उनके परम प्रेमी श्री के.के.कपूरजी भी बहुत आते थे। भगत मदनलालजी सबको ऊंची-ऊंची आवाज़ में बुल्लेशाह की काफियां सुनाया करते थे। उनकी आवाज़ में बड़ी मधुरता और फक्कड़ों की सी अल्हड़ता थी। वयोवृद्ध श्रीमौंगाजी जो अब नब्बे वर्ष के ऊपर हो गये हैं सदा से आश्रम व महाराजजी की सेवा करते आये हैं। दिल्ली स्थित उनका घर तो वर्षों से गुरुमहाराजजी के ठहरने तथा गुरु भाई-बहनों के इकट्ठा होने का स्थान है। श्रीकपूरजी के बारे में गुरुदेव से हमें पता लगा कि वे पहली बार उनसे श्रीमौंगाजी के घर मिले थे। वहाँ उन्होंने महाराजजी से एक ऐसा प्रश्न किया जो सदा उनके मन में खटकता रहता था। उन्होंने कई संतों से वह प्रश्न पूछा किन्तु समाधान नहीं हो पा रहा था। महाराजजी ने सहज ही कुछ शब्दों में उनके प्रश्न का ऐसा सुन्दर उत्तर दिया कि उनका समाधान हो गया। फिर महाराजजी के दर्शन का जादू तो सिर चढ़कर बोल ही रहा था, सो सदा के लिये उन्हीं के हो गये। इन सब भक्तों में आपस

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

में भी बहुत प्रेम और स्नेह था। सभी अपने-अपने परिवारों के साथ आकर आश्रम में ठहरते और गुरुदेव की ममतामयी छत्र-छाया तले आनन्द मनाते हुए सेवा व भजन किया करते थे।

सन् 1973 में जम्मू के डॉ० सतपालजी गुप्ता ने गुरुदेव के दर्शन किये और उनकी मोहिनीमूरत पर मोहित हो गये। शीघ्र ही वे पूरे परिवार सहित महाराजजी से मन्त्र-दीक्षा लेकर उनके शिष्य बन गये। डॉ० सतपालजी ने अपने जीवन में कितने ही व्यक्तियों को महाराजजी के पास भेजकर अतुलनीय पुण्य-लाभ किया। वयोवृद्ध तथा गुरुदेव के परमभक्त डॉ० ओमप्रकाशजी मैंगी के द्वारा भी अनेक भक्तों को गुरुमहाराजजी के सान्निध्य का सुअवसर मिला। डॉक्टरजी तथा उनके पूरे परिवार को तो उनके पिता लाला ईश्वरदासजी मैंगी की महाराजजी के प्रति भक्ति सहज ही विरासत में मिल गयी।

लगभग अस्सी वर्षीय पंडिताइन शिमला देवीजी की चर्चा हम ऊपर कर ही चुके हैं। वे राधाजी की तरह गुरुदेव पर तन-मन-धन से समर्पित थीं। गुरुदेव ने हमें स्वयं जानकारी दी कि वे उन प्रसिद्ध नारायण स्वामीजी की शिष्या थीं जिनके भोग लगाने पर भगवान स्वयं आकर भोग ग्रहण करते थे। नारायण स्वामीजी ने बद्रीनारायण मन्दिर में भगवान को प्रणाम करते हुए अपना शरीर छोड़ा था। उनका शरीर छूटने पर वे बड़ी व्याकुल हो गयी थीं। अपने गुरुदेव की शारीरिक अनुपस्थिति में वे स्वयं को अनाथ महसूस करने लगी थीं। तब एक दिन उनके गुरु श्रीनारायण स्वामीजी ने उन्हें स्वप्न में दर्शन देकर हमारे गुरुदेव के पास जाने का निर्देश दिया और कहा कि अब भविष्य में यह संत तुम्हारा मार्गदर्शन और संरक्षण करेंगे। इस घटना के बाद जब वे हमारे गुरुदेव के पास पहुँची तो हर्षोन्मत्त होकर अवाक् रह गयीं। क्योंकि इन्हीं के बारे में तो उनके गुरुदेव ने उन्हें स्वप्न में निर्देश दिया था। पंडिताइनजी झाड़ी में भी महाराजजी के पास निरन्तर जाती रहीं और फिर सेवक निवास में भी आती रहीं। सेवक निवास में वे आश्रम की बहुत सेवा किया करती थीं। बाद में इनके माध्यम से भी कितने ही भाग्यवान भक्तों को गुरुदेव के दर्शन मिले। सम्भवतः जुलाई, 1978 में उनका शरीर छूटा था।

वर्ष 1974 में गांधीधाम, कच्छ, गुजरात के डॉ० के. के. कानूगाजी अपने कुछ सेवकों के साथ हमारे गुरुदेव के दर्शन करने आए थे। पहली ही मुलाकात में गुरुदेव की सौम्य, भागवत मूरत से बहुत प्रभावित हुए। बाद में भी कई बार वे सेवक निवास

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

में आकर ठहरते रहे। आज तक उनका गुरुदेव से अटूट आध्यात्मिक सम्बन्ध बना हुआ है। डॉ० कानूगाजी स्वयं अत्यन्त निर्मल एवं पावन चरित्र वाले तथा चेतना की उच्च अवस्था में आरूढ़ महापुरुष हैं। पूरे गाँधीधाम में वे एक उच्च संत के रुप में प्रतिष्ठित हैं। उनकी पैनी दृष्टि ने पहली बार में ही महाराजजी को अध्यात्म की पूर्ण अवस्था में प्रतिष्ठित अति दुर्लभ संत के रुप में पहचान लिया था। उनकी प्रेरणा से गाँधीधाम के सैकड़ों परिवार महाराजजी से उपदेश लेकर उनके सेवक बन गये। अभी भी आश्रम में गांधीधाम के कुछ सेवक आश्रम की निष्काम सेवा करते हुए साधन-भजन कर रहे हैं।

वर्ष 1974 में ही लंदन के पूज्य श्रीरामबापाजी (श्रीमगनभाई भिमजियानी) भी महाराजजी के पास आये। अल्प समय में ही उनका महाराजजी के साथ घनिष्ठ एवं अनूठा आध्यात्मिक सम्बन्ध बन गया जो समय के साथ गहरा होता गया। पूज्य बापा के परिवार के अनेक सदस्य भी महाराजजी के सम्पर्क में आकर सदा के लिये उन्हीं के होकर रह गये। श्रीरामबापाजी की यहाँ संक्षिप्त चर्चा करना प्रासंगिक प्रतीत होता है।

पूज्य श्रीरामबापा जिन्हें भक्तगण श्रीमारुति रामबापा भी कहते हैं, श्री हनुमानजी के अनन्य भक्त एवं कृपापात्र हैं। रामायणजी पर अधिकारपूर्ण सुन्दर प्रवचन करने के कारण इन्हें भारत में 'रत्न रामायणी' के नाम से भी विभूषित किया गया है।

इनका जन्म सन् 1920 में गुजरात के जीरा सुग्राम में हुआ था। बचपन का अधिकाँश भाग वे केन्या के नकूस प्रान्त में तथा युगांडा के कम्पाला में रहे। बाल्यकाल से ही परमात्मा की ओर उन्मुख हो गये थे तथा साधु संगत में रहते थे। सन् 1948 में अफ्रीका में ही इनका अध्यात्म की अति उच्च अवस्था को प्राप्त एक सिद्ध गृहस्थ संत हीरजी बापा से मिलन हुआ था। ये संत ही श्रीरामबापा के गुरुदेव थे जिनकी इन्होंने चालीस वर्षों तक अनन्य भाव से सेवा की। हीरजी बापा स्वयं हनुमानजी के अनन्य भक्त थे और उसी परम्परा में श्रीरामबापाजी भी हनुमानजी के अनन्य सेवक-उपासक हैं। अपने गुरुदेव की आज्ञानुसार इन्होंने अपना समस्त जीवन सनातन धर्म और मानवता की सेवा को समर्पित कर दिया है। पिछले तीस वर्षों से वे लन्दन में रह रहे हैं तथा जब-तब भारत आते रहते हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

लंदन तथा अन्य कई देशों में इन्होंने स्वयं हजारों परिवारों के घर-घर जाकर हनुमान चालीसा तथा रामायण का पाठ किया, देव प्रतिमायें स्थापित करवायीं तथा धार्मिक रीति-रिवाजों को समाज में प्रतिष्ठित करवाया। घर-घर में जाकर वे स्वयं घंटों तक लोगों के साथ भावपूर्ण संकीर्तन-भजन भी करते हैं। उनके सत्संग के प्रभाव से हजारों घरों में लोग रामायणजी व हनुमान चालीसा आदि का पाठ तथा भजन-कीर्तन करते हैं।

विगत अनेक वर्षों से उन्होंने स्वयं अक्सर अपनी गर्मियाँ जयपुर में व्यतीत करते हुए बड़े चाव से संगमरमर की सुन्दर बहुमूल्य मूर्तियाँ सैंकड़ों की संख्या में बनवाकर इंग्लैण्ड, पश्चिमी अफ्रीका, जर्मनी, वेस्टइंडीज, कनाडा, अमरीका, स्पेन, आदि के मन्दिरों को दान स्वरूप निःशुल्क भेंट की हैं। पश्चिम में कहीं पर भी किसी मन्दिर निर्माण का अथवा उसमें पूजा-अर्चना की व्यवस्था अथवा संचालन का प्रसंग हो तो आप उसमें तन-मन-धन से पूरा सहयोग करते हैं। अनेक देशों में बड़ी संख्या में इनके भक्त व प्रशंसक हैं।

साधु-संतों के प्रति उनमें अपूर्व श्रद्धा तथा सेवा-भाव है। वर्षों से वे भारत के अनेक संतों को लन्दन में आमन्त्रित करके वहाँ उनके प्रवचन, सत्संग आदि आयोजित करवाते रहे हैं तथा उन्हें अपने घर भी ठहराते हैं। उनका घर तो वास्तव में संतों के ठहरने व सत्संग करने हेतु आश्रम जैसा है। स्वयं हमारे गुरुदेव अनेक बार उनके निमंत्रण पर लंदन में उनके घर ठहरे हैं। गुरुदेव के प्रति उनकी असाधारण श्रद्धा भक्ति है। अवसर मिलते ही वे गुरुदेव के दर्शन करने आश्रम में आते रहते हैं तथा दर्शन होते ही दण्डवत् प्रणाम करते हैं। सभी को कहते हैं, 'पृथ्वी पर श्रीचन्द्रस्वामीजी जैसा संत मिलना दुर्लभ है, वे अपने आप में अद्वितीय हैं, अनूठे हैं—आदि-आदि।"

प्रतिवर्ष भारत आकर श्रीरामबापा साधु सेवा किया करते हैं। प्रयाग में वे प्रतिवर्ष माघ मेले के समय एक से अधिक महीने का प्रवास करके विशाल भण्डारा लगाते हैं जिसमें प्रतिदिन दस-दस हजार तक साधु व भक्तगण भोजन प्राप्त करते हैं। इसके साथ-साथ वे विपुल मात्रा में साधुओं, छात्रों, असहायों को कम्बल, स्वैटर, कपड़े आदि भी आदरपूर्वक भेंट करते हैं। इसी प्रकार अन्य बड़े धार्मिक पर्वों जैसे कुम्भ आदि पर भी वे तीर्थस्थानों में रहकर विशाल सदाव्रतों का आयोजन करके

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

साधु-संतों तथा दरिद्रनारायण की सेवा करते हैं। श्रीरामबापा, उनकी संस्थायें तथा उनके पुत्र-पुत्रियाँ अनेक प्रकार से साधना केन्द्र आश्रम की भी सेवा करते रहते हैं।

यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि इस प्रकार के सेवा व धार्मिक कार्यों से ही समाज में धार्मिक मूल्य तथा जनसाधारण में आध्यात्मिक मूल्यों के प्रति आस्था संरक्षित रहते हैं। वस्तुतः ये भारत की प्राचीन आध्यात्मिक चेतना के स्थूल प्रतीक हैं जिनके कारण यह प्राचीन दैवी-सभ्यता आतताइयों के बर्बर आक्रमणों, रक्तपात तथा समय के अनेक थपेड़े खाने के बाद भी अपने आपको न केवल सुरक्षित रख पायी बल्कि अनेक अर्थों में संवर्धन को भी प्राप्त हो रही है।

लगभग अस्सी वर्ष की आयु में भी श्रीरामबापा युवकों की सी जीवन्त ऊर्जा के साथ स्वयं को अपने कार्यों में सक्रिय रखते हैं। श्रीरामबापा के भक्तों ने तीन संस्थायें गठित की हैं—जिज्ञासु सेवा ट्रस्ट, रामबापा सेवा ट्रस्ट (इंग्लैण्ड), तथा मारुति रामबापा सेवा ट्रस्ट (भारत)। इनके माध्यम से ही सारे धार्मिक व सेवा कार्य सम्पन्न किये जाते हैं। स्वयं हमारे गुरुदेव अनेक बार रामबापा के सद्गुणों की प्रशंसा करते हैं।

श्रीरामबापा के साथ-साथ उनके सुपुत्र तथा उनकी पुत्रियां नियमित रूप से लंदन से साधना केन्द्र आश्रम आकर गुरुदेव के दर्शन करते हैं और भजन-साधन-सेवा भी करते हैं।

भगवान से श्रीरामबापा की दीर्घायु तथा स्वास्थ्य की मंगल कामना है ताकि वे अपने भक्ति भाव तथा सेवा कार्यों से समाज को सद्प्रेरणा देते रहें।

अब पुनः गुरुदेव की जीवनी पर लौटते हैं।

सेवक निवास हरिद्वार में धीरे-धीरे भारत तथा विदेशों से भक्तों-श्रद्धालुओं का खिंचकर आना जारी रहा। उन दिनों में भी अमरीका, सिंगापुर, इंग्लैण्ड, आबूधाबी, दुबई आदि में महाराजजी के कई भक्त रहते थे जो नियमित रूप से उनके दर्शनार्थ आते रहते थे।

सेवक निवास में हमारे कथानायक सन् 1970 से सन् 1990 तक रहे। इस बीस वर्षों की लम्बी अवधि में महाराजजी प्रायः निवृत्ति प्रधान जीवन ही व्यतीत करते रहे—एकान्त तथा निजानन्द की मौज में। किन्तु आश्रम में भी उनका जीवन सहज-स्फूर्त आत्मानुशासन में बंधा हुआ था। समय पर उठना, समय पर सोना, समय पर

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

भोजन, समय पर ध्यान, समय पर घूमना आदि-आदि। जैसा कि हमने ऊपर बताया है कि महाराजजी के कमरे के साथ ही एक साउंडप्रूफ कमरा ध्यान के लिये था। महाराजजी उसी में ध्यान-साधन किया करते थे। उन्हें परमतत्व की उपलब्धि तो झाड़ी में ही हो गयी थी अतः इसके बाद भी उनका साधना में बैठना ऐसा ही है जैसे किसी सिद्ध नर्तक का सहज प्रेरित होकर आनन्दातिरेक में नृत्य करना। सेवक निवास में भी महाराजजी के काष्ठमौन का कार्यक्रम पूर्ववत् चलता रहा। प्रतिवर्ष 15 अक्टूबर को जब महाराजजी अपना ग्रीष्मकालीन मौन खोलते तो उनके भक्त आश्रम में बड़ा भण्डारा करते थे जिसमें साधु-सन्तों को भोजन कराया जाता था। उन दिनों महाराजजी अपने मौन का बड़ी कठोरता से पालन करते थे। काष्ठमौन की अवधि में तो भोजन भी बनाकर उनके कमरे के बाहर रख दिया जाता था। सुबह-शाम का दूध भी ऊपर पहुँचा दिया जाता था। उस अवधि में महाराजजी किसी से भी नहीं मिलते थे। बाद के दिनों में महाराजजी दिन का भोजन तथा सायंकाल का अल्पाहार भोजनकक्ष में सबके साथ ही लेते थे। काष्ठमौन को छोडकर अन्य दिनों में महाराजजी दिन का भोजन सबके साथ करते थे। बाद के वर्षों में, जब सेवक निवास में भी सामूहिक ध्यान का कार्यक्रम आरम्भ हो गया था, महाराजजी प्रातः साढ़े तीन से साढ़े चार के ध्यान के बाद तथा सायं छः से सात के ध्यान में बैठने के बाद गंगाजी के बन्ध के ऊपर घूमने जाया करते थे। कोई सेवक हो तो उसके साथ, वरना अकेले ही। उनका जीवन तो सदा निर्पेक्ष ही रहा अतः किसी अन्य के साथ होने या न होने से उनकी सहजता अथवा आचार-विचार में कभी तनिक भी अन्तर नहीं आता था। सैर के दौरान महाराजजी बड़ी तेज़ तथा नपी तुली चाल चलते थे। एक निश्चित दूरी को रोज़ ठीक उतने ही समय में तय करते थे। सैर के ही दौरान एक निर्धारित खुले स्थान पर पाँच-सात मिनट के लिये खड़े-खड़े ही हल्के यौगिक व्यायाम भी किया करते थे। मौन में भी महाराजजी के साथ सैर करना एक अत्यन्त प्रीतिकर अनुभव हुआ करता था मानो मूर्तिमान प्रसन्नता और गतिशील ध्यान के साथ आनन्द विहार कर रहे हों। सैर के दौरान कितने ही विरक्त व तपस्वी साधु महाराजजी को देखते ही श्रद्धानत हो उन्हें बार-बार प्रणाम करते हुए रास्ते से एक तरफ हो जाते थे।

वैसे तो सेवक निवास में उनका पूरा समय ही प्रायः निवृत्ति में बीता तो भी आरम्भिक वर्षों में वे पूर्ण एकान्त व मौन रहकर प्रगाढ़ भगवद्भाव में डूबे रहते थे।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

सेवक निवास में गाँधीधाम निवासी उनकी अनन्य भक्ता पुष्पा माता अपनी छुट्टियों के एक-दो महीने वहाँ लगा जाती थीं तथा अनेक प्रकार से महाराजजी तथा आश्रम की सेवा करती थीं। सेवक निवास में महाराजजी की निवृत्ति प्रधान जीवन की बातें हमें उन्होंने ही बतायी हैं। अपनी नौकरी से सेवानिवृत्त होने के बाद अब तो अनेक वर्षों से वे साधना केन्द्र आश्रम में रहकर खूब भजन-सेवा कर रही हैं।

निवृत्ति प्रधान जीवन व्यतीत करते हुए भी महाराजजी अपने समक्ष उपस्थित स्वाभाविक कर्तव्यों के प्रति पूर्ण सचेत रहते थे। छोटे से छोटे कार्य के प्रति भी प्रमाद तो उनमें कभी देखा नहीं गया। वे आश्रम के उचित रख-रखाव का पूरा ख्याल रखते थे। आश्रम में आवश्यकतानुसार परिवर्तन करते रहना, मरम्मत कराते रहना, सारी कानूनी औपचारिकताओं की पूर्ति करना, बिजली-पानी की व्यवस्था को सुचारू रूप से रखना, बिजली-पानी के बिल आदि का भुगतान कराना, खाने के भण्डार का ख्याल करना, आने-जाने वाले सेवकों की सुख-सुविधा का ख्याल करना, आश्रम के पिछवाड़े में छोटे से बगीचे में लगे फल-फूलों की संभाल करना आदि-आदि— कितने ही काम थे जिनको महाराजजी पूरी दक्षता से किया करते थे। इनके अतिरिक्त उन्होंने एक व्यक्ति से बही-खाते बनाने भी सीख लिये थे। अतः सन् 1971-72 से लेकर सन् 1989 तक महाराजजी स्वयं ही सारे खर्चे कराते थे तथा उनका हिसाब-किताब स्वयं ही रखते थे। सारे खातों को प्रतिवर्ष अंकेक्षित (audited) करवाकर आयकर विभाग में रिटर्न (Return) भी दाखिल करवाया करते थे।

स्वामीजी के सेवक निवास में आ जाने पर शुरु-शुरु में वहां उनके पिता लालारूपचन्दजी तथा बड़े भाईसाहब भी उनसे मिलने आये थे। लेकिन संन्यासी जीवन की मर्यादाओं के अनुरूप स्वामीजी उनसे आत्मीयता व प्रेम से नहीं मिले। उन्होंने अपने परिजनों को आश्रम में आने तथा रहने के लिये सदा निरुत्साहित ही किया। इसी कारण से उनके पिताजी, भाईसाहब आदि कभी भी वहाँ आकर नहीं रहे। वे लोग कभी हरिद्वार आते तो सेवक निवास में नहीं ठहरते थे। वे किसी दूसरी ही जगह ठहरते तथा दिन में आकर महाराजजी के दर्शन कर जाते। सुनते हैं कि एक बार सेवक निवास में स्वामीजी की बड़ी बहिन इनके दर्शनं करने आयी थीं लेकिन महाराजजी दो दिन तक अपने कमरे से बाहर तक नहीं आये, शायद उनका काष्ठ मौन था। निराश बहन बिना दर्शन किये ही लौट गयीं। नवनीत के समान कोमल

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

हृदय वाले संतों के ऐसे व्यवहार की कैसे व्याख्या की जाये ?— सम्भवतः समाज में मोह-माया से ऊपर उठे हुए संन्यासी के उच्च मर्यादा को समाज के सामने रखने के लिये ! जब उनके पूज्य पिताजी का शरीर छूटा और बड़े भाई पिताजी के फूल प्रवाहित करने हरिद्वार आये तो भी कहीं और ठहरे; स्वामीजी के पास केवल कुछ देर के लिये ही आये। स्वामीजी ने हमसे भी कभी अपने पारिवारिक सम्बन्धों की चर्चा नहीं की तथा उनकी उदासीनता देख हमारी भी कभी उनसे इस सम्बन्ध में बात करने की हिम्मत नहीं हुई।

सेवक निवास आश्रम का वातावरण बड़ा पारिवारिक हुआ करता था। कभी-कभी स्वामीजी भक्तों के आग्रह पर उन्हें अपनी पुरानी तपस्थली झाड़ी में ले जाते। वहाँ भक्त उनके संग आनन्द मनाते। भोजन वहीं गंगातट पर बनाते थे। महाराजजी वहाँ भक्तों के साथ तरह-तरह की मधुर लीलाएं करते। कभी पत्थर फेंकने की, रेत में दौड़ने की, लम्बी कूद की प्रतियोगिता कराते और चुटकुले सुना-सुनाकर आनन्द किया करते थे तो कभी अकेले ही दूर वन-विहार को निकल जाते। अब तो वह स्थान हम भक्तों के लिये तीर्थ के समान है। फिर किसी-किसी दिन स्वयं अपनी कार में बैठाकर भक्तों को गंगातट के किसी निर्जन स्थान पर ले जाते तथा उनसे कीर्तन-भजन आदि सुना करते। किसी दिन उन्हें हरकी पौड़ी ले जाकर स्नान करा लाते और रास्ते में मखनिया लस्सी पिलाते या कुल्फी भी खिलाते; फिर जिद करके पैसे भी स्वयं ही देते। और कभी-कभी बड़े प्रेम से स्वयं भोजन बनाकर या जलेबी बनाकर भक्तों को खिलाते थे। लम्बे काल के एकान्त वास के कारण वे पाक-विद्या में तो प्रवीण थे ही। रोटी अभी भी इतनी सुन्दर व गोल बनाते हैं मानो मशीन से बनायी हो। होली का पर्व आता तो भक्तों के साथ खूब अबीर-गुलाल खेलते; खूब राग-रंग होता, धूम मचती। यह भी सुना है जब कभी स्वामीजी आश्रम के शौचालयों को गन्दा पाते तो स्वयं ही बहुत सुबह उठकर उन्हें साफ कर दिया करते थे। वे भक्तों के मां, बाप, भाई, बन्धु, मित्र—सभी कुछ थे।

इसी सेवक निवास में गुरुदेव के दिव्य आकर्षण से खिंचकर कनाडा निवासी पैनीजी और व उनके पति मिस्टर बो उनके पास आये थे। कई वर्षों तक उन्होंने बड़े प्रेम-भाव से महाराजजी तथा आश्रम की सेवा की। पैनी माताजी अभी ऋषिकेश में रहकर साधनामय जीवन व्यतीत कर रही हैं। इसी आश्रम में दिवंगत स्वामी प्रबोधचेतनजी

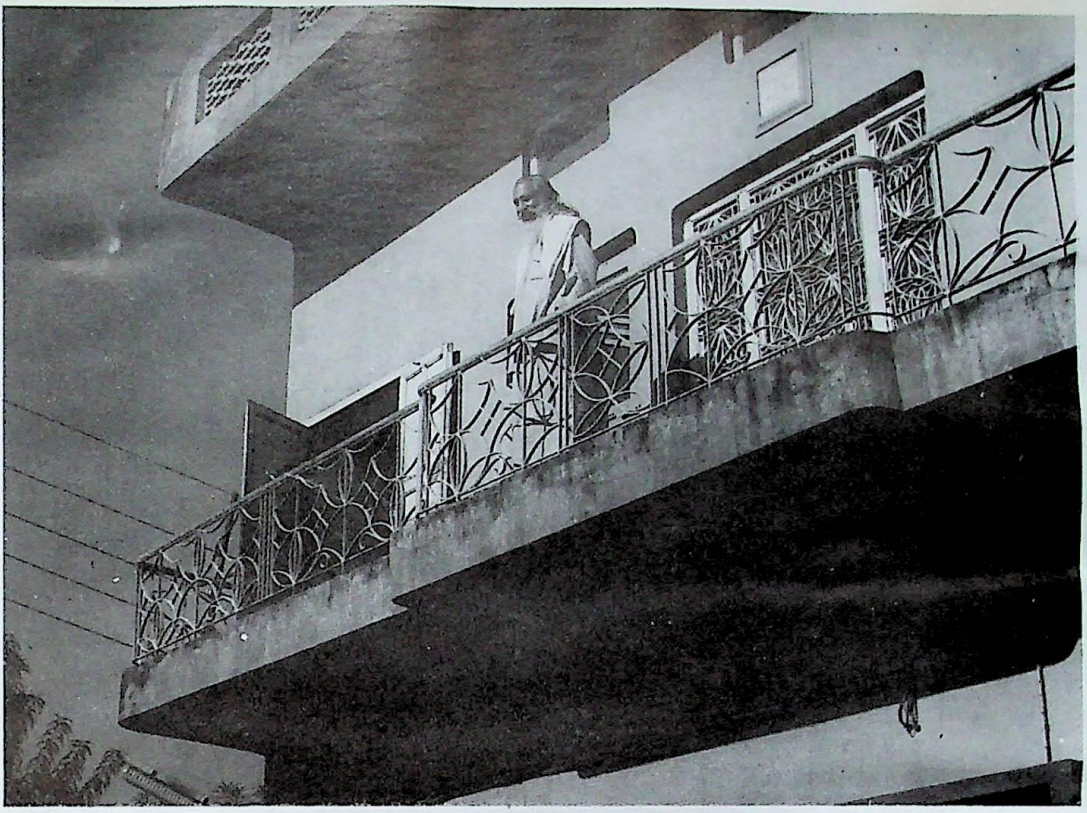
CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

चौदह वर्ष की अल्पायु में महाराजजी के पास आये थे। इस प्रसंग की चर्चा हम जरा बाद में करेंगे और यहीं पर गाँधीधाम गुजरात की माता पुष्पाजी, सौम्याजी, नैनाजी, श्रीटीकमदासजी (अब श्रीविनोदजी), कोटा के वीरेन्द्र (अब स्वामी प्रेमविवेकानन्द) और फ्राँस की सैंचेज़ कैथरीन (अब विशालीजी) विभिन्न समयों पर महाराजजी की शरण में रहकर सेवा-साधना करने आये थे। कई वर्षों तक आश्रम तथा महाराजजी की बहुत भक्ति-भाव से सेवा तथा साधना के उपरान्त आदरणीया सौम्याजी तथा नैनाजी अब गाँधीधाम में रहकर साधनामय जीवन व्यतीत कर रही हैं।

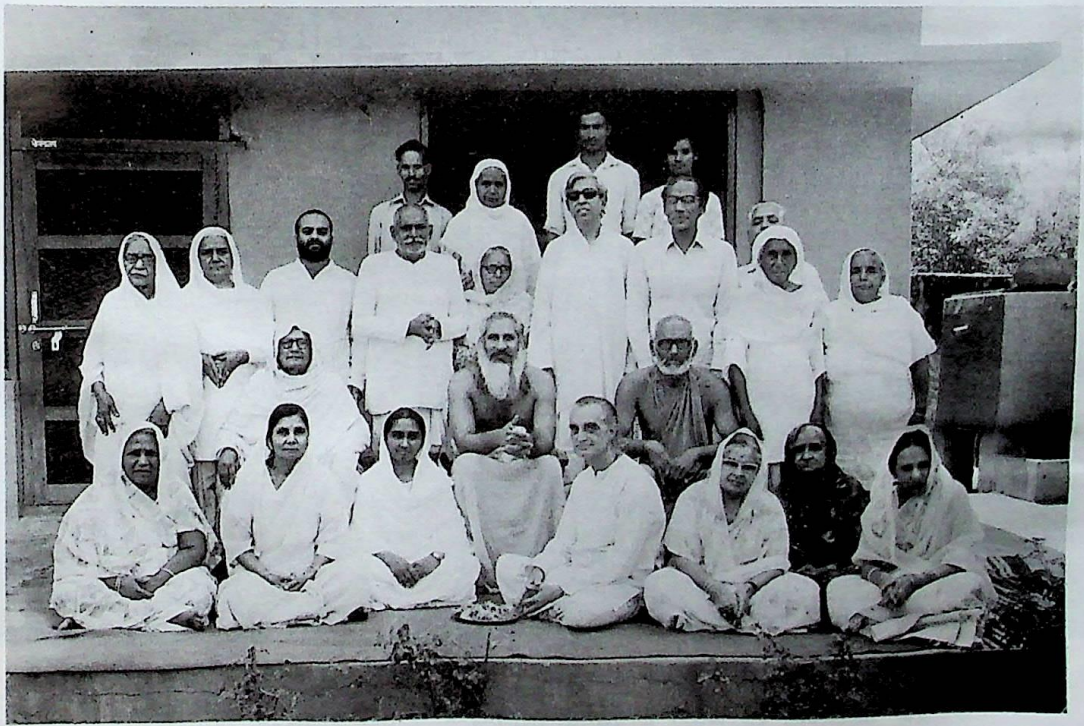
सेवक निवास में गुरुदेव के दर्शनों हेतु बहुत से संत-महात्मा आते रहते थे। किन्तु प्रायः मौन-एकान्तवास होने से किसी की महाराजजी से बातचीत अथवा परिचय नहीं हो पाता था। अतः हमें इस सम्बन्ध में अधिक जानकारी नहीं है। तो भी हम यहाँ दो संतों की चर्चा करना चाहेंगे जो अक्सर महाराजजी के पास आया करते थे।

सप्तसरोवर स्थित पुराने आश्रमों में से कच्छी आश्रम एक है। उस आश्रम के मुखिया तथा महन्त स्वामी वालदासजी महाराज बड़े ऊँचे तथा सरल संत थे। वे कबीरपंथी थे तथा हमारे महाराजजी के प्रति बड़ी श्रद्धा-भक्ति रखते थे। सन् 1957 में जब गुरुदेव पहली बार झाड़ी में आये, तब से लेकर सन् 1995 तक जब उनका शरीर छूटा, उनका गुरुदेव के साथ गहरा आध्यात्मिक सम्बन्ध बना रहा। प्रत्येक गुरुपूर्णिमा को वे अपने अनेक भक्तों के साथ सेवक निवास में आकर महाराजजी को प्रणाम किया करते थे। उसके बाद ही उनके भक्त उनकी स्वयं की पूजा-आरती किया करते थे। दरअसल वे जानते थे कि महराजजी अध्यात्म के शिखर पर पहुँचे हुये सिद्ध महापुरुष हैं। अभी भी यदा-कदा कच्छी आश्रम से वहाँ के वर्तमान मुखिया पूज्य स्वामी हरिदासजी महाराज अपने सेवकों के साथ बस में बैठकर महाराजजी के दर्शन करने आ जाते हैं। स्वामी वालदासजी महाराज सन् 1995 में चोला छोड़ गये थे। कच्छी आश्रम में ही एक पहुँची हुई गुजराती संत माता यशोदा भी रहा करती थीं। उनका भी गुरुदेव से अनूठा प्रेम सम्बन्ध था। वे इन्हें पुत्रवत प्यार करती थीं। महाराजजी के अनन्य भक्त श्रीविनोदजी ने इनकी बहुत सेवा की थी। श्रीविनोदजी ने हमें बताया कि माताजी ने कच्छी आश्रम में बहुत सेवा तथा साधना की थी। वे कहती थीं कि श्रीवालदासजी कृपासिद्ध हैं तथा श्रीचन्द्रस्वामीजी साधनसिद्ध। माताजी ने

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



सेवक निवास आश्रम के प्रथम तल पर लाइब्रेरी हाल के बाहर खड़े स्वामीजी।



सेवक निवास के पिछवाड़े में विरक्त संत स्वामी सर्वप्रकाशानन्दजी, माता यशोदा तथा अन्य भक्तों के संग।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



हम सदैव दुःख में नहीं रह सकते और न सदैव सुख में; परन्तु आनन्द में हम अवश्यमेव रह सकते हैं क्योंकि आनन्द ही हमारा वास्तविक होना है।

सेवक निवास में लाइब्रेरी हाल में अपनी कुर्सी पर बैठे गुरुदेव।

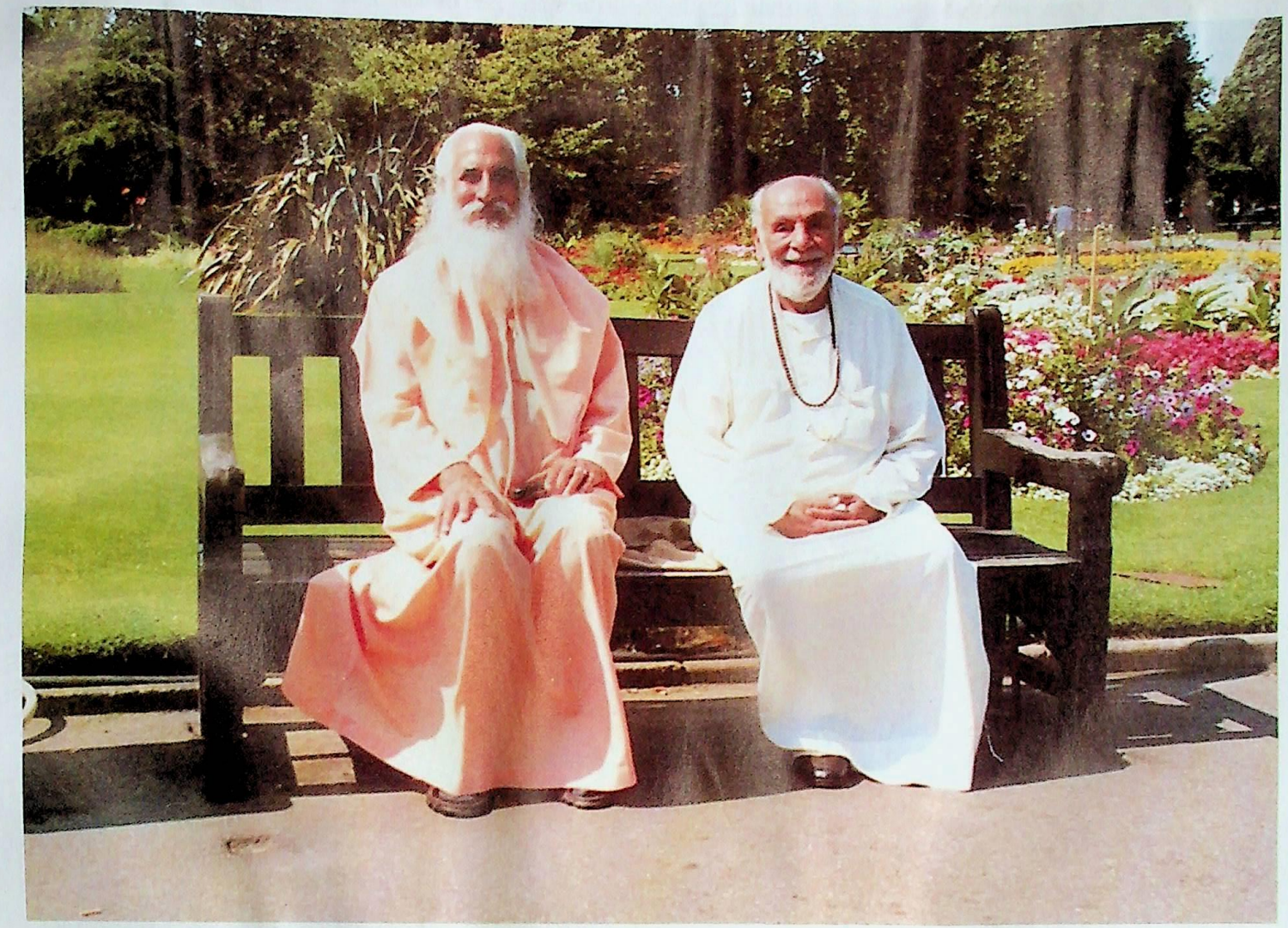
CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri



संत सनेही नाम है नाम सनेही संत ।।
नाम सनेही संत नाम को वही मिलावैं । वे हैं वाकिफ़कार मिलन की राह बतावैं ।।

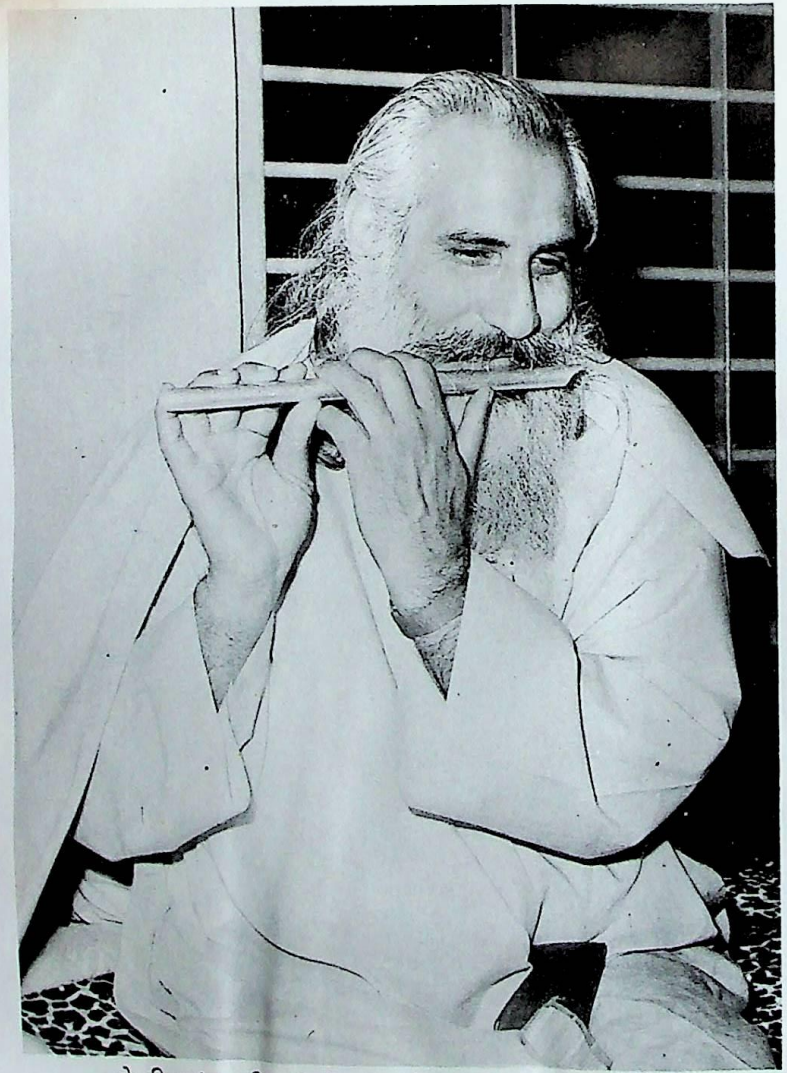
सेवक निवास में सत्संग बेला के समय स्वामीजी का दर्शन व शब्द-सुधा का पान करने आये भक्तगण । स्वामीजी के दायीं ओर कुर्सी पर कच्छी आश्रम के मृदुल स्वभाव वाले पूज्य स्वामी वालदासजी महाराज बैठे हैं तथा बायीं ओर एक अन्य संत हैं ।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



परमारथ के कारने साधुन धरा शरीर।
सन् 1998 में लंदन में पूज्य रामबापा के साथ।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



ऐ री बांस की बांसुरिया, तूने कौन-कौन तप कीन्हों।
भक्तों को लुभाते, बांसुरी बजाते।



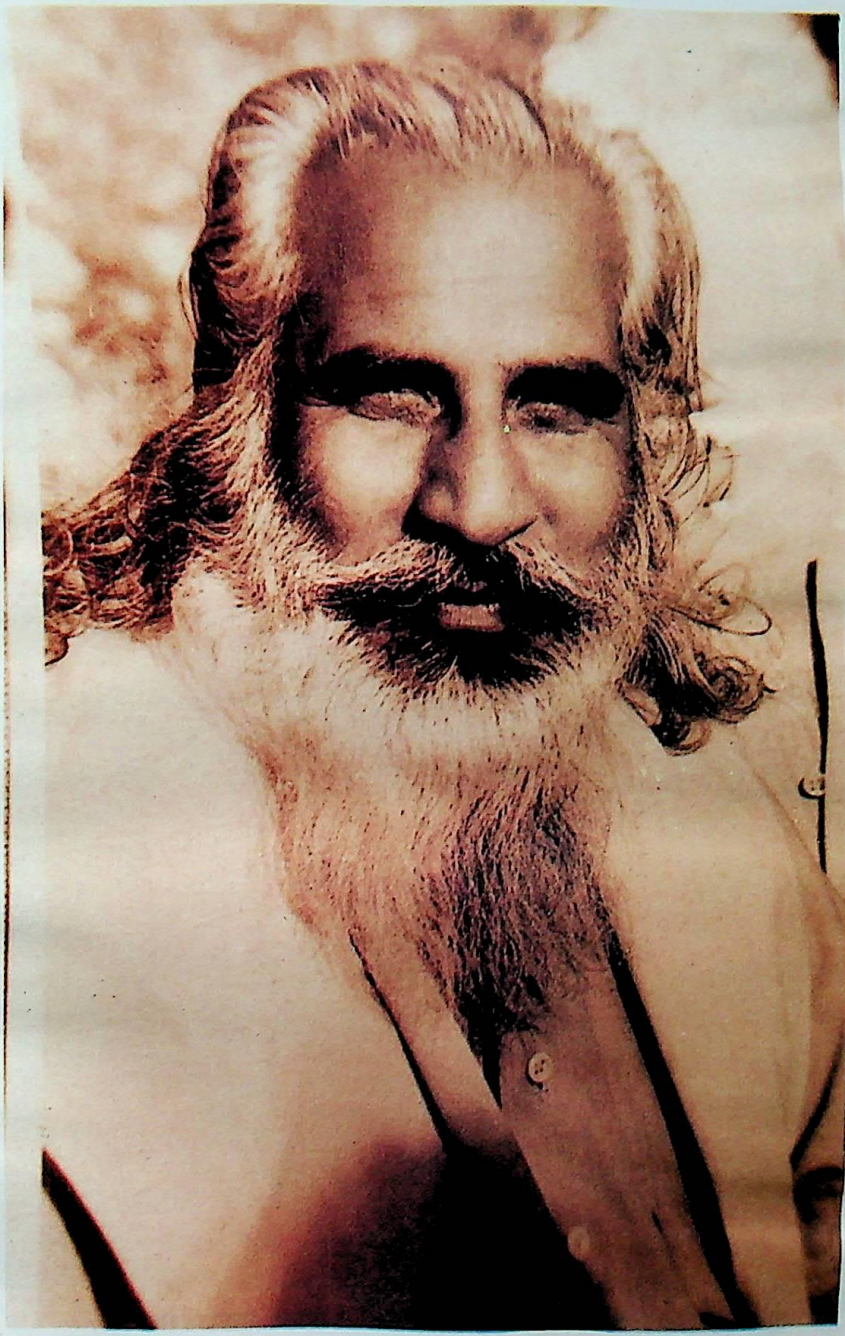
सेवक निवास में अपने कक्ष में।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



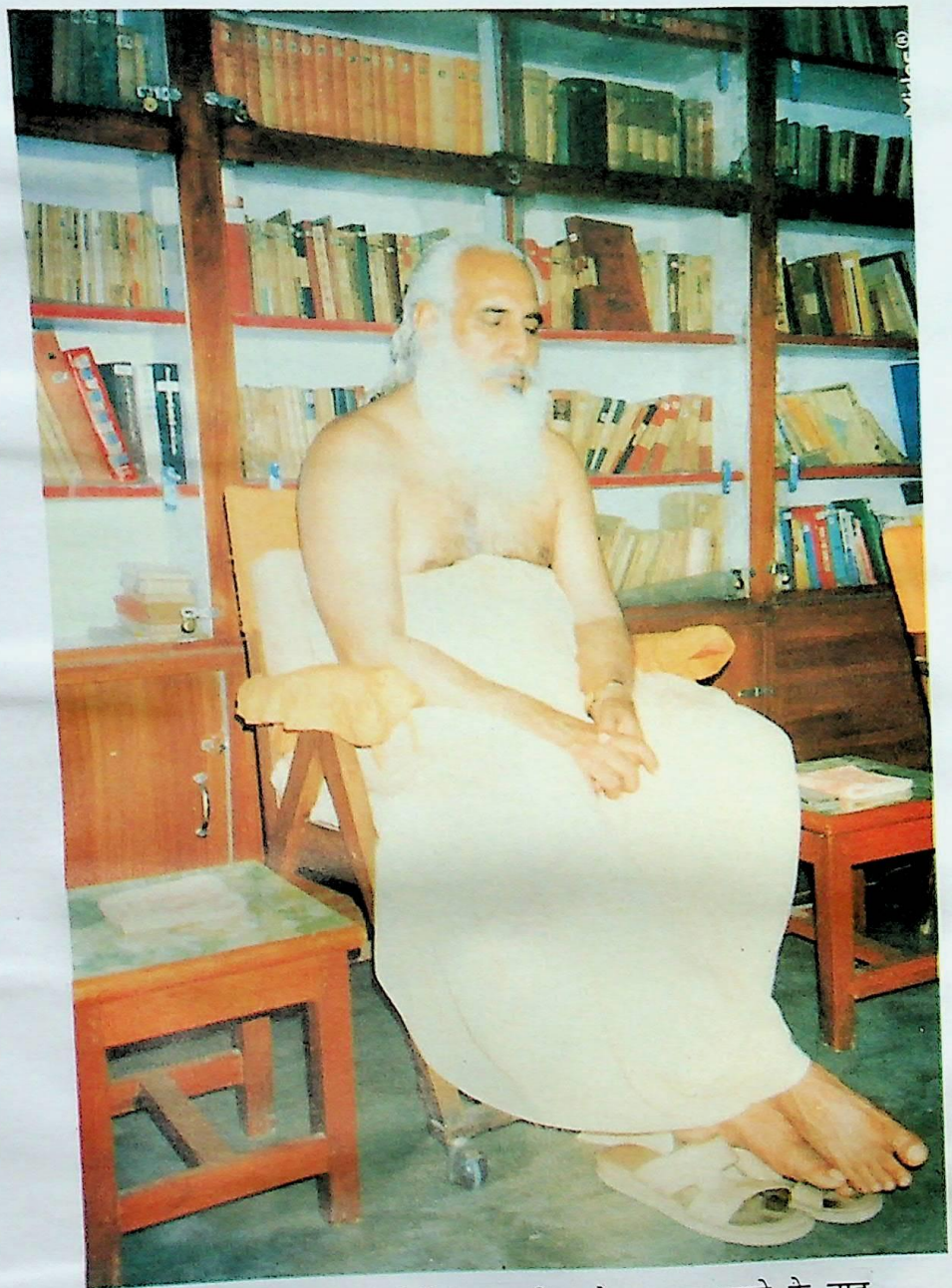
प्रभु इहै मनोरथ मेरा ।।
कृपानिधान दयाल मोहि दीजै, कर संतन का चेरा ।
गाँधीधाम गुजरात के संत पूज्य डॉ. के. के. कानूगाजी ।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



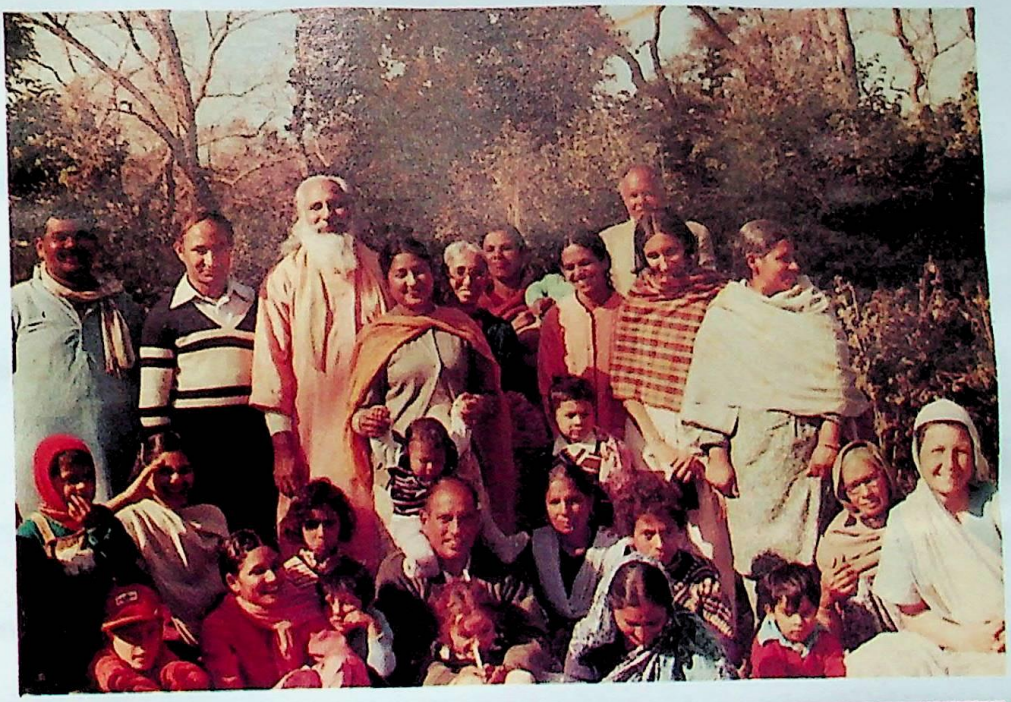
आली री ! ये मुस्कान सम्हारी न जड़यै, न जड़यै, न जड़यै।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



सेवक निवास में अनिश्चित कालीन मौन धारण करने के बाद महाराजजी भक्तों के अनुरोध पर नित्यप्रति दोपहर में दर्शन देने लाइब्रेरी हॉल में आते थे। उस समय वे असंगता, मूक आनन्द और गहरी शान्ति का पुंज प्रतीत होते। उन्हीं दुर्लभ क्षणों की एक छवि।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri





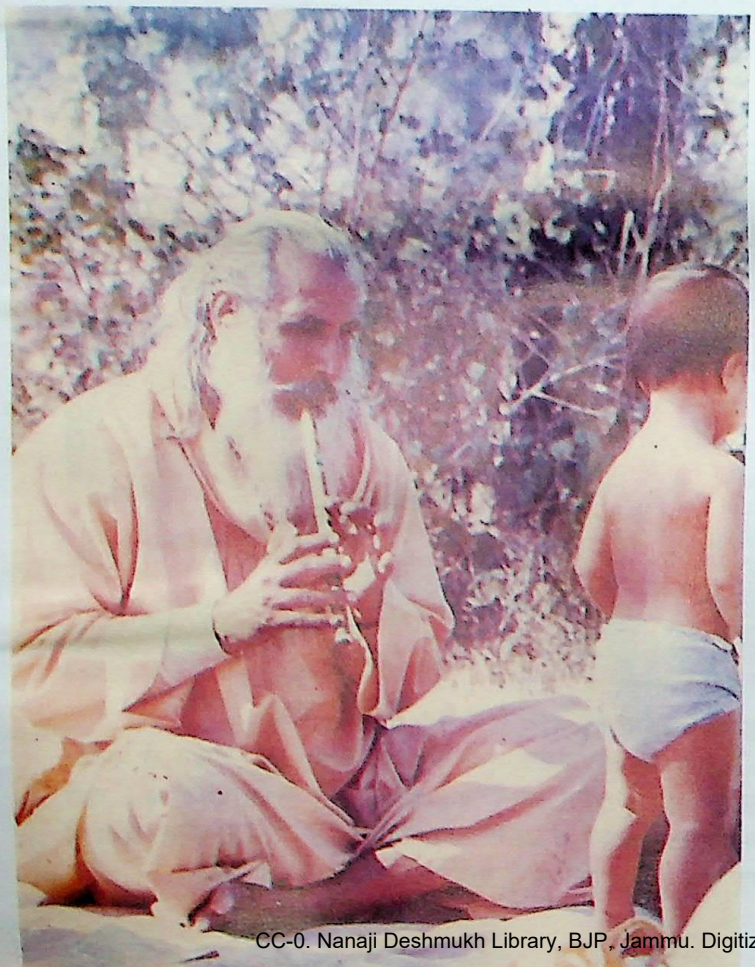
तुम मात पिता हम बारक तेरे, तुमरी किरपा में सूख घनेरे।

प्रायः सेवक निवास में भक्तगण महाराजजी से आग्रह करके गंगाजी के तट पर, जंगल में उनकी पुरानी तपस्थली (झाड़ी) में आग्रह करके जाया करते थे। बच्चे, बूढ़े सभी जाते थे। वहाँ मिल-जुल कर सभी भक्त भोजन बनाकर आपस में प्रसाद पाते, संकीर्तन करते तथा तरह-तरह से आनन्द मनाते। ऊपर वाला चित्र सन् 1982 तथा नीचे वाला सन् 1986 का है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

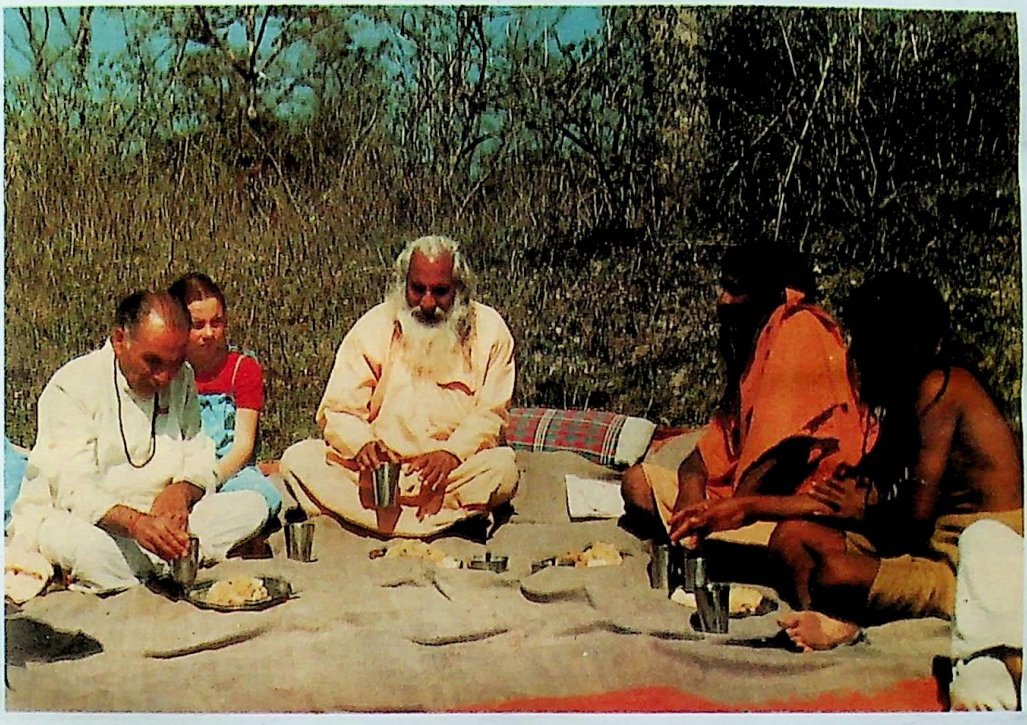


↑ झाड़ी में महाराजजी भक्तों के साथ तरह-तरह के खेल करते। दौड़ तथा लम्बी कूद की प्रतियोगिताएं कराते। इस चित्र में वे गंगाजी की बालू में स्वयं पत्थर फैंकने की प्रतियोगिता में भाग ले रहे हैं।



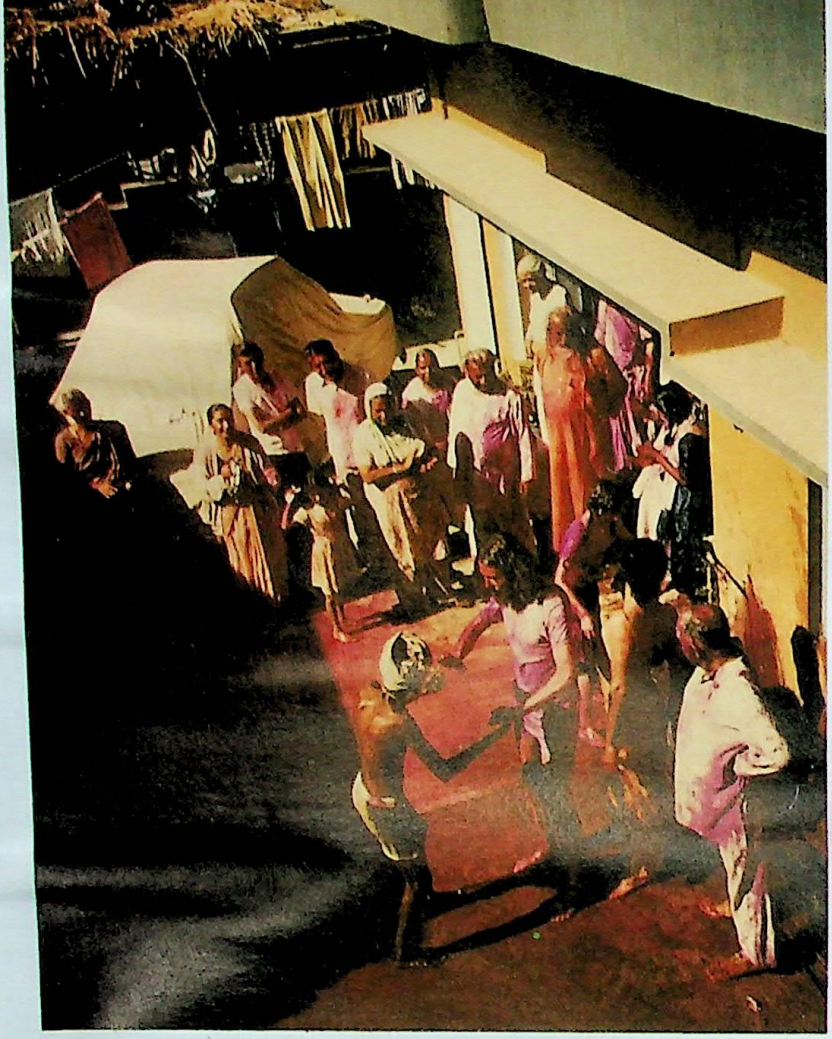
← झाड़ी में ही भक्तों को बांसुरी सुनाते, आनन्द मनाते गुरुदेव।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



झाड़ी में पिकनिक मनाते हुए। साथ में पूज्य श्रीरामबापा, पूज्य स्वामी भागवतानन्दजी व पूज्य अवधूत रामभजनजी हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



← होली के रंग,
सतगुरु के संग।

सेवक निवास में एक
↓ होली का नज़ारा।

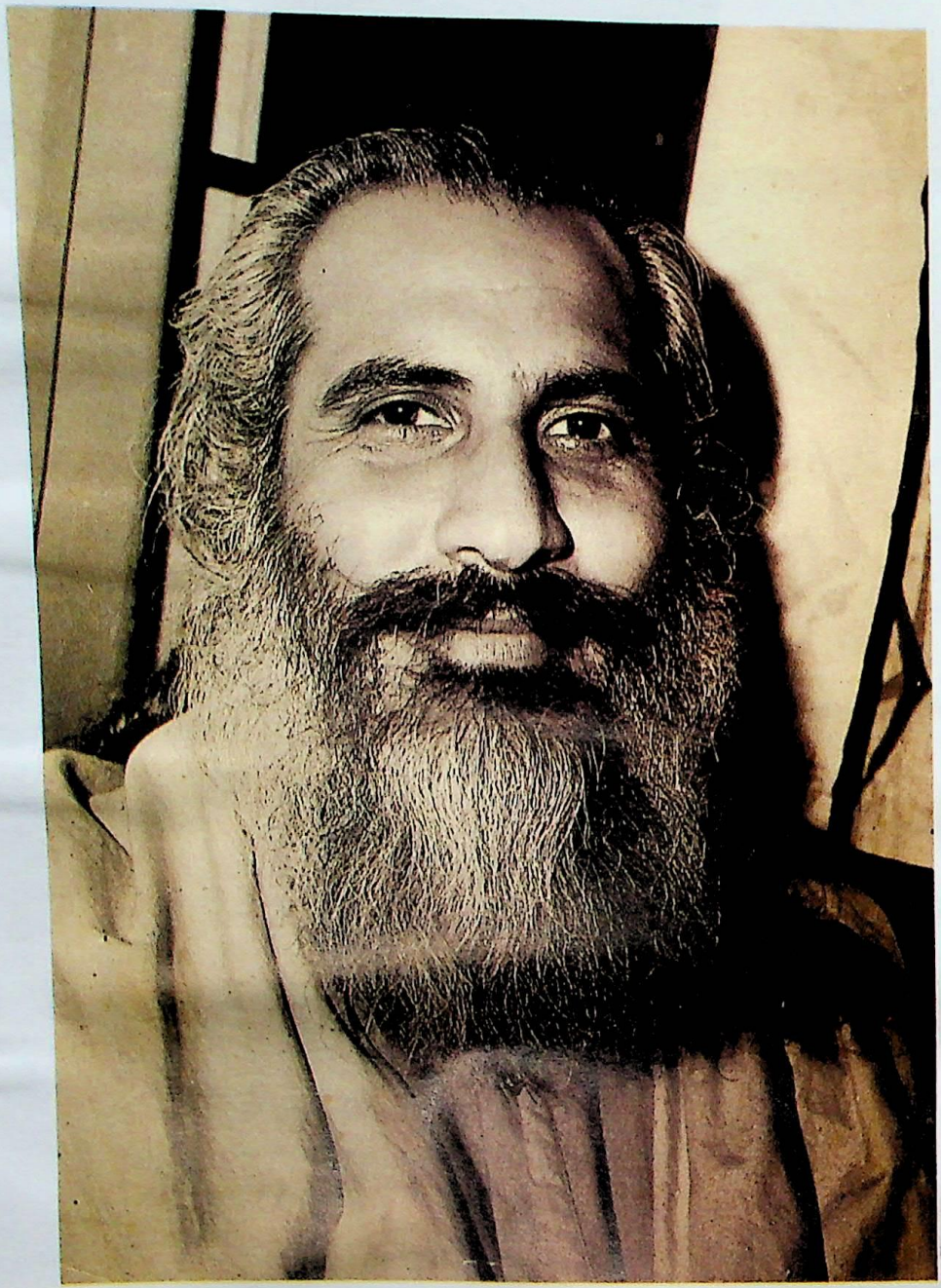


CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



होरी खेलन आयो श्याम, आज याहि रंग में बोरो री।
लोक लाज मरजाद सबै, फागन में तोरो री॥
हाथ जोड़ जब करे विनती, तब याहे छोरो री।
चन्द्रसखी यों कहे आज बन बैठ्यो भोरो री॥

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



परमात्मा है। उसका अस्तित्व इतना स्पष्ट है कि उसको सिद्ध करने के लिये किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। परमात्मा आपके अन्दर आत्मा के रूप में नित्य विद्यमान है। आत्मा का अस्तित्व तो स्वतः सिद्ध है ही क्योंकि वह स्वयं प्रकाश है। आत्मभूत 'अपने आप' को सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं होती। 'मैं हूँ'—यह मन की कोरी मान्यता अथवा कल्पना नहीं है बल्कि प्रत्येक आत्मा की सहज अनुभूति है। 'मैं नहीं हूँ'—यह मन की कल्पना है। अपने अभाव, अपनी जड़ता एवं अपनी अप्रियता का अनुभव किसी को कभी हो ही नहीं सकता। इस 'मैं' को मिथ्या अहं, जो एक परछायी मात्र है, समझने की भूल न कीजिये। अन्तर्मुख हो गहरी डुबकी लगाइये और 'सच्चे मैं' को जानने का प्रयास कीजिये।

राजकोट, गुजरात के एक कलाकार द्वारा बनाया स्वामीजी का तैलचित्र।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

हिमालय के एक गाँव में कुछ समय व्यतीत करके स्वेच्छा से श्रीविनोदजी की उपस्थिति में जीवित जल समाधि लेकर अपना शरीर छोड़ा था। यह सन् 1973 की बात है। हिमालय में जाने से पहले वे सेवक निवास होकर गयी थीं। बाहर उनकी टैक्सी खड़ी रही। वे अपने भक्तों सहित आश्रम में आधा घण्टा रहीं, तब आगे गयीं। इस प्रकार अपनी अन्तिम यात्रा से पहले भी वे गुरुदेव से आशीष लेकर गयी थीं।

एक अन्य संत—अफ्रीका आश्रम, सप्तसरोवर हरिद्वार के—स्वामी दिव्यप्रकाशानन्दजी भी नियमित रूप से महाराजजी के दर्शनार्थ आते रहते थे। वे नित्य योगवाशिष्ठ की कथा करते थे। उस ग्रन्थ में भगवद्साक्षात्कार प्राप्त मुक्तात्मा के जीवन व स्वभाव की चर्चा करते समय वे गुरुदेव का दृष्टान्त दिया करते थे। उनका भी अब शरीर शान्त हो गया है। इनके अतिरिक्त हरिद्वार के पूरे संत समाज में गुरुदेव को मौन तथा एकान्त में वास करने वाले एक ऊँचे संत के रूप में जाना जाता था। हरिद्वार प्रवास के दौरान प्रायः महाराजजी धार्मिक सम्मेलनों अथवा उत्सवों आदि में नहीं जाते थे।

सेवक निवास में विदेशी जिज्ञासुओं और भक्तों का आना आरम्भ हो गया था। सन् 1970 में उनके पास आये कुछ भक्त आज तक नियमित रूप से महाराजजी के पास आ रहे हैं। उनमें फ्राँस के दिवंगत पूज्य आनन्दजी (जिनकी चर्चा हम बाद में अलग से भी करेंगे।) लोड़क (कल्याणदास), लिलियन (वन्दना), आलिवर विलेन (ज्ञानानन्द) तथा इंग्लैण्ड के जॉन (प्रेमदास) प्रमुख हैं।

लम्बा, अनिश्चित मौन

दिनाँक 15 अक्तूबर, 1984 को एक बिल्कुल अप्रत्याशित घटना घटी। 15 अक्तूबर, 1983 को महाराजजी ने पूरे एक वर्ष का काष्ठ मौन रखा था। जब वह मौन समाप्त हुआ तो महाराजजी ने वहाँ उपस्थित सेवकों को बड़ी अप्रत्याशित और हृदय-विदारक सूचना दी कि वे भगवद्प्रेरणा से अनिश्चितकालीन मौन रख रहे हैं जो कम से कम बारह वर्ष का होगा। उपस्थित सभी भक्त यह सुनकर सकते में आ गये। तो क्या उन्हें अपने प्रिय गुरुदेव की मीठी आवाज अब बिल्कुल सुनने को नहीं मिलेगी ? अब तक वाणी द्वारा उनके यत्किंचित सत्संग तथा हास-परिहास से भी क्या वे वंचित रह जायेंगे ? खबर सुनकर सब सेवक उनसे हाथ जोड़कर अनुनय-

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

विनय करने लगे; कितने ही रोने लगे। किन्तु संकल्प के धनी महाराजजी ने सबको प्रेम से समझाया कि तीव्र भगवदेच्छा की अवहेलना करने में वे सर्वथा असमर्थ हैं। तथा यह भी, कि उनके मौन रहने में ही सभी का कल्याण है। उन्होंने सभी सेवकों को प्रेमपूर्वक यह भी संकेत दिया कि यदि उनका मौन में रहना सेवकों को स्वीकार न हो तो वे आश्रम छोड़कर कहीं अन्यत्र चले जायेंगे। सब सेवक मन मसोसकर रह गये। निदान, महाराजजी का लम्बा मौन आरम्भ हुआ और सोलह वर्ष पूरे होने के बाद भी अभी तक चल रहा है। सभी बड़ी आतुरता से उनकी मधुर वाणी सुनने को आतुर हैं। प्रतीक्षा करें, प्रभु कब कृपा करते हैं। लोग उनसे उनके इस विचित्र मौन के बारे में तरह-तरह के प्रश्न करते हैं, उसके औचित्य की बात करते हैं। वस्तुतः महाराजजी का मौन तो पूर्णतः निर्वासनिक मौन है, अमनी मौन है। (अर्थात् वासना से युक्त मन का अभाव हो जाना) वे स्वयं कहते हैं, "जब तक मन में इच्छाएं-वासनाएं हैं तथा मन पूरी तरह चुप नहीं हो जाता, सच्चा मौन घटित नहीं हो सकता तथा जब तक कोई उद्देश्य (motive) रहता है तब तक मन पूरी तरह मौन हो ही नहीं सकता।" लोगों के प्रश्नों के उत्तर में वे मुस्कुराकर लिख देते हैं, "मुझे मौन से प्रेम हो गया है और प्रेम का कोई कारण नहीं होता। मेरे मौन का कोई भी कारण नहीं है।" कभी यह लिख देते हैं, "मौन से सारे विश्व का उदय हुआ है। अन्ततः मौन में ही सब विलीन हो जाता है।" और फिर कभी यह भी लिख देते हैं, "जब भगवान का आदेश होगा तब बोलूंगा।" अस्तु। महाराजजी की लीला वे ही जानें।

एक महत्वपूर्ण आध्यात्मिक कदम

सेवक निवास में स्वामीजी साधारण मौन की अवधि में एक-डेढ़ घंटा सत्संग किया करते थे। उनका सत्संग बड़ा सरल, अनौपचारिक, प्रभावी तथा शुद्ध आध्यात्मिकता से भरपूर होता था। उनकी वाणी बड़ी सरस और शान्तिदायक थी। दुर्भाग्य से उनके अमृत वचनों का हमारे पास कोई संकलन नहीं है। शायद किसी-किसी सेवक के पास उनके सत्संग के प्रवचनों की कैसेट होगी।

सन् 1988 के आस-पास महाराजजी ने आश्रम में दिन में चार बार एक-एक घंटे के सामूहिक ध्यान-साधना के कार्यक्रम को आरम्भ किया था। साधना एक हाल में प्रातः साढ़े तीन से साढ़े चार, दोपहर नौ से दस, अपराह्न तीन से चार तथा

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

सायं छः से सात तक हुआ करती थी। आश्रम में उपस्थित सभी सेवक-साधक साधना में भाग लेते थे तथा गुरुदेव स्वयं भी चारों समय ध्यान में आते थे। अब हमें स्पष्ट दिख रहा है कि यह साधकों के आध्यात्मिक विकास की दृष्टि से एक अति महत्वपूर्ण कदम था क्योंकि तब से लेकर अभी तक साधना का यह दैनिक व नियमित कार्यक्रम अबाध गति से चल रहा है। साधना केन्द्र के दैनिक कार्यक्रम का यह एकमात्र सबसे प्रमुख अंग है। महाराजजी ने एक सच्चे सद्गुरु की भाँति अपने सेवकों-भक्तों के साथ अपने सम्बन्ध को केवल प्रणाम और वार्षिक उत्सवों तक सीमित न रखकर उसे अपने अपरोक्ष मार्गदर्शन में साधना से जोड़ दिया। इस प्रकार उन्होंने आश्रम को मात्र कर्मकाण्ड वाले तथा ठहरने के स्थान की बजाय एक साधना स्थली के रूप में विकसित किया है। प्रतीत होता है कि यह सब आयोजन अकारण नहीं था; यह सब आने वाले समय में उनके द्वारा सम्पादित होने वाले महान् कार्यों का सुनियोजित आरम्भ था।

साधना केन्द्र आश्रम

समय के साथ-साथ किसी समय शान्त सप्तसरोवर भी धीरे-धीरे भीड़-भाड़ वाला तथा व्यावसायिक क्षेत्र बनता चला गया। सेवक निवास के आस-पास भी धीरे-धीरे कई मन्दिर व धर्मशालाएं बन गयी थीं। तीर्थयात्रियों की भीड़ बढ़ती जा रही थी। धार्मिक पर्वों पर तो पूरे हरिद्वार में लाखों लोगों की भीड़ उमड़ पड़ती थी। फिर दिन भर लाउड स्पीकरों तथा वाहनों आदि का शोर। अतः भजन-साधन की दृष्टि से अब सप्तसरोवर अनुकूल स्थान नहीं रह गया था। महाराजजी की तीक्ष्ण दृष्टि से यह बात छुपी नहीं थी।

अतः उन्हीं की पहल पर आश्रम के सभी भक्तों ने सेवक-निवास को बेचकर किसी शान्त, एकान्त तथा भजन-साधन की दृष्टि से उपयुक्त स्थान पर नये आश्रम के निर्माण करने का निर्णय लिया। परम-पवित्र स्थल हरिद्वार को छोड़कर न जाने का कुछ सेवकों तथा संतों ने सुझाव दिया किन्तु महाराजजी के दृढ़ सकंल्प में वे परिवर्तन न ला सके।

तब महाराजजी का लम्बा मौन जारी था। नये आश्रम के लिये उपयुक्त स्थान की खोज में महाराजजी स्वयं बहुत सवेरे ही अपने कुछ सेवकों के साथ, कार में

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

बैठकर निकल जाते। उन्होंने ऋषिकेश, रायवाला, देहरादून के पूरे क्षेत्र में दर्जनों स्थानों का भ्रमण किया तथा मौसम, बिजली, पानी, गम्यता, कोलाहल, प्राकृतिक सौंदर्य तथा सर्वोपरि भजन-साधन आदि की दृष्टि से उनका अवलोकन किया। अक्सर दिन का भोजन वे साथ ही ले जाते थे। सेवक भी कृतकृत्य हो जाते। दिन भर महाराजजी का सान्निध्य तो मिलता ही, साथ ही समय मिलने पर भजन-संकीर्तन भी हो जाता था। स्थान की खोज प्रायः एक वर्ष तक चलती रही। अंत में उन्हीं की लीला से देहरादून से लगभग पचास किलोमीटर उत्तर-पश्चिम की ओर, विकास नगर से दस किलोमीटर आगे, एक छोटे से पहाड़ी ग्राम, डुमेट में यह स्थान मिला। पसन्द किया गया प्लाट ठीक यमुनाजी के तट पर तीन ओर शिवालिक पहाड़ियों से घिरा हुआ, बिल्कुल शान्त वातावरण में स्थित था। महाराजजी को देखते ही वह स्थान पसन्द आ गया और उन्होंने कागज पर किसी सेवक को लिखकर दिया, "It is a miracle that we have found this place." (अर्थात् यह चमत्कार ही है कि हमें यह स्थान मिल गया।) अब धीरे-धीरे उनकी बात का अर्थ हृदयंगम हो रहा है।

शीघ्र ही प्लाट क्रय कर लिया गया तथा सेवक निवास आश्रम को बेचने की प्रक्रिया आरम्भ की गयी। महाराजजी ने इस सम्बन्ध में सभी कानूनी औपचारिकताओं का अक्षरशः पालन किया। सेवक निवास का सरकारी मान्यता प्राप्त आकलनकर्ता (Govt. approved valuer) से अंकलन करवाकर आयकर विभाग से आश्रम बेचने की अनुमति ली गयी, फिर जिला न्यायालय, सहारनपुर से लम्बी सुनवायी के बाद आश्रम को बेचने की आज्ञा प्राप्त की गयी। महाराजजी के परम सेवक, जम्मू के निवासी दिवंगत डा. सतपालजी गुप्ता ने इस समय आश्रम में ठहरकर इन सारे क्रियाकलापों को निपटाने में अपनी पूरी सेवाएं दीं। एक दूसरे भक्त आयकर विभाग के सेवा निवृत्त कमिश्नर श्री वाई. खोखरजी ने भी आश्रम के विभिन्न कार्यों में अपनी अनेक प्रकार से सेवायें प्रदान कीं।

नये आश्रम का निर्माण पुराने आश्रम को बेचने से प्राप्त धन तथा महाराजजी के सेवकों द्वारा प्रेमपूर्वक स्वैच्छिक दान की राशि से आरम्भ किया गया। सारा कार्य लेबर रेट पर करवाया गया। सारा सामान जैसे सीमेन्ट, लोहा आदि आश्रम ही खरीदता था ताकि कार्य की गुणवत्ता बनी रह सके। महाराजजी की देख-रेख में सारा कार्य द्रुत गति से चला। कार्य मार्च, 1990 में आरम्भ हो सका और 7-10-90

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

को महाराजजी अपने कुछ सेवकों के साथ सेवक निवास छोड़कर आंशिक रूप से निर्मित साधना केन्द्र आश्रम में प्रवेश कर गये। प्रवेश के दिन बड़ा उत्सव मनाया गया। विधिवत् हवन हुआ तथा विशाल भण्डारा भी आयोजित किया गया। उस अवसर पर बाहर से भी सैकड़ों भक्त आये हुए थे। सेवक निवास आश्रम से नये आश्रम में सारा सामान दिल्ली निवासी परमभक्त श्रीरामलालजी चुग के सुपुत्रों— श्रीअक्षयजी, श्रीराकेशजी ने अपने ट्रकों पर स्वयं लादकर सुरक्षित पहुँचा दिया। आंशिक रूप से बने आश्रम में प्रवेश करने के बाद अपने मौन के बावजूद स्वामीजी आश्रम-निर्माण को और अधिक समय देने लगे। यहाँ यह स्पष्ट कर दें कि पूरे साधना केन्द्र आश्रम का विचार व योजना मूलतः महाराजजी की है। दिल्ली के श्रीदीपकजी मेहता, आर्किटेक्ट, जो महाराजजी के बड़े भक्त भी हैं उन्होंने सारे आश्रम का नक्शा महाराजजी के दिशानिर्देशों के अनुसार बड़े प्रेम, श्रद्धा व तत्परता से बनाया। वे अनेक बार आश्रम आये तथा बहुत धैर्य और प्रेम से उन्होंने आवश्यकतानुसार कई बार नक्शे बनाये। अभी भी आश्रम में कुछ भी निर्माण सम्बन्धी कार्य हो तो आर्किटैक्चरल सभी विषयों पर वे ही अपनी सेवायें देते हैं।

धीरे-धीरे सन् 1997 तक आश्रम का निर्माण कार्य पूरा हुआ। इस दौरान आस-पास की कुछ भूमि और क्रय की गयी तथा तीन चरणों में आश्रम का विस्तार किया गया। महाराजजी का शुरु से ही यह नियम रहा कि जितना धन हाथ में हो उसी के अनुसार कार्य का विस्तार करना चाहिये। अतः निर्माण कार्य धीरे-धीरे ही हो सका। स्वामीजी छोटी से छोटी बात पर भी पूरी नज़र रखते रहे हैं। निर्माण कार्य से सम्बन्धित सभी विषयों पर आधिकारिक जानकारी होने से उन्होंने अपने मौन के बावजूद पूरा कार्य बहुत शीघ्रता से तथा अच्छी गुणवत्ता का करवाया। आश्रम बिल्कुल साधारण किन्तु मजबूत बना हुआ है। कहीं भी अनावश्यक धन बरबाद नहीं किया गया है।

आश्रम निर्माण में अगणित सेवकों-भक्तों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से अपनी सेवाएं प्रदान की। भक्तों ने निर्माण कार्य का पता चलते ही बिना मांगे ही मुक्त हस्त से दान देना भी आरम्भ कर दिया। वस्तुओं के रूप में भी भक्तों ने बहुत सेवाएं प्रदान कीं। किसी ने अपना समय दिया। और फिर यह सब इतनी नम्रता और भक्तिभाव से कि भक्तों के दान से बने पूरे आश्रम में एक भी स्थान पर कहीं दानदाता की तख्ती

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

नहीं लगी है। हमें स्मरण है कि सेवक निवास, हरिद्वार में आश्रम की कुल वार्षिक आय सोलह-सत्रह हजार हुआ करती थी किन्तु आश्रम निर्माण आरम्भ होते ही लाखों की राशि में देश के एवं विदेशी भक्तों ने, बिना मांगे ही दान देना आरम्भ कर दिया। यह सब बड़ा आश्चर्यपूर्ण और महाराजजी के सत्-संकल्प का ही फल है।

इसी अवधि में सन् 1990 में, दिवंगत डा. सतपालजी गुप्ता ने काफी दौड़-धूप करके गृह मन्त्रालय, भारत सरकार से Foreign Contribution Regulation Act, 1976 के अन्तर्गत सीकर्स ट्रस्ट को नियमानुसार पंजीकृत करवा लिया। इस पंजीकरण के पहले संस्था की सरकार द्वारा गहन जांच पड़ताल की गयी तथा सब कुछ ठीक पाये जाने पर पंजीकरण कर दिया गया। यह एक बहुत जटिल व महत्वपूर्ण कार्य था क्योंकि इससे संस्था को महाराजजी के विदेशी भक्तों द्वारा दिये दान को प्राप्त करने के लिये सरकार की अनुमति मिल गयी।

सन् 1991 में डाक्टरजी ने विशेष प्रयास करके जम्मू से ट्यूबवैल खोदने की मशीन लाकर आश्रम परिसर में ट्यूबवैल खुदवा दिया। इस प्रकार आश्रम में स्वच्छ पानी की समस्या भी सदा के लिये दूर हो गयी। अगले ही वर्ष प्रयास करके आश्रम के पीछे की ऊबड़-खाबड़ भूमि सरकार से लीज़ पर ले ली गयी तथा उसे ठीक करके उस पर फलों के वृक्ष लगा दिये गये। यह कार्य सहारनपुर के श्रीविजयजी गर्ग के प्रयासों से सम्भव हो सका। ऐसे ही अनेक सेवकों ने भाँति-भाँति से सेवा की। वस्तुतः साधना केन्द्र आश्रम गुरुदेव का अपने भक्तों के प्रति उनकी अप्रतिम करुणा, हित-चिन्तन का तथा भक्तों का गुरुदेव के प्रति उनकी निर्मल श्रद्धा-भक्ति का मधुर प्रतीक है। यह पूरा आश्रम गुरुदेव के अगणित भक्तों के सेवा सहयोग से ही बना है। पुस्तक में सभी का उल्लेख सम्भव नहीं है जिसके लिये हम क्षमाप्रार्थी हैं।

एक और अद्भुत बात आश्रम निर्माण कार्य के दौरान यह रही कि इतनी व्यस्तता के बावजूद भी महाराजजी सभी साधकों को रोज चार बार सामूहिक ध्यान-साधन में बिठलाते थे; यथासम्भव स्वयं भी बैठते थे। निर्माण कार्य के दौरान भी महाराजजी के दर्शनार्थ और साधना हेतु भक्त देश-विदेश से निरन्तर आते रहते थे। स्थानाभाव के कारण करुणासिन्धु प्रभु स्वयं अनेक प्रकार की वस्तुओं से भरी रसोई में सोते थे तथा अन्य सभी भक्त जिनमें विदेशी भी होते थे, लाइब्रेरी वाले हाल के फर्श पर बिस्तर बिछाकर सोते थे। दिन में सभी सेवक-भक्त आश्रम के सभी कार्यों

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

में भी खूब सेवा करते। महाराजजी हंसी-खेल में सबको खूब शिक्षा भी देते। सारा कार्य बड़े प्रेम और सौहार्द के वातावरण में होता। महाराजजी स्वयं अपने उदाहरण से हम सभी को परिस्थिति अनुसार ढालने की भी शिक्षा देते रहते। इस प्रकार हंसी-खेल में वे असुविधा के दिन भी उनकी कृपा की शान्तिदायक छाया के नीचे आसानी से निकल गये। अनुकूल परिस्थितियां हों या प्रतिकूल, महापुरुष की संगत में साधक जीव का कल्याण ही होता है। बल्कि प्रतिकूल परिस्थिति में उनका भगवद्भाव और अधिक प्रखरता और स्पष्टता से चमकता है।

सन् 1997 में महाराजजी ने भक्तों के लिये रोज़ चार समय की साधना हेतु विशाल 37' x 100' माप के साधनागृह का निर्माण भी कराया क्योंकि पुराने वाले भजन कक्ष में साधक पूरे नहीं समा पाते थे। आश्रम को पूरा होने में लगभग दस वर्ष लग गये। आज भी छोटे-मोटे काम तो चलते ही रहते हैं।

साधना केन्द्र आश्रम तीन ओर से पहाड़ों से घिरा हुआ है। आश्रम के ठीक सामने दो-ढाई किलोमीटर पर ही पर्वतराज हिमालय की ऊँची-ऊँची चोटियों की मीलों तक फैली हुई शिवालिक श्रृंखलायें हैं जो विशाल अर्धवृत्त बनाते हुए आश्रम को तीन ओर से घेरे हुए हैं। आश्रम के पश्चिम की ओर मैदान आरम्भ हो जाते हैं। आश्रम के ठीक सामने इन्हीं भव्य पर्वत श्रृंखलाओं की पृष्ठभूमि में पतितपावनी, कृष्णप्रिया यमुना माता पूर्व से पश्चिम की दिशा में बहती हैं। आश्रम के सामने यमुनाजी का विशाल पाट लगभग एक किलोमीटर से भी अधिक चौड़ा होगा। मुख्य धारा तो छोटी ही है क्योंकि ठीक इसी स्थान पर वे पहाड़ से उतरती हैं किन्तु तो भी कुछ ढाल होने से पानी बलखाती धाराओं में काफी वेग से बहता है। जल बड़ा शीतल और निर्मल होता है। वर्षा के दिनों में पानी काफी चढ़ जाता है। आश्रम के ठीक सामने जरा सी दाँयी ओर सामने के पहाड़ों से एक और बारहमासी अमलावा नदी आकर यमुनाजी में मिल जाती है। इसी प्रकार जरा सा आगे चलकर आश्रम के बाँयी ओर हिमाचल प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश का सीमांकन करती हुई टौंस नदी यमुनाजी में आकर मिल जाती है। यमुनाजी के विशाल पाट के पार दो छोटे-छोटे पहाड़ी गाँव हैं—हरिपुर और कालसी। इन गाँवों के नन्हें-नन्हें घर तथा हरे-भरे क्यारियों वाले छोटे-छोटे खेत दूर से बड़े मनोहर लगते हैं। रात में जब इन गाँवों में प्रकाश होता है तो ऐसे लगता है जैसे पहाड़ों ने चमकीले सितारों वाली काली, विशाल

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

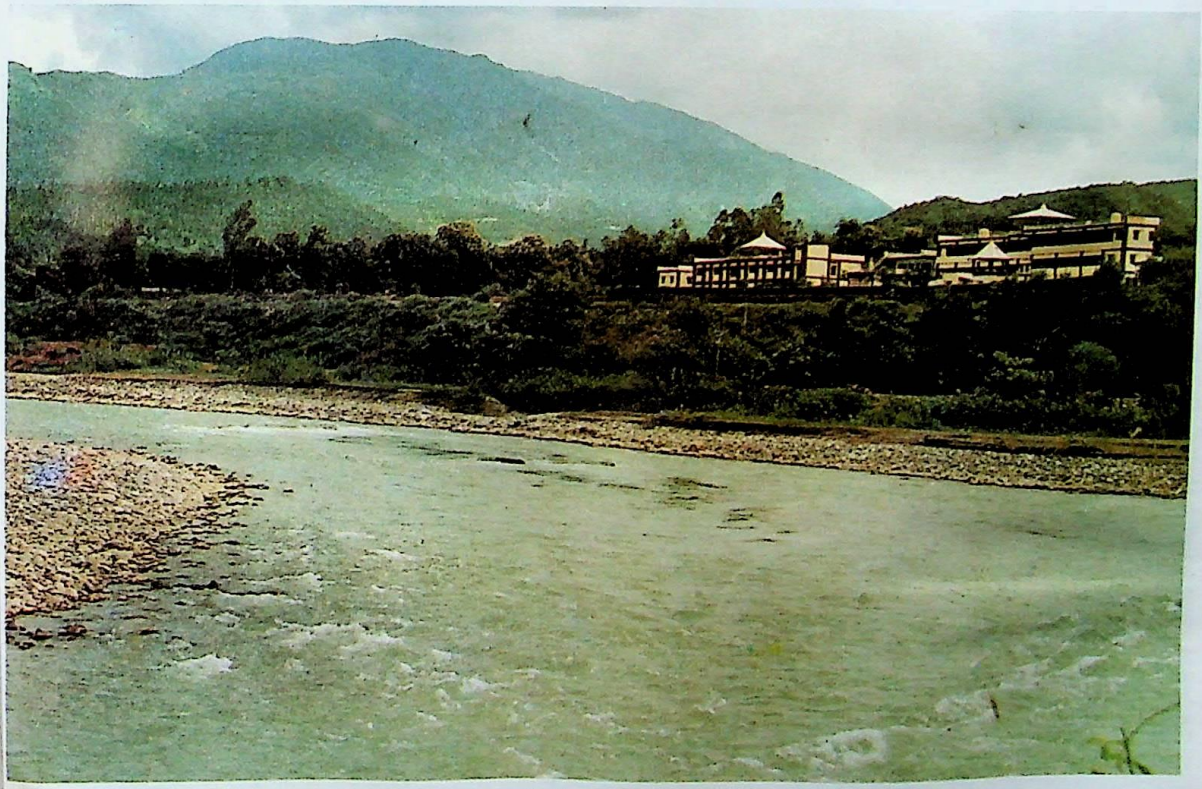
चादर ओढ़ ली हो। सामने के कालसी गाँव का नाम कलसी ऋषि के कारण पड़ा है जो यहाँ रहा करते थे। बताते हैं कि यहाँ गुरु गोविन्दसिंहजी भी पधारे थे। कालसी में ही लगभग 2000 वर्ष से भी अधिक पुराना अशोक शिलालेख है। इस क्षेत्र में पांडव भी अपने अज्ञातवास के दौरान रहे, ऐसी मान्यता है। आश्रम से कुछ ही दूर लाखामण्डल ग्राम है जहाँ माना जाता है कि पांडवों को जलाकर मार डालने के उद्देश्य से लाक्षागृह (लाख से बना घर) बनाया गया था। कालसी के बाद पहाड़ आरम्भ हो जाते हैं। सहिया, चकराता, त्यूनी आदि पहाड़ी स्थानों के बाद चीन की सीमा है। पूरे क्षेत्र में आस-पास कई बाँध बने हुये हैं तथा इनसे काफी बिजली का उत्पादन होता है। यहाँ से चारों धाम—गंगोत्री, यमनोत्री, बद्रीनाथ, केदारनाथ को भी यात्राएं की जाती हैं। उत्तरांचल के पूरे क्षेत्र में प्रकृति का अनुपम सौन्दर्य बिखरा पड़ा है। स्थान-स्थान पर देव मन्दिर बने हुये हैं। यहाँ के लोग भी बड़े सरल तथा मेहनती होते हैं।

यमुनाजी के तट पर हिन्दुओं द्वारा मृत शरीर के दाह-संस्कार की परम्परा है। अतः अक्सर आश्रम से नदी के किनारों पर जलती हुयी चिताओं के दर्शन हो जाते हैं। इस प्रकार हिमालय की गोद से निकलती माँ यमुना सदियों से परिवर्तनशील प्रकृति की साक्षी बनकर, अगणित चिताओं को अपनी गोद में आश्रय देकर एक विशाल श्मशान घाट के रूप में व्यक्ति के हृदय में एक ओर जहाँ वैराग्य प्रदीप्त करती है, वहीं दूसरी ओर उसकी सतत वेगवती धाराएं अपने सब तटों, सब स्थानों-व्यक्तियों की मोह-ममता त्यागकर सागररूपी अपने प्रियतम से मिलन के लिये, व्यक्ति को जीवंतता, निरन्तर उद्यम, असंगता, गतिशीलता, सबको प्रेम बाँटने और गीत गाने का संदेश देती है। माता यमुना का एक ही लक्ष्य है—किसी भी मार्ग से, कैसे भी, प्रियतम सागर से मिलन, उसमें विलय। ऐसे मनोरम स्थान पर ही वे अनूठे महापुरुष श्रीचन्द्रस्वामीजी वास करते हैं। उनकी मधुमय उपस्थिति से यह छोटी सी सुन्दर घाटी और भी सार्थक हो गयी है। मानो 'प्रकृति' को 'पुरुष' मिल जाने से वह सचेतन हो उठी हो।

आश्रम में पूरे वर्ष भर साधक, भक्त पूज्य महाराजजी के दर्शनार्थ तथा साधना हेतु आते रहते हैं। आश्रम में आने वाले इन साधकों के महाराजजी के प्रति श्रद्धा के प्रतीक के रूप में दिये गये स्वैच्छिक दान से ही आश्रम चलता है।

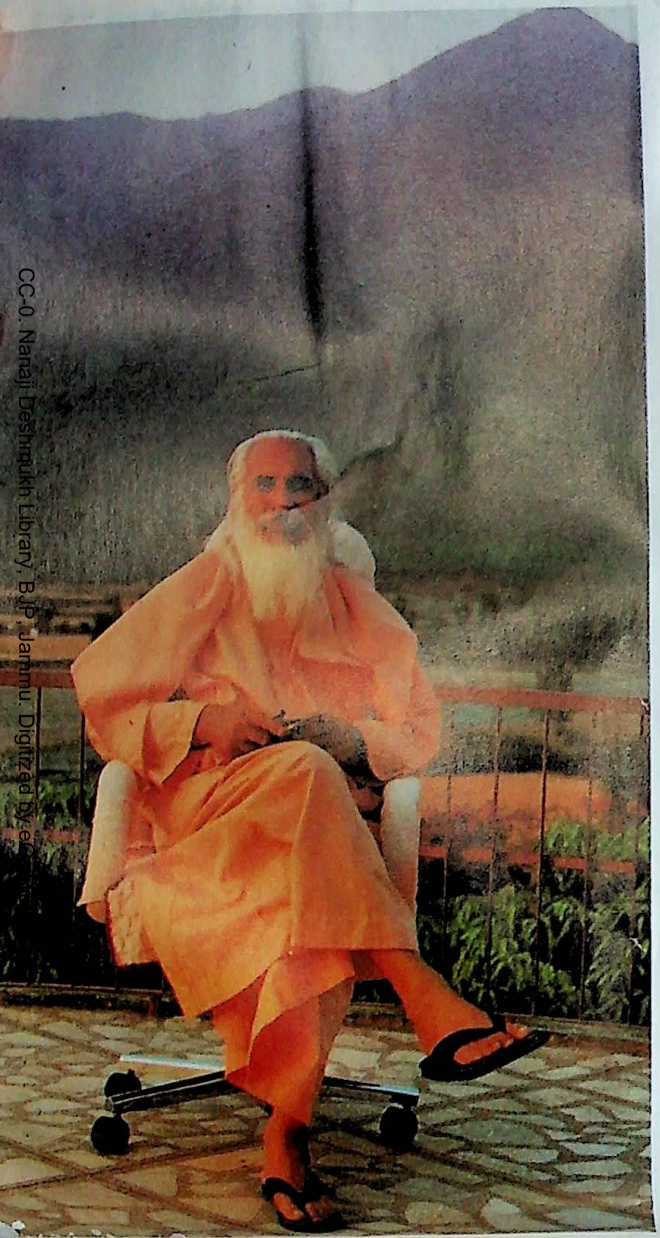
CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

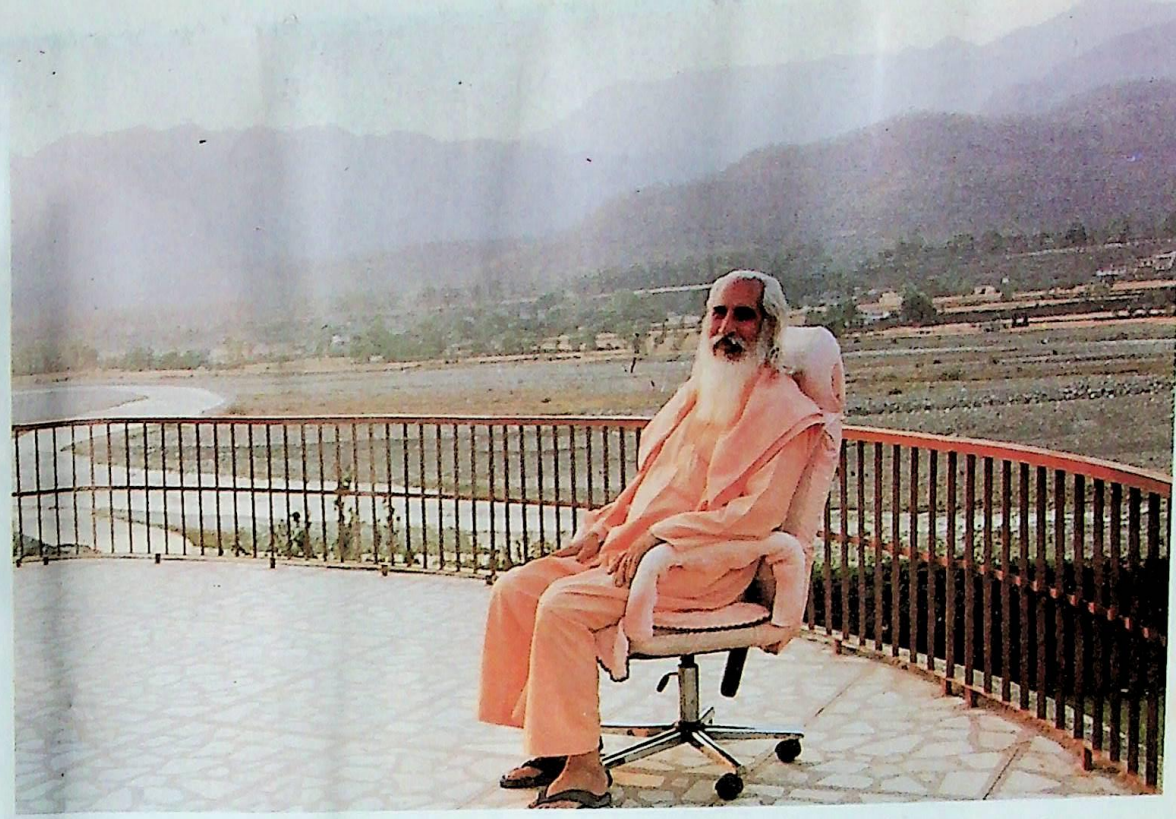




हिमालय की गोद में, यमुनाजी के तट पर बसा साधना केन्द्र आश्रम।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

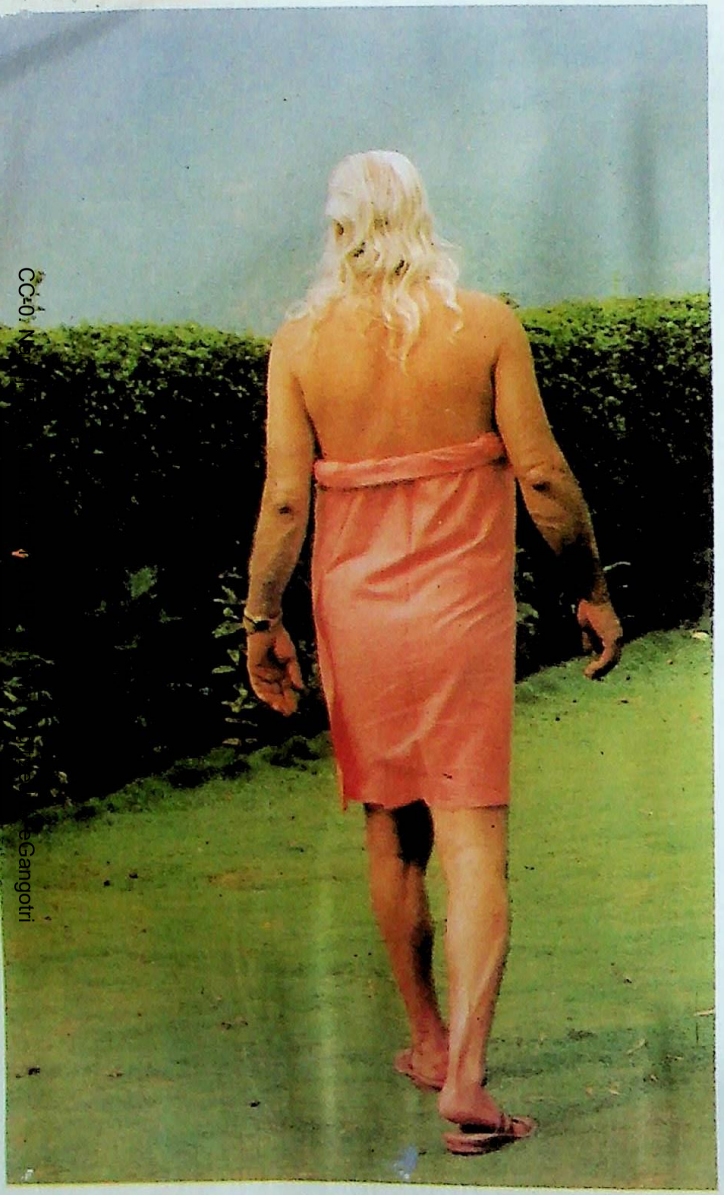




↑ *निराश मत होइये, संसार में आप अकेले नहीं हैं। प्रभु सदैव आपके साथ हैं; उन पर विश्वास कीजिये, उन्हें पहचानिये।*

←
आश्रम के पुस्तकालय हॉल की छत पर महाराजजी।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri





↑ *जिस व्यक्ति में अपने जीवन को जोखिम में डालने का साहस नहीं है, वह आध्यात्मिक पथ की कोई भी महत्वपूर्ण उपलब्धि प्राप्त नहीं कर सकता।*

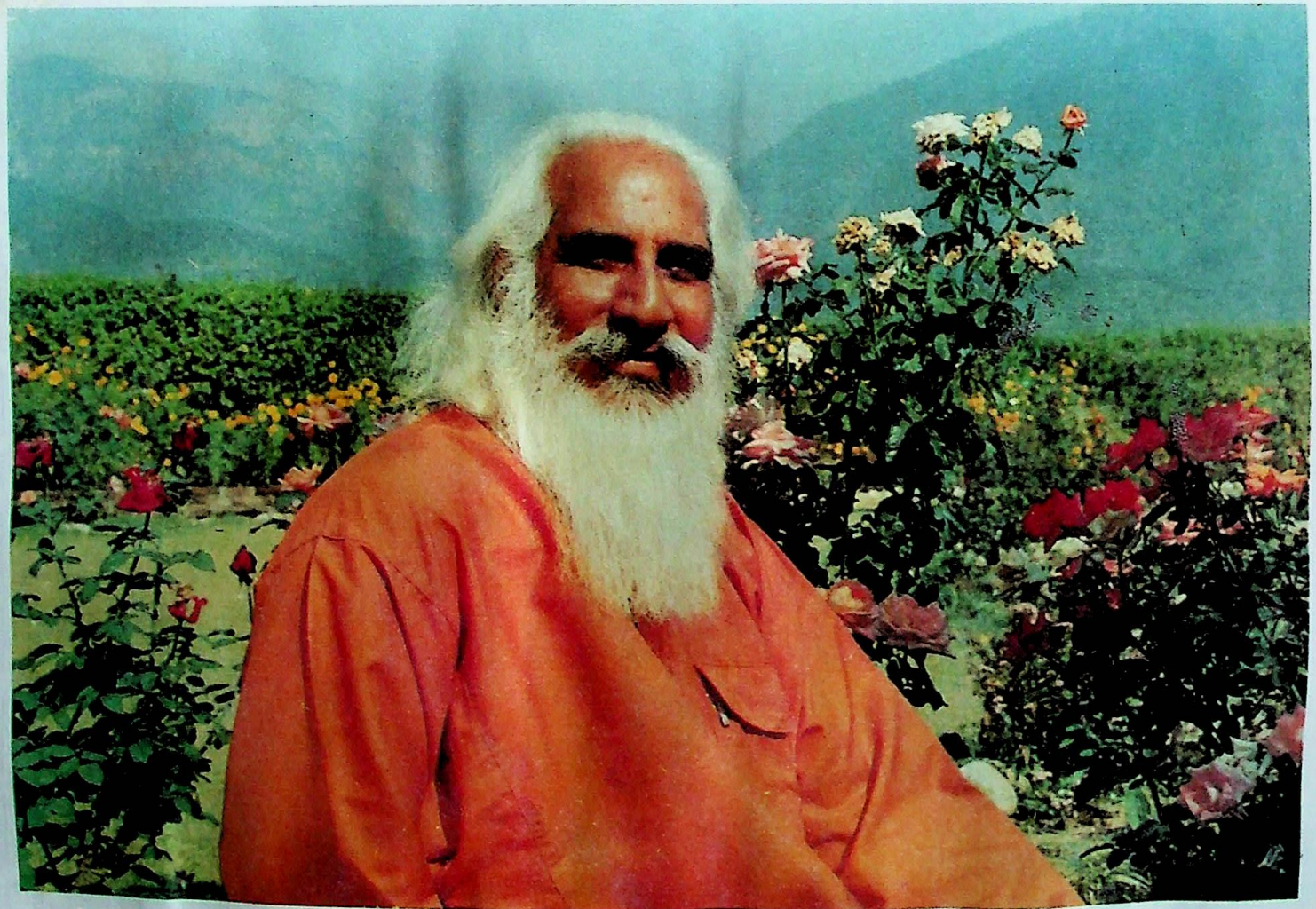
← महाराजजी अपने गर्मियों के वेश में।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. eGangotri



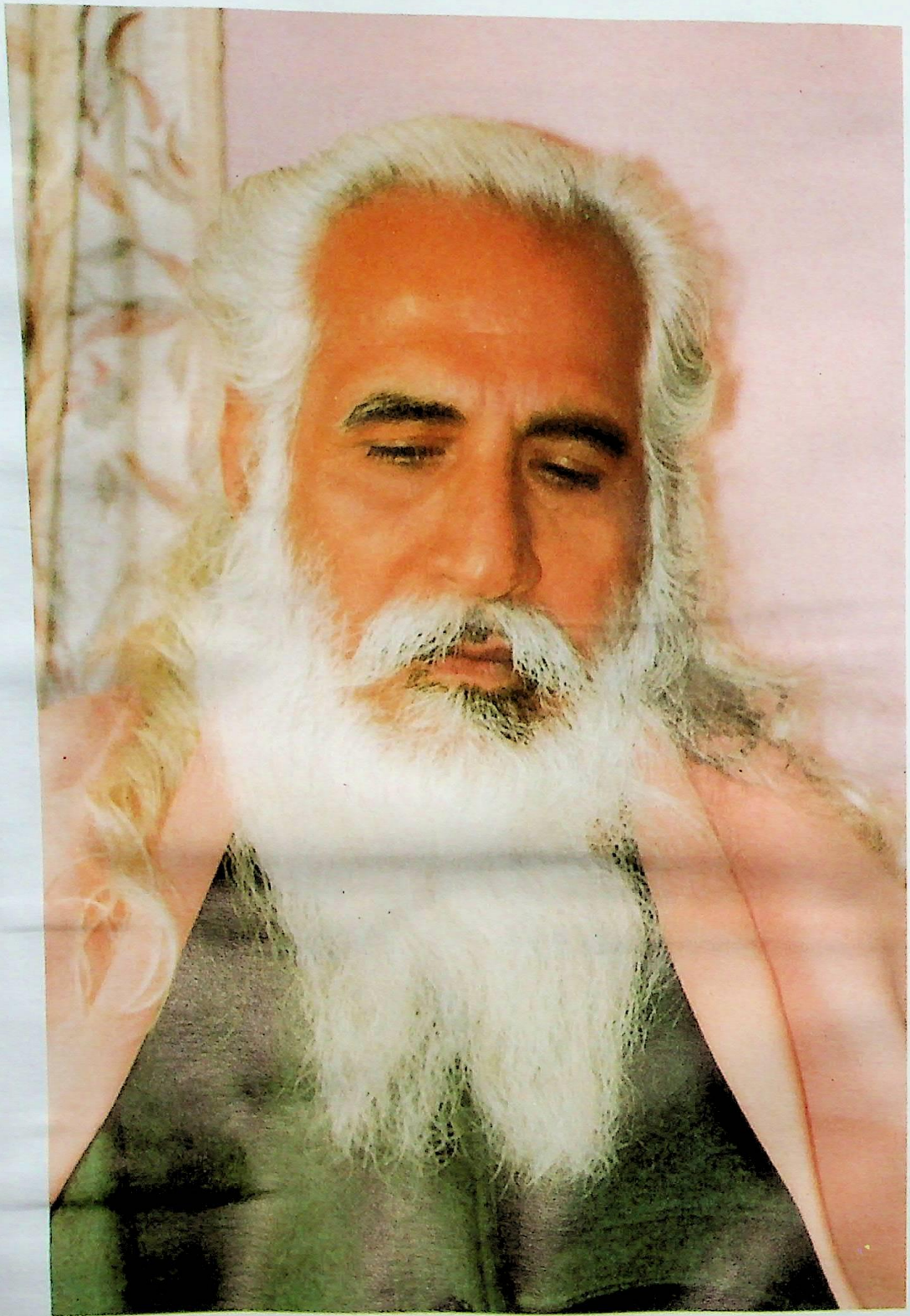
जब आपके हृदय में संसार के प्रति उदासीनता आये, तथा संतों के दर्शन, एकान्त-सेवन अथवा प्रभु-भजन करने की प्रेरणा उठे तब समझिये कि भगवान आपको अपनी ओर खींच रहे हैं।
आश्रम के उद्यान में टहलते हुए गुरुदेव।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



विनम्रता, मीठी वाणी, ईमानदारी, सहनशीलता, सबके प्रति सद्भावना और स्वस्वीकृत अनुशासन ही मनुष्य जीवन को गौरवशाली बनाते हैं। आप यह गौरव पा सकें तो आपकी जीवनवाटिका भी हरी-भरी एवं सुवासित हो जायेगी।
आश्रम की पुष्पवाटिका को सौन्दर्य-सुवास प्रदान करते महाराजजी।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



भगवान के दरबार में, भगवान की प्राप्ति के लिये, रिश्वत नहीं चलती। और तो क्या, वहाँ त्यागबल, बुद्धिबल, तपोबल, दानबल, तथा पुण्यबल भी पराजित हो जाते हैं। वहां तो बस भोलाभाव, विनम्रता, सत्य-हृदयता और तड़पता प्रेम ही फल लाते हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

आश्रम में साधकों के लिये साफ-सुथरे कमरे तथा बिस्तर आदि उपलब्ध हैं। आश्रम की ओर से सात्विक भोजन की भी व्यवस्था है। आश्रम में कोई कैन्टीन अथवा व्यक्तिगत भोजन की सुविधा नहीं है। कोई भी जाति, धर्म अथवा पंथ के साधक आश्रम में पूर्वानुमति से आ सकते हैं। आश्रम में आने हेतु साधकों के लिये आश्रम के प्रबन्धक द्वारा पूर्वलिखित अनुमति की आवश्यकता होती है। नये साधकों को आश्रम के नियमानुसार पहले केवल तीन दिन ठहरने की अनुमति दी जा सकती है, यह अवधि बाद में बढ़ाई भी जा सकती है। सभी साधक अपना व्यक्तिगत कार्य जैसे—कमरा साफ करना, चद्दर धोना आदि स्वयं ही करते हैं। इसके अतिरिक्त अधिक समय के लिये ठहरे हुए साधक आश्रम के विभिन्न क्रियाकलापों जैसे—बाग़वानी, साफ-सफाई, रसोई-कार्य आदि क्षेत्रों में भी अपनी सेवाएं देते हैं। महाराजजी के उपदेश के अनुसार भगवद्नाते सेवा भी साधना का एक प्रमुख अंग है क्योंकि इससे प्राण-शक्ति का सदुपयोग हो जाता है।

पीछे कुछ वर्षों से महाराजजी की तीक्ष्ण दृष्टि में यह भी आने लगा कि अनेक भक्त आश्रम में आकर उसका प्रयोग साधक की दृष्टि से, आध्यात्मिक दृष्टि से नहीं बल्कि पिकनिक या बच्चों के साथ छुट्टियां व्यतीत करने के लिये करने लगे थे। हालांकि जो भी भक्त-श्रद्धालु आश्रम में आते थे वे बाबाजी के प्रति तथा गुरुदेव के प्रति श्रद्धा रखकर ही आते थे। तो भी उनमें से कई भक्त आश्रम के आध्यात्मिक नियमों की पालना नहीं कर पाते थे। महाराजजी की नजर तो कभी भी अपने शिष्यों की संख्या बढ़ाने अथवा अपना सम्मान-पूजा करवाने पर नहीं रही। उनकी सदा यही इच्छा रही कि साधना केन्द्र आश्रम के माध्यम से बिना किसी भेदभाव के सभी सच्चे साधक अपना आध्यात्मिक विकास कर सकें। अतः उन्होंने स्वयं ध्यानपूर्वक आश्रम में आकर ठहरने वाले लोगों के लिये अनुशासन में बँधी एक नयी नियमावली बनवायी। दिनाँक 20. 07. 2000 को पवित्र गुरुपूर्णिमा के दिन आश्रम में आये हुए सैकड़ों सेवकों में वह वितरित करवायी तथा सभी भक्तों को पढ़कर भी सुनाई गयी थी, ताकि आश्रम आने के इच्छुक भक्तों को यहाँ आने व प्रवास सम्बन्धी मर्यादाओं का पता लग सके तथा वे उनका पालन भी कर सकें। गुरुदेव के आदेशानुसार हम नियमावली सहित वह पत्रक यहाँ भी दे रहे हैं —

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

ॐ

बालयति और परमसिद्ध भूमनशाह देव महान् ।
मोह-माया-तम-दुःखहर्ता को बारम्बार प्रणाम् ।।

साधना केन्द्र आश्रम के बारे में महत्वपूर्ण सूचना

प्रिय आत्म बन्धु

सप्रेम हरि स्मरण,

परम पूज्य बाबा भूमनशाहजी की दिव्य प्रेरणा से साधना केन्द्र आश्रम का निर्माण, ध्यान-स्मरण-साधन के लिये हुआ है। गुरुदेव के प्रति अनन्य श्रद्धा-भक्ति रखने वाले आप सभी सेवकों के सेवा-सहयोग से सन् 1990 में साधकों-भक्तों के आध्यात्मिक विकास हेतु देहरादून के ग्राम—डुमेट (बाड़वाला) में इस आश्रम की स्थापना की गयी थी। पूज्य गुरुदेव श्रीचन्द्रस्वामीजी महाराज ने ममतामयी माता की तरह इस आश्रम को पाल पोसकर बड़ा किया। इस आश्रम को बनाने के पीछे उनका उद्देश्य इसे अन्य आश्रमों से हटकर एक ऐसे साधना स्थल के रूप में विकसित करना था जहाँ के शान्त, सौम्य वातावरण में रहकर साधक-भक्तजन नियमित रूप से सेवा तथा साधना-अभ्यास करके भगवद् साक्षात्कार के मार्ग पर अग्रसर हो सकें। इस आश्रम की मन्दिरों, गुरुद्वारों की तरह केवल दर्शन करने के स्थान अथवा पिकनिक स्थान अथवा धर्मशाला के रूप में अथवा मेले तथा भण्डारे आयोजित करने के रूप में संकल्पना नहीं की गयी थी। अतः आश्रम में अनावश्यक प्रवृत्तियां कम से कम हों ऐसी व्यवस्था की गयी है।

इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर आश्रम में रोज़ अन्य सेवा कार्यों के अतिरिक्त चार बार प्रार्थना-ध्यान का प्रावधान रखा गया है। आश्रम में नित्यप्रति प्रातः 4.30 से 5.30, 8.30 से 9.30, अपराह्न 3.30 से 4.30 तथा सायं 6.30 से 7.30 सामूहिक प्रार्थना-ध्यान होते हैं जिसमें गुरुदेव स्वयं भी भाग लेते हैं।

इसके अतिरिक्त आश्रम की दिनचर्या के अन्य अंग जैसे भोजन, सेवा आदि भी सब समय के कठोर अनुशासन में बंधे हुए हैं जिसका पालन हम सबको करना चाहिये। ज्ञात हो कि आश्रम द्वारा हर समय लंगर नहीं चलाया जाता। भोजनालय

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

में केवल उन्हीं साधकों के लिये भोजन की व्यवस्था की जाती है जो आश्रम में रह रहे होते हैं।

पिछले दो वर्षों से ऐसा देखने में आया है कि अनेक लोग/भक्तगण, बिना किसी पूर्व सूचना के तथा बड़ी संख्या में तथा कभी-कभी अनेक बच्चों के साथ गुरुदेव के दर्शनार्थ तथा आश्रम में रहने के लिये अचानक आ जाते हैं। कभी-कभी तो बीस-तीस लोग एक साथ स्वामीजी के दर्शन हेतु आश्रम में रात के समय आकर प्रातःकाल चले जाते हैं। कई भक्त हरिद्वार में अपने किसी सम्बन्धी के पुष्प प्रवाहित करने आते हैं तो एक रात व्यतीत करने के लिये आश्रम भी आ जाते हैं। मसूरी आते जाते समय भी कई भक्त ऐसा ही करते हैं। अनेक भक्त आश्रम में अपने बच्चों के साथ छुट्टियाँ व्यतीत करने के लिये आ जाते हैं तथा आश्रम का प्रयोग धर्मशाला की तरह करते हैं। हालाँकि वे परमपूज्य बाबा भूमणशाहजी तथा गुरुदेव में श्रद्धा रखकर ही यहाँ आते हैं तथा इस नाते हमारे आदरणीय हैं तो भी अधिकांशतः वे आश्रम की मर्यादाओं से अनभिज्ञ होने के कारण उनकी पालना नहीं कर पाते। इसके कारण आश्रम की शान्ति, सौम्य वातावरण तथा भजन-साधन के कार्यक्रम पर बहुत प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। आपको ज्ञात हो कि आश्रम में साधन-भजन के लिये देश-विदेशों से साधक हजारों रुपये खर्च करके कई-कई महीने पहले अनुमति लेकर आते हैं। बड़ी संख्या में अचानक भक्तों के आ जाने से साधना में व्यवधान पड़ता है तथा उनके लिये जल्दी से भोजन बनाने तथा रहने की व्यवस्था करने में परेशानी होती हैं। कई बार तो इतनी अधिक संख्या में भक्तों को आश्रम में ठहराने की जगह ही नहीं होती।

इसके अतिरिक्त यह भी देखा गया है कि आश्रम में प्रवास की अवधि में भी अनेक भक्त साधना के सत्रों में नहीं आते जो कि आश्रम की दिनचर्या का मुख्य अंग है। कई भक्त आश्रम में अपने लिये विशेष भोजन अथवा अनेक बार चाय आदि के लिये आग्रह करते हैं। वे भोजन तथा नाश्ता आदि भी समय पर नहीं करते।

अनेक भक्त लोग अपने साथ छोटे तथा बड़े बच्चे ले आते हैं जो साधना में तो बैठ ही नहीं सकते बल्कि सारा दिन शोरगुल करके आश्रम की शान्ति में बाधा डालते हैं। इसके अतिरिक्त बच्चे दिनभर जहाँ-तहाँ गंदगी करते रहते हैं। कई बार

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

संक्षिप्त प्रवास पर आये भक्त अपने कमरों और शौचालयों को बिल्कुल गंदा कर देते हैं तथा सफाई का बिल्कुल ध्यान नहीं रख पाते।

उपरोक्त सब बातों को ध्यान में रखकर एवं आश्रम के भजन-साधन के स्वरूप को सुरक्षित रखने के लिये पूज्य गुरुदेव की आज्ञानुसार हम सभी के पालन करने के लिये नयी नियमावली बनायी गयी है जो दिनाँक 20.07.2000 से लागू हो गयी है। आप सभी से प्रार्थना है कि इस नियमावली का पूरी तरह पालन करें। अब यह आश्रम अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का साधना स्थल बन चुका है और इसकी गरिमा को बनाये रखना हम सब सेवकों का कर्त्तव्य है।

निवेदक,
प्रबन्धकारिणी, सीकर्स ट्रस्ट

नियमावली

साधना केन्द्र आश्रम की नयी नियमावली दिनाँक 20.07.2000 से लागू है। आश्रम में ठहरने वाले सभी साधकों से इसका पालन करने के लिये निवेदन है—

1. साधना केन्द्र आश्रम प्रार्थना-भजन-साधन हेतु एक आध्यात्मिक स्थान है। कृपया इसे कोई दर्शनीय स्थल, मन्दिर, धर्मशाला अथवा विश्राम करने या अपनी छुट्टियाँ व्यतीत करने का स्थान न समझें।
2. आश्रम के पुराने सेवक आश्रम में आने से सात दिन पहले पूर्वानुमति लेकर आयें। नये साधक आने के पन्द्रह दिन पहले लिखित पूर्वानुमति लेकर आयें।
3. नये साधक कृपया आश्रम आने के लिये स्वयं के बारे में पूरी जानकारी-उद्देश्य लिखकर भेजें तथा अनुमति मिलने पर ही आयें।
4. आश्रम के पुराने सेवक अपने इष्ट-मित्रों को केवल आश्रम देखने के लिए न भेजें तथा हर किसी को आश्रम आने के लिये प्रोत्साहित न करें। आश्रम में साधक केवल साधना हेतु ही आने चाहिये।
5. कृपया आश्रम में अपने साथ बच्चों को न लायें। आश्रम में केवल वे ही आयें जो चारों समय प्रार्थना-ध्यान में बैठ सकें।
6. कृपया आश्रम में प्रेम, सौहार्द तथा शान्ति का वातावरण बनाये रखें।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

7. कृपया आश्रम में कम से कम बातचीत करें। इकट्ठे बैठकर व्यर्थ की चर्चा करके आश्रम की शान्ति को भंग न करें।

8. बच्चों सहित गुरुदेव के दर्शनों के लिये कृपया गुरुपूर्णिमा तथा 14 अप्रैल को बाबा भूमनशाहजी के जन्मदिवस के पर्व पर अधिकतम पाँच दिन के लिये आ सकते हैं। अन्य समय दर्शन के लिये कृपया पूर्वानुमति से ही आयें एवं एक दिन में ही लौट जायें।

9. आश्रम की दिनचर्या निम्नप्रकार है—

- प्रार्थना-ध्यान — 4.30 a.m. से 5.30 a.m.
- नाश्ता — 6.30 a.m.
- प्रार्थना-ध्यान — 8.30 a.m. से 9.30 a.m.
- आध्यात्मिक प्रश्नोत्तर — 10.30 a.m. से 11.40 a.m.
- दिन का भोजन — 11.45 a.m.
- स्थानीय आगन्तुकों के लिये आश्रम देखने का समय — 3.00 p.m. से 3.30 p.m.
- पूज्यस्वामीजी के दर्शन का समय — 3.15 p.m. से 3.25 p.m.
- प्रार्थना-ध्यान — 3.30 p.m. से 4.30 p.m.
- सायंकालीन चाय — 5.00 p.m.
- संकीर्तन-ध्यान — 6.30p.m.से 7.30p.m. गर्मियों में
  — 6.00 p.m. से 7.00p.m. सर्दियों में
- सायंकालीन भोजन — 8.00 p.m. गर्मियों में
  7.30 p.m. सर्दियों में
- आश्रम द्वार बन्द — 8.30 p.m.

10. आश्रम में सामूहिक प्रार्थना-ध्यान के दैनिक कार्यक्रमों में सभी का भाग लेना अनिवार्य है।

11. भोजनादि के लिये ठीक समय पर आयें। भोजनालय भोजन के समय से एक

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

घण्टे के अन्दर बन्द हो जायेगा। इसी प्रकार प्रातः नाश्ते एवं चाय के लिये भी भोजनालय आधे घण्टे बाद बन्द हो जायेगा।

12. कृपया अपने परिजनों-मित्रों से आश्रम में अनावश्यक फोन करने को न कहें। बार-बार साधकों को फोन पर बुलाने से आश्रम की शान्ति तो भंग होती ही है, बहुत असुविधा भी होती है। इसी प्रकार आश्रम से बाहर केवल अति आवश्यक फोन ही करें। जरूरी एस. टी. डी. के लिये कृपया आश्रम से बाहर जाकर फोन करें।

13. कृपया आश्रम में सबके लिये बना सात्विक भोजन स्वीकार करें तथा अपने लिये अलग तथा विशेष भोजन का आग्रह न करें।

14. दिन में बार-बार अपने लिये अलग से चाय न बनायें।

15. भोजनालय से कोई भी खाद्य वस्तु जैसे दूध आदि स्वयं न लें बल्कि प्रभारी (इन्चार्ज) से मांगकर लें।

16. भगवद्नाते और विनम्र भाव से की गयी सेवा प्रभु-प्राप्ति की साधना का एक आवश्यक अंग है। अतः आश्रम में ठहरे साधकों के लिये सेवा का भी प्रावधान रखा गया है। साधकगण आश्रम में कृपया मेहमान की तरह न रहें। आश्रम के अधिकाँश कार्य सेवकों/भक्तों की सेवाओं द्वारा सम्पन्न किये जाते हैं। अतः प्रत्येक आश्रमवासी के लिये अपनी योग्यतानुसार प्रतिदिन कम से कम दो घण्टे की सेवा देना अनिवार्य है। आश्रम में अनेक सेवा कार्य हैं — जैसे कमरों, गैलरी, शौचालयों, फर्श, स्टोर, भजन हाल की सफाई, कचरे के ड्रमों को खाली करना, बागवानी के विभिन्न कार्य, रसोईघर के कार्य, मैले कपड़े धोना, मेहमानों की देखभाल करना, सफेदी करना, आश्रम की छोटी-मोटी मरम्मत करना, और कर्मचारियों के कार्यों में हाथ बंटाना इत्यादि। अपने योग्य सेवा के लिये कृपया प्रबन्धक से सम्पर्क करें तथा उनके द्वारा जो भी सेवा दी जाये उसे स्वीकार कर लें। अपने लिये विशेष सेवा का आग्रह न करें। यह व्यवस्था रुग्ण, अक्षम, तथा अतिथियों के लिये नहीं है।

17. आश्रम प्रवास के दौरान अनावश्यक आश्रम से बाहर न जायें; अथवा घूमने-फिरने, समय गुजारने बाहर न जायें।

18. आश्रम से जाने के पहले गुरुदेव के दर्शन करने के इच्छुक सेवक कृपया जाने से एक दिन पहले ही गुरुदेव से मिल लें।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

19. कृपया गुरुदेव से मिलने के लिये व्यवस्थापक द्वारा समय लें।

20. प्रश्नोत्तर सत्रों में कृपया आध्यात्मिक विषयों पर ही प्रश्न करें। स्वामीजी से सांसारिक प्रश्न न करें।

21. आश्रम से जाने वाले साधक/सेवक कृपया दो दिन पूर्व ही अपना स्वैच्छिक संदान व्यवस्थापक को दे दें तथा रसीद प्राप्त कर लें। संदान व्यवस्थापक को ही दें, स्वामीजी को न दें।

22. आश्रम के फल-फूलों और सब्जियों को तोड़ना मना है।

23. अपने कमरे में नियमित रूप से झाड़ू-पोचा करें तथा कमरा साफ-सुथरा रखें।

24. अपने कमरे तथा अल्मारी में अपना स्वयं का ताला लगायें तथा अपने सामान की स्वयं सुरक्षा करें।

25. अपने कमरे में रखी वस्तुएं—एक जग, दो गिलास, झाड़ू, एक कचरा पात्र, एक सफाई प्लेट तथा बिस्तर आदि का पूरा ध्यान रखें तथा उन्हें कमरे से बाहर न रखें। कमरा खाली करते समय ये सब वस्तुयें साफ करके व्यवस्थापक को संभलाकर जायें।

26. आश्रम में पाँच दिन से अधिक की अवधि तक ठहरने पर, अपने प्रयोग में आने वाले रजाई के गिलाफ, चद्दरें, तकियों के गिलाफ आदि नियमित रूप से धोकर साफ रखें।

27. आश्रम में धूम्रपान तथा नशीले पदार्थों का सेवन करना अथवा अपने पास रखना सर्वथा वर्जित है।

28. आश्रम में हमेशा शालीन वस्त्र पहनें।

29. आश्रम को साफ-सुथरा रखना प्रत्येक आश्रमवासी का कर्तव्य है। जहाँ कहीं भी कूड़ा-कचरा देखें, उसे स्वयं उठाकर कमरों में या गैलरी से बाहर रखे कचरा पात्रों में फैंक दें।

30. स्नानघर, शौचालय और वाशबेसिन को प्रयोग के बाद साफ करें। शौचालय में टॉयलेट पेपर का प्रयोग न करें।

31. अपने कपड़े आश्रम के बाहर नहर पर बने घाट पर ही धोयें, स्नानघर में न धोयें।

32. दरवाजों और खिड़कियों को धीरे से बन्द करें। खुली हुयी खिड़कियों के पल्लों में हुक लगाकर रखें।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

33. कम्बल व रजाई को गद्दे के रूप में और तकिये को आसन के रूप में प्रयोग न करें। बिस्तर व कम्बल को कमरे से बाहर न ले जायें।

34. पुस्तकालय एवं वाचनालय की पुस्तकें व पत्रिकायें केवल आश्रम में पढ़ने के लिये हैं, बाहर ले जाने के लिये नहीं।

35. बिजली व पानी का अनावश्यक प्रयोग न करें।

36. शौचालयों व स्नानगृहों की बाल्टियाँ व मग प्रयोग के बाद उसी स्थान पर रखें।

37. आश्रम के वाहनों का व्यक्तिगत प्रयोग करने के लिये आग्रह न करें।

38. आश्रम प्रवास की अवधि में अपने बाजार सम्बन्धी कार्य स्वयं करें।

39. आश्रम के किसी कर्मचारी को कोई भी उपहार या धन सहायता सीधे ही न देकर व्यवस्थापक को दें। व्यवस्थापक आपकी सहायता/उपहार को आवश्यकतानुसार कर्मचारियों को स्वयं देंगे।

40. आश्रम का मुख्य द्वार सायं साढ़े आठ बजे बन्द हो जाता है। कृपया इसके बाद आश्रम से बाहर न जायें।

41. आश्रम में प्रवेश एवं ठहरने की अनुमति के अधिकार प्रबन्धकारिणी में निहित हैं।

आवश्यक —

•कम से कम सात दिन की पूर्वानुमति के बिना आश्रम में न आयें। बिना पूर्वानुमति लिये आने से आश्रम की व्यवस्था बिगड़ती है और साधकों के भजन-साधन में विघ्न पडता है।

•कृपया आश्रम में अपने साथ बच्चों को न लायें।

• कृपया आश्रम का वातावरण स्वच्छ और शान्त बनाये रखें। आश्रम में अनावश्यक सांसारिक या व्यर्थ चर्चा न करें।

•कृपया इस नियमावली की सूचना आप आश्रम में आने वाले अन्य बन्धुओं तथा अपने मित्रों को भी दे दें। आश्रम के नियमों को स्मरण रखने के लिये इस नियमावली को अपने पास कृपया सुरक्षित रखें।

आश्रम की नियमावली से अवगत होने के पश्चात् अब हम, आश्रम से जुड़ी कुछ अन्य जानकारियां लेंगे।

आश्रम में प्रायः विश्व के सभी प्रमुख देशों तथा भारत के विभिन्न प्रान्तों से

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

साधक आते हैं। आश्रम आने वाले विदेशी साधकों के प्रति आश्रम विशेष सजग रहता है। नियमानुसार किसी भी विदेशी के आश्रम आगमन के चौबीस घन्टें के भीतर ही निकटस्थ डाकपत्थर, पुलिस स्टेशन को फार्म-सी में उसके बारे में सभी सूचनाएं दे दी जाती हैं। आश्रम के सामने कालसी गाँव के बाद पहाड़ों पर सेना की विशाल छावनी है जो विदेशियों के लिये प्रतिबन्धित है। इसलिये आश्रम विदेशियों का पासपोर्ट, वीजा आदि सब जाँच के बाद ही उन्हें ठहरने की अनुमति देता है। वैसे अधिकाँश विदेशी साधक यहाँ आश्रम के किसी परिचित संदर्भ से ही आते हैं।

अपनी आध्यात्मिक प्रवृत्ति के अतिरिक्त आश्रम आस-पास के गाँवों के लोगों की समय-समय पर स्वास्थ्य, शिक्षा, असहायों की मदद, धार्मिक व सेवा संस्थानों को दान, जन-कल्याण जैसे क्षेत्रों में भी यथाशक्ति सेवा करता है। आश्रम में बाबा भूमनशाहजी के जन्मदिवस के शुभ-अवसर पर तथा अन्य कुछ पर्वों पर भी निर्धनों, साधकों हेतु भण्डारा किया जाता है तथा इस अवसर पर निर्धनों को कम्बल, स्वैटर तथा अन्य उपयोगी वस्तुओं का निःशुल्क वितरण किया जाता है अथवा निर्धनों हेतु या समाजोपयोगी कोई अन्य सेवा की जाती है।

आश्रम का प्रमुख क्रियाकलाप नित्यप्रति चार बार एक-एक घंटे के ध्यान-साधना के सामूहिक सत्र हैं। यह सत्र पूरे वर्ष, बिना किसी व्यवधान के चलते हैं। इनका कहीं भी कोई प्रचार आदि नहीं है। इन साधना सत्रों में आश्रम में ठहरे प्रत्येक व्यक्ति को भाग लेना होता है। प्रतिदिन साढ़े दस से साढ़े ग्यारह बजे दोपहर तक प्रश्नोत्तर का सत्र होता है जिसमें महाराजजी जिज्ञासुओं की शंका समाधान लिखकर करते हैं। पहले जब महाराजजी बोला करते थे, हम भक्तों ने महाराजजी का अमूल्य सत्संग संभाल कर नहीं रखा किन्तु कुछ समय से हम प्रश्नोत्तर के सत्रों में दिये प्रत्येक उत्तर को अपने पास सुरक्षित रख लेते हैं ताकि सुविधानुसार उन्हें साधकों के लिये प्रकाशित किया जा सके।

इस प्रकार पूज्य गुरुदेव की करुणामय स्निग्ध छाया तले आश्रम में सुचारु रूप से स्वतन्त्रता, प्रेम और सहकार के वातावरण में साधन-भजन चल रहा है।

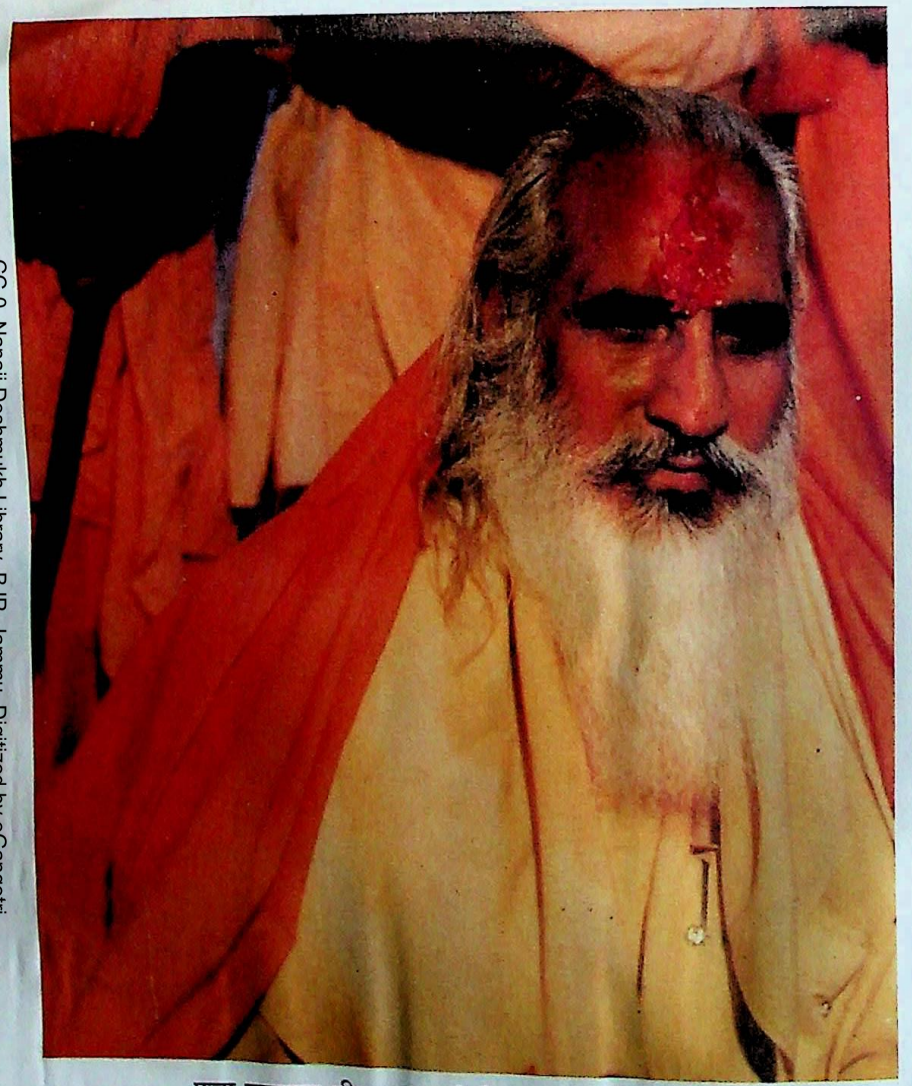
इधर साधना केन्द्र आश्रम निर्माण के दौरान पच्चीस सितम्बर, 1994 को परमपूज्य स्वामी कृष्णदासजी महाराज अपना शरीर रूपी चोला छोड़ गये। तब उनकी आयु पिच्चानवें वर्ष से भी अधिक की होगी। उस समय वे श्रीचन्द्रचिनार बड़ा

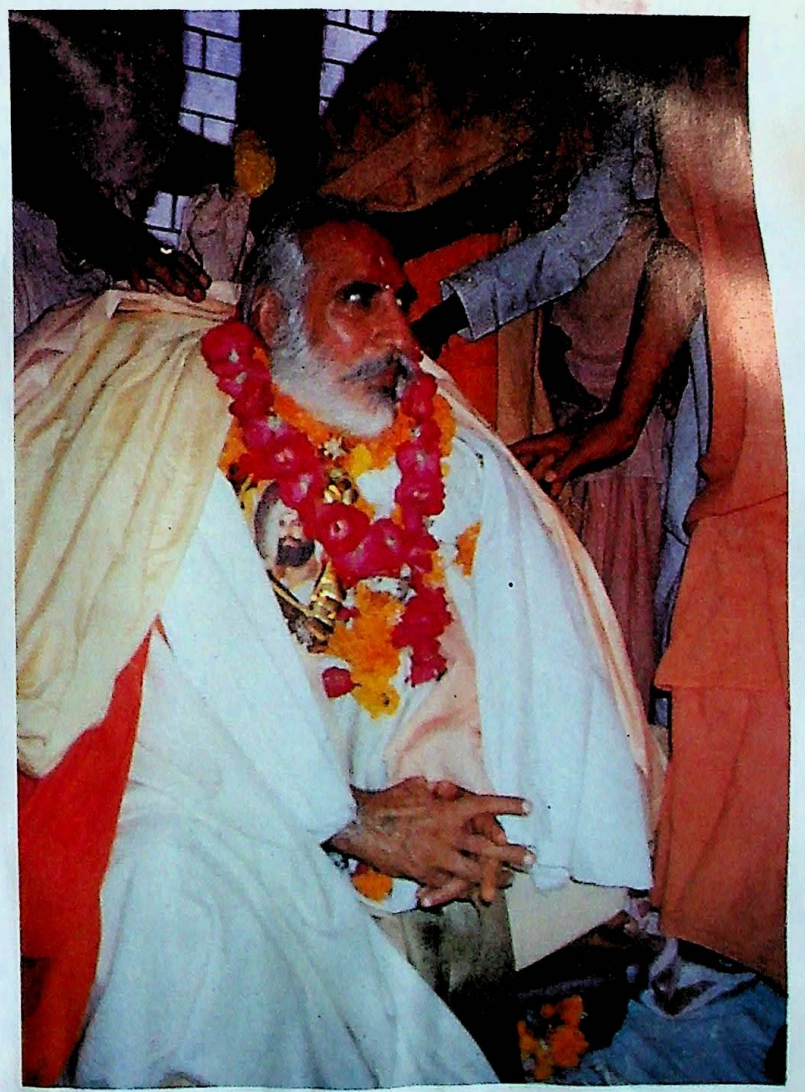
CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

उदासीन अखाड़ा ट्रस्ट, श्रीनगर-कश्मीर के अध्यक्ष भी थे। उनकी बड़ी हार्दिक इच्छा थी कि उनके बाद श्रीचन्द्रस्वामीजी उनके उत्तराधिकारी हों। जब वे जीवित थे तो अक्सर गुरुदेव से अपनी इच्छा के बारे में कहा करते थे। तब अपनी चिरपरिचित नम्रता से गुरुदेव उनसे कहते थे कि इतनी बड़ी जिम्मेदारी उठाने की उनमें न तो योग्यता है और न ही इच्छा। लेकिन महाराज कृष्णदासजी उनकी बात नहीं मानते थे। इस प्रकार दोनों संतों में परस्पर प्रेम भरी मनुहार होती रहती थी। किन्तु भगवदैच्छा से बड़े महाराजजी के देह त्याग के बाद संस्था के ट्रस्टियों ने बहुत प्रेमपूर्ण आग्रह से, श्रीचन्द्रस्वामीजी को श्रीचन्द्रचिनार आश्रम का आध्यात्मिक प्रमुख (महन्त) तथा श्रीचन्द्रचिनार बड़ा उदासीन अखाड़ा श्रीनगर-कश्मीर का अध्यक्ष बनाना चाहा। स्वामीजी ने सभी से लिखकर आग्रह किया कि वे उनकी बजाये उदासीन परम्परा के सर्वमान्य किसी दूसरे योग्य संत को इस धार्मिक-ऐतिहासिक स्थान का अध्यक्ष (महन्त) बनाएं क्योंकि उनकी उस स्थान का महन्त बनने में रुचि नहीं थी। परन्तु ट्रस्टीगण नहीं मानें। उन्होंने महाराजजी से बहुत आग्रहपूर्ण निवेदन किया कि उस स्थान की सारी सेवा वे सब ही करते रहेंगे और उन्हें तो केवल महाराजजी का आशीर्वाद चाहिये। निदान, महाराजजी की अनिच्छा के बावजूद सभी ने उन्हें उस संस्थान का अध्यक्ष बना दिया। अतः बड़े महाराजजी के ब्रह्मलीन होने के बाद 11.10.94 को लक्ष्मी बेला, सप्तसरोवर, हरिद्वार में एक विशाल संत समागम में गुरुदेव को रस्म चादर के द्वारा आश्रम का उत्तराधिकारी बनाया गया। इस शुभ अवसर पर हरिद्वार, बम्बई, दिल्ली आदि स्थानों से विभिन्न पंथों के गणमान्य साधु-संत भी उपस्थित थे। यह विशाल कार्यक्रम जम्मू के लाला धर्मवीरजी बतरा की भक्तिपूर्ण अथक सेवा से सम्भव हो सका। अपनी इच्छा के विरुद्ध भी स्वामीजी ने यह पद इसलिये स्वीकार कर लिया क्योंकि बड़े महाराजजी के प्रति उनके मन में गहरा आदर-सम्मान था तथा इस पद को अस्वीकार कर देने से बड़े महाराजजी द्वारा उनमें व्यक्त किये गये विश्वास की अवहेलना होती।

कश्मीर की कठिन परिस्थितियों के बावजूद श्रीचन्द्रचिनार आश्रम की ओर से जम्मू के सिदरा स्थान पर एक सात सौ बिस्तर वाला एक अत्याधुनिक अस्पताल तथा सौ छात्र प्रतिवर्ष क्षमता वाला मैडिकल कॉलेज पिछले पाँच वर्षों से चल रहा है। संस्थान का नाम आचार्य श्रीचन्द्र कॉलेज ऑफ मैडिकल साइन्सेज़ एण्ड हॉस्पिटल

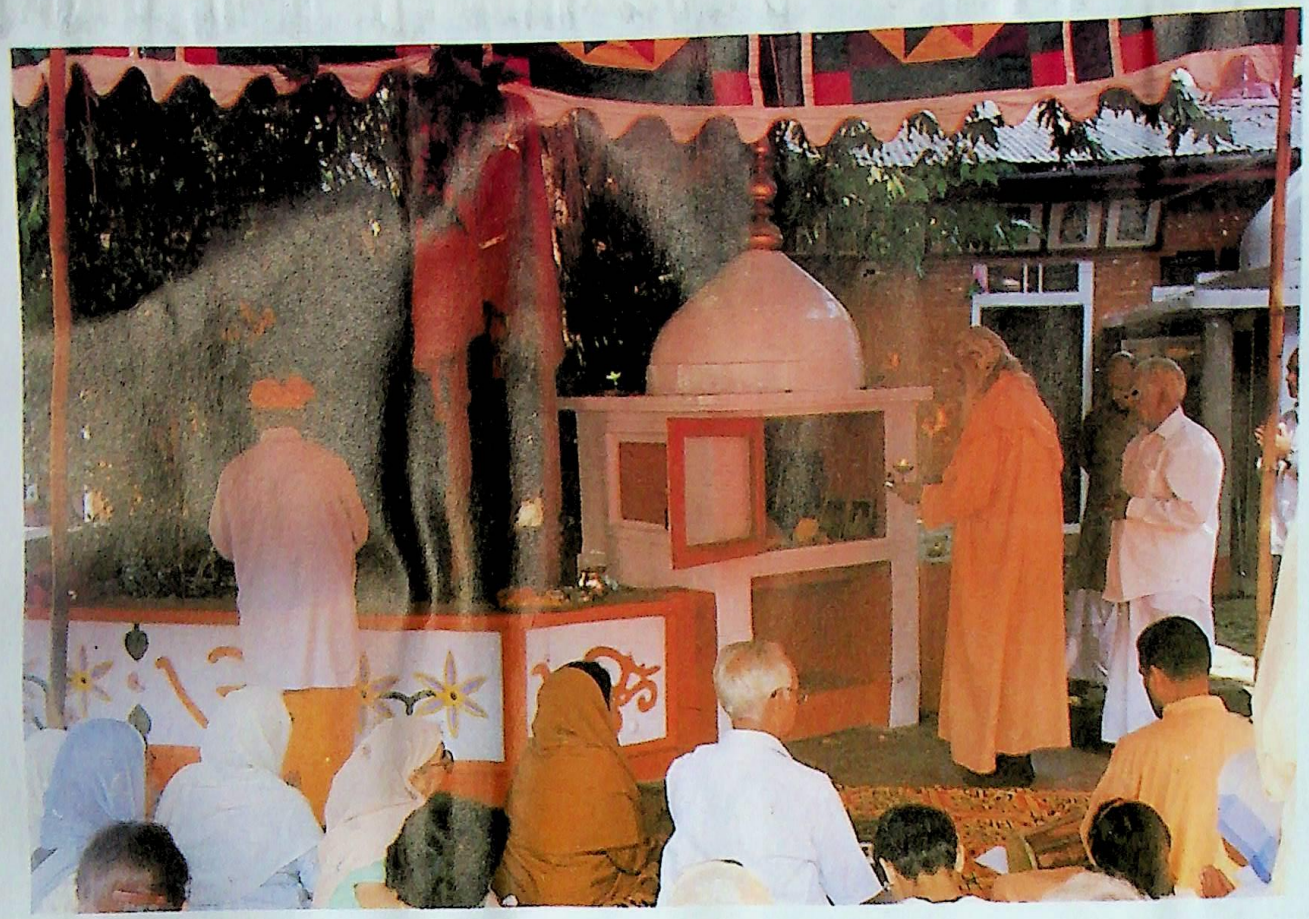
CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri





पूज्य महाराज श्रीकृष्णदासजी के ब्रह्मलीन होने के बाद उनकी इच्छा के अनुसार 11.10.94 को लक्ष्मीबेला, सप्तसरोवर, हरिद्वार में संत समाज ने रस्म-चादर द्वारा स्वामीजी को उदासीनों की प्रसिद्ध पीठ श्रीचन्द्रचिनार आश्रम, श्रीनगर, कश्मीर का उत्तराधिकारी बनाया। ये चित्र रस्म-चादर समारोह के हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



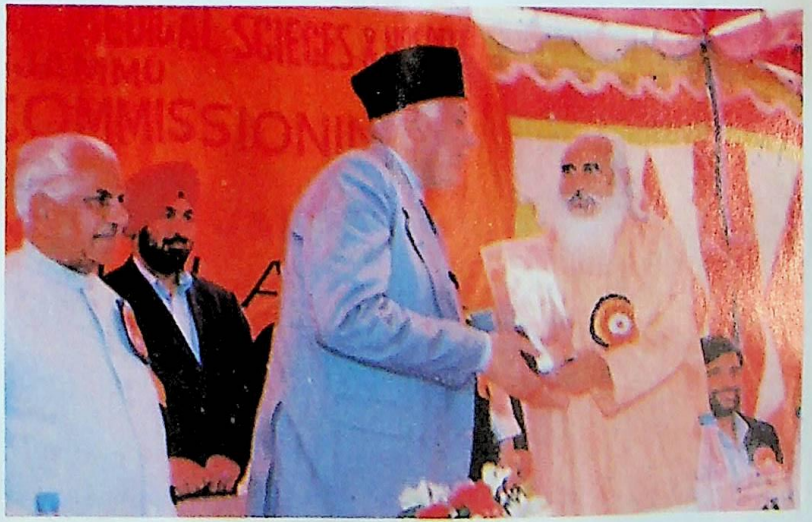
सितम्बर, 1999 में गुरुदेव अपने अनेक भारतीय व विदेशी भक्तों के साथ श्रीचन्द्र चिनार आश्रम गये थे। चित्र में वे भगवान श्रीचन्द्रजी की आरती उतार रहे हैं। चित्र में चिनार का वह वृक्ष भी दिखायी दे रहा है जिसके बारे में जनविश्वास है कि यह वही चिनार है जिसे श्रीचन्द्रजी ने लगभग पाँचसौ वर्ष पहले कश्मीर के शासक याकूब ख़ाँ का गर्व तोड़ने के लिये अपने धूने से जलती हुई लकड़ी को जमीन में गाढ़कर उत्पन्न किया था। इसी वृक्ष की महिमा से उस आश्रम का नाम श्रीचन्द्रचिनार पड़ा। चित्र में महाराजजी के पीछे लाला श्रीधर्मवीरजी बतरा खड़े हैं जो कश्मीर की कठिन परिस्थितियों के मध्य भी आश्रम की निःस्वार्थ सेवा व देखभाल कर रहे हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



Shri Chandra Swamiji, President, presenting momento to H.E. Gen. K.V. Krishna Rao (Retd.), Governor, Jammu & Kashmir.

सन् 1995 में श्रीचन्द्रचिनार बड़ा उदासीन अखाड़ा सोसायटी द्वारा सिद्रा, जम्मू में आचार्य श्रीचन्द्र कॉलेज ऑफ मैडिकल साइंसेज़ एण्ड हॉस्पिटल के नाम से एक विशाल सेवा प्रकल्प का शुभारम्भ किया गया। संस्थान की पत्रिका से लिये गये इस चित्र में संस्थान के अध्यक्ष श्रीचन्द्रस्वामीजी तत्कालीन राज्यपाल माननीय जनरल के० वी० कृष्णाराव (से० नि०) को संस्थान का प्रतीक-चिन्ह भेंट कर रहे हैं।



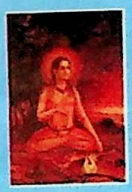
A wordly epitomisation of Swamiji's Blessing.

संस्थान की पत्रिका से लिया गया यह चित्र संस्थान के वर्ष 2000 के वार्षिक उत्सव के अवसर का है जिसमें राज्य के मुख्यमंत्री माननीय श्रीफारुख़ अब्दुलाजी मुख्य अतिथि थे। मुख्यमंत्रीजी की बायीं ओर लाला श्रीधर्मवीरजी बतरा खड़े हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, Chitrakoot. Digitized by eGangotri

अभिमान छोड़कर जनता की सेवा करें।

SWASTHYA



2000

The College Review



अभिमान छोड़कर जनता की सेवा करें।

ACHARYA SHRI CHANDER COLLEGE OF MEDICAL SCIENCES & HOSPITAL

SIDHRA, JAMMU (INDIA)

आचार्य श्रीचन्द्र मैडिकल कॉलेज संस्थान की कॉलेज पत्रिका 'स्वास्थ्य' का मुखपृष्ठ जिसमें विशालकाय संस्थान के मुख्य भवन के सामने का भाग है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



साच बिना नहीं कोई पूरा, साच बिना नहीं कोई सूरा।
साच बिना प्रभु कला न परसै, साच बिना नहीं आतम दरसै ।। — *आचार्य श्रीचन्द्रजी*

आचार्य श्रीचन्द्र मैडिकल कॉलेज व अस्पताल परिसर में स्थित ध्यान कक्ष में आचार्यजी की सुन्दर प्रतिमा।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

है। दिनाँक 28.09.1998 को बाबा श्रीचन्द्रजी के जन्मदिवस के अवसर पर श्रीचन्द्र नवमीं के पवित्र दिन आचार्य श्रीचन्द्र मैडिकल कॉलेज परिसर में एक बड़े प्रार्थना हाल में बाबा श्रीचन्द्रजी की बहुत सुन्दर प्रतिमा की प्राण-प्रतिष्ठा का भव्य कार्यक्रम था। शास्त्रीय विधि के अनुसार गुरुदेव के कर-कमलों से वैदिक मंत्रों के उच्चारण के साथ बाबाजी की प्रतिमा की प्राण प्रतिष्ठा हुई। भस्म, कोपीनधारी बाबाजी की प्रतिमा उस दिन गैरिक वस्त्रों और पुष्प मालाओं से आवृत्त थी। प्रतिमा इतनी सुन्दर तथा जीवन्त लग रही थी कि मानो अब बोली और अब बोली। कार्यक्रम के उपरान्त लगभग तीन सौ एकड़ से भी अधिक क्षेत्र में फैले तवी नदी को निहारते, द्रुत गति से निर्मित हो रहे इस विशाल मैडिकल कॉलेज काम्प्लैक्स को देखकर सभी चकित थे। अपने आरम्भिक काल में उपरोक्त अस्पताल अभी तो भारी घाटे में चल रहा है तो भी वह समाज सेवा करके अपने दायित्व को निभा रहा है। दूर गाँवों में अनेक निःशुल्क शिविर लगाये जाते हैं तथा निर्धनों की निःशुल्क चिकित्सा की जाती है। आशा की जाती है कि सक्षम हो जाने पर संस्थान समाज की और भी सेवा करेगा।

यह विशाल प्रकल्प श्रीचन्द्र चिनार बड़ा अखाड़ा उदासीन सोसायटी के नाम से पंजीकृत संस्था चला रही है जिसके अध्यक्ष पूज्य गुरुदेव हैं तथा श्रीधर्मवीरजी बतरा उपाध्यक्ष हैं। यह सेवा प्रकल्प श्रीबतराजी, जम्मू के ही रिटायर्ड चीफ इन्जीनियर श्री एच. एल. मैनीजी, श्रीविश्वनाथजी सहगल, श्री एल. एन. जग्गीजी, श्री के. के. मेहराजी आदि सदस्य अपनी अथक सेवाओं द्वारा बड़ी निपुणता से चला रहे हैं। श्रीबतराजी श्रीचन्द्र चिनार संस्थान के उपाध्यक्ष तो हैं ही, बाबा श्रीचन्द्रजी के परम भक्त भी हैं। उनका दिल्ली में अति आधुनिक बतरा हॉस्पिटल भी है अतः चिकित्सा के क्षेत्र में उनका गहरा अनुभव है। बड़े उद्योगपति होने के कारण साथ ही वे अनेक धार्मिक व सामाजिक कार्यों में भी अपनी सेवाएं सश्रद्धा देते रहते हैं। धर्म और संत समाज की सेवा तो उनके जीवन के अंग ही हैं।

स्वामी प्रबोध चेतन

जब-जब भी गुरुदेव की जीवन-लीला की चर्चा होगी, उनके प्रमुख एवम् प्रिय शिष्य स्वामी प्रबोध चेतन की चर्चा के बिना वह पूर्ण न होगी। श्रीप्रबोधजी के दिवंगत पिताजी का नाम श्रीभगवानदास बावा तथा माता का नाम श्रीमती सदावन्ती

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

है। दम्पति काम्बोज परिवार के हैं। विभाजन से पूर्व श्रीभगवानदासजी भी भूमनशाह गाँव में रहा करते थे। वे भूमनशाह डेरे के सेवक थे तथा उन्होंने महन्त गिरधारीदासजी से ही दीक्षा ले रखी थी। विभाजन के बाद वे गाँव वरुवाली, सिरसा, हरियाणा में आकर बस गये थे।

इन्हीं धर्मनिष्ठ दम्पति के परिवार में पाँच मार्च, 1966 को श्रीप्रबोधजी का जन्म हुआ था। इनके बचपन का नाम सुरेन्द्र था। बाबा भूमनशाह में अगाध श्रद्धा होने के कारण माता-पिता ने अपने इस परमप्रिय बालक को बाबाजी के साक्षात् रूप श्रीचन्द्रस्वामीजी को साधु जीवन व्यतीत करने के लिये भेंट कर दिया था। यह निर्णय उन्होंने बालक की मात्र छः माह की आयु में ही ले लिया था। कुछ आधुनिक तर्कवादियों को यह निर्णय बड़ा अनुचित सा लग सकता है कि बिना उसकी सम्भावनाओं को देखे-भाले एक शिशु के सम्बन्ध में इतना महत्वपूर्ण निर्णय ले लिया गया। किन्तु हमें ध्यान रखना होगा कि प्रत्येक माता-पिता को अपने बच्चों को अपनी सर्वोत्तम धरोहर देने का पूर्ण अधिकार है। अभी भी भारत में लाखों ऐसे परिवार हैं जिनके लिये परमात्मा, संत, भगवद्साक्षात्कार, आदि कपोल कल्पनाएं नहीं जीवन्त सत्य हैं। हमारी विनम्र राय में स्वामी प्रबोधचेतनजी को निर्वाह करने के लिये उनके अभिभावकों ने अपने आदर्शों के अनुसार सर्वश्रेष्ठ परम्परा सौंपी चाहे वह कठिनतम ही थी। अस्तु।

अतः सन् 1982 में अल्पायु में ही प्रबोधजी घर-बार छोड़कर हरिद्वार के सेवक निवास आश्रम में गुरुदेव के पास सदा के लिये आ गये थे। तब उन्होंने आठवीं कक्षा उत्तीर्ण कर ली थी। श्रीप्रबोधचेतनजी की माताजी बताती हैं कि जब प्रबोधजी मात्र दो-ढाई वर्ष के ही थे, तो उन्हें इस बात का बोध हो गया था कि उनके कोई गुरु हैं जिनके पास उन्हें भगवान की भक्ति करने के लिये जाना है। वे अक्सर अपने माता-पिता से स्वयं को गुरुजी के पास छोड़ आने की जिद किया करते थे। इस विषय में वे अपने घरवालों से झगड़ा तक किया करते थे।

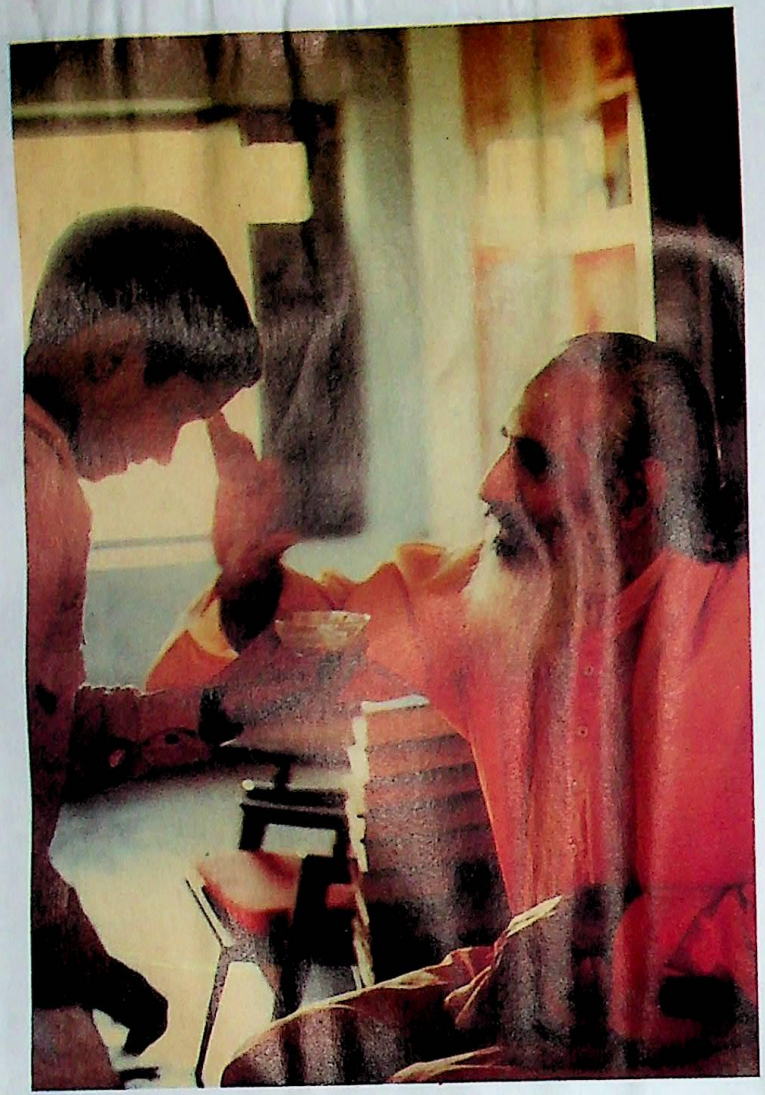
आश्रम आकर ब्रह्मचारी के वेष में रहकर वे आश्रम की सेवा करने के साथ ही साथ विद्याध्ययन भी करते रहे। पूज्य गुरुदेव उन्हें पुत्रवत् सब प्रकार की नैतिक तथा आध्यात्मिक शिक्षा देने का प्रयास करते। वे उन्हें यत्नपूर्वक लोकव्यवहार का ज्ञान भी देते तथा लौकिक शिक्षा में भी आगे बढ़ने के लिये पूरा ध्यान रखते। वे उन्हें

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

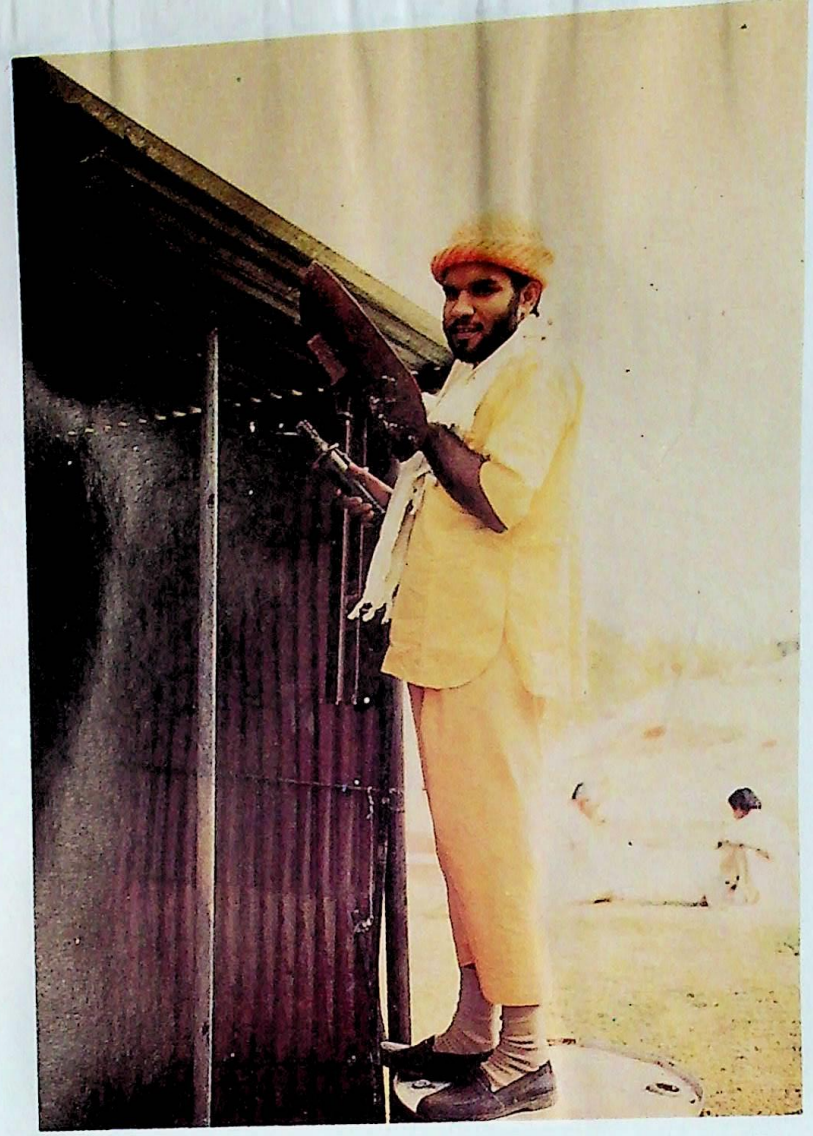


दिवंगत पूज्य स्वामी प्रबोधचेतनजी।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



सेवक निवास में बालक प्रबोधजी को महाराजजी तिलक लगा रहे हैं; उन पर अपना प्यार उड़ेल रहे हैं।



स्वामी प्रबोधचेतनजी अन्तिम स्वांस तक आश्रम की सेवा करते रहे। चित्र में वे आश्रम के एक शैड में वैल्डिंग कर रहे हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

माता तथा पिता दोनों का स्नेह देते थे। सरल स्वभाव तथा छोटे होने से प्रबोधजी आश्रम में सबके प्रिय थे। सन् 1989 में उन्होंने शास्त्री की परीक्षा अंग्रेजी विषय के साथ उत्तीर्ण की। तभी नये आश्रम, साधना केन्द्र के निर्माण की प्रक्रिया भी शुरू हो गयी थी। प्रबोधजी की तकनीकी कार्यों में बहुत रुचि थी तथा ऐसे किसी भी काम को वे तुरन्त सीख लेते थे। अतः साधना केन्द्र आश्रम को बनाने में उनकी प्रमुख भूमिका रही। वे बिजली, पानी, वैल्डिंग, राजमिस्त्री इत्यादि सभी तरह के काम जानते थे। सब लोगों की नजर से दूर रात के दो-दो बजे तक आश्रम के अनेक कामों में लगे रहते थे। दरअसल साधना केन्द्र आश्रम की एक-एक ईंट पर उनकी सेवा की छाप है। उनकी गऊमाता, गायत्री व गंगाजी में भी बड़ी श्रद्धा थी। अक्सर आश्रम की गौशाला में गऊओं की सेवा किया करते थे। स्वभाव के बहुत मृदुल, नम्र तथा बड़े-बूढ़ों की सेवा और सम्मान करने वाले थे। गाँव के अनेक निर्धन तथा अन्य लोग उनसे गहरा प्रेम रखते थे। अनेक प्रकार से वे निर्धनों तथा इष्ट मित्रों की सेवा किया करते थे। कई-कई बार तो निर्धन लोगों के घर जाकर उनके मकान की मरम्मत कर आते थे। मकान की छत भी स्वयं ही डाल आते थे। उनके पास कोई रुपया पैसा हो तो मुक्त हस्त से दूसरों को दे दिया करते थे। आश्रम के कर्मचारियों का वे विशेष ख्याल रखते थे।

पूज्य गुरुदेव तथा बाबा भूमनशाहजी में उनकी अगाध श्रद्धा-भक्ति थी। वे गुरुदेव के सामने आज्ञाकारी बालक की तरह नतमस्तक होकर उनकी आज्ञापालन में तत्पर रहते थे। प्रकृति से बहुत सरल तथा विनोदप्रिय थे। आश्रम के सभी सेवक उन्हें हृदय से प्रेम करते थे। सन् 1995 में गुरुपूर्णिमा के पवित्र पर्व पर उन्होंने गुरुदेव से संन्यास दीक्षा ली थी।

आश्रम में आ जाने के बाद उन्होंने अपने घरवालों से हमेशा उचित दूरी बनाये रखी। अब आश्रम में उनकी मधुर स्मृतियां ही शेष हैं। इकत्तीस वर्ष की अल्पायु में वे शरीर छोड़कर अपनी आगे की यात्रा पर चल दिये। 27 दिसम्बर, 1997 का दिन आश्रमवासियों को कभी नहीं भूलेगा। उस दिन आश्रम में बड़ा उत्सव था। सद्गुरु बाबा भूमनशाहजी का निर्वाण दिवस बड़ी धूमधाम से मनाया जा रहा था। उसी दिन प्रातः महाराजजी के सेवक वीरेन्द्र को संन्यास दीक्षा का प्रसाद मिला था। संन्यास दीक्षा के उपरान्त उसका नाम बदलकर स्वामी प्रेमविवेकानन्द हो गया था। स्वामी

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

प्रबोध चेतन पूरे दिनभर बहुत प्रसन्न थे। संन्यास दीक्षा के समय उन्होंने स्वामी प्रेमविवेकानन्द को नया गेरुआ वस्त्र भी भेंट में दिया। भाग-भागकर, हँस-हँसकर भण्डारे की सारी व्यवस्था देख रहे थे। शाम को लगभग पाँच बजकर पैंतालीस मिनट पर अचानक आश्रम की बिजली चली गयी। चूँकि पूरे आश्रम की बिजली की व्यवस्था वे ही देखते थे अतः खराबी देखने के लिये वे आश्रम परिसर में ही लगे ट्रान्सफार्मर की ओर गये। ट्रान्सफार्मर में कोई बड़ी खराबी आ गयी थी जो उन्हें मालूम नहीं थी। उसके हैंडल को छेड़ते ही उसमें एक जोर से धमाका हुआ जिसके कारण हृदयगति रुक जाने से उनके प्राणपखेरू उड़ गये।

घटना के पता लगते ही तुरन्त उनको विकासनगर स्थित लेमन अस्पताल ले जाया गया जहाँ उन्हें मृत घोषित कर दिया गया। इस हादसे की खबर मिलते ही सारा आश्रम शोक और वेदना में डूब गया। भगवान के लेख किससे मिट सके हैं ? शोकाकुल आश्रमवासी उनके शव को भजनहाल में बाबाजी की फोटो के आगे रखकर पूरी रात 'हरि शरणम्' धुन का कीर्तन करते रहे। दूसरे दिन हरिद्वार में गंगाजी के तट पर उनका विधिवत् दाह संस्कार किया गया। आस-पास के गाँव और विकासनगर से बड़ी सँख्या में लोग अन्तिम संस्कार हेतु हरिद्वार पहुँचे थे।

इस दुःखद खबर के फैलते ही देश-विदेश से शोक-संदेश आने लगे। किन्तु प्रबोधजी तो अपनी यात्रा पर चल दिये थे; शोक-संदेश केवल पीछे वालों के लिये रह गये थे।

शरीर छोड़ने के दस दिन तक उनके निमित्त आश्रम में रोज दिनभर 'हरि शरणम' की धुन लगायी जाती थी। दसवें दिन 07.01.98 को आश्रम में उनके निमित्त भण्डारा तथा श्रद्धान्जलि सभा आयोजित की गयी। आस-पास के क्षेत्रों से आये लोगों ने उनके प्रति अपनी श्रद्धा सुमन अर्पित किये। इस पूरे प्रकरण में अपने पुत्रवत् प्रबोधजी को भौतिक रूप में खोकर, उसकी पीड़ा हृदय में लिये गुरुदेव अत्यन्त गम्भीर हो निर्विकार बने रहे। श्रद्धान्जलि के दिन उनके ये मार्मिक शब्द सबको पढ़कर सुनाये गये—

"प्रबोध चेतन को परमात्मा ने अकस्मात् बुला लिया। जाने की तैयारी तो मैंने कर रखी है, पर बुला उसको लिया। जैसी प्रभु इच्छा !"

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

"किसी को भी, किसी समय भी बुलाया जा सकता है। कोई किसी समय भी जगत् से जा सकता है। जीवन में सुरक्षा की किसी की भी गारन्टी नहीं है। मैं भी जा सकता हूँ। आप भी जा सकते हैं। X भी जा सकता है। Y भी जा सकता है। Z भी जा सकता है। सबको जाने के वास्ते हर समय तैयार रहना चाहिये।"

"स्वामी प्रबोध चेतन के आने और जाने का विशेष प्रयोजन था। उस प्रयोजन को पूरा करके वह चला गया। उसके जन्मदिन की तारीख वही थी जो मेरे जन्मदिन की है। और उसका जाना बाबा भूमनशाहजी के निर्वाण दिवस पर ही हुआ। कैसा divine coincidence है ! कैसा दिव्य संयोग है ! प्रबोध चेतन जहाँ से आया था, वह वापस वहीं चला गया। उसके जाने के वास्ते शोक नहीं करना चाहिये। उसका जन्मदिन व जाने का दिन स्वाभाविक ही मनाया जाता रहेगा।"

गुरुदेव को प्रबोधजी के जाने की पीड़ा तो बहुत हुई। और क्यों नहीं, पूरे सत्रह वर्ष वे गुरुदेव की तथा आश्रम की अनन्यभाव से सेवा करते रहे, पुत्रवत् उनका स्नेह पाते रहे। एक बार किसी सेवक ने उनसे पूछ लिया कि क्या उन्हें प्रबोधजी के चले जाने का दुःख है ? तो गम्भीर भाव से कागज पर यह लिख दिया—

दिल ही तो है न संगो खिश्त, दर्द से भर न आये क्यूँ,
रोयेंगे हम हजार बार, कोई हमें बुलाये क्यों।

बाद में प्रसंगवश गुरुदेव ने हमें बताया कि प्रबोधजी का जीवात्मा उनके शरीर छूटने के दस दिन बाद तक आश्रम में ही रहा। और उसके बाद वह अपने आगे की यात्रा पर चल दिया। उनकी सद्गति हुई।

हम सब पुनः अपने बहुत प्रिय गुरुभाई को हृदय के कोमलतम भावों के साथ स्मरण करके उनके प्रति अपने श्रद्धासुमन अर्पित करते हैं।

फिर फैलने लगी कीर्ति रश्मियाँ

सन् 1990 में साधना केन्द्र आश्रम में स्वामीजी के आने के बाद एक और महत्वपूर्ण घटना हुई और वह यह कि धीरे-धीरे स्वामीजी का यश दूर-दूर तक फैलने लगा। विशेषकर भारत में बाबा भूमनशाहजी के अनुयायी तथा काम्बोज समुदाय के भक्त बड़ी संख्या में स्वामीजी के पास आने लगे। राजस्थान के श्रीगंगानगर के मानकसर गाँव के आस-पास के कई गाँवों में बाबाजी की बड़ी मान्यता है। 13 FF

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

गाँव में तो बाबाजी का एक सुन्दर मन्दिर भी है। ये सब गाँव देश के विभाजन के बाद बाबाजी के अनुयायियों द्वारा बसाये गये थे। यह सब स्वतः बिना किसी प्रचार-प्रसार के हुआ। इन गाँवों के अनेक लोग महाराजजी को बाबाजी का अवतार मानकर उनमें श्रद्धा-भक्ति रखते हैं। इसी अवधि में सन् 1991 में महाराजजी के परम सेवक श्रीचन्द्रभानजी अपनी शिक्षा पूरी करके आश्रम में आ गये थे। तब से वे भी आश्रम में रहकर अनेक प्रकार से गुरुदेव तथा आश्रम की सेवा करके त्याग व तपस्यामय जीवन व्यतीत कर रहें हैं। इनके अतिरिक्त हरियाणा, पंजाब तथा उत्तर प्रदेश के कई स्थानों से भी बाबाजी के भक्त गुरुदेव के पास आने लगे। श्रीगंगानगर और पंजाब के भक्त तो घर-घर से वस्तुयें एकत्रित करके प्रतिवर्ष ट्रक में गेहूँ, दालें, खल, तेल, बिस्तर तथा चद्दरें आदि आश्रम में पहुँचा जाते हैं। अन्य स्थानों से भी भक्त आश्रम के लिये अपनी-अपनी क्षमतानुसार बर्तन-भाँड़े, राशन, बिस्तर व अनेक प्रकार की वस्तुयें लाकर महाराजजी के चरणों में रखते हैं। अतः आश्रम का भोजन एवं अनेक वस्तुयें तो वास्तव में हजारों भक्तों की श्रद्धा-भक्ति से अनुरंजित महाप्रसाद है जिसे स्वीकार कर भक्तगण अनुगृहीत होते हैं।

इस प्रकार जहाँ सेवक निवास में बाबाजी और गुरुदेव का आत्मिक सम्बन्ध छुपा हुआ था, साधना केन्द्र में जग जाहिर हो गया और बाबाजी तथा महाराजजी की विमल कीर्ति दूर-दूर तक बिखरने लगी।

बहुत से अप्रवासी भारतीय भक्त भी आश्रम में आते रहते हैं। सरदार अमरसिंहजी के सुपुत्र एवं महाराजजी के अनन्य भक्त श्रीअनूपसिंहजी आजकल सिंगापुर में हैं एवं अक्सर महाराजजी के दर्शनार्थ आते रहते हैं। यह पूरा परिवार महाराजजी के जम्मू प्रवास के आरम्भिक दिनों से ही उनका परम भक्त है। इसी प्रकार मिडलसैक्स लंदन के श्री अम्बालाल जे. पटेलजी भी महाराजजी के अनन्य भक्त हैं। वे सेवक निवास में भी आते रहते थे तथा आजकल सपत्नीक वर्ष में छः महीने महाराजजी के पास ही रहकर साधन-भजन करते हैं। इनके अतिरिक्त लंदन से पूज्य रामबाबा तथा उनके सभी पुत्र व पुत्रियों के परिवार (श्रीअनिलजी-मधु बहन, श्रीअनूपजी-रश्मिताजी, श्रीविपिनजी-भारती बहन तथा अन्य सदस्य) भी आश्रम आते रहते हैं। हाल ही में विदेशों में व्यापार करने वाले श्रीजमनाजी दातवानी भी अपना करोबार बन्द करके सपत्नीक प्रायः आश्रम में आकर भजन-साधन तथा सेवा

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

करते हैं। कुछ वर्षों से हांगकांग निवासी तथा धर्मनिष्ठ श्रीसुन्दरजी छुगानी (सैंडीजी) भी अवसर मिलते ही महाराजजी के दर्शन करने पहुँच जाते हैं। आबूधाबी के श्रीचन्द्रूजी लौंगानी भी जब-तब प्रभु के दर्शनार्थ आते रहते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य कई भारतीय मूल के प्रवासी भक्त महाराजजी के पास आते रहते हैं। ये सभी अनेक प्रकार से आश्रम की सेवा भी करते हैं तथा बड़े प्रेम से महाराजजी को अपने देश में निमंत्रित करके वहाँ के भक्त वृन्द को उनके दर्शनों से कृतार्थ कराते हैं।

इसी अवधि में भगवदेच्छा से बिना किसी प्रचार-प्रसार के हजारों की सँख्या में विदेशी भक्त भी गुरुदेव की ओर आकृष्ट हुए। इसकी चर्चा हम अलग से बाद में करेंगे।

हालाँकि आश्रम दूर-दराज़ छोटे से गाँव में स्थित है तो भी काफी संख्या में साधक-भक्त यहाँ नियमित रूप से पहुँचते रहते हैं। बड़ी सँख्या में भक्तों के आने के बावजूद महाराजजी ने यह सुनिश्चित किया हुआ है कि आश्रम का स्वरूप एक भजन स्थली का हो, न कि घूम-फिरकर पिकनिक मनाने जैसे किसी स्थान का। इस सम्बन्ध में वे आने वाले भक्तों को नियमित रूप से सचेत भी करते रहते हैं।

भक्तों की संख्या में वृद्धि के साथ ही अधिक से अधिक भक्तगण उनसे मन्त्र-दीक्षा की भी प्रार्थना करने लगे हैं। अब महाराजजी नाम-दीक्षा के आकांक्षी भक्त से कुछ न्यूनतम अपेक्षायें भी करने लगे हैं। पहली शर्त तो लाखों की संख्या में (जो भी महाराजजी तय करें) कापी पर 'ॐ' या 'इक ओंकार' लिखकर लाना। दूसरा, जीवनभर माँस, मदिरा तथा तम्बाकू के त्याग का संकल्प लेना। इन शर्तों को पूरा करने के बाद ही गुरुदेव किसी को मंत्र-दीक्षा देने पर विचार करते हैं। अपनी ओर से तो उनकी किसी को दीक्षा देने में उपरामता ही रहती है। बहुत आग्रह करने पर ही वे इस पर विचार करते हैं। अगर किसी भक्त के पहले से ही कोई गुरु हैं तो वे उसे दीक्षा नहीं देते, अपितु उसे उसके गुरु में ही श्रद्धा रखने की प्रेरणा देते हैं। गुरुदेव का गुरु-शिष्य सम्बन्ध बहुत मधुर तथा अनौपचारिकता लिये होता है। वे अपने शिष्यों से केवल भगवान का निष्ठापूर्वक भजन-स्मरण करने की ही अपेक्षा रखते हैं और शिष्यों से उनका किसी भी प्रकार के स्वार्थ का सम्बन्ध नहीं होता, न ही वे किसी को स्वयं की पूजा-भक्ति के लिये प्रोत्साहित ही करते हैं। कोई भक्त/साधक निष्ठापूर्वक नित्यप्रति नियमित रूप से भजन-साधन में बैठे तो आप बहुत प्रसन्न हो

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

जाते हैं। बार-बार अन्य लोगों से उस भक्त की प्रशंसा करते हैं। कैसे दयालु हैं— **"ऐसो को उदार जग माहीं"**। हमारे मल-विक्षेपों को हमसे छीनकर हमें सतत प्रभु-स्मरण में लगाते हैं मानो यही उनकी गुरुदक्षिणा है। स्वयं तो वे गुरु होने के मान से सदा-सर्वदा ही मुक्त हैं मानो उन्हें पता ही न हो कि उनके हजारों शिष्य हैं। गुरुपूर्णिमा के पर्व पर उन्होंने अपनी भक्तिमती सेविका रेशमा बहन को गुरुतत्व की बहुत सुन्दर परिभाषा लिखकर दी—

"गुरुपूर्णिमा के दिन गुरुतत्व की भगवान के रूप में पूजा होती है। गुरु कोई व्यक्ति नहीं है। गुरु एक महान् सार्वभौमिक, आध्यात्मिक नियम का नाम है जो भगवद्प्राप्ति के मार्ग पर साधक का पथ प्रदर्शन करता है। देहधारी गुरु इस महान् नियम के एक प्रतीक हैं। गुरुपूर्णिमा के दिन गुरु के प्रतीक के रूप में इस आध्यात्मिक नियम की ही पूजा होती है।"

अतः गुरुरूप से गुरुदेव साधकों को भगवद्प्राप्ति के मार्ग में लगाकर, तथा उनका योग-क्षेम वहन करके महान् गुरुतत्व को ही महिमान्वित कर रहे हैं।

कुछ वर्ष पहले एक बन्धु श्रीशेरसिंहजी काम्बोज गुरुदेव के पावन सम्पर्क में आये थे। महाराजजी के सम्पर्क में आने से उन्हें अपनी बिरादरी की महान् विभूति पूज्य बाबा भूमनशाहजी के बारे में जानकारी हुई, साथ ही उनका स्वयं का जीवन भी अध्यात्म की ओर मुड़ गया। अन्ततः गुरुदेव के प्रति अत्यन्त प्रेम व भक्ति में भीगकर उन्होंने उनसे नाम-दीक्षा भी ली। ये बन्धु बड़े सरल और निर्मल स्वभाव के हैं तथा अपनी बिरादरी की सेवा के लिये विशाल काम्बोज नाम से एक मासिक पत्रिका भी निकालते हैं। इन्हें पत्रकारिता का भी अच्छा अनुभव है। जीवन की दिशा में परिवर्तन आने के साथ ही अब ये उस पत्रिका में अन्य विषयों के अतिरिक्त काफी सामग्री पूज्य बाबा भूमनशाहजी तथा गुरुदेव पर भी देते हैं। कुछ अन्य आध्यात्मिक विषयों पर लेख भी छापते हैं। निवृत्ति प्रधान होने से आश्रम की तरफ से गुरुदेव पर अथवा आश्रम के क्रियाकलापों के बारे में कोई पत्रिका नहीं छपती। इस प्रकार उनकी पत्रिका के माध्यम से समाज को इन महान् संतों के दिव्य जीवन के बारे में भी जानकारी हो रही है। इस सेवा कार्य के लिये श्रीशेरसिंहजी को बार-बार साधुवाद।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

जम्मू की गुफा का जीर्णोद्धार

पिछले कुछ वर्षों से गुरुदेव के जम्मू के अधिकांश सेवक महीने में बारी-बारी से किसी सेवक के घर एकत्रित होकर ध्यान-सत्संग कर रहे थे। इस तरह की परिपाटी गाँधीधाम और करनाल के सेवकों ने भी अपना रखी है। फाज़िल्का में भी उस दिन भक्तगण गुरुदेव के साहित्य का पाठ करते हैं तथा सत्संग और ध्यान करते हैं तथा इस प्रकार गुरुदेव के प्रति श्रद्धा सुमन अर्पित करते हैं।

कुछ वर्ष पूर्व महाराजजी के अनन्य भक्त श्रीमोहनलालजी गुप्ता की अगवायी में जम्मू के भक्तों ने एक बड़ा साहसी और सुन्दर निर्णय लिया। निर्णय यह लिया गया कि जम्मू में ही तवी नदी के तट पर जिस गुफा में गुरुदेव ने सन् 1953 से सन् 1960 तक कठिन तपस्या की थी उस गुफा का जीर्णोद्धार किया जाये तथा वहाँ भजन-साधन हेतु एक छोटा सा आश्रम भी बनाया जाये। बहुत प्रयास और लगन से गुफा के निकट के स्थान को नदी से बचाने के लिये सीमेन्ट कंक्रीट की सुदृढ़ सुरक्षा दीवार बनायी गयी तथा निर्माण हेतु जगह को समतल किया गया। गुफा की दीवारों को भी काटकर थोड़ा सा बड़ा किया गया है। गुफा में पूज्य श्रीरामबापाजी द्वारा भेंट की गयी एक भगवान श्रीचन्द्रजी तथा एक बाबा भूमनशाहजी की सुन्दर मूर्तियाँ भी स्थापित की गयी हैं। मूर्तियों के साथ ही हमारे गुरुदेव का एक सुन्दर छाया चित्र (फोटोग्राफ) बड़ा बनवाकर लगाया गया है। उस गुफा में सभी भक्तगण बड़ी श्रद्धा से इन तीनों विभूतियों की पूजा-अर्चना करते हैं।

दिनाँक 27.09.98 को पूज्य गुरुदेव स्वयं उस स्थान पर देश और विदेशों से आये अपने अनेक सेवकों सहित पधारे थे तथा विधिवत् रूप से गुफा के निकट आश्रम बनाने के कार्य का शुभारम्भ हुआ। उसी दिन वहाँ विशाल भण्डारा भी हुआ तथा निर्धनों की वस्त्रादि से सेवा भी की गयी तथा खूब संकीर्तन व भजन भी हुए। जम्मू के सेवकों ने बहुत प्रेम व उत्साह से अपने प्रभु का स्वागत सत्कार करते हुए इस कार्यक्रम में अपनी-अपनी सेवाएं अर्पित कीं।

अब वहाँ आश्रम निर्माण के प्रथम चरण का कार्य काफी हद तक पूरा हो गया है तथा इस पुनीत कार्य में जम्मू तथा बाहर के अनेक सेवक तन-मन-धन से सहयोग कर रहे हैं। इस समय तक वहाँ 'भूमनशाह प्रार्थनागृह' के नाम से एक बड़ा हॉल तथा कुछ कमरे बनकर तैयार हो गये हैं। उस गुफा को श्रीचन्द्र गुफा के नाम से जाना

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

जाता है। उस स्थान के संचालन हेतु गुरुदेव की आज्ञानुसार 'श्रीचन्द्र गुफा साधना मन्दिर ट्रस्ट' के नाम से एक ट्रस्ट का गठन किया गया है जिस हेतु आरम्भिक ट्रस्ट-फंड स्वयं महाराजजी ने दिया है। श्रीचन्द्र गुफा पर निर्माण कार्य में तथा प्रशासनिक स्तर पर भी लाला धर्मवीरजी बतरा, श्रीमैनीजी व महाराजजी के अनेक भक्त अपनी सेवायें दे रहे हैं। श्रीचन्द्र गुफा पर नियमित रूप से साधन-भजन व सत्संग होता है।

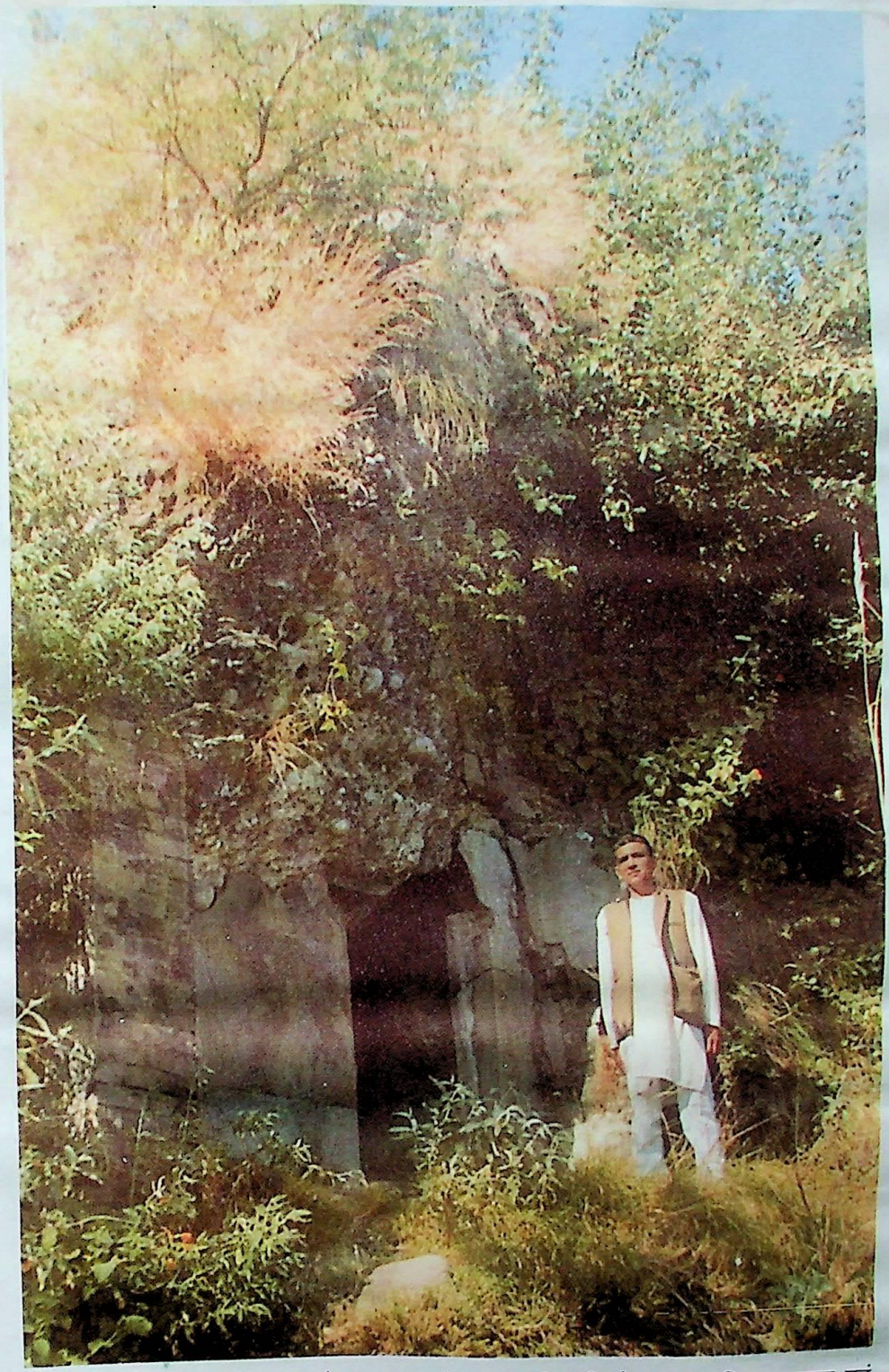
वर्ष 1999 के सितम्बर माह में भी जम्मू के भक्तों के अत्यन्त आग्रह पर गुरुदेव कश्मीर तथा जम्मू की यात्रा पर पुनः गये। सन् 1989 में कश्मीर में आतंकवाद के बाद तथा महन्त स्वामी कृष्णदासजी महाराज के ब्रह्मलीन होने के उपरान्त तथा श्रीचन्द्रचिनार आश्रम के प्रमुख बनने के बाद वे पहली बार कश्मीर गये थे। साथ में लगभग पन्द्रह भारतीय और विदेशी भक्त भी थे। कार्यक्रम की व्यवस्था लालाजी तथा जम्मू के भक्तों ने की थी। आतंकवाद के कारण दिनाँक 17.09.99 से 21.09.99 तक के गुरुदेव के श्रीनगर-कश्मीर प्रवास की अवधि में मुख्यमंत्री कार्यालय की ओर से सुरक्षाकर्मियों की भी पूरी व्यवस्था की गयी थी। 19.09.99 को उदासीनाचार्य बाबा श्रीचन्द्रजी का जन्मदिन बहुत हर्ष और उल्लास से मनाया गया, विशाल भंण्डारे का भी आयोजन किया गया था। मुख्य आयोजन के दिन सुरक्षाकर्मियों से घिरे कुछ निमंत्रित संत भी आश्रम में पधारे। श्रीनगर में बचे हुये मुट्ठी भर हिन्दु भी आये।

श्रीचन्द्रचिनार आश्रम में संक्षिप्त प्रवास की अवधि में श्रीबतराजी ने महाराजजी तथा भक्तों की बहुत सेवा की। साथ ही श्रीनगर में रह रहे डाक्टर तेजीत सिंह, चाँद बहन तथा उनकी बेटियों ने भी गुरुदेव तथा पूरे भक्तवृन्द की बहुत श्रद्धा-प्रेम से सेवा की। जम्मू से श्री डी. डी. शर्माजी, लज्जा बहन तथा काकूजी आश्रम में पहले ही आकर पहुँच गये थे। उन्होंने भी सबकी बहुत प्रेम से सेवा-आवभगत की।

अत्यन्त पीड़ा की बात है कि श्रीनगर के सभी आश्रमों तथा मन्दिरों में सुरक्षाकर्मी ही वहाँ की मर्यादा और पवित्रता की रक्षा कर रहे हैं। इन पवित्र स्थानों पर भी आतंकवादियों के हमले होते रहते हैं।

दिनाँक 21.09.99 को ही दिवंगत महन्त स्वामी कृष्णदासजी तथा महन्त स्वामी रामशरणदासजी की धार्मिक विधि-विधान से दो समाधियां भी आश्रम परिसर में गुरुदेव ने स्वयं अपने कर-कमलों से बनवायीं। श्रीनगर में राज्य के माननीय मुख्यमंत्री श्रीफारुख़ अब्दुल्लाजी ने भी गुरुदेव के दर्शन किये।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



जीर्णोद्धार से वर्षों से पूर्व, जम्मू के सरकुलर रोड पर तवी नदी के तट पर स्थित उजाड़ एवं वीरान श्रीचन्द्र गुफा का एक दृश्य। गुफा के आगे वाले कमरे को तवी पहले ही बहा कर ले जा चुकी थी। चित्र में जम्मू निवासी भक्त श्रीमोंहनलालजी गुप्ता गुफा के द्वार के बाहर खड़े हैं जिन्होंने गुफा के जीर्णोद्धार में जम्मू के अन्य भक्तों के साथ प्रमुख भूमिका निभायी।

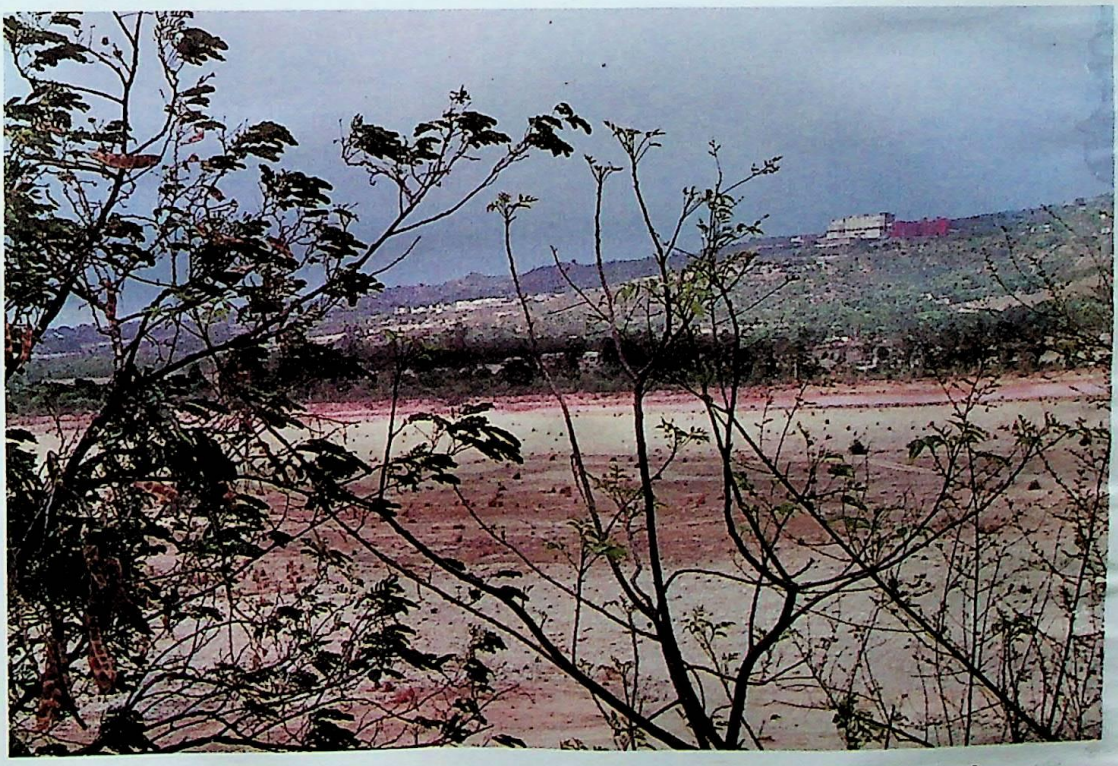
CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



जीर्णोद्धार से पूर्व श्रीचन्द्र गुफा का एक अन्य पुराना चित्र।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri





जम्मू की श्रीचन्द्र गुफा के परिवेश का विहंगम दृश्य। भक्तों ने गुफा की शिला के ऊपर एक छोटा सा गुम्बद बना दिया है। गुफा के सामने तवी नदी का विशाल पाट है और फिर उस पार पर्वत श्रृंखलाएं हैं। (ऊपर वाला चित्र) नीचे वाले चित्र में तवी के पार सामने की पहाड़ी पर आचार्य श्रीचन्द्र मैडिकल कॉलेज व अस्पताल का कॉम्प्लैक्स धुंधला सा दिख रहा है। यह भी एक विचित्र संयोग ही है कि अपने तपस्याकाल में गुफा में बैठकर जिस स्थान को महाराजजी प्रायः निहारते रहे होंगे, आज वहाँ एक विशाल संस्थान बन गया है।

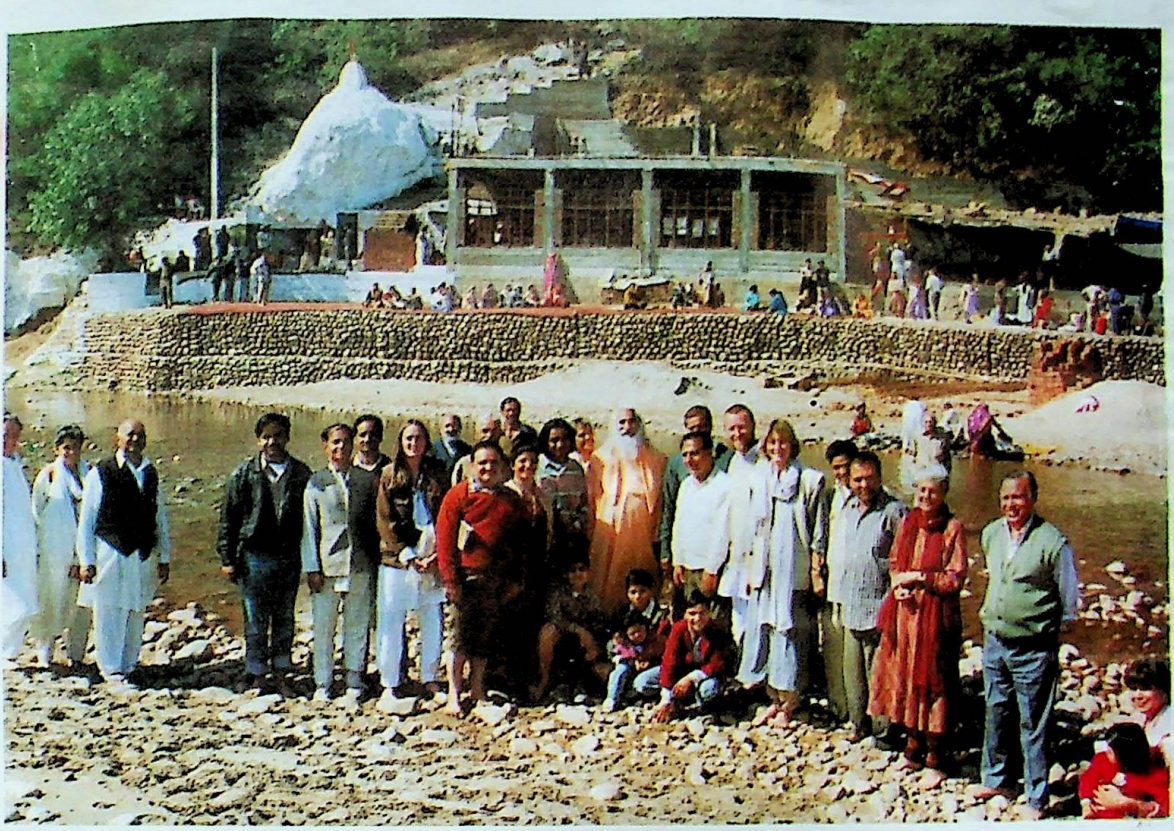
CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri





जम्मू में 'श्रीचन्द्र गुफा' जीर्णोद्धार के बाद। बायीं ओर बाबा भूमनशाहजी तथा बीच में आचार्य श्रीचन्द्रजी की मूर्तियां हैं। दायीं ओर गुरुदेव के दो चित्र रखे हुए हैं।

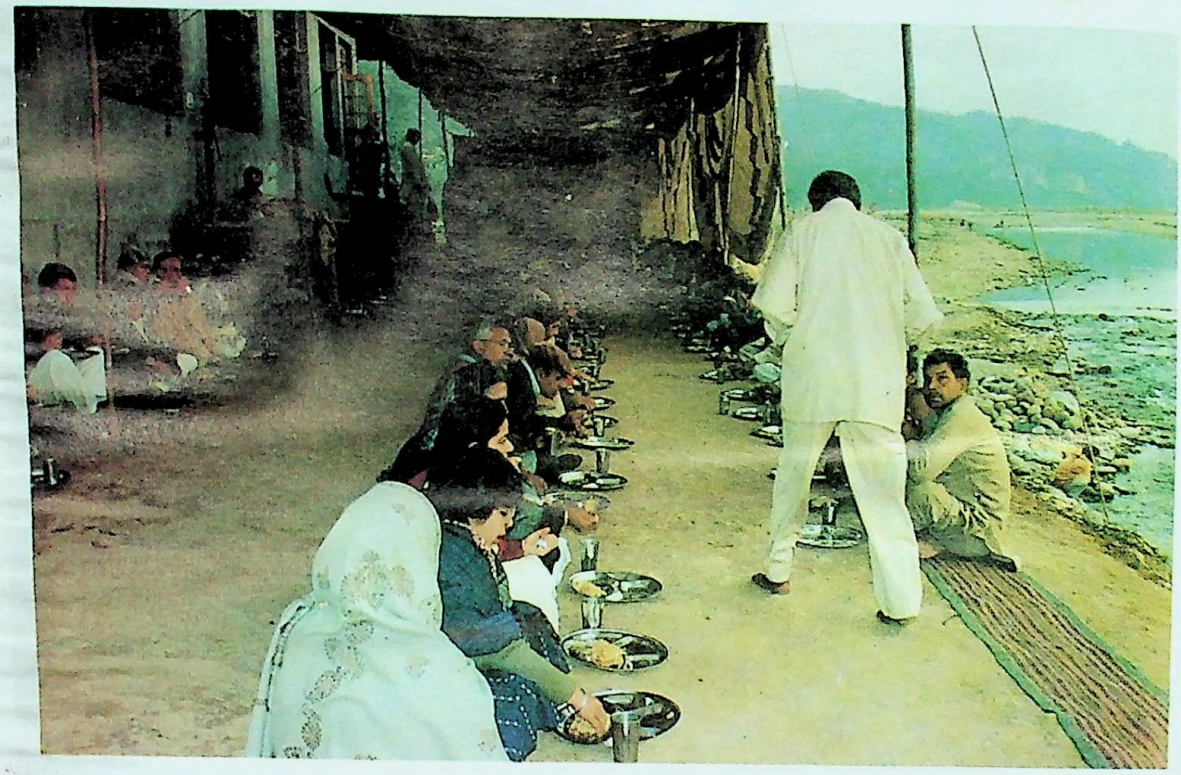
CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



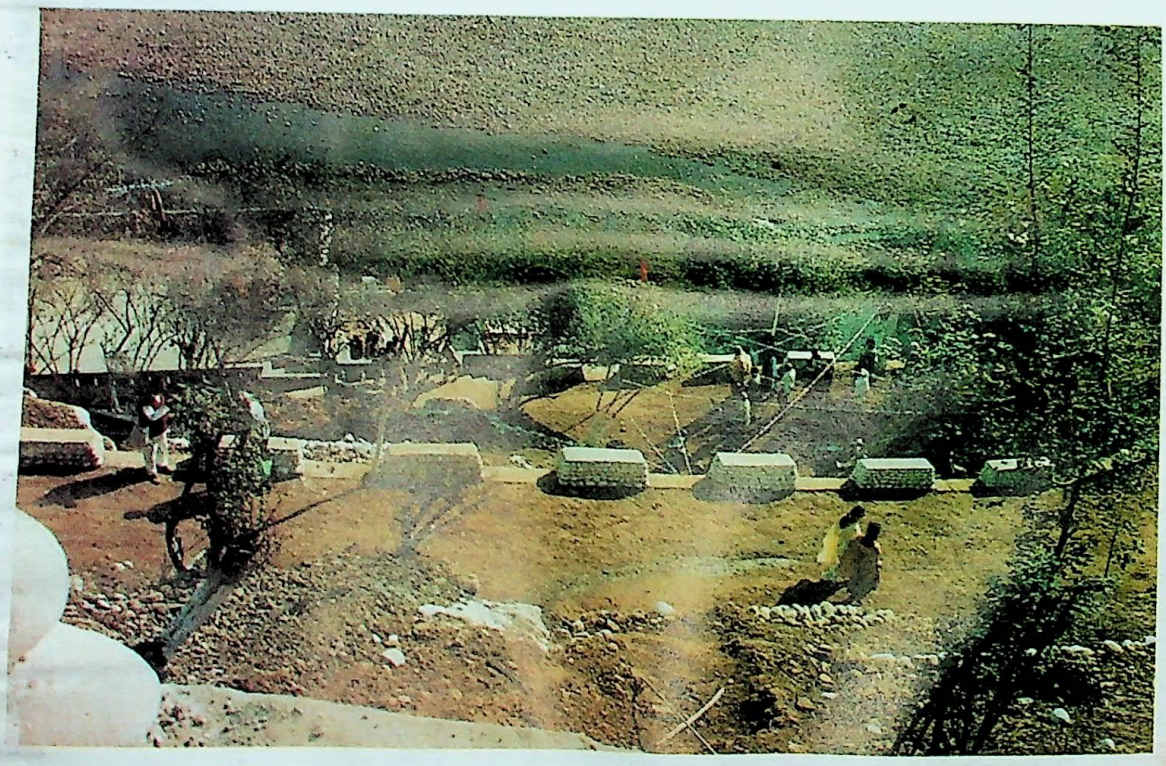


धीरे-धीरे विकसित होता श्रीचन्द्र गुफा साधना मन्दिर आश्रम। चित्र में महाराजजी भक्तों के संग खड़े हैं। ऊपर के चित्र में सफेद रंग की श्री समाधि दिख रही है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

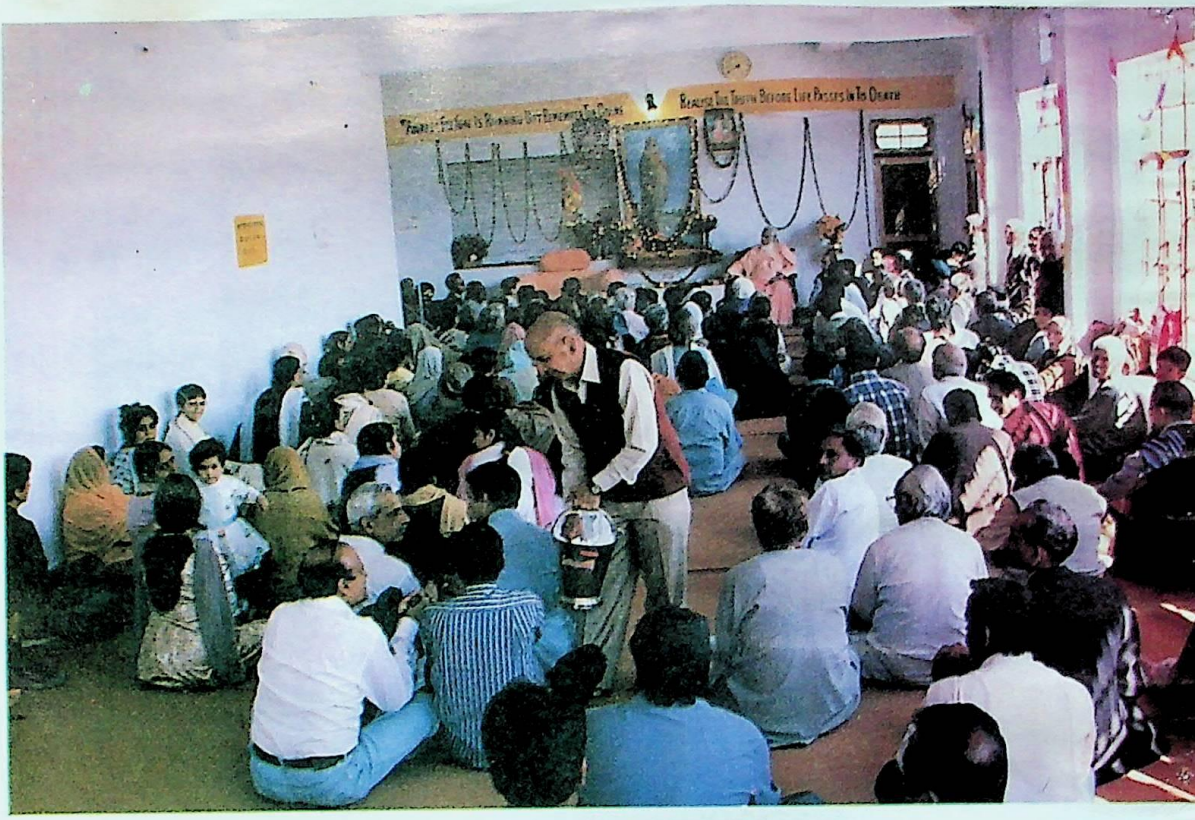


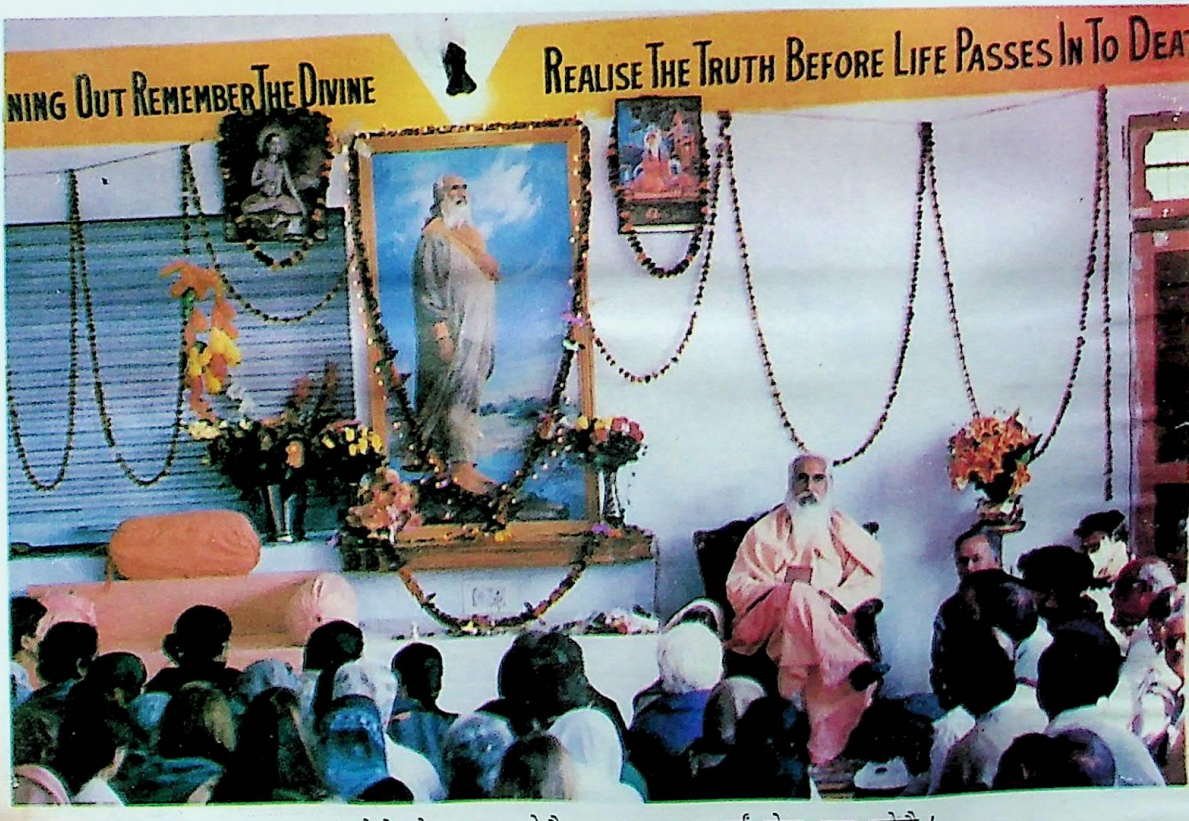
महाराजजी के पधारने पर 'श्रीचन्द्र गुफा' पर उत्सव हो रहा है। भक्तजन मिलकर प्रसाद पा रहे हैं।



जम्मू के भक्तों ने उद्यम करके सरकुलर रोड से नीचे गुफा तक चौड़ा रास्ता बना दिया है। पैंतालीस वर्ष पहले जब महाराजजी यहाँ रहते थे तो यह घना जंगल था तथा बहुत दूर से नदी के किनारे-किनारे शिलाखण्डों को पार करके ही यहाँ तक पहुँचा जा सकता था।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri





मन लोचै मेरा मन लोचै, गुर दरसन ताईं मेरा मन लोचै।

'श्रीचन्द्र गुफा' आश्रम के 'भूमनशाह प्रार्थनागृह' में भक्तों से घिरे महाराजजी।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



'श्रीचन्द्र गुफा' के विकास एवं वर्तमान स्वरूप के अवलोकन से पता लगता है कि किस प्रकार संतों के आध्यात्मिक प्रभाव एवं जन-जन में उस प्रभाव के प्रति सहज-स्फूर्त ग्राह्यता व श्रद्धा-भक्ति के कारण भारत में हजारों आश्रम बिना किसी सरकारी अथवा व्यापक संस्थागत सहायता के बनकर खड़े हो जाते हैं। यह अनूठापन भारतीय समाज की अपनी मौलिकता है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

दिनाँक 21.09.99 को ही गुरुदेव तथा सभी भक्त जम्मू लौट आये। जम्मू में तो गुरुदेव का विशाल भक्तवृंद है। वहाँ अपने अनेक सेवकों के निवास पर गुरुदेव पधारे; बहुत व्यस्त कार्यक्रम रहा। अनवरत भजन-कीर्तन तथा सत्संग होता रहा। दिनाँक 25.09.99 को श्रीचन्द्र गुफा पर गुरुदेव के पधारने के उपलक्ष में विशाल भण्डारे आदि का आयोजन था।

उन्हीं दिनों जम्मू के सेवकों के अथक प्रयासों से श्रीचन्द्र गुफा तथा उसके आस-पास की भूमि के स्वामित्व से जुड़ा एक भूमि विवाद भी समाप्त हो गया है। राजस्व विभाग की पूरी जाँच पड़ताल के बाद वह गुफा तथा आस-पास की भूमि अपने अभिलेखों (records) में विधिवत् श्रीचन्द्र गुफा के नाम चढ़ा दी गयी है क्योंकि वहाँ पिछले पचास वर्षों से स्वामीजी के भक्तों का आना-जाना तथा धार्मिक क्रिया-कलापों का जारी रहना पाया गया। इसी प्रकार जम्मू के न्यायालय ने भी उक्त तपस्थली का स्वामित्व श्रीचन्द्र गुफा के पक्ष में निर्णीत किया है। नवम्बर, 1999 में ही गुफा पर जम्मू-कश्मीर के माननीय मुख्यमंत्री श्रीफारुख़ अब्दुल्लाजी भी पधारे तथा वहाँ अपनी श्रद्धा के सुमन अर्पित करके उन्होंने सेवकों को वहाँ चल रहे कार्यों में प्रशासन की ओर से अपना पूरा सहयोग देने का आश्वासन दिया। मुख्यमंत्रीजी ने आचार्य श्रीचन्द्र कॉलेज ऑफ मैडिकल साइन्सेज़ एण्ड हॉस्पिटल के उद्घाटन के अवसर पर जम्मू-कश्मीर के तत्कालीन गवर्नर के साथ पहली बार स्वामीजी के दर्शन किये थे।

अब श्रीचन्द्र गुफा पर स्थित आश्रम के बन जाने से भक्तों को गुरुदेव के स्पन्दनों से भरपूर एक अन्य स्थान भी भजन-साधन व सेवा हेतु उपलब्ध हो गया है।

जम्मू के बाद गुरुदेव एक-एक, दो-दो दिन अमृतसर, लुधियाना, शिमला, चण्डीगढ़, श्रीगंगानगर तथा हल्द्वानी होते हुये कोई एक महीने बाद आश्रम वापस पहुँचे। इस बार की यात्रा में उन्होंने अपने अनेक भक्तों की वर्षों पुरानी उनकी प्रार्थनायें उनके घरों में जाकर स्वीकार कीं तथा अपना वचन पूरा किया हालाँकि यात्रा में वे स्वयं काफी थक गये थे। गुरुदेव के साथ आये उनके विदेशी सेवक भारत के जनमानस में धर्म-अध्यात्म तथा संतों के प्रति सहज-स्फूर्त श्रद्धा देखकर चकित व गद्गद् थे। उनके लिये धार्मिक कृत्यों में साधारणजन का इतने प्रेम, उत्साह, सहजता

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

से भाग लेना, मुक्त-हस्त से दान करना व सहकारिता की भावना वस्तुतः भारतीय समाज की आत्मा के दर्शन करना था।

बाद में गुरुमहाराजजी ने पुनः चार मार्च, 2001 से 10 मार्च 2001 तक श्रीचन्द्रगुफा साधना मन्दिर में प्रवास किया। उनके साथ देश और विदेशों से अनेक भक्त भी रहे। दिनांक 5 मार्च को वहाँ पर ही बड़ी धूमधाम से भक्तों ने अपने प्रभु का जन्मोत्सव भी मनाया। उन्हीं दिनों श्रीचन्द्र मैडिकल कॉलेज परिसर में भगवान श्रीचन्द्रजी के मन्दिर में भी पूजा अर्चना की गयी तथा भण्डारा भी किया गया। दिनांक 9 मार्च को भक्तों ने गुरुदेव के साथ बड़े प्रेम से होली खेली। सारे बन्धन तोड़कर गुरुमहाराजजी को लाल पीले रंगों से रंग दिया। बहुत आनन्द उत्सव हुआ। गुरुदेव भी हंस-हंसकर होली खेल रहे थे।

साधना केन्द्र आश्रम में दिनचर्या

अभी तक हम महाराजजी की जीवनलीला की मंगलमयी, कलुषहारिणी भागीरथी में साधना केन्द्र आश्रम तक के विभिन्न पड़ावों में स्नान कर रहे थे। आइये, अब हम अपने लीलानायक की आश्रम में दिनचर्या का अवलोकन करें। चूँकि महाराजजी का पूरा जीवन आश्चर्यजनक रूप से पारदर्शी है अतः उसे ठीक-ठीक देख पाना सभी के लिये सम्भव है। सभी के लिये संक्षिप्त विवरण नीचे प्रस्तुत है—

- प्रातः उठना — 3.20 a.m.

पहले सेवक निवास में महाराजजी रात्रि में 2.30 बजे उठा करते थे। अब सामूहिक ध्यान की दृष्टि से समय में परिवर्तन कर दिया है।

- शौच एवम् स्नान — 3.20 a.m.- 4.30 a.m.
- सामूहिक ध्यान — 4.30 a.m.- 5.30 a.m.
- सेवकों के साथ घूमना तथा सूक्ष्म यौगिक व्यायाम — 5.45 a.m.- 6.30 a.m.
- सबके साथ नाश्ता — 6.30 a.m.- 7.00 a.m.
- किसी साधक को समय देना/ एकान्त सेवन — 7.00 a.m.- 8.30 a.m.

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

• सामूहिक ध्यान	—	8.30 a.m.- 9.30 a.m.
• पत्र-पत्रिका पढ़ना	—	9.30 a.m.- 10.00 a.m.
• पत्र लेखन या किसी साधक को व्यक्तिगत समय देना	—	10 a.m.- 10.30 a.m.
• भक्तों-साधकों के साथ लिखित प्रश्नोत्तर का सत्संग सत्र	—	10.30 a.m.- 11.40 a.m.
• सबके साथ भोजनालय में भोजन	—	11.45 a.m.- 12.15 p.m.
• आश्रम निरीक्षण	—	12.15 p.m.- 12.30 p.m.
• विश्राम/समाचार पत्र देखना/ विशेष परिस्थितियों में आगंतुकों से मिलना	—	12.45 p.m.- 2.45 p.m.
• संस्था के बही खाते देखना तथा आवश्यक प्रपत्रों पर हस्ताक्षर करना	—	3.00 p.m.- 3.15 p.m.
• स्थानीय आगंतुकों के लिये दर्शन का समय	—	3.15 p.m.- 3.25 p.m.
• पत्र लेखन/पुस्तक-पत्रिका पढ़ना/ व्यक्तिगत कार्य करना	—	3.30 p.m.- 4.30 p.m.
• किसी जिज्ञासु को व्यक्तिगत समय देना	—	4.30 p.m.- 5.00 p.m.
• सबके साथ सायंकालीन चाय	—	5.00 p.m.- 5.15 p.m.
• आश्रम निरीक्षण	—	5.15 p.m.- 6.00 p.m.
• सामूहिक ध्यान	—	6.30 p.m.- 7.30 p.m.
• विश्राम	—	7.30 p.m.- 8.00 p.m.
• भोजनालय में सभी के साथ सायंकालीन अल्पाहार	—	8.00 p.m.- 8.45 p.m.

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

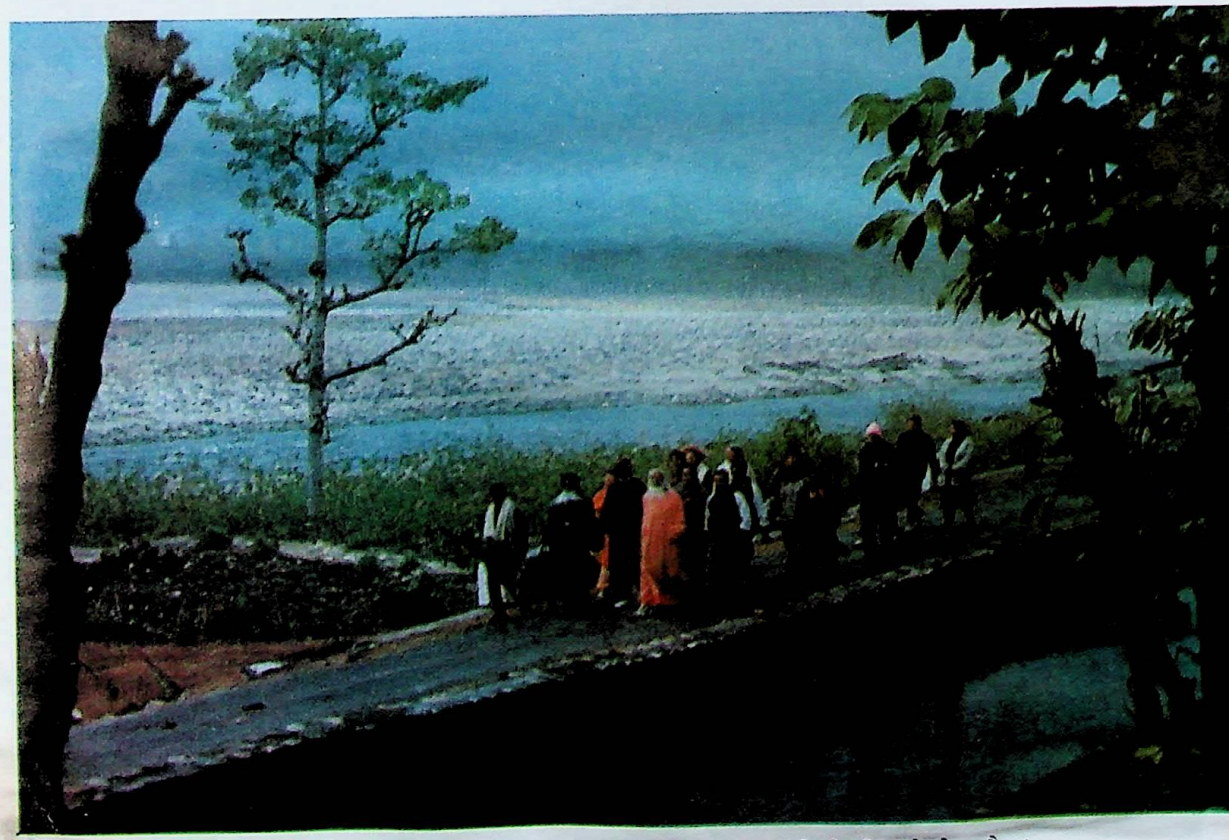
- समाचार सुनना/भक्तों के साथ बैठना — 9.00 p.m.- 10.00 p.m.
- शयन — 10.00 p.m.

इस दिनचर्या में अपने संक्षिप्त एकान्त/विश्राम के समय में भी महाराजजी आवश्यकतानुसार आश्रम की देख-रेख या अन्य जरूरी कामों के लिये पूरे उपलब्ध रहते हैं। कई बार तो सुबह से रात तक उन्हें विश्राम का जरा भी समय नहीं मिल पाता।

हम जो होते हैं वही दूसरों के प्रति हमारा संदेश होता है, न कि हमारे शब्द मात्र। महाराजजी के पावन शब्द-संदेश सदा उनके जीवन का अनुसरण करते हैं, बल्कि उनका जीवन तो उनके शाब्दिक संदेश की अपेक्षा भी कहीं ऊँचा है। महाराजजी अपने शब्दों द्वारा सदा ही भक्तों को नियमित रुप से भजन-अभ्यास में बैठने की प्रेरणा देते हैं। एक प्रकार से उनका यह उपदेश साधक जीवन का सार ही है। अपने साधनकाल में उन्होंने कैसी कठोर व नियमित साधना की थी यह हम पहले देख ही चुके हैं किन्तु अभी भी इतनी व्यस्त दिनचर्या के बावजूद वे स्वयं सभी ध्यान के सत्रों में अवश्य आते हैं। कभी अति आवश्यक आश्रम कार्यों में व्यस्तता की दृष्टि से मध्याह्न 3.30 वाले ध्यान में वे नहीं भी आ पाते। चूँकि सन् 1995 में उन्हें रीढ़ की हड्डी के अन्तिम हिस्से में बहुत दर्द हो गया था, डॉक्टरों ने उन्हें एक ही मुद्रा में बीस मिनट से अधिक बैठने को मना किया है। तो भी वे ध्यान के सत्रों में अवश्य बैठते हैं और वह भी एक ही स्थिर आसन में। उनका असीम भगवद्भाव उनके रोम-रोम में व्याप्त है। भाई! वे तो उसी में उठते-बैठते, विहार करते हैं। वह अनवरत, अखण्ड भगवद्भाव अब किसी नियम व अनुशासन पर आधारित नहीं है; वह तो उनके लिये श्वास-प्रश्वास की तरह सहज है। तो भी, प्रिय बन्धु, वे अन्य सभी कार्यों को छोड़कर, अपने शरीर की अस्वस्थता की ओर भी ध्यान न देकर, सामूहिक ध्यान में अवश्य पहुँचते हैं। किसलिये?— हम जैसे कच्चे साधकों की दृष्टि से! सर्वसाधारण को जीवन्त प्रेरणा देने के लिये!

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



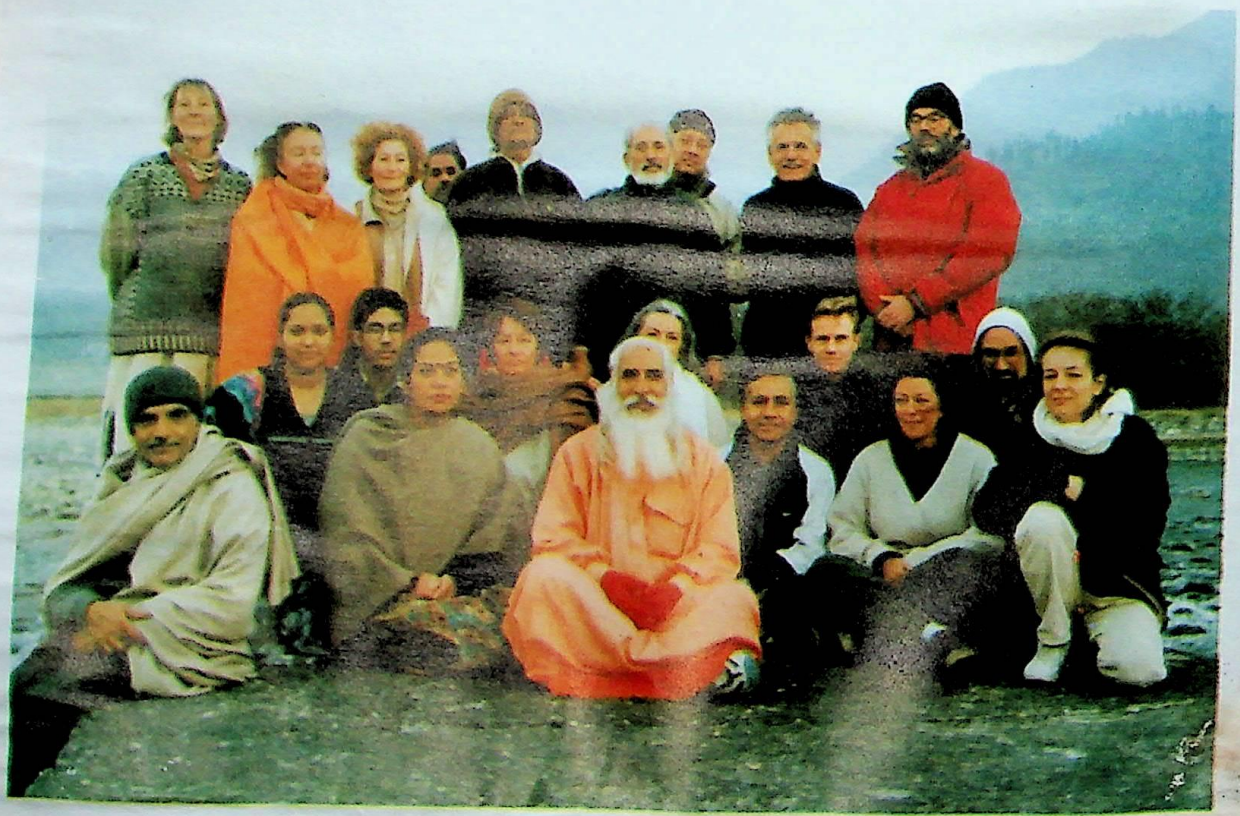


प्रातःकाल के ध्यान के बाद आश्रम के निकट यमुनाजी के किनारे तेज सैर।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

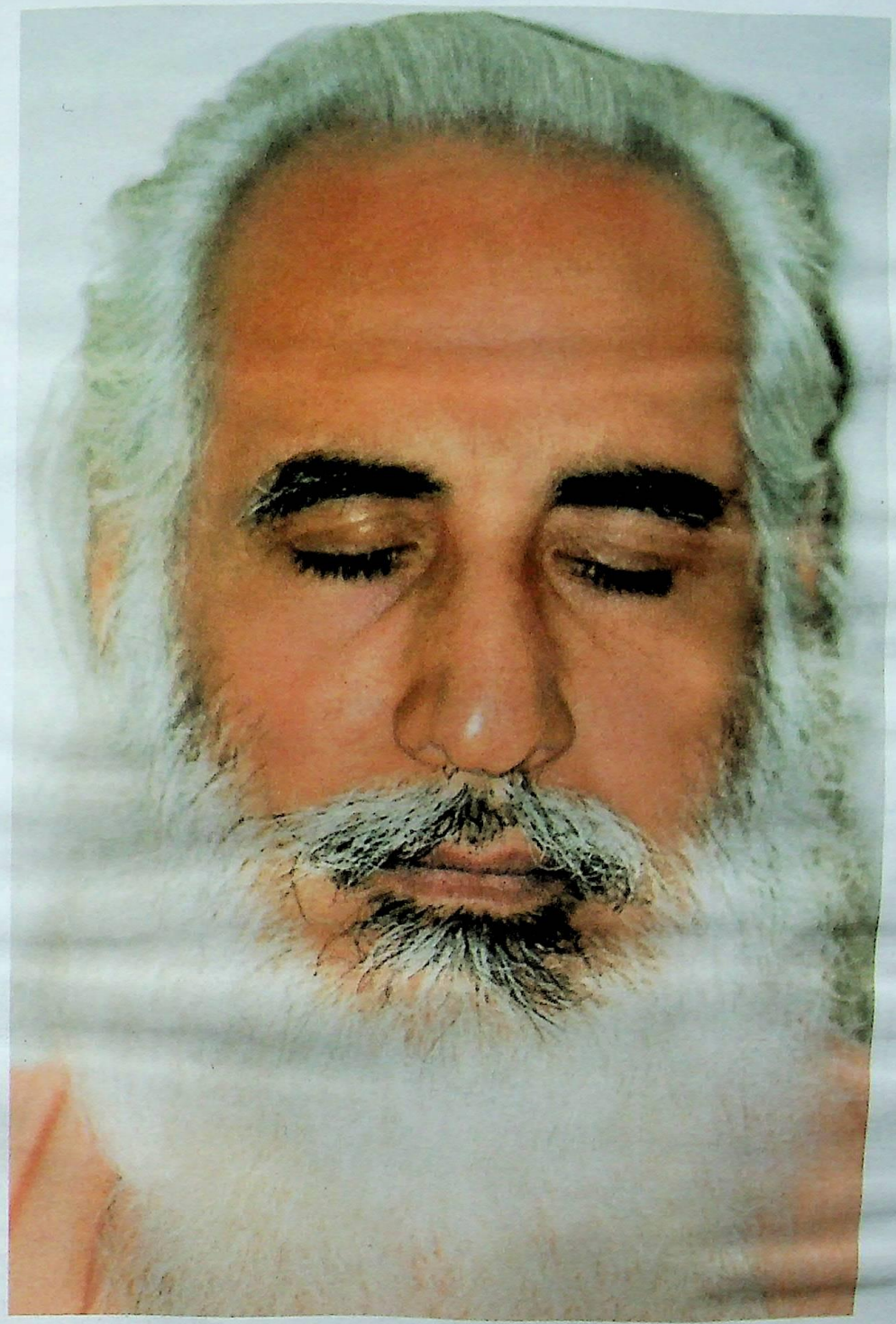


प्रातःकाल के भ्रमण के बीच सूक्ष्म यौगिक व्यायाम करते हुए।



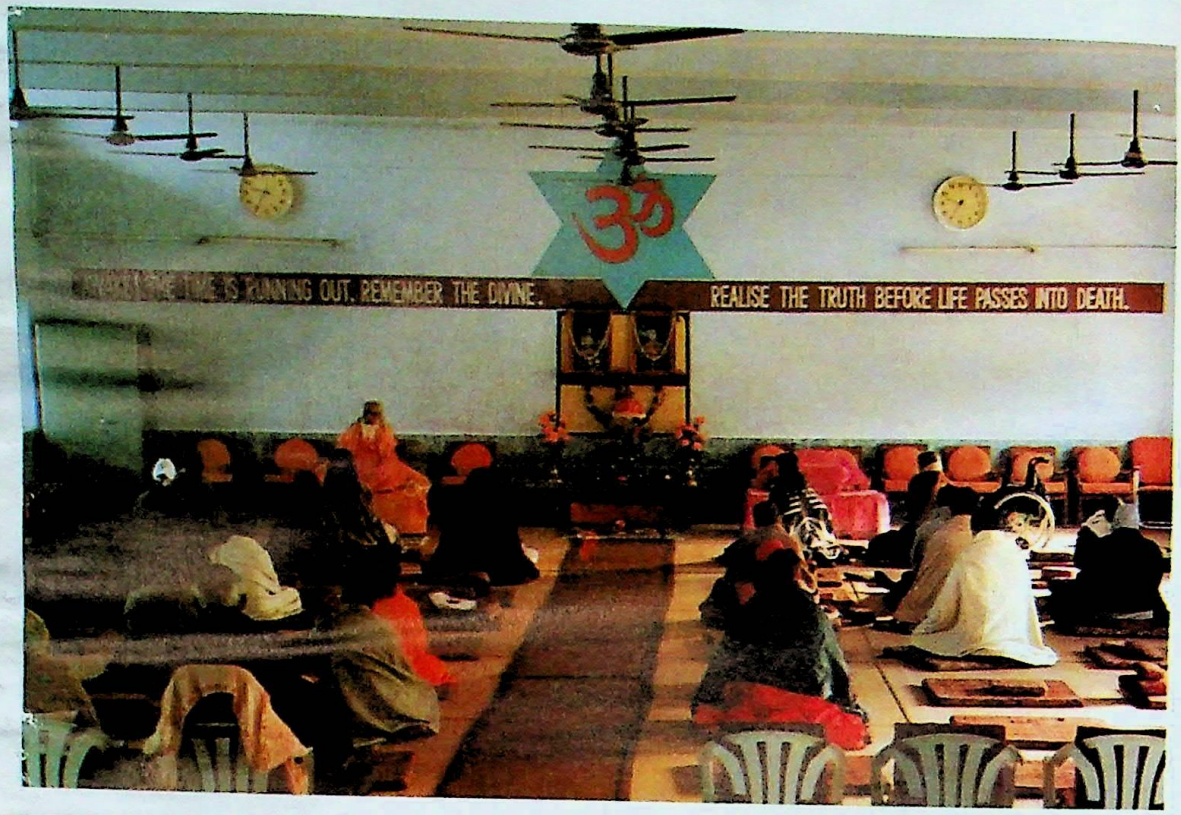
प्रातःकाल सैर के समय यमुनाजी के बन्ध पर लिया चित्र।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



आत्मानुभूति का द्वार विचार नहीं वरन् समाधि चेतना है। चित्त जब राग-द्वेष से पूरी तरह मुक्त, प्रतिक्रिया शून्य तथा शान्त होता है तो समाधि-चेतना का आविर्भाव होता है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri





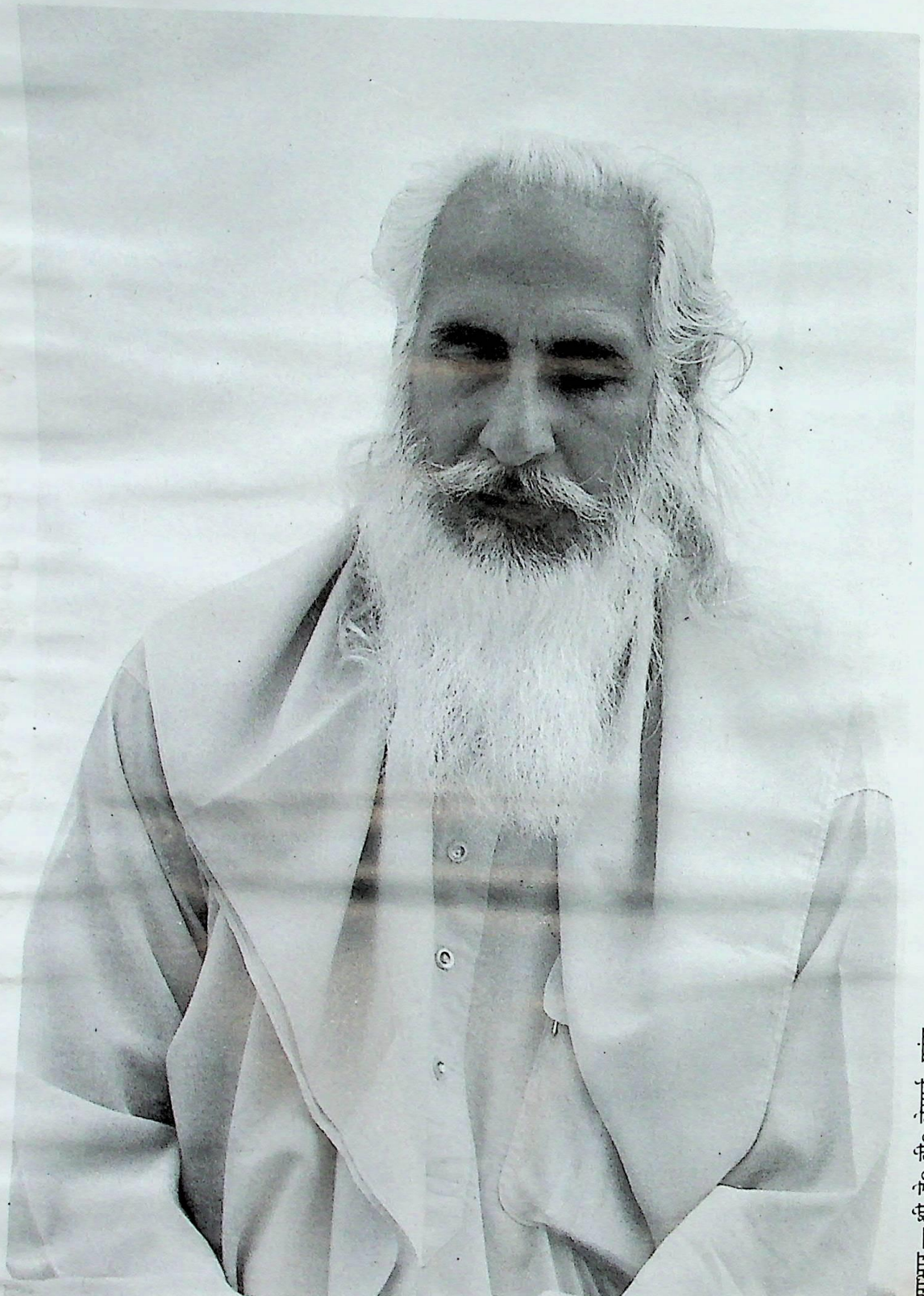
साधना केन्द्र आश्रम के विशाल 'भगवान श्रीचन्द्र कक्ष' में नित्यप्रति दिनभर में चार सामूहिक ध्यान-स्मरण के सत्र होते हैं। महाराजजी स्वयं भी इन सत्रों में सबके साथ ध्यान में बैठते हैं। ध्यान के ये सत्र आश्रम की दिनचर्या की आत्मा हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



यदि आपको आध्यात्मिक एकाग्रता को प्राप्त करना है तो अपनी प्राप्त परिस्थिति में अपने आपको ठीक तरह व्यवस्थित करिये, अपनी इच्छाओं को कम कीजिये तथा नियमपूर्वक प्रतिदिन ध्यान-अभ्यास में अवश्य बैठिये।
आश्रम के ध्यान- सत्र में अपने आसन पर काष्ठवत् विराजमान गुरुदेव।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



सौजन्य — श्री जे० पी० लेसाई, फ्रांस

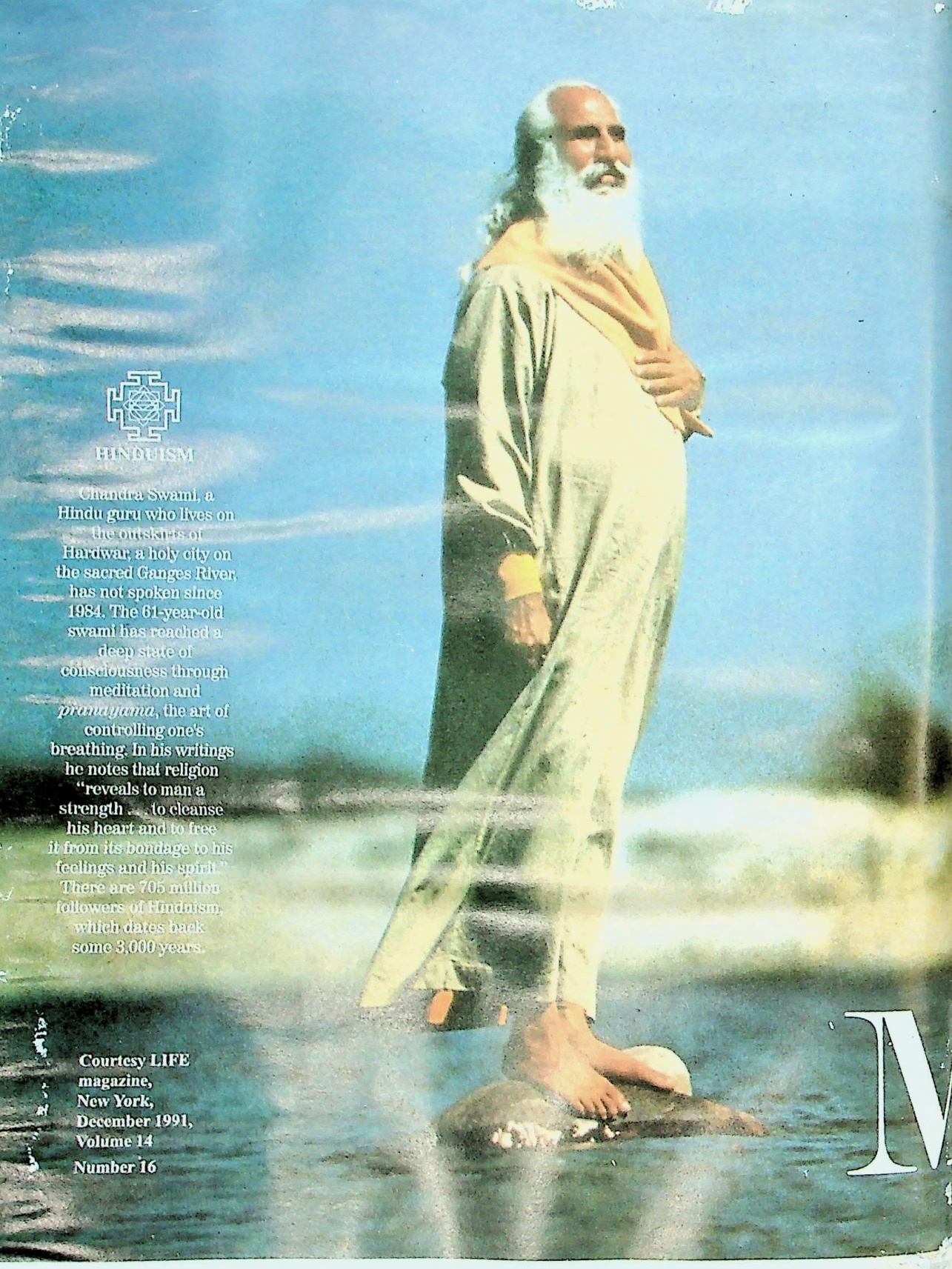
जब मन और प्राण चुप होते हैं तब आत्मा बोलती है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



ज्ञान से गम्भीरता आती है और प्रेम से मधुरता; परन्तु पुरुषोत्तम चेतना का संस्पर्श प्राप्त होने पर जीवन, मधुरता और गम्भीरता दोनों से छका रहता है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



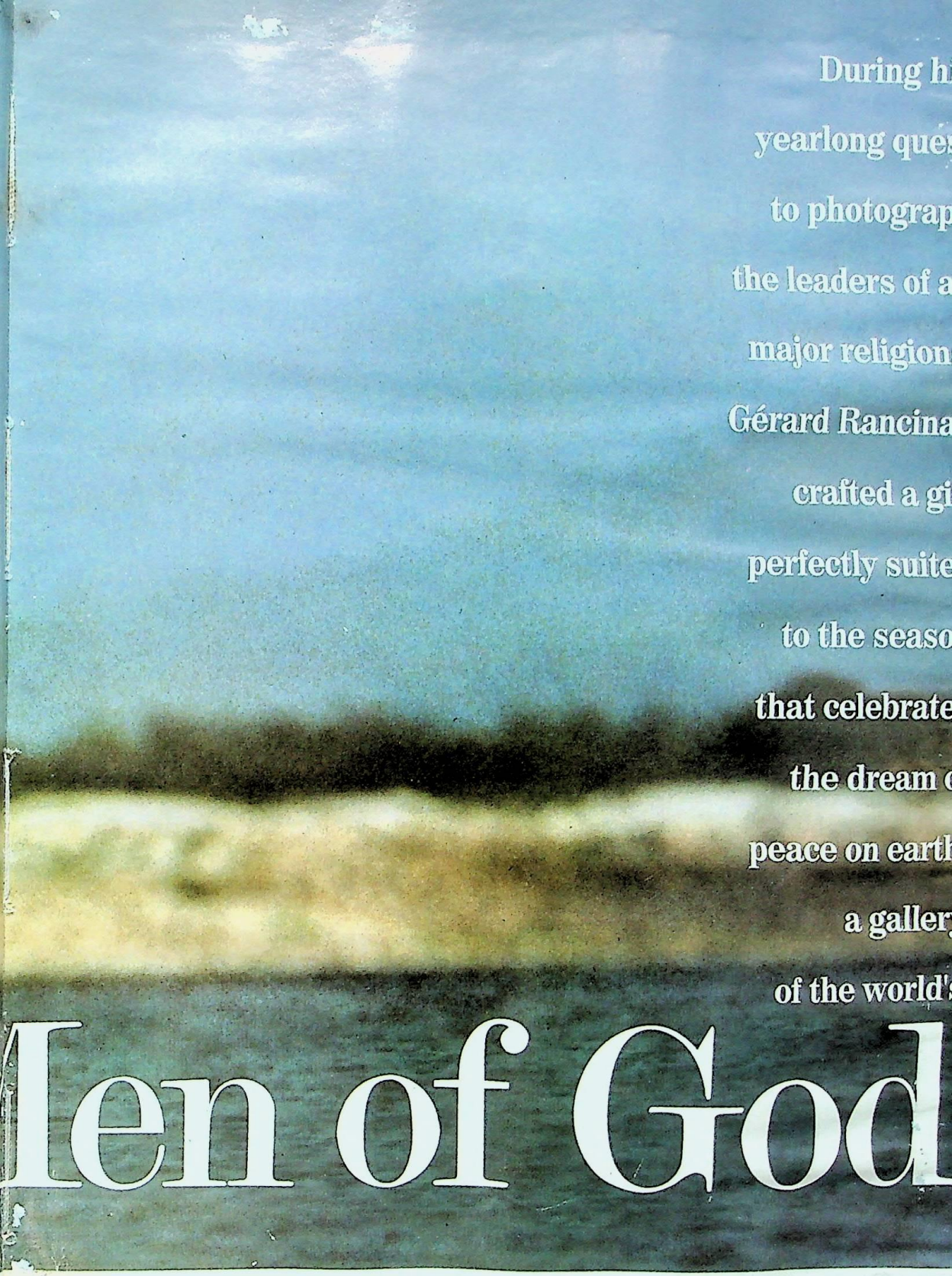
HINDUISM

Chandra Swami, a Hindu guru who lives on the outskirts of Hardwar, a holy city on the sacred Ganges River, has not spoken since 1984. The 61-year-old swami has reached a deep state of consciousness through meditation and *pranayama*, the art of controlling one's breathing. In his writings he notes that religion "reveals to man a strength ... to cleanse his heart and to free it from its bondage to his feelings and his spirit." There are 705 million followers of Hinduism, which dates back some 3,000 years.

Courtesy LIFE magazine, New York, December 1991, Volume 14 Number 16

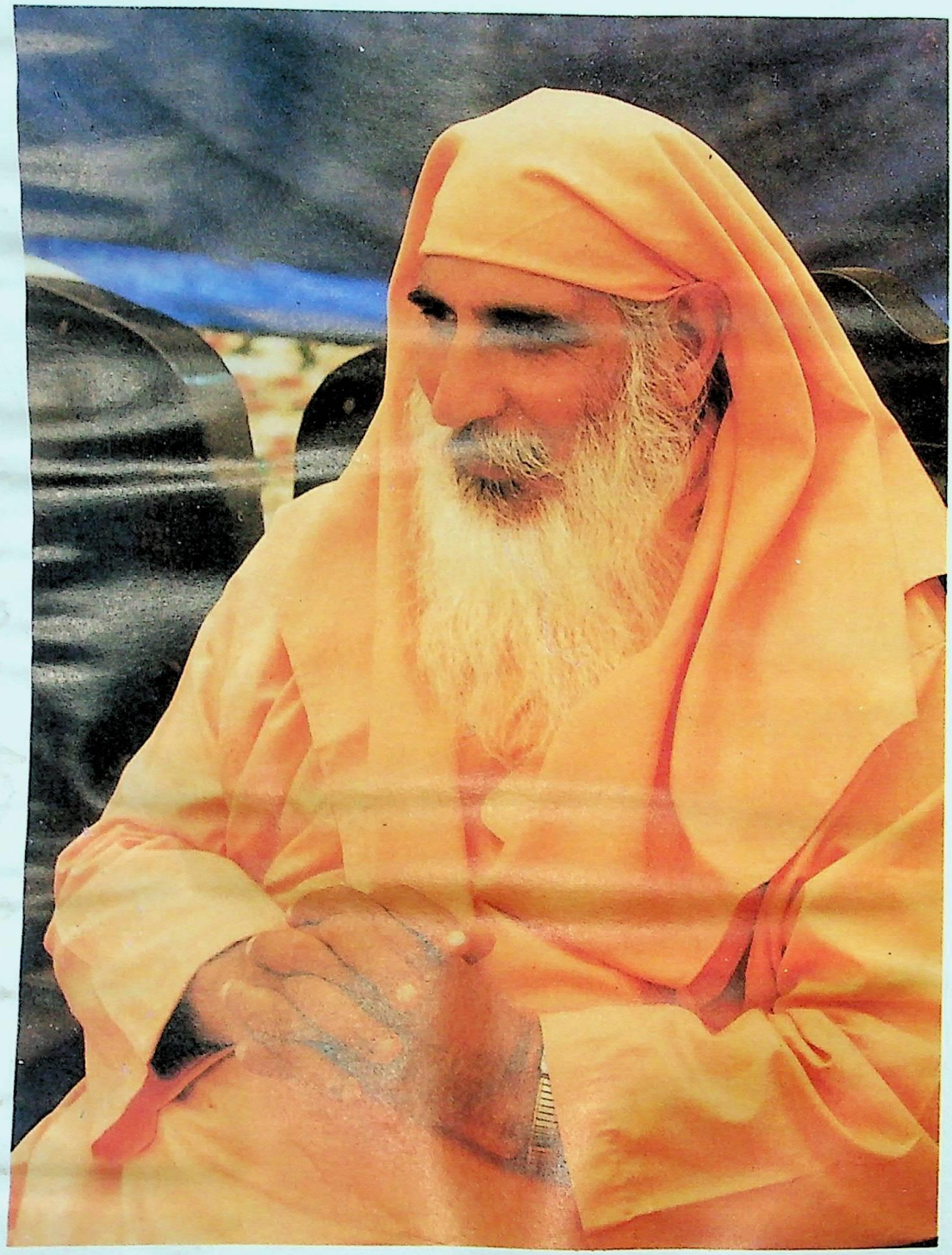
संसार में न कोई तुम्हारा है और न ही तुम किसी के हो। परन्तु भगवान के साथ तुम्हारा नित्य सम्बन्ध
जब तुम अपने इस सच्चे सम्बन्ध को सचमुच पहचान लोगे तो तुम्हारी जन्म-जन्म की 'बिगड़ी' बन जा

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



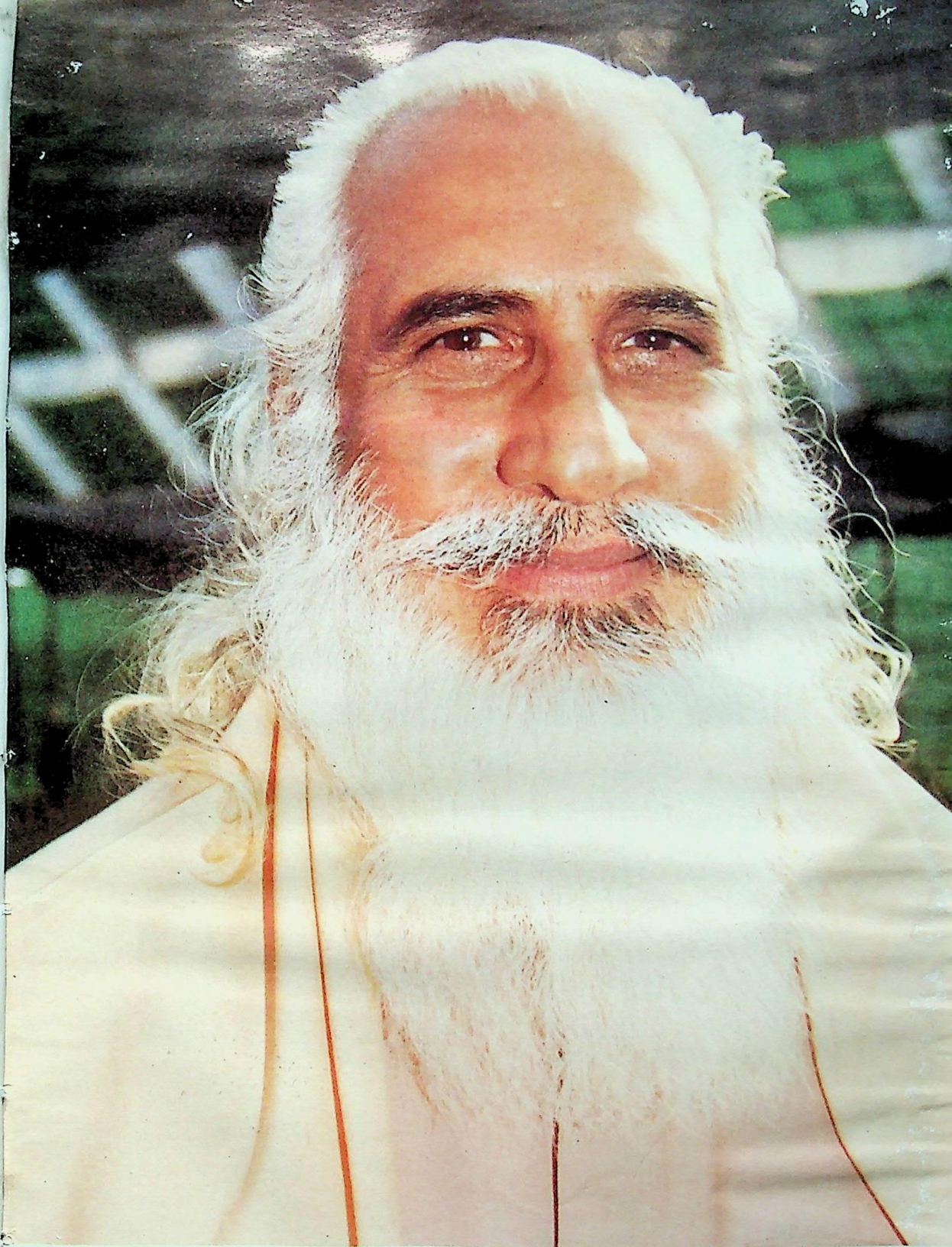
र्क, अमरीका से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'लाइफ' के दिसम्बर, 1991 अंक में छपा महाराजजी का नव्य चि

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



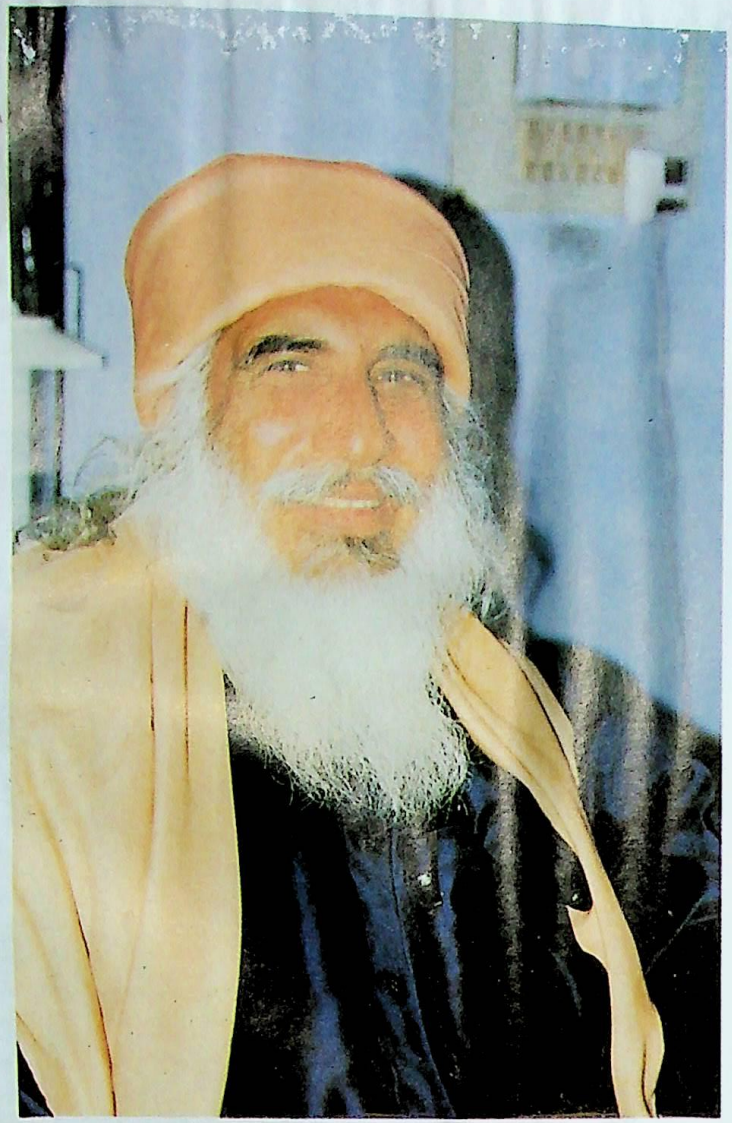
प्रफुल्लता आत्मा का संगीत है— महर्षि अरविन्द।

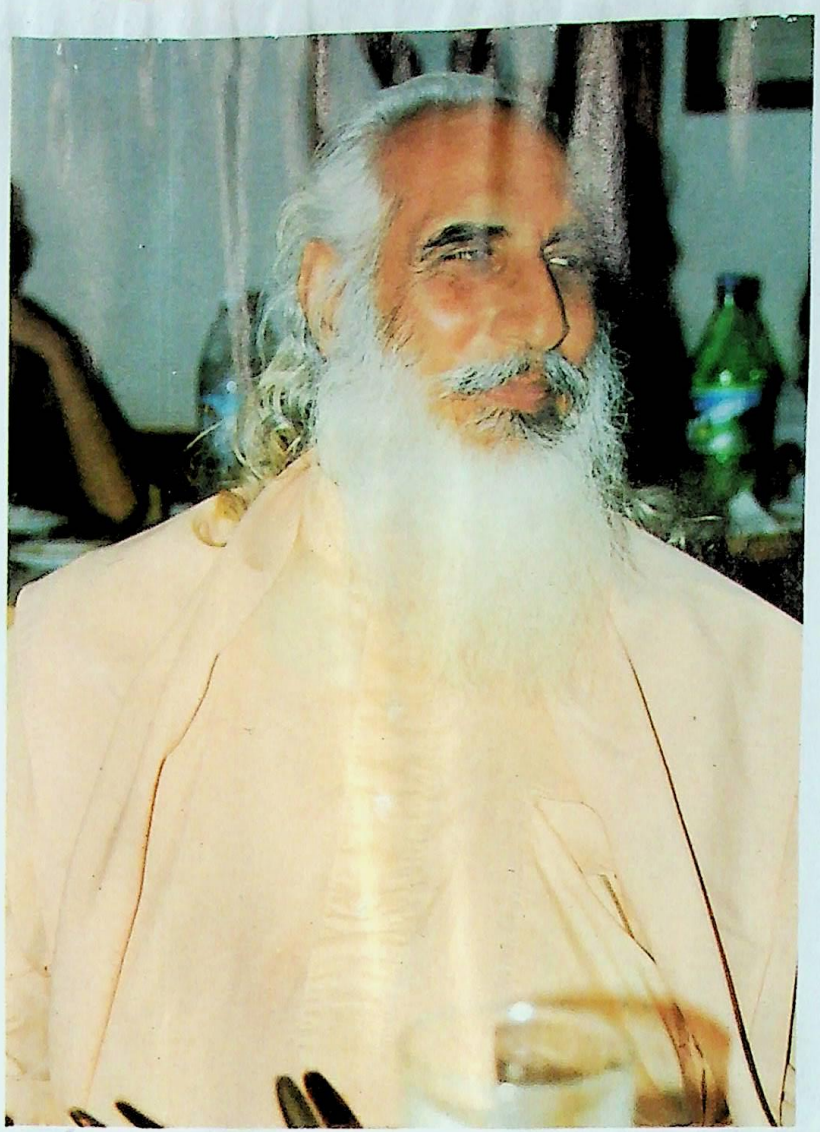
CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



हे प्रभो ! आप प्रियतम की वात्सल्य भरी भुजाओं में और आपकी सुखद कोमल गोदी में अपने आपको प्रतीत करना कितना मधुर है !

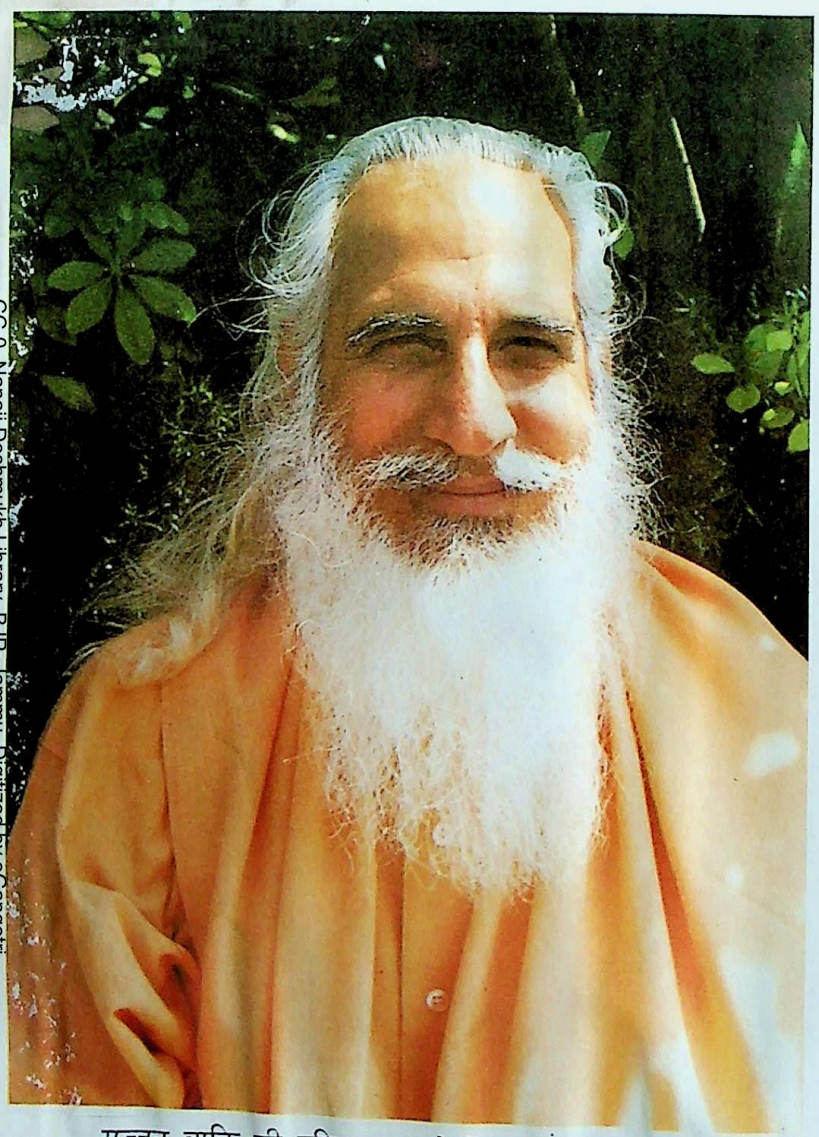
CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

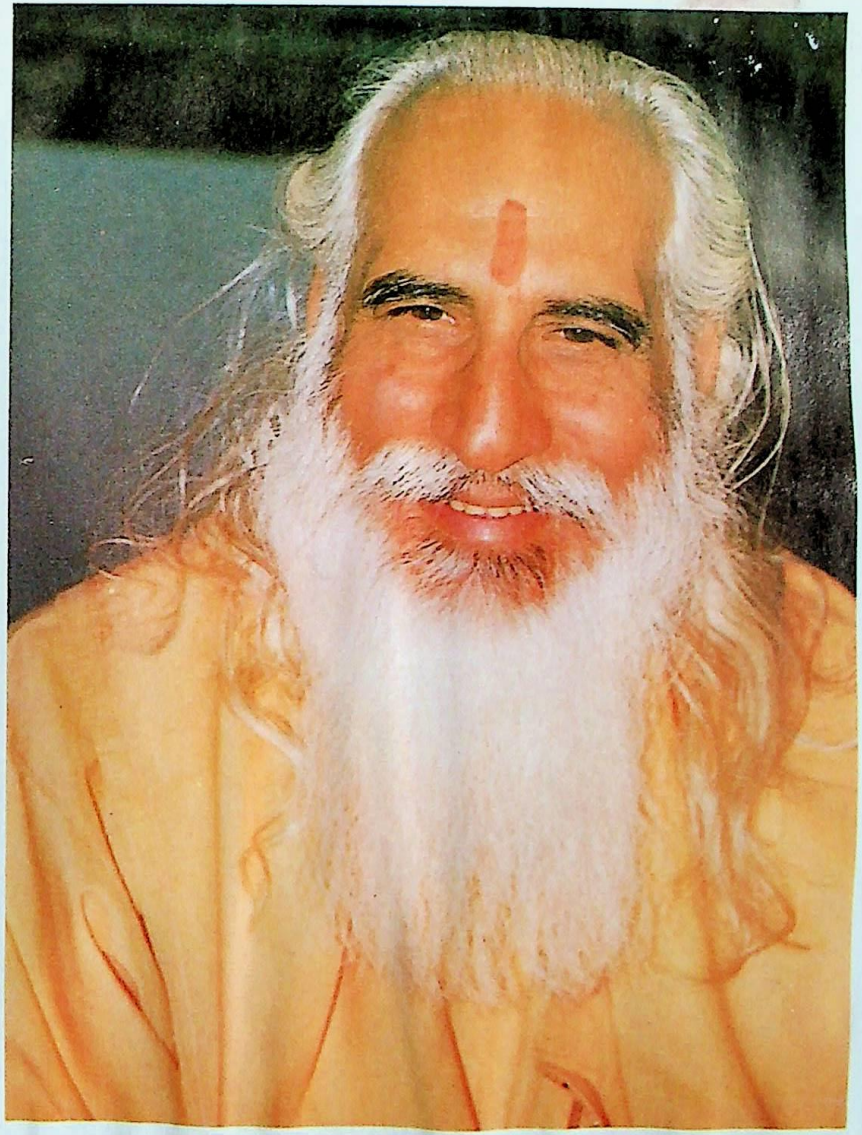




सच मानिये, परमात्मा अवश्यमेव हैं और वे अत्यन्त सुन्दर, अत्यन्त मधुर तथा अत्यन्त कृपालु हैं। यदि आपके पास भाव भरा जीवंत हृदय होता तो आप परमात्मा को रजकण तक के अन्दर भी अनुभव करके कृतकृत्य हो जाते और आनन्द विभोर होकर कह उठते 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'।

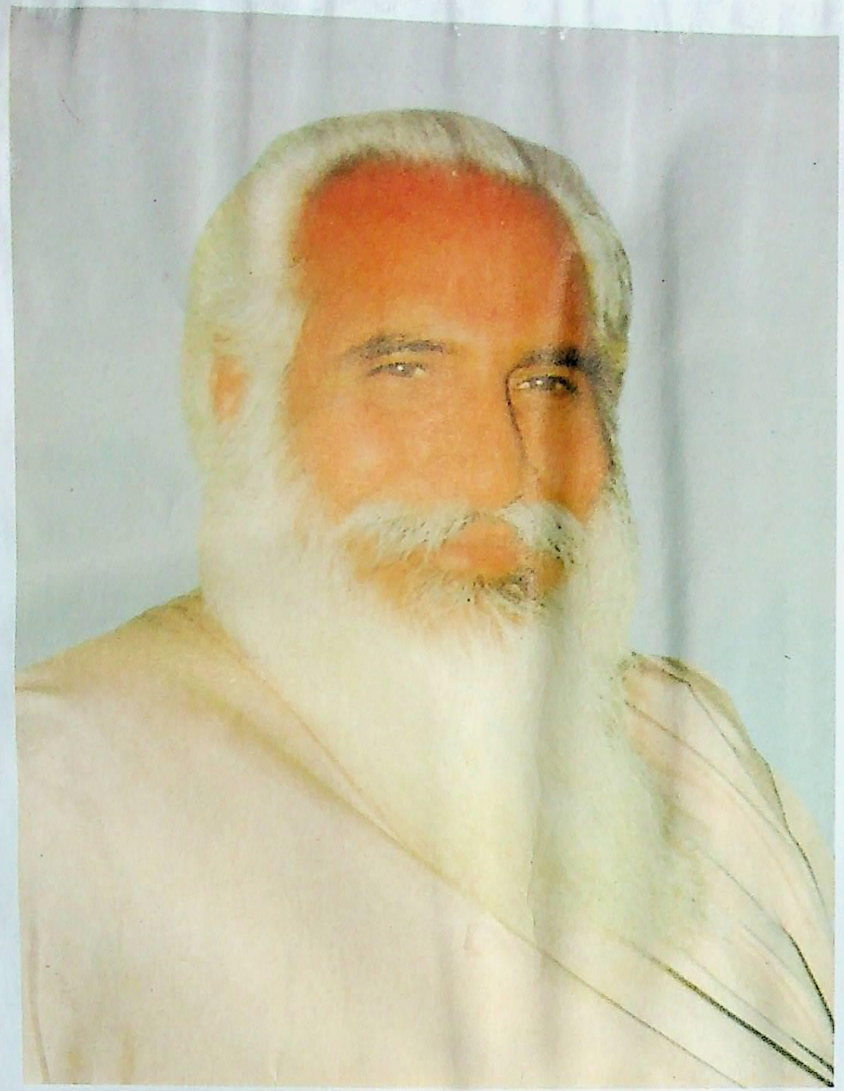
CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

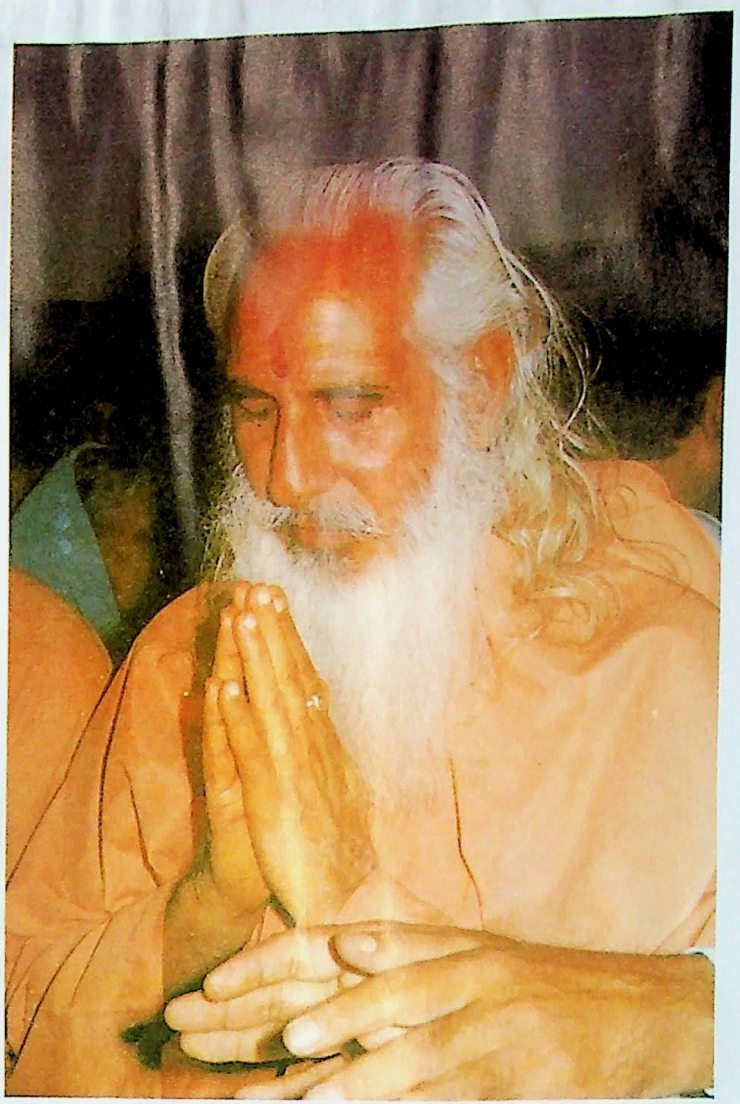




सज्जन व्यक्ति की परिभाषा पूछते हैं ? सज्जन वह है जिसकी आवश्यकता समाज को महसूस होती है। हर एक को उसकी सहानुभूति और शुभकामना सहजरूप से प्राप्त होती रहती है तथा सभी उससे स्नेह रखते हैं। ऐसी ही सज्जनता परमात्मा को आपसे अपेक्षित है।

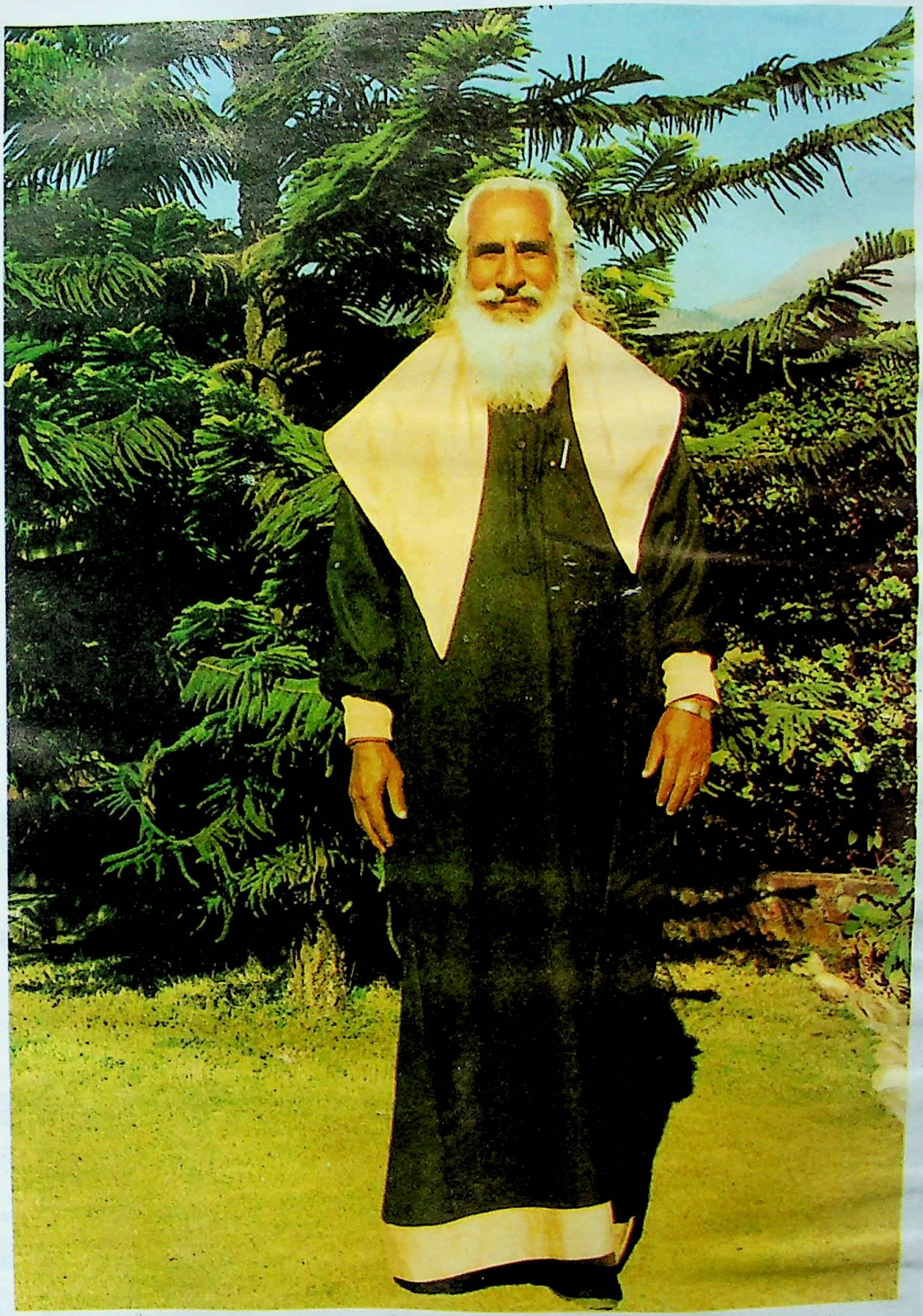
CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri





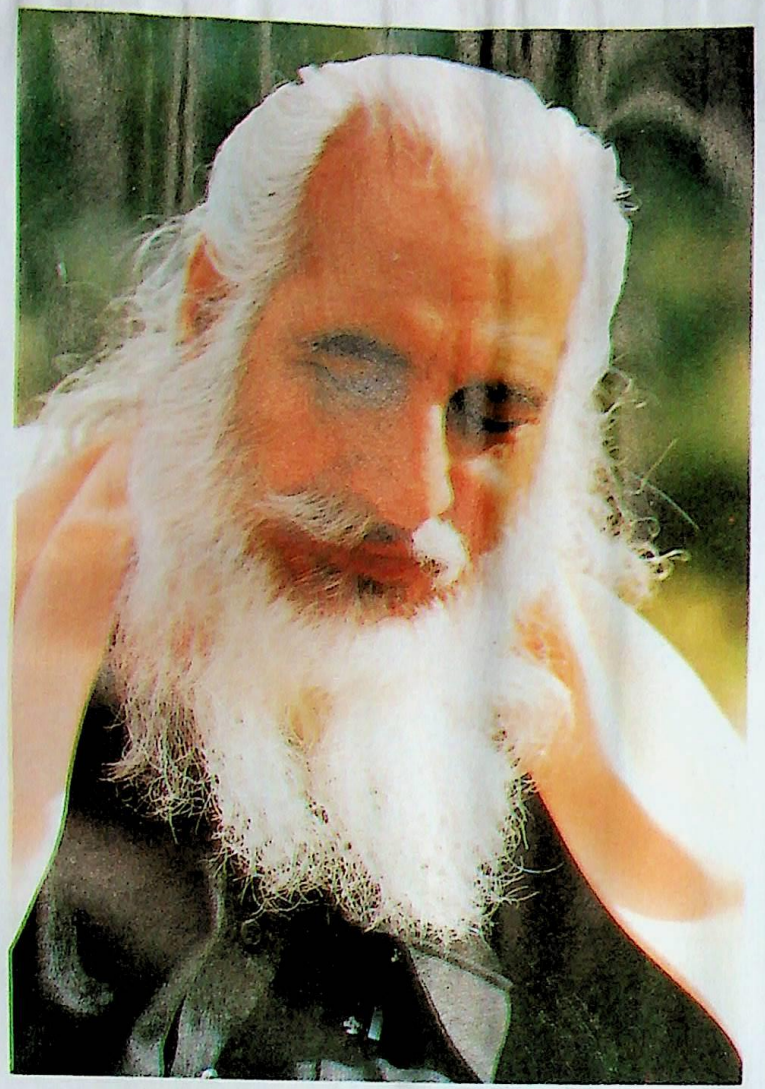
अहंकार न तपस्या से जाता है और न ही त्याग से। अन्तर्मुखी एकाग्रता के द्वारा जब आप अपने समूचे व्यक्तित्व के पीछे उस गुप्त रूप से कार्य करती हुई परात्पर महाशक्ति को, सारा विश्व जिसका एक सहज कर्म है, देख लेते हैं, तो आपका अहंकार लज्जित होकर अपने आप पीछे हट जाता है।

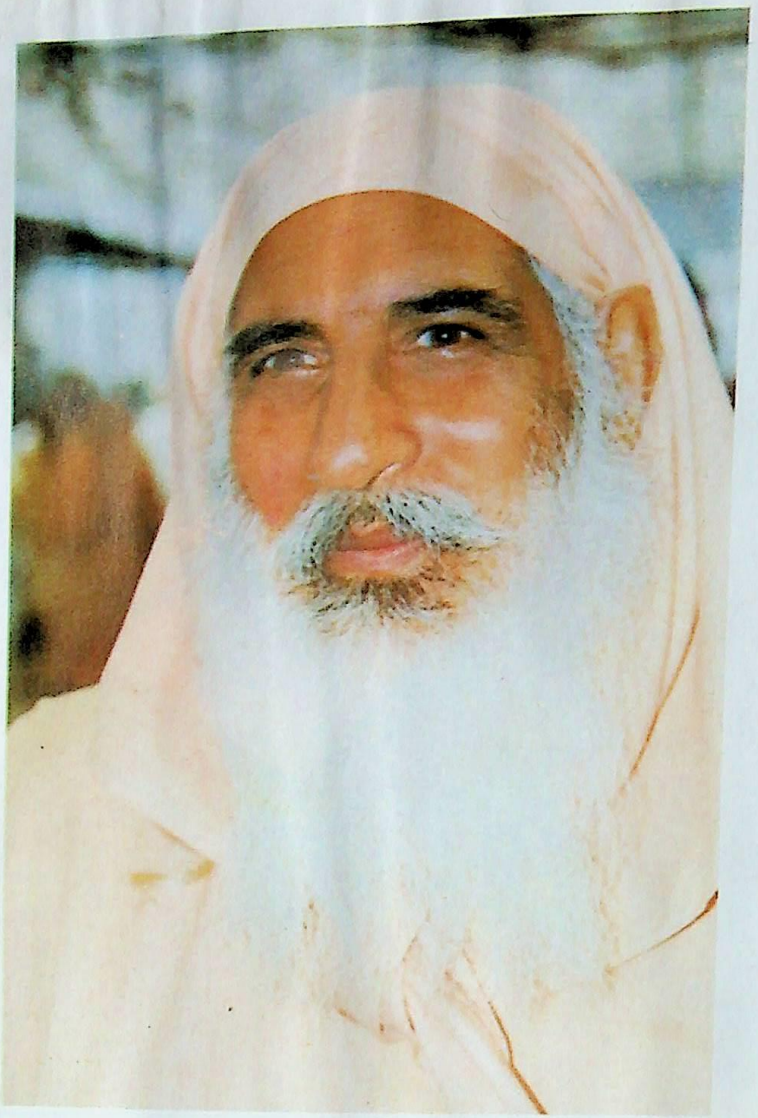
CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



दुःख में जीते हैं वे जो निराशा में जीते हैं; पर जो आशा में जीते हैं वे और भी बड़े दुःख और बन्धन का स्वयं आवाह्न करते हैं। धन्य तो वे हैं जिन्होंने आशा और निराशा के मध्य के बिन्दु को पा लिया है, क्योंकि शान्ति का साम्राज्य उन्हीं का है।

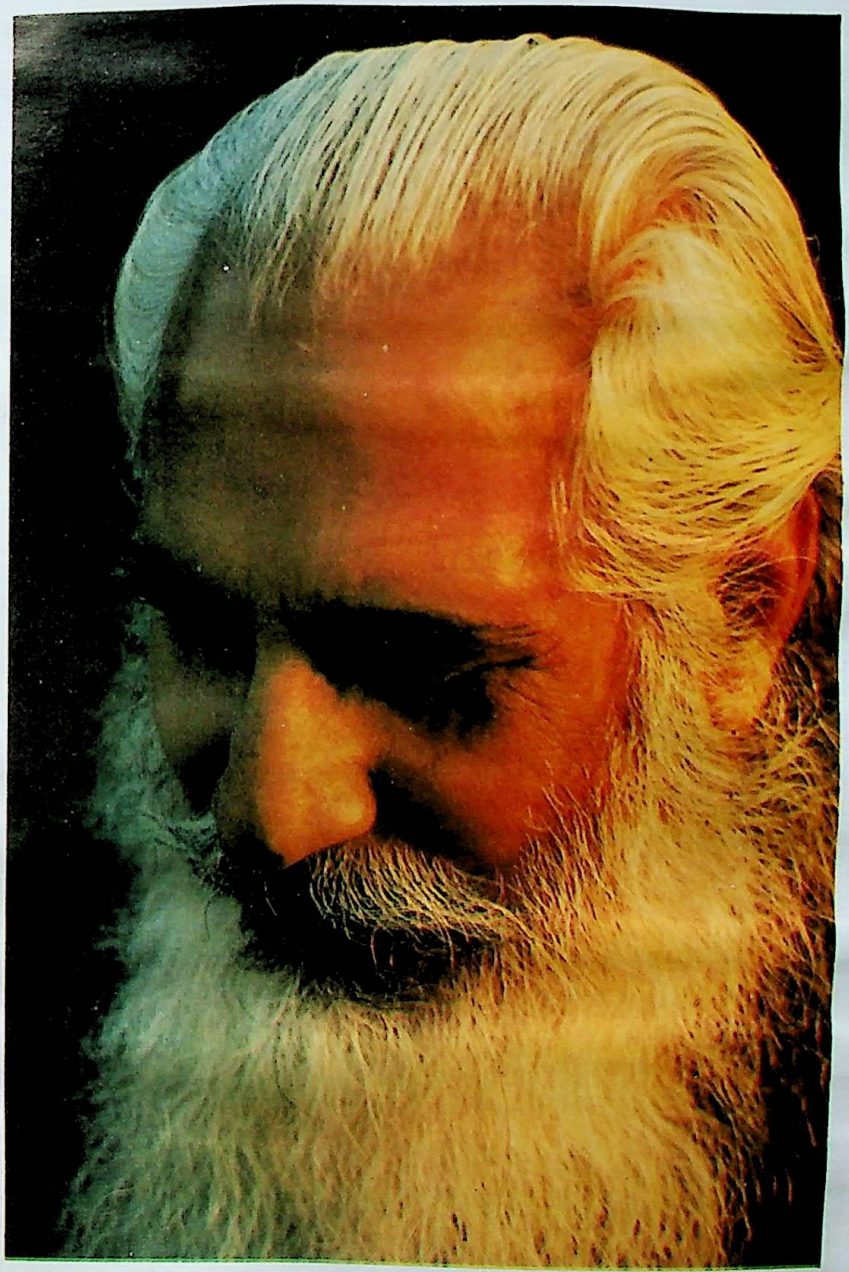
CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri





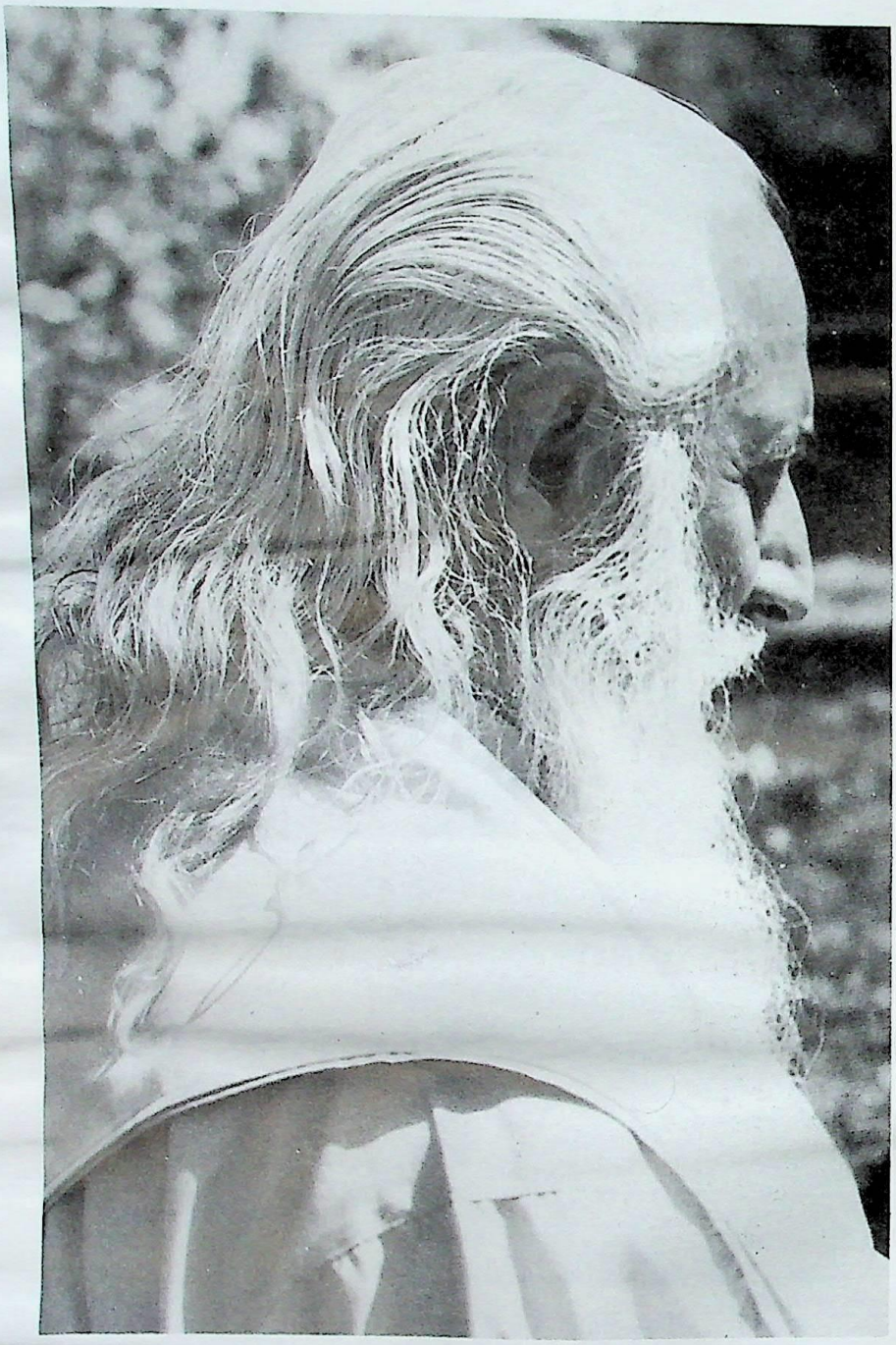
सब कुछ लुट जाने के बाद यदि नींद टूटी तो क्या लाभ ! भोगों से अथवा बुढ़ापे से शरीर जर्जरीभूत हो जाने पर यदि संसार की निःस्सारता का ज्ञान हुआ अथवा भगवान को प्राप्त करने का शौक लगा तो क्या फायदा !

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



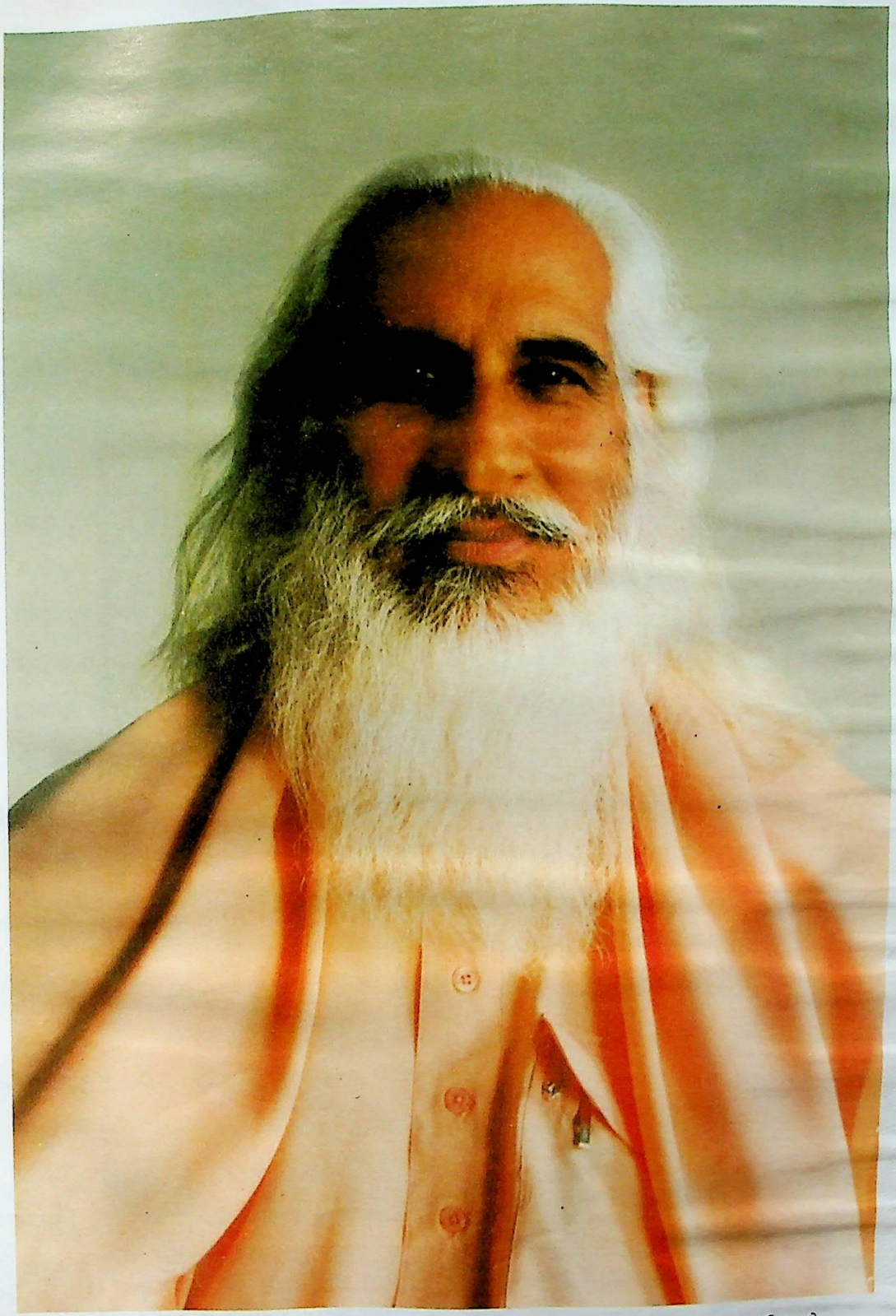
देखना, कहीं भोगी मनुष्य की बाह्य हंसी को देखकर किसी भ्रम में मत पड़ियेगा— वह हंसी तो उसकी अपनी आन्तरिक अशान्ति को छुपाने का एक उपाय मात्र है। हां, उस ज्ञानवान की, जो अपना काम पूरा करके आत्मिक आनन्द की मस्ती में मस्त है, मन्द-मन्द मुस्कान को अवश्य देखिये तथा विचार करिये।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



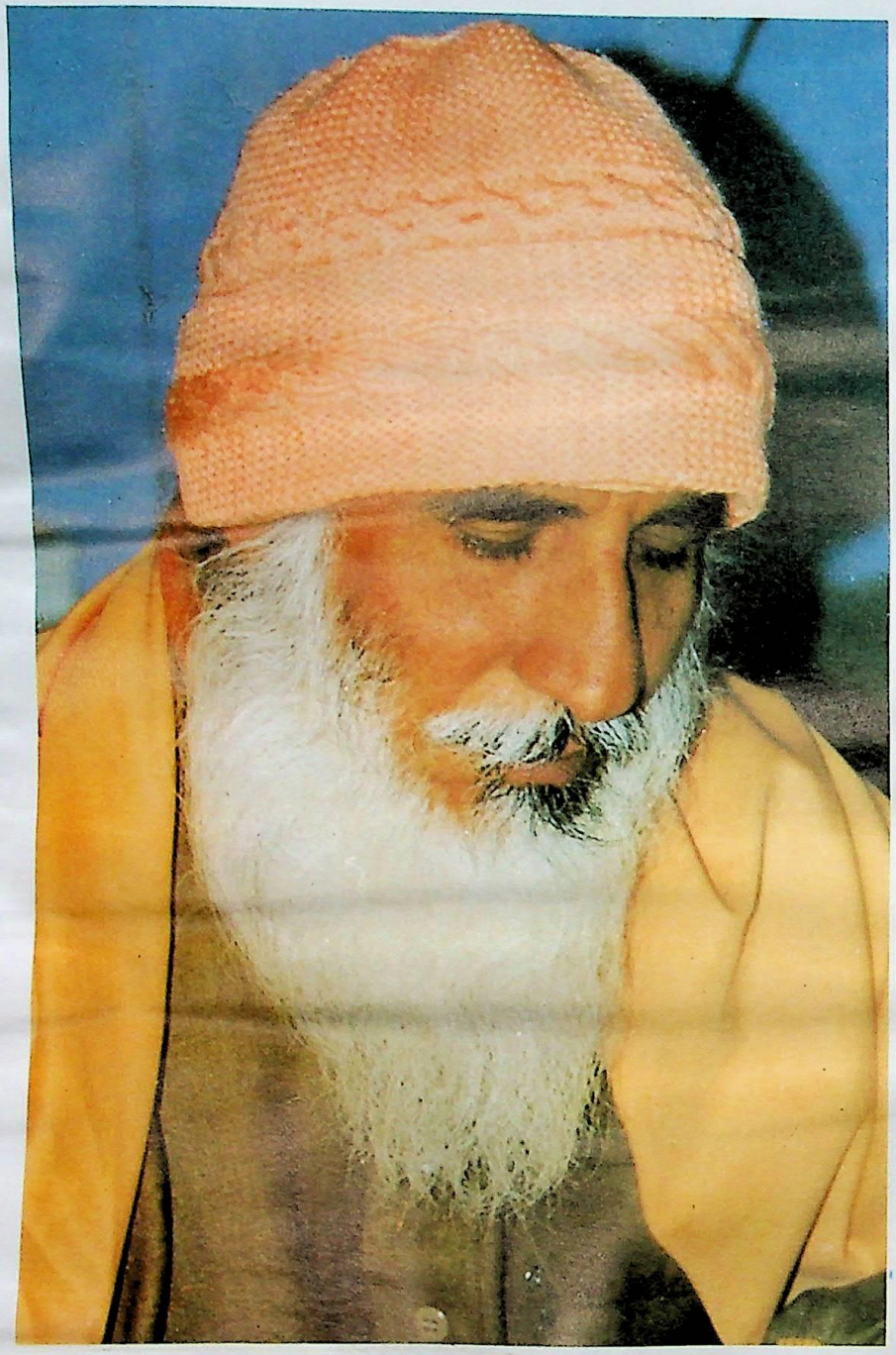
एक संकल्प के अस्त होने के बाद और दूसरे संकल्प के उदय होने से पूर्व बीच में एक निर्विकल्पता का 'क्षण' आता है। यदि आप किसी अभ्यास के द्वारा इस क्षण को पकड़ सकते तो आपको तत्काल आत्मसाक्षात्कार हो जाता।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



काल की विडम्बना से छुटकारा पाने के लिये समस्त प्रकृति उग्ररूप से प्रयत्नशील है; और क्या आप सोये ही रहेंगे ? जागिये और परमात्मा को समस्त विश्व में और अपनी अन्तरात्मा में उपलब्ध करने के लिये उत्तरोत्तर बढ़ते चलिये और रुकिये मत जब तक कि परमार्थ परमात्मा की प्राप्ति न हो जावे !

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



कर्म-अभिमानी व्यक्तियों के लिये भगवान के दरबार में न्याय है और कर्म-अभिमान से रहित भक्तों के लिये उस (परमात्मा) की विशुद्ध एवं अपार कृपा।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

ध्यान-सत्र

जैसा कि आश्रम की नियमावली में आपने पढ़ा कि प्रातः 4.30 बजे से लेकर सायंकाल 6.00 तक आश्रम में चार बार एक-एक घण्टे के सामूहिक ध्यान-साधना के सत्र होते हैं। इनमें पूज्य गुरुदेव भी पधारते हैं। बल्कि वे तो आत्मा ही हैं उन सत्रों की ! वहाँ ध्यान करना — मानो परमात्मा के साथ बैठकर परमात्मा का ध्यान करना ! ध्यान के सत्रों में सभी से ठीक समय पर आने की अपेक्षा की जाती है। वहां का वातावरण बड़ा शुद्ध और दिव्य होता है। 100'x37' माप के विशाल साधना कक्ष में अनेक साधक एक साथ बैठ सकते हैं। पालथी मारकर बैठने वाले साधकों के लिये फर्श पर नीचे दो इन्च मोटे कुशन के आसन बने हुए हैं। जो साधक पालथी मारकर न बैठ सकें वे हाल में रखी कुर्सियों पर बैठ सकते हैं। ध्यान कक्ष में संतों के बैठने के लिये अलग से कुर्सियां भी रखी हुई हैं। ध्यान से पहले मन को भावपूर्ण, शान्त तथा भजन के अनुकूल बनाने के लिये हिन्दी तथा अंग्रेजी में पाँच-पाँच मिनट की एक प्रार्थना पढ़ी जाती है। सायंकालीन ध्यान से पहले पन्द्रह-बीस मिनट नाम-संकीर्तन भी होता है। उसके बाद सब साधक मौन होकर अपने-अपने अभ्यास में संलग्न हो जाते हैं। भक्त मण्डली की ओर मुख किये गुरुदेव एक लकड़ी के तख्त पर सुखासन में विराजमान होते हैं — निःस्पन्द, अपनी आत्मा के महारस में पूरे डूबे हुए। उनकी वह ध्यान की अवस्था कैसी है भला ? बिल्कुल सहज अवस्था है — पूर्ण विश्राम, शान्ति और आनन्द में डूबी हुई। आप ध्यानस्थ उनकी छवि को जरा निहारें तो, आपको भी इन सबकी सुवास आ जायेगी। ध्यान कक्ष में बैठे सभी साधक महाराजजी की सशक्त उपस्थिति को स्पष्ट अनुभव करते हैं। एक घण्टे के बाद ध्यान की समाप्ति पर जब वे भगवद्भाव में चूर, धीरे-धीरे अपने नेत्र खोलते हैं तो प्रतीत होता है कहीं बहुत ऊपर से नीचे उतर रहे हैं। अति दुर्लभ, दिव्य व प्रशान्त क्षण होते हैं वे। अब बताएं, भला इससे बढ़कर प्रसाद क्या होगा ? इससे अधिक जीवन्त प्रेरणा क्या हो सकेगी ? नियमित ध्यान-अभ्यास पर जोर देने से तथा रोज स्वयं भी सबके साथ ध्यान में बैठने से सभी साधकों का उत्साह भी बना रहता है तथा सभी नियमित रूप से सामूहिक ध्यान में बैठते हैं। इस नियम के कारण कम से कम नित्यप्रति चार घण्टे का भजन-स्मरण तो गुरुमहाराजजी साधकों से करवा ही लेते हैं। महाराजजी द्वारा

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

आश्रम में शुरु की गयी ध्यान की नियमित व्यवस्था से कितने ही साधकों का तो जीवन ही साधनामय बन गया है। नियमित साधना उनके जीवन का अभिन्न अंग बन गयी है। भगवद्स्मरण उनकी जीवन रागिनी का वादी स्वर बन गया है। नित्यप्रति चार बार भजन में बैठने के अभ्यास से अनेक साधक बड़ी आसानी से एक घण्टा एक ही आसन तथा सही मुद्रा में स्थिर होकर बैठ सकते हैं। नियमित भजन-अभ्यास से अनेक साधकों के जीवन में ऐसा दिव्य रूपान्तरण हुआ है जो हर किसी को स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

एक अन्य महत्वपूर्ण बात इन भजन-सत्रों की यह है कि मौन रहकर इनमें सभी साधक अपनी-अपनी मान्यताओं के अनुसार सत्य/परमात्मा का अनुसंधान व भजन-स्मरण कर सकते हैं। किसी पर कुछ थोपा नहीं जाता। सभी पद्धतियों का सम्मान किया जाता है बशर्ते कि वे दूसरे के ध्यान में विघ्न न पहुँचाती हों। इन सत्रों में किसी भी धर्म, सम्प्रदाय व जाति का साधक भाग ले सकता है। महाराजजी का प्रयास रहता है कि चाहे कुछ भी कार्य आन पड़े, पूरे सालभर नित्यप्रति ध्यान-स्मरण का यह कार्यक्रम आश्रम में अवश्य चलना चाहिये।

एक विनोद की बात भी है। योग शास्त्र के अनुसार ध्यान के समय निद्रा का आना, मन के विक्षेप से भी बड़ा विघ्न है अतः कई बार साधकों को ध्यान के समय नींद का झोंका भी आ जाता है। कभी कोई बन्धु खर्राटे तक लेने लगते हैं। तब सौम्यमूर्ति गुरुदेव किसी को सीधा नहीं टोकते बल्कि विनोद करते हुए कभी-कभी ऐसा लिख देते हैं—"Snoring is a sign of good health but it should not be demonstrated during meditation. अर्थात् खर्राटे लेना अच्छे स्वास्थ्य की निशानी है किन्तु ध्यान के समय इसका प्रदर्शन नहीं करना चाहिये।"

दिनचर्या के अन्य अंग

उपरोक्त दिनचर्या से पाठक अनुमान लगा पायेंगे कि उनका दैनिक कार्यक्रम कितना व्यस्त रहता है और यह कि उनका व्यक्तिगत जीवन लगभग शून्य जैसा है। और फिर इतने व्यस्त कार्यक्रम के बीच भी वे प्रत्येक आश्रम निवासी तथा कर्मचारी की व्यक्तिगत आवश्यकताओं और कर्तव्यों आदि पर भी पूरी नजर रखे होते हैं। अपने आश्रम निरीक्षण के समय वे घूम-घूमकर सभी चीजें, जैसे बागवानी, आश्रम

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

मरम्मत, भोजनालय, स्वागत कक्ष, कार्यालय आदि पर पूरी नजर रखकर दिशा निर्देश देते रहते हैं। और यह भी महत्वपूर्ण है कि वे पूरे समय पूर्ण सहज, तनावमुक्त, प्रफुल्ल, सजग और गहरी विश्रान्ति की अवस्था में होते हैं। महाराजजी ने स्वयं लिखा है — "योगी जब आँखें बन्द करता है तो अपने अन्दर परमात्मा को देखता है। जब आँखें खोलता है तो बाहर साकार ब्रह्म को देखता है।" कभी-कभी ख्याल आता है कि अपने साधना काल में तो महाराजजी का जीवन पूर्णरुप से एकान्तिक था और अब उसके एकदम विपरीत, पूर्णरुप से सार्वजनिक हो गया है, मानो विरोधी भावों का वृत्त में पूर्ण समन्वय हो गया हो। हमें तो ऐसा प्रतीत होता है कि पूर्णरुप से एकान्तिक जीवन व्यतीत करने की अपेक्षा पूर्णरुप से सार्वजनिक जीवन व्यतीत करना, बिना अपनी सौम्यता तथा सहजता को खोये, हर समय, हर परिस्थिति में दूसरों की शर्तों पर उपलब्ध रहना, कहीं अधिक कठिन है।

सामान्यतया सभी को एकान्त अथवा स्वाभाविक जीवन की आवश्यकता होती है ताकि वे दूसरों के सामने अपने बनावटी व्यक्तित्व के तनाव से मुक्त हो सकें; निर्भार हो सकें; सहज हो सकें; अपने अवसादों, उत्तेजनाओं और क्षोभों का रेचन कर सकें। अगर वैसा न हो सके तो एक औसत व्यक्ति शायद विक्षिप्त हो जाये। इस जगत् का विशाल मनोरंजन तन्त्र व्यक्ति को मात्र स्वाभाविक जीवन देने का, उसे सहजता की प्रतीति प्रदान करने का प्रयास है — उसके भीतर खालीपन को विस्मृत करने का प्रयास है।

पर इधर आप श्रीचन्द्रस्वामीजी के जीवन पर नजर डालें जिन्होंने अपने जीवन के प्रायः पैंतीस वर्ष पूरे एकान्त में भी उसी सहजता से व्यतीत कर दिये जिस सहजता से आज वे पूर्णरुप से दूसरों को उपलब्ध हैं। ऐसा तो शायद उसी के लिये सम्भव है जो स्वयं शून्य हो — पहले एकान्त में भी और अब भीड़ में भी। सच भी है — जो शान्ति व्यवहार में छूट जाये वह शान्ति सच्ची नहीं।

हमें पता ही है कि महाराजजी तो सन् 1984 से ही पूर्ण मौन में हैं। अपने मौन में भी वे आश्रम की सारी व्यवस्था देखते हैं। उनके इस कार्य में अपने श्रद्धा-सुमन के रुप में उनकी आज्ञानुसार उनके अनेक अंतरंग भक्त प्रेमपूर्वक आश्रम की विभिन्न प्रकार से सेवा करते हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

महाराजजी की अनन्य भक्ता माता पुष्पाजी भूटानी हैं जो गाँधीधाम, गुजरात की रहने वाली हैं। आयु साठ वर्ष के लगभग होगी। सन् 1974 में पूज्य डॉ. कानूगाजी की प्रेरणा से वे महाराजजी के सम्पर्क में आयीं थीं। ये पहले कांदला ट्रस्ट पोर्ट पर नौकरी करती थीं लेकिन सेवा-स्मरण करने की दृष्टि से समय से पहले ही सेवानिवृत्ति ले ली। सेवानिवृत्ति के बाद सन् 1986 से ही सतत श्रीचरणों में वास कर रहीं हैं। आपने विवाह नहीं किया है। ये माता अपने कमजोर स्वास्थ्य तथा आयु की चिन्ता न करके रसोईघर में सुबह से रात तक रहकर पूरी भोजन व्यवस्था को संचालित करती हैं। भण्डारे के दिनों में देर रात तक भक्त आते रहते हैं सो रसोई में भक्तों को भोजन कराते-कराते ही उन्हें रात के ग्यारह-बारह बज जाते हैं। फिर जरा देर विश्राम करके प्रातः तीन बजे उठकर आरती के प्रसाद तथा भण्डारे की अन्य सामग्री को बनाने में लग जाती हैं। कितने भी भक्त आश्रम में आ जायें, किसी भी समय आ जायें, तुरन्त सभी को प्रेम और शान्ति से भोजन कराती हैं—अन्नपूर्णा माता हैं। ये भोजन भी बड़ा सात्विक, पौष्टिक और स्वादिष्ट बनाती हैं। कोई कहता है कि बड़ा अच्छा भोजन बना है तो तुरन्त कहती हैं कि महाराजजी की अमृतवर्षिणी दृष्टि जो भोजन पर नित्य पड़ती है इसलिये; वे नित्य भोग जो लगाते हैं, इसलिये। आप अनावश्यक चर्चा तथा व्यर्थ चेष्टाओं से सदा दूर रहती हैं तथा गुरुदेव की भी अनेक प्रकार से सेवा करती हैं। उनका महाराजजी के प्रति भक्ति भाव बहुत गहन है तो भी अपने संकोची व नम्र स्वभाव के कारण कई-कई दिन तक उनसे बात तक नहीं हो पाती। बस उनके दर्शन व सान्निध्य रस से ही अघाई रहती हैं। रसोई का कार्य कितना भी अधिक हो चारों समय भजन में भी वे अवश्य बैठती हैं।

आश्रम से अक्सर लम्बे समय के लिये अमृतसर से माता कमलेशजी, गाँधीधाम से माता रानीजी, सूरत से माता देवीजी तथा जम्मू की माता राजदुलारीजी भी लम्बे समय के लिये आकर रुकती हैं तथा रसोईघर में माता पुष्पा के साथ सेवा करती हैं। ये माताएं अन्य अनेक प्रकार से भी गुरुदेव व आश्रम की सेवा करती हैं। इनके अतिरिक्त जो भी माताएं-बहनें आश्रम में आती हैं। वे सब भक्ति-भाव से रसोई में सेवा किया करती हैं।

श्रीविनोदजी गुरुमहाराजजी के अनन्य परम प्रेमी भक्त हैं तथा आश्रम के मैनेजर भी हैं। आपकी आयु पैंसठ वर्ष है तो भी आश्रम की सारी व्यवस्था, बही-

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

खाते, बाजार से खरीदारी आदि सब काम बड़ी योग्यता और परिश्रम से देखते हैं। दिन-रात गुरुदेव, आश्रम तथा आश्रमवासियों की सेवा और अपनी साधना में लीन रहते हैं। गुरु आज्ञाकारिता की तो जैसे वे प्रतिमूर्ति हैं। गुरुदेव इनके साथ भक्त मण्डली में बहुत विनोद किया करते हैं तथा इनकी आपस में मधुर तथा विनोदपूर्ण हंसी-मजाक से पूरी भक्त मण्डली हंसते-हंसते दोहरी हो जाती है। निद्रा और आलस्य पर तो जैसे इन्होंने विजय प्राप्त कर ली है। हर समय गुरु आज्ञा के लिये तत्पर रहते हैं। आप भी गाँधीधाम, गुजरात से हैं। आप पहले रेलवे में स्टेशन मास्टर थे। किन्तु वैराग्य के कारण समय से पहले ही नौकरी छोड़कर केवल साधुसंग व भजन-स्मरण ही करने लगे। आपने भी विवाह नहीं किया। आपने बचपन से ही बहुत साधुसंग किया है तथा अनेक महान् संतों की सेवा की है। आप वेदान्त के प्रेमी हैं तथा जीवनभर बहुत भजन-अभ्यास भी किया है। अभी भी खूब भजनानन्दी हैं। हालांकि आपने केरल में कैनानोर स्थित आनन्द आश्रम वाले विख्यात सन्त स्वामी रामदासजी से दीक्षा ले रखी है तो भी गुरुदेव के साथ आपका बहुत घनिष्ठ और मधुर सम्बन्ध हैं। गुरुदेव के साथ अनेक बार देश-विदेश की यात्राओं पर भी गये हैं।

आश्रम के अन्य निवासी श्रीकरणपुर, जिला श्रीगंगानगर, राजस्थान के श्रीचन्द्रभानजी काम्बोज हैं जो 22-23 वर्ष की अल्पायु में ही अपनी स्नातक की पढ़ाई समाप्त करके सन् 1990 में गुरुदेव के प्रति आत्मदान कर साधना केन्द्र आश्रम में आ गये थे। प्रेम से इन्हें सब भगतजी कहते हैं। ये बहुत त्यागी और विरक्त प्रकृति के हैं। इनका गुरुदेव के प्रति बहुत प्रेम और सेवाभाव है। अनेक प्रकार से ये गुरुदेव की नित्य सेवा करते हैं — उनकी चरण सेवा, उनका कमरा तथा अन्य वस्तुओं को संभालना आदि-आदि। इसके अतिरिक्त ये दिनभर आश्रम की किसी न किसी सेवा में लगे रहते हैं। इन्हें बाग़वानी, गौशाला तथा निर्माण कार्यों की अच्छी जानकारी है। इनमें भी प्रमाद बिल्कुल नहीं है तथा कठोर परिश्रम करना इन्हें पसन्द है। सेवा के साथ-साथ ये यथा सम्भव भजन-स्मरण और स्वाध्याय भी करते हैं। चूँकि ये श्रीकरणपुर, राजस्थान से हैं जहाँ लोगों की बाबा भूमनशाहजी तथा गुरुदेव में बहुत श्रद्धा है, इन्हें बाबाजी तथा गुरुदेव की श्रद्धा-भक्ति विरासत में मिली है। गुरुदेव का भी इनके प्रति गहन प्यार है। इन्हीं के साथ वे बैडमिंटन खेलकर तरह-तरह से आनन्द मनाते हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

सन् 1996 में देहरादून निवासी श्रीजयप्रकाशजी नन्दा एवम् उनकी पत्नी माता कुन्तीजी भी महाराजजी के प्रेम से खिंचकर आश्रम में आ गये थे। श्रीनन्दाजी अभी बासठ वर्ष के होंगे। आप बिहार के सिंदरी प्रांत में फर्टिलाइज़र कार्पोरेशन में उप महाप्रबन्धक के पद पर थे। वैसे इलैक्ट्रिकल इन्जीनियर हैं। नन्दा दम्पति शुरु से ही गुरुबानी के परम रसिक हैं। भगवान ने दोनों को ही बहुत मधुर कण्ठ दिया है। श्रीनन्दाजी को शास्त्रीय गायन का भी अच्छा ज्ञान है तथा वे हारमोनियम भी बहुत अच्छा बजाते हैं। उनके संकीर्तन में बड़ा भाव तथा रस है। इन्होंने सन् 1989 में भगवद् समर्पित जीवन व्यतीत करने के लिये अपनी नौकरी छोड़ दी थी। जीवनभर आप पूरे देश के गुरुद्वारों में घूम-घूमकर पावन गुरुबानी का मधुर कीर्तन करते रहे हैं। आश्रम में भी आप ही प्रायः नित्य सायंकालीन संकीर्तन करते हैं। आप बहुत ही मृदुल, सौम्य, विनम्र और संत स्वभाव के हैं। आपकी बोली भी बड़ी मीठी है। छोटे से छोटा काम करने में भी आपको संकोच नहीं है। आप आश्रम की अनेक प्रकार से सेवा किया करते हैं तथा नियमित भजन-स्मरण में भी बैठते हैं। आपका भगवद्भाव बड़ा निर्मल और गहरा है। आपकी तथा आपके पूरे परिवार की गुरुमहाराजजी के प्रति बहुत गहरी श्रद्धा है।

इनके अतिरिक्त आश्रम में फ्राँस की माता विशाली (सैंचेज़ कैथरीन) तथा स्विटज़रलैण्ड की माता सुधा (एलिज़ाबैथ फोन्टाना) भी रहती हैं। विशाली माता तो गत तेरह वर्षों से आश्रम में रह रही हैं। पहले ये फ्राँस की राजधानी पैरिस में रहती थीं। फ्रांस के प्रसिद्ध धर्मगुरु आर्नो डिजार्डा से जुड़कर साधना कर रही थीं। तभी इनको संयोग से महाराजजी की प्रसिद्ध पुस्तक The Practical Approach to Divinity पढ़ने को मिली। पुस्तक पढ़ते ही उनके मन में उथल-पुथल मच गयी। उन्हें स्पष्ट लगा कि लेखक को निश्चित ही परम सत्य का बोध है तथा उन द्वारा दर्शाया गया पथ भी बड़ा सटीक तथा सही है। ये महाराजजी के दर्शन करने भारत आयीं और फिर सदा के लिये यहीं रह गयीं। सुधा माता परमहंस रामकृष्ण की परम भक्ता हैं तथा उन्हीं की परम्परा के एक संत—स्वामी रितिजानन्दजी से दीक्षित भी हैं। उनका पूरा जीवन ही साधना और सेवा में व्यतीत हुआ है। ये गत चार वर्षों से अधिकाँशतः आश्रम में ही रहती हैं। इन दोनों माताओं का गुरुमहाराजजी के प्रति अपूर्व भक्तिभाव है। तथा इन्होंने भगवद्कृपा से महाराजजी के चरणों में आत्मदान

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

किया हुआ है। ये सभी नित्यप्रति चारों समय साधना में अवश्य बैठती हैं। महाराजजी का दिन का सत्संग भी कभी नहीं चूकतीं। सत्संग में प्रायः विशालीजी ही महाराजजी के उत्तरों को भक्तों को पढ़कर सुनाती हैं तथा उनका फ्रेंच भाषा में अनुवाद भी करती हैं। विशालीजी ने महाराजजी द्वारा बाबा भूमणशाहजी पर लिखित Mirror of Bliss पुस्तिका का फ्रेंच भाषा में अनुवाद भी किया है। श्रद्धा और विनम्र भाव से ये पूरे दिनभर आश्रम की कोई न कोई सेवा में लगी ही रहती हैं। छोटे से छोटा काम करने में इन्हें जरा भी लज्जा नहीं है। पूरे आश्रम की सफाई-व्यवस्था का ख्याल करती हैं तथा स्वयं भी सफाई करती हैं। आश्रम के भण्डारों में तथा नित्यप्रति भी आश्रम में जूठे बर्तनों की सफाई ये सब माताएं तथा अन्य विदेशी भक्त बड़े प्रेम से करते हैं। भारतीय सामाजिक व आध्यात्मिक परम्पराओं को ये ऐसे आत्मसात करती जा रही हैं जैसे जन्मों से इनकी प्यासी हों। बिल्कुल सधा हुआ, संयमित व सादा जीवन है। हमेशा शालीन परिधान पहनती हैं तथा शुद्ध शाकाहारी भोजन करती हैं। इनका जीवन सेवा और साधना की प्रतिमूर्ति है। अपने को भारतीय परिवेश में ढालने में इन्हें कितनी ही बार परेशानी भी उठानी पड़ी होगी पर स्वदेश और परिजनों को छोड़कर एक फकीर के दिव्य प्रेम में पड़कर पराये देश और पराये लोगों के बीच रह रही हैं; पूरी दृष्टि परमात्मा पर लगी है। इन सभी का तथा अन्य अनेक विदेशी भक्तों का गुरुदेव से वही पावन सम्बन्ध है जो सिस्टर निवेदिता का स्वामी विवेकानन्दजी के साथ था। इन दोनों माताओं के अतिरिक्त पिछले दो वर्षों से नार्वे की बहन कल्याणी (क्रिस्टिना नोर्ड) भी प्रायः आश्रम में रह रही हैं। इनका भी गुरुदेव के प्रति अपूर्व श्रद्धा-सेवा का भाव है तथा ये भी आश्रम में बहुत सेवा किया करती हैं। इन सब माताओं के भक्ति-भाव को बार-बार प्रणाम है।

इनके अतिरिक्त आश्रम में देश व विदेश से आने वाले साधक भी गुरु महाराजजी व आश्रम की अनेक प्रकार से सेवा करते हैं। आश्रम में कर्मचारी अधिक नहीं हैं अतः अधिकांश कार्य तो भक्तों की सेवा से ही सम्पन्न होते हैं। सेवा के रूप में किये गये कार्य निश्चित ही बेहतर तथा प्रेमपूर्ण होते हैं। वैसे आश्रम के कर्मचारी भी गुरुदेव के प्रति बहुत प्रेम-श्रद्धा रखते हैं तथा अपना-अपना कार्य ठीक प्रकार से करने का प्रयास करते हैं। अभी आश्रम में श्रीविजय कुमारजी तोमर एकाउन्टैंट का, श्रीभूपेन्द्रजी पुण्डीर बिजली का, श्रीमेवालालजी बागवानी का, श्रीखडगसिंहजी बागवानी व फल-

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

फूलों का, श्रीरमेशजी तथा श्रीरविजी वाहन चालक का तथा अन्य कार्य, श्रीसुन्दरजी गोपालक का, श्रीमति शकुन्तलाजी रसोईघर का तथा श्रीमोहनजी सामान्य कार्य करते हैं। इन कार्यों के अतिरिक्त ये सभी कर्मचारी आवश्यकतानुसार अन्य कार्य भी करते हैं। बीच-बीच में कुछ कर्मचारी कार्य छोड़ते भी रहे हैं तथा नये कर्मचारी भी आते रहे हैं। पूज्य गुरुदेव इन सभी कर्मचारियों से सदा प्रेम-आदर का व्यवहार रखते हैं तथा उनका पूरा ख्याल रखते हैं। महाराजजी के कर्मचारियों से सौम्य व मधुर व्यवहार से 'आनन्द दर्पण' पुस्तिका में दिया बाबाजी का यह वचन स्मरण हो आता है — "गरीबों, निस्सहायों के प्रति सहानुभूति रखकर उनकी सहायता करो। आपकी सज्जनता की पहचान अपने से बड़ों, धनवानों, पदाधिकारियों और नेताओं के साथ आपके बर्ताव से नहीं अपितु अपने से छोटों, आश्रितों, निर्धनों और याचकों के साथ किये गये व्यवहार से ही होती है।" उनके प्रभाव तथा प्रेरणानुसार हम सब भी वैसा ही करने की चेष्टा करते हैं हालांकि हमसे अनेक बार प्रमादवश भूलें हो जाती हैं।

वर्तमान छवि के मंगल दर्शन

अब चलते हैं अपने प्रियदर्शन प्रभु की वर्तमान छवि के मंगल दर्शनों को। पूज्य महाराजजी की आयु सत्तर वर्ष के ऊपर है। उनका व्यक्तित्व अत्यन्त भव्य और छवि अत्यन्त मनोरम है। सात्विक सौंदर्य, रूप-लावण्य और भगवत्ता मानो उनके अंग-प्रत्यंग से फूटी पड़ती है। सुगठित, लम्बा-चौड़ा, किन्तु सुकोमल और मनमोहक व्यक्तित्व, गेरुए रंग का चरण-कमलों तक लटकता ढीला-ढाला चोगा, पुष्ट स्कन्धों तक लटकते उनके रेशम से मुलायम केश; प्राचीन ऋषियों की सी लम्बी, स्वच्छ, शुभ्र, घनी दाढ़ी; दिव्य आनन्द, कोमलता और नम्रता उड़ेलती उनकी वे चमकीली, अचंचल और सुन्दर ध्यानी आँखें, सुन्दर नासिका, भक्तों का हृदय चुरा लेने वाली उनके सुकोमल होठों पर सदा बसने वाला वह मन्द-मन्द, मीठा स्मितहास; प्रशस्त ललाट, तपाये हुए सुवर्ण की भाँति लालिमा मिश्रित उनके चेहरे की कान्ति तथा योग की आभा; करुणा और सौम्यता से नहाया उनका वह सदा शान्त, देदीप्यमान चेहरा और सर्वोपरि, उनके मुख-मण्डल पर सदा निवास करने वाली अजीब सी वह बेपरवाही और निःसंगता, मानो वे हर पल किसी दूर देश के वासी भी हों। उनके अपार्थिव सौंदर्य तथा अनन्त गुणों का वर्णन कैसे करें ? उनके दर्शन मात्र से ही व्यक्ति

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

आस्तिक हो जाते हैं। उनका दिव्य आकर्षण सदा नित-नूतन बना रहता है। आनन्द और प्रेम की उस एकरस जीवंत प्रतिमा को पुनः-पुनः देखने को मन करता है। और जिनके पास वास्तव में 'कान' हैं वे उनके समूचे व्यक्तित्व में से झंकृत होते दिव्य संगीत को सुन सकते हैं। सामान्यतया ब्रह्मरूपी निर्मल चिदाकाश को शरीर, इन्द्रियां मन व प्राण रूपी उपाधियां ढांककर रखती हैं। किन्तु गुरुदेव सम ब्रह्मवेत्ता के जीवन में तो ये सब उपाधियां उस निरावलम्ब, अद्वैत, अविकारी, आनन्दस्वरूप व चेतनतत्व के प्रकाशित व उद्घाटित होने के द्वार बन जाती हैं। किसी अन्य सन्दर्भ में महाराजजी के ही शब्दों को लें तो—"परदा जल्वा हो जाता है; दीवार द्वार बन जाती है।" अतः इन महापुरुष के माध्यम से भक्तों को 'उसकी' झलक सी मिल जाती है जिसका कोई रूप नहीं; 'उसका' स्पर्श सा मिल जाता है जो सब स्पर्शों से परे है; 'वह' सुनायी में आ सा जाता है जो शब्दों की पहुँच से परे है; उसकी सुवास सी आ जाती है जिसे शास्त्र मन से भी परे बतलाते हैं।

सन् 1990 में न्यूयार्क, अमरीका से प्रकाशित होने वाली प्रसिद्ध 'लाइफ' (Life) पत्रिका ने सभी धर्मों के आध्यात्मिक महापुरुषों का एक टीम द्वारा विश्वव्यापी सर्वेक्षण करवाया था। इसके फलस्वरूप पत्रिका के दिसम्बर, 1991 अंक में Men of God शीर्षक से विश्व के प्रमुख संतों तथा धर्मगुरुओं का परिचय प्रकाशित किया गया था। इस क्रम में उन्होंने अपनी पत्रिका में हिन्दू धर्म के प्रतिनिधि तथा गहन आध्यात्मिक अनुभूति सम्पन्न महापुरुष के रूप में महाराजजी का दो पृष्ठ वाला एक बहुत सुन्दर व भव्य चित्र छापा था। वह चित्र हम इस पुस्तक में पृष्ठ 172 के बाद के चित्रों के साथ दे रहें हैं। यह चित्र 'Life' पत्रिका के फोटोग्राफर ने स्वयं ही गंगाजी के तट पर लिया था। महाराजजी के अतिरिक्त इस सर्वेक्षण में तिब्बती धर्मगुरु पूज्य दलाई लामा, पूज्य पोप जॉन पाल द्वितीय तथा मिस्र, जापान, नार्वे, व इंग्लैण्ड के धर्मगुरुओं का भी संक्षिप्त परिचय तथा तस्वीरें प्रकाशित की गयी थीं।

जीवन रंगमंच के अनूठे कलाकार

आश्रम के स्वागत कक्ष के निकट तथा भोजनहाल में महाराजजी की दो सुन्दर उक्तियाँ हमने लिखवा रखी हैं—

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

जीवन का परम लक्ष्य है परमात्मा में जीना;
और इस लक्ष्य प्राप्ति की परम विधि है—परमात्मा के लिये जीना।

तथा

हर वस्तु के लिये स्थान रखें;
हर वस्तु को उसके स्थान पर रखें।

उपर्युक्त उक्तियों के अर्थ का जीवंत विग्रह है महाराजजी का पावन जीवन। उनका छोटे से छोटा क्रियाकलाप भी आध्यात्मिक प्रसंग लिये हुये होता है। उनके सभी कार्य बहुत मर्यादित, सोचे समझे हुये, वातावरण में सौहार्द विकसित करने वाले तथा यथायोग्य होते हैं। हर व्यक्ति, वस्तु तथा परिस्थिति के सापेक्षिक महत्व से वे सुपरिचित होते हैं। कठिन से कठिन परिस्थिति में भी अपने मौन के बावजूद उनकी सोच, उनका व्यवहार तथा उनके निर्णय हमेशा सम्यक् हुआ करते हैं।

अब हम उनकी पावन चर्चा में कुछ गहरायी से उतरेंगे।

महाराजजी के व्यक्तित्व में—एक सम्राट की सी भव्यता, सिंह की सी आत्मनिर्भरता, फक्कड़ फकीर की सी बेपरवाही, सहज मौज व निःसंगता, सागर की सी गम्भीरता, आकाश की तरह उदारता विशालता, पृथ्वी की तरह क्षमाशीलता, साक्षात् परमात्मा की तरह दानशीलता, बालक की सी सरलता और निश्चिंतता और नवविवाहित वधू की तरह संकोचशीलता, एक चतुर व्यवसायी की सी कार्यकुशलता और सजगता—इन अनेक भावों का अद्‌भुत मेल है।

जैसा कि हमने ऊपर भी लिखा कि पूज्य गुरुदेव के समूचे व्यक्तित्व में एक अनूठा और अनिर्वचनीय आकर्षण है। वह आकर्षण भागवतीय है। इसीलिये भगवान में जन्मजात श्रद्धाजनित विश्वास रखने वाली अनपढ़ ग्रामीण वृद्ध माता को भी आप उतने ही प्रिय हैं जितने कि किसी शिक्षासम्पन्न संशयवादी पाश्चात्य आलोचक को। वस्तुतः आपका दिव्य आकर्षण व्यक्ति के मूल्यों, आस्थाओं, सामाजिक परिवेश आदि पर निर्भर नहीं करता। वह तो व्यक्ति के पूर्वनिर्मित संस्कारों के घेरे को तोड़कर उसके हृदय तक पहुँच जाता है। इसी कारण कोई व्यक्ति अपने पूर्वाग्रहों अथवा संस्कारों के कारण चाहे उनसे सहमत न हो सके किन्तु वह उनके आकर्षण से बच नहीं सकता; वह उनसे प्रेम किये बिना नहीं रह सकता। भगवद्‌गीता में स्थितप्रज्ञ पुरुष का वर्णन किया गया है। हमारे गुरुदेव का जीवन ऐसे महापुरुष की सम्यक् परिभाषा है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

आइये हम उनके पावन चरित्र को हृदय में रखकर भगवान श्रीकृष्ण द्वारा उच्चारित गीताजी के मुक्त/सिद्ध पुरुष विषयक कुछ श्लोकों का स्मरण करें।

विद्याविनयसंम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥

(अध्याय 5 श्लोक 18)

अर्थात्, पण्डितों की यानि ज्ञानियों की दृष्टि विद्या-विनय युक्त ब्राह्मण, गाय, हाथी, ऐसे ही कुत्ता और चांडाल इन सभी के विषय में समान रहती है।

न पुहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम्।
स्थिर बुद्धिरसंम्मूढो ब्रह्मविद्ब्रह्मणि स्थितः॥

(अध्याय 5 श्लोक 20)

प्रिय अर्थात् इष्ट वस्तु को पाकर प्रसन्न न हो जाये, और अप्रिय को पाने से खिन्न भी न होवे। (इस प्रकार) जिसकी बुद्धि स्थिर है और जो मोह में नहीं फंसता, (कहना चाहिये कि) वही ब्रह्मवेता ब्रह्म में स्थित हुआ।

शन्क्रोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात्।
कामक्रोधोदभ्वं वेगं स युक्तः स सुखी नरः॥

(अध्याय 5 श्लोक 23)

शरीर छूटने से पहले अर्थात्, मृत्युपर्यंत काम, क्रोध से होने वाले वेग को इस लोक में ही सहन करने में जो समर्थ होता है वही मुक्त और सुखी है।

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकान्ञ्चनः॥

(अध्याय 6 श्लोक 8)

जिसकी आत्मा ज्ञान और विज्ञान से तृप्त हो जाये, जो अपनी इन्द्रियों को जीत ले, जो कूटस्थ में पहुँचे और मिट्टी, पत्थर एवं सोने को एक सा मानने लगे, उसी योगी पुरुष को युक्त अर्थात् सिद्धावस्था को पहुँचा हुआ कहते हैं।

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते॥

(अध्याय 6 श्लोक 9)

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

सुहृद, मित्र, शत्रु, उदासीन, मध्यस्थ, द्वेष करने योग्य और बांधवों के विषय में, एवं साधु तथा दुष्ट लोगों के विषय में भी जिसकी बुद्धि सम हो गयी है, वही विशेष योग्यता का है।

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि योगी मयि वर्तते॥

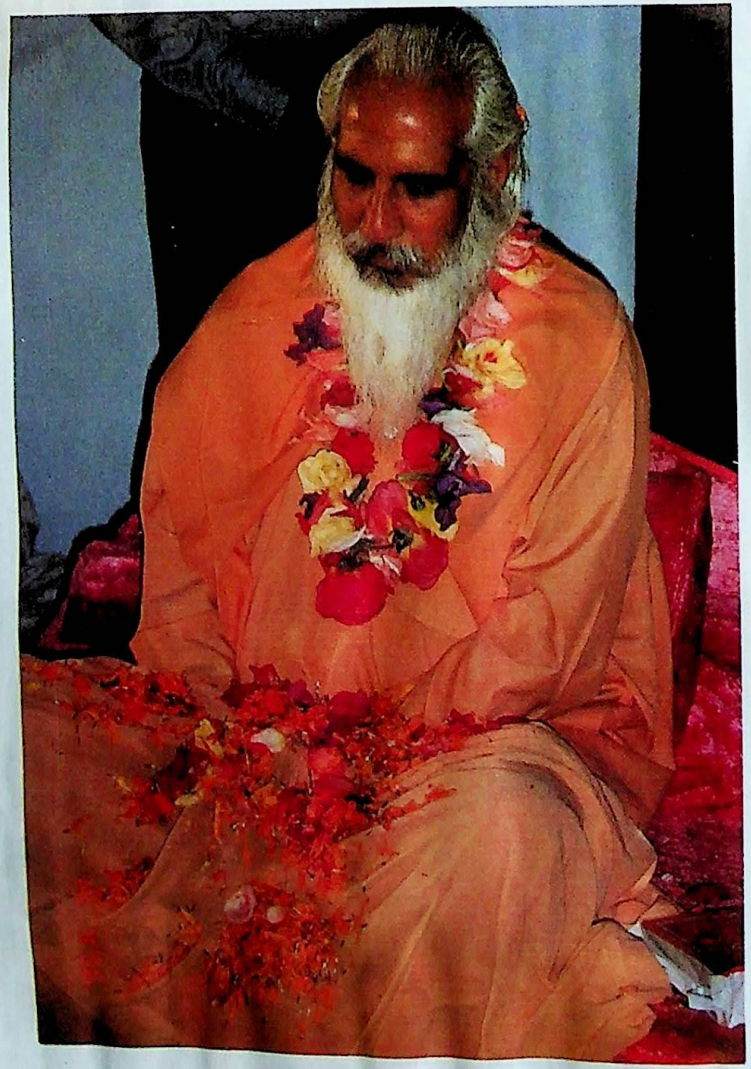
(अध्याय 6 श्लोक 31)

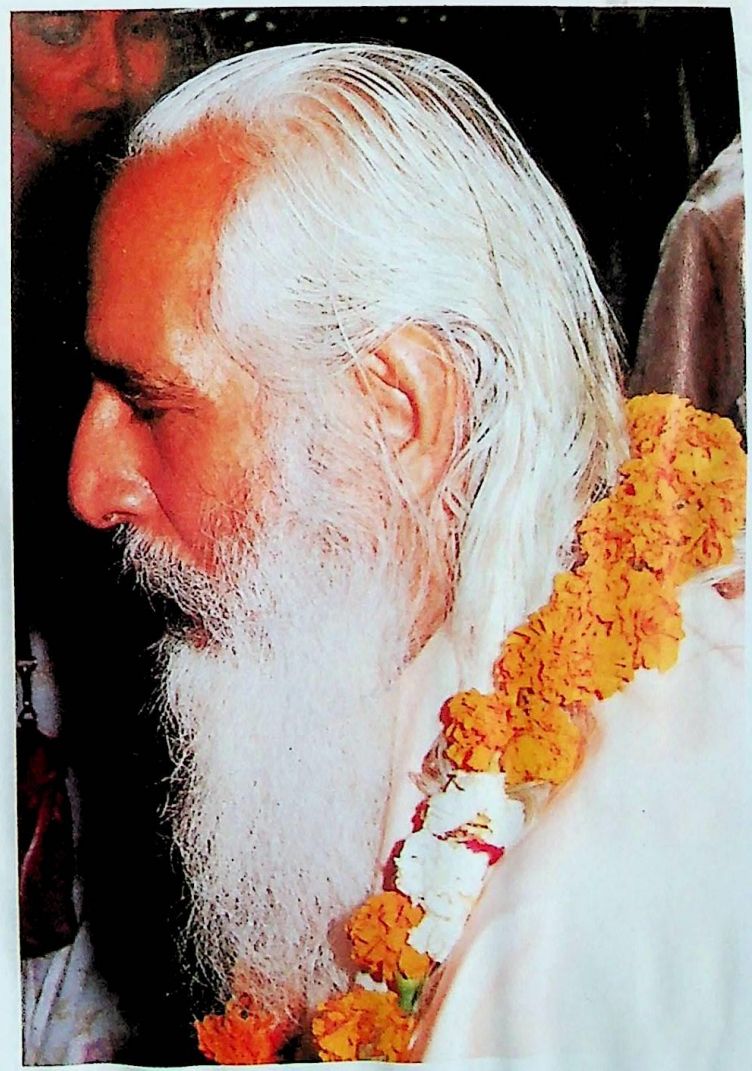
जो एकत्वबुद्धि अर्थात् सर्वभूतात्मैक्य बुद्धि को मन में रखकर सब प्राणियों में रहने वाले मुझको (परमेश्वर को) भजता है, वह योगी सब प्रकार से बर्तता हुआ भी मुझमें रहता है।

अस्तु। महाराजजी बहुत ही विनम्र, सौम्य और संकोची स्वभाव के हैं। नम्र तो इतने कि आश्रम के कर्मचारियों तथा छोटे-छोटे बच्चों को भी जी लगाकर सम्बोधित करते हैं। और तो और, वे अपने प्रयोग की वस्तुओं—जैसे कपड़े, बर्तन, जूते, कार आदि को भी इतने ध्यान और प्रेम से प्रयोग करते हैं मानो वे सब जीवित हों। और हाँ! फिर ये वस्तुयें भी अपने स्वामी की दीर्घकाल तक बने रहकर सेवा करती हैं। एक बार उन्होंने हमें बताया कि जगत् में हर वस्तु का एक देवता होता है। उस वार्तालाप के समय वे भोजन कर रहे थे। भोजन करते करते ही उन्होंने अपने हाथ में पकड़ी हुई चम्मच को लक्ष्य करके कहा, "इस चम्मच का भी 'देवता' है। कोई भी वस्तु भगवद् चेतना से रहित नहीं होती। हर वस्तु में उपस्थित वह भगवद् चेतना ही उस वस्तु का देवता या अधिष्ठात्री शक्ति कहलाती है।" इस पर एक सेवक ने पूछा कि महाराजजी एक चम्मच के देवता की पूजा कैसे करें? उन्होंने उत्तर दिया, "चम्मच को ध्यानपूर्वक, यथायोग्य तथा शिष्टतापूर्वक प्रयोग करने से।" अपने इसी सहज गुण के कारण महाराजजी अपने आस-पास के वातावरण, व्यक्तियों, वस्तुओं के प्रति बहुत सजग और संवेदनशील हैं। इसी कारण वे नित्यप्रति दिन के भोजन के बाद गौशाला में उनकी प्रतीक्षा करती गायों के लिये रोटी, गुड़ ले जाकर बड़े प्रेम से उन्हें स्वयं खिलाते हैं; उन्हें दुलार करते हैं। आश्रम की पालतू बिल्ली और उसके बच्चे भी महाराजजी को खूब प्यार करते हैं तथा उनके इर्द-गिर्द घूमते रहते हैं।

अपने भक्तों और शिष्यों के तो वे सर्वस्व हैं—माता-पिता, सुहृद बन्धु, मार्गदर्शक, सद्गुरु, भगवान—सब कुछ। लेकिन वे स्वयं! वे स्वयं तो सभी के

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

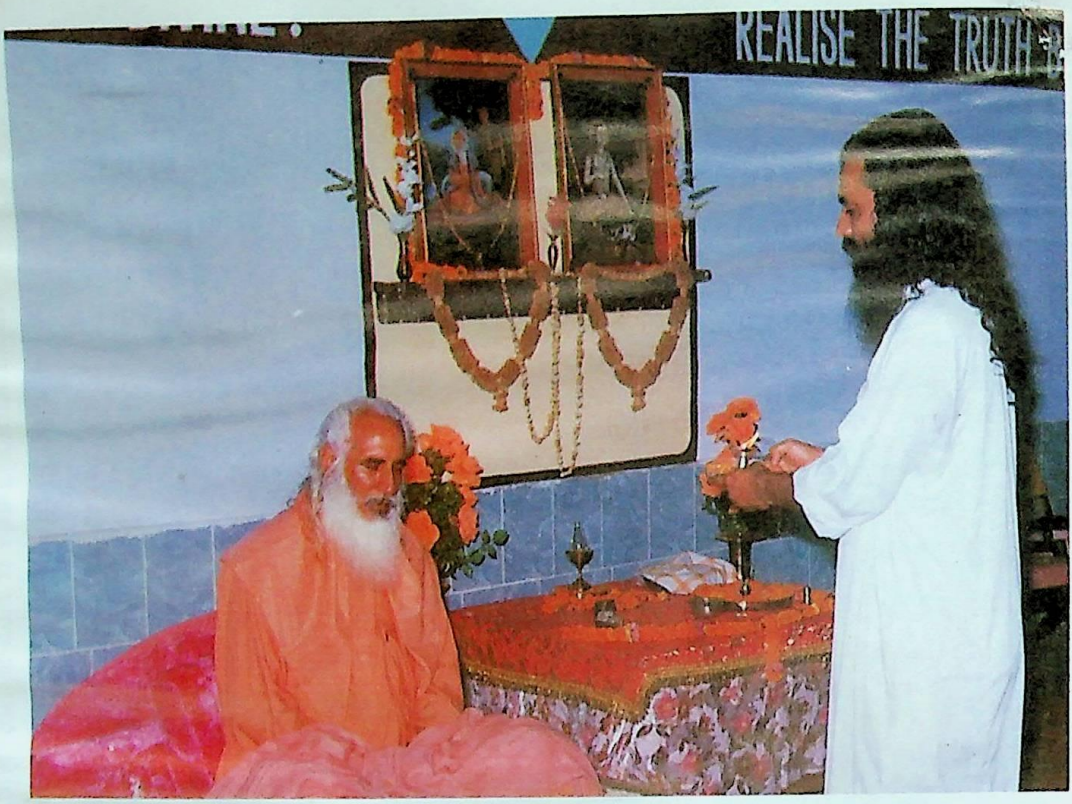




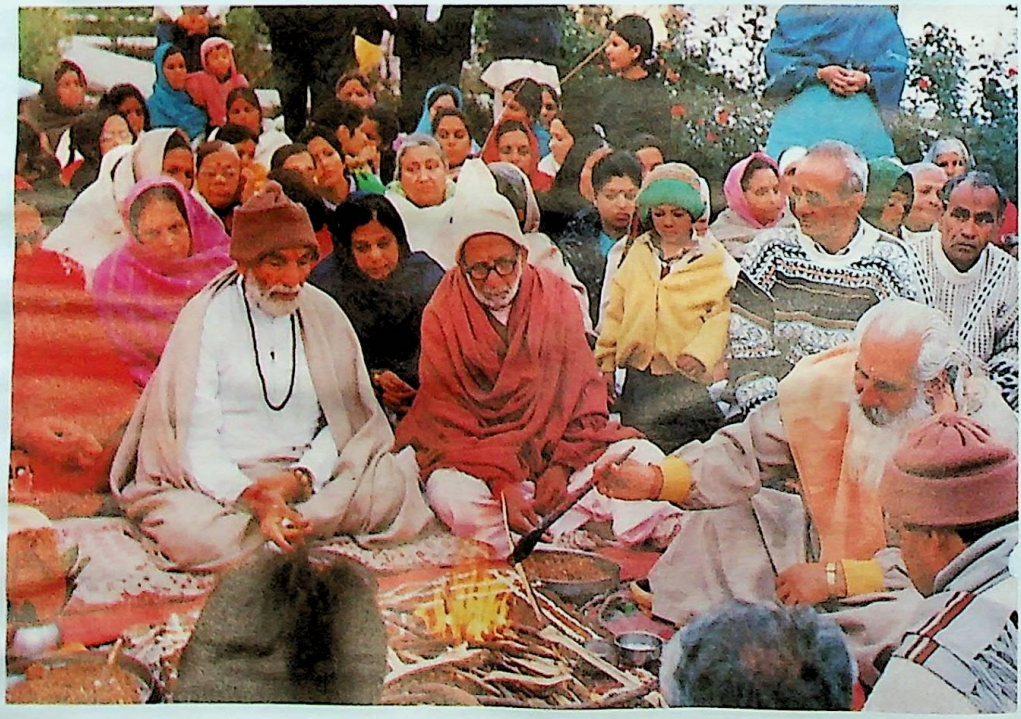
उस्तति निंदया नाहि जिहि, कंचन लोह समानि। कहु नानक सुनि रे मना मुकति ताहि तै जानि॥

गुरुपूर्णिमा के अवसर पर भक्तों की ओर से उनके प्रति उमड़ते गहन भक्ति-प्यार के प्रवाह से बेखबर आत्मस्थ गुरुदेव।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



गुरुपूर्णिमा तथा बाबा भूमनशाहजी के जन्मदिवस के अवसर पर आश्रम में प्रातः भगवान श्रीचन्द्रजी, भूमनशाहजी तथा गुरुदेव की आरतियां व संकीर्तन होते हैं। चित्र में श्रीभगतजी महाराजजी की आरती उतार रहे हैं।

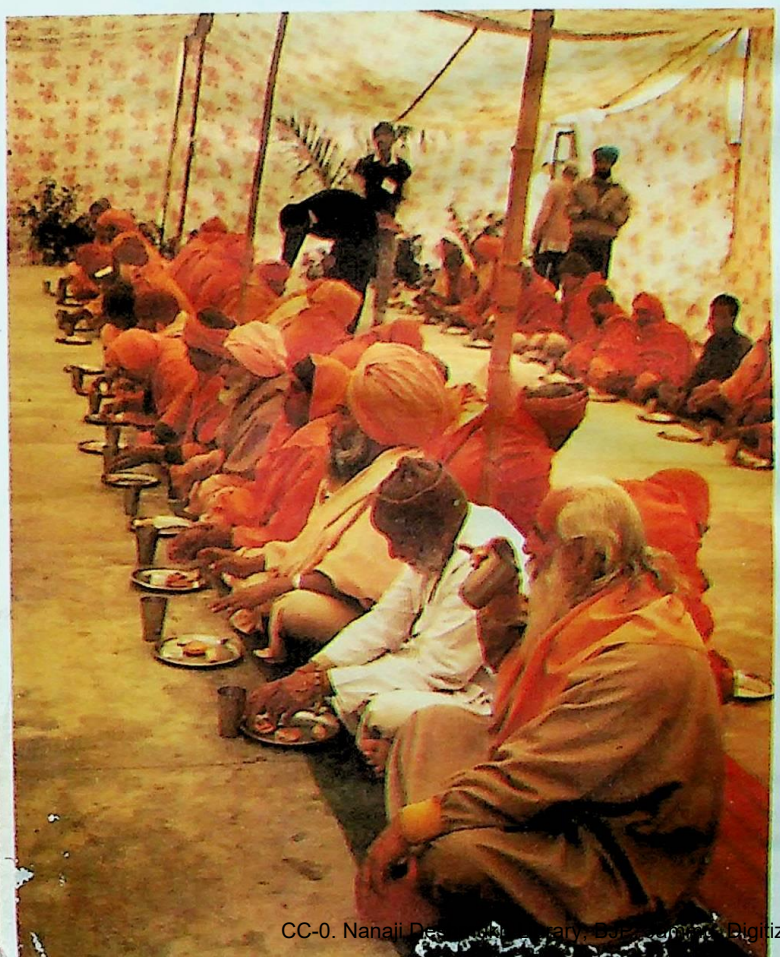


आरती-संकीर्तन के बाद हवन में भाग लेते हुए। भक्तों के अतिरिक्त चित्र में पूज्य रामबापा तथा दिवंगत पूज्य स्वामी योगिन्द्रानन्दजी भी हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

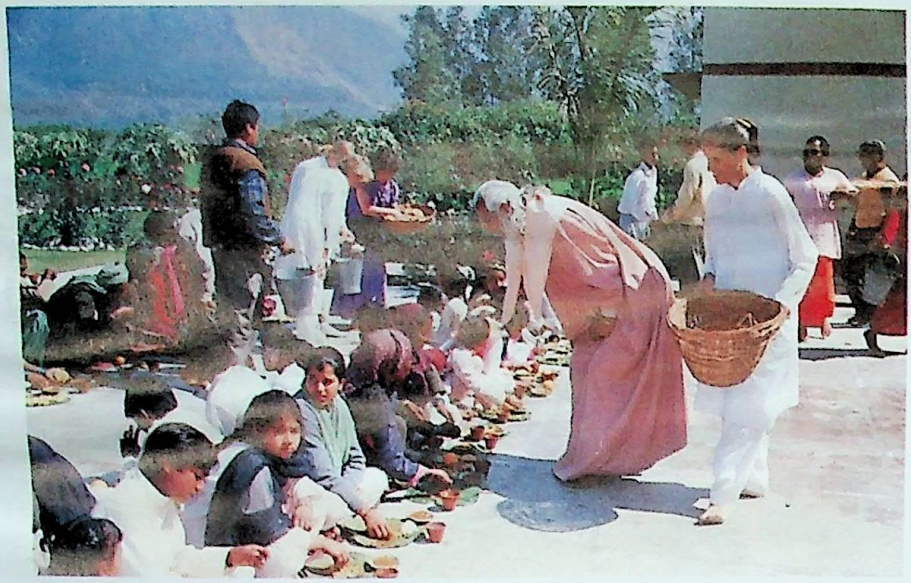


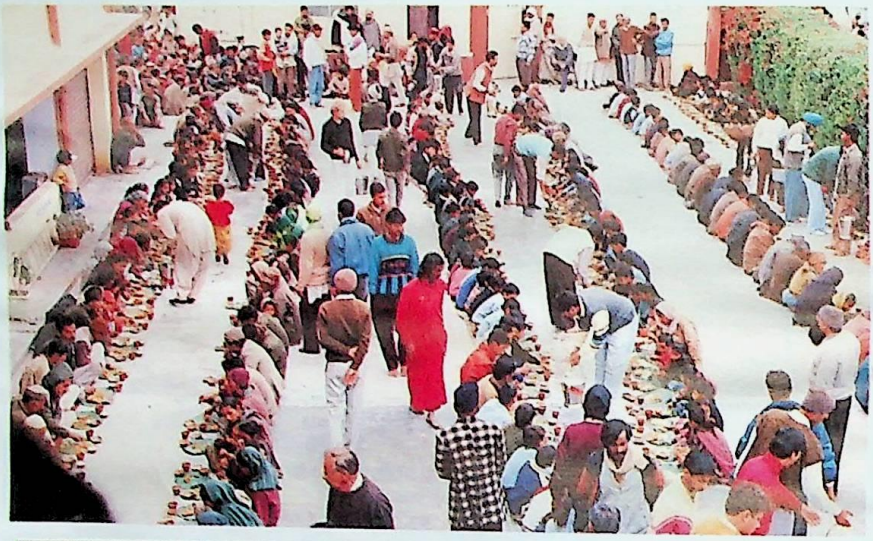
↑ आश्रम में गुरुपूर्णिमा पर संकीर्तन-भजन सुनते हुए।

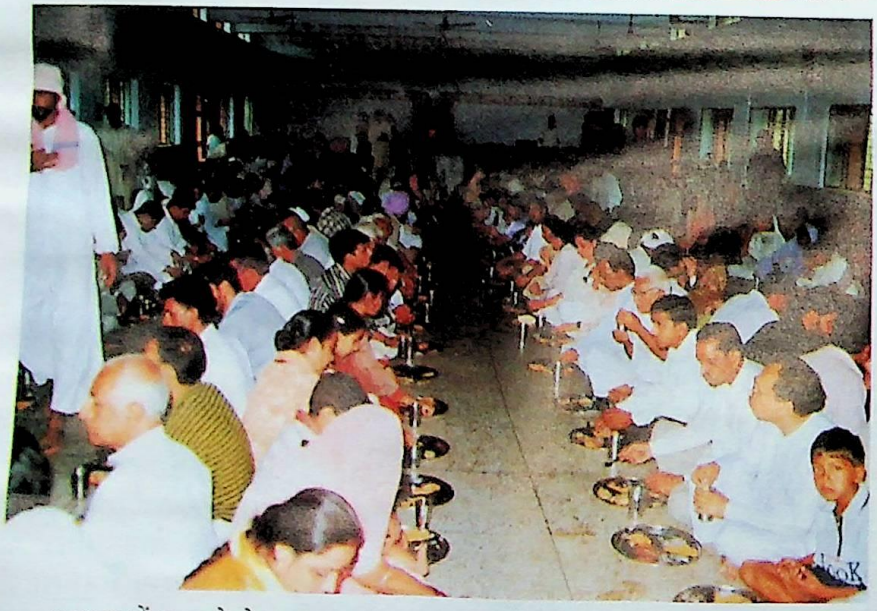


← आश्रम में भण्डारे के अवसर पर महाराजजी हरिद्वार से पधारे साधु-संतों के साथ प्रसाद पा रहे हैं। साथ में पूज्य रामबापा भी बैठे हैं।

CC-0. Nanaji De... ary. Digitized by eGangotri

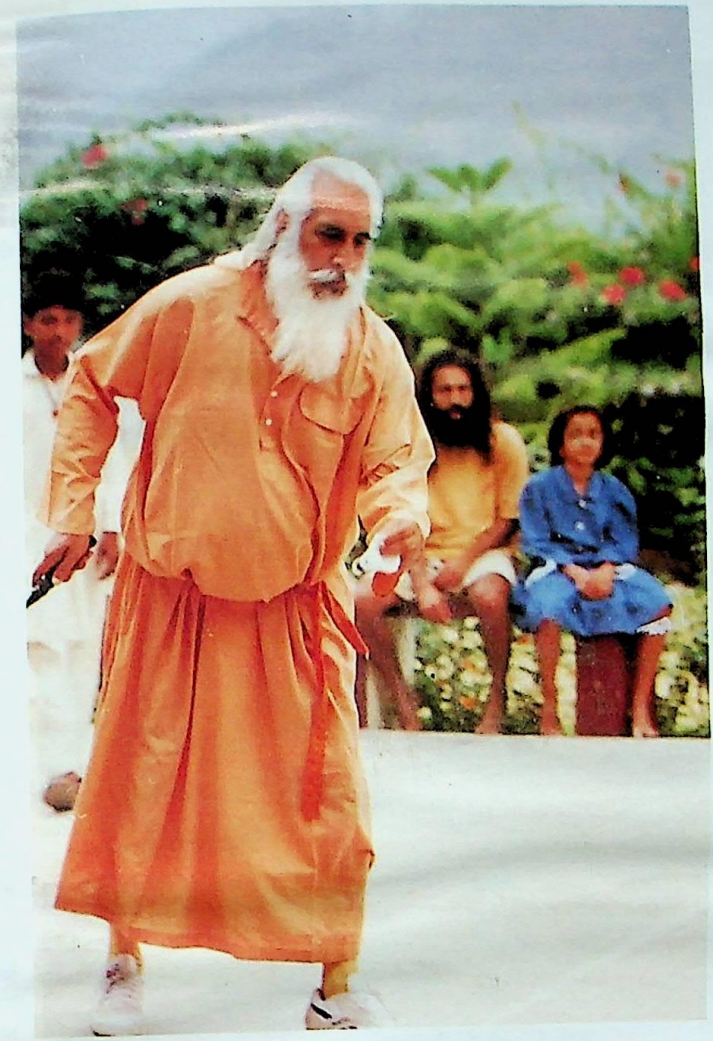






आश्रम में भण्डारे के अन्य दृश्य।
ऊपर वाले चित्र में समाजवादी स्वयं सेवक भोजन परोस रहे हैं।

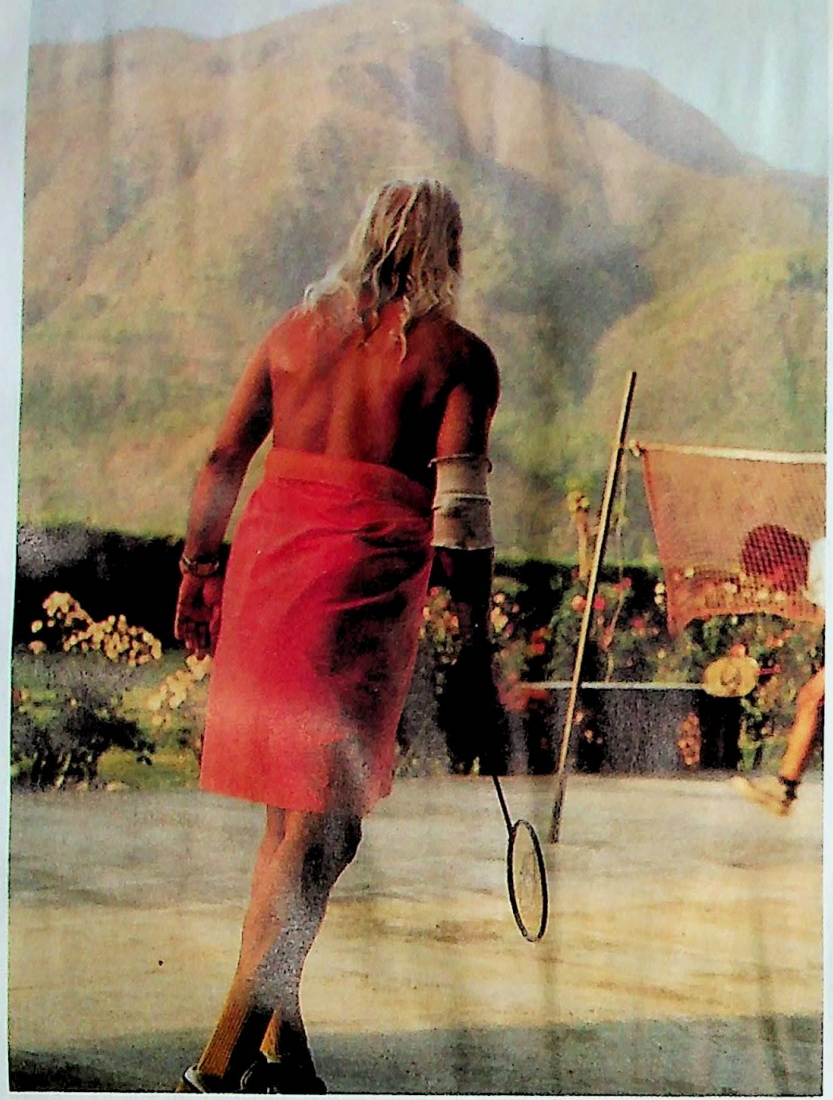
CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Vishwa Vibhag Collection. Digitized by eGangotri

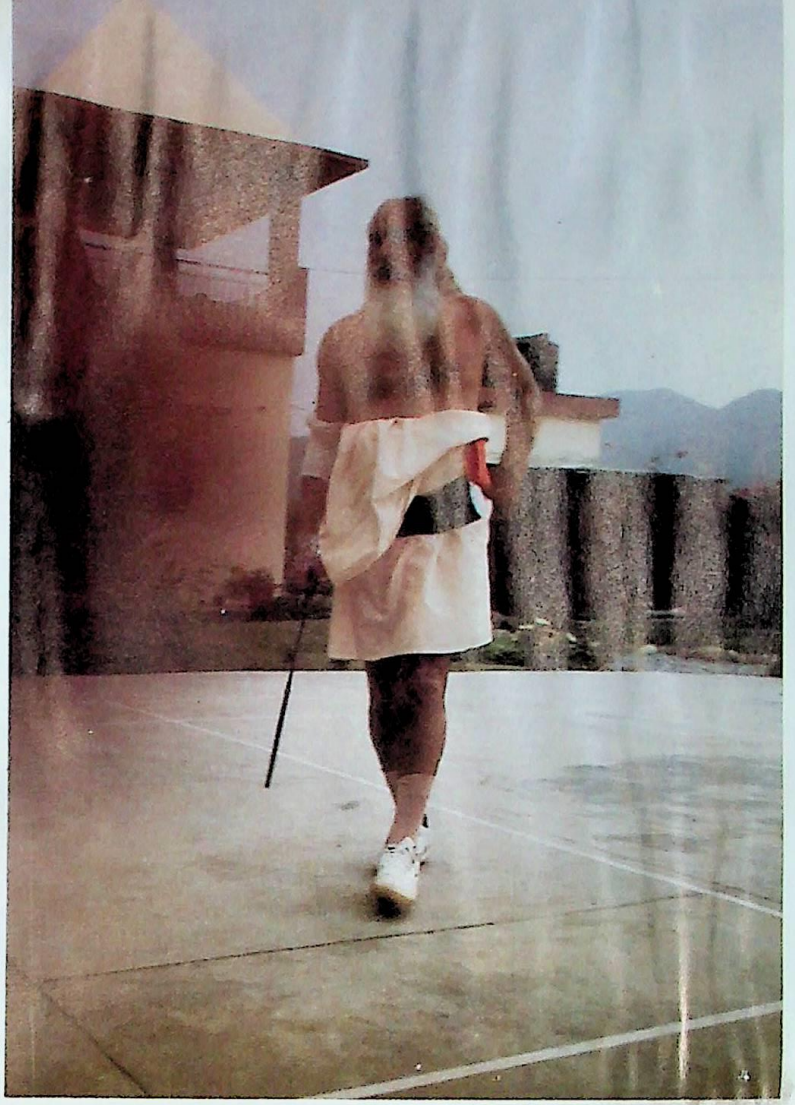


बैडमिन्टन खेलते हुए। नीचे के चित्र में वे प्वाइंट जीतने के लिये चिड़िया पर आँख बन्द करके कोई मन्त्र मारने का उपक्रम करके विनोद कर रहे हैं।



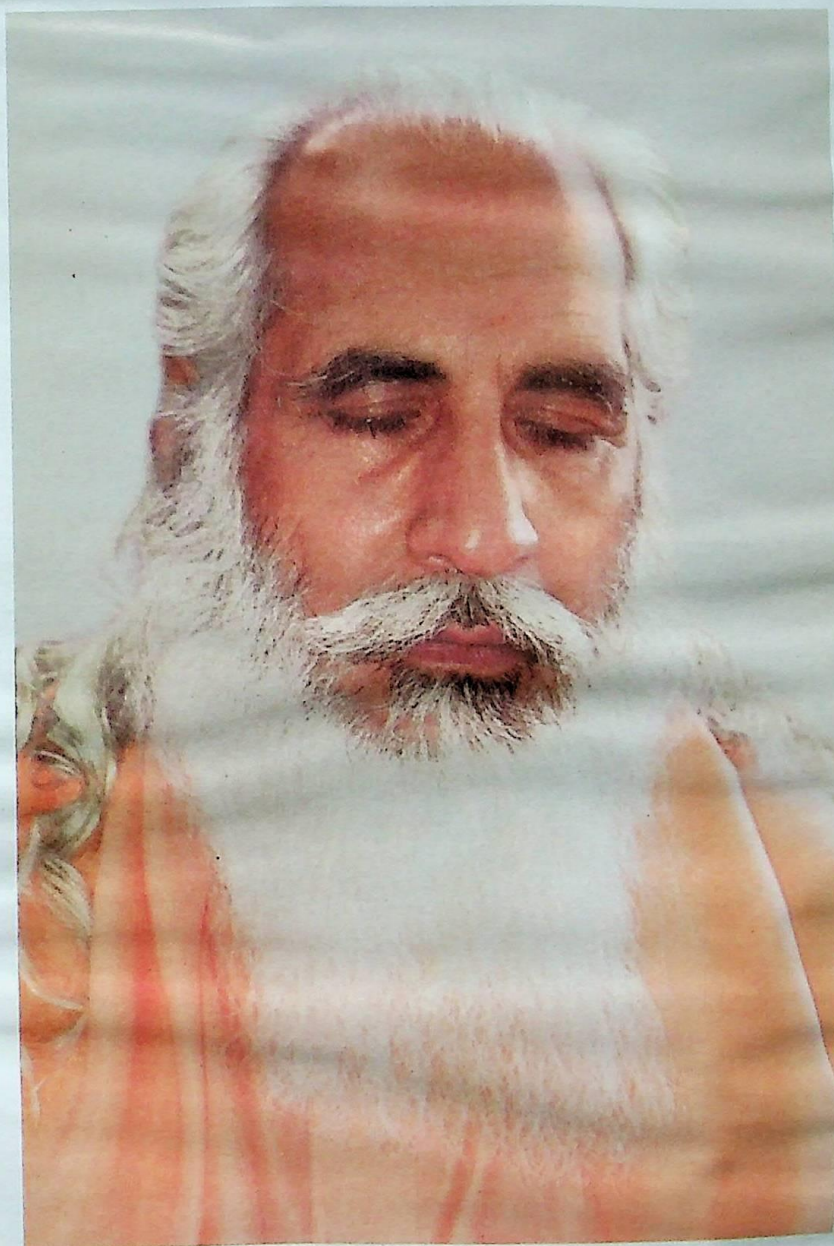
CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri





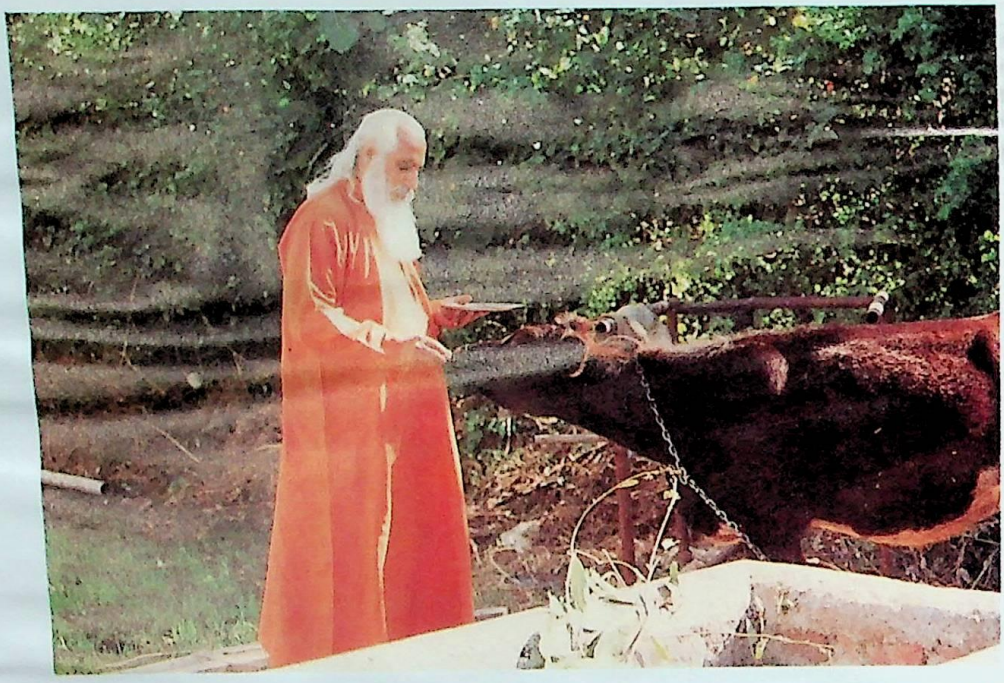
खेल में युवाओं का पसीना निकालते हुए
महाराजजी पूरे दमखम से खेलते हैं।

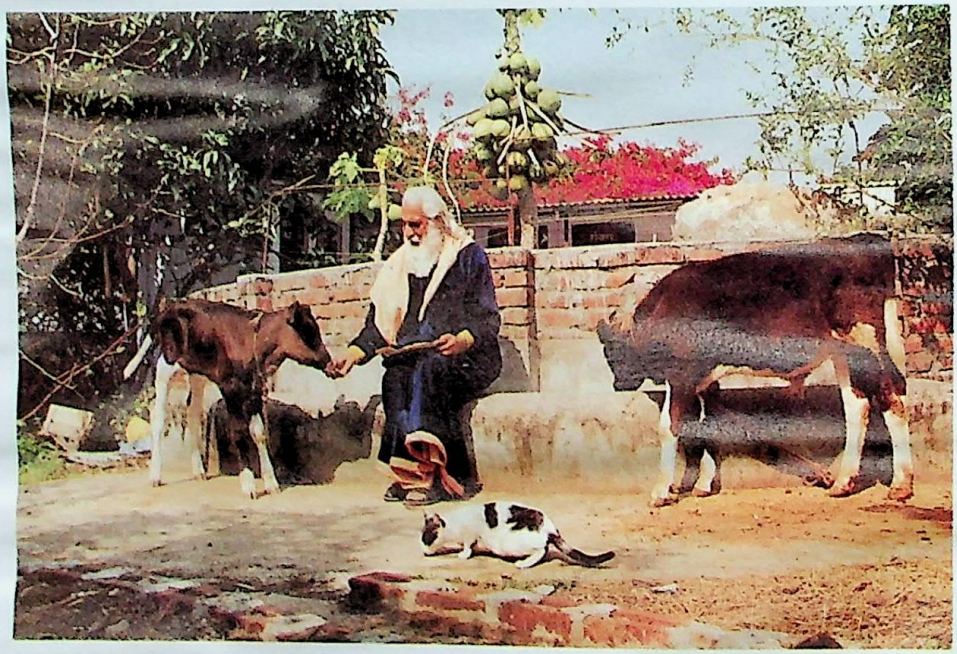
CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



सर्वोच्च आध्यात्मिक जीवन का परम रहस्य है— सक्रियता और निष्क्रियता में, प्रवृत्ति और निवृत्ति में, प्रेम और उपरामता में तथा भक्ति, ज्ञान और सेवा के भावों में सम्यक् संतुलन।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri





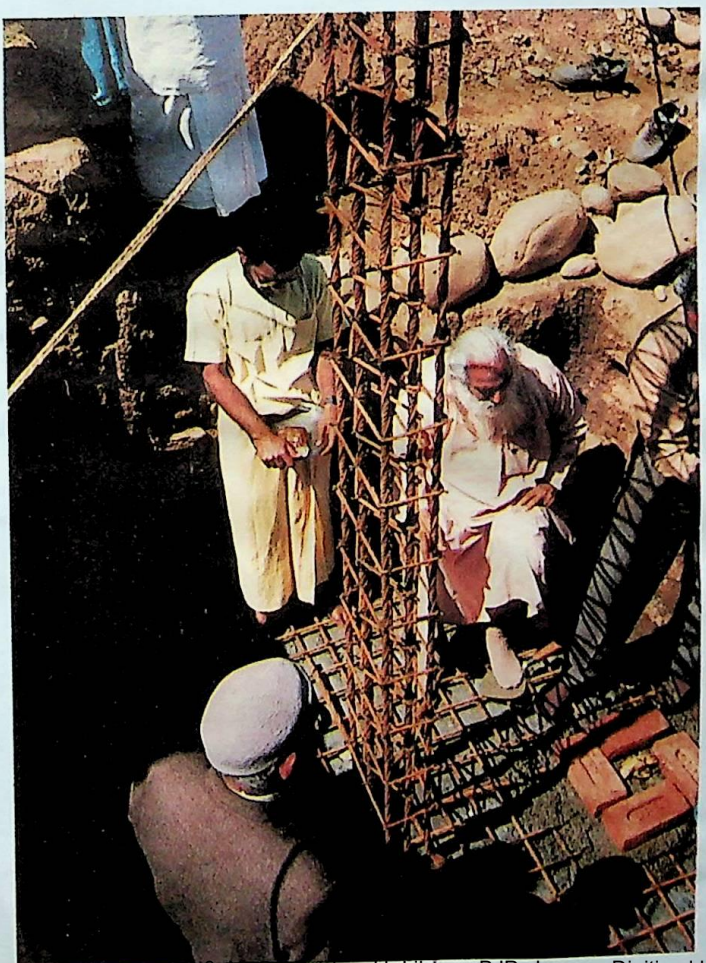
तुम मानो अथवा न मानो— पत्थर, वनस्पति, पशु, मनुष्य और देवता में एक ही अविभक्त, परिपूर्ण चेतना समायी हुई है। इन (पत्थर, वनस्पति आदि) में अन्तर तो इस चेतना की अभिव्यक्ति से है, न कि स्वरूप से। आपकी अन्तर्प्रज्ञा यदि सक्रिय है तो आप यह भली- भांति देख सकते हैं कि प्रतीयमान जड़ तत्त्व छिपे चेतन के अतिरिक्त और कुछ नहीं।

दिन के भोजन के बाद प्रतीक्षा करतीं आश्रम की गायों, बछड़ों व बिल्लियों को अपने हाथ से गुड़, रोटी आदि खिलाते हुए महाराजजी।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

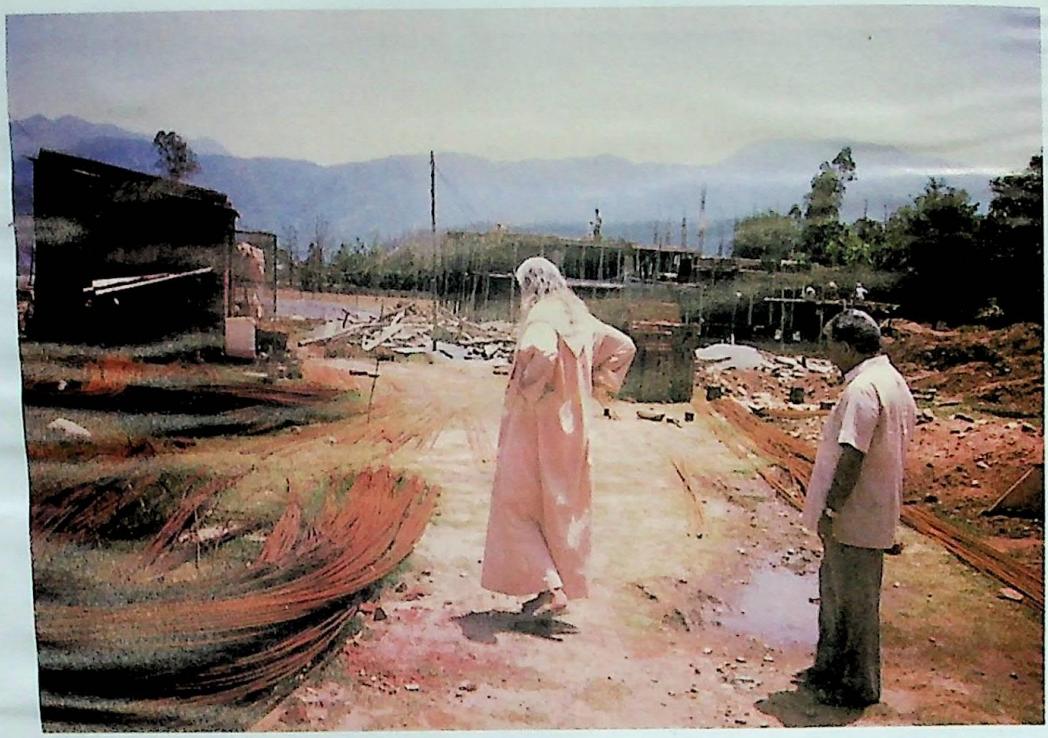


↑ आश्रम के सामूहिक भोजन कक्ष में सबके साथ भोजन करते हुए।

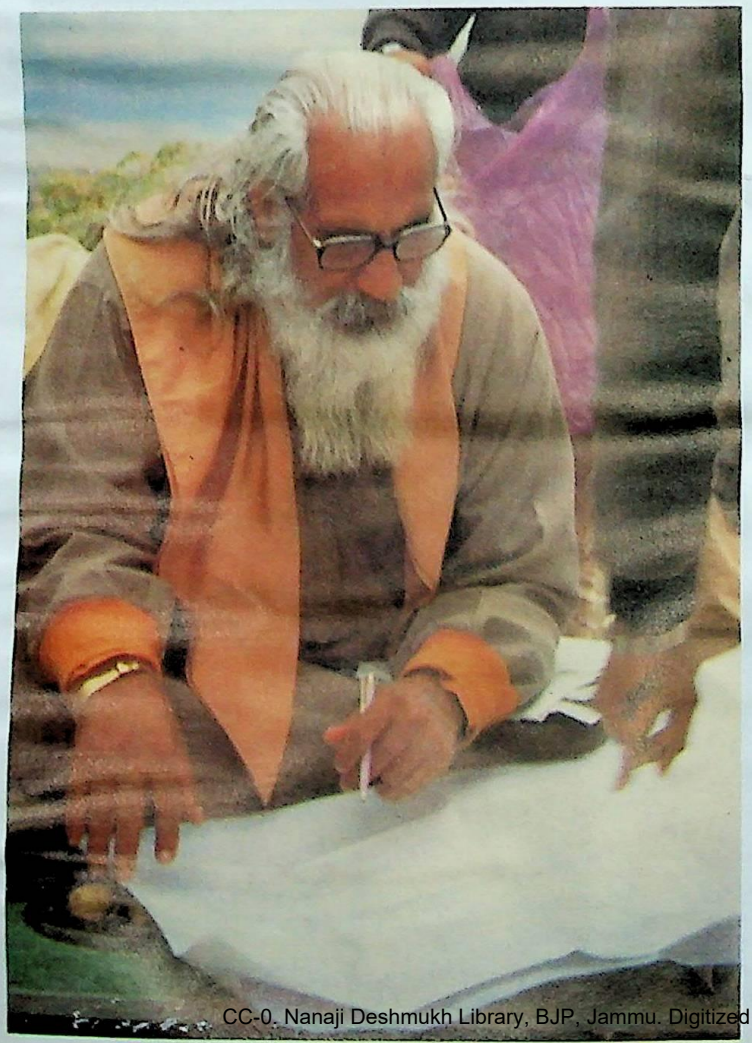


नींव की मजबूती पर पूरा जोर। साधना केन्द्र आश्रम की नींव रखे जाने के समय वे स्वयं गड्ढे में उतरकर छोटी से छोटी बात का ध्यान रख रहे हैं। दिवंगत पूज्य स्वामी प्रबोध चेतनजी भी उनके साथ खड़े हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

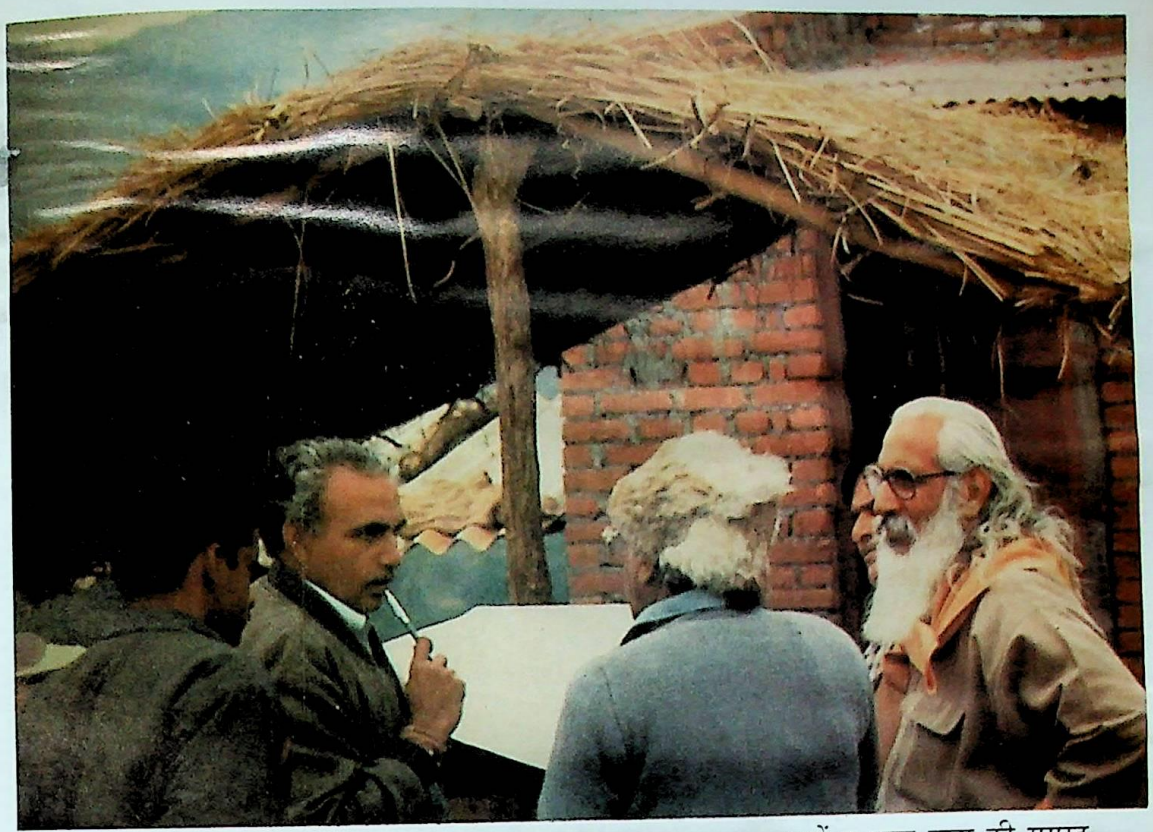


भगवान की दृष्टि में किसी भी कर्म का मूल्य कर्ता की भावना से पड़ता है, न कि किसी क्रिया विशेष से। निःसन्देह, समुचित भावना से किये गये दिन-प्रतिदिन के छोटे-मोटे सामान्य कर्म भी भगवान की पूजा ही बन जाते हैं।

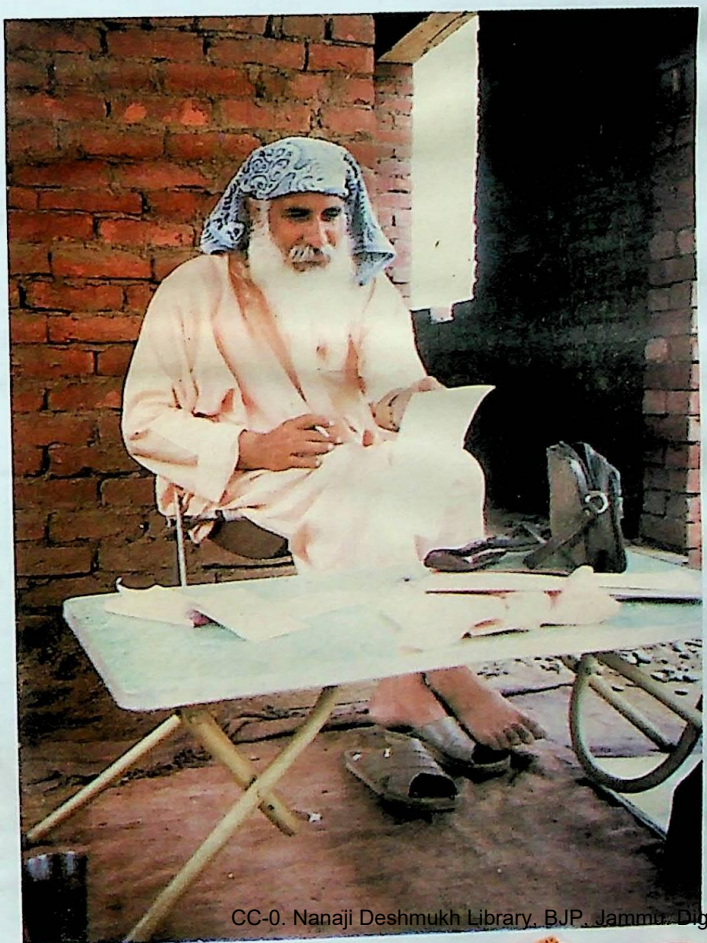


आश्रम निर्माण के विभिन्न पहलुओं के सजग प्रहरी।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

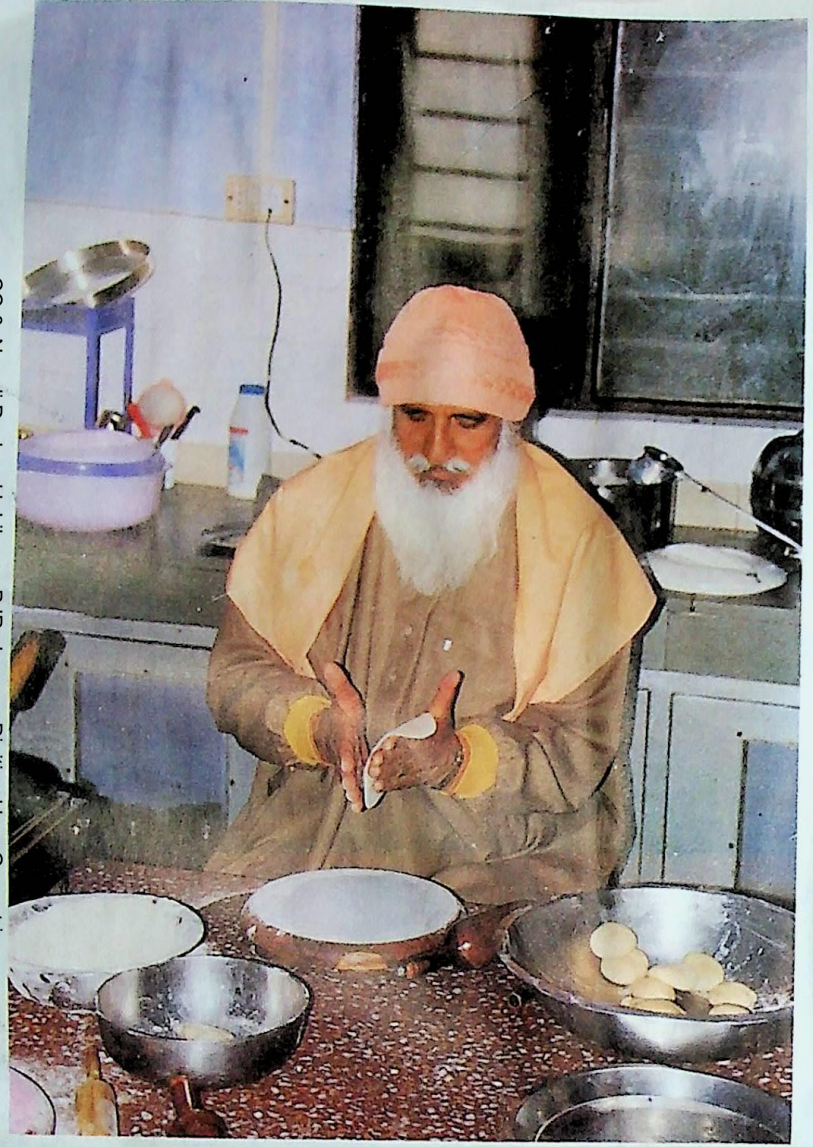


क्यों न प्राण पुरुष की समस्त शक्तियों (विशेष रूप से क्रिया शक्ति) का भी संशोधन किया जाये तथा आत्मविकास एवं आत्मानुभव की दिशा में उनका सदुपयोग किया जाये ! यह कार्य सर्वतोपयुक्त ढंग से ध्यान-चिन्तन के साथ-साथ निष्काम कर्म एवं सेवा द्वारा ही सम्पादित किया जा सकता है।



आश्रम निर्माण के समय के चित्र।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



कभी-कभी वे अपने हाथों से रोटी बनाकर भक्तों को प्रेमपूर्वक खिलाते हैं।



स्वामीजी कुशल कार चालक भी हैं।

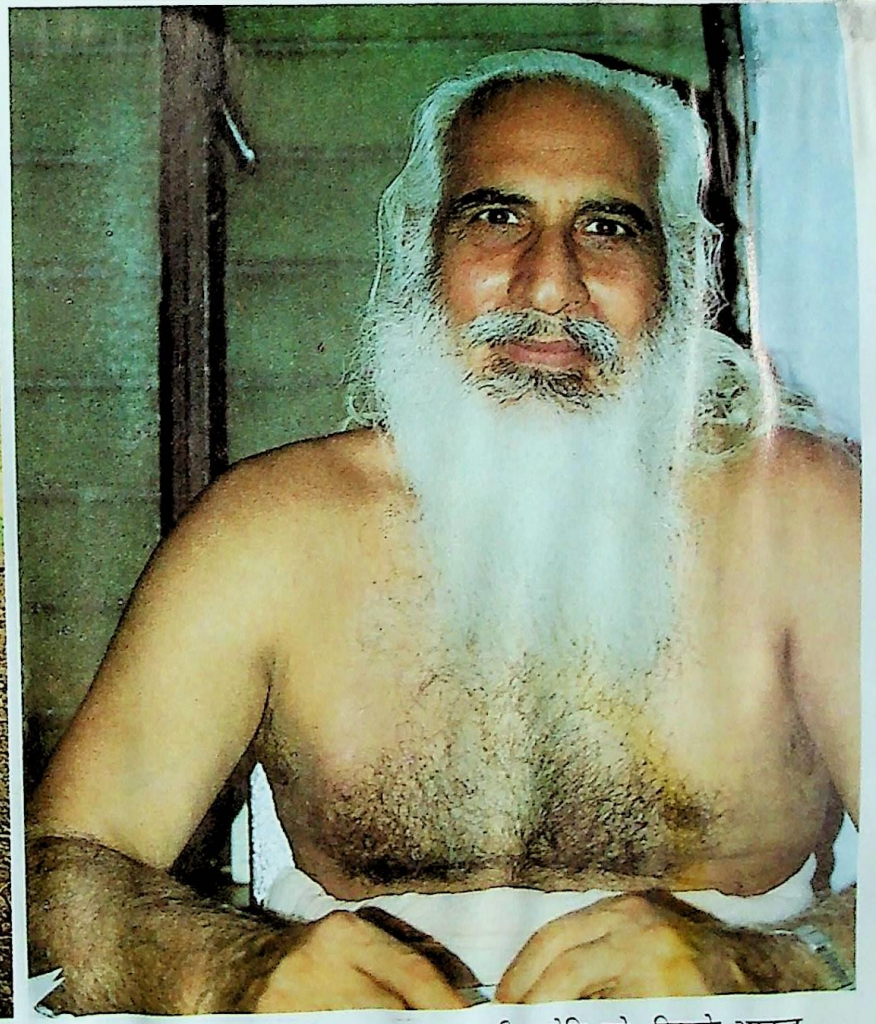
यह सदैव स्मरण रखना चाहिये कि कर्म आत्मा की समाहित नीरवता से प्रवाहित होना चाहिये, इच्छा के बीज से नहीं। यह कार्य अधिकाधिक निःस्वार्थ, असंगभाव सहित, अहंभाव से रहित होना चाहिये। इस विषय में सदा सावधान रहना होगा कि कोई भी कार्य कालातीत आत्मा के आन्तरिक ज्ञान-प्रकाश एवं आनन्द को आच्छादित न कर ले।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



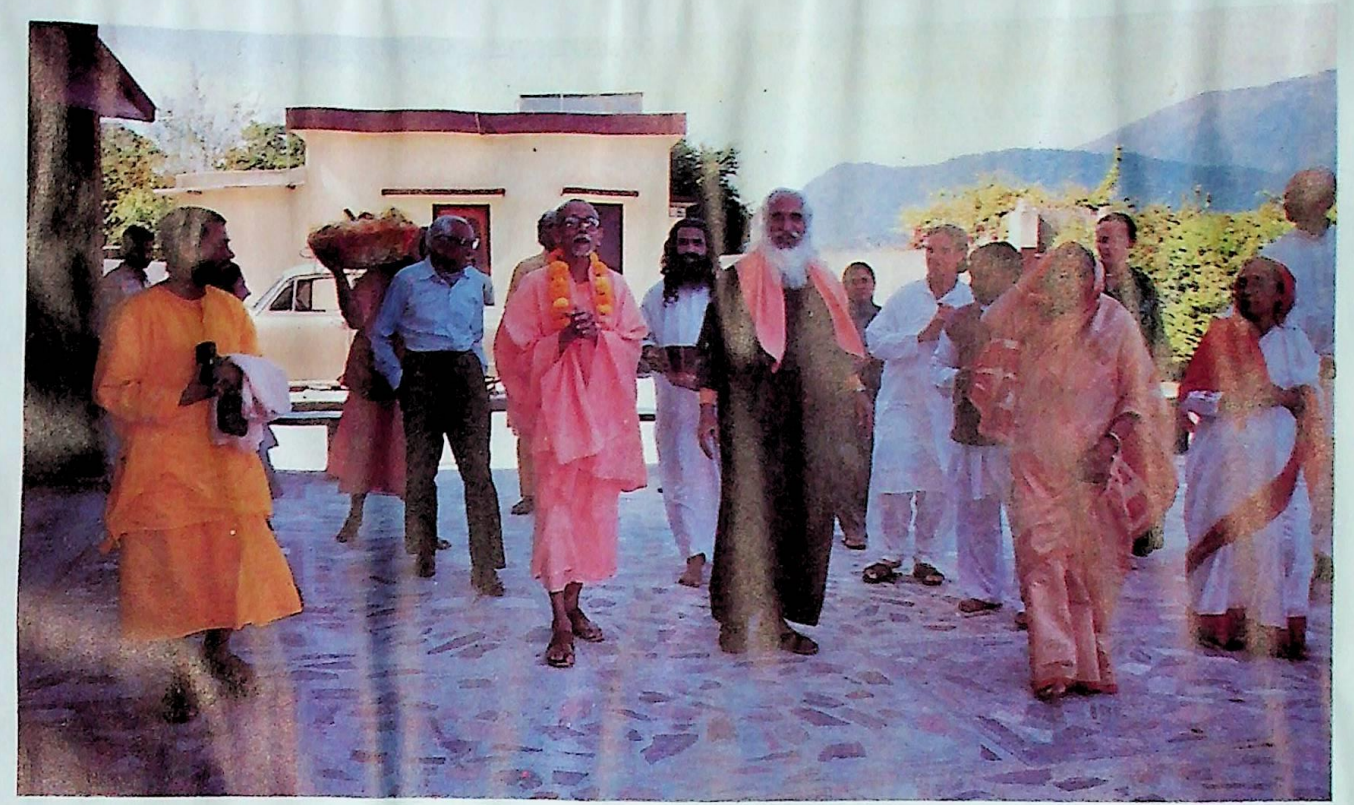
जैसे निवृत्ति साधना का क्षेत्र है वैसे ही प्रवृत्ति भी है। प्रवृत्ति को भोग का क्षेत्र अथवा साधन मानना ही भूल है। आप जहाँ कहीं भी हैं सत्य के साधक बनकर रहिये, फिर देखिये आपके जीवन में कैसी दिव्यता आती है!

चित्र में महाराजजी आश्रम के बाग-बगीचे की देखभाल कर रहे हैं।



सारा नामरूप जगत् जिस (परमात्मा) की ज्योति को, जिसके आनन्द को अभिव्यक्त नहीं कर पा रहा, उसे किसी विशेष प्राणी-पदार्थ में ही सीमित मान बैठना तो बड़ी संकुचित दृष्टि है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



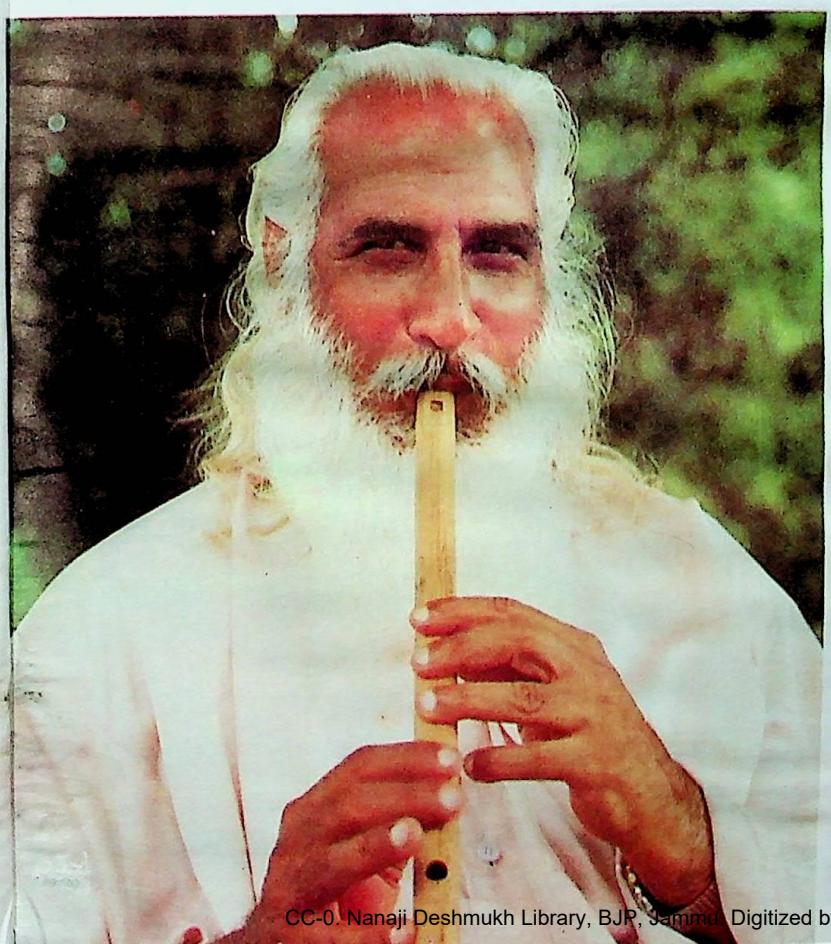
साधारण व्यक्ति एक सच्चे संत की आन्तरिक स्थिति को भला क्या जाने, समझे ! उसकी दृष्टि तो संत की वेशभूषा तथा रहन-सहन के बाह्य तौर-तरीके तक ही जा सकती है। सच्चे संत की पहचान तो केवल सच्चा संत ही कर सकता है।

शिवानन्द आश्रम, ऋषिकेश के परमाध्यक्ष पूज्य स्वामी चिदानन्दजी के साधना केन्द्र आश्रम में पधारने पर उनकी भक्तों के साथ प्रेमपूर्ण अगवानी करते महाराजजी।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



पदार्थ - परिस्थितियों का आकर्षण उनकी वास्तविकता जान लेने पर मिट जाता है परमात्मा का आकर्षण उनका बोध होने पर अपनी चरम पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है।



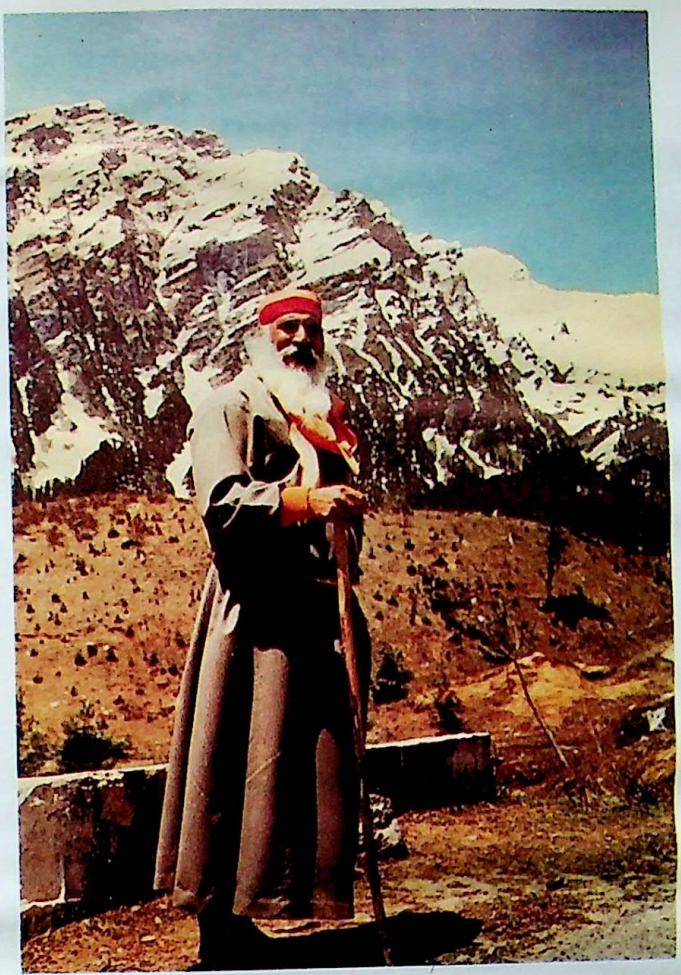
भक्तों का मन लुभाते, उन्हें बांसुरी सुनाते, उनके साथ यमुना तट पर आनन्द मनाते स्वामीजी।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



गुरु को कीजै दंडवत कोटि कोटि परनाम।
कीट न जाने भृंग को, कर ले आप समान॥
उनके श्रीचरणों की शोभा।

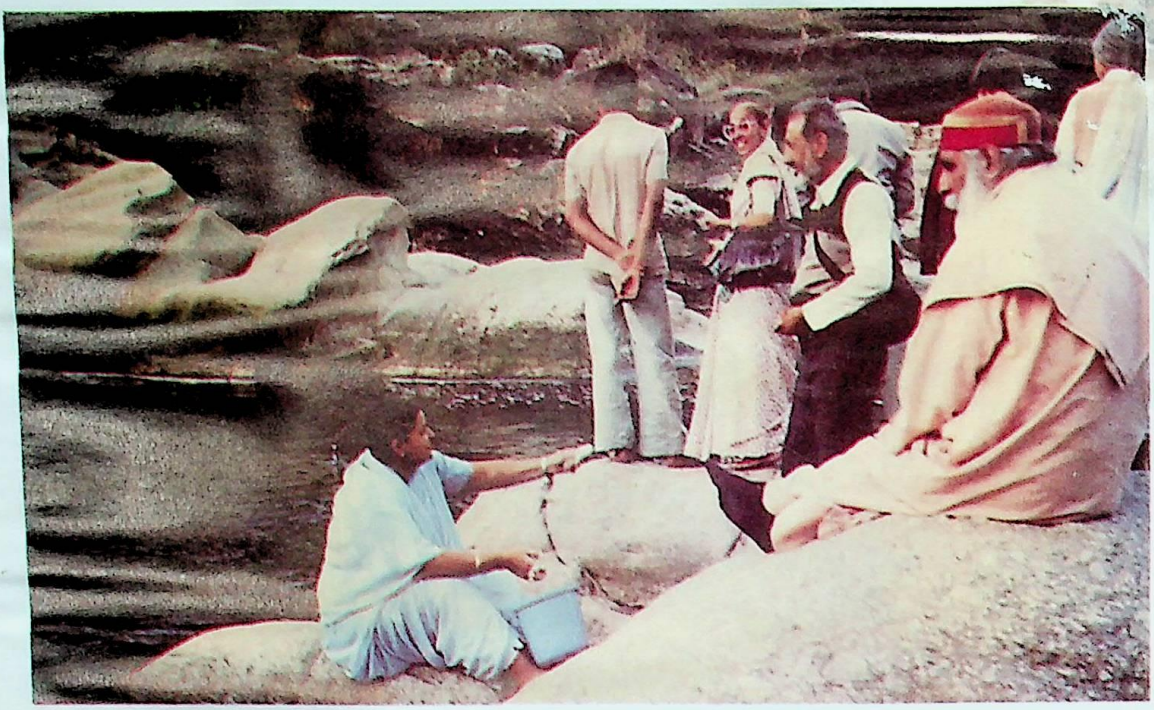
CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri





भक्तों के साथ कश्मीर यात्रा के दृश्य।

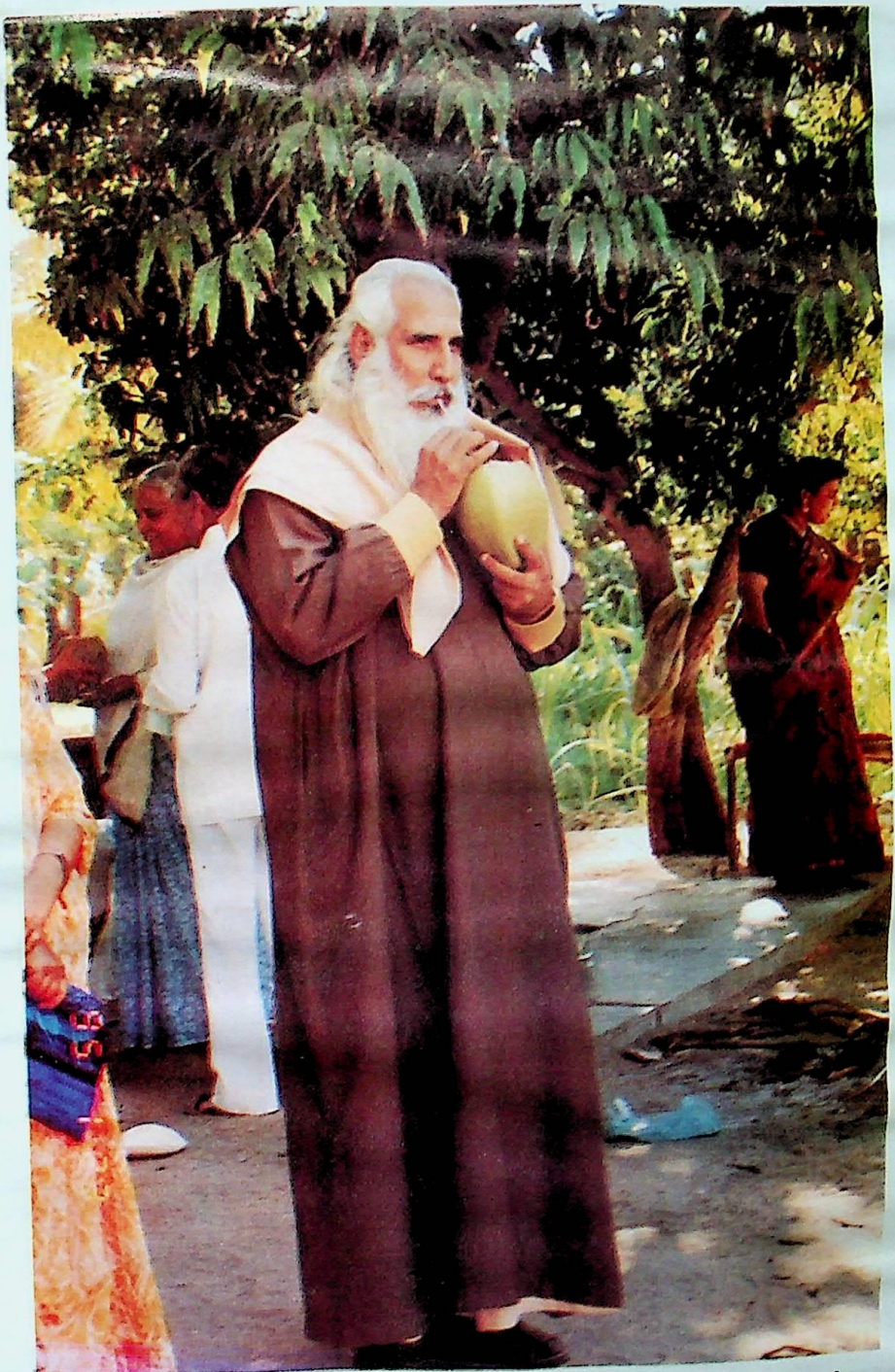
CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri





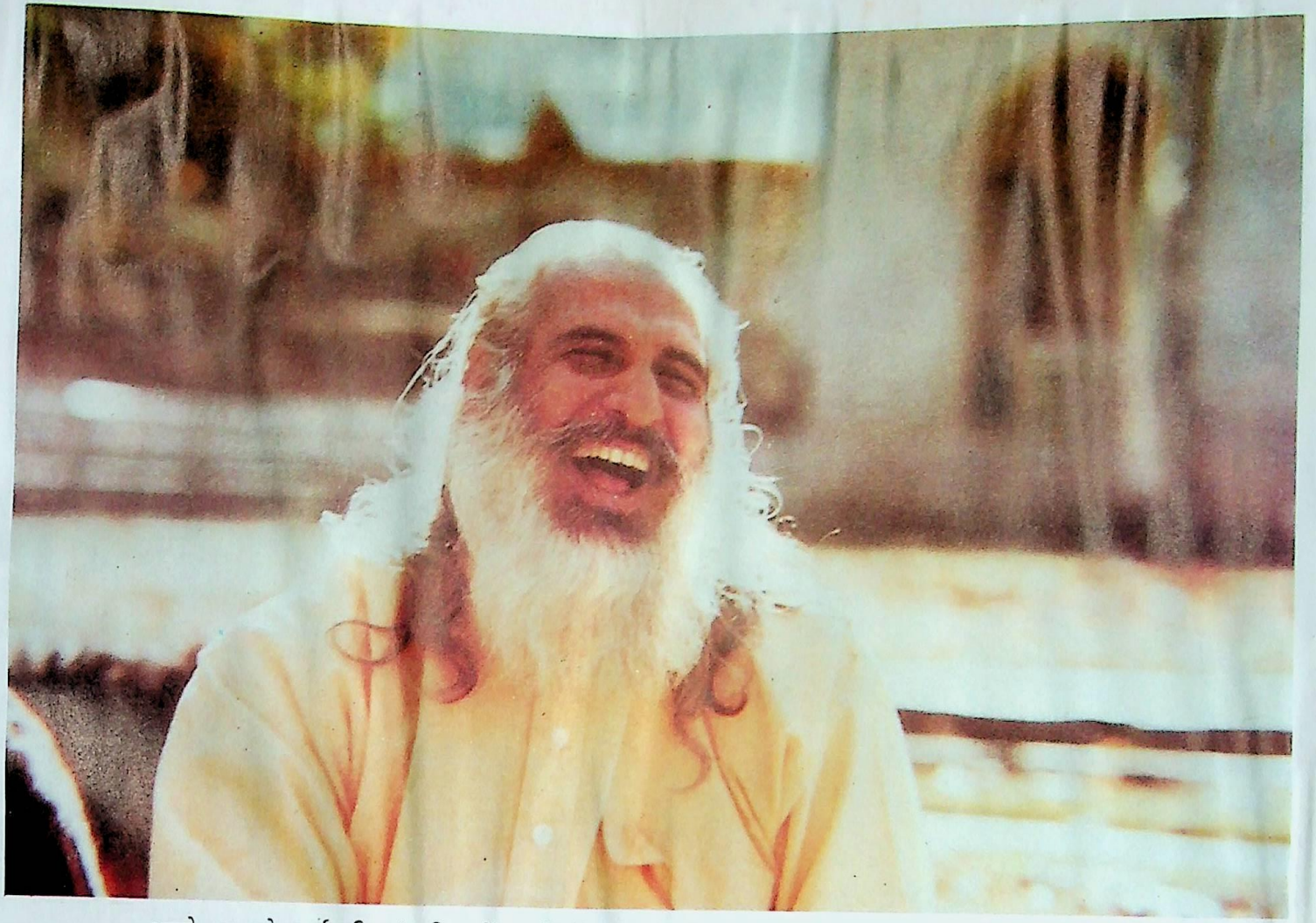
निःसर्ग प्रेमी महाराजजी

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



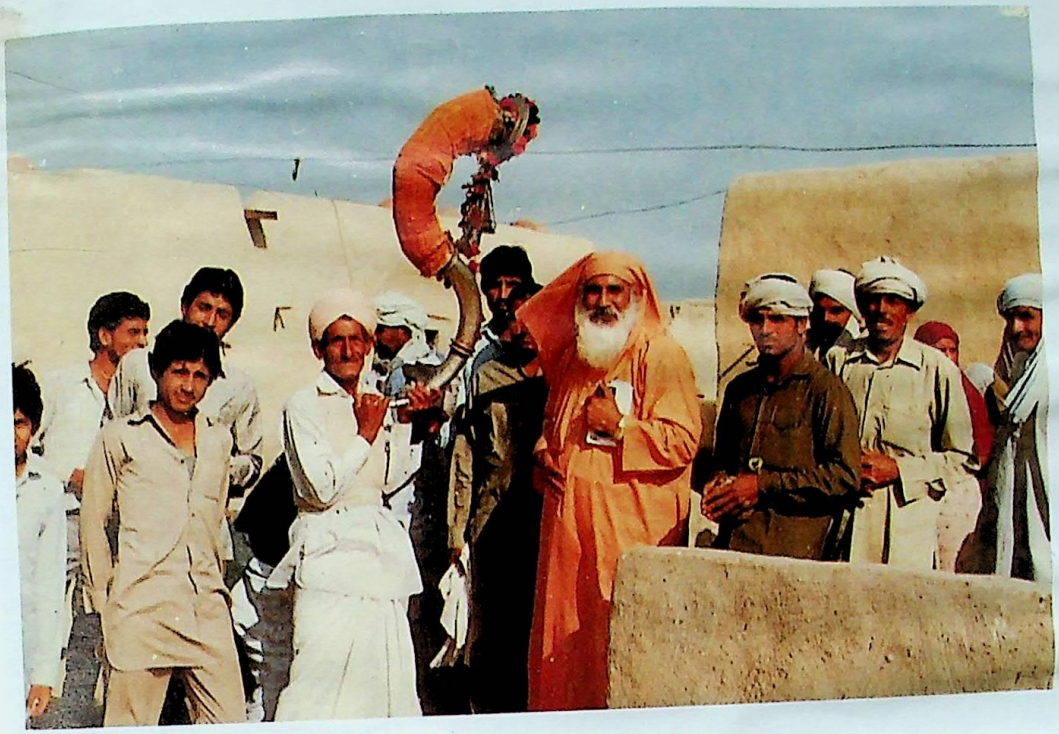
स्तुति और निन्दा से जिसका चित्त सुख और दुःख का अनुभव करता है, उसे समझ लेना चाहिये कि प्रभु के प्रति उसका आत्मदान अभी पूर्ण नहीं हुआ।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



अपने आपको व्यर्थ की सांसारिक चिंताओं में क्यों जलाते हैं ? जगत् में सब कुछ अस्थायी है, सब अनित्य है, सब बीत रहा है। दृढ़तापूर्वक प्रभु का पल्ला पकड़ लीजिये और निश्चिन्त हो जाइये।
उनके संक्रामक ठहाके।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

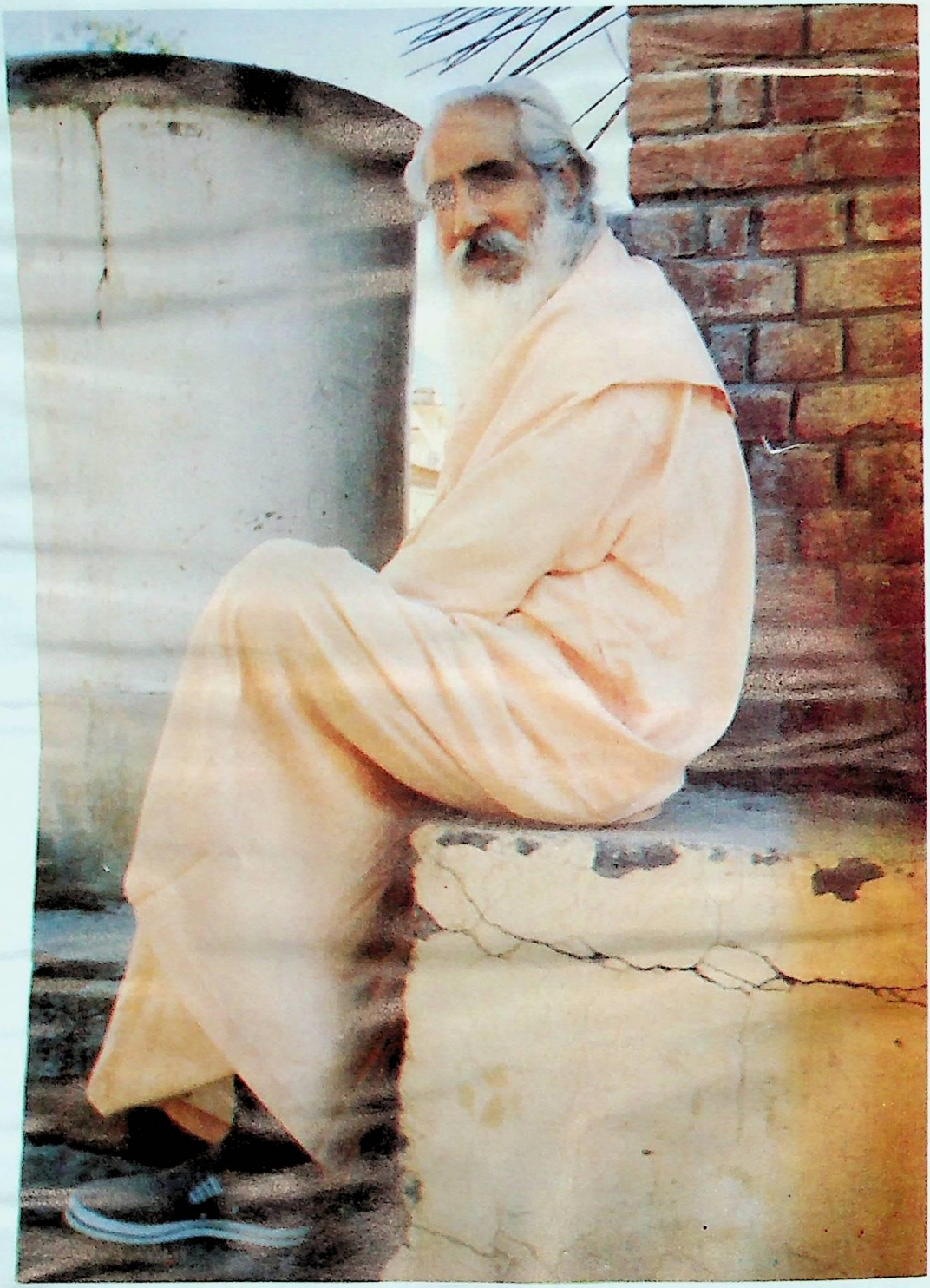


घर आयो प्रीतम प्यारा।
श्रीगंगानगर, राजस्थान के 13 FF मानकसर गांव में स्वामीजी के पधारने पर उन्हें बाबा भूमनशाहजी का प्रतिरूप समझने वाले सरल हृदय ग्रामवासी उनका दुन्दुभि बजाकर स्वागत कर रहे हैं।



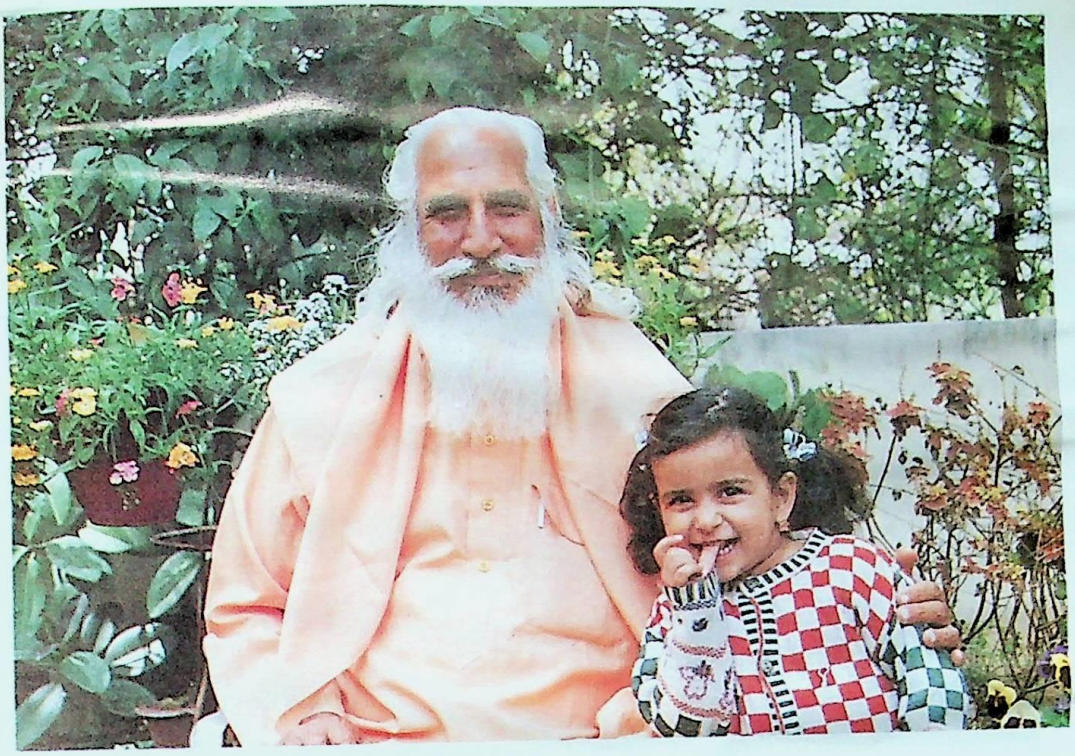
आशा और आश्वासन
उपरोक्त गांव की एक वृद्धा माता महाराजजी से अपने दुःख-सुख कह रही है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



जिस पद को पाने की इच्छा से देवता भी स्वयं को दीन अनुभव करते हैं; अहो! कैसा आश्चर्य है कि उस पद पर विराजमान योगी हर्ष नहीं करते। (निरहंकारी व सरल बने रहते हैं) — अष्टावक्रगीता

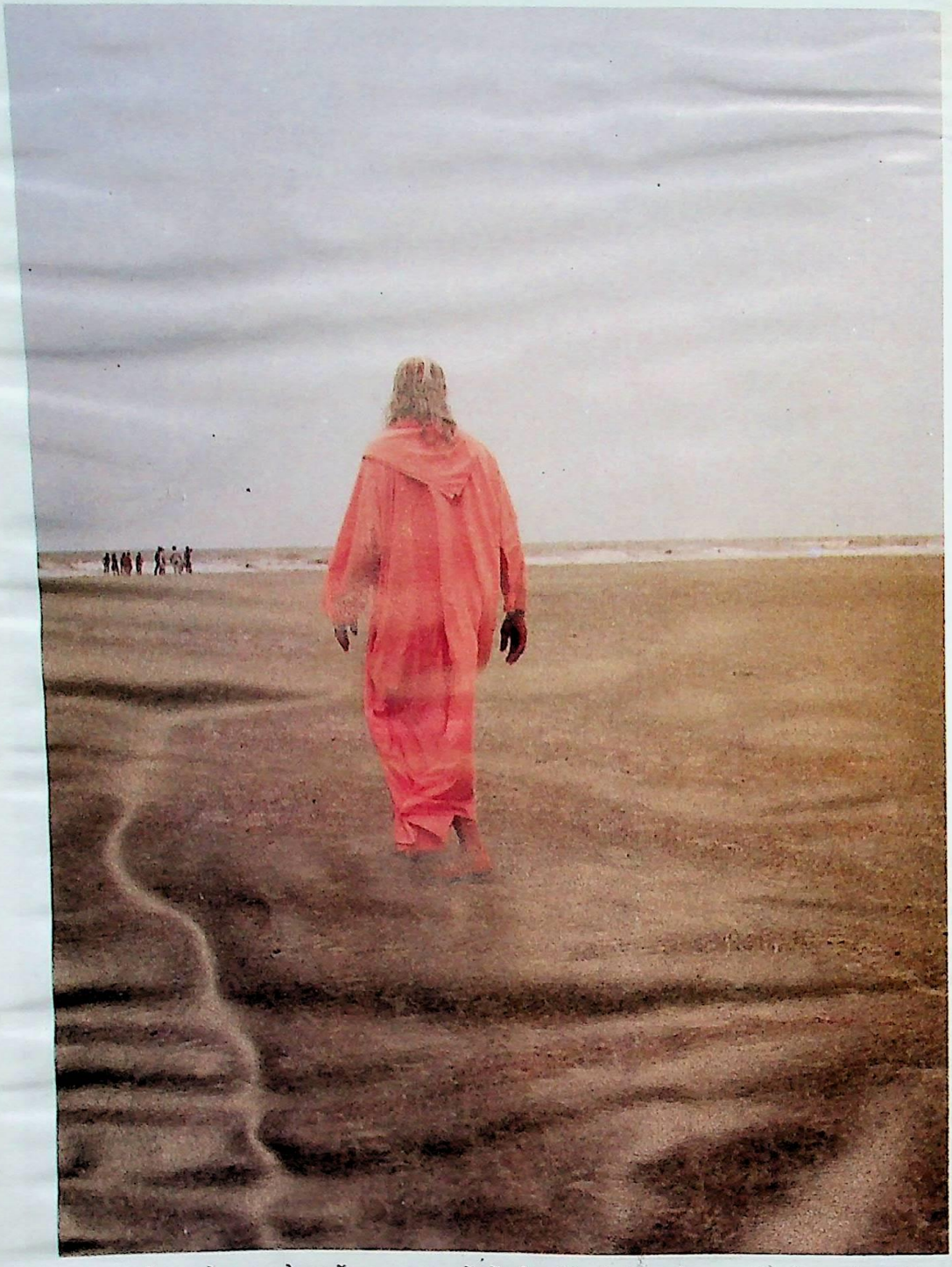
CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri





बच्चों के मीत, बच्चों सी प्रीत।
जब महाराजजी किसी भक्त के घर जाते हैं तो बच्चे उनसे ऐसे घुलमिल जाते हैं जैसे उन्हें उनका प्रिय मित्र मिल गया हो।

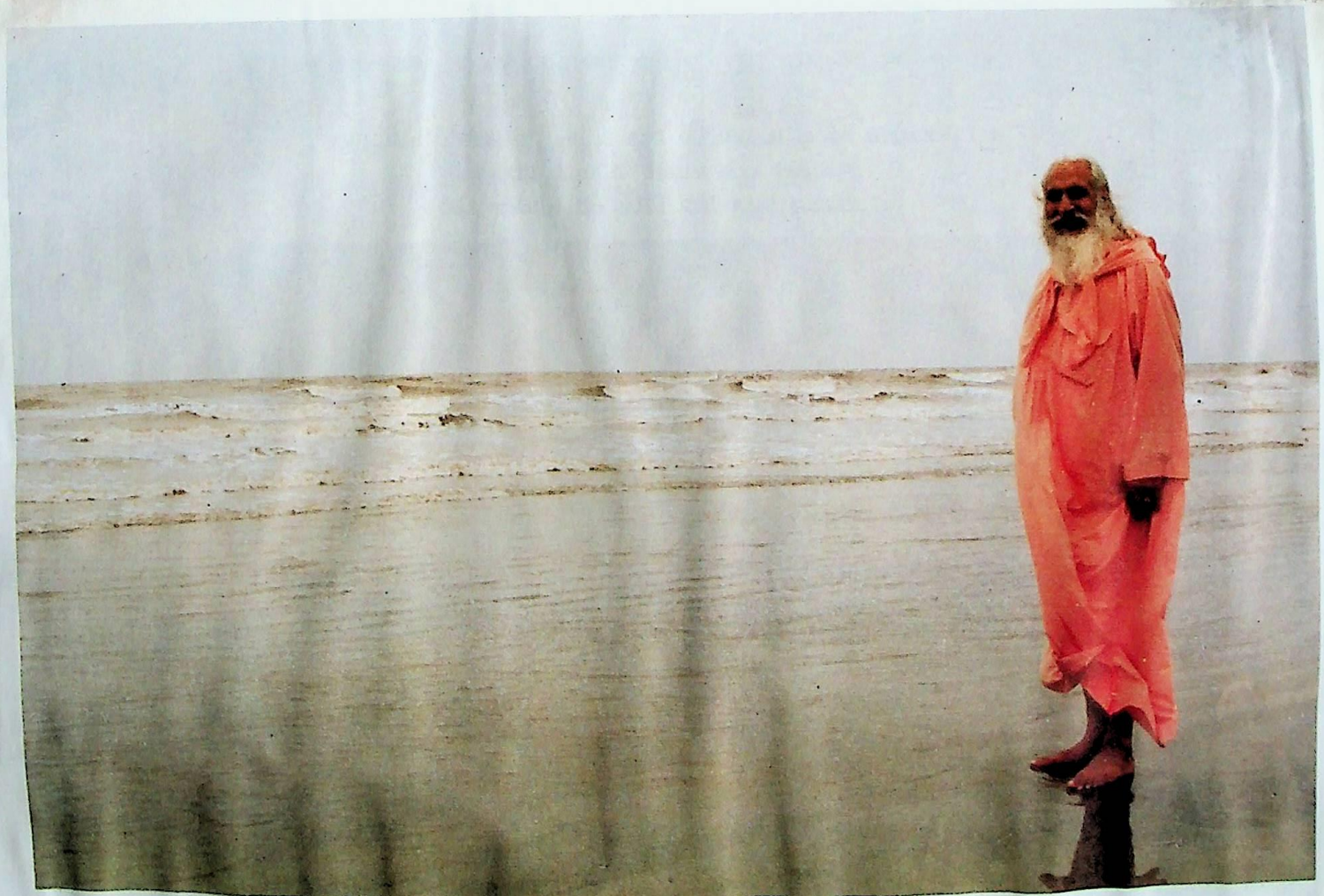
CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



क्या आपने अपने आपको कर्मों तथा सम्बन्धों में तो नहीं खो दिया है ? अपने जीवन से कर्मों एवं सम्बन्धों को निकालकर क्या आपने अपने शुद्ध अस्तित्व को कभी महसूस किया है ? कर्मों एवं सम्बन्धों से अलग होकर अपने आप से पूछो— मैं कौन हूँ ? कर्म और सम्बन्ध जब नहीं रहते तब भी जो अपना आप शेष रहता है उसे पहचानों। वही अमृत का अक्षय स्रोत है। वही है अनन्त जीवन की अखण्ड निधि।

गंगासागर तीर्थ के दर्शन करते हुए।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



ऐसे शरीर पर क्या अभिमान, जिसको चार दिन की बीमारी ही कुरुप कर दे ! ऐसी बुद्धि का क्या गर्व, जो मस्तिष्क पर चोट लगने से जवाब दे बैठे ! अरे, ऐसे जीवन पर ही कैसा घमण्ड, जो तीन मिनट वायु न मिलने पर समाप्त हो जाये। गंगासागर तीर्थ पर।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



ज्ञान समागम प्रेम सुख, दया भक्ति बिस्वास।
गुरु सेवा ते पाइये, सतगुरु चरन निवास॥
गाँधीधाम, गुजरात के भक्तों के बीच संकीर्तन रस में डूबे महाराजजी।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

समान रूप से अकारण, निर्मोही तथा निस्पृही प्रेमी हैं। सिद्ध पुरुषों का सबके प्रति अकारण प्रेम उनके आत्मानन्द का ऐश्वर्य है, उसकी रसमाधुरी है, अतः वह सदैव अनूठा और दिव्य होता है। वे आश्रम के कण-कण तथा प्रत्येक भक्त के हृदय में पुष्पों की सुरभि की तरह बसे हुये हैं।

उनका स्वभाव बच्चों जैसा सरल है। उनकी मूक उपस्थिति से किसी को कोई ईर्ष्या नहीं होती। बल्कि उनकी प्रेमावेशित उपस्थिति में ऐसा प्रतीत होता है मानो हम अपनी माँ के पास बैठे हों। अगर विशेष व्यस्त न हों तो वे सभी को आसानी से उपलब्ध रहते हैं। उनसे मिलने के लिये लम्बी-चौड़ी प्रक्रिया से गुजरना नहीं पड़ता। वे आश्रम परिसर में ही अपने प्रिय सेवक श्रीभगतजी से अक्सर बैड़मिंटन खेला करते हैं। पाँच-पाँच, छः-छः खेल लगातार। बालकों की तरह गुलाब-जामुन या अन्य मिठाईयों की शर्त भी लगाते हैं। फिर किसी-किसी प्वाइंट पर दस-दस मिनट विवाद भी करते हैं। उत्साह से भरे नवयुवक की तरह हर खेल जीतना चाहते हैं। अगर बेचारे भगतजी महाराजजी के स्वास्थ्य को ही ख्याल में रखकर अधिक न खेलना चाहें तो उनके लम्बे बाल और दाड़ी खींचकर उन्हें जबर्दस्ती मैदान में ले आते हैं और खेलने पर मजबूर करते हैं। रैफरी भी कोई सेवक ही होता है। कई बार महाराजजी रैफरी के निर्णय पर विरोध करके रैफरी ही बदल लेते हैं। खेल के दौरान मैदान के चारों ओर भक्तों का जमघट लगा रहता है।

भक्त पक्ष और विपक्ष में हूटिंग करके उनकी लीलाओं का आनन्द लेते रहते हैं। खेल समाप्त होते ही प्रभु कुर्सी पर बैठ जाते हैं। पर भगतजी व अन्य सेवक महाराजजी की सेवा में जुट जाते हैं। कोई उनके जूते उतार रहा है, कोई हवा कर रहा है, कोई पानी ला रहा है, कोई चरण दबा रहा है। प्रभु कुर्सी पर बैठे-बैठे किसी भक्त को छेड़ रहे हैं, किसी से हँसी कर रहे हैं—आनन्द का बाज़ार लगा रखा है।

फिर सायं के ध्यान की घंटी बजने पर खेलने के एकदम बाद ठीक समय पर अपना पसीना पोंछकर, अपने अस्त-व्यस्त बाल ठीक करके भजन हाल में अपने आसन पर पाषाणवत् स्थिर बैठकर गम्भीर ध्यान में डूब जाते हैं। खेल इत्यादि एकदम गायब ! उनका मन क्या है, एक बहुमुखी प्रतिभावाला कुशल व आज्ञाकारी सेवक है, जब चाहा जो काम ले लिया। महाराजजी प्रातःकाल का नाश्ता तथा दोनों

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

समय का भोजन सामूहिक हाल में सब भक्तों के साथ ही करते हैं। उनका भोजन बहुत संतुलित, सात्विक और अल्प मात्रा में होता है।

गुरुदेव बहुत विनोदप्रिय हैं। प्रायः भोजन हाल में, सैर के समय या सत्संग के समय ठहाकों से वातावरण गूँजता रहता है। वे जब जोर से खिलखिलाकर हँसते हैं तो जैसे फुलझड़ियाँ छूटी हों, जैसे संतूर बजा हो। उन्हें अगणित कहानियाँ और चुटकुले याद हैं। उर्दू के शेर भी बहुत याद हैं। गहन आध्यात्मिक अर्थों में इन सबका प्रयोग करके वे वातावरण को तो हल्का-फुल्का रखते ही हैं साथ ही सबको शिक्षा भी देते रहते हैं।

मज़ाक करना अथवा विनोद करना एक गहरी कला है और गुरुदेव इसमें बहुत प्रवीण हैं। सार्थक विनोद और छिछले, फूहड़, दूसरे का अपमान करने वाले तथा परस्पर कटुता पैदा करने वाले कथित मज़ाक में जमीन-आसमान का अन्तर है। उनका विनोद बहुत सकारात्मक होता है। उससे वातावरण में परस्पर सौहार्द और प्रेम का संवर्धन होता है, कटुता या किसी का अपमान या अवहेलना का नहीं। फिर कब, किससे और किस प्रकार का, किस सीमा तक विनोद करना है यह भी वे खूब जानते हैं। गुरुदेव जहाँ भी हों, जिस भी परिस्थिति में, परिवेश में हों वहीं से विनोद करने की सामग्री निकाल लेते हैं। उनका विनोद व्यक्ति के रोज़मर्रा के जीवन से जुड़ा होता है। अतः उनकी विनोदप्रिय प्रकृति वास्तव में उनका एक मौलिक गुण है और वह उनकी प्रफुल्लता, माधुर्य, सरलता, नित नूतन भाव तथा नश्वर जगत् को खेल मात्र, लीला मात्र जानने की ही अभिव्यक्ति है। जब उनका कोई भक्त किसी अप्रिय घटना के कारण उदास या निराश हो जाता है तो वे अक्सर कहा करते हैं — इस परिवर्तनशील और नाशवान जगत् में परमात्मा के अतिरिक्त अन्य किसी भी पदार्थ-परिस्थिति को गम्भीरतापूर्वक न लें। पुस्तक के पृष्ठ 174 के बाद के चित्रों में ठहाका लगाते हुए पाठक उनका चित्र देखेंगे तो उनकी यह बात खूब समझ में आ जायेगी।

अपने सेवकों से उनकी इतनी गहरी आत्मीयता है कि एक बार जब किसी ने उनसे उनके परिवारजनों के बारे में पूछा तो उन्होंने मुस्कुराकर लिख दिया कि आस-पास बैठे सेवक ही उनके परिजन हैं। सुनते हैं भगवान इसा ने भी इस प्रकार के प्रश्न का ऐसा ही उत्तर दिया था।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

स्वामीजी अपने सम्पर्क में आने वाले सभी व्यक्तियों के प्रति बहुत विनम्र, प्रेमपूर्ण और सम्मान का भाव रखते हैं। उनके सम्पर्क में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति को वे अपने मूक प्रेम और मुस्कुराहटों से सराबोर कर देते हैं। विनम्र इतने हैं कि एक छोटे से बच्चे को भी पूरा समय देते हैं। अक्सर छोटे बच्चे उनको पत्र लिखकर अपने बड़े भाई-बहनों और माता-पिता की शिकायतें लगाया करते हैं; सफेद दाढ़ी वाले महाराजजी के साथ इतनी एकात्मता अनुभव करते हैं तथा उन पर इतना विश्वास करते हैं कि अपने हृदय की सभी बातें उनसे कर लेते हैं। बड़े मज़े की बात है कि माता-पिता महाराजजी से अपने बच्चों की शिकायतें करते हैं और बच्चे उनसे अपने माता-पिता की। महाराजजी भी बच्चों के पत्रों के उत्तर अवश्य देकर उनका यथायोग्य मार्गदर्शन करते हैं। एक बार एक विद्यार्थी उनसे कहने लगा कि मैं आजकल हनुमानजी से प्रार्थना कर रहा हूँ कि वे मुझे अमुक परीक्षा में पास करवा दें। महाराजजी ने एकदम लिखकर दिया कि परीक्षा में अच्छे अंक लेने के लिये कठोर परिश्रम भी करना होगा। वरना क्या यह न्यायोचित है कि हनुमानजी आपको तो बिना परिश्रम के ही पास करवा दें तथा जो विद्यार्थी कठोर परिश्रम कर रहे हैं उन्हें फेल होने दें। बस उस विद्यार्थी के चित्त में तुरन्त ही कठोर परिश्रम की महत्ता आलोकित हो उठी।

अक्सर जब महाराजजी किसी आगन्तुक का स्वागत करते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है मानो देह की खोल में छिप रहे साक्षात् भगवान का ही स्वागत कर रहें हों। बार-बार आग्रह करके स्वयं अल्पाहार परोसते हैं। कई बार सामूहिक भोजन के समय भी बाल्टी लेकर सभी भक्तों को भोजन परोसते हैं। भक्तगण भी अहोभाव से प्रभु के हाथ से प्रसाद ग्रहण करते हैं। फिर कभी मौज आ जाये तो स्वयं अपने हाथ से जलेबी बनाकर भक्तों को खिलाते हैं अथवा अपने हाथ से रोटी बेलकर हँसी-मज़ाक करते हुए, स्वयं पकाकर सबको खिलाते हैं। भक्त उनकी माधुरी लीलाओं का जी भरकर रसास्वादन करते हैं। वे रसेश्वर हैं सो आनन्द-रस का उनके द्वारा सहज ही वितरण होता रहता है।

सेवक निवास में कितनी ही बार भक्तों को लेकर 'हर की पौड़ी' के दर्शन करवाकर पास के बाजार में सबको ठण्डी लस्सी अथवा अन्य कोई मिष्ठान खिलाने ले जाते थे। आश्रम में आने वाले साधु-संतों तथा अतिथियों के लिये तो वे और भी

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

सजग और नम्र हो जाते हैं। उनके कमरों में साबुन, तौलिया, बाल्टी, बिस्तर, पानी आदि की स्वयं व्यवस्था सुनिश्चित करते हैं। भोजन के समय उन्हें विशेष सम्मान से बिठाकर स्वयं उनकी आवभगत करते हैं। वस्तुतः वे कोमलता और माधुर्यभाव के साक्षात् विग्रह हैं।

उनके वात्सल्य भाव की अगणित लीलाओं में से हम एक छोटी सी घटना यहाँ दे रहे हैं—

जम्मू के सरदार चरनजीतसिंहजी स्वामीजी के सेवक हैं। यह घटना स्वयं उन्होंने हमें बतायी थी। उनकी वयोवृद्ध माता रामप्यारीजी भी महाराजजी की अनन्य भक्ता हैं। जब वे छोटे थे तो अक्सर महाराजजी के पास गुफा में जाकर कुछ समय व्यतीत किया करते थे; उनके साथ खेला करते थे, भोजन भी करते थे। कभी-कभी महाराजजी आमंत्रित होकर उनके घर भी जाया करते थे। सन् 1964 में जब श्रीचरनजीतसिंहजी का विवाह हुआ तो वे अपनी नवविवाहिता पत्नी को लेकर महाराजजी के पास हरिद्वार के जंगली टापू में उनका आशीर्वाद लेने पहुँचे।

वे उनकी झोंपड़ी पर दिन के करीब डेढ़ बजे पहुँचे। उस समय गुरुदेव मौन में थे। उनकी कुशल क्षेम पूछने के बाद उन्होंने श्रीमतीहरदर्शन बहन को इशारे से भोजन तैयार करने को कहा। दो बजे उनके मौन समाप्त होने पर सबने मिलकर प्रेम से भोजन पाया। चूँकि वे थके हुए थे, स्वामीजी ने उन्हें भोजन के बाद कुछ विश्राम करने की सलाह दी। पति-पत्नी आराम करने के लिये साफ-सुथरी भूमि पर ही लेट गये। करुणासिन्धु प्रभु अपने हाथ से पंखा लेकर उन्हें हवा करने लगे। तुरन्त ही दोनों को गहरी नींद आ गयी। लगभग डेड़ घण्टे के बाद जब श्रीचरनजीतसिंहजी की आँख खुली तो क्या देखते हैं कि गुरुदेव अभी तक भी ममत्व भाव से उन दोनों को हाथ से पँखा कर रहे हैं। विस्मय मिश्रित अहोभाव से उनके अश्रु छलक आये। फिर जब लौटने का समय हुआ तो स्वामीजी उन्हें झोंपड़ी से गंगाजी की अन्तिम धारा तक छोड़ने भी आये।

प्रायः कुछ अंधेरा हो जाने पर गुरुदेव को अपने सेवकों को झोंपड़ी से गंगाजी तक छोड़ने आना पड़ता था। कई सेवकों को तो गंगाजी की धारा स्वयं हाथ पकड़कर पार करवाकर आते थे। उनके माधुर्य और प्रेम की अगणित घटनायें भक्तों के हृदय पर सदा के लिये अंकित हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

गुरुदेव में एक और बहुत दुर्लभ गुण है, और वह है सौम्यता और उदारता का। वे सदैव सामने वाले व्यक्ति की भावनाओं का पूरा सम्मान करते हैं, कभी भी अपनी राय या निर्णय दूसरों पर नहीं थोपते। उनकी वाणी की शैली भी सुझाव देने जैसी होती है न कि आदेशात्मक या निर्णयात्मक।

दूसरों को उपदेश देने की, उन्हें शिष्य बनाने की अथवा उन्हें स्वयं से किसी भी प्रकार से हीन समझने की तो उनमें जरा भी भावना नहीं है। किसी अन्य सन्दर्भ में गुरुदेव ने लिखा है,"जिस गुण की पूर्णता हो जाती है उसका अभिमान नहीं रहता।" अतः स्पष्ट ही प्रतीत होता है कि उनमें नम्रता और निरहंकारिता के गुण पूर्णता की सीमा तक विकसित हुये हैं। वे दूसरों के जीवन में कभी हस्तक्षेप नहीं करते चाहे कोई उनका कितना ही आत्मीय हो। हस्तक्षेप की बात तो दूर हमने उन्हें किसी को अपनी ओर से कोई आग्रह या सुझाव देते हुये भी नहीं देखा। परमात्मा की ही तरह अगर कोई व्यक्ति उनसे उन्मुख होने की इच्छा रखे तो वे उसे पूरे उपलब्ध हैं। किन्तु अपनी ओर से वे किसी पर कुछ नहीं थोपेंगे। परमात्मा की ही तरह वे तो बस मात्र 'हैं'—मूक आनन्द की तरह, पूर्ण चन्द्र की शीतलता की तरह, मन्द-मन्द बहती वासन्ती बयार की तरह, मद्धम प्रकाश में झंकृत होते मधुर संगीत की तरह! और ग्राह्यशील हृदयों के लिये उनसे विकीर्ण होने वाला आनन्द कितना संक्रमणकारी है!

अब जरा देखें कि उनकी आध्यात्मिकता उनके दैनिक क्रिया-कलापों में किस प्रकार घुलमिल गयी है। जीवन के प्रति स्वीकार्य भाव और लचीलापन उनके महान् सद्गुण हैं। कितनी सहजता से वे कठिन से कठिन परिस्थितियों को झेल लेते हैं! कितनी आसानी से वे उन्हें दुर्लभ अवसरों में बदल देते हैं! जीवन के महान् रंगमंच पर सुख-दुःख, अवहेलना, संयोग-वियोग, सुविधायें-कठिनाइयाँ, भीड़-एकान्त, मौन-मुखरता, क्रियाशीलता- क्रियाहीनता, बीमारी-स्वास्थ्य, युवावस्था-वृद्धावस्था आदि-आदि कितने ही द्वन्द्वात्मक भावों को स्वीकार करके वे उन सबके निःसंग साक्षी बने रहते हैं। वे मानो विशाल शिलाखण्ड हैं जिन पर सभी तरह की परिस्थितियों की तेज बौछारें टकराकर बिना कोई क्षोभ उत्पन्न किये नीचे को बह जाती हैं। और फिर साथ ही व्यावहारिक दृष्टि से एकदम निरभिमानी और पूर्वाग्रहों से रहित हैं। निरभिमानी तो इतने हैं कि उन पर चाहे जिस भाव का अध्यारोप कर लो, वैसे ही बन जाते हैं; मानो रंगहीन जल की तरह हैं जिसमें जिस भी रंग की डली डालो

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

उसी रंग का हो जाता है। इसी कारण उन्हें बच्चों,बूढ़ों,शिक्षित,अशिक्षित आदि— सभी प्रकार के लोगों से संवाद करने में कोई कठिनाई नहीं होती।

पूरे जीवनभर वे कभी सांसारिक माया के पीछे नहीं भागे। बल्कि माया ही इनका निष्ठापूर्वक अनुगमन करती रही। वे सदैव एक दिव्य राजकुमार की भाँति रहे। एक बार किसी प्रश्न के उत्तर में उन्होनें लिखा—

"मेरा आरम्भ से ही ऐसा भाव (attitude) रहा कि मैंने कभी शारीरिक सुविधाओं की खोज नहीं की, न ही उनके पीछे भागा। लक्ष्य एक ही रहा कि भजन-साधन अधिक से अधिक कर सकूँ। उस दृष्टि से जैसी भी परिस्थिति आती रही, उसमें अपने आपको adjust करता रहा। परन्तु यदि कोई ऐसी वस्तु मिली जो भजन में बाधक न होकर सहायक हो सकती थी, तो उसे स्वीकार भी करता रहा। साधना की दृष्टि से शरीर को कष्ट देने में मेरी कभी आस्था नहीं रही। परन्तु यदि भजन-साधन के लिये कभी शरीर को कष्ट होने की परिस्थिति आ गयी तो उसे भी स्वीकार किया।"

"तप की मनोवैज्ञानिक परिभाषा ने ही मुझे अधिक आकर्षित किया, जिसमें मन के आवेगों को सहना और उनमें अविचलित रहना होता है। मैं झाड़ी में भी रहा तो सब ऐसे साधन वहाँ भी उपलब्ध थे। कुकर भी था, स्टोव भी था, थर्मस भी था, सोने की कुटिया अलग थी, भजन की कुटिया अलग थी, आदि-आदि।"

अतः हम पाते हैं कि अरण्यवास की कठिन परिस्थितियों में भी जीवन के प्रति, अपने ध्येय के प्रति उनका दृष्टिकोण कितना सुलझा हुआ, प्रगतिशील व व्यावहारिक था। जंगल में रहते हुये भी जीवन के सच्चे उद्देश्य, साधना के प्रति उनका वैज्ञानिक दृष्टिकोण था। वस्तुतः असार मिश्रित सारतत्व में से केवल सार-सार को अलग करने में वे अध्यात्म के राजहंस हैं। इसी कारण वे दुराग्रह, रुढ़ियों और कोरे आत्माविहीन कर्म-काण्डों से कोसों दूर हैं। अरण्यवास के कई वर्षों बाद किसी भक्त ने सेवक निवास में उनसे प्रश्न किया कि वे जंगल में अधिक सुखी थे या यहाँ सेवक निवास हरिद्वार में। तो प्रभु ने मुस्कुराते हुये उत्तर दिया, "मेरे सुख में जंगल से यहाँ आ जाने से कोई अन्तर नहीं पड़ा। अगर सुख किसी परिस्थिति विशेष के आश्रित हो तो वह सच्चा सुख नहीं है। वह तो उस परिस्थिति का सुख है। परिस्थिति विशेष न रह जाने से वह सुख भी नहीं रहेगा। सच्चा सुख अथवा आनन्द किसी बाहरी

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

परिस्थिति पर निर्भर नहीं करता। आनन्द जीव को केवल परमात्मा के अनुभव में प्रतिष्ठित होने से मिलता है।"

उन्हें आप जब भी मिलेंगे, हमेशा तैयार, तरोताज़ा व प्रफुल्ल पायेंगे जैसे अभी-अभी स्नान करके, केश और दाढ़ी संवार कर निकले हों। हमेशा स्वच्छ चोला पहने हुए उनकी अंग कान्ति और भी उद्‌भासित हो उठती है।

प्रभु की सभी के प्रति समदृष्टि रहती है। लेकिन आज के राजनीतिज्ञों की तरह समानता से उनका अर्थ भिन्न-भिन्न क्षमता वाले सभी लोगों को एक जैसा मानना नहीं है। वास्तव में समान क्षमतावान लोगों से असमान व्यवहार करना उतना ही अनुचित है जितना असमान क्षमतावान लोगों से समान व्यवहार करना। वे तो सदैव प्रत्येक के साथ यथायोग्य व्यवहार करते हैं। उनकी प्रसिद्ध उक्ति पुनः ख्याल में आती है—

"प्रत्येक वस्तु के लिये स्थान रखें।
प्रत्येक वस्तु को उसके स्थान पर रखें।"

यह उक्ति परस्पर मानवीय सम्बन्धों पर भी पूरी चरितार्थ होती है और हमें आपस में सम्यक् व्यवहार करने की कुंजी प्रदान करती है। लौकिक आचार-विचार के समय उनकी एकरस दिव्य भाव-भंगिमा में कभी उतार चढ़ाव नहीं आता। हजारों भक्तों के आराध्य होने के कारण सभी उनके पास अपनी-अपनी परेशानियाँ, चिंताएं और खुशियाँ लेकर सदा आते रहते हैं। नीलकण्ठ भगवान शंकर की भाँति वे सबकी बातें अपने में समाते रहते हैं। भक्तगण उनके पास जीवन के प्रत्येक महत्वपूर्ण अवसर पर आते हैं—जन्म-मरण, विवाह, हानि-लाभ आदि-आदि। प्रभु उन्हें सदा व्यावहारिक और सुलझी हुई सलाह देते हैं। एक सेवक अपने एकमात्र पुत्र के जन्मदिन की मिठाई लेकर आया है। अगले ही पल एक भक्त अपने इकलौते पुत्र की मृत्यु का समाचार ले आया है। प्रभु दोनों को स्वीकार कर रहे हैं। इस मरणधर्मा जगत् की प्रकृति से ख़ूब परिचित हैं तथा स्वयं शान्त, अविनाशी, अनन्त, सुखस्वरुप परब्रह्म में नित्य स्थित हैं। हालाँकि वे मृत्यु को जीवात्मा का चोला बदलने हेतु मात्र एक मूर्छा के रुप में जानते हैं, केवल शास्त्रीय ज्ञान के आधार पर नहीं बल्कि स्वानुभव से। तो भी, मानो कुछ समय के लिये वे संतप्त परिवार के दुःख, उनकी पीड़ा में सम्मिलित हो जाते हैं। लेकिन साथ ही साथ परिजनों को यह दुःख सहन करने की आंतरिक शक्ति

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

भी प्रदान करते हैं। इन अवसरों पर अक्सर वे वैराग्योद्दीपक शब्दों द्वारा मोह-माया में सोये जीवों की गहन मूर्छा भी तोड़ने का प्रयास करते हैं।

हमनें देखा है कि ऐसे मौकों पर महाराजजी द्वारा सांत्वना के लिखे दो-चार शब्द ही दुःखी भक्तों के हृदयों को शीतलता और सहारा प्रदान कर जाते हैं मानो ग्रीष्मकाल में कटी-फटी, दग्ध मरुभूमि पर शीतल फुहारें बरस गयी हों।

सन् 1992-94 की अवधि में गुरुदेव का शरीर बहुत रुग्ण था। शरीर में भयंकर वेदना होती थी। मौन तो चल ही रहा था। वेदना की अवधि में भी वैसे ही चलता रहा। वे डॉक्टरों के परामर्श के अनुसार सब दवा लेते थे और अन्य बातों का भी ध्यान रखते थे। किन्तु सारे शारीरिक कष्ट को उन्होंने बहुत शान्ति और सहजता से स्वीकारा। अपने कष्ट के कारण कभी वातावरण को भारी नहीं होने दिया। बहुत कष्ट होने के बावजूद भी मुस्कुराते रहे। श्रीभगवान के विधान के प्रति कैसी नम्रता! कैसा स्वीकार्य भाव! और रोगाक्रान्त मानवता के प्रति कैसा जीवन्त संदेश!

वे महान् दाता हैं और महान् क्षमादाता भी। किसी को कुछ देते हैं तो किसी को भी पता नहीं लगने पाता—कई बार तो लेने वाले को भी नहीं। और किसी को देते हैं तो इतनी नम्रता से कि मानो लेने वाले का वह अधिकार हो। हमें कितनी ही घटनाओं का बाद में पता चलता रहता है कि कैसे-कैसे गुरुदेव ने भक्तों की आर्थिक व अन्य प्रकार की सहायता की या करवायी। उनके देने के तरीके पर किसी भक्त-कवि की निम्न पंक्तियाँ स्मरण हो आती हैं :

देने वाले ने दिया, तो दिया भी किस शान से,
'मेरा है', लेने वाला, यह कह उठा अभिमान से।

और जब किसी को क्षमादान देते हैं तो वह व्यक्ति उनके व्यवहार से पूरा आश्वस्त हो जाता है कि प्रभु ने मेरी गलती क्षमा कर दी। वह निर्भय और सहज हो जाता है। वैसे भी गुरुदेव के सभी भक्तों, विशेषकर भारतीय भक्तों का यह अनुभव रहता है कि उनकी भौतिक, सामाजिक, मानसिक व आध्यात्मिक उन्नति का एक मात्र कारण गुरुदेव की अहेतुकी कृपा ही है। और यह सत्य भी है, सत्य भी है, प्रियात्मा पाठकों!

रूढ़िवादी लोगों की तरह महाराजजी की दृष्टि में छुआछूत व भेदभाव जरा भी नहीं है। आश्रम के साथ में ही बंगाली बस्ती के नाम से एक बस्ती है। उसमें रहने

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

वाले लोग शिकार करके, भीख माँगकर तथा सांप, बन्दर आदि पकड़कर उनके तमाशे दिखाकर अपनी आजीविका चलाते हैं। गाँव में कई लोग उन्हें बड़ी हीन दृष्टि से देखते हैं। किन्तु महाराजजी उनसे सदा प्रेम और बराबरी का व्यवहार रखते हैं। उनकी बस्ती से एक बच्चे को पालपोसकर तथा बड़ा करके उसे आश्रम में नौकरी भी दे रखी है। आश्रम के भण्डारों में ये लोग सभी के साथ मिल बैठकर सेवा भी करते हैं तथा प्रसाद भी पाते हैं। अन्य अवसरों पर भी महाराजजी के आदेश से आश्रम उनकी कई प्रकार से सेवा करता है। उनके छोटे बच्चों के लिये महाराजजी ने एक छोटा सा विद्यालय भी चला रखा है। क्या आश्चर्य कि बंगाली बस्ती के सभी निवासी भी महाराजजी के प्रति बहुत आत्मीयता और श्रद्धा रखते हैं।

प्रसंगवश बताना चाहते हैं कि एक बार एक विदेशी भक्त ने महाराजजी से पूछा,"क्या आप वर्ण व्यवस्था में विश्वास करते हैं ?" महाराजजी ने तुरन्त लिख दिया,"गुण-कर्म के आधार पर 'हां' पर जन्म के आधार पर नहीं।" आपका मानना है कि हर देश और समाज में सत्वगुण प्रधान ब्राह्मण वृत्ति, वीरता प्रधान क्षत्रिय वृत्ति, व्यवसाय व स्वार्थ प्रधान वैश्य वृत्ति तथा जड़ता-मूढ़ता प्रधान शूद्र वृत्ति के लोग होते हैं। हालांकि ये चारों ही वृत्तियां न्यूनाधिक मात्रा में सभी में होती हैं किन्तु सबमें किसी एक वृत्ति की अन्य वृत्ति की अपेक्षा प्रधानता होती है। वह प्रधान वृत्ति ही व्यक्ति का वर्ग/वर्ण निर्धारित करती है। अतः यह वर्गीकरण एक प्रकार से प्राकृतिक है। कोई माने या न माने—यह समाज में रहता ही है। किन्तु इन सबके बाद भी आप मानव-मानव के बीच प्रेम व समानता के प्रबल पक्षधर हैं। आपके जीवन संगीत में तो इन गुणों के मधुर स्वर सदा ही सुनायी पड़ते रहते हैं।

गुरुदेव काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा ईर्ष्या रूपी पाँचों महाविकारों से सदा ही मुक्त हैं। हालाँकि वे कभी कोई चमत्कार आदि न दिखाने का दावा करते हैं किन्तु हमें इससे बड़ा चमत्कार और कोई नहीं दिखाई देता कि मन जैसी कठिन तथा दुर्जेय वस्तु के वे पूर्ण स्वामी हैं। वे मन का अधिकारपूर्वक प्रयोग करते हैं न कि उसे स्वयं का प्रयोग करने देते हैं। निम्न श्लोक का वे सहज ही लक्ष्यार्थ हैं—

"विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांमि त एव धीराः"

अर्थात्, जिसका चित्त विकार के कारणों के रहते हुए भी विकृत नहीं होता वे ही धीर हैं। इधर स्वयं पर दृष्टि डालें तो लज्जा आती है कि विकार के कारण न

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

रहने पर भी यह चित्त सब विकारों के मल से भरा हुआ है। एक उनका अन्य चमत्कार यह है कि वे सदा प्रसन्न व प्रफुल्लित रहते हैं।

महाराजजी कभी-कभार अपने भारतीय भक्तों के अत्यन्त आग्रह पर कुछ दिनों के लिये उनके पास भी जाते रहते हैं। वे अधिकाँशतः हरियाणा, पँजाब, राजस्थान, गाँधीधाम गुजरात, जम्मू-कश्मीर, दिल्ली, बम्बई, उत्तर-प्रदेश आदि में जाते हैं। अनेक भक्तों की इच्छा होती है कि कैसे भी, प्रभु एक बार उनके घर, उनके गाँव, उनके शहर में चरण डाल दें। और अगर महाराजजी कभी किसी भक्त के घर पधार जायें तो बस मानो प्रेम और आनन्द की बाढ़ आ जाती है। पुण्यभूमि भारत की भक्तिमति स्त्रियाँ आनन्द के मारे कभी हँसती हैं, कभी रोती हैं, कभी किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाती हैं। स्वतः ही संकीर्तन-भजन, सत्संग की अविरल धारा फूट पड़ती है। महाराजजी को लेकर भक्तगण कितने ही प्रकार के उत्सव मनाते हैं मानो जीवनभर के त्यौहार एक साथ आ गये हों। भक्तगण आपस में एक-दूसरे को बधाईयां देते हुए जैसे यह कहते फिरते हैं—

जाने किस बिरहन की तड़प रंग लायी है
कि प्रीतम की पालकी नगरी में आयी है।

जिस घर में महाराजजी पधारते हैं वहाँ आस-पड़ोस के भक्तों का ताँता सा लग जाता है। गृहस्वामी अपनी सामर्थ्य के अनुसार आने-जाने वालों की पूरी आवभगत करते हैं। महाराजजी के प्रवास के दौरान कभी संकीर्तन-सत्संग होता है, कभी अध्यात्म या अन्य विषयों पर प्रश्नोत्तर होते हैं। महाराजजी लिखकर ही जवाब देते हैं। उनकी पर्चियों पर लिखे सुन्दर उत्तरों को भक्त लोग आप्तवचन मानकर हमेशा के लिये अपने पास संग्रहीत कर लेते हैं। साधु-महात्माओं के साथ जनमानस का इतना घनिष्ठ आध्यात्मिक सम्बन्ध भारतीय संस्कृति की अपनी मौलिक विशिष्टता है।

महाराजजी जब कभी आश्रम के अन्दर या बाहर अपनी भक्त मण्डली के साथ होते हैं, उस समय की मंगल छवि हमारे हृदय में गढ़ी हुई है। प्रभु जब भी अपनी अपार भव्यता और सौम्यता लिये, उनके लिये प्रतीक्षा कर रही किसी भक्त-मण्डली में प्रविष्ट होते हैं तो मानो उस स्थान पर धीमें-धीमें सुमधुर संगीत, शीतल ज्योत्सना और सुगन्धों का सैलाब सा आ जाता है। वह स्थान मानो पवित्रता तथा मूक, सशक्त आन्तरिक आनन्द से भर उठता है। अक्सर ऐसे समय, भक्तों से घिरे

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

महाराजजी अपनी चिरपरिचित, संक्रामक, सौम्य मुस्कान के साथ मौन बैठे रहते हैं; कुछ करते नहीं लेकिन बहुत कुछ होता रहता है। ऐसे में अनेक भक्त — कोई आँखें खोलकर और कोई आँखें बन्द करके अपने हृदय में उन चितचोर को निहारते रहते हैं।

उनकी मूरत को याद करके प्रसिद्ध उर्दू शायर साहिर लुधियानवी की एक नज़्म ख्याल में आ रही है। लिख देने का मन हो रहा है—

तुम खुद इक हुस्न की दुनिया हो, शायद ये तुम्हें मालूम नहीं।
महफिल में तुम्हारे आने से, हर चीज पे नूर आ जाता है॥
चेहरे पे खुशी छा जाती है, आँखों में सुरूर आ जाता है।
जब तुम हमें अपना कहते हो, अपने पे गुरूर आ जाता है॥
हम पास से तुमको क्या देखें, तुम जब भी मुकाबिल आते हो।
बेताब निगाहों के आगे, पर्दा सा जरूर आ जाता है॥

उनकी जीवनवाटिका में उनके सद्‌गुणों के असंख्य सुन्दर-सुन्दर पुष्प-लताएं हैं। हम कहाँ तक वर्णन करें ? जिन बन्धुओं ने महाराजजी के दर्शन नहीं किये हैं, उन्हें लग सकता है कि हम उनके लीलागान में सम्भवतः अतिशयोक्ति कर रहे हैं किन्तु जिन्होंने उनके सान्निध्य का रसपान किया है वे निश्चित ही शिकायत करेंगे कि हम उनका गुणगान ठीक से न कर सके।

आज म्हारे आँगन में प्रभुजी पधार्‌या

सन् 1996 में गंगानगर में महाराजजी का जाना हुआ था। उनके साथ उनका एक सेवक भी था। श्रीगंगानगर में बड़ी संख्या में काम्बोज समुदाय निवास करता है। ये लोग गुरुदेव को बाबा भूमनशाहजी के नाते अमित प्यार तथा आदर सत्कार देते हैं, मानो वे बाबाजी के ही प्रतिरूप हों। उक्त सेवक ने हमें गुरुदेव की उस यात्रा के बारे में कुछ इस प्रकार जानकारी दी—

वहाँ 13 FF मानकसर गाँव में प्रविष्ट होने पर कई गाँवों से बच्चों व स्त्री-पुरुषों का विशाल समुदाय उनके स्वागत के लिये एकत्रित था। पटाखों के धमाकों के बीच महाराजजी का वाहन धीरे-धीरे गाँव की ओर बढ़ रहा था। वातावरण में बार-बार 'बाबा भूमनशाहजी की जय, बाबा श्रीचन्द्र भगवान की जय, श्रीचन्द्रस्वामीजी

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

की जय, महन्त गिरधारीदासजी की जय' के उच्च स्वर में सामूहिक घोष हो रहे थे। महाराजजी की एक झलक देखने के लिये लोगों में धक्का-मुक्की हो रही थी। उसी भीड़ में स्वामीजी के साथ वाहन में यात्रा कर रहे सेवक ने भावविभोर, अश्रुपूरित नेत्रों से पीछे मुड़कर देखा कि एक बहुत वृद्ध माता उस मिट्टी को माथे से लगा रही थी जिस पर चलकर महाराजजी का वाहन आगे बढ़ा था। दृश्य देखते ही एकदम उसके मन में कौंध गया — अरे, यही है भारत की आत्मा ! अगणित फूल मालायें लोगों के हाथों में थीं। भक्त महिलायें तरह-तरह के मंगलगीत गाकर गुरुदेव का स्वागत कर रही थीं। इस भावपूर्ण भजन को बार-बार दोहराया जा रहा था—

हर को नाम निरंजन, जी जपो हर को नाम।
भला हुआ घर साधु आये, मेरा भया जी सुहावा अंगन
जी जपो हर को नाम।
सन्त मिले मन सीतल होया, जैसे पावक चन्दन
जी जपो हर को नाम।
सतगुरु खोल दिये भण्डार, औरां तों क्या मंगन
जी जपो हर को नाम।
कहत कबीर सुनो भई साधो, दुःख दर्दां का भंजन
जी जपो हर को नाम।

गाँव में स्थान-स्थान पर तोरणद्वार बने हुये थे। साँझ हो चली थी, गोधूलि की बेला थी। उत्साहपूर्ण कोलाहल से भरे अँधेरे वातावरण में धूल उड़ रही थी। बहुत देर बाद महाराजजी का वाहन बाबा भूमनशाहजी के मन्दिर में पहुँचा जहाँ उन्हें दो-तीन दिन रुकना था। वहाँ भी भक्तों की भीड़ लगी हुयी थी। वाहन से उतरकर महाराजजी द्वारा मन्दिर में अपने आराध्य को प्रणाम करने के बाद भक्तगण उन्हें उनके कमरे में ले गये।

तीन दिन तक महाराजजी के प्रति अभूतपूर्व तथा अकृत्रिम प्रेम-स्वागत का अविरल क्रम चलता रहा। जहां भी महाराजजजी जाते उस गांव के सब बच्चे हर जगह उनके साथ-साथ होते। प्रायः पूरे दिन भक्तवृंद महाराजजी के पास आते रहते थे। आस-पास के गाँवों में भी महाराजजी को भक्त लोग ले गये थे। सभी स्थानों पर

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

सरल हृदय ग्रामवासी महाराजजी का बहुत प्रेम व श्रद्धा से स्वागत करते थे। एक गांव में एक छोटी सी बच्ची पंजाबी में गा रही थी—

"फुल पत्ता न तोड़ीं वे मालणे गुरां ने छांवीं बैणा"

अर्थात्, ए मालिन इस वाटिका के वृक्षों से तू अभी कोई फूल या पत्ता मत तोड़ना, मेरे गुरु इन वृक्षों की छांव में बैठेंगे।

प्रभु जिस घर में भी जाते थे तो गृहस्वामी अनेक प्रकार के व्यञ्जन, फल एवं अन्य वस्तुयें उनके समक्ष रखते थे। दयालु प्रभु थोड़ा-थोड़ा प्रत्येक पात्र में से उठाकर प्रेम से ग्रहण करते थे। इस प्रकार एक ही दिन में बीस-बीस घरों में जाकर आतिथ्य स्वीकार करते थे। असमय, लगातार तथा बिना मेल की वस्तुयें खाने से उनका पेट खराब हो जाता था। तो भी कोमल हृदय प्रभु किसी भक्त का दिल नहीं दुखाते थे। कोई कुछ भी आग्रह करे, ग्रहण कर लेते थे। सेवक को यह सब देखकर बड़ी पीड़ा होती थी। सुबह से शाम तक शरीर को जरा भी विश्राम नहीं और फिर उस पर यह सब ! पर एकरस प्रभु सदा मुस्कुराते रहते थे। वह सेवक स्वयं थकान अनुभव करने लगते थे पर गुरुदेव अपनी थकान पर कोई ध्यान नहीं देते थे। उनकी सहनशीलता और तितिक्षा की कोई सीमा नहीं है।

इन तीन दिनों में हजारों भक्त महाराजजी के दर्शन करने आये। सरल हृदय ग्रामीण अपनी सब तरह की समस्याओं का निदान गुरुदेव से चाहते थे। कोई शिकायत करता था कि उसकी गाय दूध नहीं देती। कोई बेटी-बेटे के विवाह को लेकर परेशान थे। किसी बालक पर प्रेत की छाया थी। किसी परिवार में आपसी सौहार्द नहीं था। कोई भगवान की शुद्ध भक्ति माँग रहा है। मौनधारी प्रभु के प्रति अपनी सारी परेशानियाँ कहकर भक्तगण आश्वस्त और निर्भार हो जाते थे। भक्तलोग आश्रम के लिये कम्बल, बिस्तर, बर्तन, रजाई, चद्दरें तथा घी आदि अनेक प्रकार के उपहार भी लाते थे। प्रमुख दिन लंगर चला जिसमें हजारों भक्तों ने प्रेम से बाबाजी का प्रसाद पाया।

इन तीन दिनों के मेले में एक दिन सांस्कृतिक कार्यक्रम भी आयोजित किया गया था। जिसमें बाहर से आये हुए गायक बाबा भूमनशाहजी के दिव्य जीवन चरित्र का गुणगान कर रहे थे। मेले में आकाशवाणी सूरतगढ़ से संवाददाता भी आये थे। उन्होंने बाबा भूमनशाहजी तथा अध्यात्म पर महाराजजी से कुछ सवाल पूछे जिनके

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

महाराजजी ने लिखकर बड़े सुन्दर उत्तर दिये। बाद में आकाशवाणी सूरतगढ से यह कार्यक्रम प्रसारित भी किया गया।

इन तीन दिनों में महाराजजी की वहाँ के भक्तों ने दिन-रात सेवा की। वहाँ के भक्त तो हर वर्ष महाराजजी को अपने यहाँ बुलाने के लिये हठ करते हैं, पर स्वामीजी के लिये सब जगह जाना सम्भव नहीं होता। उसी दौरे में महाराजजी यमुनानगर, करनाल, अमृतसर, मण्ड़ी गोविन्दगढ़, जलालाबाद, फाजिल्का, श्रीगंगानगर, श्रीकरणपुर भी अपने भक्तों के पास रुके थे—कहीं एक दिन, और कहीं कुछ घण्टे ही।

महाराजजी के इसी आगमन के दौरान उस सेवक के मन में पंजाब के खन्ना शहर के निकट इकोलाहा ग्राम का अदृष्टपूर्व दृश्य भी गहरा अंकित है। हुआ यूँ था कि समयाभाव के कारण गुरुदेव इकोलाहा में केवल दो-तीन घन्टे ही रुक पाये थे जबकि श्रीकुन्दनलालजी घई का परिवार एवं अन्य भक्त उनके घर कम से कम एक रात रुकने की उम्मीद कर रहे थे। अतः जैसे ही स्त्री भक्तों को प्रभु के दो घण्टे बाद ही वहाँ से चले जाने का पता लगा वे सारी लोक-लाज छोड़कर उच्च स्वर में रुदन करने लगीं एवम् विरह भाव के हृदय विदारक भजन गाने लगीं। रोते-रोते और गाते-गाते ही वे गुरुदेव एवं अन्य भक्तों की सेवा भी कर रहीं थीं। उनका प्रेम देखकर गोपियों के विरह की स्मृतियाँ उमड़ आयी थीं। अनेक भक्त धीरे-धीरे रो रहे थे। वातावरण में प्रेम की टीस घुली हुयी थी। किन्तु प्रभु निष्कम्प लौ की तरह निर्विकार बैठे हुये थे। उनके हृदय की गहराइयां अन्तहीन हैं; भावों के कितने ही बादल उमड़-घुमड़ कर आयें सब भीतर ही समा जाते हैं।

कुछ ही देर में प्रभुकृपा से स्त्री भक्तों का अचानक भावान्तर हुआ, वे विरह के गीत गाना छोड़कर सुन्दर-सुन्दर मंगलगीत गाने लगीं। वे बार-बार इस बात पर अपना परम सौभाग्य मनाने लगीं कि चाहे थोड़े समय के लिये ही सही, गुरुदेव ने स्वयं पधारकर उनका घर तो पवित्र किया। अभी तक रुदन करती माताएं व बहनें अब जोर-जोर से हँसने लगी; प्रभु को बार-बार प्रणाम करने लगीं।

गुरुदेव के साथ यात्रा कर रहे सेवक का अन्तःकरण इस प्रेम की अकथ कथा को देख-सुनकर तृप्त हो गया। बड़े पुण्यकर्मों से प्रभु की ऐसी प्रेममयी मंगललीलाओं के दर्शन होते हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

इस प्रकार हर स्थान पर भक्तों के प्रेम तथा अहोभाव का वर्णन करना शब्दों की सीमा के बाहर की बात है और इन दौरों में महाराजजी थक भी कितना जाते हैं। जम्मू और गाँधीधाम में भी अनेक भक्त होने से प्रभु दिन भर सेवकों के घर जाते रहते हैं। गाँधीधाम के भक्त इसे पधरावनी कहते हैं। गाँधीधाम में प्रायः मास्टर सुगनारामजी तथा रायसिंघानी परिवार गुरुमहाराजजी के प्रवास का केन्द्र होते हैं। इन परिवारों के सभी लोग महाराजजी के परम भक्त हैं तथा महाराजजी को लेकर आनन्द उत्सव मनाते हैं जिनमें गाँधीधाम व आसपास के क्षेत्रों के सभी भक्त भी सम्मिलित होते हैं।

एक बार जम्मू में किसी सेवक के घर रात के साढ़े ग्यारह बजे घर के कुछ लोग महाराजजी के पास बैठकर बातें कर रहे थे। दिन भर तो महाराजजी पूरे जम्मू में सेवकों के घर घूमते रहे। सो शरीर तो बहुत थक गया था। अतः मुस्कुराकर एक चिट्ठी पर एक बहन को लिखकर दिया "क्षमा करना, अगर मैं लिखते-लिखते ही सो जाऊँ तो।" और परम आश्चर्य तो यह है कि हमेशा की तरह इस पूरे मान-प्रेम के प्रति गुरुदेव सदैव निःसंग, उदासीन साक्षी बने रहते हैं। उनके एकरस माधुर्यभाव में भी कहीं व्यतिक्रम नहीं होता।

महाराजजी के साथ इन यात्राओं में जो भक्त साथ में होते हैं उन्हें न केवल महाराजजी की एकरस दिव्यता व भव्यता का पता चलता है बल्कि भारत के जनमानस की आत्मा के भी दिग्दर्शन होते हैं। पता चलता है कि भारतीय साधारण जन में परमात्मा तथा संतों के लिये कितनी सहज स्फूर्त आस्था है। परमतत्व की प्यास तथा खोज भारतीय जनमानस की मौलिकतम प्रवृत्तियों में से एक है। अन्य धर्मों तथा देशों में भी अनेक सिद्ध संत, महात्मा व महान् रहस्यदर्शी अवश्य हुये हैं लेकिन इस पुण्यभूमि के जनमानस में भगवद्‌भाव तथा आध्यात्मिक मूल्य जिस प्रगाढ़ता के साथ व्याप्त हुए हैं सम्भवतः वैसा अन्यत्र देखने में नहीं आता। बारह सौ वर्षों की लम्बी, दारुण दासता के कारण समाज में व्याप्त हो चुकी अनेक विकृतियों के बाद भी भारतीय जनसाधारण में अभी भी आध्यात्मिकता जीवित ही नहीं है बल्कि कहीं-कहीं तो पूरे यौवन पर पल्लवित हो रही है। जनमानस का यह मूल स्वभाव ही जीवन के सभी क्षेत्रों में उसके विकास और प्रगति का कारण बनेगा, ऐसा हमारा विश्वास है। अस्तु।

हां, तो पुनः गुरुदेव की गुणवाटिका में विहार को चलें। एक प्रमुख विशेषता

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

उनकी यह है कि वे कभी किसी की आस्था या भावना को आहत नहीं करते। बल्कि वे व्यक्ति की आस्था के सकारात्मक और मौलिक भाग को सुस्पष्टता से सामने रखकर, उसमें से रुढ़िवादी और कर्मकाण्ड भाग को गौण करके उसे और परिष्कृत कर देते हैं। इसी कारण वे प्रत्येक मत, धर्म और क्षमता के साधक को सार्थक प्रेरणा दे पाते हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से कोई भी व्यक्ति उनके लिये पूर्णरूप से निरर्थक नहीं है। फिर अपने अपार्थिव और निष्काम प्रेम के बल से तुरन्त ही वे व्यक्ति को अपना बना लेते हैं। लोगों को लगता है मानो वे उनके सदा के परम हितैषी हों।

वे सदा सभी स्तर के साधकों को परोक्ष-अपरोक्ष रूप से सद्प्रेरणा, संदेश और सहायता प्रदान करते रहते हैं—कभी लिखित उत्तरों द्वारा, कभी विनोद के माध्यम से, कभी हल्की-फुल्की कहानियों, चुटकुलों और मीठी झिड़कियों के माध्यम से। प्रतिक्षण भगवत्ता और सम्पूर्ण मानव का आदर्श विकीर्ण करता उनका निज जीवन तो सर्वश्रेष्ठ संदेश है ही। उन्हीं के शब्दों में—"मैं कोई आचार्य या शिक्षक नहीं हूँ। मेरा कार्य—यदि उसे कार्य कहें तो—साधकों के आध्यात्मिक आरोहण में अपनी भूमिका निभाना है। आध्यात्मिक विकास हेतु साधकों को आगे धकेलना है, उन्हें ऊपर खींचना है।"

उनके पावन सान्निध्य से कितने ही व्यक्तियों का जीवन पवित्र होकर भगवद्तीर्थ की यात्रा की ओर उन्मुख हुआ है। उनकी दिव्य ज्योति से कितनी ही जीवात्माओं में आध्यात्मिकता के दीप जल उठे हैं। उनके सान्निध्य में आने वाले सभी का यह सहज-स्फूर्त विश्वास है कि वे अध्यात्म के शिखर पर पहुँचे हुये विरले जीवनमुक्त संत हैं। दरअसल, वे भारत के सत्यद्रष्टा ऋषि-मुनियों की पुरातन परम्परा में महर्षि रमण, श्रीअरविन्द, स्वामी रामतीर्थ, स्वामी विवेकानन्द आदि की ही तरह आधुनिक ऋषि हैं। वे परमसंत बाबा भूमनशाहदेव का नवीनतम संस्करण हैं।

परम पूज्य महाराजजी को उनके भारतीय एवं विदेशी भक्तों द्वारा जो पत्र आते हैं, वे उनके निर्मल और गहन प्रेम-श्रद्धा की बड़ी सरल, अमूल्य और अछूती अभिव्यक्तियां होती हैं। उन पत्रों में भक्ति, शरणागति और अहोभावों को जैसे छुआ जा सकता है। और ऐसे असंख्य पत्र हैं। उन्हें संकलित करें तो अनूठे प्रेम-पत्रों का एक मौलिक ग्रन्थ बन जायेगा। इस पुस्तक में उन पत्रों का देना सम्भव नहीं है तो भी

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

ये पंक्तियां लिखते समय बाबाजी की इच्छा से सेवक को पंजाब प्रान्त के एक भोले-भाले ग्रामीण भक्त द्वारा महाराजजी को लिखा एक पत्र मिला। यह सुन्दर पत्र उसे गुरु-शिष्य के मधुर सम्बन्ध को प्रतिबिम्बित करता सा तथा उस सम्बन्ध की विलक्षणता की सौंधी मिट्टी सी अकृत्रिम सुवास बिखेरता प्रतीत हुआ। उस पत्र का कुछ भाग हमें पाठकों के समक्ष रखने को जी ललचा रहा है। लीजिये, आस्वादन कीजिये —

हरिओम्

धन-धन बाबा भूमनशाह जी।

परम पूज्य सद्‌गुरु श्रीस्वामीजी महाराज आपजी के स्वरूप का ध्यान करते हुए माथा टेकता हूँ 'गुरुदेव मात, गुरुदेव पिता, गुरुदेव सुआमी परमेसरा' हे मात-पिता। आपजी का हंसमुखड़ा देखने की अन्दर गहरी तड़प लगी है। गुरुमहाराजजी। आपजी द्वारा लिखकर समझाये उपदेशों की पालना करते हुए भजन-स्मरण को पहल दे रहा हूँ।

सच्चे पातशाह ! आपजी का प्यार बिलकुल ही अवर्णनीय है कैसे उसका वर्णन करूं। गुरुमहाराजजी ! आपजी की दया मेहर से मन और इन्द्रियों पर पहले से काफी नियंत्रण हुआ है।

हे बाबा भूमणशाहजी ! आपजी में सूर्य के समान रौशनी है लेकिन सूर्य में तपश है आपजी में नहीं। चन्द्रमा के समान शीतलता है लेकिन चन्द्रमा में भी दाग है 'चन्द्र' में नहीं।

हे पूरण गुरु ! आपजी ने उस मीठे बाबा के स्वरूप को देखा है। हमने तो प्रत्यक्ष आपजी के स्वरूप को ही देखा है इसलिये आपजी हमारे मीठे बाबा हैं।

हे मीठे बाबा ! आपजी जो हैं सो हैं।

'लेख प्यारे पढ़ सोणे सतगुरु के ज्यों मात सुन तोतरी बात।'

गुरु महाराजजी ! कृपया सकुशलता लिख देना। संत बाबाजी M.O. द्वारा भेंट भेजी गयी है।

ॐ शान्ति शान्ति शान्ति

आपजी का सेवक,

.....

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

कार्यशैली एवं अन्य निपुणताएं

आइये, अब जरा स्वामीजी की कार्यशैली तथा उनके बहुआयामी व्यक्तित्व के अन्य पहलुओं पर विचार करें।

महाराजजी की सरल और बालवत् प्रकृति का यह अर्थ बिल्कुल नहीं कि वे सांसारिक काम-काज में प्रवीण नहीं हैं। सच तो यह है कि सांसारिक काम-काज में भी वे आश्चर्यजनक रूप से निपुण हैं। उनकी कार्य-प्रणाली और बहुआयामी क्षमताओं का स्मरण करके चकित रह जाना पड़ता है। परमहंस श्रीरामकृष्णदेव की यह उक्ति उन पर चरितार्थ होती है—'साधु है तो साधु बन! मूर्ख क्यों बनता है?'

किसी भी कार्य अथवा व्यवहार के दौरान हमारे प्रभु पूर्वाग्रहों से मुक्त बिल्कुल खुला मन रखते हैं। वे सदैव स्वतंत्र एवं वस्तुपरक निर्णय लेते हैं। निर्णय लेते समय वे सभी पक्षों पर बहुत सूक्ष्म दृष्टि से विचार करते हैं। एक बार खूब सोच-विचारकर लिया गया उनका निर्णय अक्सर अटल होता है। गम्भीर विषयों को छोड़ दें तो अन्य विषयों में उनके निर्णय तुरन्त होते हैं। एक बार किसी समस्या अथवा विषय को स्वीकार कर लेने पर वे उसे बीच में ही नहीं छोड़ देते। जब तक वे उस समस्या या विषय के युक्तिसंगत समाधान पर नहीं पहुँच जाते तब तक उस पर अनेक प्रकार से विचार करते रहते हैं। दूसरों द्वारा दिये गये ठीक सुझावों को वे तुरन्त मान लेते हैं, किन्तु गलत सलाह या सुझावों को नम्रता लेकिन दृढ़तापूर्वक अस्वीकार कर देते हैं। किसी भी दबाव या बहलावे द्वारा उनसे कोई कार्य नहीं करवाया जा सकता।

जब हरिद्वार में सेवक निवास आश्रम को बेचकर ग्राम डुमेट में नया आश्रम बनाने की बात चल रही थी तो बहुत से सेवकों ने महाराजजी को वैसा न करने की सलाह दी। अफ्रीका आश्रम के पूज्य स्वामी दिव्यप्रकाशानन्दजी ने भी अपनी राय व्यक्त की कि पुण्य नगरी हरिद्वार का स्थान छोड़ना उचित नहीं। उन्होंने तो यहाँ तक कहा कि वे नये आश्रम के लिये अपने सेवकों से धन भी एकत्र करेंगे। वे कहते थे, "दो आश्रम हो जायें, पुराने आश्रम को न बेचें।" किन्तु इन सबका महाराजजी के लौह संकल्प पर कोई प्रभाव न पड़ा। उन्होंने बहुत नम्रता व युक्ति से सबको समझा दिया कि हरिद्वार वाले आश्रम में अकारण मोह रखना उचित नहीं; उसे बेच देना ही ठीक है। उनका निर्णय कितना सटीक था, यह तो अब हम सब देख ही रहे हैं।

जिस सेवक निवास में वे पूरे बीस वर्ष रहे; जिसे अपने हाथों से उन्होंने

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

बनाया तथा पाल-पोसकर बड़ा किया उसे नये आश्रम में आने के बाद उन्होंने भुला ही दिया; फिर कभी लौटकर नहीं गये। क्यों भला ?—पदार्थ-परिस्थितियों से तादात्म्य पूरी तरह टूट गया है, इसलिये। एक बार एक सेवक हरिद्वार गये। लौटकर आकर उत्साहपूर्वक महाराजजी से कहने लगे—"आज मैं 'अपने' पुराने आश्रम के पास से होकर गुजरा।" महाराजजी ने तपाक से लिख दिया—"अपना होता तो छूटता ही क्यों ?" उनकी निर्मल दृष्टि में तो बस एक परमात्मा ही 'अपना' है बाकी सब सपना है।

जब महाराजजी किसी की बात से सहमत होते हैं तो तुरन्त सिर हिला देते हैं या कागज पर 'हाँ' लिख देते हैं लेकिन जब उन्हें मना करना होता है तो अक्सर लम्बे-चौड़े शब्दों में अपनी असहमति का पूरा कारण व्यक्ति को समझाकर बड़ी नम्रता से अपनी असहमति/असामर्थ्य जतलाते हैं।

अगर हम उनके क्रिया-कलापों को ध्यान से देखें तो पायेंगे कि उनकी सारी चेष्टाएं और आहार-विहार, सजगता, सावधानी, और सहजता में नहाये हुये हैं—एक दिव्य प्रेरणा द्वारा संचालित हो रहे हैं। उनका कोई भी कार्य यान्त्रिक नहीं होता अथवा असावधानी से किया प्रतीत नहीं होता। वास्तव में आज तक उन्हें किसी ने असावधान नहीं देखा। वे चाहे विनोद कर रहे हों, बिस्तर पर विश्राम कर रहे हों अथवा कोई भी कार्य कर रहे हों—सदा सजग रहते हैं। साथ ही वे अपने सभी क्रियाकलापों के दौरान एक गहरी विश्रान्ति में भी होते हैं। वे बेपरवाह तो हैं पर लापरवाह नहीं—अर्थात्, प्रत्येक अवस्था के प्रति सदा सजग तथा समर्पित, किन्तु कार्य/घटना के फल की दृष्टि से सदा उदासीन और निर्पेक्ष। जीवनभर चिद्स्वरूप एवं शान्त परमेश्वर में वास करते-करते भगवद्भाव उनके जीवन के हर अंग में इस प्रकार घुल मिल गया है कि वे सहजता, सजगता तथा विश्रान्ति की प्रतिमूर्ति ही बन गये हैं।

वे अपना हर कार्य बहुत धैर्य, शान्ति और विश्वासपूर्वक सम्पादित करते हैं। श्रीभगवान की ही तरह उन्हें भी कभी जल्दी नहीं होती क्योंकि हर परिस्थिति के लिये वे पहले से ही तैयार रहते हैं। वे प्रत्येक कार्य पूरे मनोयोग से करते हैं तथा उस समय भी गहरी विश्रान्ति की स्थिति में होते हैं। वे अपने गुणों एवं पूर्वाग्रहों से मुक्त मन के द्वारा कोई भी नवीन विषय तुरन्त ही सीख लेते हैं। उनका समूचा ज्ञान व्यावहारिक

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

ज्ञान है जिसका वे उचित समय पर प्रयोग करते रहते हैं। उनकी स्मृति असाधारण है क्योंकि वे असाधारण रूप से सजग हैं। वे कभी-कभी चालीस साल पुरानी घटनाओं का भी मिनटवार विवरण देकर हमें चकित कर डालते हैं। साधारण मानव तो लगभग बेहोश ही होता है। वह कुछ भी करे उसके मन का एक बड़ा भाग चेतन या अचेतन रूप से, सदा अपने राग-द्वेष के विषयों में तथा परस्पर विरोधाभासी इच्छाओं और वासनाओं के चिन्तन में ही लगा रहता है। उसका चित्त खण्डित होता है। महाराजजी के जीवन के अवलोकन से मालूम होता है कि समन्वित तथा समग्र मन में क्या-क्या विलक्षण क्षमतायें होती हैं!

गुरुदेव जीवन में जिस भी परिस्थिति में रहे, उसके स्वामी होकर रहे। वे एक कुशल तैराक, कुशल वाहन चालक भी हैं। अक्सर छः सौ-सात सौ किलोमीटर की लम्बी दूरियाँ भी स्वयं कार चलाकर तय करते रहे हैं। वे अपनी सीखने की कला तथा प्रयोगात्मक वृत्ति के कारण भवन-निर्माण, पाकशाला, बिजली-पानी, साफ-सफाई, गृह-व्यवस्था, साज-सज्जा, पशुपालन, बाग़वानी, रख-रखाव, व्यावहारिक-कानून, कार्यालय-प्रबन्धन, सरकारी पत्र-व्यवहार, आदि अनेक क्षेत्रों में भी प्रवीण हैं। उन्हें हिन्दी तथा अंग्रेजी-दोनों की कामचलाऊ टँकण (टाइपिंग) भी आती है। पहले वे आश्रम के काम-काज से सम्बन्धित आवश्यक पत्र स्वयं ही टाइप किया करते थे।

पाठकों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि सन् 1970 से 1989 तक वे स्वयं का तथा सीकर्स ट्रस्ट के बही खातों का पूरा कार्य स्वयं अपने हाथ से ही करते थे। ट्रस्ट के सारे खाते प्रतिवर्ष आडिटर द्वारा जाँचे जाते थे। किन्तु वर्षों की लम्बी अवधि में कभी एक पैसे की भी कोई गलती नहीं पायी गयी। वे वाणिज्य विषय के विद्यार्थी भी कभी रहे नहीं। बही खातों की आवश्यक जानकारी उन्होंने एक बार किसी से सीख ली थी। साथ ही साथ वे अपने संवैधानिक दायित्वों के प्रति सजग, दैनिक क्रिया-कलापों में भी असाधारण रूप से दक्ष आदर्श नागरिक भी हैं।

उनमें आलस्य तो है ही नहीं। पूरे वर्षभर तथा प्रतिदिन सभी समय भक्तों के साथ ध्यान में बैठना, नाश्ता करना तथा भोजन पर आना आदि। इस प्रकार वे दिनभर में आठ-नौ बार सार्वजनिक रूप से आश्रमवासियों से मिलते हैं। उनकी पूरी दिनचर्या सहज, सुनियोजित तथा आश्चर्यजनक नियमितता लिए हुए होती है। जीवन सुचारु रूप से कैसे चलाएं इसका जीता-जागता ग्रन्थ हैं वे।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

एक बार सामने कोई कार्य आ जाये तो वे उसे टालते नहीं, चाहे वह कितना ही पेचीदा क्यों न हो। वे उस कार्य को समुचित ढंग से सम्पन्न करके ही विश्राम लेते हैं।

स्वावलम्बी इतने हैं कि कभी भी अपना कोई छोटे से छोटा कार्य किसी को करने के लिये नहीं कहते। वे स्वयं तो हर कार्य में दक्ष हैं ही। लेकिन भक्त लोग स्वाभाविक ही आग्रह करके उनकी कई प्रकार से सेवा करने का प्रयास करते हैं।

वे बहुत साफ-सफाई पसंद हैं। उनका कमरा आपको सदा साफ-सुथरा तथा सजा हुआ मिलेगा—हर वस्तु ठीक अपनी-अपनी जगह पर। भीतर का भी सौंदर्य-सुव्यवस्था बोध तथा बाहर का भी सौंदर्य-सुव्यवस्था बोध। वास्तव में हमने न तो कभी उनके बिस्तर पर सिलवट देखी और न कभी माथे पर। उनके कमरे की स्वच्छता और सुव्यवस्था उनके निर्मल मन का ही प्रतिबिम्ब है।

योजनाबद्ध ढंग से काम करने का एक छोटा सा उदाहरण है कि सेवक निवास, हरिद्वार में मच्छर होने के कारण वे अपने कमरे में बिस्तर के ऊपर मच्छरदानी लगाते थे। नित्यप्रति प्रातः उठते ही वे उस मच्छरदानी को एक निश्चित क्रम से तुरन्त ही समेटकर, क्लिप लगाकर बिस्तर के ऊपर बाँस पर ही रहने देते थे। इस प्रकार समेटने में समय भी बहुत कम लगता था तथा समेटे जाने के बाद मच्छरदानी बिस्तर के ऊपर पड़ी-पड़ी भद्दी भी न लगकर सुव्यवस्थित कमरे का ही एक भाग लगती थी।

वे आश्रम में खर्चे का एक-एक पैसे का हिसाब रखते हैं तथा जरा भी फिज़ूलखर्ची सहन नहीं करते। धर्मशाला समझकर कई सेवक आश्रम में वस्तुओं का रख-रखाव नहीं करते तो महाराजजी उन्हें नम्रतापूर्वक समझाते रहते हैं।

सब आश्रमवासियों को सफाई के संस्कार डालने के लिये जहाँ कहीं भी गन्दगी-कचरा देखते हैं स्वयं साफ कर देते हैं।

यह तो पाठकों को पता ही है कि साधना केन्द्र आश्रम की संकल्पना एवं उसका क्रियान्वयन पूर्णरूप से गुरुदेव द्वारा ही हुआ है। कह सकते हैं कि आश्रम निर्माण की एक-एक ईंट पर उनकी नजर रही है। अपने मौन के बावजूद छोटी से छोटी बारीकियों का भी उन्होंने ध्यान रखा है। आश्रम में निर्माण कार्य की गुणवत्ता, निवासियों की सुविधा, साधकों की साधना के लिये अनुकूलता व उचित वातावरण, बिजली-पानी की सम्यक् सुविधा, आश्रम संचालन हेतु उचित प्रबन्धन, अनावश्यक

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

व्यय तथा वस्तुओं की बरबादी को रोकना, भोजन में पौष्टिकता व संतुलन, आश्रम के स्टोरों पर नियंत्रण, कर्मचारियों के कार्यों की व्यक्तिगत निगरानी, गौशाला की व्यवस्था, आश्रम के बगीचे और फलों के बाग़ का रखरखाव, आश्रम में होने वाली टूट-फूट को ठीक कराना आदि-आदि—सभी क्षेत्रों पर उनकी पैनी नजर रहती है।

छोटे से छोटे कार्य को भी पूरे मनोयोग तथा ध्यान से सम्पादित करके मानो वे हमें शिक्षा दे रहे हैं कि आध्यात्मिक दृष्टि से किसी भी कार्य को, चाहे वह बड़ा हो या छोटा, आसान हो या कठिन, सजगता तथा आदरपूर्वक और भगवान के नाते से किया जाये तो वह भगवद्स्मरण तथा आध्यात्मिक विकास का साधन बन जाता है। आपका यह भी कहना है कि कार्य मात्र ही पूजा नहीं है बल्कि भगवद्नाते से किया गया कार्य ही पूजा है। बिना परमात्मा से जुड़ा कार्य या तो अच्छा हो सकता है या बुरा किन्तु परमात्मा से जुड़ने पर वह दिव्य हो जाता है, पूजा-साधना बन जाता है। निर्माण कार्य के दौरान कई बार वे इस आयु में भी बहुत ख़तरनाक तथा ऊँचे स्थानों पर चढ़ जाते हैं। कार्य निरीक्षण के दौरान कितनी ही बार उन्हें शरीर पर चोटें भी लगी हैं। इस प्रकार माता की तरह वे अपने भक्तवृन्द की देख-संभाल कर रहे हैं। उनके इसी भाव को स्मरण करके हमने आश्रम में कुछ स्थानों पर तख्तियाँ टांग दी हैं —

"आश्रम गुरु का शरीर है; कृपया आश्रम तथा आश्रम की हर वस्तु की प्रेम और सत्कार से देखभाल करें।"

अन्त में सबसे अद्भुत बात तो यह है कि वे जितनी सहजता और कुशलता से कुछ भी 'करना' जानते हैं उतनी ही कुशलता और सहजता से 'कुछ न करना' भी जानते हैं। बल्कि ये दोनों भाव उनमें एक साथ उपस्थित रहते हैं।

प्रश्नोत्तर की सत्संग बेला

आश्रम में नित्यप्रति, दिन में साढ़े दस बजे से लगभग सवा घण्टे तक आश्रम के भक्तों तथा सेवकों के लिये प्रश्नोत्तर का समय होता है। इस समय प्रभु आश्रम की खुली छत पर अपनी कुर्सी पर बैठे होते हैं और उन्हें घेरकर भक्तगण बैठ जाते हैं। जो भक्त भूमि पर ना बैठना चाहें उनके लिये कुर्सियां भी लगी होती हैं।

यह सत्संग बेला बहुत दुर्लभ होती है। भक्तों से घिरे गुरुदेव अपने कमरे के

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

बाहर खुली छत पर बैठते हैं। ऊँचे-ऊँचे पहाड़ और यमुनाजी का भव्य दर्शन होता है। ऐसे वातावरण में भक्तगण चुपचाप इन प्रियदर्शन महापुरुष को ध्यानस्थ भाव भंगिमा में उत्तर देते निहारते रहते हैं।

जब भी कोई व्यक्ति स्वामीजी से प्रश्न करता है तो वे उसे बहुत ध्यान से सुनते हैं। अपनी पैनी अन्तर्दृष्टि से वे प्रश्नकर्ता के पूरे व्यक्तित्व तथा उसकी वास्तविक समस्या को समझ लेते हैं। अतः गुरुदेव प्रश्न का नहीं, बल्कि प्रश्नकर्ता को उत्तर देते हैं। इसी कारण हम पाते हैं कि उनके उत्तर व्यक्ति सापेक्ष होते हैं तथा सदा एक जैसे नहीं होते। चेतना के भिन्न-भिन्न तल पर खड़े तथा भिन्न-भिन्न वृत्तियों व क्षमताओं वाले व्यक्तियों को वे भिन्न-भिन्न साधन/पथ का उपदेश देते हैं। उनकी दृष्टि में कोई पथ बड़ा या छोटा नहीं है। जो भी पथ हो वह साधक के लिये प्रासंगिक अवश्य होना चाहिये। कोई पथ मंजिल के कितना भी निकट हो पर अगर पथिक से दूर हो और कितना भी आनन्ददायक हो, कितना भी उच्च होअथवा उस पर चलकर पथिक आगे न बढ़ सके तो वह पथिक के किस काम का! अतः साधक के लिये साधनपथ तो वही ठीक है जो उस भूमि से जुड़ा हो जिस पर वह खड़ा है तथा साथ ही जिस पर वह चल भी सकें। महाराजजी विभिन्न पथों के सापेक्षिक महत्व को खूब समझते हैं। अतः किसी साधक को जाप, किसी को ध्यान, किसी को सेवा, किसी को स्वाध्याय तथा किसी को प्राणायाम आदि-आदि की प्रधानता वाले भिन्न-भिन्न साधन बतलाते हैं।

प्रश्नोत्तर के समय उन्हें उत्तर देते हुये देखना भी एक सुखद अनुभव है। उत्तर देते समय वे बहुत सजग, स्थिर व शान्त मुद्रा में होते हैं तथा उनका पूरा ध्यान उत्तर लिखने पर केन्द्रित होता है। उस समय ऐसा प्रतीत होता है मानो वे गहरे ध्यान में हों। वे बहुत धैर्य और प्रेमपूर्वक लिखते हैं। उत्तर लिख लेने के बाद वे हमेशा उसे एक बार दुबारा पढ़ते हैं तथा यदि कोई छोटी-मोटी गलती रह गयी हो तो उसे ठीक करके वह उत्तर पुस्तिका आदर और प्रेमसूचक भंगिमा के साथ प्रश्नकर्ता की ओर धीरे से बढ़ा देते हैं। उनकी लिखावट भी बहुत सुन्दर होती है। प्रश्न कैसा भी उल्टा-सीधा हो, चाहे महाराजजी की आलोचना ही क्यों न करता हो, वे उससे कभी भी उत्तेजित नहीं होते। बल्कि प्रश्नकर्ता की मनोवृत्ति समझकर ऐसा सुन्दर उत्तर देते हैं कि वह पूर्णरुप से सन्तुष्ट हो जाता है या निरुत्तर हो जाता है। उनके उत्तर सदा

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

तात्कालिक, संक्षिप्त और सारगर्भित होते हैं। उनके लिखने का उद्देश्य व्यक्ति से सार्थक संवाद करना होता है न कि अपने विपुल ज्ञान का प्रदर्शन करना।

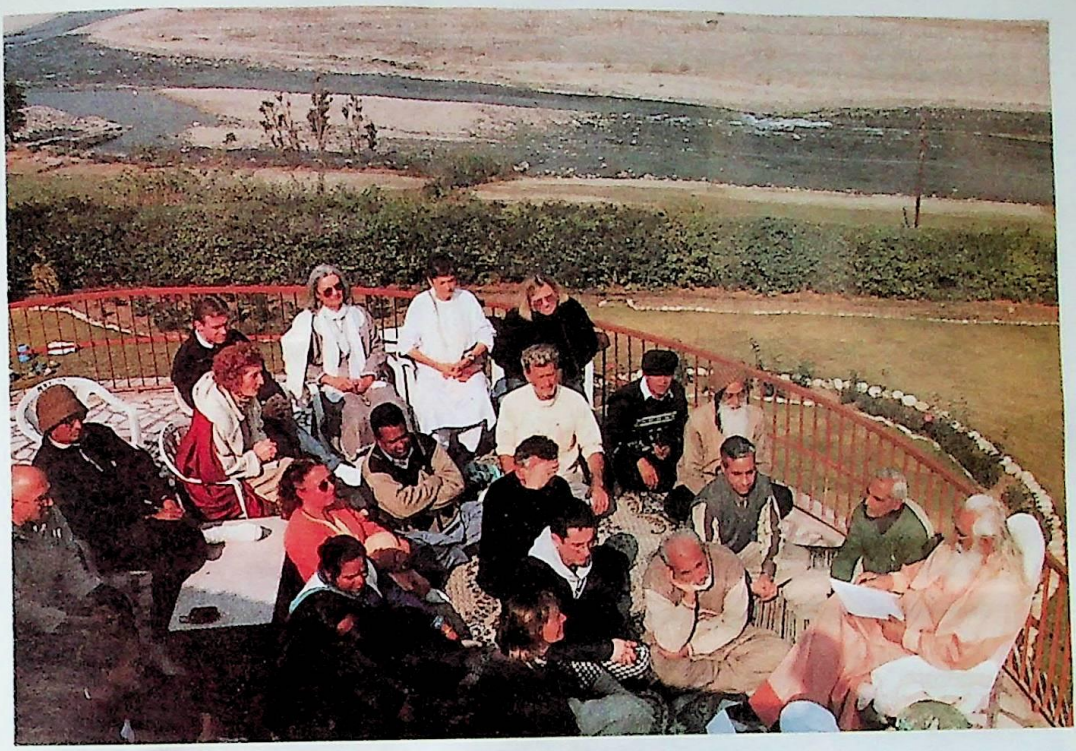
उनकी लेखनी की अन्य विशेषता है कि वे कभी किसी दूसरे संत अथवा मत पर टीका-टिप्पणी या उनकी आलोचना नहीं करते। वे अपनी स्वयं की कठिन साधना तथा उपलब्धियों के बारे में भी चर्चा नहीं करते। वे भक्तों को चमत्कारों, रहस्यवादिता तथा भगवान की इस अनन्त सृष्टि के विभिन्न रहस्यों को सीमित मन द्वारा पूरी तरह समझ लेने की हठधर्मिता से भी बचने की सलाह देते हैं। उनके अनुसार भक्त अथवा साधक को तो अपनी पूरी ऊर्जा और क्षमता केवल भजन-अभ्यास में ही लगानी चाहिये। नाना प्रकार के दुःखों से भरा यह अस्थिर, मरणधर्मा जगत् कभी भी जीवात्मा का अन्तिम लक्ष्य नहीं हो सकता। अविनाशी, अनन्त, अनादि तथा आनन्दस्वरूप परमात्मा की प्यास जीव का मौलिक स्वभाव है, अतः परमात्मा की खोज (साधना) का यही सबसे स्वाभाविक कारण है। इसी सत्य के आलोक में वे अपने भक्तों को सतत साधना करने के लिये सदा प्रोत्साहित किया करते हैं।

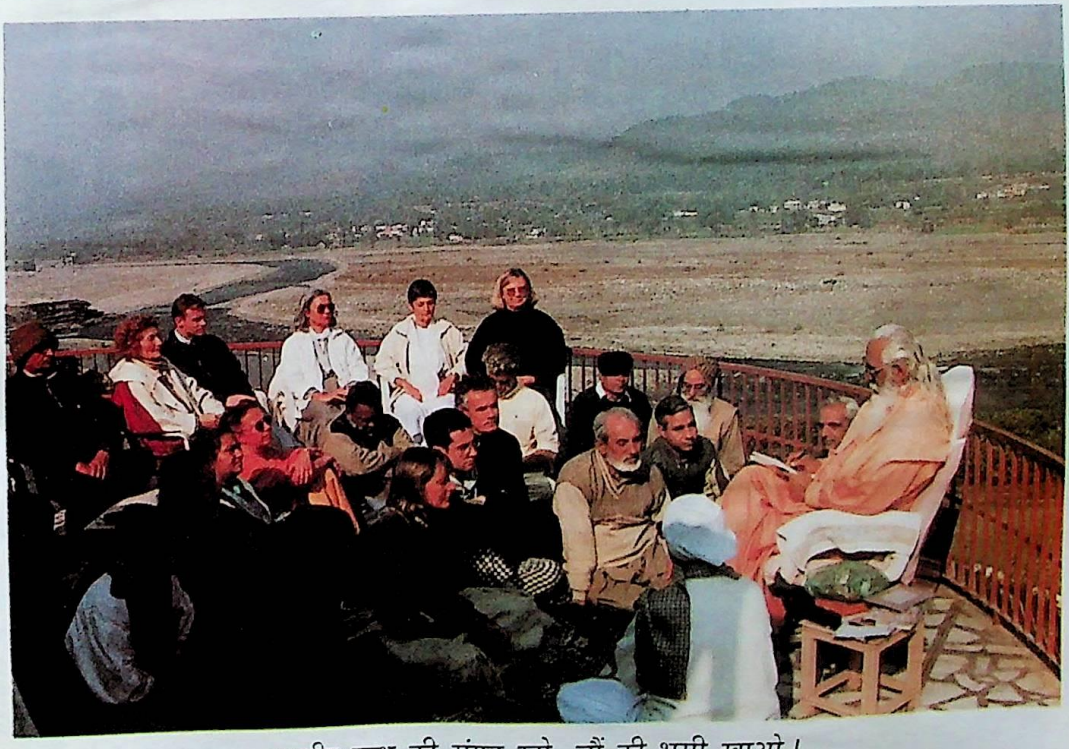
लेकिन उनको घेरे हुए सभी भक्त उनसे प्रश्न नहीं पूछते! कुछ तो उनके सान्निध्य में नेत्र बन्द करके चुपचाप बैठे रहकर उनके दिव्य वायुमण्डल का रसास्वादन करते हैं। अधिकांशतः प्रश्न विदेशी भक्त ही करते हैं। हालांकि कई विदेशी भक्त भी कभी कोई प्रश्न नहीं करते। भारतीय भक्त अक्सर उनके उत्तर की नहीं, उनकी कृपा की भिक्षा माँगते हैं। वैसे भी संस्कारों के कारण भारतीय भक्त किसी संत के पास अपेक्षाकृत अधिक श्रद्धा, प्रेम और आदरपूर्वक जाते हैं।

अनेक विदेशियों को तो अंग्रेजी भाषा आती ही नहीं तो भी वे सत्संग में आना कभी नहीं भूलते। वे कोई शब्द सुनने थोड़े ही आते हैं, वे तो महाराजजी का मौन सुनने आते हैं। सत्संग के समय महाराजजी के अंग्रेजी में लिखे उत्तरों का माता विशालीजी फ्रांसीसी भाषा में तुरन्त अनुवाद कर देती हैं। हिन्दी से अंग्रेजी अनुवाद भी सत्संग में उपस्थित भक्त कर देते हैं। अब प्रयास यह रहता है कि महाराजजी की लेखनी से निकले प्रत्येक अमूल्य शब्द को हम सहेज कर रख लें। वर्तमान में माता विशालीजी यह अमूल्य सेवा कर रही हैं।

कभी-कभी जब प्रश्नोत्तर काल के समय कोई प्रश्न नहीं करता तो महाराजजी चुपचाप चारों ओर बिखरे प्राकृतिक सौन्दर्य को निहारते रहते हैं, तो कभी आत्मानन्द

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

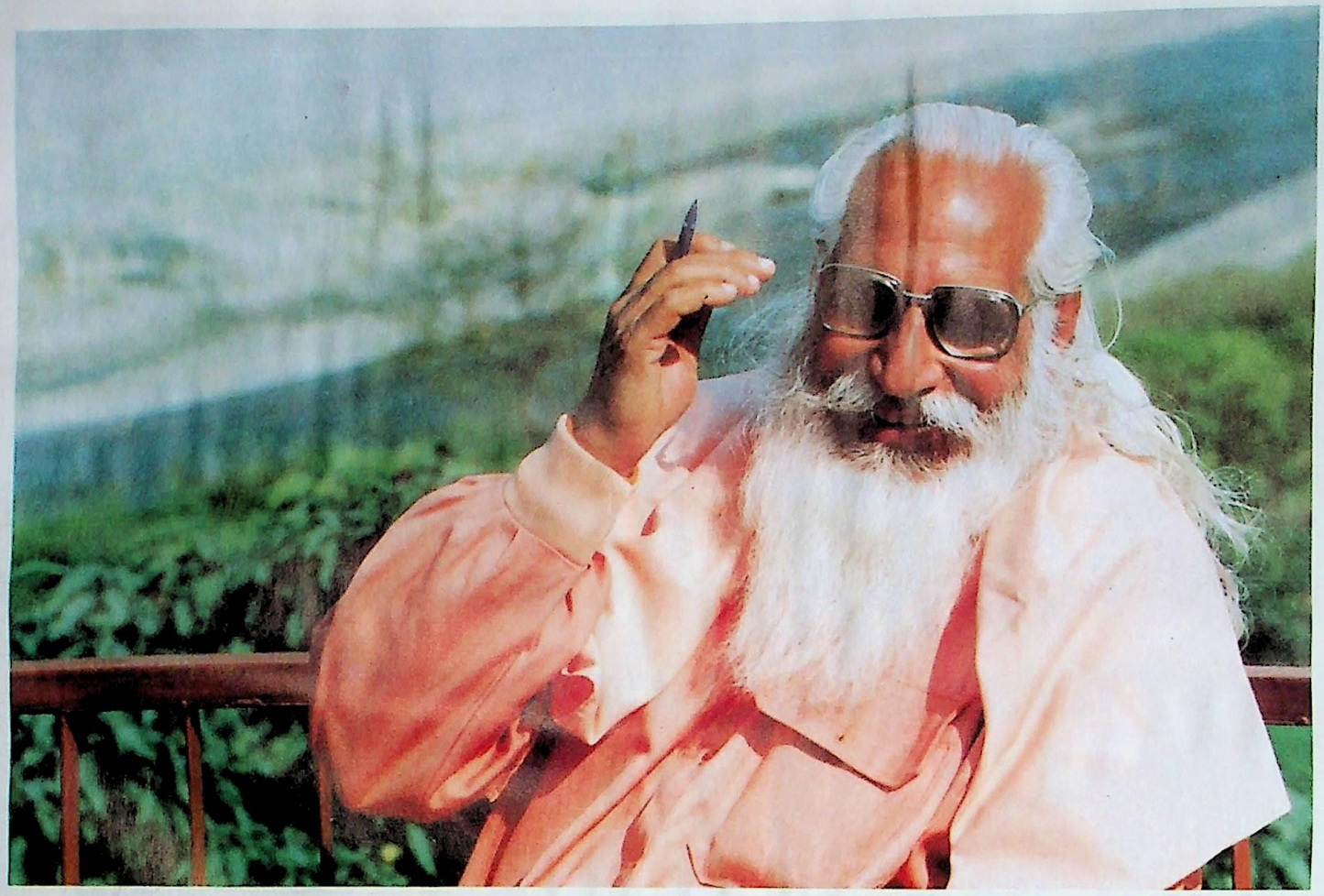




कबीर साधु की संगत रहो, जौं की भूसी खाओ।
होनहार तो होय है, साकत संग न जाओ॥

सर्दियों के दिनों में चटखीली धूप निकली हुई है। सत्संग बेला में भक्तों से घिरे महाराजजी आश्रम की छत पर बैठे हैं। भक्तगण उनकी भीनी-भीनी उपस्थिति का चुपचाप रसपान कर रहे हैं। साथ ही महाराजजी की लेखनी से निकली शब्दसुधा की भी वर्षा हो रही है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



राग-द्वेष लिप्त इन्द्रियां संसार को जैसा, जिस रूप में दिखाती हैं, वस्तुतः संसार वैसा नहीं है। निराशावादियों को यह अन्धकारमय और दोषपूर्ण दीखता है, साधकों को यही शिक्षालय और विकास करने का अनुपम क्षेत्र प्रतीत होता है, और सिद्ध महापुरुषों को 'अनन्त' की लीला-स्थली।

प्रश्नोत्तर के समय बीच-बीच में भक्तों से विनोद करते हुए।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

के महान् रस में डूबे चुपचाप शून्य में ताकते रहते हैं। ऐसे दिव्य एवं दुर्लभ क्षणों में सब भक्तगण भी चुपचाप होकर गुरुदेव के चरणों में बैठकर उनकी मौन सुधा का पान करते रहते हैं। जैसे भगवान शिव के चारों ओर सदा ज्ञान पिपासु ऋषि मण्डली रहती है उसी प्रकार आपके चारों ओर भी देश-विदेश से सच्चे साधकों का जमघट लगा ही रहता है।

ऐसे ही दुर्लभ क्षण सेवक निवास, हरिद्वार में भी तब देखने को मिलते थे जब नित्य प्रभु के दस मिनट के मौनदर्शन का समय हुआ करता था। तब वे अजीब सी दिव्य उदासीनता के भाव लिये बड़े हाल में कुर्सी पर विराजमान होते थे। बहुत से भक्तगण आश्रम से तथा आश्रम के बाहर से भी, उनके दर्शनों के लिये आकर हाल में बैठे होते थे। तब भक्तों से घिरे हमारे प्रभु शान्ति, प्रेम और पूर्णता का धीमे-धीमे बहता झरना प्रतीत होते थे; तब उनकी भगवत्ता ग्राह्यशील हृदयों को स्पर्श सी करती थी; तब उनका मौन और भी मुखर हो उठता था।

स्वामीजी का विश्वबन्धुत्व

सभी जीवों की एकात्मकता का सिद्धान्त ही वैश्विक बन्धुत्व की सच्ची आधारशिला है। संचार माध्यमों में अभूतपूर्व क्रान्ति आ जाने से आज भौतिक स्तर पर विश्व सिकुड़ कर छोटा सा गाँव बनकर रह गया है। अब और अधिक समय तक कुछ लोग या कुछ देश अपनी एकान्तिक भौतिक समृद्धि अथवा एकान्तिक सिद्धान्तों, मान्यताओं और धार्मिक विश्वासों में, न स्वयं को और न दूसरों को कैद रख सकेंगे। जिसके पास भी दूसरे को देने योग्य कुछ भी है, देना ही होगा। प्रेम, सहयोग और आपसी आदान-प्रदान के आधार पर अधिक समग्र मानव के विकास की भूमिका भौतिक और आध्यात्मिक दोनों ही स्तरों पर तैयार हो रही है। प्रकृति माता के नियमों के अनुसार घटित हो रहे इस महान् आयोजन में भारत के दिव्य-दृष्टि सम्पन्न महापुरुषों ने अभी तक अति महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है तथा आगे भी निभाते रहेंगे। पूरब और पश्चिम द्वारा एक दूसरे के निकट आकर मानवता के ऊर्ध्व आरोहण के परिप्रेक्ष्य में पूज्य स्वामीजी भी श्रीरामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, महर्षि श्रीअरविन्द, महर्षि रमण, स्वामी शिवानन्द, स्वामी रामदास आदि भारत के आधुनिक संतों की श्रृंखला की एक उज्ज्वल कड़ी हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

गुरुदेव के माध्यम से भी पाश्चात्य और पूर्व की संस्कृतियाँ अपने मौलिक आधार पर एक दूसरे के निकट आकर एक दूसरे को समृद्ध कर रही हैं।

गुरुदेव के समग्र व्यक्तित्व में पाश्चात्य सभ्यता के भी बहुत से सुन्दर गुणों का समावेश है। स्वामीजी का खुलापन, दूसरे के विचारों और निजता का सम्मान, समानता, नियमितता, समयबद्धता, कार्य करने की योजनाबद्ध व वैज्ञानिक शैली— ये सब गुण विदेशी भक्तों को बहुत आकर्षित करने वाले हैं। इसके अतिरिक्त स्वामीजी की निरभिमानता और विदेशियों के प्रति भेदभाव रहित निश्छल प्रेम उनके हृदय को स्पर्श कर जाता है। कई भक्तों के बारे में तो वे ऐसे हैं मानो नॉरमन विलियम की भाषा में—वे आये, उन्होंने देखा और सदा के लिये उन्हीं के हो गये।

अनेक विदेशी भक्तों के साथ उनका इतना गहरा, आत्मीय सम्बन्ध है जैसे माता-पुत्र का। वे भारतीय गुरु-शिष्य परम्परा का ही प्रतीक बन गये हैं। कोई-कोई तो कहते हैं "ये मुझे अपनी अनेक जन्मों की माँ लगते हैं।" कोई कहता है "आप मुझ पर अपनी स्नेह भरी एक नजर डालते हो और मैं आपका गुलाम हो जाता हूँ।" कोई कहता है "वे आते हैं तो मानो सूर्य आ रहा हो।"— आदि-आदि। भाव भरे हृदय से वे गुरुदेव को जो पत्र लिखते हैं उन्हें पढ़कर प्रेमाश्रु छलक आते हैं और ऐसे अनगिनत पत्र हैं।

यहां एक पत्र हम दे रहें हैं जो स्पेन देश के युवा संत स्वामी रामेश्वरानन्दजी गिरि (Balboa Lezaun Felix) ने हाल ही में गुरुमहाराजजी को लिखा था। इन संत ने महाराजजी की गुण गरिमा सुनकर प्रथम बार उनके दर्शन सन् 1998 में फ्रांस के क्लेरियां नामक स्थान पर किये थे जहाँ महाराजजी का सात दिन का सेमिनार हुआ था। वहीं उनकी महाराजजी के प्रति बहुत श्रद्धा हो गयी। तो दिसम्बर, 2000 में एक महीने के लिये वे साधना केन्द्र आश्रम में अपने कुछ सेवकों सहित श्रीचरणों में वास करने आये। ये संत शरीर से स्पेन के हैं लेकिन आत्मा से पूरे भारतीय हैं। वे अपने योरोपीय सेवकों को भी भारतीय नामों से पुकारते हैं। अपने स्वभाव के अनुसार महाराजजी ने इन्हें बहुत प्रेम-मान दिया। वे संत भी भजनानन्दी थे तथा चारों समय अपने सेवकों सहित नियमित रूप से ध्यान में भी बैठा करते थे। एक दिन कृपापूर्वक महाराजजी इन संत समेत अपने तीस-पैंतीस भक्तों को सप्तसरोवर, हरिद्वार स्थित अपनी पुरानी तपस्थली—'झाड़ी' में भी ले गये थे। उस भक्त मण्डली में महाराजजी

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

के परम भक्त फ्रांस के अस्सी वर्षीय मार्सल डेविड भी थे। बड़ी हिम्मत से सभी ने एक ग्रामीण मार्गदर्शक की सहायता से, गंगाजी की कमर तक गहरी तेज धारा को पार किया तथा उस स्थान को ढूँढ निकाला जहाँ बत्तीस वर्ष पूर्व महाराजजी की कुटिया स्थित थी। झाड़ी में पहुँचकर स्वामी रामेश्वरानन्दजी (Balboa Lezaun Felix) तथा अन्य विदेशी भक्त महाराजजी की कठिन तपस्या के बारे में सोच-विचारकर चकित रह गये। आश्रम में भी वे महाराजजी की सहज संयमित दिनचर्या देखकर आश्चर्यचकित थे। एक महीने के अपने प्रवास में वे सभी महाराजजी के दिव्य व्यक्तित्व से अभिभूत हो गये थे। वापस स्पेन जाकर उन्होंने महाराजजी को एक पत्र लिखा। एक प्रकार से साधना केन्द्र में रहकर जाने वाले विदेशी भक्तों के भावों का यह प्रतिनिधि पत्र है अतः उसका हिन्दी अनुवाद हम यहां दे रहे हैं—

प्रिय एवं पूज्य स्वामीजी,

आशा है यह पत्र आपको स्वस्थ एवं प्रसन्न पायेगा। कृपया स्वयं के लिये एवं सभी आश्रमवासियों के लिये हम सभी के द्वारा आदर एवं शुभकामनाएं स्वीकार करें। आप हमारे जीवन में इस प्रकार शामिल हो गये हैं कि आपको लिखने के लिये कागज के एक टुकड़े के सामने बैठते ही हम आपके भाव से भावाविष्ट हो जाते हैं और आपकी याद आते ही हमारे चारों ओर की हर वस्तु धुंधली सी पड़ने लगती है। हम आपको बहुत-बहुत प्रेम करते हैं, हमारे प्रियतम स्वामीजी।

आपके प्रति कृतज्ञ होने के हमारे मन में ढेरों कारण आ रहे हैं—इतने अधिक कि अपनी कृतज्ञता व्यक्त करने के लिये पर्याप्त शब्द नहीं हैं। आपको धन्यवाद स्वामीजी। बहुत-बहुत धन्यवाद ! आपके होने के लिये आपका धन्यवाद; सभी के प्रति आपकी कल्याण भावना के लिये आपको धन्यवाद; आपके प्रेम, आपकी शान्ति और आपकी कोमलता के लिये आपका धन्यवाद; सबके प्रति आपकी तत्परता व ध्यान देने के लिये आपका धन्यवाद; आपकी प्रफुल्लता के लिये आपका धन्यवाद; आपकी दृढ़ता, कार्य के प्रति आपके समर्पण तथा आपकी निर्दोष, त्रुटिहीन चर्या के लिये आपका धन्यवाद; आपकी निर्भयता, आपकी उदारता व आपकी गहराई के लिये आपका धन्यवाद; धन्यवाद स्वामीजी, आपको आपकी हर बात के लिये धन्यवाद; इतने सारे जीवों के हृदयों में पवित्र आशा को पोषित करने के लिये आपका धन्यवाद; हमारे परम सुहृद मित्र होने के लिये आपका बहुत-बहुत धन्यवाद; हमारी कटुता,

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पीड़ा, उदासी व अवसाद के उपचार के लिये आपका धन्यवाद; आपके जीवन के लिये आपका धन्यवाद क्योंकि आपका जीवन वैसा ही है जैसा कि आपका संदेश; आपकी उदारता के लिये, आपके संयम के लिये, आपकी विनोदप्रियता के लिये, आपके धैर्य के लिये, आपकी जीवन्त ऊर्जा के लिये और सर्वतोधिक, सदाचार और सद्बुद्धि के सत्यमित्र होने के लिये आपका बार-बार धन्यवाद। ये सभी सद्गुण आपमें इतनी प्रचुरता में हैं कि इसी कारण आपके सान्निध्य के कारण हमारे हृदयों में भी एक आशा बनी हुई है। आपके क्रियाकलाप हमारी आकांक्षाएं, हमारे आदर्श हैं। धन्यवाद स्वामीजी !

(इसके बाद स्वामी रामेश्वरानन्दजी ने स्पेन में स्थित अपने वाराणसी आश्रम के क्रियाकलापों के बारें में स्वामीजी को विस्तार से बताया।) अपने छः पृष्ठ के पत्र का अन्त उन्होंने निम्न पंक्तियों से किया—

हमारे प्रियतम स्वामीजी, हमारे अन्तस में आपके साथ व्यतीत किये गये क्षणों की यादें बनी हुई हैं। आप हमारी प्रेरणा हैं; आप हमारे जीवन में खुशियां और आनन्द लेकर आये हैं। हमारे परममित्र, अब आप मात्र धार्मिक व्यक्ति नहीं हैं; आप पूर्णतः आध्यात्मिक व्यक्ति हैं, मुक्तात्मा हैं। परमात्मा के बारे में आप बात नहीं करते बल्कि परमात्मा आपके माध्यम से बात करता है। हालांकि हम किसी प्रकार से अपने कार्यों को ठीक प्रकार से निभा लेते हैं तो भी हमारे कार्य उस ज्ञान के प्रकाश में सम्पादित नहीं होते जो आपमें सहज ही आलोकित हो रहा है। .....। आपकी हर बात के लिये आपको बहुत-बहुत धन्यवाद।

आप हमारे अन्दर अपने लिये गहन स्नेह पर सदा विश्वास करें एवं हमारी आपके प्रति उच्च भावनाओं को स्वीकार करें।

स्वामी रामेश्वरानन्दजी गिरि
(Balboa Lezaun Felix)
एवं वाराणसी आश्रम के सभी सदस्य

प्रिय बन्धुओं, देखा आपने ! महाराजजी को इतने प्रकार से धन्यवाद देने के बाद भी जैसे स्वामी रामेश्वरानन्दजी (Balboa Lezaun Felix) की तृप्ति नहीं हुई है—जैसे उनकी लेखनी अपने पूरे भाव व्यक्त करने के असफल प्रयास में फड़फड़ा

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

रही हो। कोई भी गुरुदेव का गुणगान करने का प्रयास करेगा तो ऐसा ही होगा, ऐसा ही होगा !

सन्दर्भवश अंग्रेजी के एक छोटे से भावपूर्ण गीत का अनुवाद भी यहाँ देने का मन हो रहा है जिसे पाश्चात्य संगीत के उत्कृष्ट गायक-संगीतकार तथा हमारे फ्राँसीसी गुरुभाई श्रीजेरोम ने महाराजजी पर स्वयं लिखा था। यह गीत उन्होंने 25.12.2000 को आश्रम में ईसाई भक्तों द्वारा अन्य भक्तों के साथ मनाये गये क्रिसमस के उत्सव पर हमें गाकर सुनाया था। गीत सुनकर हमारे हृदय में प्रेम की लहरें उठने लगी थीं।

My Guru	**मेरे गुरु**
My Guru's the blossom	मेरे गुरु शाश्वत सुबह
Of eternal morning	की चटख औ ताजगी हैं;
Be prepared my soul, come,	तैयार हो जाओ मेरी आत्मा,
For the endless merging.	अन्तहीन विलय के लिये।
My Guru is laughter	मेरे गुरु हास्य हैं
dispelling the darkness	अज्ञानान्धकार के नाश को;
there is nothing brigther	उनके सुखदायक मुखचन्द्र से
than his blessed face.	उज्ज्वल है भला और क्या !
Chorus	**सहगान**
Let us sing my Guru	आओ हम गुरुगान करें
Till the world has gone	जब तक ये संसार चले;
Celebrate my Guru	भाई, मेरे गुरु का उत्सव मनाओ न,
cause today I am born.	कि आज ही तो जन्म हुआ है मेरा।
Let us praise my Guru	आओ हम गुरुमहिमा गायें
Till the world has gone	जब तक ये संसार चले;
cause before my guru	कि जन्मा ही नहीं था मैं,
I was never born.	मेरे गुरु से पहले कभी।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

My Guru has beauties
You cannot imagine
You would know what Love is
If you dive within.

मेरे गुरु में है गुण-शोभा-चारुता इतनी
कल्पना कर ना पाओगे तुम कभी जितनी;
प्रेम क्या है जान पाओगे तभी जब,
स्वयं में अन्तर्निमज्जित हो चुकोगे !

My Guru is silence
Sound of all the musics
May my life be through chance
Written by His Lyrics.

मौन हैं मेरे गुरु
सब संगीतों की ध्वनि;
काश मेरा भी जीवन लिखा जाता,
संयोगतः, उसके ही गेय छन्दों में ।

Chorus

My Guru is breathing
of the earth and heavens
there is no more dying
but the divine dance.

सहगान

मेरे गुरु हैं श्वास
पृथ्वी और स्वर्गों की भी;
अब तो है दिव्य नृत्य केवल,
मरण अब और कैसा !

My Guru is freedom
Far beyond illusion
Let me flow to become
The eternal ocean.

मेरे गुरु हैं मुक्ति,
माया भ्रमों से पार परे;
बहने दो अब मुझे भी,
शाश्वत सागर बन जाने को ।

चलें, इस भाव सरिता से बाहर निकलें तथा उनके लीला उपवन के अन्य स्थलों पर विचरण करें। अधिकांशतः आश्रम में आने वाले विदेशी जिज्ञासु और भक्त बहुत सत्यनिष्ठ और परिपक्व होते हैं। पहले-पहले विदेशी भक्त फ्राँस के प्रसिद्ध गुरु युवान अमर (श्रीआनन्दजी) और श्री आर्नो डेज़ार्डा के माध्यम से आते थे। बाद में धीरे-धीरे उनके पास विदेशी जिज्ञासु सारे विश्व से आने लगे।

यहाँ पूज्य श्रीआनन्दजी के बारे में भी संक्षिप्त परिचय देना तथा उनके गुरुदेव के साथ गहरे आध्यात्मिक सम्बन्ध के बारे में कुछ बताना समीचीन प्रतीत

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

होता है। अत्यन्त पीड़ा का विषय है कि इस पुस्तक के पूरा होने से पहले ही श्रीआनन्दजी दिनाँक 18.06.99 को अपना पार्थिव चोला छोड़ गये ।

फ्राँसीसी संत युवान अमर (श्रीआनन्दजी)

युवान अमर फ्राँस के निवासी थे तथा धर्म से यहूदी थे। अट्ठारह-बीस वर्ष की कम आयु में ही उनमें परम सत्य के साक्षात्कार की तीव्र अभीप्सा जाग्रत हो गयी थी। उन्होंने श्रीरामकृष्ण परमहंस की अद्‌भुत भगवद्‌भावमयी जीवनी पढ़ी थी तथा उसे पढ़कर उनके मन की जिज्ञासा और भी प्रगाढ़ हो गयी तथा यह भाव पैदा हुआ कि जिस पुण्यभूमि भारत में श्रीरामकृष्ण परमहंस जैसे महामानव ने केवल सौ वर्ष पहले ही जन्म लिया हो, उसमें आज भी उन्हीं की तरह दिव्यभाव सम्पन्न आध्यात्मिक महापुरुष अवश्य होने चाहियें। बस मन में यही भाव लेकर वे सन् 1969 में भारत आ गये तथा अपने कुछ मित्रों के साथ हिप्पियों के वेष में भारत के विभिन्न प्रान्तों के धार्मिक स्थलों में इस प्रकार के किसी महापुरुष की खोज में घूमने लगे।

"जिन खोजा तिन पाइयां, गहरे पानी पैठ।"

उन्हीं दिनों अपने हरिद्धार के भ्रमणकाल की अवधि में उन्हें सप्तसरोवर के निकट वन (झाड़ी) में अपूर्व भगवद्‌भाव में प्रतिष्ठित हमारे गुरुदेव के दर्शन का सुअवसर मिला। मंगल दर्शन होते ही उन विदेशी नवयुवकों की खोज समाप्त हुई। संन्यासी का दर्शन ही उसका सुपरिचय था। युवान अमर को श्रीचन्द्रस्वामीजी भगवत्ता की जीती-जागती, चलती-फिरती मूर्ति प्रतीत हुए।

युवान अमर ने अपने मित्रों जॉन तथा जीन लुक के साथ गुरुदेव से उन्हें शिष्य रूप से दीक्षा दिये जाने की प्रार्थना की। गुरुदेव ने उनकी प्रार्थना स्वीकार करते हुये उन्हें क्रमशः आनन्द, प्रेमवर्णी तथा ब्रह्मवर्णी भारतीय नाम दिये। इस प्रकार ये तीनों नवयुवक गुरुदेव के प्रथम विदेशी शिष्य बने।

दीक्षा के उपरान्त ये नवयुवक नियमित रूप से महाराजजी के पास झाड़ी में उनके सत्संग दर्शन के लिये आते रहे।

आनन्दजी असाधारण लगन, तीक्ष्ण विश्लेषणात्मक बुद्धि वाले तथा सत्य की खोज को पूर्णरूपेण समर्पित साधक थे। कुछ ही दिनों में उनका गुरुदेव के साथ बहुत

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

मधुर और प्रगाढ़ आध्यात्मिक सम्बन्ध बन गया जो समय के साथ संवर्धित होता चला गया।

जब सन् 1970 में गुरुदेव झाड़ी से सप्तसरोवर स्थित सेवक निवास आश्रम में आ गये तो आनन्दजी भी सेवक निवास आकर 1971 में लगभग छः महीने वहाँ रहे थे। वहाँ उन्होंने गुरुदेव के मार्गदर्शन में मौन रखकर तत्परतापूर्वक कठोर साधना भी की। सेवक निवास में महाराजजी के कितने ही भक्तों, जैसे सर्वश्री के० के० कपूरजी, लाला खुशीरामजी, डी० आर० मौंगाजी, जे० एन० मल्होत्राजी, किशनचन्दजी सलूजा, विजयजी गर्ग आदि के साथ उनके गहरे और मधुर सम्बन्ध बन गये थे। सेवक निवास में भारतीय भक्तों के साथ घुल-मिलकर, भारतीय संस्कारों में रंगकर वे उन्हीं का एक हिस्सा हो गये थे। गुरुदेव के साथ तो उनका मधुर और सुदृढ़ सम्बन्ध पहले ही बन गया था। गुरुदेव के साथ उनकी निकटता तथा अपनी पाश्चात्य तथा स्पष्टवादी प्रकृति के कारण वे स्वामीजी से उनकी साधना, उपलब्धियों, आध्यात्मिक अनुभवों आदि के बारे में व्यक्तिगत प्रश्न भी कर लिया करते थे। इस प्रकार खोद-खोदकर उन्होंने स्वामीजी से उनके बारे में बहुत सी महत्वूर्ण जानकारियाँ एकत्र कर लीं और उन्हें नोट करते रहे। उन्होंने स्वामीजी के बारे में बहुत सी जानकारियाँ पूज्य महन्त गिरधारीदासजी की पत्नी से भी प्राप्त की थीं। आनन्दजी से मिलने के पहले स्वामीजी ने कभी भी किसी से अपनी साधना आदि के बारे में कोई बात नहीं की थी। वे तो अपने पूरे जीवनभर प्रायः मौन व एकान्त में ही रहे। दिनभर में केवल एक-दो घण्टे के लिये भक्तगण उनके पास आते थे जिनके साथ वे विशुद्ध रूप से आध्यात्मिक विषयों पर ही चर्चा करते थे। सम्भवतः एक भारतीय भक्त किसी संत से ऐसे प्रश्न करने की हिम्मत नहीं करेगा। हमारे शास्त्रों में इस प्रकार के प्रश्नों को करना अनाधिकार चेष्टा माना गया है। लेकिन आनन्दजी की इस अनाधिकार चेष्टा के कारण महाराजजी का विशाल भक्तवृन्द उनकी कठिन साधना, उनकी दुर्लभ उपलब्धियों एवं उनकी लीला के कुछ महत्वपूर्ण भागों को जान सका है। वर्तमान जीवन-लीला के अनेक महत्वपूर्ण प्रसंग उन्हीं के कारण हम सब जान सके हैं। अतः हम सब इस अमूल्य उपहार के लिये आनन्दजी के सदा ऋणी रहेंगे।

फ्राँस लौटने के बाद भी उनकी कठोर साधना जारी रही। फ्राँस में ही उन्होंने

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

श्रीजीन क्लाइन (Jean klien) नामक एक योग के शिक्षक से हठयोग तथा प्राणायाम भी सीखा। फ्राँस में ही उन्होंने Body Consciousness अर्थात्, 'शरीर के प्रति सजगता' नाम की एक आध्यात्मिक प्रक्रिया भी सीखी। काफी समय तक वे फ्राँस में योग अध्यापक के रूप में भी कार्य करते रहे।

गुरुदेव बताते हैं कि सन् 1975 के आस-पास आनन्दजी को एक अति उच्च, वृहद तथा मौलिक आध्यात्मिक अनुभव हुआ जिससे उनके अन्दर ऐसी प्रज्ञा का विकास हुआ था जो बड़े-बड़े विद्वानों तथा दर्शन शास्त्र के प्रोफेसरों में भी नहीं पायी जाती।

आनन्दजी सद्साहित्य प्रेमी थे उन्होंने विश्व के विभिन्न भागों में विकसित हो रही आध्यात्मिक परम्पराओं, धर्मों तथा विचारधाराओं पर विशद ज्ञान अर्जित किया था। विश्व के विभिन्न मतों के अनेक धर्मगुरुओं से उनकी व्यक्तिगत मित्रता थी। उनका घर एक अच्छा-खासा पुस्तकालय था जिसमें पाश्चात्य दर्शन, हठयोग, गुरुवाणी, वेद, पुराण, उपनिषद, वेदान्त, पाणिनी की व्याकरण, संस्कृत-अंग्रेजी शब्दकोष, यहूदी धर्म, इस्लाम, ईसाई धर्म, बौद्ध धर्म, सूफी मत आदि-आदि पर प्रामाणिक ग्रन्थ रखे हुये थे।

उन्होंने भारतीय धर्म-परम्पराओं को हेय दृष्टि से देखने वाले विदेशी समाज के समक्ष भारत की धार्मिक धरोहर को उसके शुद्ध रूप में रखा तथा उसे उसका उचित सम्मान दिलवाया। पूर्व और पश्चिम को एक दूसरे के निकट लाने में उनका अनुपम योगदान था। इसके अतिरिक्त विश्वभर के साधकों, जिज्ञासुओं को उनके द्वारा उदासीनाचार्य भगवान श्रीचन्द्रजी, बाबा भूमनशाहजी तथा 'सम्पूर्ण मानव' के प्रतीक श्रीचन्द्रस्वामीजी से परिचय कराना भी मानवता को उनकी ऐसी अनुपम धरोहर है जिसका सम्भवतः अभी मूल्यांकन करना भी कठिन है।

आनन्दजी को भारतीय धर्म परम्पराओं से गहरा प्रेम था। वे गुरुदेव के साथ अनेक बार कश्मीर भी गये थे। पूज्य स्वामी कृष्णदासजी के भी उन्होंने दर्शन किये थे तथा उनमें उनकी बहुत श्रद्धा थी। भगवान श्रीचन्द्रजी और बाबा भूमनशाहजी को तो वे अपने आध्यात्मिक पूर्वजों की तरह मानते थे। उनकी चर्चा करने में उन्हें बहुत गर्व होता था। उनके घर में बाबा भूमनशाहजी की पेंटिंग भी लगी है। उनके एक

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

चित्रकार सेवक ने एक बार आचार्य श्रीचन्द्रजी, बाबा भूमनशाहजी तथा गुरुदेव के सुन्दर तैलचित्र बनाकर हमें भेजे थे।

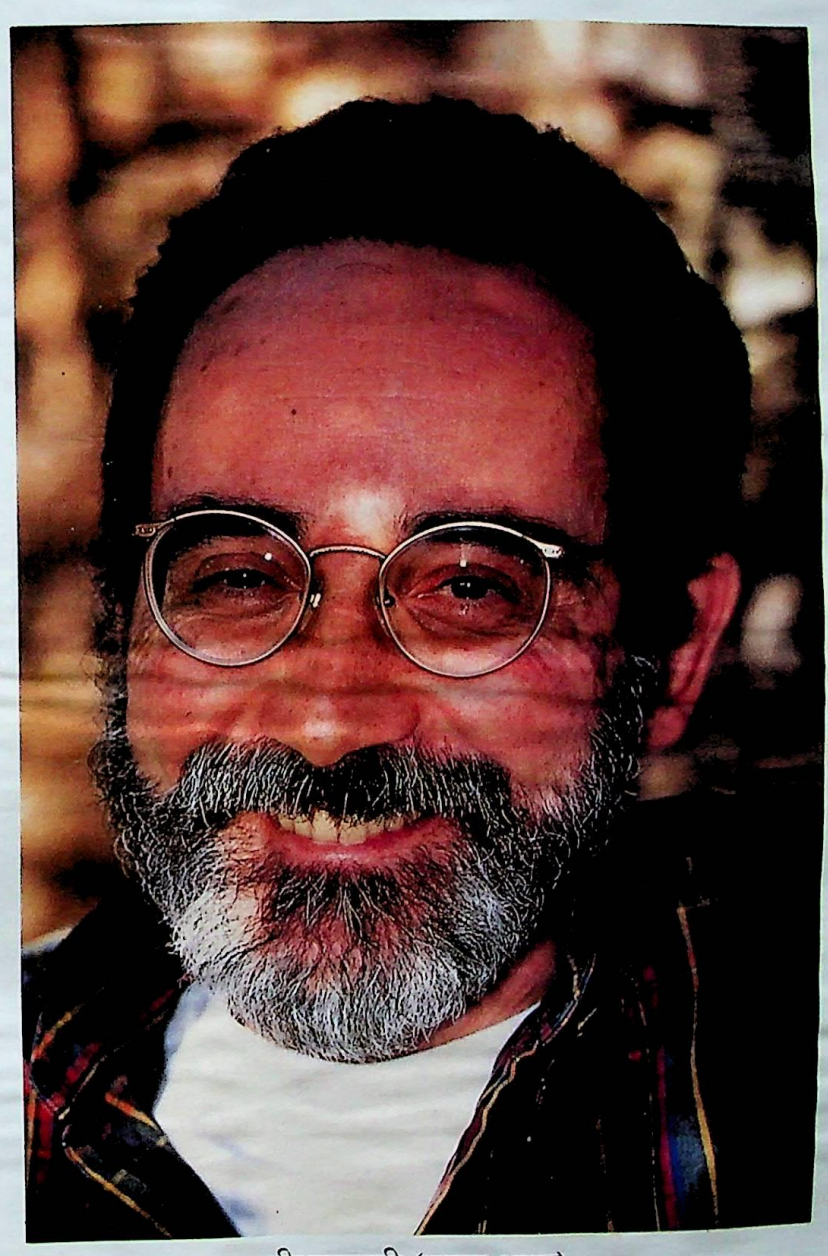
गुरुदेव से प्राप्त ज्ञान को उन्होंने पश्चिम की मानसिकता के आधार पर पाश्चात्य मूल्यों-परम्पराओं के सांचे में ढालकर प्रस्तुत किया। उन्होंने 'Conscious Relationship' अर्थात् 'सम्बन्धों में सजगता,' के नाम से एक विशेष जीवन दर्शन विकसित किया था जिसका मूल आधार नैतिकता, विवेक तथा सजगतापूर्वक सभी प्रकार के सम्बन्धों का निर्वाह करना था। वे उत्कृष्ट वक्ता भी थे तथा लोग उन्हें शब्दों का जादूगर कहते थे। अपने जीवनकाल में उन्होंने अपने भक्तों और जिज्ञासुओं के साथ अनेक कार्यशालायें आयोजित कीं। अनेक व्याख्यान दिये। वे प्रभावशाली लेखक एवं कवि भी थे। पश्चिम के अनेक धर्मगुरु उनसे बहुत प्रभावित थे। कई प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकायें उनके लेख प्रकाशित करने में गर्व महसूस करती थीं। विश्वभर में धार्मिक कट्टरता से परे, बड़ी संख्या में भिन्न-भिन्न धर्मों के लोग उनके अनुयायी थे।

पीछे जुलाई, 1998 में जब गुरुदेव उनके पास फ्राँस गये थे तो देखा कि दमे के रोग से आनन्दजी का शरीर कंकाल मात्र रह गया था। जीवन ज्योति लड़खड़ाती सी दीखती थी। उनकी पत्नी नडेज़ अमर जिनका भारतीय नाम क्रान्ति है, गुरुदेव एवम् भारतीय संस्कारों के प्रभाव से भारतीय नारी की तरह उनकी दिन-रात सेवा करती थीं। बीमारी के कारण तब उन्हें रोज़ सोलह से अट्ठारह घण्टे तक आक्सीजन पर रहना पड़ता था; दो कदम भी नहीं चल सकते थे तो भी बहुत शान्त और गहरे सन्तुष्ट दिखाई पड़ते थे। कहते थे—"मैं अपने बच्चों और सेवकों को शान्ति एवं अनुग्रह के साथ स्वीकार की गयी अपनी मृत्यु का उपहार देना चाहता हूँ।" उन्हें इतने भयंकर कष्ट में देखकर मन पीड़ा से भर जाता था। जैसी प्रभु की इच्छा ! उसकी लीला के भेद वही जाने !

आनन्दजी ने अपने बगीचे में इटली से मंगायी सफेद संगमरमर की बाबा भूमनशाहजी की एक मूर्ति तथा भगवान शंकर की एक मूर्ति भी रखी हुई थी। बाबाजी की मूर्ति उन्होंने बहुत प्रेम से महाराजजी को भेंट कर दी थी। घर में कई स्थानों पर गणेशजी तथा अन्य कई देवी-देवताओं के चित्र टाँगे हुये थे।

बहुत इच्छा होने पर भी आनन्दजी बीमारी के कारण तब गुरुदेव के दर्शन

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

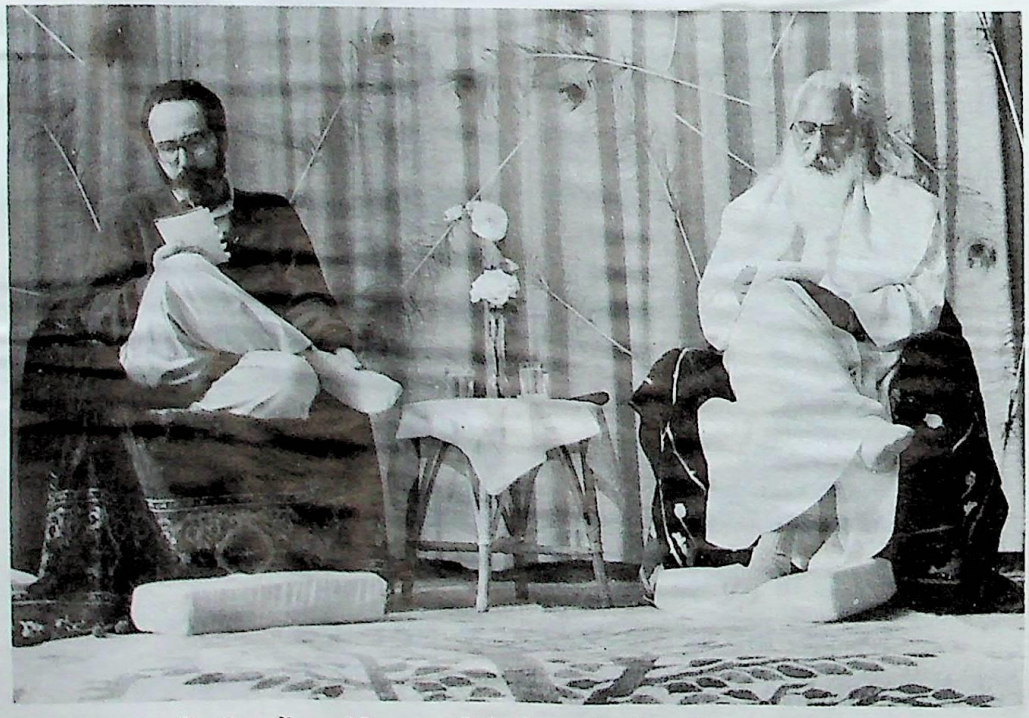


श्रीआनन्दजी (युवान अमर)

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



सन् 1969 में बने स्वामीजी के प्रथम चार विदेशी शिष्य श्रीकल्याणदासजी (लोड्क, फ्राँस), श्रीआनन्दजी (युवान अमर, फ्राँस), श्रीब्रह्मवर्णी (जीनलुक, फ्राँस) एवं श्रीप्रेमदासजी (जॉन, इंग्लैण्ड)।



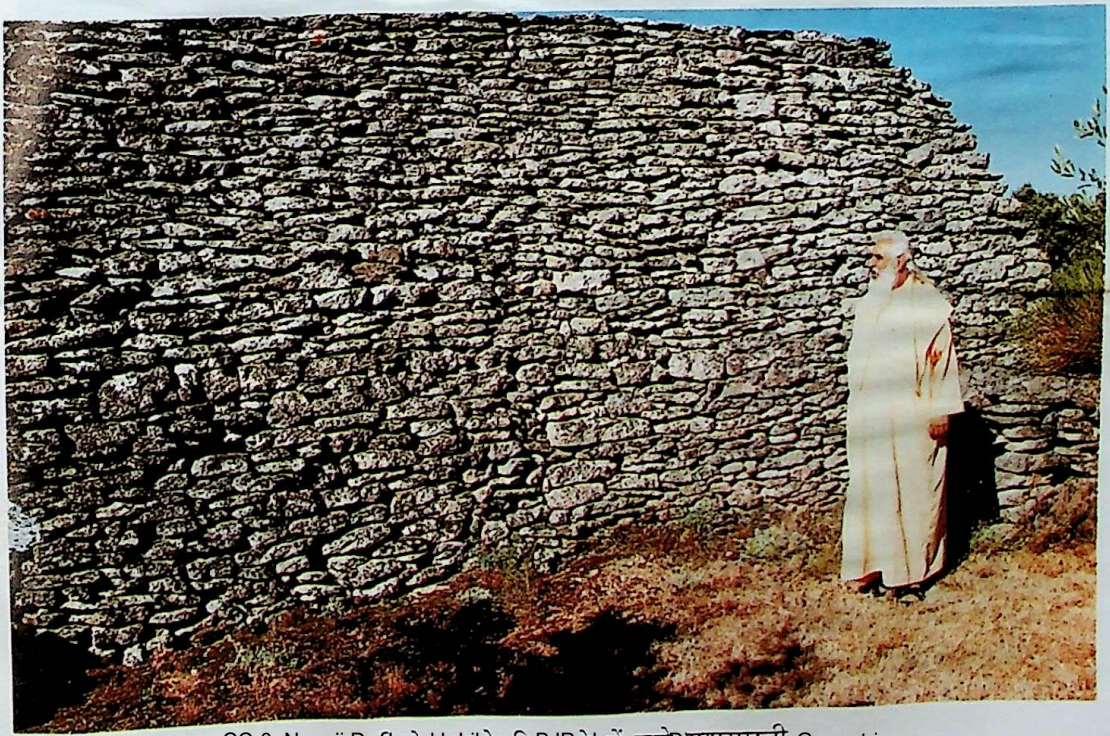
सौजन्य — सिल्विया, इटली

सन् 1992 में फ्राँस में आयोजित स्वामीजी के उत्तरों को पढ़ते एवं उनका अनुवाद करते हुए श्रीआनन्दजी।

CC-0. Lokmanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

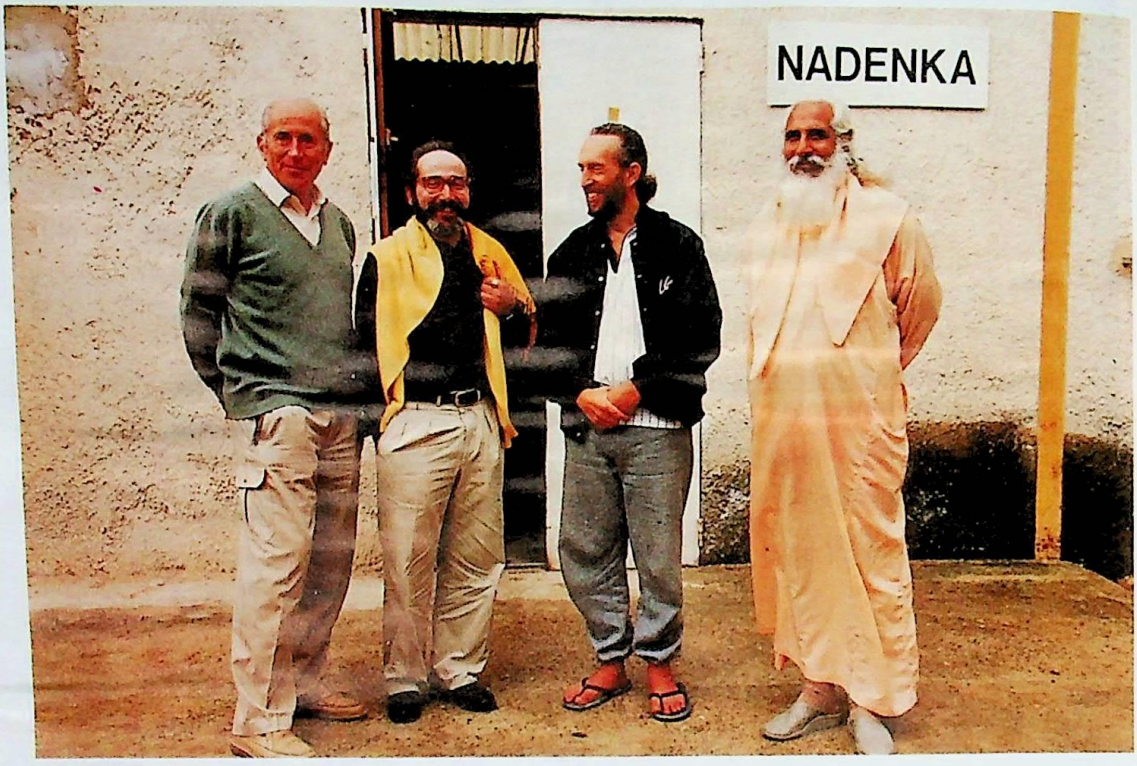


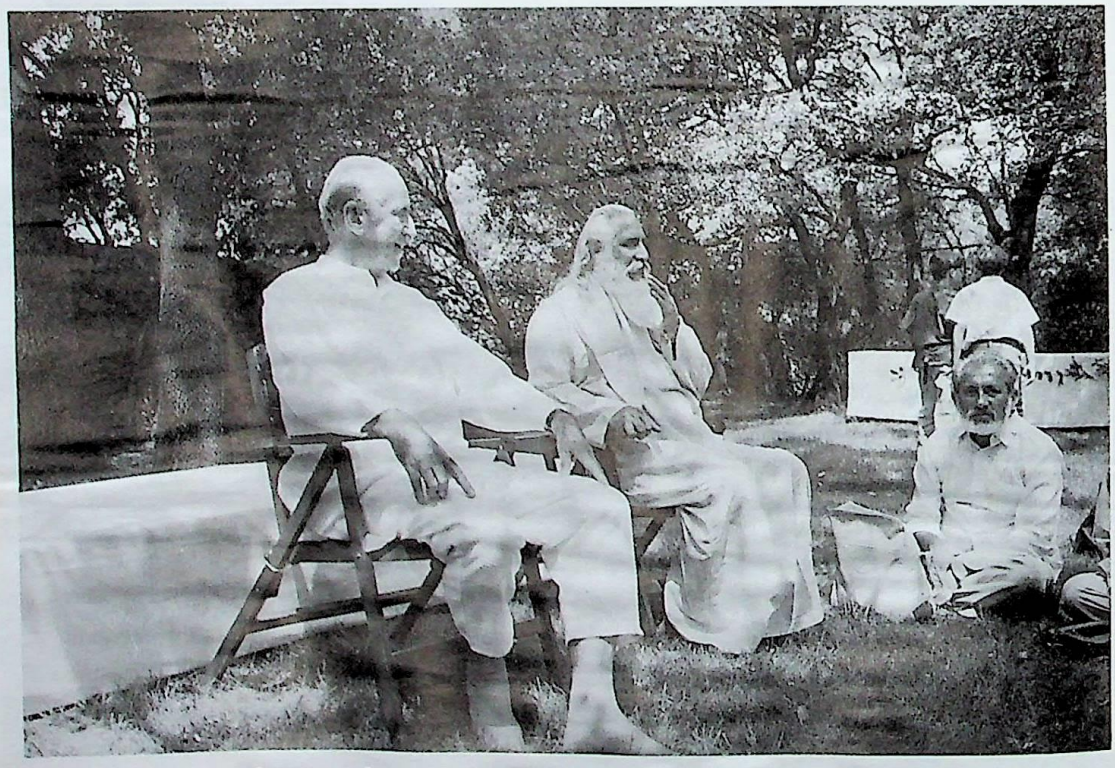
अन्तिम बार अपने गुरुदेव के साथ आनन्दजी। सितम्बर, 1998 में स्वामीजी रुग्णावस्था में पड़े आनन्दजी के फ्राँस में गोर्ड्स गाँव स्थित घर में पाँच दिन रुके थे। वहाँ बड़ी संख्या में आनन्दजी और स्वामीजी के भक्तों का समागम हुआ था। बहुत सत्संग-आनन्द हुआ। (उन्हीं दिनों का चित्र) 16 जून, 1999 को आनन्दजी ने भौतिक चोला छोड़ दिया था।



आनन्दजी के घर के पीछे पहाड़ में खड़े उनके गुरुदेव

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri





स्वामीजी को जब भी अवसर मिलता है वे दूसरे धर्म-परम्पराओं के धर्मगुरुओं से बहुत प्रेम-आदर से मिलते हैं। ऊपर वाले चित्र में वे फ्राँस के श्रीआर्नोडिज़ार्डा, श्रीआनन्दजी और अमरीका के श्रीलीलोज़ोविक के साथ खड़े हैं। नीचे वाले चित्र में वे श्रीआर्नोडिज़ार्डा के फ्राँस स्थित आश्रम में निमंत्रित होकर उनके साथ बैठे हैं। साथ में श्रीविनोदजी भी हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

करने के लिये भारत में नहीं आ सकते थे। अतः कृपासिन्धु प्रभु स्वयं ही जुलाई, 98 में उनसे मिलने फ्राँस गये थे तथा उनके घर में पाँच दिन रहे। महाराजजी की अनुकम्पा को याद करके आनन्दजी बार-बार रोते थे। और क्यों न रोते, सच्चा पिता जो घर आ गया था। जितने दिन गुरुदेव उनके घर रहे उतने दिन उनकी बीमारी कुछ कम रही। अपनी भीषण पीड़ा के बावजूद गुरुदेव के आ जाने से वे इस प्रकार प्रसन्न हो गये थे जैसे माँ से बिछड़ा बालक माँ की शीतल गोद में बैठकर आश्वस्त व खुश हो जाता है। गुरुदेव के प्रेम में विभोर वे कहते थे " केवल गुरु महाराजजी की कृपा ही सत्य है, बाकी सब सपना है।" अहा ! वे कैसे दुर्लभ क्षण थे!—प्रेम की अकथ कथा का एक दुर्लभ भाग !

शरीर छोड़ने से दो दिन पहले 16.06.99 को उन्होंने साधना केन्द्र आश्रम फोन करके हाँफते-हाँफते गुरुदेव से बात की। कहा कि उनकी सब मैडिकल टैस्ट रिपोर्टें बिल्कुल खराब आयी हैं तथा उनका अंतिम समय आ गया है। और यह भी कहा, "मेरा मन शान्त और प्रसन्न है। मेरे मन में भय नहीं है। मैं आपको आपकी कृपा तथा आपने जो मुझे दिया है उसके लिये प्रणाम करता हूँ।" यही उनका गुरुदेव के प्रति अन्तिम प्रणाम था।

17.06.99 को भी उन्होंने अपने कुछ सेवकों तथा पत्नी क्रान्तिजी से कहा कि वे शरीर छोड़ने वाले हैं। सत्रह जून की रात उनकी तबियत बहुत खराब रही। रातभर वे बिस्तर पर लेटते-बैठते रहे तथा वे और क्रान्तिजी दोनों सस्वर गुरुमंत्र का जाप करते रहे। उनके बिस्तर के ऊपर ही बाबा भूमनशाहजी का तथा सामने श्रीचन्द्र भगवान और गुरुदेव के चित्र लगे हुये थे जिनका वे हर समय दर्शन करते रहते थे। प्रातः शरीर छोड़ने के पहले ही उन्होंने आक्सीजन उतार दी और फ्राँस के समयानुसार लगभग छः बजे अपनी पत्नी क्रांन्तिजी की गोद में पूरी सजगता और बोधपूर्वक, मंत्र-जाप करते हुये शरीर त्याग दिया। कैसी दुर्लभ संतोचित मृत्यु !

भारतीय समय के अनुसार लगभग 9.30 बजे प्रातः क्रांन्तिजी का फोन आश्रम में आ गया कि कुछ ही मिनट पहले आनन्दजी चल बसे हैं। अपने परमप्रिय शिष्य के देहावसान का समाचार गुरुदेव ने सदा की तरह बहुत तटस्थ और गम्भीर भाव से सुना। परमात्मा के प्यारे अपने प्रियतम के हर विधान को सिर झुकाकर स्वीकार कर लेते हैं चाहे वह कितना ही हृदय विदारक क्यों न हो। आनन्दजी की

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

इच्छा थी कि उनकी अन्त्येष्टि गुरुदेव के हाथों ही हों। अतः बाहर जाने की अनिच्छा होने पर भी तथा शरीर अस्वस्थ होने पर भी कृपासिन्धु गुरुदेव केवल आठ दिनों के लिये फ्राँस के मार्से प्रांत के गोर्ड्स गाँव में आनन्दजी की अन्त्येष्टि में भाग लेने पहुँच गये।

गुरुदेव की प्रतीक्षा में आनन्दजी का मृत शरीर तीन दिन तक रासायनिक प्रक्रिया (embalming) द्वारा सुरक्षित रखा गया था। 22.06.99 को गोर्ड्स गाँव पहुँचकर गुरुदेव ने साधना केन्द्र आश्रम के बगीचे से विशेष रूप ले लाये पुष्प उनके ताबूत पर रखे, स्वयं अपने हाथों से उनके शरीर पर चादर चढ़ायी। बहुत देर तक गुरुदेव की उपस्थिति में पार्थिव शरीर को घेरे सब भक्त 'ॐ हरि शरणम' मंत्र का संकीर्तन करते रहे।

सायं चार बजे गोर्ड्स गाँव की चर्च में सैकड़ों लोगों की उपस्थिति में उनके लिये अन्तिम प्रार्थना सभा हुई। सभा के दौरान 'ॐ हरि शरणम' का फिर संकीर्तन हुआ। पूरे वातावरण में टीस किन्तु दिव्य शालीनता घुली हुई थी। श्रद्धांजलि के अन्त में ॐ, शेलोम, आमीन, अल्लाह इन शब्दों का समूह गान किया गया। अर्थात्, वैदिक धर्म, यहूदी धर्म, ईसाई धर्म, तथा इस्लाम आदि—सभी धर्मों के अनुसार उन्हें श्रद्धांजलि दी गयी। शरीर को कब्रिस्तान ले जाते हुये भी लोग इन शब्दों का उच्चारण कर रहे थे। कब्रिस्तान में स्वयं गुरुदेव के हाथों यहूदी परम्परा के अनुसार उनका अन्तिम संस्कार हुआ। किसी भक्त ने उस समय गायत्री मंत्र का भी पाठ किया। शरीर को धरती माता को सौंपने के बाद पुष्पों के गुलदस्ते कब्र पर रखे गये। उनके बीच में ही गुलाबों से बना एक बड़ा सा ॐ के आकार का गुलदस्ता भी वहाँ किसी भक्त ने रखा। बहुत कृतज्ञ और भावपूर्ण हृदय से समाज ने उन्हें अन्तिम विदाई दी।

उनकी अन्त्येष्टि में भाग लेने अनेक देशों से उनके भक्त, प्रशंसक आये हुए थे। अमरीका के प्रसिद्ध धर्म शिक्षक एन्ड्रू कोहीन, लीलोज़ोविक तथा फ्राँस के आर्नो डिज़ार्डां तथा मोरोक्को से एक सूफी संत फ्राँसिस, लूसीक, हैरिक बैरे आदि कई महत्वपूर्ण व्यक्ति आये हुये थे।

अपनी श्रद्धांजलि में श्री आर्नो डिज़ार्डां ने आनन्दजी को वैश्विक मानव (global man) बताया। प्रसिद्ध धर्मगुरु रिचर्ड मॅास ने अपने संदेश में कहा—"यही वे व्यक्ति थे जिनसे मैंने बहुत कुछ सीखा। उनके हृदय की उदारता, उनके मन

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

की स्पष्टता, गहरा प्रेम, परिवार के प्रति जिम्मेदारी तथा जिस गरिमा के साथ उन्होंने शारीरिक कष्ट सहा, वह मेरे लिये प्रेरणा का स्रोत है। ..... " टाड़मलैस विज़्डम के पीटर पैनी ने क्रान्तिजी को अपने पत्र में लिखा—"यह हमारा सौभाग्य था कि हमने युवान के साथ समय व्यतीत किया तथा उनकी गर्मजोशी, सज्जनता तथा उनके व्यक्तित्व की शक्ति को अनुभव किया। वे एक विशिष्ट मानव थे जिनका आध्यात्मिक योगदान उनके शरीर के क्षीण होने के साथ बढ़ता ही गया। और मुझे विश्वास है कि वह उनकी मृत्यु के बाद और अधिक विस्तार को प्राप्त होगा।" अस्तु !

गोर्ड्स में आठ दिन आनन्दजी के परिवार में पिता की तरह रहकर तथा आनन्दजी की पत्नी और बच्चों को सांत्वना देकर गुरुदेव भारत लौट आये। लेकिन मौका दुःख का हो या खुशी का, संतों की उपस्थिति में सत्संग, भगवद्चर्चा तो होती ही है। जितने दिन गुरुदेव गोर्ड्स रहे, उनका सान्निध्य लाभ लेने स्विट्जरलैण्ड, अमरीका, जर्मनी से विशेष रूप से आये उनके अनेक भक्त गोर्ड्स में आकर होटल आदि में ठहरे रहे। क्रांन्तिजी के घर रोज ध्यान-सत्संग होता रहा, बाबाजी की आरती गायी जाती रही। कई बार ऐसा प्रतीत होता था मानो आनन्दजी के अपने सच्चे घर लौटने के उपलक्ष में शालीनतापूर्वक उत्सव मनाया जा रहा हो। गुरबानी भी तो कह रही है —

संत मुए क्या रोइये ज्यों अपने घर जाये।
रोइये सातक बापड़े जो हाटे हाट बिकाए॥

आनन्दजी का प्रसंग समाप्त करने से पहले हम महाराजजी के प्रश्नोत्तरों के दूसरे भाग के संकलन 'Song of Silence-II' के लिये उनके द्वारा लिखित भूमिका का हिन्दी अनुवाद यहाँ दे रहे हैं। इससे पाठकों को उनके आत्मिक सम्बन्धों तथा उनके जीवन पर गुरुकृपा की झलक का दिग्दर्शन हो सकेगा—

"मुझे स्मरण है कि जब मैंने स्वामी विवेकानन्द द्वारा अपने महान् गुरु श्रीरामकृष्ण परमहंस की महिमा में लिखे शब्दों को पढ़ा था तो किस प्रकार अभिभूत हो गया था। मुझे अभी तक इसका भी स्मरण है कि तब मुझमें भी एक दिन अपने प्रेमास्पद के प्रति उसी प्रकार के भाव व्यक्त करने की कैसी तीव्र भावना पैदा हुई थी।

बिना किसी हिचक के मैं कह सकता हूँ कि आज मेरे लिये श्रीचन्द्रस्वामीजी वही व्यक्ति हैं जिनकी पुस्तक सौंग आफ सायलेन्स—खण्ड दो की भूमिका लिखकर

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

मेरा हृदय अति प्रसन्न है। इस भूमिका के द्वारा मुझे भी वह सुअवसर मिला है जिससे कि मैं दूसरे लोगों तक वे आनन्ददायक भाव पहुँचा सकूँ जो कभी मेरे हृदय में उठे थे। और वैसा इसलिये सम्भव है क्योंकि यहाँ वास्तव में एक ऐसा व्यक्ति है जिसमें 'होना' और 'करना' एक हो गये हैं, जिसका जीवन ही उपदेश है— जीवन्त उपदेश।

मेरा ख्याल है कि अब मैं समझ चुका हूँ कि स्वामी विवेकानन्द को पढ़कर तब मेरे मन में वैसे भाव क्यों उठे थे। वे केवल रामकृष्ण के लिये अपना प्रेम और आदर ही व्यक्त नहीं कर रहे थे, मुझे स्पष्ट दिख रहा है कि उन्हें अपने गुरु पर गर्व था। आज मैं भी यह कहने की हिम्मत कर सकता हूँ कि मुझे श्रीचन्द्रस्वामीजी के प्रति प्रेम और आदर ही नहीं है, बल्कि गर्व भी है।

इस पुस्तक के बारे में मैं उनके एक कृतज्ञ भक्त के रूप में कुछ शब्द लिख रहा हूँ। इस पुस्तक में उनके द्वारा दिया गया प्रत्येक उत्तर उनके प्रेम-ज्ञान से जीवन्त हो उठा है; भगवान की उपस्थिति तथा दृष्टि से अनुरंजित है। प्रत्येक उत्तर में ग्रहणशील साधक के रूपान्तरण की सम्भावना छुपी हुई है; उनकी हर सलाह-उपदेश सच्चे साधक के लिये जीवन की गहराईयों तथा प्रकाश का अमूल्य प्रसाद है। फिर भी मुझे उनके शब्दों के बारे में कुछ भी लिखने में असमर्थता, लज्जा और हिचकिचाहट जैसा लग रहा है, मानो कोई बहुमूल्य हीरों के पास खड़ा हो, जिन्हें छूना नहीं है, केवल विस्मित तथा चकित होकर सराहना भर है। अतः स्वामीजी की इच्छानुसार इस अभिव्यक्ति के लिये पाठक कृपया मुझे मेरी धृष्टता के लिये क्षमा करेंगे।

सन् 1969 के अन्त में मैं, जीनलुक तथा जॉन किसी भगवदोपलब्ध संत की खोज में भारत आये थे। परमहंस श्रीरामकृष्ण, स्वामी शिवानन्द के उपदेश तथा स्वामी योगानन्द परमहंस द्वारा लिखित 'योगी कथामृत' पढ़ने के बाद हम लोगों को विश्वास हो गया था कि सच्चे सद्गुरु अभी भी हैं तथा उन्हें ढूँढा जा सकता है। लेकिन हमें इस बात का कुछ अता-पता नहीं था कि उन्हें कहाँ ढूँढें। जॉन लुक पहले भारत आया हुआ था। उसकी सलाह के अनुसार हमने ऋषिकेश से अपनी खोज आरम्भ की। और वैसा करना उपयोगी रहा क्योंकि जल्दी ही हम वहाँ पहुँच गये जहाँ हम श्रीचन्द्रस्वामीजी से मिलने वाले थे।

उन्हें देखते ही हमने जान लिया कि हमारी खोज पूरी हो गयी है; हमें अपना

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

घर मिल गया है बशर्ते कि वे भी हमें शिक्षा देने के लिये, अपने सान्निध्य का प्रसाद देकर स्वीकार कर लें।

श्रीचन्द्रस्वामीजी ने हमें पवित्र गंगा के तट पर वन प्रदेश में अपनी कुटिया में आने का निमंत्रण दिया। तभी से हमने प्रतिदिन नियमित रूप से उनकी कुटिया में जाना प्रारम्भ कर दिया।

तब वे आगन्तुकों से गंगा के तट पर एक छायादार झोंपड़ी में मिला करते थे। जिनको भी उनके चरण-कमलों के समीप बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, वे सब कृतज्ञ हृदय से उन आनन्ददायी बातों का स्मरण करते हैं तथा एक दुर्लभ रहस्यदर्शी तथा ज्ञानी का सान्निध्य लाभ कर पाने के लिये भगवान का बार-बार धन्यवाद करते हैं।

अब जबकि सद्गुरु की खोज पूर्ण हो चुकी थी, शिष्य के जीवन का श्रीगणेश हुआ, वास्तविक कार्य आरम्भ हुआ। हम सब नवयुवक ही थे और यह बिल्कुल नहीं समझते थे कि हिन्दू धर्म की परम्परा के अनुसार एक संत के प्रति आदरपूर्ण व्यवहार कैसे किया जाये। हम सबकी उत्कट इच्छा थी कि हम भी उस विश्वास के योग्य बन सकें जो स्वामीजी ने हमें कृपापूर्वक स्वीकार करके हममें व्यक्त किया था। रुढ़िवादी संतों का तो हम जैसे युवकों के प्रति बड़ा आलोचनात्मक रवैया रहता था; वे उन्हें हिप्पी कहा कहते थे।

भगवान का धन्यवाद कि स्वामीजी कट्टरपंथी नहीं थे। और फिर इस बात में भी हम भाग्यवान रहे कि स्वामीजी के निकट भक्तों तथा शिष्यों में से हमें कई ऐसे उपकारी भाई-बहन मिल गये जिन्होंने हिन्दू परम्पराओं, विशेषकर गुरु तथा उनके शिष्यों और भक्तों के बीच सम्बन्ध की गरिमा-गहराई के प्रति आदरयुक्त होने के बारे में हमें ठीक-ठीक जानकारी दी।

हम यहाँ सब भारतीय भक्तों के बारे में तो नहीं लिख सकते। उनके हृदय की विशालता तथा सज्जनता-सत्कार हमारी स्मृति में हमेशा अंकित रहेगा। हमारे लिये वह सब कैसी अनुपम खोज, कैसी अनुपम भेंट थी ! उनमें से अधिकाँश भक्त हमें उदारतापूर्वक धन दिया करते थे जिसकी मदद से हम उन दिनों स्वामीजी के निकट रह सके।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

उनकी उदारता के ही कारण कई आरम्भिक विदेशी स्वामीजी के दिव्य सान्निध्य में रह सके। वह सब, हम कभी नहीं भूल सकते। आज हम कह सकते हैं कि उनके सद्व्यवहार का उदाहरण हमारी शिक्षा-दीक्षा का एक भाग था। 'ख़तरनाक सम्प्रदायों' तथा धन ऐंठने वाले गुरुओं की आलोचना के इस युग में हम भारत के एक सत्पुरुष के आध्यात्मिक परिवार की सज्जनता तथा आपसी प्रेम के साक्षी हैं। हम बहुत-बहुत अनुग्रहीत हैं तथा आशा करते हैं कि हम अपने बन्धुओं की सद्भावना के योग्य बन सकें। सम्भवतः आज सभी विदेशी भक्तों की ओर से यह एक सुअवसर है कि हम उन दिनों के आपसी प्रेम-सहकार के लिये अपने भारतीय भाई-बहनों के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त कर सकें तथा उन सबको धन्यवाद कह सकें।

उन दिनों सत्संग अधिकतर हिन्दी या उर्दू में ही होता था और हम कुछ अधिक नहीं समझ पाते थे। किन्तु वहाँ का उच्च, पवित्र वातावरण हमारी भूखी आत्माओं के लिये बहुत पुष्टिकारक होता था। फिर स्वामीजी भी हमेशा अंग्रेजी जानने वाले भक्तों के लिये कुछ समय निकालकर उनका भी शंका समाधान किया करते थे। अब पीछे दृष्टिपात करने पर स्पष्ट ही दीख पड़ता है कि उन दिनों हम स्वामीजी से कभी न ख़त्म होने वाले प्रश्न पर प्रश्न पूछते जाते थे तथा इतने नौसिखिये व घमण्डी भी थे कि विश्वास नहीं होता। साथ ही यह भी स्पष्ट दीखता है कि उधर श्रीचन्द्रस्वामीजी भी हमें अनन्त धैर्य, उदारता, प्रेम, सौम्यता तथा समभाव में स्थित होकर हमारे प्रश्नों के उत्तर दिया करते थे। तब हम यह न जान सके कि स्वामीजी का वास्तविक उद्देश्य हमें हर बात का उत्तर देना नहीं था। बल्कि इस बात की शिक्षा देना था कि हम एक सजग, जिम्मेवार जिज्ञासु कैसे बनें। आज मैं उनकी पुस्तक पढ़ता हूँ तो मुझे उसमें उनकी वही महान् करुणा दिखायी पड़ती है। यहाँ एक ऐसा व्यक्ति है जो किसी को भी सम्बोधित कर सकता है (अर्थात् किसी भी व्यक्ति के स्तर तक स्वयं आ सकता है)। और चूँकि वे स्वयं कहीं नहीं खड़े हैं अतः वे हर परिस्थिति में हर व्यक्ति के साथ संवाद कर सकते हैं, उसकी सहायता कर सकते हैं।

मैं सोचता हूँ कि 'सौंग ऑफ सायलेन्स' पुस्तक की एक विशेष बात यह है कि इसे पढ़ते समय ऐसा लगता है मानो हम जैसे-कैसे भी हैं, हमें स्वीकार कर लिया गया है; बल्कि जो भी घटित हो रहा है — उसमें हमें आमंत्रित किया जा रहा है। तब

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

वह पुस्तक पढ़ना एक सिद्ध महापुरुष की वास्तविकता को ही जानना भर नहीं है, बल्कि इस भाव को भी पुनः उपलब्ध होना है कि हम ही वह 'वास्तविकता' (सत्य, दिव्यता) हैं, तथा यह अनुभव पाठकों को पूरे समय होता रहता है। इस पुस्तक में, कोई विधि जैसी चीज नहीं दी गयी है, बल्कि सक्रिय प्रेम बिखरा पड़ा है जिसे अनुभव किया जा सकता है, जिसका साक्षी हुआ जा सकता है। कोई भी प्रश्नकर्ता स्वामीजी के उत्तर पढ़ते समय जो भी घटता है उससे स्वयं को कभी भी बाहर (excluded) अनुभव नहीं करता और यह गुरु और शिष्य के बीच एक अद्वितीय सम्बन्ध का आधार बन जाता है। हम स्वामीजी द्वारा कही गयी कहानियों में स्वयं को पहचान लेते हैं तथा अचानक हमें यह बोध होता है कि ओह ! हमारे में किसी परिवर्तन के बिना ही, हमारी जाँच-पड़ताल अथवा आकलन के बिना ही, स्वामीजी की असीम करुणा के माध्यम से, भगवान के दरबार से हमारा परिचय करा दिया गया। कैसा अनुपम उपहार ! उस नवप्राप्त गौरव के कारण हममें भीतरी जिम्मेदारी की भावना, उच्च कर्तव्यबोध की भावना का जन्म होता है ताकि हम अपनी इस नयी पहचान का सम्मान कर सकें।

पिछले तीस वर्षों से स्वामीजी के पास आने वाले तथा उनके पास रहने वाले सभी लोग, इन तथ्यों, बल्कि मैं तो कह सकता हूँ, चमत्कार के साक्षी हैं। चाहे हम उनकी मौन उपस्थिति में हों या फिर उनके उत्तर सुन रहे हों, हम स्वयं को सदैव सच्चे संसार तथा उसकी चुनौतियों के बीच पाते हैं—ताकि हम अपने उस मूलभूत वास्तविक स्वभाव को सम्मान दे सकें जिसके प्रति हम अचानक ही सजग हो गये हैं तथा जिसके तल पर खड़े होकर अब तक जिसे हमें संसार कहा करते थे वह एक भ्रामक भटकाव प्रतीत होता है।

सच्चे सद्गुरु का यही प्रसाद है; प्रत्येक को उसके अधिकार तथा योग्यता के अनुसार, अलग-अलग ढंग से शिक्षा दी जाती है। तब हम अपने स्वरूपभूत मौलिक गौरव को पुनः उपलब्ध होते हैं, एक नये जीवन का सूत्रपात होता है। अब ध्येय ही पथ बन जाता है। अतः अब आध्यात्मिक जीवन किसी स्थान विशेष पर पहुँच जाने का प्रयास नहीं है, बल्कि किसी भी परिस्थिति में 'वह' जो 'अभी है' उसके प्रति आदरपूर्वक सजग हो जाना है।

कई उपदेशकों के उपदेशों के अनुसार कितने ही साधक तो स्वयं में इस पथ

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

का पथिक होने की योग्यता ही नहीं देखते लेकिन यहाँ तो आप पहले से ही पथ पर चल रहे हैं। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति इस पथ का पथिक है। भले ही आपको इसका पूरी तरह पता न हो किन्तु आप इसे पूरी तरह भूल भी नहीं सकते, अतः आपको तदानुसार ही कार्य करना है। तब आप कहीं पहुँचने का नहीं बल्कि स्वयं के खुलने का,खिलने का, उद्घाटित होने का, अभिव्यक्त होने का अभ्यास करते हैं। यहाँ हमारे पास गैर जिम्मेदार बनने का कोई भी बहाना नहीं है। यहाँ तो हम उस पथ पर चलते हैं जो श्रद्धा और आन्तरिक कर्तव्यबोध का पथ है— यहाँ तो हम उत्तर देते हैं उस आह्वान का, पुकार का, जो Song of Silence (मौन के संगीत) से प्रस्फुटित (फूटती) होता है।

हमें इस बात का स्मरण करा दिया गया है कि हमारा सच्चा सम्बन्ध किससे है, कहाँ से है। प्रेम और करुणा की मदद् से हमें हमारे स्रोत का पता दे दिया गया है। अब हमें अपने गुरु के शब्दों के, सच्चे सम्बन्ध के अनुरूप होना है। सद्गुरु की कृपा का जादू कार्य कर रहा है। बहुत काल से सोती हुई श्रद्धा को नींद से जगा दिया गया है। अब यह यात्रा किसी सुदूर हर्षोन्माद के अनुभव या स्वर्गीय भविष्य पर विश्वास के आधार पर नहीं चल रही, बल्कि इसका आधार तो वर्तमान में विश्वास तथा स्थायी सम्भावना है जिसे गुरुकृपा से हमने पहचान लिया। और एक बार जब गुरुकृपा हममें हमारे सच्चे सम्बन्ध की, सच्चे घर की स्मृति जगा देती है, जब एक बार वह हममें उस दिव्य पुकार के उत्तर देने के निर्णय को जगा देती है, तो फिर यह हमें वहीं नहीं छोड़ देती। सच्चा गुरु अपने शिष्य को नवीन तथा अस्थिर परिस्थितियों की मझधार में नहीं छोड़ देता। नहीं-नहीं, वह तो अपने नवजात शिष्य के लिये 'वहीं', 'तभी' और 'सदा' उपलब्ध रहता है; उसका पथ प्रशस्त करने को तत्पर रहता है। वह सभी पथों पर— अभ्यास तथा सजगता के पथ पर, भक्ति और सेवा के पथ पर, प्रार्थना और ध्यान के पथ पर— अपने शिष्य का मार्गदर्शक भी होता है और सहयात्री भी, ताकि वह शुद्ध चेतना के राज्य में आरोहण कर सके।

तब तो उनके उत्तर कितने अमूल्य हैं तथा शिष्य से भी कितने दृढ़ तथा अडिग संकल्प की अपेक्षा है! तब आपके हाथ में जो पुस्तक है वह कितनी बहुमूल्य है तथा शिष्य से कितने कठोर संयम की अपेक्षा है! तब प्रेमास्पद का मौन कितना निर्णायक है तथा भक्त से कितनी गहन और प्रगाढ़ प्यास की अपेक्षा है! तब उनका मिलना

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

कितना महान् है, तथा अलग होना कितना अद्वितीय है ! क्योंकि सच्चे गुरु की महानता उसके आस-पास बहुत से लोगों की भीड़ से नहीं बल्कि उन कुछेक से होती है जो गुरु के जीवन्त शब्दों के विनम्र सेवक बनकर, कृतज्ञ हृदय से, एक दिन अपने पैरों पर स्वयं चल सकें।

इस संकलन में स्वामीजी के उपदेश, बल्कि उनके उत्तरों का भण्डार, भले ही क्रान्तिकारी प्रतीत न होता हो, पर मैं आप सबके प्रति स्वामीजी के शब्दों के बारे में एक रहस्योद्घाटन करना चाहूँगा— "पुष्प में मधु और दूध में घी छिपा रहता है।"

इसलिये मैं आप सबको पूरे हृदय से आमंत्रित करता हूँ कि इस पुस्तक के प्रत्येक शब्द को बहुत ध्यानपूर्वक पढ़ें तथा सम्यक् प्रयास द्वारा उनमें निहित दिव्य संदेश को अपने जीवन में उतारें। इस प्रकार निश्चित ही आप उस वास्तविक क्रान्ति के घटित होने में अपना योगदान दे सकते हैं जिसकी हमें प्रतीक्षा है।

मेरे ये भाव इस बात के साक्षी हैं कि आज मैं स्वामीजी के प्रति अपनी शाश्वत कृतज्ञता व्यक्त करके बहुत ही आनन्दित हूँ कि उन्होंने हमारे नन्हें तथा अयोग्य कानों में चुपके से, धीमे से, प्रेम-ज्ञान के अनूठे शब्द कह डाले। वे सीधे हमारी आत्मा में उतर गये।

गुरुदेव, आपका बारम्बार धन्यवाद !

आपके चरण-कमलों में हजारों बार प्रणाम !

युवान अमर

(स्वामी आनन्द चेतन)

आइये, हम सब पूज्य आनन्दजी के अमृतमय उद्गारों को हृदय की गहराइयों में सावधानी और प्रेम से सहेज कर रख लें।

गुरुदेव के विदेशी भक्त

वर्तमान में विश्व के प्रमुख पैंतीस-चालीस देशों से विदेशी भक्त स्वामीजी के पास आ रहे हैं जिनमें से अधिकांश फ्राँस के होते हैं। इनमें से अधिकांश तो गुरुदेव के दीक्षित शिष्य हैं या अनन्य भक्त हैं। अनेक नियमित रुप से महाराजजी का दर्शन लाभ करने तथा उनके श्रीचरणों में वास करने आते रहते हैं। विदेशियों में बड़ी मात्रा में ईसाई तथा यहूदी धर्म के लोग होते हैं। अन्य धर्मों और पंथों से भी लोग आते हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

आश्रम के शान्त, सुरम्य वातावरण तथा भारतीय धर्म-चिन्तन से आकृष्ट होकर भी विदेशी आश्रम में आते हैं।

आश्रम में आने वाले विदेशियों में से अनेक आध्यात्मिक रूप से बहुत सत्यशील व परिपक्व होते हैं। उनमें से पहली बार आने वालों का भी गुरुदेव से अत्यल्प समय में ही गहरा तादात्म्य हो जाता है। अनेक विदेशी पूरे प्राण-पण से स्वामीजी के उपदेशों के अनुसार अपना जीवन ढालना शुरू कर देते हैं। प्रायः सभी विदेशी आश्रम के सभी नियमों का पूरी तरह पालन करते हैं। वे भी चारों समय सामूहिक प्रार्थना-उपासना में भाग लेना पसन्द करते हैं। इन उपासना सत्रों में पिचहत्तर से अस्सी वर्ष की आयु वाले भक्त भी होते हैं। महाराजजी के एक फ्राँसीसी भक्त हैं—जैराल्ड जिनकी दोनों टाँगे कार दुर्घटना के कारण बेकार हो गयी हैं तथा जो पहिये वाली कुर्सी पर ही चलते हैं—बड़ी मुश्किल से आश्रम में केवल कुछ दिन व्यतीत करने के लिये ही फ्राँस से भारत आते हैं। हवाई अड्डे से वे सीधा आश्रम ही आते हैं। आश्रम में आकर वे चारों समय शरीर को घसीट-घसीट कर दूसरों की सहायता से प्रार्थनागृह में भजन-अभ्यास के लिये आते हैं। प्रतिदिन प्रश्नोत्तर सत्र में भी उपस्थित होते हैं। उनकी लगन-उत्साह देखकर एक दिन गुरुमहाराजजी ने कहा कि अक्सर लोग भजन-अभ्यास में न बैठने के तरह-तरह के बहाने बना लेते हैं। लेकिन इतनी कठिनाई के बावजूद भी जिस लगन व ईमानदारी से जैराल्ड सब समय ध्यान अभ्यास में बैठते हैं, वह आश्चर्यजनक है।

साधन-अभ्यास के अतिरिक्त ये लोग आश्रम के विभिन्न कार्यों में बहुत प्रकार से सेवा भी करते हैं। ये बन्धु बाग़वानी, खेतीबाड़ी, आश्रम की सभी प्रकार की साफ सफाई, शौचालयों, स्नानगृहों की सफाई, भोजनालय में सब्जी काटना, जूठे बर्तन माँजना, गेहूँ साफ करना, पेंटिंग, पुताई तथा अन्य सभी तरह के कार्यों में आश्रम के स्थायी सेवकों तथा कर्मचारियों का पूरी तरह से हाथ बँटाते हैं। वे ये सब सेवा गुरुदेव के प्रेम में बहुत विनम्र और निष्काम भाव से करते हैं। आश्रम में प्रवास के समय सभी विदेशी भक्त आश्रम का बिना प्याज-लहसुन का बना शुद्ध भोजन ग्रहण करते हैं तथा भारतीय मर्यादानुसार शालीन वस्त्र धारण करते हैं। अपने अतिरिक्त समय में भी ये भक्त आश्रम के बाहर घूम फिरकर समय बरबाद नहीं करते बल्कि आश्रम के

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पुस्तकालय से पुस्तकें लेकर स्वाध्याय करते हैं। कुछ भक्त महाराजजी के उत्तरों की पुस्तिका का गहराई से अध्ययन करते हैं। यहाँ रहते हुये वे भारतीय धार्मिक परम्पराओं जैसे हवन, आरती, गुरबानी के कीर्तन तथा संकीर्तन आदि में भी भाग लेते हैं और भारतीय समाज के सुन्दर रीति-रिवाजों, संस्कारों को समझने व अपनाने का प्रयास भी करते हैं। विदेशी भक्त परमपूज्य बाबा भूमणशाहजी तथा भगवान श्रीचन्द्रजी के प्रति भी अगाध श्रद्धा रखते हैं। इनके माध्यम से इन विभूतियों का दिव्य संदेश भी विश्व के कोने-कोने में फैल रहा है। इस प्रकार ये लोग हमारे देश के धर्म व संस्कृति के प्रति एक गहरी समझ व सम्मान लेकर स्वदेश लौटते हैं तथा वहाँ जाकर सहज ही भारत के निष्ठावान, अवैतनिक सांस्कृतिक राजदूत का भी काम करते हैं।

यहाँ हम यह स्पष्ट कर दें कि गुरुदेव या आश्रम कभी भी किसी विदेशी से उसके धर्म अथवा मत परिवर्तन का परोक्ष या अपरोक्ष आग्रह या अपेक्षा नहीं करता। आश्रम आने वालों से उनके धर्म के बारे में पूछा तक नहीं जाता। बल्कि स्वामीजी तो सभी साधकों को रूढ़ियों से मुक्त होकर, अपने ही धर्म के सार-तत्व को ग्रहण करके, अपने-अपने धर्म में रहकर ही भगवद्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते हैं। यह बात उन धर्मों तथा अनेक नवीन आध्यात्मिक व धार्मिक संगठनों के लोगों को बहुत हैरानी वाली लगती है जो विभिन्न तरीकों से अन्य धर्मों तथा मतों के लोगों को अपने धर्म अथवा संगठन में परिवर्तन करने का प्रयत्न करते हैं; जिनकी राय में अपने धर्म अथवा संगठन के लोगों की येन-केन प्रकारेण संख्या बढ़ाना ही धार्मिकता का एकमात्र चिन्ह है।

गुरुदेव के विदेशी भक्त बहुत श्रद्धा और भक्ति से आश्रम को अपनी सामर्थ्यनुसार दान भी देते हैं। कई विदेशी भक्त आश्रम में नियमित रूप से नहीं आ पाते तो भी श्रद्धानुसार विदेश से ही दान भेजते रहते हैं।

विदेशी भक्तों को स्वामीजी के साथ भ्रमण करना भी बहुत अच्छा लगता है। अनेक बार वे उनके साथ जम्मू, कश्मीर, अमृतसर तथा अन्य स्थानीय भक्तों के घर गये हैं तथा वहाँ के भारतीय भक्तों की गुरुदेव के प्रति निश्छल भक्ति व उनका अतिथि प्रेम देखकर आश्चर्यचकित हुये हैं। इससे उनको भारतीय समाज व परम्पराओं को भी समझने में मदद् मिलती है। पर सबसे अधिक लालच तो होता है गुरुदेव के साथ

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

बालवत् हँसी-मज़ाक व्यतीत करते हुये दुर्लभ क्षण व्यतीत करना। इस सन्दर्भ में एक मजेदार घटना यहाँ दे रहे हैं। गुरुदेव के शब्दों में ही—

"एक बार कुछ फ्राँसीसी भक्त मेरे साथ कश्मीर गये। पूरी बस लेकर गये थे। आनन्द भी साथ में था। वापसी पर करनाल में ठहरे। एक धर्मशाला में करनाल वालों ने हमारे ठहरने का प्रबन्ध किया। हम रात को ग्यारह बजे पहुँचे। धर्मशाला में चारपाइयाँ तो बहुत थीं जिन पर नये बिस्तर बिछा रखे थे पर किसी शौचालय का प्रबन्ध नहीं था। तो लोग कहाँ जायें। किसी ने बताया कि भीमजी के घर में शौचालय है। तो रात के बारह बजे भीमजी के घर गये। वहाँ शौचालय का दरवाजा खोला तो उसके अन्दर गाय बंधी हुई थी। तो रात को बस लेकर शहर के बाहर गये और खेतों के बीच लोग शौच के वास्ते गये।" लेकिन प्रभु के प्रेम में वे असुविधायें भी मीठी लगती थीं— 'इश्क ने दिखाये मकां कैसे-कैसे।'

वस्तुतः बिना किसी प्रचार के, धर्मान्धता और कट्टरपन से दूर, गुरुदेव द्वारा सहज ही शुद्ध आध्यात्मिकता का धीरे-धीरे लेकिन ठोस प्रसार हो रहा है। यह जो दिव्य बीजारोपण हो रहा है वह समय आने पर कई गुना विकसित होकर पल्लवित, फलित होगा, ऐसी प्रतीति होती है।

विदेश यात्राएं

बाबाजी की अपने बालक पर ऐसी कृपा रही कि पहाड़ों, गुफाओं, जंगलों और नदी तटों पर उनसे कठोर साधना कराने के बाद, उन्हें भगवद् उपलब्धि से कृतकृत्य करके, फिर उन्होंने अपने बालक का दुनिया के दूसरे हिस्सों से भी परिचय कराया। फलस्वरूप, भगवदेच्छा से, अपने भक्तों के निमंत्रण पर स्वामीजी अभी तक (1974-1999) ग्यारह बार विश्व के भिन्न-भिन्न देशों की यात्रा कर चुके हैं। 1984 से बाद की उनकी सभी यात्राएं तो उनके पूर्ण मौन में ही सम्पन्न हुईं। इसके पीछे एक दैवी आशय छिपा प्रतीत होता है। इन विदेश यात्राओं से गुरुदेव की आत्मज्ञान की अनुभूति को वैश्विक सन्दर्भ में व्यक्त होने का मौका मिला। साथ ही साथ विश्व के हजारों लोगों को एक पूर्ण मानव के मूर्तिमान आदर्श से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ; आध्यात्मिक ज्ञान को व्यवहार में प्रयुक्त होते देखने का मौका मिला। प्रभु की विदेश यात्राओं का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार से है—

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

सन् 1974 में फ्राँस, इटली, इंग्लैण्ड, जर्मनी की लगभग पैंतीस दिन की यात्रा।
सन् 1978 में फ्राँस, स्विट्ज़रलैण्ड, इंग्लैण्ड की पैंतालीस दिन की यात्रा।
सन् 1982 में पाकिस्तान की आठ दिन की यात्रा। इस यात्रा के दौरान प्रभु ने अपने आराध्य, सद्गुरु बाबा भूमनशाहजी की समाधि व उनके डेरे के दर्शन किये। डेरे की खस्ता हालत देखकर उनका मन रो उठा था। उन्होंने अपने एक परमभक्त द्वारा उस डेरे के रखरखाव तथा समाधि पर नियमित पूजा-अर्चना के लिये व्यवस्था करानी चाही, लेकिन अनेक कारणों से बात बन न सकी। अस्तु!
सन् 1986 में दस दिन के लिये मलेशिया तथा सिंगापुर की यात्रा।
सन् 1987 में डेढ़ महीने के लिये अमरीका, थाइलैण्ड, जापान, कनाडा, इंग्लैण्ड, फ्राँस, इज़राइल, मिस्र, यूनान तथा इटली की यात्रा।
सन् 1992 में पैंतालीस दिन के लिये फ्राँस, इज़राइल, स्विट्ज़रलैण्ड, इंग्लैण्ड, जर्मनी व बेल्जियम की यात्रा।
सन् 1994 में बारह दिन के लिये दुबई तथा आबूधाबी की यात्रा।
सन् 1995 में पंद्रह दिन के लिये कीनिया और यूगांडा की यात्रा।
सन् 1998 में डेढ़ महीने के लिये इंग्लैण्ड, फ्राँस, इज़राइल, दुबई, व आबूधाबी की यात्रा।
सन् 1999 में 21.06.99 से 01.07.99 तक फ्राँस की यात्रा।
सन् 1999 में 11.08.99 से 06.09.99 तक हांगकांग, चीन, ताइवान, थाईलैण्ड व सिंगापुर की यात्रा।

इस प्रकार प्रभु ने अपने भक्तों के निमंत्रण पर अभी तक विश्व के बाईस प्रमुख देशों का भ्रमण किया है। वैसे उनके पास हर समय विदेशी भक्तों के विनम्र निमंत्रण आते रहते हैं लेकिन वे साधना केन्द्र से बाहर रहना अधिक पसन्द नहीं करते क्योंकि यहाँ भी पूरे विश्व व भारत भर से भक्त उनके पास उनके दर्शन, मार्गदर्शन व उनके सान्निध्य में भजन-साधन के लिये आते रहते हैं।

उपर्युक्त वर्णित यात्राओं में से सन् 1987 में स्वामीजी की फ्राँस यात्रा के समय श्रीआनन्दजी की देख-रेख़ में पहली बार गुरुदेव को केन्द्र में रखकर वहाँ के भक्तों ने एक सेमिनार आयोजित किया था। इसके बाद पुनः इस प्रकार के सेमिनार 1992 व

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

1998 में इज़राइल तथा फ्राँस, और जर्मनी तथा स्विटज़रलैण्ड में भी आयोजित किये गये थे। इन सेमिनारों में ध्यान के सत्र भी रखे जाते थे और जिज्ञासु स्वामीजी से प्रश्नोत्तर भी किया करते थे। सर्वतोधिक, वे उनकी दिव्य उपस्थिति का महाभोग किया करते थे। इन सभी विदेशी यात्राओं के दौरान स्वामीजी ने विदेशी मानस पर एक सच्चे सद्गुरु के रूप में गहरी छाप छोड़ी।

एक विदेश यात्रा का वृत्तान्त

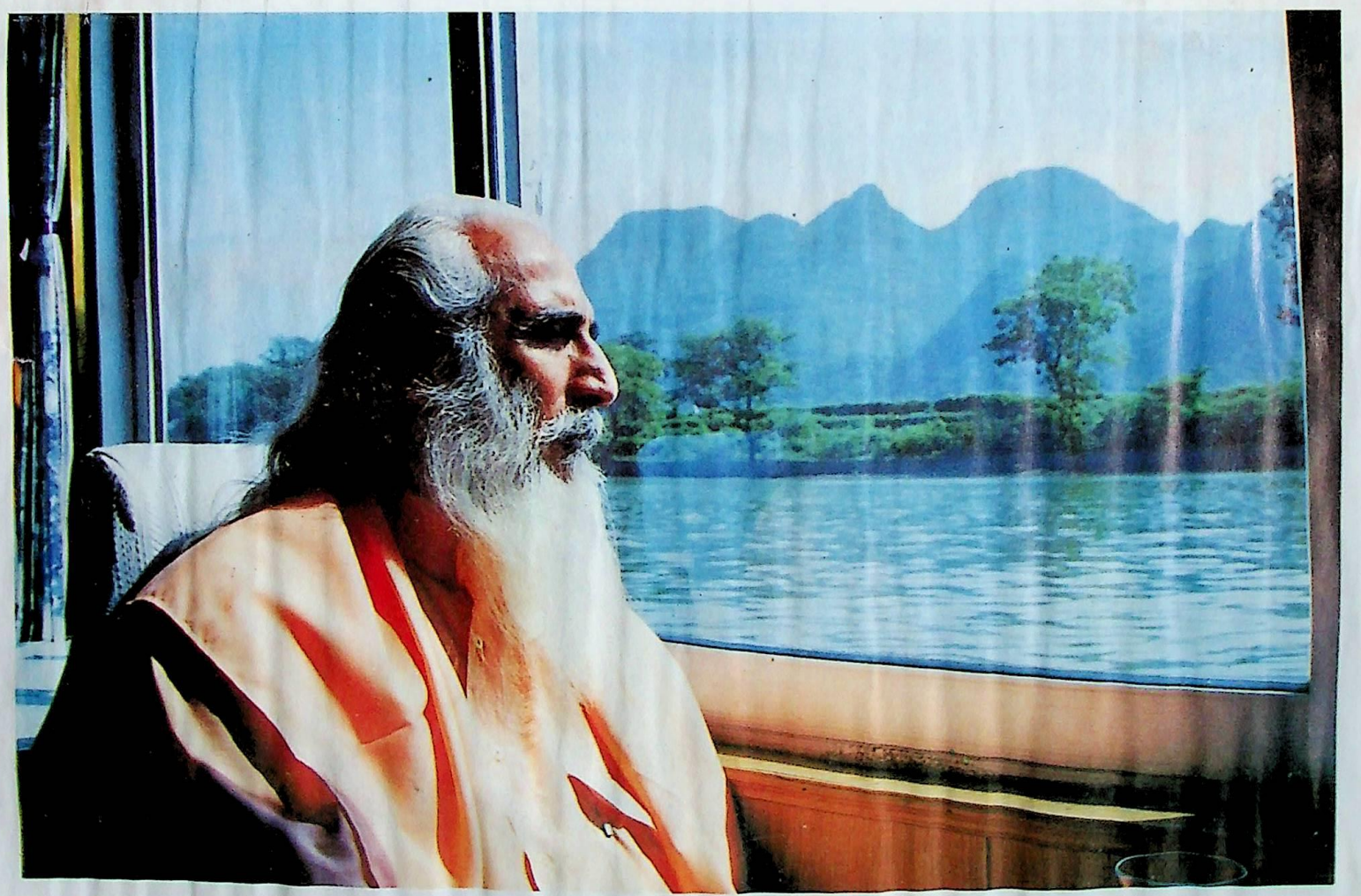
हम पाठकों के लिये महाराजजी की सन् 1998 की विदेश यात्रा का संक्षिप्त वृत्तान्त यहाँ दे रहे हैं।

गुरुदेव 17 जुलाई से 31 अगस्त, 98 तक नौवीं बार विदेश यात्रा पर गये थे। पूरी यात्रा में यह सेवक भी सेवा में रहा। गुरुदेव के भक्त श्रीविपिनजी व भारती बहनजी (भारती बहन पूज्य श्रीरामबापा की पुत्री हैं।) उन्हें लम्बे समय से अपने पास लंदन आने का आग्रह कर रहे थे। फ्राँस के विवेक (एलेन) आदि, इज़राइल से सलमाजी, श्री योसी, दुबई से मेनका बहन, पगरानीजी तथा आबूधाबी से श्रीचन्द्रूजी आदि भी प्रभु को बार-बार अपने-अपने देश में आने का निमंत्रण दे रहे थे। आनन्दजी का अति क्षीण स्वास्थ्य तथा उनकी गुरुदेव के दर्शन करने की तीव्र उत्कंठा भी स्वामीजी को बहुत अच्छी तरह पता थी। अतः दयालु प्रभु ने भक्तों के पास विदेश जाने के लिये अपनी स्वीकृति दे दी। उधर विदेश में उनके आने का समाचार मिलते ही असंख्य हृदय कोमल भावनाओं, गहन प्रेम और बाल सुलभ अधीरता के साथ क्षण-क्षण प्रभु के आगमन की प्रतीक्षा में लग गये।

उन दिनों आश्रम में निवास कर रहीं फ्राँसीसी बहन एन्न भी इस यात्रा में आश्रम से ही गुरुदेव के साथ हो ली थीं। गुरुदेव की श्रीनगर (कश्मीर) वासी अनन्य भक्ता, चाँद बहन भी बाद में भारत से लंदन पहुँच कर फ्राँस तथा इज़राइल में भी गुरुदेव के संग यात्रा में रहीं। गुरुदेव के सान्निध्य में वह यात्रा उनकी अमूल्य निधि बन गयी। पूरी यात्रा में विदेशी भक्तों ने अपनी इस भारतीय बहन को बहुत प्यार व सम्मान दिया।

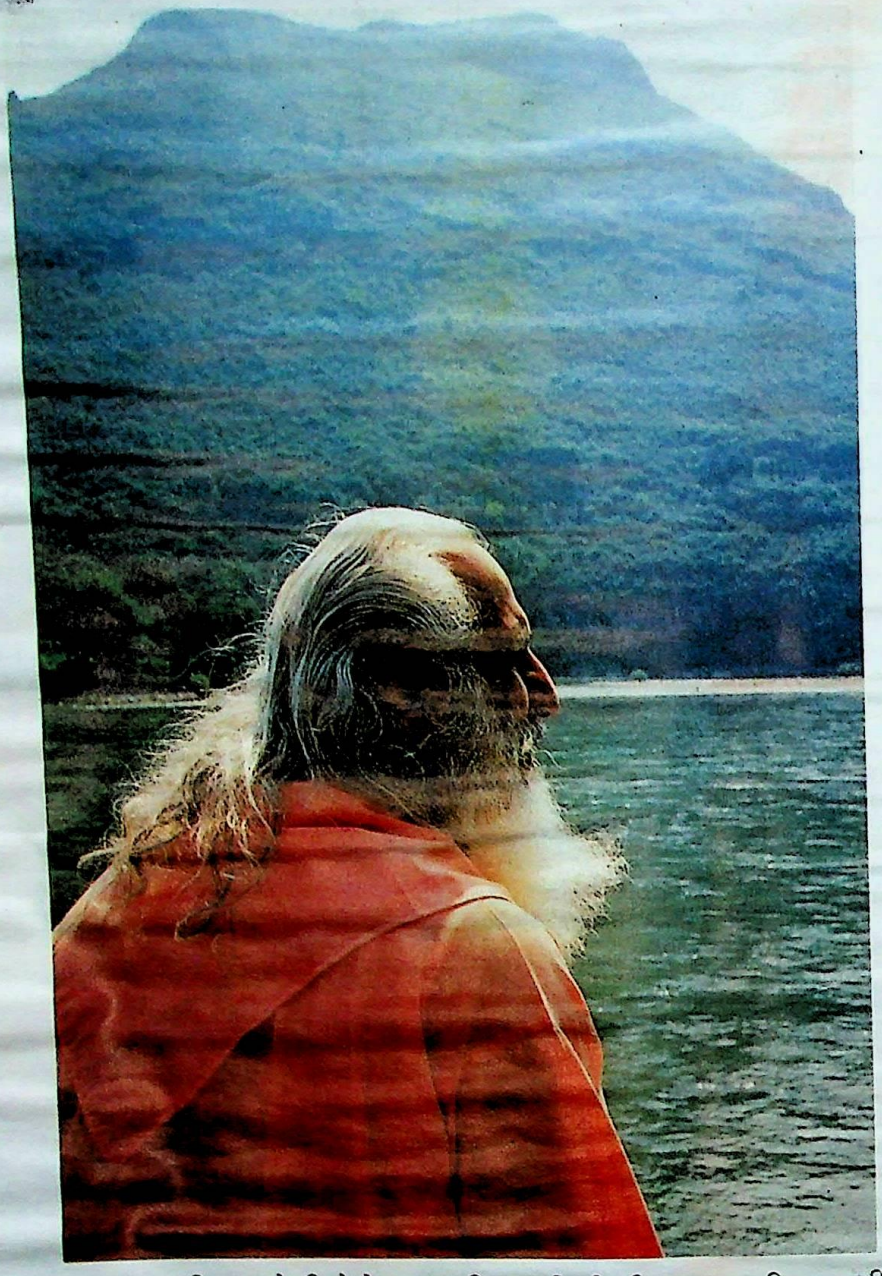
महाराजजी 16 जुलाई से 29 जुलाई तक लंदन में रहे। यहाँ वे अधिकतर विपिनजी-भारतीजी के घर ही ठहरे जिन्होंने गुरुदेव की पूरी यात्रा की व्यवस्था की

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



सब सुन्दर-असुन्दर दृश्यों के निःसंग, निर्लेप साक्षी।
सन् 1999 में चीन के गुइलिन प्रान्त की प्रसिद्ध ली नदी में स्टीमर पर।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



समस्त श्रम विश्राम के लिये है। परन्तु विश्राम किसी भी श्रम का परिणाम नहीं है। समस्त भाग-दौड़ ठहरने के लिये है, पर ठहराव किसी भी दौड़ का परिणाम नहीं है। समस्त श्रम एवं दौड़ की व्यर्थता के अनुदर्शन तथा अपने सत्य स्वरूप में जागने के सिवा विश्राम एवं स्थिरता की उपलब्धि का कोई मार्ग नहीं है।
ली नदी में ही नौका विहार के समय की छवि।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



उधर भगवान आपकी बाट जोह रहे हैं, और आप हैं कि इधर खिलौनों के साथ खेलने में लगे हैं।
सहज, सौम्य भव्य भंगिमा।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



सन् 1992 में इज़राइल के गैलिली प्रांत स्थित 'माउंट थबोर' पर 'होली ट्रांस्फिगरेशन चर्च' के मुख्य द्वार पर।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri





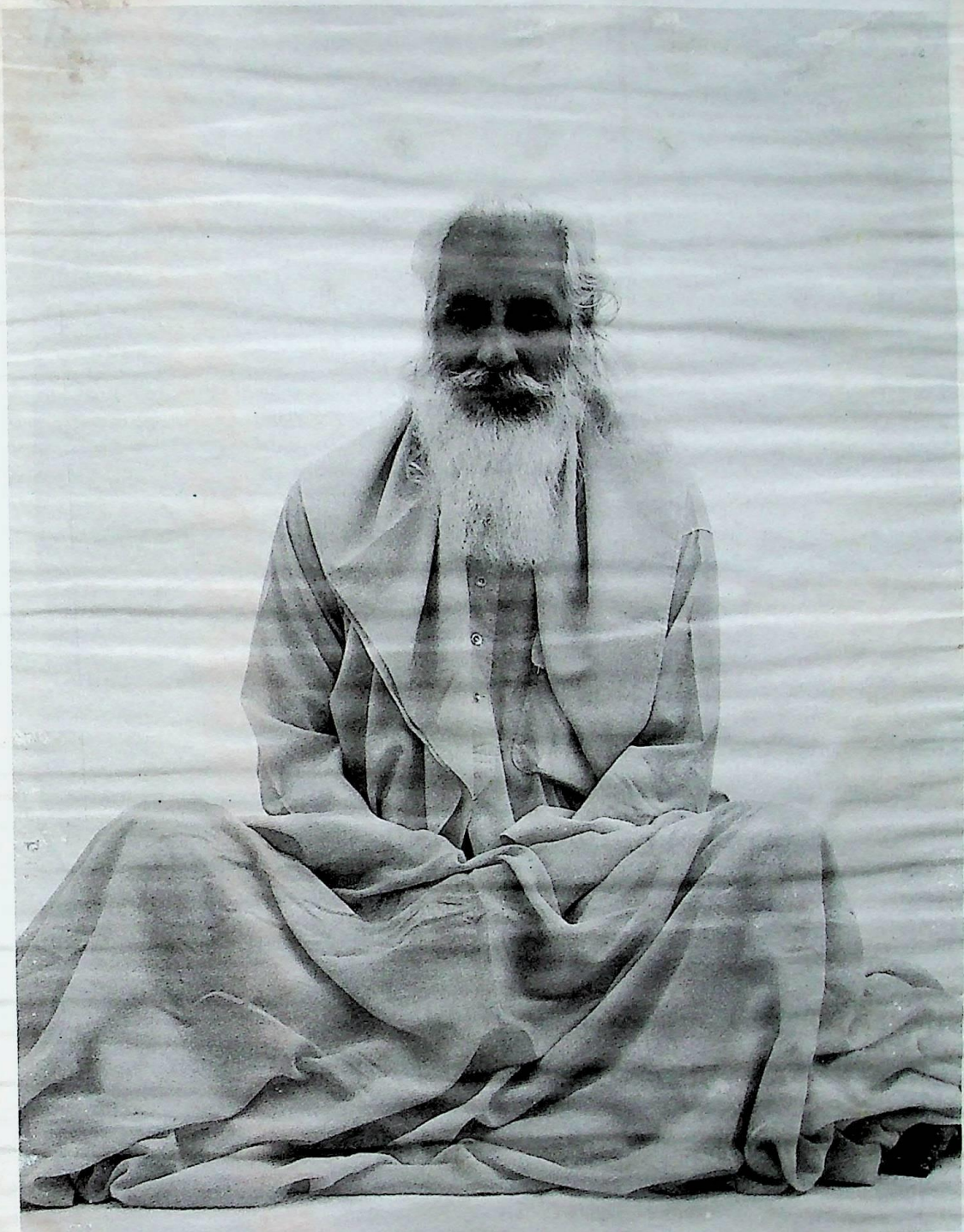
सन् 1998 में फ्रांस के लियोन शहर में क्लेरियां नामक स्थान में आयोजित सेमिनार में।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



निर्वचनीय आकर्षण। सेमिनार के दिनों में नित्य प्रातः महाराजजी 200-250 भक्तों के साथ निकटस्थ वन में तेज सैर को जाते थे।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



सार : श्री वे० वी० लेसार्ड, फ्रांस

अनुकूलताजन्य सुख और बोधजन्य सुख में भला कैसी तुलना ! पहले का आधार बाहर है और अस्थिर है, दूसरे का आधार अन्दर है और स्थिर है; पहले में पराधीनता है, दूसरे में स्वाधीनता; पहले में है अशान्ति का कटु बीज, और दूसरे में परितृप्ति का मधुर फल।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



प्रातःकाल की सैर के बीच में स्वामीजी दस मिनट सूक्ष्म यौगिक व्यायाम भी करते थे। उनके पीछे-पीछे विदेशी भक्त भी वैसा ही करते थे।



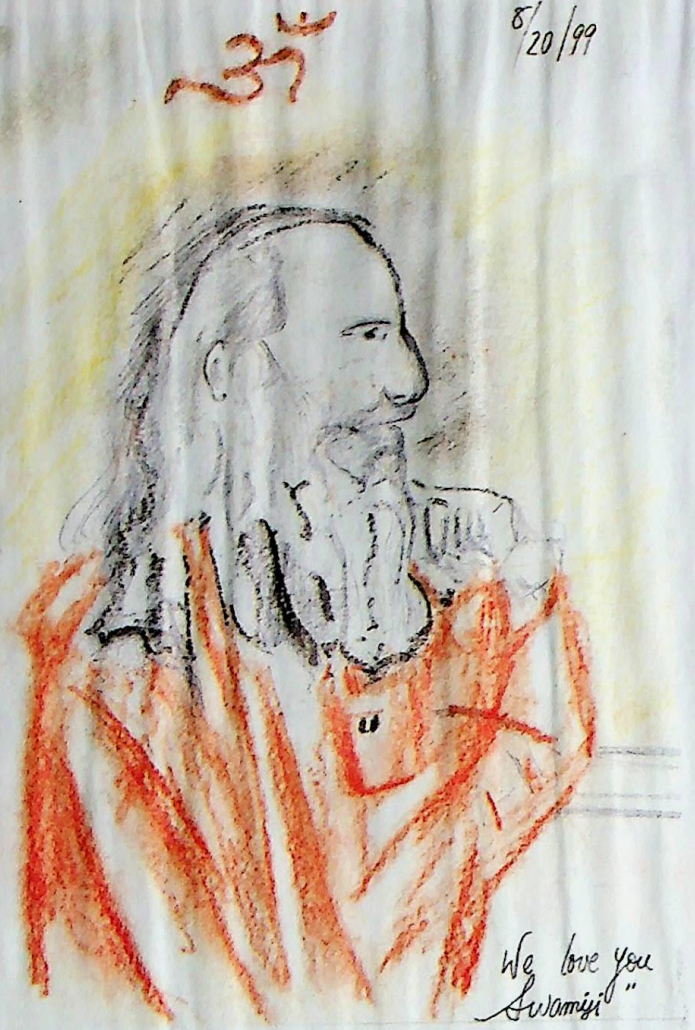
सेमिनार के दौरान खाली समय में भी उनके सानिध्य लोभ से उन्हें घेरे विदेशी भक्त। बायीं ओर कुर्सी पर स्पेन से आये स्वामी रामेश्वरनन्दजी गिरि (Balboa Lazuan Felix) भी हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

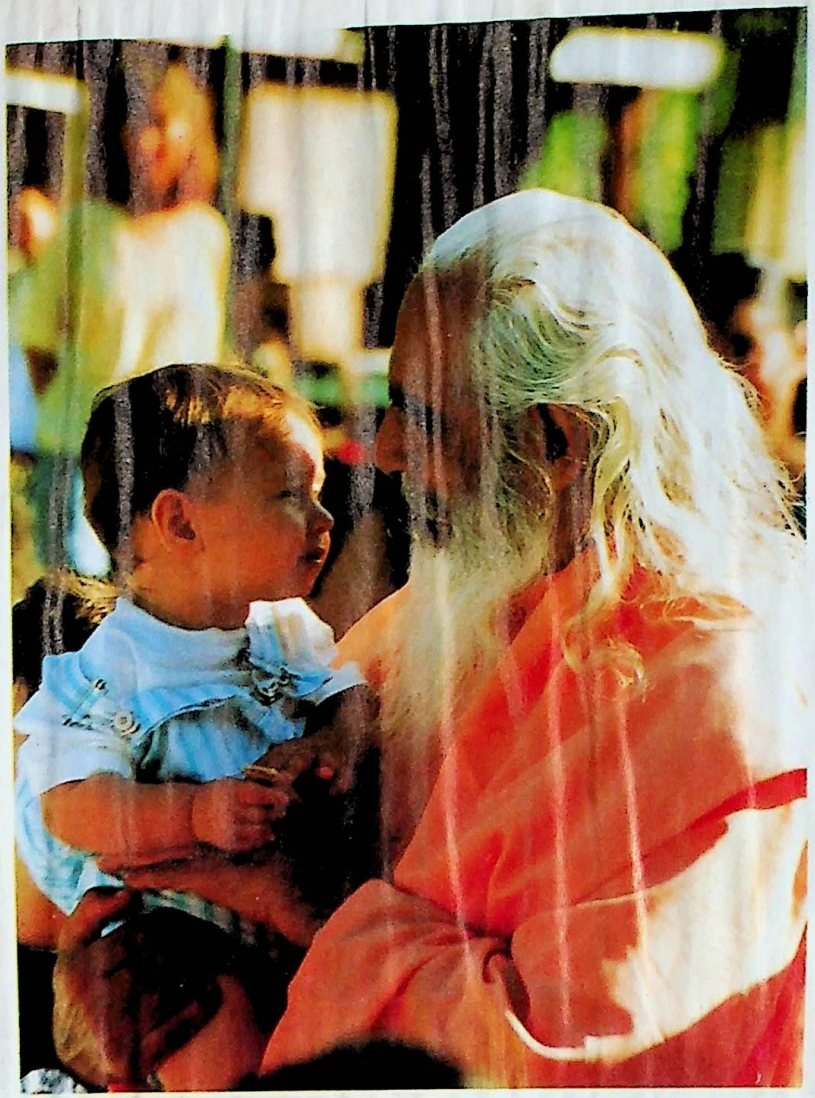


स्वामीजी की मित्र मण्डली — सेमिनार में भाग ले रहे भक्तों के बच्चों और स्वामीजी के मध्य किसी न किसी प्रकार से संवाद होता रहता था।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

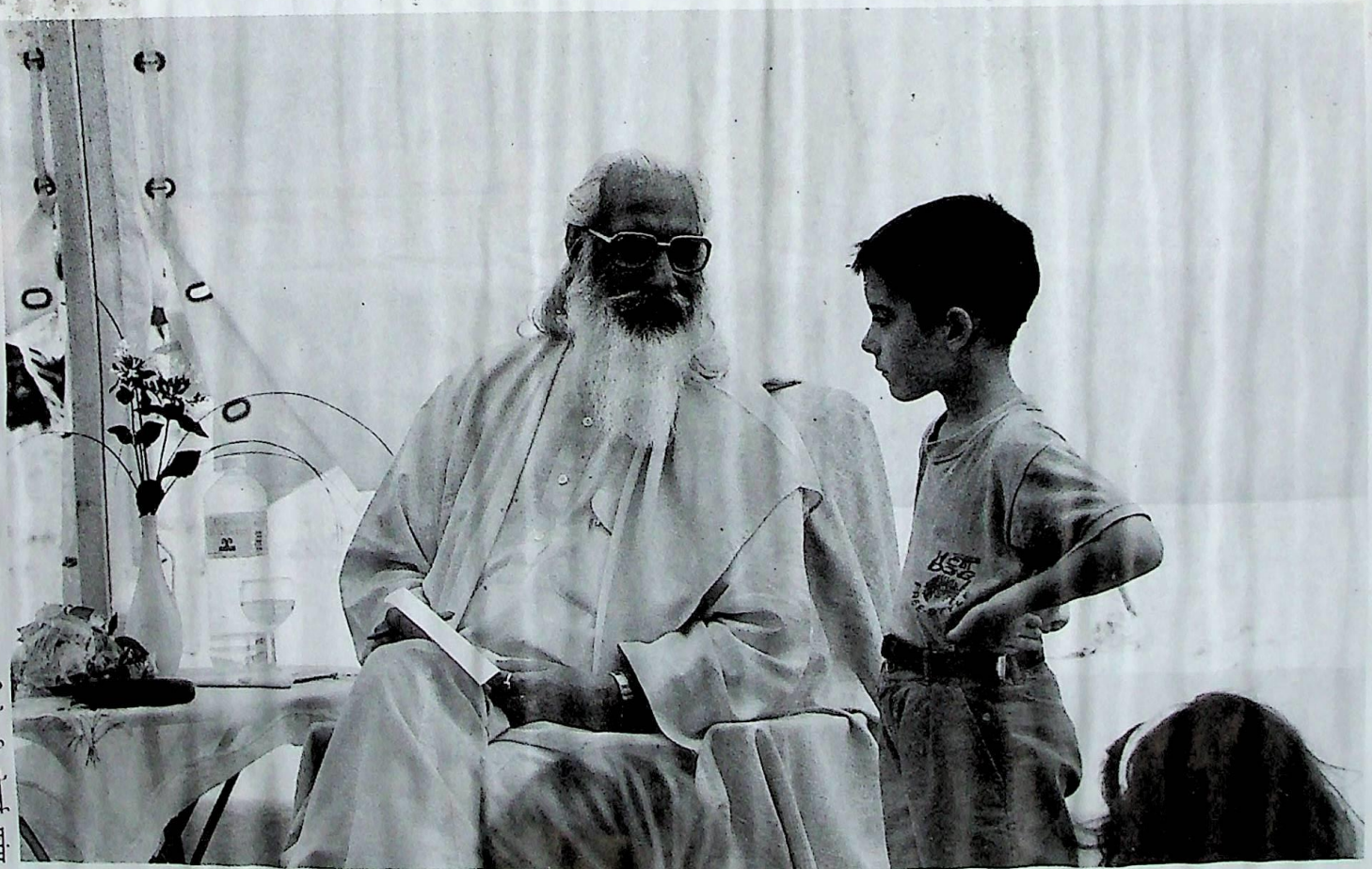


स्वामीजी का यह चित्र स्वामीजी के एक बालमित्र ने उन्हें अपने हाथ से बनाकर भेजा है। इस तरह की भेटें उन्हें नियमित रूप से प्राप्त होती रहती हैं।



२ श श ..... व्यवधान न डालें, गम्भीर वार्त्ता चल रही है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



सप्रेम — श्री जे० बी० लेमार्ड, फ्रांस

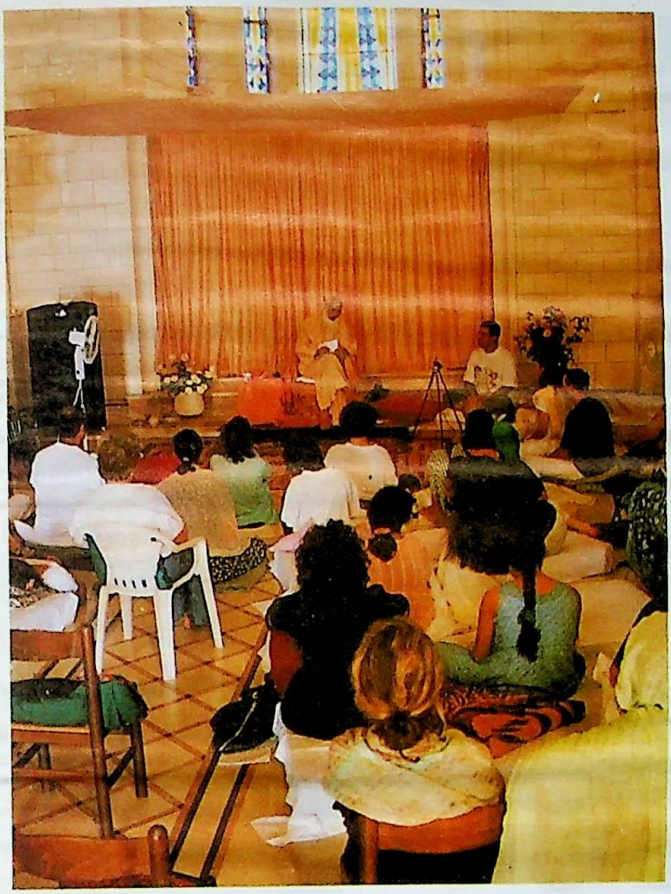
सेमिनार में केवल बच्चों के साथ प्रश्नोत्तर का सत्र भी रखा गया था। उस सत्र में स्वामीजी से निःसंकोच बात करता एक बालक।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



जो प्राणी इन्द्रियों में स्थित — वह पशु; जो मन में स्थित — वह मनुष्य; और जो शान्त आत्मा में स्थित — वह संत है।
सेमिनार में प्रश्नोत्तरकाल का चित्र।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



इज़राइल के नाज़रथ प्रान्त में आयोजित सेमिनार का एक दृश्य।
←

इज़राइल के हुरफीशाह गांव में ड्रूस धर्म के शेख़ साहब के आवास पर।
↓



CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

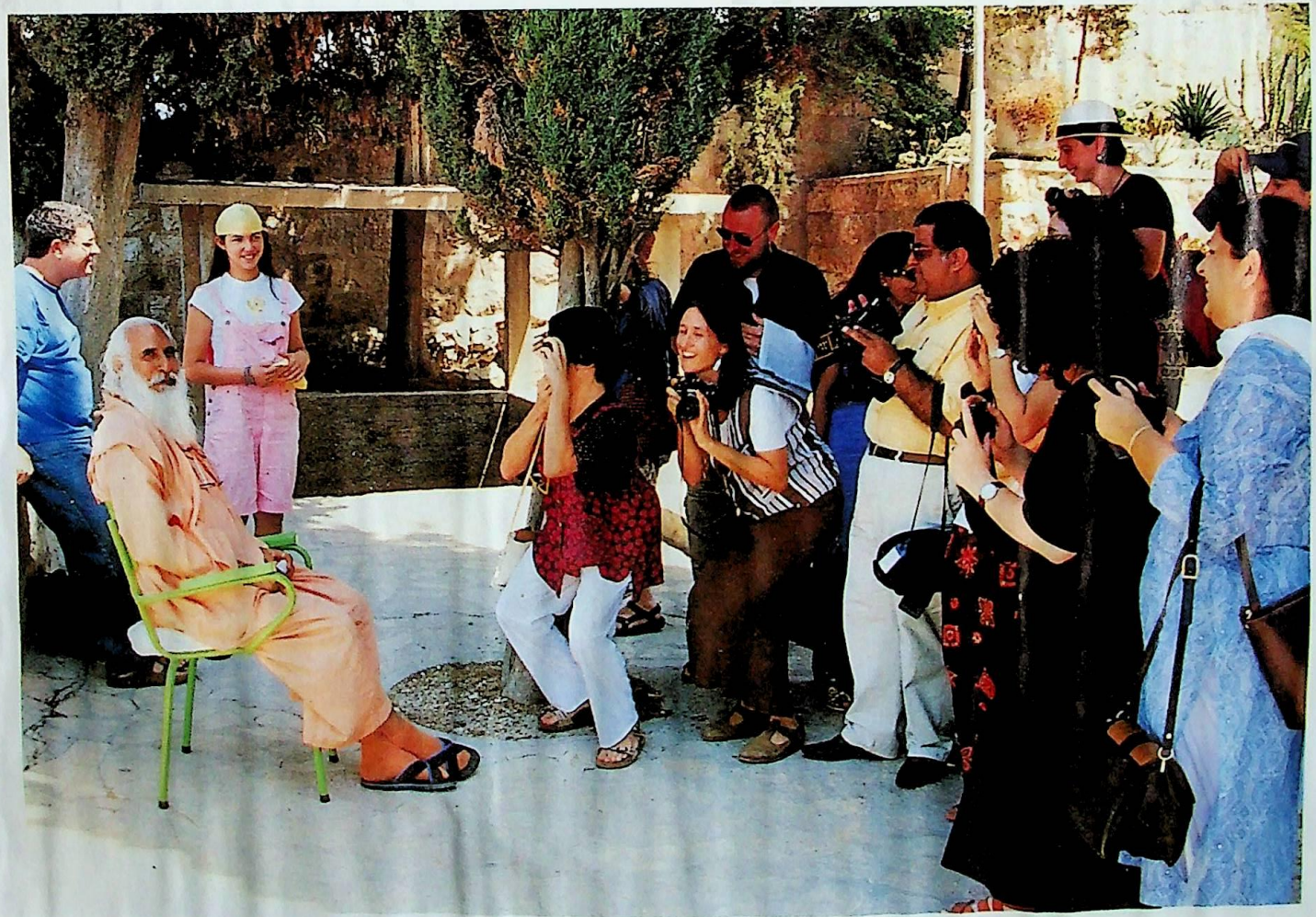


येरूशलम शहर का एक विहंगम दृश्य। पृष्ठभूमि में यहूदियों, ईसाइयों तथा मुसलमानों—तीनों धर्मों के पवित्र स्थल बिल्कुल पास-पास सटे स्थित हैं। यहूदियों के ध्वस्त सोलोमन टैम्पल की 'द वेलिंग वॉल,' मुसलमानों की 'डोम ऑफ रॉक' मस्ज़िद तथा ईसाइयों का 'होली सैपलकर' नाम का गिरजाघर (जहाँ ईसा को सूली पर चढ़ाया गया था।) है। चित्र में मस्ज़िद का सोना चढ़ाया हुआ गुम्बद भी दिख्रायी दे रहा है।



येरूशलम की गलियों में भक्तों के साथ।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



अपने-अपने कैमरों की क्षुधा शान्त करते भक्त—येरूशलम में ।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



वैराग्य के नाम पर संसार से घृणा करना उचित नहीं है। घृणा व्यक्ति के लिये उतनी ही बन्धनकारी है जितने राग और आसक्ति। प्रत्येक वस्तु को यथायोग्य स्थान, मूल्य और महत्व दीजिये। उनका वैसा ही उपयोग करना, जिसके लिये भगवान ने उनकी रचना की है, व्यावहारिक कुशलता है।

गोर्ड्स में किसी भक्त के फार्म पर घास काटने के ट्रैक्टर को चलाने का आनन्द लेते हुए स्वामीजी।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

थी। दो-दो दिन के लिये वे पूज्य रामबापा तथा उनकी सुपुत्री रश्मिता बहन के घर भी रुके। इन बारह दिनों में इन परिवार के सदस्यों ने गुरुदेव के स्वागत-प्रेम में स्वयं को पूर्णरुप से समर्पित कर दिया। सुबह से रात तक प्रभु के दर्शन करने वालों का तांता लगा रहता था। संकीर्तन-सत्संग की गंगा-जमुना अविरल बहती रहती थी। घरों में किसी बड़े धार्मिक उत्सव का सा वातावरण होता था। गृहस्वामी और घर के सदस्य भाँति-भाँति से गुरुदेव तथा उनके भक्तों की सेवा करने में ही लगे रहते थे। लंदन में फ्राँस से प्रभु के लगभग पन्द्रह विदेशी शिष्य तथा अमरीका, हांगकांग, ग्रीक, जर्मनी, इज़राइल आदि से भी अन्य शिष्य गुरुदेव के चरणों में कुछ दिन व्यतीत करने आये हुये थे। उन्हें विपिनजी व अनिलजी ने बहुत प्रेम से अपने-अपने घरों में ठहराया और उनकी सेवा की। उनका अतिथि प्रेम अद्‌भुत था। घर-घर में गुरुदेव का स्वागत, पूजा-आरती तथा शास्त्रीय ढंग से पंचामृत द्वारा उनके चरण प्रक्षालन, अनवरत भजन-संकीर्तन, भक्तों द्वारा आनन्दातिरेक में बार-बार रुदन तथा हास्य। गुरुदेव का सम्राटों का सा सम्मान तथा गुरुदेव की इस सब मान-सम्मान के प्रति पूर्ण उदासीनता तथा सदा अपने सहज सौम्य, एकरस भाव में प्रतिष्ठित रहना—प्रेम के उस जीवन्त महाकाव्य को देखकर अनेक व्यक्ति, विशेषकर विदेशी भक्त, बार-बार अचम्भित हो जाते थे। उन्हें विदेश में भारत के धार्मिक समाज की अन्तर्रात्मा को स्पर्श करने का मौका मिला। विदेशियों को श्रीरामबापा के अद्‌भुत प्रभु-प्रेम व सेवामय चरित्र के अवलोकन का मौका भी मिला।

श्रीरामबापा के प्रभु-प्रेम, साधु-संतों व निर्धनों की अभूतपूर्व सेवा के बारे में हम पहले ही लिख चुके हैं। श्रीरामबापा लंदन में स्वामीजी के प्रवास के दौरान पूरे समय उनके साथ रहे। वे जहाँ भी जाते तो लोगों को यही कहते कि स्वामीजी का वहाँ आना एक अत्यन्त शुभकारी, अति दुर्लभ और दिव्य घटना है। वे बार-बार कहते कि स्वामीजी जैसे आप्तकाम महापुरुष ही भटके हुए जीवों को राह दिखा सकते हैं। वे बार-बार उनकी कृपा का आह्‌वान किया करते थे।

दिनाँक 19.07.98 को विपिनजी-भारती बहन के विवाह की पच्चीसवीं वर्षगाँठ पर थेम्स नदी में एक बड़ी रायल प्रिंसेस नामक दुमंजिली मोटरवोट पर कार्यक्रम आयोजित था। मोटरवोट की ऊपर की मंजिल पर एक ओर सुसज्जित कुर्सी पर गुरुदेव विराज़मान थे। साथ ही भगवान राम व पूज्य बाबा भूमनशाहजी तथा

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

महान् गुजराती संत हीरजी बापा के चित्र सजाये गये थे। लंदन के सम्पन्न वर्ग से कोई तीन सौ भारतीय मूल के भक्त वहाँ उपस्थित थे। पाँच घण्टे मोटरबोट नदी में भ्रमण करती रही। इस दौरान गुरुदेव के साथ लोगों के प्रश्नोत्तर, संकीर्तन, भोजन आदि सभी कुछ बहुत अच्छी प्रकार से सम्पन्न हुये। इस अवसर पर गुरुदेव ने विपिनजी-भारतीजी को उनके विवाह की पच्चीसवीं वर्षगाँठ पर शुभाशीष दी तथा अपने सभी सांसारिक दायित्वों को भगवद्नाते निर्वाह करने की प्रेरणा दी। कार्यक्रम में भारतीय दूतावास के कार्यकारी हाई कमिश्नर श्रीसिंह भी सपत्नीक आये हुये थे। लंदनवासी महाराजजी की भव्य उपस्थिति, उनके सरल और पैने उत्तरों द्वारा मुग्ध हो गये थे।

गुरुदेव की उपस्थिति की दिव्य चकाचौंध से विश्व प्रसिद्ध थेम्स नदी और उसके तटों पर स्थित अनेक ऐतिहासिक भवन तथा दर्शनीय स्थल सब धुँधले पड़ गये थे। किसी ने उन पर नज़र भी नहीं डाली। पाँच घण्टे कब निकल गये, पता भी नहीं लगा। श्रीसिंह तो अपनी पत्नी समेत बाद में अनेक बार महाराजजी के दर्शनार्थ पहुँचते रहे।

इसी प्रकार लंदन प्रवास के दौरान दो और सार्वजनिक कार्यक्रम हुये थे। एक तो लंदन के सिंधी मन्दिर में चार सौ-पांच सौ भक्तों के समुदाय के मध्य हुआ था। कार्यक्रम में महाराजजी के साथ प्रश्नोत्तर हुए, संकीर्तन हुआ और स्वामीजी द्वारा रचित सहज उपदेश माला पुस्तिका से कुछ उपदेश सभी को पढ़कर सुनाये गए। कार्यक्रम में श्रीरामबापा तथा सिंधी समाज के प्रतिष्ठित नागरिक उपस्थित थे। कार्यक्रम में सभी ने मिलकर भारतीय ढंग का भोजन भी किया। दो घण्टे के कार्यक्रम में सब अभूतपूर्व शान्ति से बैठे रहे। अनेक दिनों तक लंदनवासी उस दिन मौनधारी, अनूठे योगी के दिव्य आकर्षण की बातें करते रहे। कुछ ऐसा ही कार्यक्रम एक अन्य दिन गुजराती समाज के बन्धुओं ने भी एक विशाल भवन में आयोजित किया था। उस कार्यक्रम में भी चार सौ-पाँच सौ व्यक्ति सम्मिलित हुए थे।

इस प्रकार लंदनवासियों के हृदयों को तृप्त करके प्रभु अगले दस दिन की फ्राँस यात्रा पर गये। वे पहले पाँच दिन श्रीआनन्दजी के अनुरोध पर उनके घर ठहरे। जब वे गोर्ड्स स्थित आनन्दजी के घर पहुँचे तो हड्डियों का ढाँचा मात्र रह गये, घर के बाहर अपना आक्सीजन सिलेण्डर थामे आनन्दजी (युवान अमर) को देखकर

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

सबका मन पीड़ा से भर गया था। गुरुदेव निकट आये तो उन्होंने भावातिरेक में रोते-रोते उन्हें पुष्पों की माला पहनायी। उनके पास ही खड़ीं, उनकी पत्नी क्रान्तिजी (नडेज़) भी प्रेमाश्रु बहा रही थीं। फिर गुरु और शिष्य बहुत देर तक एक दूसरे के गले मिले रहे। प्रेमालाप का यह दृश्य देखकर आस-पास खड़े सभी भक्तों की आँखें भी नम हो गयी थीं। आनन्दजी का सुन्दर घर प्रकृति की गोद में बसे आधुनिक सुविधाओं से पूर्ण गोर्ड्स गाँव में स्थित था। उन पाँच दिनों में आनन्दजी-क्रान्तिजी तथा आनन्दजी के अनेक शिष्यों ने स्वामीजी की भाँति-भाँति से सेवा की। पूरे समय एक भक्त उनकी वीडियो फिल्म उतारते रहे। आनन्दजी को गुरुदेव के साथ मिले एकान्त के क्षण उनके जीवन का अनमोल खजाना था। अपने आराध्यदेव के साथ भौतिक रुप में प्रगाढ़ मिलन का यह अन्तिम अवसर था। अन्तर्यामी प्रभु भी उन्हें अन्तिम बार दर्शनजल से तृप्त करने को फ्राँस तक आ गये थे। इस अवधि में जर्मनी, इंग्लैण्ड, इज़राइल आदि से भी आनन्दजी के प्रमुख शिष्य वहाँ आये हुये थे। इसके अतिरिक्त अध्यात्म के क्षेत्र से जुड़े अन्य कई महत्वपूर्ण व्यक्ति भी वहाँ स्वामीजी के दर्शन करने आते रहते थे। एक दिन फ्राँस के प्रसिद्ध धर्मगुरु श्री आर्नों डिज़ार्ड़ा भी फलों की टोकरी लेकर स्वामीजी के दर्शन करने आये थे। ये स्वयं भारतीय राज्य बंगाल के प्रसिद्ध ब्रह्मलीन वेदान्ती संत स्वामी प्रज्ञपादजी के शिष्य हैं तथा भारत के सभी आधुनिक संतों से सुपरिचित हैं। इन्होंने अपने आश्रम में भारत के अन्य संतों के साथ-साथ हमारे स्वामीजी का चित्र भी लगा रखा है। इस दौरान प्रभु गोर्ड्स गाँव में रहने वाले उनके अन्य प्रिय शिष्य श्रीविवेकजी (एलेन) के घर भी तीन बार भोजन के लिये गये। वहाँ भी भक्तों की भीड़ साथ होती थी। इस प्रकार वे पाँच दिन आनन्द-उत्सव मनाते हुये जल्दी ही व्यतीत हो गये।

आनन्दजी व उनके परिवार के सदस्यों को अपने सान्निध्य रस का पान करा कर प्रभु फ्राँस के लियोन शहर के निकट एकान्त स्थान क्लैरियाँ में आयोजित सात दिन के सेमिनार में भाग लेने कार द्वारा पहुँचे। वहाँ की सारी व्यवस्था की मुख्य जिम्मेदारी श्रीविवेक (एलेन), शोभाजी, मेरीजी, लोइकजी, सिल्वीजी तथा गुरुदेव के अनेक सेवकों ने ली हुयी थी। वे सब गुरु-शिष्य परम्परा के अनुसार बहुत विनम्रता और लगन द्वारा सेवा कर रहे थे। सेमिनार में भी लंदन के अनेक भक्त भाग लेने गुरुदेव के संग ही आये हुए थे। ग्रीक, अमेरिका, स्विट्ज़रलैण्ड आदि से भी अनेक

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

भक्त श्रीचरणों में वास करने एक सप्ताह यहीं रहे। स्पेन देश के वासी किन्तु भारतीय परम्परा के युवा संन्यासी पूज्य स्वामी रामेश्वरानन्दजी गिरि भी, जिनका एक पत्र हमने पहले पुस्तक में दिया है, अपने सेवकों के साथ सेमिनार में भाग लेने आये हुए थे। एक बड़ी इमारत को किराये पर लिया गंया था। सेमिनार में भाग लेने वाले अपना-अपना निर्धारित शुल्क अदा करके उसमें भाग ले रहे थे। इमारत के ही निकट एक विशाल निजी वन था जिसमें स्वामीजी प्रातः के ध्यान के बाद दो सौ-ढाई सौ भक्तों के साथ सैर करने जाते थे तथा कुछ सूक्ष्म यौगिक व्यायाम भी करते थे। वह एक अद्‌भुत, रोमांचकारी दृश्य होता था। गैरिक वस्त्र वाले, मौनधारी भारतीय योगी के पीछे-पीछे उनका अनुसरण करती, गहरी श्रद्धा से भरे विदेशी भक्तों की एक किलोमीटर लम्बी कतार! सेमिनार में ध्यान-प्रश्नोत्तर सभी कुछ होता था। सेमिनार के दौरान कुछ माताओं के साथ पच्चीस-तीस बच्चे भी थे। उनसे भी प्रभु कुछ समय रोज़ मिलते थे—बालकों के बीच एक दिव्य बालक!

इस सेमिनार में श्रीएलेन शिविलैट भी प्रमुख रुप से भाग ले रहे थे। ये फ्राँस के जाने-माने धार्मिक शिक्षक हैं तथा हठयोग पर एक विद्यालय भी चलाते हैं। वे स्वयं गणेशपुरी वाले भारत के प्रसिद्ध संत स्वामी मुक्तानन्दजी के शिष्य हैं तथा फ्राँस की सबसे अधिक सम्मानित आध्यात्मिक पत्रिका Terre Duciel (अर्थात आकाश की जमीन) का भी सम्पादन करते हैं। इस पत्रिका में वे विश्व की विभिन्न आध्यात्मिक परम्पराओं के गुरुओं, महापुरुषों पर लेख या उनके उपदेश प्रकाशित करते हैं। श्रीएलेन नियमित रुप से अपने विद्यार्थियों को लेकर कुछ दिनों के लिये साधना केन्द्र आश्रम में भी आते रहते हैं। वे और उनके अनुयायी हिन्दी भाषा में वाद्ययंत्रों सहित परम्परागत मंत्रों व भजनों का सुन्दर कीर्तन भी करते हैं। सेमिनार के बाद उन्होंने अपनी उक्त पत्रिका में स्वामीजी की अनेक सुन्दर फोटुओं सहित फ्रांसीसी भाषा में एक बहुत प्रभावशाली लेख छापा था। उस लेख का अँग्रेजी अनुवाद हमनें स्वामीजी की स्विट्ज़रलैण्ड निवासी शिष्या श्रीमति क्रिस्टियन से कराया। उपरान्त उसका हिन्दी अनुवाद गुरुदेव के प्रिय भक्त श्री के.के.कपूरजी से कराया। इस अनुवाद के कुछ अंश हम यहाँ दे रहे हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

लियोन (फ्राँस) में श्रीचन्द्रस्वामीजी — श्रीचन्द्रस्वामीजी उत्तर-भारत के एक योगी हैं। उन्होंने कई वर्षों तक एकान्त वास किया और कई वर्ष मौन में रहे। अभी भी वे मौन ही धारण किये हुये हैं। प्रश्नों के उत्तर लिखकर ही देते हैं। इस सत्संग-समागम, जिसमें लगभग चार-पांच सौ लोगों ने भाग लिया, में श्रीयुवानअमर का उपस्थित होना एक दूसरी उपलब्धि थी। वास्तव में युवान अमर बहुत बीमार तथा कमज़ोर हालत में हैं। परन्तु हम सबके लिये वे एक शिष्य की प्रतिमूर्ति थे। गुरु-शिष्य के सम्बन्ध के बारे में, जो हम बहुत से पाश्चात्य लोगों के लिये रहस्य है, अनेक प्रश्नों का उत्तर मात्र श्रीचन्द्रस्वामीजी और श्रीयुवान अमर के सम्बन्ध को देखने से ही मिल जाता था। इस एक सप्ताह में हम सबको यह दिख रहा था कि शिष्य की विनम्रता एवं भक्ति उसके उच्च स्तर एवं स्वतंत्रता के विरोधी नहीं हैं।

"यह समारोह सुव्यवस्थित तथा सरल था और सब कुछ सादगी व प्रसन्नता से किया जा रहा था। रोज़ की दिनचर्या भी सादगी और निरंतरता लिये हुये थी।"

"दिन का प्रारम्भ प्रातः एक घण्टे के शान्त ध्यान से होता था। मंच के बीच एक गद्दी (आसन) पर स्वामीजी विराजमान होते थे। कुछ ही क्षणों में वे अपनी बैठक (आसन) स्थिर करते, आँखे बन्द करते और ध्यान आरम्भ हो जाता। सभी प्रकार के आग्रहों को छोड़ना मात्र था। कोई शब्दों का मार्गदर्शन नहीं, परन्तु एक सशक्त ऊर्जा हमें अन्दर की ओर खींचती हुई स्पष्ट प्रतीत होती थी। कोई भी संवेदनशील तथा पूर्वाग्रहरहित व्यक्ति, स्वामीजी के प्रति खुलते ही वास्तविक ध्यान की अवस्था को अनुभव कर सकता था। यही एक सच्चे गुरु की पहचान है। शब्दों से कहीं ज्यादा उनकी आत्मिक शक्ति चाहे थोड़ा ही सही, उस आन्तरिक अनुभव को करा देने की क्षमता रखती है।"

"उनके समक्ष एक घण्टे का ध्यान बहुत आसान था। कभी-कभी तो यह स्वीकार करना भी कठिन होता था कि वह समाप्त हो गया। प्रातःकाल के ध्यान के पश्चात् स्वामीजी हम सबको जंगल में एक तेज़ सैर को ले जाते थे। यह कोई हल्की-फुल्की सुस्त चाल न थी बल्कि एक तीव्र, सशक्त और ऊर्जा से ओत-प्रोत चाल थी। कुछ शारीरिक व्यायाम की क्रियायें करके हम नाश्ते के लिये वापस लौट आते थे।"

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

"ठीक साढ़े दस बजे हम एक टैन्ट के नीचे प्रश्नोत्तर काल के लिये आ जाते। मंच पर एक जैसी दो कुर्सियाँ रखी थी। एक पर संन्यासियों वाली पारम्परिक भगवा शाल रखी थी, श्रीचन्द्रस्वामीजी के लिये और दूसरी पर एक सफेद शाल रखी थी जो गृहस्थ श्रीयुवान अमर के लिये थी जो अपनी पत्नी तथा कुछ शिष्यों की सहायता से मंच पर आते थे। क्रान्तिजी को देखना भी एक शिक्षा का अवसर होता था—यह देखने का कि एक सतर्क कर्तव्यपरायण एवं दक्ष सहधर्मिणी कैसी होती है। मुझे स्वामीजी के इस वाक्य का तत्काल स्मरण हो आया—जीवनयात्रा में साथी को तीर्थयात्रा में भी साथी होना चाहिये।"

"वहाँ उपस्थित सबको नमन कर श्रीचन्द्रस्वामीजी आसन पर विराजमान हो गये। युवान अमर और स्वामीजी ने एक दूसरे को नमन किया और अत्यन्त सरलता से कार्यक्रम आरम्भ हो गया। इस सप्ताह जिस बात ने मुझे आश्चर्य में डाला वह थी इन दोनों का आडम्बरहीन आदर। इस समागम में कोई अध्यक्ष नहीं था। कोई भूमिका नहीं बांधी गयी कार्यक्रम शुरू करने से पहले। प्रश्न पूछने वाला जब हाथ उठाता तो उसे सचल माइक्रोफोन दे दिया जाता। लगभग सभी प्रश्न व्यक्तिगत होते, प्रश्नकर्ता के जीवन से सीधा सम्बन्ध रखने वाले। यह स्थिति कभी-कभी प्रश्नकर्ता के अटपटे प्रश्न के स्वरूप से स्पष्ट होती थी। कठिनाईयाँ बहुत भावुक होकर व्यक्त की जाती थीं। तब भी बिना विचलित हुये शान्त स्वामीजी, युवान अमर द्वारा प्रश्न का अँग्रेजी अनुवाद सुनते और एक हल्का सा भाव प्रकट कर आहिस्ता से कापी उठा लेते थे। तत्पश्चात एक शान्त ध्यानलिप्त प्रतीक्षाकाल जो अपने आप में एक भिन्न प्रकार के ध्यान के अवसर होते थे! इन लम्बे शान्त अन्तराल के क्षणों में हम अपने अन्दर की शान्ति की ओर आकृष्ट हो जाते थे। हममें से कुछ तो आँखें बन्द कर लेते और स्पष्ट था कि वे अपने अन्दर की शान्ति में डूब गये हैं। और दूसरे आँखें खोले परन्तु जगत् से अनभिज्ञ, काल से परे, आत्मस्थित से दीखते थे। तब स्वामीजी की कलम कागज़ पर चलना बन्द करती। स्वामीजी लिखे हुये उत्तर के एक दो पन्नो को पुनः पढ़कर कापी युवान को दे देते, जो उसे पढ़ने से पहले अपने दोनों हाथों में किसी बहुमूल्य उपहार की तरह लेते और पहले अँग्रेजी में पढ़कर तत्पश्चात फ्रेंच में उसका अनुवाद करते। सभी को अत्यन्त शान्ति और प्रसन्नता का अनुभव होता। युवान

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

अमर (आनन्दजी) उत्तर पढ़ने में पर्याप्त समय लेते और कई बार एक अबोध चंचल बालक की छवि उनमें मूर्तिमान हो उठती।"

"मैं उन उत्तरों की सरलता और उच्चस्तर से आश्चर्यचकित हो जाता था। वे सरल तो होते ही थे साथ ही बिल्कुल सटीक भी। एक शुद्ध आत्मा का प्रसाद रूप। इसीलिये वे हम पाश्चात्य लोगों के लिये इतने आकर्षक होते हैं जो एक सन्दर्भहीन, कमजोर संस्कृति के अन्तर्द्वन्द्व से पीड़ित हैं। स्वामीजी के उत्तर सरल और सशक्त होते थे जो हमें अपनी धुरी पर ठीक से स्थित कर देते थे। कभी-कभी बहुत ही भ्रमित मन से उठे विचित्र प्रश्न भी उठ खड़े होते जो इन बैठकों में सहनशीलता का अनुभव करने का अवसर भी प्रदान करते थे। स्वामीजी सभी प्रश्नों का उत्तर पूरी तन्मयता एवं सद्भावना से देते थे।"

"प्रश्नोत्तर काल के बाद सामान्यतः वे बगीचे में एक वृक्ष के नीचे बैठ जाते थे जहाँ उनसे व्यक्तिगत प्रश्न किये जा सकते थे या भक्त उनसे अपनी पुस्तक में हस्ताक्षर कराने (आटोग्राफ) या यूँ कहें मुख्यतः दर्शन करने उनके पास बैठ जाते थे। संतों में से एक सतत ऊर्जा का प्रवाह होता है जो शरीर तक में स्पन्दन कर देता है। कोई भी सच्चा साधक उससे वंचित नहीं होना चाहेगा। अतः सभी वहाँ स्वामीजी को घेरकर बैठ जाते थे; मैं तो यह कहूँगा कि जितना निकट हो सके उतना निकट आकर बैठ जाते थे।.....।"

"कुर्सी पर वहाँ स्वामीजी इस भव्यता के साथ बैठे हुये होते थे जैसे सभी को उपलब्ध हों। मैं तो कहूँगा कि वे वहाँ एक इच्छापूर्ण करने वाले वृक्ष (कल्पवृक्ष) के समान थे जो यह कह रहे थे — संकोच न करो, जो माँगोगे, मिलेगा। हममें से कुछ ने यह स्पष्टरूप से समझ लिया था, अतः दर्शनों का कोई अवसर नहीं चूकते थे।.....।"

"प्रतिदिन हर भोजनकाल में सात-आठ लोगों को स्वामीजी के साथ मेज पर खाने के लिये आमंत्रित किया जाता था। दर्शन का एक और अवसर—उस दिव्य ऊर्जा में स्नान करने का एक और अवसर! सचमुच जैसे समय रुक जाता था, मन रुक जाता था। सर्वत्र चेतन और प्रेम का विस्तार—जीवन का एक भिन्न स्तर। अपने होश में नहीं रहते थे तब .....।"

"सायंकाल पाँच बजे ध्यान-साधना के लिये पुनः समागम हुआ, उसी तरह से जैसे प्रातः हुआ था। एक नये प्रश्नोत्तर का समय रात्रि भोजन के बाद, वैसे ही जैसे

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

सुबह हुआ था। कार्यक्रम सुचारु रूप से सम्पादित होता था जो अपने आप में एक शिक्षा थी। बच्चों के लिये भी कई कार्यक्रम थे जैसे सवाल-जवाब (प्रश्नोत्तर), सहभोज, स्वामीजी द्वारा प्रसाद वितरण। यह सम्भव है कि शब्दों का प्रभाव बच्चों पर कम होता है, परन्तु वे उस ऊर्जा के प्रति अधिक खुले/संवेदनशील होते हैं, ध्यान-साधना ज्यादा अच्छी तरह कर लेते हैं। उनका मन अभी लिप्त एवं मलिन नहीं हुआ होता, इसीलिये संतजन बच्चों में और बच्चे संतों के सान्निध्य में अति प्रसन्न रहते हैं।"

"यह सब छः दिन चलता रहा। तब एक शाम, अन्तिम ध्यान की बैठक और स्वामीजी ने सभी उपस्थित जनों के प्रति झुककर अभिवादन किया और फिर शान्त भाव से पूर्ववत् टैण्ट के दरवाजे पर गये। एक कार उनकी बाट जोह रही थी। वे कार में बैठ गये। यह इस शिविर की समाप्ति थी। स्वामीजी ने कार के पिछले शीशे में से हाथ हिलाकर हम सबको आशीर्वाद दिया, अलविदा की और कार चली गयी। समाप्ति भी उतनी ही सहज व सरल थी जितना कि वहाँ रहना।"

"जीवन चलता रहा परन्तु बिल्कुल पूर्ववत् नहीं। कुछ नवीन का अनावरण हो चुका था हम सबके लिये—जीने का एक नया स्तर। हममें से कुछ के लिये तो यह साक्षात् दर्शन थे जिनकी अश्रुओं द्वारा पुष्टि हो रही थी, अन्य के लिये यह पुनर्खोज ! मुझे याद नहीं था कि यह सब 'वह' था। यह सब मीठी याद था या एक भोज था। हाँ, एक भोज, एक महाभोज जिसने हमको जो सर्वश्रेष्ठ है उससे परितृप्त कर दिया था। अब यह हम पर है कि इस शिक्षा को अपने जीवन के सारभूत भाग के रूप में परिणत करें।"

उपरोक्त शब्दों से हमें सहज ही स्वामीजी की सभी के हृदय को छू लेने वाली दिव्य शक्ति का आभास होता है। कारण ?—वे सर्वात्मक हैं।

उस सेमिनार के अन्तिम दिन एक विदेशी बहन ने 'हरि हरि नारायण राम' शब्दों का बहुत ही मधुर संकीर्तन सबको सुनाया। अन्य दिनों भी वहाँ संकीर्तन होता रहा था। आनन्दजी के एक संगीतकार शिष्य मिस्टर पाल, जो स्विट्जरलैण्ड के विश्वविद्यालय में भारतीय शास्त्रीय संगीत के अध्यापक हैं, ने गुरुदेव के स्वागत में मैंडोलिन पर मधुर शास्त्रीय राग सुनाया। पूरे सत्र में विदेशी भक्तों ने प्रियदर्शन स्वामीजी की अगणित तस्वीरें खींची। वैसे भी गुरुदेव का मोहक व्यक्तित्व फोटोग्राफरों

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

की प्रिय पसन्द है। कई फोटोग्राफरों ने उनकी अति सुन्दर फोटुएं खींचकर पंडाल के बाहर बिक्री की स्टाल लगाकर सैकड़ों की संख्या में बेचीं।

पूरे सत्र में सभी विदेशियों ने पूरे पाँच दिन तक शुद्ध शाकाहारी भोजन किया जो उस स्थान के लिये अभूतपूर्व घटना थी। सेमिनार में बाईस बच्चे भी थे अपने-अपने अभिभावकों के साथ।

सेमिनार के अन्तिम दिन दोपहर तीन बजे सभी भक्त स्वामीजी को विदायी देने पंडाल में एकत्रित हुए। पंडाल खचाखच भरा हुआ था। विदाई देने का ढंग भी अनोखा था—सभी अश्रुपूरित निर्निमेष नेत्रों से मंच पर आसीन मौनधारी सौम्यमूर्ति का जी भरकर दर्शन कर रहे थे। लगभग आधे घण्टे बाद सबको हाथ जोड़ते हुए नमस्कार करके महाराजजी पंडाल से बाहर आ गये। सभी ने अनुभव किया कि वातावरण प्रेम की टीस से बोझिल था, एक सात्विक उदासी से भींजा हुआ था। कितने ही भक्त रो रहे थे। महाराजजी के उस स्थान से जाने के बाद लोगों ने अनुभव किया कि उनकी अनुपस्थिति भी उतनी ही सशक्त थी जितनी कि उनकी उपस्थिति। कैसा आश्चर्य ! एक मौन व्यक्ति के प्रति—जो इस भौतिकवादी संस्कृति के लोगों को किसी भी प्रकार का कोई सांसारिक आश्वासन नहीं दे रहा था—सबके हृदय में इतना उत्कट प्रेम और सहज विश्वास ! यह सब निश्चित ही भागवतीय प्रसंग है।

एक छोटी सी कविता द्वारा हम इस सेमिनार के प्रसंग को समाप्त करेंगे। यह अंग्रेजी कविता एन्न बहिन के माता-पिता ने सेमिनार में गुरुदेव को उनके पहली बार दर्शन करके उन्हें दी थी। इस भावपूर्ण कविता का अनुवाद कुछ इस प्रकार है—

लार्बेसल (L'ARBRESLE, 09.08.98)

भगवान की जय हो,
कि वे आपके हृदय में आसीन हैं
और आपके चारों ओर भी;
कि आपका बुद्धवार शाम को
भावभीना स्वागत हुआ,
कि हम आपके साथ
यहाँ कुछ दिन रह सके;
कि उसने भारत और उसके संतों को

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

गहन आध्यात्मिकता का उपहार दिया है
जिसकी प्राचीन यूरोप में कितनी आवश्यकता है;
कि आप शीघ्र ही
प्रभु ईसा के चरणों में इज़राइल जायेंगे
कि प्रभु पुनः हममें आपके द्वारा प्रकट होंगे।

शेलोम (Shalom) ऐलेल्यूआई (Alleluiai)

फ्राँस से गुरुदेव पुनः दो दिन लंदन में रुककर दिनाँक 12.08.98 को इज़राइल पहुँच गये। साथ में लंदन से श्रीअनिलजी, मधु बहन, श्रीविपिनजी, भारती बहन, रश्मिता बहन, श्रीदीपकजी, निरुपा बहन, ईशानी बहन, राधिका बहन, श्रीकिरनजी, तथा भारत के श्रीनगर की चाँद बहन भी थे। उधर फ्राँस के विदेशी भक्त एलेन (विवेकजी) का परिवार, मेरी (सुमेघा) तथा अमरीका की मिशेल तथा इटली की फोटोग्राफर भक्त सिल्विया भी इज़राइल आ गये थे।

इज़राइल का सारा कार्यक्रम मुख्यतः महाराजजी की अनन्य भक्ता — सलमा, उसके पति श्रीयीगल, श्रीयोसी आदि ने बनाया था। साथ ही पूरे समय गुरुदेव के दीक्षित बेल्जियमवासी शिष्य श्रीसमर्पितजी (फादर सर्ज) भी स्वामीजी के साथ रहे। अन्य कई भक्त जैसे रिफ़्का, रीमा, नीरा, ओडोड़, आरज़ा आदि भी दिन-रात भिन्न-भिन्न प्रकार से इज़राइल प्रवास के दौरान गुरुदेव की सेवा करते रहे। पूरे दौरे में सलमाजी की छोटी बेटी, पन्द्रह वर्षीय ओरिया तथा लंदन निवासी भारती बहन की बेटी तेरह वर्षीय ईशानी,ये दोनों हमेशा गुरुदेव के संग रहती थीं; वे उनकी छोटी-छोटी सेवायें करतीं, हंसी-मजाक करतीं, उनसे खेल खेलतीं। और संत तो स्वभाव से ही बालकों के बीच प्रसन्न रहते हैं। इज़राइल में गुरुदेव सलमा बहन के घर ठहरे। अन्य सेवकों में से कुछ सलमा बहन के घर, कुछ अन्य सेवकों के घर और कुछ अन्य होटलों में रुके।

सलमा का पूरा घर गुरुदेव के सुन्दर चित्रों से सजा हुआ था। एक दिन घर में विश्राम करने के बाद 14.08.98 को लगभग चालीस भक्तों के साथ गुरुदेव बस द्वारा भगवान ईसामसीह की बाल्यकाल की लीलास्थली नाज़रथ में स्थित सेंट गैब्रील

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

होटल में पहुँच गये। यहाँ पर फ्राँस की ही तरह तीन दिन का सेमिनार आयोजित किया गया था। जिसमें उसी प्रकार ध्यान तथा प्रश्नोत्तर के कार्यक्रम रखे गये थे।

सेमिनार स्थल, सेंट गैब्रील होटल पहले चर्च था किन्तु अब होटल में बदल दिया गया है। पूरे पश्चिम के देशों में अनेक चर्चें बिक रही हैं क्योंकि लोग वहाँ आते ही नहीं। होटल सेंट गैब्रील में तीन दिन के सेमिनार का निम्न कार्यक्रम आयोजित किया गया था—

ध्यान	5.30 बजे से 6.30 बजे प्रातः
नाश्ता	7.00 बजे प्रातः
प्रश्नोत्तर	10.00 बजे से 12.00 बजे दोपहर
भोजन	12.15 दोपहर
ध्यान	5.00 बजे से 6.00 बजे सायं
भोजन	6.45 बजे सायं
प्रश्नोत्तर	8.15 बजे से 10.00 बजे रात्रि

ध्यान-प्रश्नोत्तर भूतपूर्व चर्च के विशाल मुख्य प्रार्थनागृह में सम्पन्न हुए। पूरा कार्यक्रम फ्राँस के सेमिनार की ही तरह शालीनता, सुव्यवस्था तथा अहोभाव के साथ सम्पन्न हुआ। लगभग विभिन्न धर्मों के साठ जिज्ञासुओं ने उसमें भाग लिया। यहाँ ग्रीस से गुरुदेव की अनन्य भक्त-शिष्या, भरत नाट्यम की सुप्रसिद्ध नृत्यांगना तथा पातञ्जल योग में प्रशिक्षित लीडा शान्तला भी उनके पास दो-तीन दिन व्यतीत करने आयी थीं। वे ग्रीस में भारतीय शास्त्रीय नृत्य, भारत-ग्रीक संस्कृतियों के समन्वय के लिये तथा प्रचार-प्रसार हेतु बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही हैं। आते ही वे अचानक बहुत बीमार पड़ गयीं और अगले ही दिन उन्हें ग्रीस लौट जाना पड़ा।

सेमिनार वाले हाल के मध्य में एक छोटे से मंच पर रंगीन चादर से ढकी गुरुदेव की कुर्सी रखी हुयी थी। कुर्सी के पीछे दोनों ओर दो बड़े-बड़े ताजे फूलों के गुलदस्ते रखे हुये थे। कुर्सी के नीचे फर्श पर भी सुन्दर चादर बिछायी गयी थी जैसे आश्रम के समारोहों में हम लोग बिछाते हैं। श्रीचरणों के नीचे एक गद्दी रखी थी। कुर्सी के पीछे ही पुराने गिरजाघर की वेदी (altar) थी। सब व्यवस्था बहुत सादी किन्तु सुन्दर और शालीन थी। हाल की छत तीस फुट ऊँची होगी। चारों ओर

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

दीवारों पर प्रभु ईसा की जीवन लीलाओं के सुन्दर चित्र थे। हाल में विशाल मेहराबें (arches) बनी हुई थीं। मन्द-मन्द प्रकाश व्यवस्था तथा भक्तों से घिरे गुरुदेव उस मंडली के स्वाभाविक और भव्य नायक प्रतीत हो रहे थे। गुरुदेव के लिखित उत्तरों को पढ़ने के लिये माइक की भी समुचित व्यवस्था की गयी थी। सभी उत्तरों का हिब्रू भाषा में भी अनुवाद किया जाता था। प्रश्नोत्तर की अवधि में गुरुदेव कुर्सी पर बैठते थे तथा ध्यान के समय भूमि पर बिछाये हुए आसन पर। अन्य भक्त सब समय फर्श पर ही बैठते थे।

प्रश्नोत्तर के सत्रों में कई विदेशी स्त्री-पुरुष अपनी पाश्चात्य संस्कृति के अनुसार आपस में एक दूसरे के हाथों में हाथ डालकर और कभी-कभी तो एक दूसरे से सटकर बैठते थे। किन्तु सदैव आत्मनिष्ठ तथा पूर्ण समभाव में स्थित गुरुदेव की भंगिमा में इस कारण से कोई क्षोभ या तिरस्कार का भाव नहीं आता था। कई विदेशी भक्त तो सहज भाव से गुरुदेव की ओर टांगे करके भी बैठ जाते थे। कई भारतीय सेवकों को इससे पीड़ा भी होती थी। किन्तु गुरुदेव की तो जैसे इन बातों पर दृष्टि ही नहीं थी। यह बात इस परिप्रेक्ष्य में और भी महत्वपूर्ण है कि महाराजजी भारतीय परम्परा के पूर्ण संत हैं तथा भारत के हजारों लोग उनकी भगवद्भाव से पूजा-अर्चना करते हैं तथा स्त्री-पुरुष उनके सामने सदा मर्यादायुक्त-शालीन व्यवहार करते हैं। गांवों के भक्त तो गुरु महाराजजी के सामने हमेशा सिर ढककर तथा जूते-चप्पल उतारकर ही आते हैं, कभी अनावश्यक बात तक नहीं करते। अतः इन दोनों ही विपरीत परिस्थितियों में प्रेमपूर्ण समभाव में बने रहना केवल आत्मनिष्ठ योगी के ही लिये सम्भव है। अस्तु।

इज़राइल में सभी लोग इज़राइली और अरबी ढंग का भोजन खाते रहे। हां, भोजन हमेशा शाकाहारी होता था। जैसा भी भोजन हो, गुरुदेव बड़े प्रेम से ग्रहण कर लेते थे। उस होटल का पूरा स्टाफ भी गुरुदेव से बहुत प्रेम करने लगा था।

अक्सर ध्यान-स्थल पर संकीर्तन भी होता रहा। संकीर्तन के साथ गुरुदेव द्वारा लिखित एक मात्र भजन—'स्वागतम कृष्णा, शरणागतम कृष्णा' तथा 'हरि शरणम' संकीर्तन भी हुआ था। एक दिन वहाँ उपस्थित रामी नामक युवक ने सैक्सोफोन पर सुन्दर संगीत सुनाया। एक अन्य युवक ने अपने ढोल जार्ब पर ईरानी,

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

अरबी तथा तुर्की की तालों पर हिब्रू भाषा में साम (psalm) गाकर सुनाये। एक अन्य भक्त ने पियानो बजाया। और अन्तिम दिन तो संकीर्तन के बाद सभी ने मिलकर 'हवाना गिला' नामक 'पश्चिम' के प्रसिद्ध नाच-गाने में भाग लिया। परम आश्चर्य! अपने सभी मानसिक अवरोधों/बाधाओं को तोड़कर छोटे-बड़े सभी लोग गुरुदेव के सामने बच्चों की तरह गा रहे थे, नृत्य कर रहे थे। गुरुदेव भी ताली बजा-बजाकर खूब आनन्द मना रहे थे तथा साथ ही एक भक्त से कैमरा छीनकर सबकी फोटो ले रहे थे। अतः वहाँ केवल ज्ञान गोष्ठी ही न थी, आनन्द का बाजार भी लगा हुआ था; अपनी माता के सुरक्षित आँगन में खेलकूद का भी आयोजन था। भक्तगण गुरुदेव को लेकर उन्हीं के उपलक्ष में आनन्द मना रहे थे, मानो दूल्हे के साथ बारात में जा रहे हों। उस दिन रात के ग्यारह से ज्यादा बज गये थे।

अन्तिम प्रश्नोत्तर के सत्र में, एक महिला को जिसे असाध्य केंसर था, गुरुदेव ने उसके रोग को प्रभु की इच्छा मानकर स्वीकार कर लेने की सलाह देकर तथा अविनाशी, आनन्दस्वरूप प्रभु का भजन-स्मरण करने की प्रेरणा देकर उसका कठिन मानसिक संताप हर लिया था। उसी दिन एक अन्य कम आयु की भोली-भाली इज़राइली लड़की ओर्ली ने एक सुन्दर पत्र गुरुदेव को लिखा। उसमें लिखा था—

"बहुत प्रिय स्वामीजी,

आपकी छू लेने वाली उपस्थिति के लिये बहुत-बहुत धन्यवाद। मैं पहली बार आपसे मिल रही हूँ और यह अवसर पाकर बहुत प्रसन्न हूँ। आपकी उपस्थिति में प्रतिदिन बुरे संस्कार इस प्रकार छूटते जा रहे हैं जैसे सांप पुरानी केंचुली छोड देता है और जीवात्मा कुछ और मुक्त होती जाती है। मैं अनुभव करती हूँ कि मेरी आत्मा एक बालक की तरह शान्त और अनावृत हो गयी है। मेरी आँखों से स्वयं ही अश्रुपात हो रहा है। मैं अनुभव करती हूँ कि आपके दिव्य गुण अधिकाधिक लोगों तक पहुँचें। आज विश्व के लोगों को इसकी बहुत आवश्यकता है। मुझे लगता है कि आपकी उपस्थिति में हमारे अन्दर छुपी हुई सम्भावनाएं साकार हो सकेंगी। आज सबको शान्ति, प्रेमोन्मुख जीवन तथा उच्च आध्यात्मिक अनुभवों की कितनी आवश्यकता है! मुझमें भगवद्भाव को सुदृढ़ करने के लिये आपको धन्यवाद; मुझमें प्रेम की वाणी को सुदृढ़ करने के लिये आपको धन्यवाद; हम सबमें मानव की शक्ति और

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

भले-बुरे का विवेक जाग्रत करने के लिये आपको धन्यवाद। आप जो भी हैं, उसके लिये आपको धन्यवाद ! प्रेम।

ओर्ली"

पत्र के उत्तर में गुरुदेव ने निम्न मार्मिक शब्द लिखे—

"मेरी शुभकामना है कि भगवान आपको अपने निकट से निकटतर खींच लें। वे आपको ऐसी शक्ति प्रदान करें कि आप अपने आध्यात्मिक विकास के लिये सद्प्रयास कर सकें तथा दूसरों की सेवा कर सकें। भगवान सदा आपका मंगल करें ताकि आपमें अधिकाधिक भगवद्प्रेम, प्रकाश, शान्ति और आनन्द प्रकट हो सके।"

नाज़रथ में गुरुदेव ने एक छियासठ वर्षीय फ्राँसीसी वृद्धा ईसाई साध्वी, सिस्टर जैकलिन को उसके बहुत अनुरोध पर शिष्य के रूप में स्वीकार करके नाम दीक्षा दी। वह वृद्धा माता येरुशलम के निकट एक गुफा में अकेली रहती थीं तथा एक मठ के लिये जपमालाएं बनाकर कुछ पैसे अर्जित करके अपनी आजीविका चलाती थीं। वे गुरुदेव की दिव्यता से दो दिन में ही अभिभूत हो गयीं थीं। अधिकारी जानकर प्रभु ने भी उसे तुरन्त दीक्षा प्रदान की। महाराजजी की उदारता की बात तो यह है कि वे साध्वी पहले की ही तरह प्रभु ईसा की भक्त हैं तथा एक निष्ठावान ईसाई हैं। और केवल वे ही क्यों—फादर सर्ज तथा उनकी तरह सैकड़ों शिष्य अपने-अपने धर्म में रहकर भजन-साधन कर रहे हैं। क्या यह भविष्य में धार्मिक सहिष्णुता, सच्चे सहअस्तित्व और निर्मल प्रेम के विस्तार की पूर्व आभा नहीं है ?

नाज़रथ में ही गुरुदेव इज़राइल की वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के आधारभूत ढाँचे—'किबूत' को भी देखने गये। किबूत की परम्परा इज़राइल में 1909 में आरम्भ हुई थी। किबूत में लोग समूह के रूप में रहते हैं तथा अपनी आय-व्यय सब सामूहिक रूप से आपस में बाँटते हैं। ये किबूत बड़े-बड़े कारखाने तक चलाते हैं। अभी भी लाखों लोग इज़राइल के किबूतों में रह रहे हैं। ये किबूत ही कालान्तर में इज़राइल के प्रखर राष्ट्रवाद का कारण बने। वास्तव में अपने प्रखर राष्ट्रवाद और जातीय स्वाभिमान के कारण ही केवल साठ लाख की जनसंख्या वाला इज़राइल विश्व का अग्रणी और विकसित देश बन गया है।

बहुत भावपूर्ण वातावरण में 17.08.98 को उसी हाल में महाराजजी को

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

अश्रुपूर्ण विदाई दी गयी। सलमा के अतिरिक्त लंदन के श्रीअनिलजी ने भी हिब्रू भाषा में इज़राइल के भक्तों को बार-बार धन्यवाद दिया।

17.08.98 को वह सेमिनार समाप्त हुआ तथा गुरुदेव को लेकर भक्तों की बस पेकिन नामक गाँव में पहुँची जहाँ 'ड्रूस' धर्म के लोग बहुतायत से रहते हैं। पूरे इज़राइल में इस धर्म के लोगों की संख्या लगभग एक लाख होगी। इन लोगों के सम्बन्ध में कुछ दिलचस्प बाते हैं। एक तो इनका पहनावा तथा टोपी ही विशिष्ट होती है। इनकी बहुत सी मान्यताएं इस्लाम से भी मिलती हैं किन्तु ये पुनर्जन्म में विश्वास करते हैं। इनके समाज में लोगों के दो वर्ग होते हैं— धार्मिक लोग और साधारण लोग। साधारण लोगों को धार्मिक बातों-मान्यताओं के बारे में कुछ भी जानकारी नहीं दी जा सकती। धार्मिक व्यक्ति बनने के लिये पुरुषों को कई वर्षों के प्रशिक्षण में उत्तीर्ण होना होता है जबकि स्त्री केवल एक वर्ष के प्रशिक्षण के बाद ही धार्मिक बन सकती है। इनका धर्म बहुत एकांगी है और उसमें कोई भी दूसरे धर्म का व्यक्ति शामिल नहीं हो सकता। कोई व्यक्ति तभी ड्रूस हो सकता है जब उसके माता और पिता दोनों ड्रूस हों। इनका धर्म पूरी तरह से गुप्त होने के कारण अन्य लोग इनकी धार्मिक मान्यताओं तथा रीति-रिवाजों के बारे में कुछ भी नहीं जानते। लेबनान में ये लोग बड़ी संख्या में हैं। लेबनान में रहने वाली इसी धर्म की एक विदुषी बहन रीमा साब ने महाराजजी की प्रसिद्ध पुस्तक "The Practical Approach to Divinity" का अरबी भाषा में अनुवाद भी किया है।

एक होटल में सबने रात्रि विश्राम किया तथा दूसरे दिन प्रातःकाल होटल के ही एक बड़े कमरे में सब गुरुदेव के साथ सामूहिक ध्यान में भी बैठे।

नाश्ते के बाद बस हुरफीशाह नाम के एक गाँव में पहुँची जहाँ ड्रूस धर्म के एक शेख़ अपने धर्म के दूसरे पैगम्बर की कब्र के निकट बने आवास में रहते थे। कुछ ही मिनटों की मुलाकात में शेख़ साहब का महाराजजी से गहरा प्रेम हो गया। तीस-चालीस मिनट वे अकेले ही बोलते रहे। बातें करते-करते अचानक स्वामीजी को सम्बोधित करके वे सबसे बोले— "इनकी आँखें देखी हैं ?" फिर हल्के-फुल्के मज़ाक के ढंग में उन्होंने महाराजजी से कहा, "मेरी इच्छा है कि आप बोलें" तो हमेशा हाजिरजवाब प्रभु ने तुरन्त लिख दिया, "मेरी इच्छा है कि आप मौन हो जायें।" फिर उन्होंने स्वामीजी से उनका संदेश देने को कहा तो गुरुदेव ने लिख

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

दिया—"हमेशा परमात्मा का स्मरण करें। धर्म और जाति से ऊपर उठकर भगवद्नाते असहायों एवं निर्धनों की सहायता करें।"

उसी दिन सब लोग ज़ेफात गये जहाँ यहूदियों का प्रसिद्ध सिनेगाग (प्रार्थना स्थल) है। दोपहर में सब Mount of Beatitude पर पहुँचे। इसी स्थान पर श्रीईसा ने दो हजार वर्ष पूर्व उपदेश दिये थे। शाम को सबने कैपरनाम का स्थान देखा। वहाँ एक बहुत सुन्दर चर्च भी बना हुआ है। वहाँ ईसा तीन वर्ष तक रहे थे। उनके शिष्य पीटर के घर का स्थान भी यत्नपूर्वक सुरक्षित रखा हुआ है, जहाँ ईसा रहा करते थे। इसके बाद सबने ताभा नाम के निकटस्थ स्थान को देखा जहाँ ईसा ने केवल चार मछलियों और दो डबलरोटी से हजारों लोगों को भोजन कराने का चमत्कार दिखलाया था। ये सभी स्थान विशाल Lake of Gallili (गैलीली की झील) के आस-पास हैं। ईसामसीह तो निर्धनों और असहायों के प्रिय थे। इस स्थान के मछुवारे उनके परम भक्त थे। झील में एक मोटरबोट पर यह संकीर्तन भी हुआ—

नमो नमो नमो श्रीहरि के चरण
श्रीहरि के चरण श्रीहरि के चरण
अपने हृदय में बसा लें श्रीहरि के चरण
नमो नमो नमो श्रीहरि के चरण
नमो नमो नमो बाबा श्रीचन्द्र के चरण .....।
नमो नमो नमो बाबा भूमनशाह के चरण .....।
नमो नमो नमो जीसस क्राइस्ट के चरण .....।
नमो नमो नमो इब्राहिम के चरण .....।
नमो नमो नमो गुरुदेव के चरण
गुरुदेव के चरण गुरुदेव के चरण
अपने हृदय में बसा लें गुरुदेव के चरण
नमो नमो नमो गुरुदेव के चरण

रात्रि विश्राम 'चर्च आफ बीएटिट्यूड' में हुआ। चर्च की साध्वियां सबकी प्रेमपूर्वक सेवा कर रही थीं।

अगले दिन 19.08.98 को बस में बैठकर गुरुदेव और भक्त, प्रसिद्ध ज़ैरिको शहर पहुँचे। यहीं पर ईसा ने एक गुफा में चालीस दिन का एकान्तवास किया था।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

मौनधारी गुरुदेव सब अवलोकन कर रहे थे। पूरे भ्रमण में इज़राइल की सर्वश्रेष्ठ मार्गदर्शक (guide) रीमाजी साथ थीं। वे बहुत श्रद्धा से पूरे भ्रमण के दौरान अपनी सेवाएं दे रही थीं।

अब बस प्राचीन शहर येरुशलम पहुँच गयी — पीले, सफेद पत्थरों का शहर येरुशलम। येरुशलम विश्व का एक विशिष्ट शहर है क्योंकि यहाँ यहूदियों, ईसाईयों और मुसलमानों — तीनों धर्मों के परम पवित्र स्थल हैं और ये सभी पवित्र स्थल एक दूसरे के पास-पास सटे हुए हैं।

येरुशलम में सबने ईसा के जीवन से जुड़े पवित्र स्थल देखे। माउंट ऑफ ऑलिव तथा स्थान-स्थान पर चर्च। माउंट ऑलिव के बारे में यहूदियों का विश्वास है कि प्रलय के समय इसी स्थान पर सबका अन्तिम निर्णय होगा। इसकी पहाड़ी पर बने कब्रिस्तान पर अनेक यहूदी बहुत धन देकर अपनी भावी मृत्यु के बाद अपने लिये कब्र का स्थान सुरक्षित करवा लेते हैं क्योंकि उनका विश्वास है कि उनका मसीहा इस पहाड़ी में दफन किये गये सब यहूदियों को जिन्दा कर देगा। इसी विश्वास के कारण रूढ़िवादी यहूदी अपने शरीर का कोई अंग दान नहीं करते।

उधर ईसाईयों का विश्वास है कि अपने मृत्युदण्ड के तीन दिन बाद पुनर्जीवित होने के उपरान्त ईसा इस पहाड़ी पर चालीस दिन तक जीवित रहे थे, तथा यहीं से स्वर्ग में गये थे। अन्त में वह स्थान भी देखा जहाँ ईश्वर के पुत्र को सलीब पर कीलों से ठोककर एक अपराधी की तरह मार डाला गया था। आज भी वहाँ के वातावरण में टीस और वेदना व्याप्त है। ईसा को अपनी भीषण मृत्यु का पूर्वाभास हो गया था। और करुणा का देवता मानो श्राप देते हुये येरुशलम के प्रति ये शब्द कह उठा था, "येरुशलम, ओ येरुशलम, मसीहाओं को मार डालने वाले और तेरे उद्धार को भेजे गये महापुरुषों पर पत्थर फेंकने वाले येरुशलम ! कितनी ही बार मैंने तेरे बच्चों को इस प्रकार सुरक्षा और प्रेम दिया जैसे एक मुर्गी अपने पंखों के नीचे अपने चूजों को छुपा लेती है। लेकिन आह ! तू मुझे कहाँ समझ सका !" जिस स्थान पर ईसा के मुख से ये शब्द निकले थे वहाँ अब प्रसिद्ध जेमिनस फ्लेविट चर्च (अर्थात् परमात्मा विलाप कर रहा है) है। वहाँ चर्च में रखे एक पर्चे से उक्त शब्द लिये गये हैं। एक बार किसी ने गुरुदेव से पूछा कि क्या जहाँ ईसा को सूली पर चढ़ाया था वहाँ उनकी उपस्थिति अनुभव होती है ? तो ईसा के साथ गहन रूप से सम्बन्धित गुरुदेव ने लिख्र

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

दिया, "ग्राह्यशील हृदय द्वारा केवल उस स्थान में ही नहीं, पूरे येरुशलम में ईसा के पवित्र स्पन्दन अनुभव किये जा सकते हैं।" गुरुदेव ने तीसरी बार अपने प्रिय ईसा की लीलास्थली के दर्शन किये थे।

ईसा को सलीब पर टाँगे जाने के स्थान के पास ही यहूदियों के तीन हजार साल पुराने सोलोमन मन्दिर के भव्य अवशेष, 'द वेलिंग वाल' (रोती हुई दीवार) है। यह विशाल रोती हुई दीवार सोलोमन मन्दिर को तोड़े जाने के बाद उसका अवशेष रुप है। इस दीवार पर यहूदी लोग अपनी मनौतियां मनाते हैं, उसे चिट्ठियां लिखते हैं।, उसे फैक्स भेजते हैं। उसे भगवान की तरह पूजते हैं। इसके निकट ही Dome of Rock है। मुसलमान बन्धुओं का विश्वास है कि मुहम्मद साहब यहीं से स्वर्ग को गये थे। मक्का-मदीना के बाद यह उनके लिये सबसे महत्वपूर्ण तीर्थस्थान है। वहां लोगों से बातचीत करके यह भी विदित हुआ कि उक्त तीनों एकेश्वरवादी धर्मों में वस्तुओं, व्यक्तियों और स्थानों को लेकर विस्मयकारी पौराणिक कथायें हैं जिन पर शिक्षित-अशिक्षित सभी विश्वास करते हैं। हमें यह सब देख्र-सुनकर आश्चर्य नहीं हुआ क्योंकि हमारा देश भारत तो स्वयं प्रतीक-उपासना का देश है। यहाँ पशु-पक्षी, पेड़,पत्थर, नदी, पहाड़, अग्नि, पुस्तकें, मूर्तियां आदि — उपासना के अगणित प्रतीक हैं। मूर्तिपूजा और प्रतीक उपासना में गहरा अन्तर है। इस सम्बन्ध में गुरुदेव द्वारा प्रतीक उपासना के बारे में कही गयी बहुत सुन्दर और व्यापक परिभाषा हम यहाँ देना चाहेंगे। उनके शब्दों में — "जीवन में किसी भी नश्वर वस्तु को महत्व देना एवं उसकी प्राप्ति के लिये जीवन जीना ही वास्तव में मूर्तिपूजा है। फिर वह वस्तु चाहे 'देश' हो या कोई सामाजिक या राजनैतिक 'वाद' हो या ऐसा 'कुछ भी' हो जो अनन्त भगवद्तत्व की अपेक्षा क्षुद्र हो। इसके विपरीत नाम, रुप अथवा वृत्ति रुपी किसी भी ससीम प्रतीक द्वारा परमात्मा की अभीप्सा करना तथा उसकी उपासना करना मूर्तिपूजा नहीं बल्कि प्रतीक-उपासना है जो कि उस 'अचिन्त्य' तत्व का चिन्तन करने के लिये एक व्यावहारिक आवश्यकता है।" जब तक साधनकाल में मन रहता है तब तक साधक को निर्गुण-निराकार परमात्मा का स्मरण-चिन्तन भी किसी शब्द या रुप या भाव के माध्यम से ही करना पड़ता है। इस प्रकार प्रतीक उपासना अध्यात्म के क्षेत्र में भारतवासियों के गहरे अनुसंधान का परिणाम है न कि उनके अन्धविश्वास व अज्ञान का। अस्तु।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

चूँकि येरुशलम में इन तीनों धर्मों के पवित्र स्थान हैं यहाँ सदा ही हिंसा की आशंका बनी रहती है। यहाँ तक कि इन पवित्र स्थानों को कितनी ही बार युद्ध में दूसरे धर्म वालों ने तोड़ा है। अनेक बार येरुशलम में युद्ध हुये हैं।

यदि इन सब बातों पर ध्यान दें तो हमें अपने देश की उदार परम्पराओं पर गर्व होता है। भारत में तो कोई भी व्यक्ति किसी भी तरीके से सत्य/परमात्मा की प्राप्ति करा सकने का दावा करे तो तुरन्त उस व्यक्ति के पीछे हजारों लोग खड़े हो जाते हैं। अगर किसी पंथ में कुछ सार होता है तो वह जीवित रहता है वरना कुछ समय बाद स्वयं ही लुप्त हो जाता है। लेकिन इस देश का यह गौरव है कि इसने भिन्न-भिन्न विचारधाराएं, मान्यताएं रखने वाले धार्मिक व्यक्तियों, संतों तथा महापुरुषों का सदा सम्मान किया है। किन्तु हमारा यह भी दृढ़ विश्वास है कि प्रत्येक धर्म व आध्यात्मिक परम्परा में सत्य व सारतत्व हैं; सभी धर्मों में अनेक भगवदोपलब्ध सिद्ध महापुरुष हुए हैं। वे अनन्त भावमय प्रभु अनन्त मतों-पथों द्वारा प्राप्त किये जा सकते हैं। हम सदा ही संसार के सभी संतों-महापुरुषों को नमन करते हुए उनकी कृपा की आकांक्षा करते हैं।

येरुशलम में ये सब स्थान देखने के बाद गुरुदेव अपने प्रिय शिष्य फादर सर्ज (समर्पितजी) की कुटिया में गये जो शहर से दूर एकान्त पहाड़ी पर स्थित थी। साधारण सी लकड़ी की कुटिया में प्रभु ईसा तथा गुरुदेव के चित्र लगे हुए थे। छोटी सी भजन की कोठरी भी थी। समर्पितजी गुरुदेव के निर्देशानुसार कुछ समय इज़राइल में साधना करते हैं तथा कुछ समय ऋषिकेश तथा कुछ समय साधना केन्द्र में आकर साधना करते हैं। वे बड़े निष्ठावान ईसाई साधु हैं। गुरुदेव के उनकी कुटिया में पदार्पण करने से उनके जीवन की एक चिरकालीन आशा पूरी हुई। वे गुरुदेव को बता रहे थे कि वह स्थान आध्यात्मिक दृष्टि से रेगिस्तान है तथा वे अक्सर साधु-संग तथा सत्संग को तरस जाते हैं।

येरुशलम देखने के बाद सब सलमाजी के घर लौट आये। अगले दिन 20.08.98 को गुरुदेव को वापिस लंदन लौटना था। सभी भक्त प्रातःकाल से ही सलमाजी के घर आ गये थे। घर में गुरुदेव बहुत देर तक ईशानी और ओरिया के साथ एक इज़राइली खेल खेल रहे हैं। खेल में बहुत हंसी-मजाक तथा हार-जीत के मामले में झगड़ा भी हो रहा है। भक्तगण मुग्ध होकर प्रभु के अनेक रूप देख रहे हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

दोपहर तीन बजे हवाई अड्डे पर जाने से पहले सब आधा घण्टा ध्यान में बैठे। घर से विदा लेने के समय सब भक्त रोने लगे। हाथ जोड़कर प्रभु ने सबका प्रेम स्वीकार किया।

जब गुरुदेव हवाई अड्डे पर पहुँचे तो इज़राइल के सभी भक्त वहाँ विदाई देने पहुँचे हुए थे तथा उनके चले जाने के वियोग में रो रहे थे। ढेर सारे फूलों और भेंटों के साथ अश्रुपूर्ण विदाई हुई। कोई मानने को तैयार नहीं था कि ये प्रेम के देवता अब लौट रहे हैं।

लंदन में पुनः तीन दिन खूब कीर्तन-भजन तथा प्रश्नोत्तर हुए। वहां दो दिन रहकर गुरुदेव 23.08.98 को दुबई चले गये। पिछले एक महीने से लंदनवासी गुरुदेव रूपी तीर्थ में स्नान कर रहे थे। विदाई के समय सबको बार-बार रुलाई फूट रही थी मानो कोई अत्यन्त प्रिय वस्तु छिन जाने वाली हो। अपने प्रेमपाश में सदा के लिये बाँधकर वे महापुरुष अब दुबई अपने अन्य भक्तों के पास चले जायेंगे। ऐसे में किसी को श्रीकृष्ण के ब्रज छोड़कर जाने का प्रसंग स्मरण हो रहा है—गोपियों की असह्य पीड़ा! हवाई अड्डे पर विदाई देने आये भक्तों की हालत गाय से बिछड़ने वाले बछड़े की सी थी। जिसने वे दृश्य देखे हों वे ही इन शब्दों का मर्म समझ सकेंगे। अस्तु!

दिनाँक 24.08.98 को प्रातः प्रभु ने दुबई हवाई अड्डे पर पदार्पण किया। दुबई में गुरुदेव का सर्वश्री हरिकिशनजी, पगरानीजी, सावलानीजी, केवलानीजी, होतचन्दजी के परिवार तथा अन्य अनेक परिवारों ने बहुत प्रेमपूर्ण स्वागत-सत्कार किया। यहाँ वे 27.08.98 तक रहे। इन दिनों में अपने-अपने घरों में गुरुदेव को भोजनादि पर आमंत्रित करके भक्तों ने बहुत आनन्द उत्सव मनाया। चेहरे भिन्न थे किन्तु आनन्द-उत्सव-अहोभाव का वातावरण सब पहले जैसा ही था। भक्त अधिकांशतः सिन्धी समुदाय के थे। अनेक स्थानों पर सुन्दर प्रश्नोत्तर हुए। अपनी मातृभूमि के एक महान संत के दर्शन करके वहाँ के भक्त लोग कृतकृत्य हो गये।

दिनाँक 27.08.98 को श्रीचन्द्रूजी महाराजजी को आबूधाबी में अपने घर ले गये। उनकी चिरकाल की इच्छा पूर्ण हुई। अगले दिन प्रभु उनके बच्चों से खेलते रहे। बच्चों को भी अपना हितैषी मित्र मिल गया। दिन के भोजन में अनेक आमंत्रित भक्तों ने गुरुदेव के दर्शन किये। हमेशा की तरह सत्संग-संकीर्तन भी हुआ।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

दिनांक 29.08.98 को गुरुदेव शारजाह में किसी भक्त को दर्शन देते हुये श्रीपगरानीजी के घर रात्रि विश्राम के लिये लौट आये। अगले दिन पुण्यभूमि भारत लौट जाना था।

दिनाँक 30.08.98 को सभी भक्तों ने रात दस बजे हवाई अड्डे पर गुरुदेव को भावभीनी विदाई दी। सब उनसे पुनः पुनः दुबई, आबूधाबी आने के लिये प्रार्थना कर रहे हैं। सबके हृदयों में पवित्र दुःख और शीतल सुख—दोनों का भण्डार छोड़कर प्रभु जा रहे हैं—दुःख वियोग का और सुख मंगल सान्निध्य की मधुर स्मृतियों का। उस बेला में सेवक विस्मित होकर गत डेढ़ मास के अद्भुत प्रेम-प्रसंग का मन ही मन स्मरण कर रहा है तथा उसके चित्त में पूरे घटनाक्रम के अविकारी, निःसंग साक्षी, एकरस नायक गुरुदेव की मंगलमूर्ति का पुनः पुनः स्मरण हो रहा है, हालाँकि वे साक्षात् उसके संग हैं। किसी कवि की पक्तियां उसके हृदय में ध्वनित हो रही हैं—

भरे मेलों में तू निपट अकेला है;
तू अकेला है तो भी मौजों का मेला है।
ए जोगी, तू बड़ा अलबेला है।

साधना केन्द्र आश्रम में वापिस पहुँचते ही पुष्पा माता, रानी माता, नन्दा दम्पति, मल्होत्रा दम्पति, श्रीविनोदजी, श्रीभगतजी, विशाली माता, विदेशी सेवकों तथा आश्रम के कर्मचारियों ने, गुरुदेव का पुष्पमालाओं से स्वागत किया; आरती उतारी गयी। सभी ने बारम्बार प्रभु को प्रणाम किया। गुरुदेव के पहुँचते ही आश्रम खिलखिलाकर हँसने लगा, सनाथ हुआ, सुखी हुआ, शान्त हुआ। डेढ़ महीने तक अपनी लीलाओं से अनेक देशों के अनेक भक्तों को तृप्त करके प्रभु साधना केन्द्र आश्रम में आकर पुनः विराजमान हुये।

विद्वान लेखक के रूप में

गुरुदेव का पुस्तकीय और शास्त्रीय ज्ञान भी विपुल है। उन्होंने विश्व के सभी प्रमुख धर्मों और पंथों का गहन तुलनात्मक अध्ययन किया हुआ है— जैसे बौद्धमत, जैनमत, ईसाई धर्म, ताओमत, सिखपंथ, इस्लाम, तथा सूफ़ीमत आदि-आदि। लगभग तीस-पैंतीस वर्ष पूर्व उनकी हस्तलिखित डायरी में जिन भिन्न-भिन्न दार्शनिकों, चिन्तकों, तथा संतों के उद्धरण मिलते हैं उनमें प्लेटो, एरिस्टोटल,

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

शापनहोवर, ब्रैडले, काँट, ह्यूम, मिल, न्यूटन, हक्सले, नीट्शे, सेंट जेरोम, कैथरीन ऑफ सीमा, आइंस्टीन, बर्नार्ड तथा एक्हार्ट आदि शामिल हैं। डायरी में बाइबिल तथा थोमस कैम्पिस द्वारा लिखित प्रसिद्ध पुस्तक, 'दि इमिटेशन ऑफ क्राइस्ट' (ईसानुसरण) के भी कुछ अंश थे। पाश्चात्य दार्शनिकों, मनोवैज्ञानिकों और संतों के बारे में ज्ञान होने के कारण स्वामीजी को वहाँ के साधकों की विशिष्ट समस्याओं को ठीक प्रकार से समझने तथा उन्हें उचित मार्गदर्शन देने में भी सहायता मिली। वैसे भी विभिन्न प्रकार की संस्कृतियों, परम्पराओं, धर्मों आदि की जानकारी से परमात्मा की अनन्त विविधता से पूर्ण सृष्टि को समझने तथा आदरपूर्वक स्वीकारने में आसानी होती है और चित्त उदार बनता है।

जहाँ तक हिन्दू धर्म के पुरातन शास्त्रों का प्रश्न है, उसमें तो वे प्रवीण हैं ही। उनकी हस्तलिखित डायरी में गीताजी, रामायणजी, उपनिषदों, श्रीगुरुग्रन्थसाहब आदि से भी प्रचुर संख्या में उद्धरण मिलते हैं। पहले उन्हें गीताजी के अधिकांश श्लोक तथा अनेक उपनिषदों के श्लोक कंठस्थ थे। गुरुबानी भी बहुत सी जबानी याद थी। अभी भी यदा-कदा वे इन ग्रन्थों को उद्धृत कर देते हैं। आश्चर्य है कि उन्होंने कभी कोई पुस्तक स्वयं नहीं खरीदी तो भी उनका पुस्तकालय अध्यात्म पर उन्हें भेंट स्वरुप दी गयी दुर्लभ पुस्तकों से परिपूर्ण है। आज भी भक्त उनके लिये पुस्तकें भेंट में लाते रहते हैं। गुरुदेव के बिस्तर के निकट दो रैक्स पुस्तकों से भरी हुई हैं तथा यदा कदा वे उनमें से कुछ पढ़ते रहते हैं।

महाराजजी का अधिकांश जीवन तो कठिन साधना और प्रभु के आनन्द-प्रेम के रसास्वादन में ही व्यतीत हुआ है तो भी उनका शास्त्रीय ज्ञान देख-सुनकर चकित रह जाना पड़ता है।

आइये, महाराजजी द्वारा इस सन्दर्भ में लिखित कुछ सामग्री तथा एक सेवक के साथ उनके प्रश्नोत्तर के दौरान प्रकाश में आई कुछ गुह्य बातों को जानें–

"अगर किसी ने पहले (पूर्व जन्म में) कुछ पढ़ा हो और उसे वह अब भूल गया हो तो दुबारा पढ़ने से वह उसे आसानी से फिर याद कर सकता है।"

"बाबाजी मुझे उचित समय पर किसी न किसी के माध्यम से वे पुस्तकें भेजते रहे जिनके अध्ययन की मुझे आवश्यकता होती थी।"

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

"मैंने षट्दर्शन और वेदान्त के सब ग्रंथ हिन्दी भाषा में पढ़े जबकि स्कूल या कॉलेज में कभी हिन्दी नहीं पढ़ी। मैंने ये सब शास्त्र बिना किसी गुरु की सहायता के पूर्णरूप से आत्मसात् कर लिये। मैं सब श्लोकों का उच्चारण नहीं कर सकता लेकिन मुझे उनका सार मालूम है। सामान्यतया बिना किसी अध्यापक की सहायता के इन शास्त्रों को समझना बड़ा कठिन है।"

"अक्सर मैं केवल कुछ पृष्ठ पढ़कर ही पूरी पुस्तक का भावार्थ जान लेता हूँ।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि गुरुदेव का शास्त्रीय पठन-पाठन तो पूर्वजन्मों में ही पूर्ण हो गया था। उनके वर्तमान जीवन में तो दुर्लभ भगवद्अनुभूति के बाद उन शास्त्रों का सारतत्व, उनका गूढ़ भावार्थ ही आलोकित हो रहा है।

वर्तमान सन्दर्भ में हम नीचे गुरुदेव के पूर्वजन्म से सम्बन्धित एक दुर्लभ घटना दे रहे हैं जो उन्होंने अपने किसी सेवक को लिखकर बतायी थी—

"जब मैं डी. ए. वी. कॉलेज, देहरादून में पढ़ा करता था तो रसायन शास्त्र के विभागाध्यक्ष, प्रोफेसर एल. एन. गुप्ता मेरे अध्यापक थे। मेरे मन में उनके प्रति बहुत प्रेम और आदर था। मेरी इच्छा होती थी कि मैं उनके पैर धोऊँ। वे भी मुझे बहुत प्रेम करते थे। आर्यसमाजी होने के बावजूद वे भगवान राम के अनन्य भक्त थे। मुझे वे हमेशा संत की तरह ही लगते थे। उनके विवाह के दो-तीन वर्ष बाद ही उनकी पत्नी का शरीर छूट गया था। उसके बाद उन्होंने दुबारा विवाह नहीं किया। बाद में एक बार ध्यान के दौरान मुझे दर्शन हुआ कि अपने किसी पूर्वजन्म में जब मैं साधु था तो हिमालय पर्वत के किसी आश्रम में मैंने उनसे संस्कृत सीखी थी। प्रोफेसर गुप्ताजी उस आश्रम के पंडित थे और साधुओं को संस्कृत सिखाया करते थे। मैंने उन्हें अपने इस दर्शन के बारे में कभी नहीं बताया। मेरे साधु बनने के बाद भी हमारा आपस में सम्पर्क बना रहा। वे अपनी पूरी सम्पत्ति मेरे नाम वसीयत कर देना चाहते थे किन्तु मेरी सलाह पर बाद में उन्होंने अपनी सम्पत्ति डी. ए. वी. कॉलेज, देहरादून के नाम कर दी। उनका मुझसे इतना प्रेम था कि उनकी तीव्र इच्छा थी कि उनके अन्त समय मैं उनकी सहायता के लिये उनके निकट होऊँ। और ऐसा ही हुआ भी।"

काष्ठ मौन में होने के बावजूद, अन्तर्यामी गुरुदेव उनकी मृत्यु के एक घण्टा पहले ही उनके पास पहुँचे। प्रोफेसर गुप्ता मृत्युशैया पर पड़े हुए उन्हें हर क्षण याद

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

कर रहे थे मानो गुरुदेव के दर्शनों के लिये ही उनकी सांसें अटकी हुई थीं। अन्त समय प्रभु ने उनके मुख में अभिमंत्रित करके जल डाला। प्रोफेसर गुप्ता ने बेहोशी की हालत में ही एक क्षण के लिये आँखें खोलीं, प्रभु का पुण्यदर्शन किया और फिर प्राण छोड़ दिये। कैसी पुण्यात्मा थे वे! वस्तुतः किसी के प्रति अकारण ही इतना तीव्र आकर्षण-प्रेम अपने आप में ही पूर्वजन्म के किसी घनिष्ठ सम्बन्ध का प्रमाण है।

उपरोक्त घटना से यह भी संकेत मिलता है कि पूर्वजन्मों में आपने शास्त्रों का अध्ययन पूरा कर लिया था।

हाँ तो पुनः प्रभु की वर्तमान लीला की ओर लौटें। स्वामीजी नियमित रूप से समाचार पत्र तथा सामान्य ज्ञान तथा अध्यात्म पर पत्र-पत्रिकाएं भी पढ़ते हैं। देश और विदेश के बारे में तथा भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में नवीनतम प्रगति की पूरी जानकारी रखते हैं। बाद में उचित समय और संदर्भ में वे इन जानकारियों का बहुत सुन्दर प्रयोग करते हैं। वे दूरदर्शन पर खेलकूद प्रतियोगितायें तथा समाचार भी देखना-सुनना पसन्द करते हैं। लेकिन यह सब प्रवृत्तियाँ अपना वास्तविक कार्य पूरा कर लेने के बाद की हैं। हरिद्वार के जंगल में पत्र-पत्रिकाएं तो दूर उनके पास रेडियो भी नहीं था। भारत-पाकिस्तान युद्ध का समाचार उन्हें युद्ध समाप्ति के पन्द्रह दिन बाद मिला था।

गुरुदेव बहुत प्रभावी लेखक भी हैं। उनके द्वारा लिखी गयी कुछ पुस्तकें, भक्तों को उनके द्वारा लिखे गये पत्र तथा प्रश्नों के उत्तर, ये सभी उनकी इस विशेष योग्यता का प्रमाण है। उनकी लेखनी भी उन्हीं की तरह बहुत सरल, सारगर्भित, प्रामाणिक और दिव्यता लिये हुए होती है। प्रायः वे प्रश्नोत्तर के समय बोल-चाल की भाषा के छोटे-छोटे, आसानी से समझ में आ जाने वाले वाक्यों का प्रयोग करते हैं।

उनके स्वयं के द्वारा सृजित सद्साहित्य मात्रा में बहुत अधिक नहीं है, लेकिन ठीक प्रकार से अनुशीलन करने पर परम आनन्द, अनन्त सौन्दर्य और परम सत्य को उपलब्ध कराने वाला है। अध्यात्म पर उन्होंने व्यवस्थित रूप से केवल एक ही पुस्तक लिखी है — The Practical Approach To Divinity यह पुस्तक उन्होंने सन् 1964 में कुछ भक्तों के अनुरोध पर लिखी थी। सौ पृष्ठों वाली यह छोटी सी पुस्तक अध्यात्म पर अपने आप में एक सम्पूर्ण ग्रन्थ है। चूँकि यह एक अनूठी और अद्वितीय

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पुस्तक है, अतः हम पाठकों के लिये इसकी संक्षिप्त समीक्षा का लोभ संवरण नहीं कर पा रहे हैं।

पुस्तक के आरम्भ में लेखक ने विचारशील साधकों के मन में उठने वाले अध्यात्म विषयक सभी प्रश्नों का तर्कसंगत उत्तर दिया है। सर्वप्रथम उन्होंने 'परमात्मा है' शीर्षक से प्रथम अध्याय में परमतत्व या परब्रह्म या परमात्मा या परमसत्य या परमानन्द या परमचेतना की सत्ता बहुत युक्तियुक्त तथा वैज्ञानिक ढंग से प्रतिपादित की है। उन्होंने यह दिखलाया है कि परमात्मा ही जीवात्मा का सच्चा तथा सबसे मौलिक और अन्तरतम् स्वरूप है अतः उसे जानना, उसमें समग्ररूप से प्रतिष्ठित होने के लिये प्रयास करना ही उसकी मूलभूत आवश्यकता तथा परमकर्तव्य है। उसे मिले बिना जीवात्मा की कोई गति नहीं। तत्पश्चात उन्होंने भगवद्प्राप्ति की इच्छा रखने वाले साधकों को आश्वस्त किया है कि परमात्मा की केवल प्राप्ति सम्भव ही नहीं बल्कि अनिवार्य भी है। इसके बाद प्रभु ने सभी ग्रन्थों और सच्चे संतों के उपदेशों के अनुसार एक सच्चे साधक की आठ मूलभूत योग्यतायें बताई हैं, वे हैं—

1. सत्यहृदयता 2. विवेक 3. वैराग्य 4. आत्म-निग्रह या आत्म-संयम 5. निष्काम कर्म अथवा निष्काम सेवा 6. तत्व-चिन्तन अर्थात् जगत् के मौलिक स्वभाव तथा परमात्मा का बुद्धि द्वारा चिन्तन 7. आत्म-समर्पण 8. अध्यवसाय अर्थात् कठोर, दीर्घ एवं सतत साधना।

इसके बाद अगले अध्याय में प्रभु ने आध्यात्मिक ध्यान एवं चिन्तन की प्रक्रिया को बहुत वैज्ञानिक ढंग से समझाकर सभी प्रकार के साधकों—भाव-प्रधान, ज्ञान-प्रधान, कर्म-प्रधान— के लिये, सभी धर्मों, पंथों के सारस्वरूप आध्यात्मिक साधन-अभ्यास की पाँच प्रक्रियाओं का वर्णन किया है। साधक स्वयं भी इनमें से किसी अभ्यास की विधि का चुनाव कर सकता है। इन प्रक्रियाओं में जाप तथा ध्यान करने की विधियाँ, किसी नाम या रूप के प्रतीक की सहायता से तथा बिना किसी प्रतीक की सहायता से अभ्यास करने की विधियाँ तथा मन को सजग होकर देखने की विधियाँ बहुत सरल तथा सुन्दर ढंग से समझाई गयी हैं।

जाप के समय स्वामीजी ने चेतना को अनाहत चक्र पर केन्द्रित करके जाप को करने के साथ-साथ उस जाप सुनने के लिये भी कहा है। इस प्रकार किया गया जाप यांत्रिक नहीं बन पाता और जाप के समय मन के अन्यत्र भटकने पर तुरन्त उस

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

भटकाव का पता चल जाता है तथा साधक मन को पुनः जाप में लगा लेता है। महाराजजी ने यह भी कहा है कि इस प्रकार जाप करने से साधक को आनन्द और विश्राम दोनों ही मिलते हैं। जाप की यह विधि अपने अनुभव के आधार पर महाराजजी की अपनी खोज है। इसी प्रकार महाराजजी साधना में एकाग्रता की दृष्टि से अनाहत चक्र पर जाप तथा आज्ञा चक्र पर किसी रूप के ध्यान को भी अलग-अलग समय करने की सलाह देते हैं। क्योंकि एक ही समय नाम और रूप पर मन केन्द्रित करने के प्रयास में मन खण्डित हो जाता है। इसी अध्याय में साधना-अभ्यास के समय आने वाली बाधाओं जैसे—मन का भटकना, निद्रा, सूक्ष्म जगत के आकर्षण तथा साधना में अतिवादिता की प्रवृत्ति आदि तथा उनसे बचने के उपायों की ओर संकेत किया गया है। फिर ध्यान-अभ्यास में सहायक बातों—युक्ताहार, प्राणायाम तथा सचेतन श्वास-प्रश्वास प्रक्रिया, उपयुक्त समय, स्थान, अभ्यास में नियमितता, आध्यात्मिक पथप्रदर्शक की आवश्यकता, स्वाध्याय, सत्संग, संतुलित जीवनशैली आदि की ओर संकेत किया गया है। इसके बाद साधकों को सामान्यतः होने वाले कुछ आन्तरिक अनुभवों के बारे में भी बतलाया गया है।

पुस्तक के अन्त में भगवान की प्रार्थना करने का रहस्य बताया गया है तथा एक अति सुन्दर प्रार्थना भी दी गयी है। यह प्रार्थना आश्रम के ध्यान-उपासना के सत्रों में ध्यान से पहले सभी भक्तों, साधकों द्वारा पढ़ी जाती है। वह प्रार्थना हम यहाँ भी उद्धृत कर रहे हैं—

हे परमदेव प्रभु! आप परमशुद्ध, अनन्त शक्तिस्वरूप, अनन्त ज्ञानस्वरूप, अनन्त आनन्दस्वरूप, अनन्त प्रेम एवम् ज्योतिस्वरूप हैं। हे परम कृपालु, देवाधिदेव! आपको नमस्कार हो, बार-बार नमस्कार हो।

हे विश्वमय एवम् विश्वातीत, एकमेव अद्वितीय परमेश्वर! मैं आपकी शरण हूँ। मुझे अपना लो, मुझे अपना बना लो, मुझे संभार लो। प्रभु! मैं आपका हूँ, आपका ही हूँ, जैसा कैसा हूँ, आपकी शरण हूँ।

हे सर्वेश्वर! मेरा शरीर स्वस्थ हो, मेरी इन्द्रियाँ निर्मल हों, मेरी भावनायें पवित्र हों, मेरी बुद्धि सुस्थिर हो।

हे प्रभु! मेरा समुच्य जीवन, पवित्र व विकसित बनकर आपके भजन-

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

स्मरण में, आपके चिन्तन में व आपकी सेवा में व्यतीत हो। परम कृपालु ! मुझे ऐसा बल दो कि मैं आपको देख सकूँ, सत्य को देख सकूँ।

हे पूर्ण ! मेरी अपूर्णताओं को पूर्णता में बदल दो, मुझे अपने में मिलाकर पूर्ण कर लो।

सभी सद्गामी हों, सभी सुखी हों, सभी प्रेम से रहें, सभी का कल्याण हो।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

अन्त में साधकों को भगवान की प्राप्ति के निमित्त 'अभी और यहीं से' प्रयास करने के लिये प्रेरित किया गया है। पुस्तक की क्रान्तिकारी अन्तिम पंक्तियाँ हैं— "काल की विडम्बना (vanity) से छुटकारा पाने के लिये समस्त प्रकृति उग्र रूप से प्रयत्नशील है; और क्या आप सोये ही रहेगें ? जागिये और परमात्मा को समस्त विश्व में तथा अपनी अन्तर्रात्मा में उपलब्ध करने के लिये उत्तरोत्तर बढ़ते चलिये और तब तक मत रुकिये जब तक परमार्थ परमात्मा की प्राप्ति न हो जाये।"

इस ग्रंथ से पूरा लाभान्वित होने के लिये तो पाठकों को इसे स्वयं ही पढ़ना होगा। इस पुस्तक के बारे में भारतीय दर्शन के प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान आर्थर आस्बोर्न, जो वर्षों तक महर्षि रमण के पावन सान्निध्य में भी रहे, ने अपनी पत्रिका 'द माउंटेन पाथ' के अप्रैल, 1968 के अंक में निम्न विचार लिखे—

"आजकल बड़े-बड़े दावों के असमंजस के बीच यह छोटी सी पुस्तक एक सुखदायक सुस्पष्टता के साथ अलग ही दीख पड़ती है। लेखक सैद्धान्तिक और क्रियात्मक— दोनों पहलुओं पर समान अधिकार से बोलते हैं। वे गहरी समझ-बूझ एवं व्यावहारिक ज्ञान-दोनों को ही सामने रखकर, उनकी भी भर्त्सना करते हैं जिन्होंने इस पथ को मात्र वाद-विवाद का एक विषय बना डाला है, तथा उनकी भी जो विवेकहीनता से ग्रस्त होकर अतिवादिता में प्रवृत्त हो जाते हैं। स्पष्टतः लेखक गहन अनुभूति सम्पन्न हैं और वे 'प्राप्य' तथा 'त्याज्य' वस्तु में अन्तर कर पाते हैं।"

इस सद्ग्रन्थ के बारे में हमें अक्सर पत्र आते रहते हैं कि कैसे उसे पढ़ने से किसी के जीवन में आलोक उतरा या जीवन के प्रति सच्ची दिशा मिली। प्रभु इच्छा से यह प्रसंग लिखते समय भी इसी प्रकार का एक पत्र हमें किसी अपरिचित ब्लैंक

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

एल्बीट (Ms. Blanche Elbeet) नाम की फ्राँसीसी महिला का मिला जिसका हिन्दी रूपान्तरण हम यहाँ दे रहे हैं :

".....कुछ ही समय पूर्व मुझे स्वामीजी की पुस्तकें मिलीं। उन्हें पढ़कर जो कुछ मुझे हुआ और अभी भी हो रहा है, उसका शब्दों में वर्णन करना कठिन है। मैं अपने अन्दर एक गहरी सद्प्रेरणा का अनुभव कर रही हूँ और मेरे अन्तर में बहुत बदलाव आया है। मेरा जीवन ही बदल गया है ....., इसलिये मुझमें स्वामीजी के साथ कुछ समय व्यतीत करने की तीव्र इच्छा हुई है।"

उक्त महिला ने एक पत्र गुरुदेव को भी लिखा। उनसे पहले कभी भी मिले बिना वह उनके प्रेम में विभोर होकर लिखती हैं—

बहुत-बहुत प्रिय स्वामीजी,

आपके प्रति मेरी कृतज्ञता को शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। आपकी पुस्तकें मेरे लिये गहन प्रेरणा हैं..... वे मेरे लिये मात्र पुस्तकों से अधिक हैं।

इन पुस्तकों ने आकर मेरे जीवन को झकझोर दिया है। अब आनन्द से भरी पूरी मैं अपने जीवन में आये सुपरिवर्तन को देख रही हूँ। लेकिन मुझमें एक उदासी भी आ गयी है कि अभी भी मुझे स्वयं से अधिक रूपान्तरण अपेक्षित है। खैर, अन्ततः मुझे यह तो पता चल गया कि मैं अपने पथ पर हूँ तथा किसलिये जी रही हूँ। और मैं स्वयं में गहरा आत्मविश्वास अनुभव करती हूँ।

प्रेम, आनन्द और कृतज्ञता से परिपूर्ण हृदय के साथ,

आपकी

दिनाँक : 19.01.99. ब्लैंक एल्बीट

इस पुस्तक का हिन्दी, गुजराती, जर्मन, फ्राँसीसी, हिब्रू तथा अरबी भाषाओं में भी अनुवाद हो चुका है। पोलिश तथा ग्रीक भाषा में इसका अनुवाद भक्त लोग पोलैण्ड और ग्रीस देशों में छपवा रहे हैं। इसी पुस्तक का बहुत सुन्दर हिन्दी अनुवाद सहारनपुर के अवकाश प्राप्त प्रधानाध्यापक श्रीचन्द्रबोधजी खत्री ने किया था। सुना है, पुस्तक के अनुवाद के बाद वे अपना घर छोड़कर सदा के लिये किसी अज्ञात स्थान को चले गये थे। कौन जाने पुस्तक को पढ़कर हृदय में वैराग्य धारण कर वे परमपिता की खोज में निकल पड़े हों ! यहाँ पर कोई सज्जन प्रश्न कर सकते हैं कि हर किसी

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

के हृदय में तो इस पुस्तक को पढ़ने पर वैसी भावना उदय नहीं होती। तो इस पर निवेदन है कि संतों एवं उनके शब्दों से जुड़ने के लिये हमारे में भी एक न्यूनतम योग्यता तो होनी ही चाहिये। अगर संसार और आत्मा-परमात्मा सम्बन्धी हमारे चित्त में कोई भी प्रश्न नहीं है, अगर हम वर्तमान जीवन के पदार्थ-परिस्थितियों तथा सम्बन्धों में ही स्वयं को पूरी तरह सन्तुष्ट मान रहे हैं, अगर हमारे हृदय में सद्ग्रन्थों तथा संतों के प्रति जरा भी श्रद्धा नहीं है तो सम्भवतः इस प्रकार के ग्रन्थों अथवा संतों से हमारा संवाद होना कठिन है। उक्त पुस्तक के अतिरिक्त प्रभु ने 'सहज उपदेश माला' के नाम से दो छोटी-छोटी पुस्तिकायें लिखी हैं। प्रत्येक पुस्तिका में माला के मनकों की भाँति एक सौ आठ उपदेश हैं। इसके अतिरिक्त इसी प्रकार की एक अन्य पुस्तिका 'प्रेरणा शतक' के नाम से भी लिखी है। इन छोटी-छोटी पुस्तिकाओं को पढ़कर एक विद्वान कश्मीरी पंडित ने महाराजजी से कहा कि इन पुस्तिकाओं के उपदेश उपनिषदों के सूत्रों की तरह ही गूढ़ार्थ, गहरे भाव और परमसत्य को अभिव्यक्त करने वाले हैं। इसके अलावा उनमें साधक के वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, नैतिक, मानसिक, आध्यात्मिक—सभी प्रकार के विकास के लिये भी अमूल्य दिशा निर्देश हैं। इन पुस्तिकाओं का भी विश्व की अनेक प्रमुख भाषाओं में अनुवाद हुआ है। महाराजजी द्वारा लिखी अन्तिम पुस्तिका—'आनन्द दर्पण' में उन्होंने पूज्य बाबा भूमनशाहजी का संक्षिप्त जीवनचरित लिखा है तथा उनकी शिक्षा के सार स्वरूप पच्चीस सारगर्भित उपदेश लिखे हैं।

जैसा कि पहले लिखा गया है सन् 1996 में गुरुदेव के भक्तों ने अंग्रेजी में Song of Silence-I नाम की पुस्तक मुद्रित करायी थी जिसमें उनकी संक्षिप्त जीवनी और उनके प्रश्नोत्तर तथा कुछ उपदेशों का संकलन था।

हमने महाराजजी से प्रार्थना की है कि वे अपनी दीर्घ साधना तथा एकान्तवास की अवधि के बारे में कुछ लिखें जिससे कि भक्तों/साधकों को भी उसका लाभ मिल सके। प्रभु ने कृपा करके अनुरोध स्वीकार तो कर लिया है किन्तु साथ ही 'परन्तु' भी लगा दिया है कि जब भी बाबाजी/भगवान का आदेश होगा वे इस बारे में जरूर लिखेंगे।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

सन्देश-उपदेश

यूँ तो महाराजजी का जीवन ही उनका संदेश है; उनकी एक-एक भावभंगिमा तथा एक-एक शब्द उनका संदेश है। तो भी हम उनके सद्साहित्य तथा सद्वचनों में से उनके कुछ उपदेश यहाँ दे रहे हैं। ये उपदेश उनके संदेश का सारस्वरुप जैसे हैं। वे हम सब पर अपनी अहेतुकी कृपा करें कि हम उनके संदेश को यत्नपूर्वक हृदयंगम कर सकें और सत्यनिष्ठा, धैर्य, साहस, सजगता, प्रेम, श्रद्धा और उत्साहपूर्वक, सेवा, सदाचार तथा भजन-स्मरण द्वारा अपने एवं सभी के जीवन को दिव्य और मधुमय बना सकें।

1 – मनुष्य जीवन का सच्चा उद्देश्य है—अनन्त, कालातीत, सच्चिदानन्द, शाश्वत, भागवती चेतना, परमात्मा का साक्षात् बोध तथा उससे मिलन। इस भागवती निर्पेक्ष चेतना को विभिन्न धर्मों के लोग परमात्मा तथा भिन्न-भिन्न नामों से सम्बोधित करते हैं।

2 – सच्चिदानन्द परमात्मा का अनुभव शुद्ध, शान्त, स्थिर, राग-द्वेष-रहित एवं सजग मन में, जो महत्वाकांक्षा से मुक्त तथा प्रेम और करुणा से सदा परिपूर्ण हो, प्रकट होता है।

3 – सदा सचेत और सजग रहें। सबके प्रति प्रेमपूर्ण रहते हुये प्रेममय रहें। प्रसन्न रहें। सरल, सहज और विनम्र बनें। स्वयं तथा दूसरों के आध्यात्मिक विकास के लिये अपने पास उपलब्ध सभी शक्तियों का उचित सदुपयोग करें। नियमित रूप से प्रभु प्रार्थना करें। नियमित ध्यान में बैठें। ऐसे पवित्र शास्त्रों-पुस्तकों का स्वाध्याय करें जिनसे आपकी श्रद्धा पुष्ट होती हो। सचेतन श्वास-प्रश्वास का अभ्यास करें। नियमित रुप से भगवद्प्रेमी साधु-संतों का सत्संग करें एवं उनके उपदेशों को बालवत् सरलता से श्रवण करें। भगवद्नाते दीन-दुःखियों की सेवा करें।

4 – जब साधक की ओर से प्राण पण से साधना और प्रभु की ओर से उनकी निर्बाध कृपा का मिलन होता है तो ही ब्रह्म-साक्षात्कार रुपी चमत्कार घटित होता है।

5 – याद रखें, परमात्मा ने प्रत्येक मनुष्य के शरीर में एक शक्तिशाली कम्प्यूटर लगा रखा है जिसकी स्मृति अनन्त है। वह आपके प्रत्येक कर्म, संकल्प, विचार और भावना को हर समय रिकार्ड करता रहता है। आप कुछ भी प्रयास कर

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

लें, आपका प्रत्येक गुप्त से गुप्त कर्म अथवा भावना उसमें रिकार्ड होती रहती है और उसके अनुसार ही आपके जीवन के शान्त और अशान्त रहने का आधार विधाता बनाता है।

6 – विनम्रता, मीठी वाणी, ईमानदारी, सहनशीलता, सबके प्रति सद्भावना और स्वस्वीकृत स्वानुशासन ही मनुष्य जीवन को गौरवशाली बनाते हैं। आप यह गौरव पा सकें तो आपकी जीवन वाटिका भी हरी-भरी एवं सुवासित हो जायेगी।

7 – दीन-दुःखियों की सेवा नम्रतापूर्वक व गुप्तरूप से तथा भगवान के नाते करो तो वह प्रभु-भक्ति के तुल्य ही है। इस प्रकार यह सेवा आपको भगवद्स्मरण में भी सहायक होगी तथा इसके द्वारा आप प्रभु के यन्त्ररूप होकर दीन-दुखियों के कष्ट भी दूर कर सकेंगे।

8 – सारा नामरूप जगत् जिस (परमात्मा) की ज्योति को, जिसके आनन्द को अभिव्यक्त नहीं कर पा रहा, उसे किसी विशेष प्राणी-पदार्थ में ही सीमित मान बैठना तो बड़ी संकुचित दृष्टि है।

9 – आपके प्रति कहे गये कटुवचनों से यदि आप दुःखी हो जाते हैं, तो आपके सुख का आधार ही क्या हुआ ? तब तो एक साधारण से साधारण व्यक्ति भी आपको दुःखी कर सकता है।

10 – मनुष्य न पूर्णरूप से स्वतंत्र है और न (पूर्णरूप से) परतंत्र ही। अतएव जो लोग मनुष्य जीवन की उपपत्ति केवल पुरुषार्थ के अथवा केवल प्रारब्ध के आधार पर लगाना चाहते हैं, वे असफल ही रहते हैं। सच्ची बात तो यह है कि मनुष्य जीवन रूपी गाड़ी पुरुषार्थ और प्रारब्ध दोनों ही पहियों पर चलती है।

11 – वह प्रपंच जो एक दिन आपके चाहते अथवा न चाहते छूट ही जाना है, उसके लिये तो इतना मोह और परिश्रम ! परन्तु जो जन्म-जन्म का नित्य साथी है, उस परमात्मा के प्रति इतना प्रमाद और उपेक्षा ! कृपा करके अपने विवेक की इतनी दुर्दशा न कीजिये।

12 – जब कोई ऐसी विपत्ति आपके सिर पर आ पड़े जो किसी तरह भी न टले, तो विषाद और निराशा के सागर में मत डूब जाइये। उसे अपने हित के लिये भगवान की ओर से भेजा हुआ समझ-मानकर उससे शिक्षा ग्रहण करने का प्रयास कीजिये।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

13 – क्या आपने अपने आपको कर्मों तथा सम्बन्धों में तो नहीं खो दिया ? अपने जीवन से कर्मों एवं सम्बन्धों को निकालकर क्या आपने अपने शुद्ध अस्तित्व को कभी महसूस किया है ? कर्मों एवं सम्बन्धों से अलग होकर अपने आपसे पूछो— "मैं कौन हूँ ?" कर्म और सम्बन्ध जब नहीं रहते तब भी तो अपना आप जो शेष रहता है उसे पहचानो। वही अमृत का अक्षय स्रोत है। वही है अनन्त जीवन की अखण्ड निधि।

14 – आप चित्त की स्थिरता चाहते हैं न ? स्थिरता होती है सजगता के (alertness) अनुपात में। मन चंचल होता है तब, जब आप उसके साक्षी नहीं रहते। साक्षी भाव के उदय होते ही मन की गति धीमी होने लगती है। प्रातःकाल एवं सायंकाल कम से कम आधा घण्टा सुखासन में बैठकर द्रष्टा होकर मन को देखिये, बस इतना ही। थोड़े दिनों में ही आप पायेंगे कि मन में अपूर्व स्थिरता एवं शान्ति उतरने लगी है। अभ्यास-प्रयोग तो आपको ही करना होगा।

15 – किसी कर्म को अपने आपमें न छोटा समझो, न बड़ा। परमात्मा के साथ जुड़ने से वह बड़ा हो जाता है और अहंकार के साथ जुड़ने से वही छोटा बन जाता है।

16 – सम्यक् विवेक और बोध के अभाव में 'त्याग' साधक के लिये वही काम करता है जो 'भोग' विषयी पुरुष के लिये ।

17 – परमात्मा मनुष्य से यह नहीं पूछेगा कि तुम हिन्दू क्यों न बने ? मुसलमान क्यों न बने ? जैन, बौद्ध अथवा ईसाई क्यों न बने ? परमात्मा कम से कम मनुष्य से यह जरूर पूछेगा कि तुम मानव क्यों न बने ?

18 – आत्मानुभूति का द्वार विचार नहीं वरन् समाधि चेतना है। चित्त जब राग-द्वेष से पूरी तरह मुक्त, प्रतिक्रिया शून्य तथा शान्त होता है तो समाधि-चेतना का आविर्भाव होता है।

19 – अध्यात्म विकास के पथ पर मानवता और नैतिकता अनिवार्य तो है पर पर्याप्त नहीं है। अहं के सूक्ष्मतम् पर्दे को फाड़ दीजिये और अनुभव कीजिये कि परमात्मा ही परमात्मा है और उसके अतिरिक्त कुछ है ही नहीं।

20 – मृत्यु, बन्धन, अपूर्णता को भूलना नहीं है वरन् इनको पार करना है,

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

इनके बाहर जाना है। किन्हीं भी कृत्रिम उपायों से इन्हें भूलने की चेष्टा करना अथवा इनसे आँखें मूँदना तो इनसे मुक्त होने के अवसर को ही खो बैठना है।

21 – परमात्मा के अस्तित्व से ही समस्त प्राणी-पदार्थों का अस्तित्व है। परमात्मा का यदि हमसे वियोग हो जाये तो हमारा अस्तित्व ही खो जाये। परमात्मा की प्राप्ति का अर्थ होता है उसके प्रति सजग (aware) होना, उसका स्पष्ट और सीधा बोध।

22 – आर्थिक और राजनैतिक परतंत्रता आत्मवान मनुष्य के लिये निश्चय ही शर्म की बात है। परन्तु मन और इन्द्रियों की पराधीनता से मुक्त हुए बिना सच्ची स्वतंत्रता के फूल मनुष्य के जीवन में खिल ही नहीं सकते।

23 – धार्मिक व्यक्ति वह नहीं जो साम्प्रदायिक क्रियाकाण्ड में ही रत है। धार्मिक व्यक्ति वह भी नहीं जो सत्य के सम्बन्ध में अनेकानेक सिद्धान्तों को समझने एवं उनका लेखनी अथवा वाणी द्वारा विवेचन करने में सक्षम है और धार्मिक व्यक्ति वह भी नहीं है जो समाज-कल्याण या परोपकार के नाम पर अपने अहं की तृप्ति में संलग्न है। धार्मिक व्यक्ति तो वह है जिसके अन्दर शाश्वत सत्य के उद्घाटन की प्रगाढ़ प्यास का आविर्भाव हुआ है।

24 – आपके अन्दर होश (बोध) होगा तो प्रतीयमान जड़ वस्तुओं में भी आपको चेतना का अनुभव होगा। आपके अन्दर मूर्छा होगी तो चेतन प्राणियों के साथ भी आपका बर्ताव ऐसा हो जायेगा मानो वे जड़ पदार्थ हों।

25 – तुम्हारे हृदय में, तुम्हारे कण-कण में आनन्दकन्द परमात्मा बसा है और फिर भी तुम उदास, दुःखी, चिन्तित हो यह कितने आश्चर्य की बात है! तुम अपने अन्दर झांककर तो देखो। जिसको तुम बाहर ढूंढ रहे हो, वह तुम्हारे अन्दर बैठा तुम्हें पुकार रहा है। क्या तुम उसकी ओर ध्यान नहीं दोगे ?

उपसंहार

प्रियात्मा पाठकों, अब तक भगवद्कृपा से हम सब अपने प्रिय प्रभु की परम कल्याणमयी, परम मधुर और भक्त हृदयों को कुसुमित करने वाली लीलारूपी शीतल ज्योत्सना में जी भरकर स्नान कर रहे थे। उनकी मंगलगाथा रूपी भागीरथी के भिन्न-भिन्न तटों पर डुबकियां लगाकर हमारा तन-मन पवित्र हुआ है। उनकी भगवत्ता के

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

सात्विक ऐश्वर्य का चिन्तन-स्मरण कर हमारे उर में पुनः-पुनः आनन्द उर्मियां उठी हैं। उनके ज्ञान-प्रेम की सुवास हमारे नासापुटों में अभी भी भरी हुई है। प्रिय बन्धुओं ! कुछ कथाओं का उपसंहार नहीं होता, वे नित्य होती हैं। यह भी एक ऐसी ही कथा है, शाश्वत कथा है। शाश्वत इसलिये क्योंकि यह शाश्वत के विलास का ही गीत है; क्योंकि यह शाश्वत की प्रेरणा से हममें प्रसुप्त शाश्वत को स्फुरित करके शाश्वत की ही ओर ले जाने वाली है; क्योंकि इस चिन्मयलीला में स्पष्टतः शाश्वत ही विभिन्न प्रकार से नृत्य कर रहा है; क्योंकि भिन्न-भिन्न नाम-रूपों से यह साधकों-भक्तों का पहले भी पथ-प्रदर्शन करती आयी है, उनमें भक्ति, शक्ति और भगवद्कृपा का संचार करती आयी है और आगे भी करती रहेगी। हमारा परम सौभाग्य कि हमने अपनी सीमित समझ से उनकी निस्सीम लीला का यत्किंचित अवगाहन किया।

श्रीहरि की तरह उनके संतों की लीला भी अगम्य है — 'हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता।' श्रीहरि की कथा संत की कथा है और संत की कथा श्रीहरि की कथा है। आकार में निराकार छुपा हुआ है। शास्त्र कहते हैं — संत भगवान के नित्य अवतार हैं। संत के जीवन में ही श्रीहरि का आविर्भाव होता है। उनके जीवन के माध्यम से ही भगवद्महिमा किल्लोल कर नृत्य करती महिमान्वित होती है, दिव्यरस वितरण करती है। संतों को आश्रय बनाकर ही प्रभु इस जगत में धर्म, सदाचार व आध्यात्मिकता की स्थापना करते हैं। उनका हृदय भगवान का बैठकखाना है और उनका जीवन भगवद्लीला की नृत्यशाला।

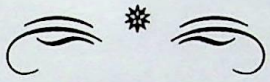
बन्धुओं ! यह कथा तो नित्य अपूर्ण है क्योंकि परमसंत श्रीचन्द्रस्वामीजी जैसे दिव्य, आप्तकाम और समग्र व्यक्तित्व वाले योगी की जीवनगाथा को भला एक साधारण व्यक्ति शब्दों जैसे तुच्छ माध्यम द्वारा कैसे अभिव्यक्त कर सकता है। उसका सार और तात्पर्य तो मन बुद्धि और अहंकार से भी बहुत परे का विषय है। ऐसे संतों की महिमा तो वेद-पुराण भी नित्य गाते नहीं अघाते। अतः इस लीलागान की अपूर्णता ही इसकी महिमा है।

आनन्दस्वरूप भक्तजन, आओ, अब हम भक्त-हृदयों में शान्ति और आनन्द का संचार करने वाली अपने प्रभु की कलिमलहारिणी, दिव्यरसप्रदायिनी जीवनगाथा के शाब्दिक उपसंहार की ओर चलें। आओ, हम सब मल-विकारों से भरे अपने हृदय

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

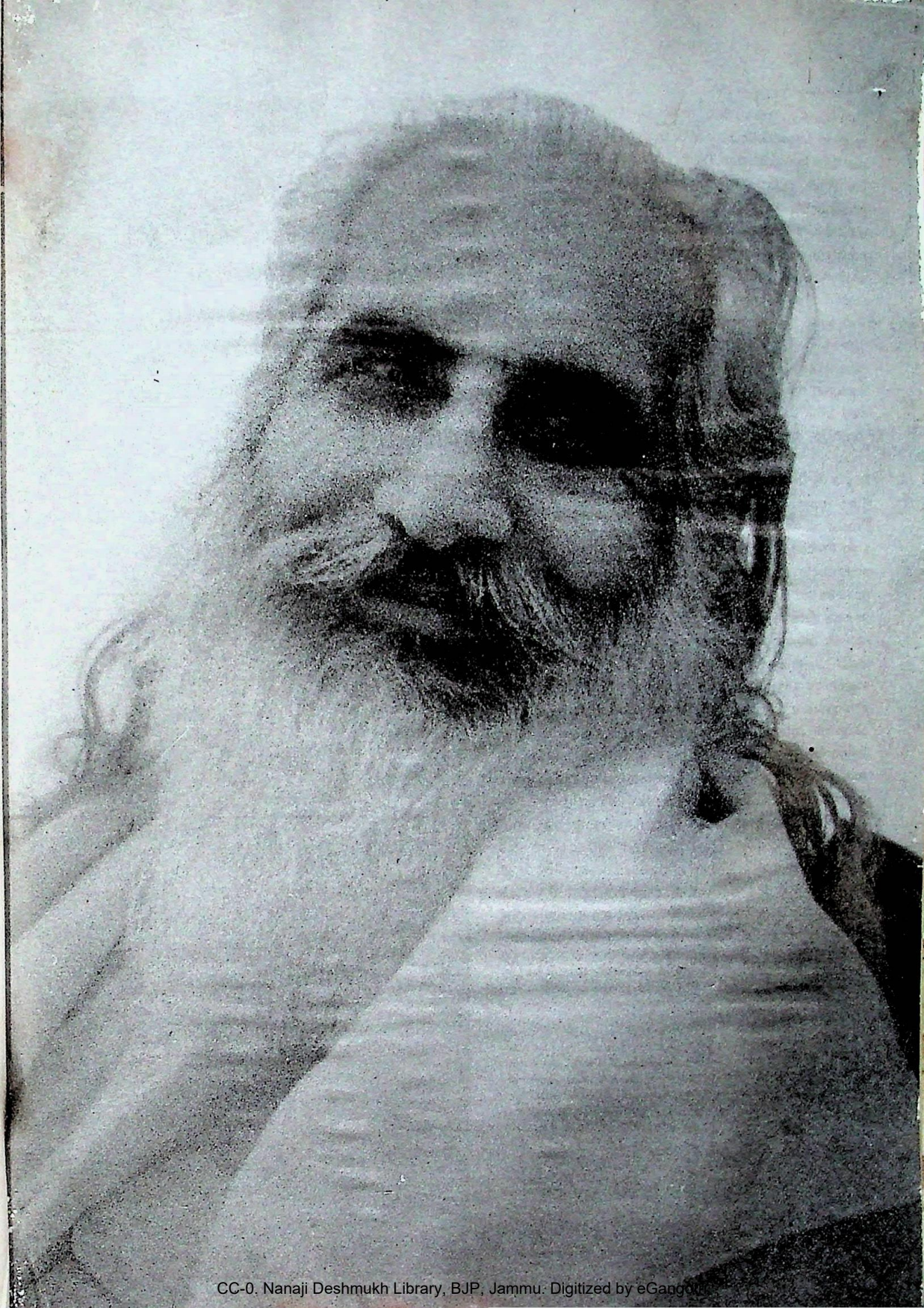
के अस्त-व्यस्त आंगन को झाड़-बुहार कर स्वच्छ करें; इसमें सत्यहृदयता और प्रभु-प्रेम का सुन्दर सिंहासन सजायें। फिर सावधानी व आदरपूर्वक उस पर अपने गुरुदेव की मंगलछवि, मंगललीला और मंगलवचनों को आसीन करके अन्तस्थ आत्मदेव प्रभु का मधुर आह्वान करें; उन्हें जगायें और उन्हीं में विलीन हो जायें।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः



CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



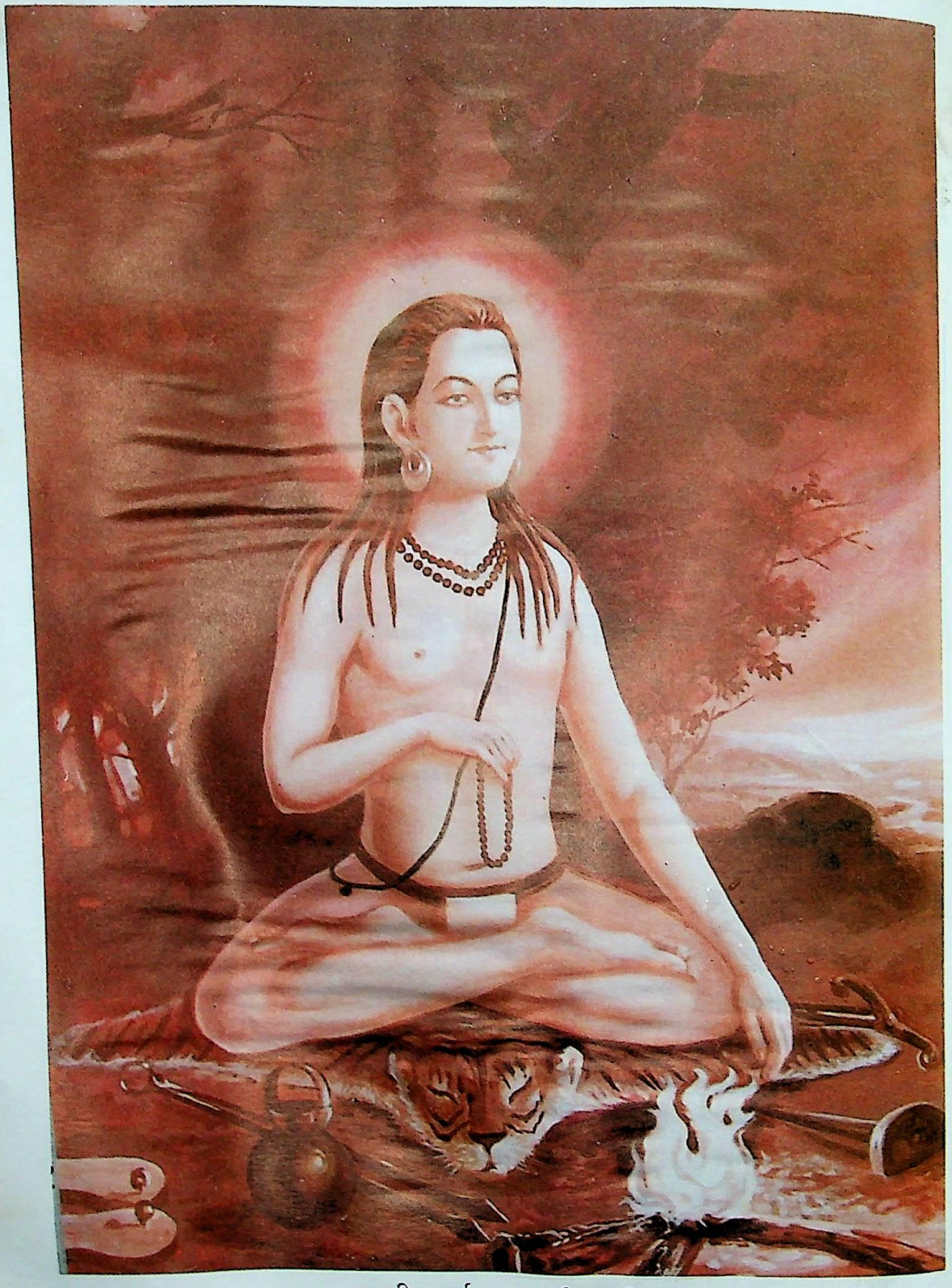
CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

उदासीनाचार्य भगवान श्रीचन्द्रजी का
जीवन परिचय
एवं
उनकी कुछ रचनाएं

दूसरा भाग

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



उदासीनाचार्य भगवान श्रीचन्द्रजी ।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

ॐ

पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त के मध्यकालीन युग में देश, विदेशी आक्रमणकारियों की यातनाओं से कराह रहा था। धर्म के नाम पर गलत लोग जनता का शोषण कर रहे थे तथा हिन्दू धर्म के विभिन्न पंथ अपनी सतही विविधता के कारण आपस में वैमनस्य रखे हुए थे। वेद-पुराणों की शिक्षाओं का सार धुंधला सा पड़ गया था। सैंकड़ों वर्षों की गुलामी के फलस्वरूप समाज से तेजस्विता लुप्त सी हो रही थी तथा जड़ता और तामसिकता सत्व गुण का भेष बदलकर जहाँ-तहाँ व्याप्त थी। ऐसे में भारत के सामाजिक-धार्मिक-आध्यात्मिक क्षितिज पर एक बहुआयामी तेजस्वी, तपस्वी, समन्वयकारी, वेदोद्धारक, विद्वान संत कवि, निर्भीक तथा प्रखर राष्ट्रवादी, दिव्य आत्मा भगवान श्रीचन्द्रजी का आविर्भाव हुआ। उनके असाधारण रूप से कर्मठ तथा तपस्वी जीवन पर दृष्टि डालने से ही स्पष्ट हो जाता है कि वे अवतारी पुरुष थे तथा जगत् के कल्याण के लिये ही उनका अवतरण हुआ था।

उनके असाधारण व्यक्तित्व पर, कुछेक को छोड़कर, विद्वानों द्वारा पर्याप्त सद्साहित्य नहीं लिखा गया है। अतः उनके दिव्य जीवन और महान् कार्यों का सम्यक् मूल्यांकन होना अभी शेष है। हालाँकि आचार्यजी पर पूरा अध्याय यहाँ मुख्य विषय से कुछ हटकर है तो भी जनहित की दृष्टि से तथा अपने श्रद्धा सुमन के रूप में उदासीन पंथ के इस महान् उद्धारक और भारत की राष्ट्रीय अस्मिता को सुरक्षित रखने वाले, उसे निखारने वाले महानायक के जीवन की कुछ ऐतिहासिक व अन्य घटनाओं को देना हम आवश्यक समझते हैं। फिर हमारे गुरुदेव का भी इनके साथ गहन सम्बन्ध रहा है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

भगवान श्रीचन्द्रजी की जीवनलीला बड़ी सुविस्तृत है तथा उनका पूरा जीवन असाधारण तथा चमत्कारी घटनाओं से भरा पड़ा है। इनमें से अनेक घटनाएं लोक-कथाओं का भाग बन चुकी हैं। हमारे गुरुदेव महापुरुषों के जीवन की असाधारण घटनाओं, चमत्कारों आदि पर साधकों को अधिक ध्यान देने के लिये प्रोत्साहित नहीं करते, वे तो उनके सदाचार व ज्ञान-वैराग्य-भक्तिमय जीवन को ही ज्यादा महत्त्वपूर्ण मानते हैं। तो भी भगवान श्रीचन्द्रजी पर उपलब्ध सामग्री के अनुसार उनके जीवन की सर्वमान्य घटनाओं का उल्लेख करना हमें उचित प्रतीत होता है। हमारे गुरुदेव की आज्ञा के अनुसार इस भाग के दूसरे अध्याय में हम आचार्यजी द्वारा रचित काव्य के माध्यम से उनका दर्शन तथा उनके उपदेशों का सार भी समझने की चेष्टा करेंगे।

प्रस्तुत सामग्री का हमने निम्न पुस्तकों से संकलन किया है—आचार्यजी के पाँच सौवें जन्मदिवस पर श्रीगंगेश्वरधाम, दिल्ली द्वारा प्रकाशित 'श्री चन्द्र चन्द्रिका,' डॉ० विष्णुदत्त राकेश कृत 'आचार्य श्रीचन्द्र—साधना, सिद्धान्त और साहित्य,' श्रीजीवनप्रकाश जीवन कृत 'अविनाशी चन्द्र,' डॉ० कृष्णलाल शर्मा सूदन कृत 'आचार्य श्रीचन्द्र—व्यक्तित्व एवं कृतित्व,' श्रीधन्नासिंह रंगीला कृत 'जनम साखी बाबा श्रीचन्दजी महाराज,' ज्ञानी ईशरसिंहजी नारा कृत 'इतिहास बाबा श्रीचन्द साहिब व उदासीन सम्प्रदाय,' शिरोमणी गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी द्वारा प्रकाशित 'इतिहास गुरुद्वारा बारठ साहिब,' पूज्य महन्त अनन्तानन्दजी उदासीन द्वारा संकलित व प्रकाशित आचार्यजी का वृहद् काव्य, 'श्रीचन्द्र सिद्धान्त सागर' तथा इन्हीं द्वारा प्रकाशित 'नवनिधि'। वेददर्शनाचार्य महामण्डलेश्वर पूज्य स्वामी गंगेश्वरानन्दजी कृत प्रसिद्ध ग्रन्थ 'श्रौत मुनि चरितामृत' अप्राप्य होने के कारण हम नहीं पढ़ सके। पर ऐसा बताया गया है कि हमारे उपरोक्त सन्दर्भ ग्रन्थों में इस ग्रन्थ से काफी सामग्री ली हुई है।

हमने पहले भी लिखा है कि भगवान श्रीचन्द्र पुरातन उदासीन परम्परा के एक सौ पैंसठवें महान् आचार्य थे। श्रीचन्द्रजी को विभिन्न उपाधियों जैसे—उदासीनाचार्य, जगद्गुरु, भगवान आदि से सम्बोधित किया जाता है। भक्तगण उन्हें बाबाजी कहकर भी सम्बोधित करते हैं।

श्रीचन्द्रजी भगवद्तुल्य श्रीगुरुनानकदेवजी तथा माता सुलक्षणादेवीजी के ज्येष्ठ पुत्र थे। इनका जन्म लाहौर की ख़ड़गपुर तहसील के तलवंडी ग्राम में भाद्रपद

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

शुक्ला नवमीं विक्रमी संवत 1551 (1494 ईस्वी) को हुआ था। किन्तु कुछ सिख्र इतिहासकारों के अनुसार बालक श्रीचन्द्र का जन्म जिला कपूरथला स्थित सुल्तानपुर लोधी में हुआ था। उदासीन पंथ में गुरुनानकदेवजी को विष्णु का और बाबा श्रीचन्द्रजी को शिव का अवतार माना जाता है।

जन विश्वास के अनुसार श्रीचन्द्रजी के जन्म के समय अलौकिक घटना-क्रम उपस्थित हुए। बीबी लक्ष्मीकृत श्रीचन्द्र महाराज की जन्म साखी में कहा है—

मस्तक चन्द सुभे सिर गंग, सुन्दर मुकुट जटा को सुहाये।
श्रीमन महेस श्री गिरिजेस, कैलास निवेस विभूत रमाये।
पारवती नाथ त्रिसूल सो हाथ, अनाथ के नाथ सदा सुखदाये।
बिस्व के नाथ भिभूत रमात, श्रीचन्द्र सरूप धर्‌यो कल आये।

कहा जाता है कि जन्म से ही इनके सिर पर जटा, भाल पर त्रिपुण्ड, शरीर पर भस्म और दक्षिण कान में अद्वैत सूचक कुण्डल था।

पंडित हरदयालुजी शर्मा ने बालक की जन्म कुण्डली बनायी एवं जन्म कालीन ग्रहों की उच्च दशा देखकर, चकित होकर भविष्यवाणी की कि यह बालक अखण्ड ब्रह्मचर्य धारण करके अपने त्याग और तपस्या के बल पर वैदिक धर्म का पुनरुत्थान करेगा तथा राष्ट्र की विधर्मियों से रक्षा करेगा।

श्रीधन्नासिंहजी रंगीला ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि जब श्रीगुरुनानकदेवजी अपने कार्य से निवृत्त होकर सुल्तानपुर में सत्संग में जुट जाते थे तो उसमें बालक श्रीचन्द्रजी भी भाग लेते। गुरुजी को देखकर दो-ढाई वर्षीय बालक श्रीचन्द्र भी अपने साथी मित्रों को लेकर सत् करतार का भजन करने लग जाते। कई बार वे अपने पिताजी के दुकानदारी के समय ईमानदार व्यवहार को बड़े ध्यान से देखा करते थे। वहीं गुरुजी ने इनको अक्षरबोध तथा गिनती सिखा दी। 13 (तेरह) की जगह 'तेरा-तेरा' का राज़ भी गुरुजी ने बालक श्रीचन्द्रजी को सिखा दिया था। पिता को गरीबों की मदद करते देख श्रीचन्द्र बहुत प्रसन्न होते। पिता की तरह अमृतवेला में उठकर वे भी समाधि में बैठ जाते। इस प्रकार बालक श्रीचन्द्र को सर्वप्रथम लौकिक, नैतिक व आध्यात्मिक शिक्षा अपने सिद्ध पिता श्रीगुरुनानकदेवजी से ही मिली।

जब श्रीचन्द्रजी तीन-चार वर्ष के ही थे, उनके दूसरे भाई श्रीलक्ष्मीचन्दजी का जन्म हुआ। किन्तु तभी जन-जन का कल्याण करने, अपना दिव्य संदेश लेकर

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

उनके पिता श्रीगुरुनानकदेवजी लगभग बत्तीस वर्ष की आयु में सब कुछ त्यागकर विरक्त भेष में देश-विदेश की यात्राओं पर निकल पड़े। श्रीरंगीलाजी ने अपनी पुस्तक में यह भी लिखा है कि जाते समय उन्होंने श्रीचन्द्रजी को अपनी बहन नानकीजी (जिनकी अपनी कोई सन्तान नहीं थी) की गोद में डालते हुए कहा— "यह बालक अब आपका बेटा है। इसकी मुझे कोई चिन्ता नहीं है। इसको साधारण बालक न समझना। ये अपने जप-तप और प्रेमा-भक्ति के बल पर प्रसिद्ध महात्मा होंगे। ये जगत् तारक, बहुत बड़े यति तथा चिरंजीवी साधु होंगे।"

बाल्यकाल से ही श्रीचन्द्रजी में अद्‌भुत त्याग-वैराग्य परिलक्षित होने लगा था। उन्हें मौन तथा एकान्त बहुत प्रिय थे। उनके पूरे जीवनभर उनसे अनगिनत चमत्कार सहज ही घटित होते रहे।

बाल्यावस्था में एक दिन उस बालयोगी ने द्वार पर आये एक भिक्षुक की झोली में मुट्ठी भर चने डाले तो वे झिलमिल करते मोतियों में बदल गये। स्वयं अपनी आँखों से यह दृश्य देखकर उनकी माता अवाक् रह गयीं।

बालपन के दिनों से ही श्रीचन्द्र को वन में जाकर ध्यान करने की बहुत रुचि थी। एक दिन वे निकटस्थ गहन वन में उस ओर ध्यान करने चले गये जिधर एक नरभक्षी सिंह भी रहता था। समाचार मिलते ही घबराये हुए दादा कल्याणदासजी वहाँ के शासक रायबुलार को हथियार बन्द सैनिकों के साथ लेकर बालक को उस वन में ढूंढने लगे। सहसा एक स्थान पर सभी को एक अद्‌भुत दृश्य देखने को मिला। बालक श्रीचन्द्र एक वृक्ष के नीचे गहरी समाधि में लीन थे। गले में काला नाग लिपटा हुआ था। एक अन्य साँप कलाई पर कंगन की तरह सुशोभित था। भयानक नरभक्षी सिंह भी शान्त भाव से उनके चरणों में सेवक की भांति बैठा हुआ था। कुछ देर बाद जब बालक ने आँखें खोलीं तो वन्य प्राणी चुपचाप उठकर वन में ओझल हो गये। तब श्रीचन्द्रजी ने उस अल्प आयु में ही गुरुभाव में स्थित होकर रायबुलारजी को समदृष्टि, न्याय और प्रेमभाव से जनता की सेवा करने का उपदेश दिया।

बाल्यावस्था में श्रीचन्द्रजी का काफी समय अपने ननिहाल 'पखोके' में नाना श्रीमूलचन्दजी के पास भी बीता। वहाँ भी वे अक्सर गाँव के पास के वन में प्रभु-स्मरण के लिये अकेले चले जाते थे। अतः उनके नाना बालक के वैराग्यमय जीवन से बहुत चिन्तित रहते थे। उनके जवांई गुरुनानकदेवजी तो पहिले ही गृहत्याग करके

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

जन-कल्याण हेतु देश-विदेश की यात्राएं कर रहे थे और अब श्रीचन्द्रजी भी अपने वैरागी पिता का अनुकरण करने लगे थे।

नाना के घर से वापिस दादा के घर लौटकर मर्यादानुसार ग्यारह वर्ष की आयु में पदार्पण करते ही आपका यज्ञोपवीत संस्कार सम्पन्न हुआ। यहाँ पंडित हरदयालुजी से अक्षर बोध प्राप्तकर बालक ने अल्पकाल में ही भगवद्गीता सहित पंडितजी के पास उपलब्ध सब ग्रन्थों को आत्मसात् कर लिया।

उन दिनों कश्मीर देश में उच्च शिक्षा का प्रसिद्ध केन्द्र था तथा दूर-दूर से विद्यार्थी वहाँ धर्म-अध्यात्म पर शिक्षा प्राप्त करने आते थे। विद्या प्रेमी श्रीचन्द्रजी के मन में भी उच्च शिक्षा के लिये कश्मीर जाने की इच्छा हुई। उन्होंने अपनी माता से इस हेतु आज्ञा मांगी। माता को तो पहले ही बालक के भावी जीवन का आभास था। वे साधारण स्त्री न थीं। वे गुरुनानकदेवजी की पत्नी और श्रीचन्द्रजी की माता थीं। इस देवी की त्याग-तपस्या भी इन अवतारी पुरुषों की लीला का महत्वपूर्ण अंग थी। वीर माता ने पुत्र को कश्मीर जाने की स्वीकृति दे दी। ज्ञात हो कि गुरुनानकदेवजी पहले ही गृहत्याग कर चुके थे। योगीराज ने उस बाल्यावस्था में कश्मीर की कठिन यात्रा पैदल ही तय की।

कश्मीर में श्रीचन्द्रजी पंडित पुरुषोत्तम कौल से द्रुतगति से विद्याध्ययन करने लगे एवं अल्प समय में ही उन्होंने संस्कृत भाषा तथा सभी वेदों व अन्य कठिन ग्रन्थों पर अधिकार प्राप्त कर लिया।

कहते हैं श्रीनगर में भी युवा श्रीचन्द्र का वन में जाना जारी रहा तथा उनके शिवजी सदृश चरित्र को देखकर लोग उन्हें चन्द्रमौलि के नाम से पुकारने लगे थे।

यहीं पर मात्र चौदह वर्ष की आयु में चन्द्रमौलि ने काशी के प्रकाण्ड विद्वान तथा दिग्विजयी पंडित सोमनाथजी त्रिपाठी को शास्त्रार्थ में पराजित करके सभी को चकित कर दिया था। परन्तु जब त्रिपाठीजी ने स्वप्न में भगवान विश्वनाथ का श्रीचन्द्रजी के रूप में दर्शन किया तो उन्हें निश्चय हो गया कि ये तो शिवरूप हैं तथा सभी विद्याओं के अधिपति हैं। त्रिपाठीजी ने भगवान से स्वयं को दीक्षा की भिक्षा मांगी। जो भगवान ने बाद में काशी में स्वयं जाकर उन्हें प्रदान की।

श्रीनगर कश्मीर में ही उन्होंने अपने गुरु अविनाशी मुनि से उदासीन पंथ में

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

दीक्षा प्राप्त की। अविनाशी मुनि अपने समय के महान् उदासीन संत थे, उन्होंने अपने योग्य शिष्य के सामने सदाचार-त्याग-तपस्या तथा भगवद्साक्षात्कार के उद्देश्य के साथ-साथ राष्ट्र-उद्धार के आदर्श को भी सामने रखा। यहीं से श्रीचन्द्र भगवान जीवनभर नगर-नगर, गाँव-गाँव घूम-घूमकर लोगों को अनेक प्रकार से उपदेश देते हुए, उनकी रक्षा करते हुए तथा उन्हें चेताते हुए अपने गुरु की आज्ञा का पालन करते रहे। उन्होंने अपने प्रसिद्ध मात्राशास्त्र में स्वयं के बारे में कहा भी है—

"चेतहुँ नगरी तारहुँ गांव
अलख पुरुष का सिमरहुँ नांव।"

यहीं से बाबाजी ने अपना व्यापक भारत भ्रमण आरम्भ किया। सीमावर्ती प्रान्त होने के कारण कश्मीर प्रान्त विदेशी हमलावरों की बर्बरता क[illegible] रहा। इस प्रान्त तथा देश के अन्य भागों में बलात् धर्मान्तरण, प्रज[illegible] आदि—ये सब सामान्य बातें थीं। धर्म के नाम पर हिन्दू समाज भी शा[illegible] शैवों आदि में बंटा हुआ था। तांत्रिक मत विकृत होकर वामाचार का [illegible] था। विशेषकर तिब्बत और भूटान में उन्होंने देखा कि तांत्रिक और शाक्त विकृत स्वरूप को प्राप्त होकर जनता को पथ-भ्रष्ट कर रहे थे। अतः [illegible] समय में देश में बाबा श्रीचन्द्रजी का आविर्भाव हुआ था। अवतारी विभूति कारण बाबाजी में जन-कल्याण जैसे कठिन व्रत को निर्वाह करने की यो[illegible] सहज ही थी तो भी समाज में आदर्श स्थापित करने के लिये उनका स्वयं व[illegible] जीवन भी सर्वस्व त्याग, घोर कर्मठता तथा सतत भजन-स्मरण में बीता।

आपने पूरे देश में भ्रमण करने के क्रम में प्रथम पाँच वर्षों में हिमालय द[illegible] किया तथा हिमालय के सभी प्रमुख तीर्थों—कैलाश, मानसरोवर, नेपाल, केदारनाथ, देवप्रयाग, गंगोत्री, यमुनोत्री, हरिद्वार आदि के दर्शन किये। इसी काल में आपने अपने उपदेशों और शक्ति से जनता की वामाचार से रक्षा भी की।

अपने पूरे जीवनकाल में आप निरन्तर भ्रमण करते रहे। हमारे देश में साधु-संन्यासियों के देश-भ्रमण की परम्परा के कारण ही इतनी विविधता होते हुए भी यह राष्ट्र सांस्कृतिक व धार्मिक रूप से अखण्ड इकाई है। इसी परम्परा के कारण ये विरक्त महापुरुष समाज की स्थिति का दर्शन करके, उसमें व्याप्त बुराईयों को जानकर, उसके उपचार में संलग्न होते थे। परिव्राजकाचार्य बाबाजी ने सिंध, पेशावर,

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

ठट्ठा, कन्धार, बलूचिस्तान के अतिरिक्त तिब्बत, भूटान, गोकुल, वृन्दावन, गोवर्धन, आगरा, बरसाना, मथुरा, अयोध्या, प्रयाग, काशी, मेवाड़, आबू, वैद्यनाथ, इन्द्रप्रस्थ, नवदीप, इटावा, बंगाल, आसाम, जगन्नाथपुरी, जनकपुर, पाटिलिपुत्र, हरिद्वार क्षेत्र, नैमिषारण्य, करतारपुर, गुजरात, अजमेर, उदयपुर, ग्वालियर, नागपुर, टांकली, मद्रास, रामेश्वरम्, चम्बा आदि का भी भ्रमण किया। तो भी उनकी प्रमुख कर्मभूमि सीमान्त प्रान्त, कन्धार, कश्मीर, पंजाब, पेशावर, सिन्ध आदि ही रही क्योंकि आक्रमणकारियों का प्रभाव सर्वाधिक यहीं था। अपनी आध्यात्मिक शक्ति के बल से वे सिंह की तरह उस क्षेत्र में घूम-घूमकर जनता की रक्षा करते रहे और उन्हें सच्ची धार्मिकता, निर्भीकता और भाईचारे का उपदेश देते रहे।

आचार्य श्रीचन्द्रजी इस पृथ्वी पर मानवी चोले में 149 वर्ष तक रहे तथा कहते हैं कि इस सुदीर्घ जीवनकाल में उनकी छवि एक अति सुन्दर, सौम्य, संन्यासी बालक की बनी रही। वे शरीर पर केवल कोपीन धारण करते थे तथा वैराग्य सूचक भस्म रमाये रहते थे। आचार्य श्रीचन्द्रजी स्थान-स्थान पर भ्रमण करते तथा अक्सर वनों में धूना प्रज्वलित कर भगवान के भजन-स्मरण में लीन रहते। कहते हैं नेपाल के जंगलों में हाथी श्रीचन्द्रजी के धूने के लिये लकड़ी के बड़े-बड़े लट्ठे लेकर आया करते थे। वे वनराज जो ठहरे।

जैसा कि हमने ऊपर पढ़ा सर्वप्रथम मथुरा, बरसाना आदि तीर्थों के दर्शन करने के अनन्तर आचार्यजी ने देश के अन्य भागों की ओर रुख किया था।

जनश्रुति है कि अपनी यात्रा के दौरान, मध्यकाल के प्रसिद्ध बालक भक्त धन्नाजी को आचार्यजी की कृपा से ही भगवान के दर्शन हुये थे। तदनन्तर आगरा से होते हुये आपने अयोध्या धाम के दर्शन किये तथा सन् 1525 में आप काशी पहुँचे।

काशी में आचार्यजी ने एक कौतुक किया। वहाँ जब उन्होंने प्रसिद्ध विश्वनाथ के मन्दिर में भोलेनाथ के दर्शनों हेतु मन्दिर के अन्दर जाना चाहा तो पुजारियों ने उस भस्मधारी अवधूत को यह कहकर मना कर दिया कि अभी भगवान को भोग लग रहा है और भोग लगाते समय किसी को भी वहाँ जाने की अनुमति नहीं है। किन्तु जब पुजारी भोग लगाने अन्दर गये तो उनके विस्मय की सीमा न रही क्योंकि भोग सामग्री वहाँ से गायब थी। तुरन्त ही पुजारियों को उस भस्मधारी साधु का स्मरण हुआ। बाहर जाकर देखा तो भोग और पूजा का सारा सामान ध्यानावस्थित आचार्य

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

श्रीचन्द्रजी के समक्ष पड़ा था। तब उन्होंने साक्षात् शिव भाव से भगवान को बार-बार प्रणाम किया। इस घटना की ख़बर पूरे काशी में फैल गयी। पंडित सोमनाथजी त्रिपाठी ने भी जब यह सुना और आकर स्वयं देखा तो जिनकी चिरकाल से वे प्रतीक्षा कर रहे थे उन अपने आराध्य भगवान श्रीचन्द्रजी के उन्होंने दर्शन पाये।

काशी से त्रिपाठीजी को अपने साथ लेकर आचार्यश्री अनेक स्थानों का भ्रमण करते हुए जगन्नाथपुरी पहुँच गये। पंडितजी की तीव्र इच्छा और उनकी सेवा-श्रद्धा से प्रसन्न होकर उन्होंने उन्हें सोमदेव नाम देकर सन् 1527 में उदासीन पंथ में दीक्षित कर लिया। पुरी धाम में उन्होंने अपने उपदेशों और दर्शनों से जनता को कृतार्थ किया। यहीं उनकी भेंट पराभक्ति के विग्रह चैतन्य महाप्रभु से हुई। पुरी में जहां पर महाराजजी ने चरण रखे वहाँ बाद में बालहास मण्डलेश्वर पद्धति के संत मंगूदासजी उदासीन ने एक डेरे की स्थापना की जिसे मंगूमठ कहते हैं और जो आज भी वहाँ विद्यमान है।

अब आप कुरुक्षेत्र होते हुए पंजाब के जालन्धर प्रान्त पहुँचे जहाँ उन्होंने सुल्तानपुर नगर के बाहर एक वृक्ष के नीचे अपना धूना रमाया। वहाँ लम्बे समय से उनके दर्शनों का अभिलाषी वहाँ का नवाब दौलत ख़ाँ लोधी नित्य आचार्यश्री के दर्शनों को आता था। आपके उपदेशों को अपनाकर उसने विलासितापूर्ण जीवन को त्याग करके प्रजा की सेवा और परमात्मा के भजन-स्मरण को अपना लिया था। अब ये परमयोगी कोई ग्यारह वर्ष बाद करतारपुर पहुँचे और नगर के बाहर वृक्ष के नीचे डेरा लगाया। उनके अनुज लक्ष्मीचन्दजी का विवाह हो चुका था तथा उनका एक पुत्र धर्मचन्द भी था। सूचना मिलने पर अपने साधु पुत्र के दर्शनों की प्यासी माता सुलक्षणा ने आकर उनके दर्शन किये। वैराग्यवान पुत्र ने पुनः मां को त्याग-वैराग्य और प्रभु-प्रेम की बातें कहकर शांत किया। किन्तु संन्यास धर्म की मर्यादा के अनुसार वे अपने घर नहीं गये।

उन्हीं दिनों की एक कथा जनमानस में बहुत प्रचलित है। यह घटना पठानकोट के निकट बारठ साहब के पास की है जहाँ उन दिनों घना जंगल हुआ करता था तथा जहां ठहरकर श्रीचन्द्रजी अक्सर ध्यान-स्मरण में समय व्यतीत किया करते थे। एक दिन वन में ध्यान के उपरान्त आचार्यश्री ने अपने अनुज श्रीलक्ष्मीचन्दजी, जो अपना अधिकांश समय शिकार में ही व्यतीत किया करते थे, को कुछ रुष्ट होकर

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

कहा कि आप निर्दोष प्राणियों की शिकार द्वारा हत्या करते हैं, इसका हिसाब आपको बाद में अवश्य भुगतना पड़ेगा। अपने तपस्वी भाई की झिड़की सुनकर, कहते हैं, लक्ष्मीचन्दजी को बड़ी चोट लगी। हालाँकि वे शिकार आदि में लिप्त थे तो भी गुरुनानकदेवजी के पुत्र होने के नाते उनमें कुछ योगसिद्धि बतायी जाती थी। वे तुरन्त घर गये तथा अपनी पत्नी धनवन्ती और पुत्र धर्मचन्द को लेकर सशरीर ही आकाशमार्ग से दूसरे लोक को जाने लगे। इस पर अपने पिता के वंश की रक्षा के लिये भगवान श्रीचन्द्रजी ने अपने योगबल से भूमि पर बैठे-बैठे ही हाथ बढ़ाकर अपने भतीजे धर्मचन्द को आकाश में से घोड़े से उतार लिया। बाद में इन्होंने धर्मचन्द को उदासीन ऋषि पद्धति की दीक्षा दी जिसके अन्तर्गत गृहस्थ भी अपनाया जा सकता है। इस घटना को चित्रित करते हुए कैलेण्डर व तस्वीरें जहाँ-तहाँ दिखायी पड़ जाती हैं।

कहते हैं जब श्रीचन्द्रजी बत्तीस वर्ष के हो गये तब उनका अपने पिता गुरुनानकदेवजी से मिलन हुआ था। परम वैरागियों की तरह पिता और पुत्र आपस में मिले थे। बाद में माता-पिता की सेवा हेतु उन्होंने धर्मचन्दजी और अपने एक सेवक कमलदासजी को वहीं छोड़ दिया और स्वयं पुनः कश्मीर चले आये। कथा है कि कश्मीर में उन्होंने एक मृत बालक को जीवित किया था।

वहाँ उन्होंने वेदों पर श्रीचन्द्र भाष्य नाम से विद्वतापूर्ण भाष्य लिखे। दुर्भाग्य से वे आक्रमणकारियों की धार्मिक संकीर्णता की बलि चढ़ गये। वहीं उन्होंने भगवद्गीता और ब्रह्मसूत्र पर भी भाष्य लिखे। किन्तु अब वे सब अप्राप्य हैं।

कश्मीर से आचार्यश्री पेशावर आ गये थे। वहाँ से जुड़ी एक कथा है कि उनकी कृपा से उनके एक व्यापारी भक्त का माल से भरा जहाज समुद्र में डूबने से बच गया था। उसने अपनी श्रद्धा के रूप में पेशावर में आचार्य श्रीचन्द्रजी के नाम पर एक धर्मशाला का निर्माण करवाया जिसमें आज भी उनके नाम का धूना जलता है तथा वहां उनकी मृगशाला, टोपी और खाट अभी भी सुरक्षित है।

पेशावर से आचार्यश्री काबुल पहुँचे। काबुल में जनता को धर्म, वीरता और सदाचार आदि की शिक्षाएं देकर वे कन्धार चले गये। कन्धार का शासक कामरान धर्मान्ध था। अपनी सत्ता के मद में आचार्यश्री के ध्यान के स्थान के निकट ही उसने एक हिरण का वध करके उसकी आँखें निकाल लीं। यह देखकर उनके मुख से निकल गया कि जा तेरी आँखें भी ऐसे ही कोई निकाल लेगा। बाद में ऐसा ही हुआ

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

भी। उसी के भाई हुमांयु ने उसे युद्ध में परास्त करके उसकी आँखें निकलवा दी थीं। काबुल में आचार्यश्री के दिव्य प्रभाव से बहुत से मुसलमान बन्धु भी उनके भक्त हो गये थे। वज़ीर खान नामक एक व्यक्ति तो उनका परम भक्त बनकर दिनरात प्रभु रस में लीन रहने लगा था।

उन दिनों सिंध में बौद्ध तांत्रिकों और धर्मान्ध मुसलमानों का विशेष प्रभाव था। आचार्य श्रीचन्द्रजी के दिव्य व्यक्तित्व से बौद्ध धर्म के प्रसिद्ध पंडित भक्त गिरि अपने तीन सौ साठ शिष्यों के साथ उनके अनुयायी हो गये थे। आचार्यश्री ने उन्हें संन्यास की दीक्षा देकर उनका नाम भक्त गिरि से भक्त भगवान रख दिया। भक्त भगवान ने बाद में धर्म और समाज की बहुत सेवा की। सैकड़ों की संख्या में उनके मठ उदासीन संन्यासियों के डेरे बन गये।

अब आचार्य श्रीचन्द्रजी पुनः कश्मीर आ गये जहाँ की हिन्दू जनता वहाँ के शासक याकूब के अत्याचारों से त्रस्त थी। याकूब जनता का बलात् धर्मान्तरण कर रहा था। तो कश्मीर के ब्राह्मणों ने उस तक समाचार भिजवाया कि हमारे गुरु कश्मीर में आये हुए हैं तथा यदि आप पहले उनको इस्लाम में शामिल कर लो तो हम भी अपना धर्म बदल लेंगे। उस समय आचार्यश्री ने एक वन में अपना धूना रमाया हुआ था। याकूब ने उन्हें बंदी बनाने के लिये अपना वज़ीर तथा अन्य लोग भेजे। कहते हैं जब वे लोग उनके पास पहुँचे तो आचार्यश्री ने धूने से लकड़ी निकालकर जमीन में गाढ़ दी और उससे वहाँ लहलहाता विशाल चिनार का पेड़ पैदा हो गया। उस पेड़ की एक शाखा अब भी वहां है। वहीं पर आचार्यश्री ने अपने योगबल से एक मीठे जल का झरना भी पैदा किया जो कुएं के रूप में आज भी वहां है। स्वामी योगिन्द्रानन्दजी द्वारा लिखित पुस्तक 'श्रीचन्द्र-चिनार' में लिखा है कि इस घटना के बाद वहाँ के शासक ने आचार्यश्री से प्रभावित होकर बलात् धर्मान्तरण बन्द कर दिया था तथा दस खिर्वार (नाप की एक इकाई) के बराबर वह पूरा विशाल जंगल आचार्यश्री को भेंट कर दिया था। तभी से यह स्थान उदासीनों का परम पवित्र स्थल बन गया और वहाँ ऐतिहासिक श्रीचन्द्रचिनार आश्रम की नींव पड़ी जो अब तक चला आ रहा है तथा जिसके वर्तमान मुखिया हमारे गुरुदेव श्रीचन्द्रस्वामीजी महाराज हैं। अब वह स्थान श्रीनगर के मध्य में रेज़ीडेन्सी रोड पर स्थित है तथा आश्रम की अधिकांश भूमि पर दूसरों ने कब्जा कर लिया है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

कश्मीर से आचार्यश्री पुनः पंजाब में कादिराबाद पहुँचे जहाँ भारत के बादशाह जहाँगीर ने लाहौर से वहाँ आकर भस्मधारी फकीर के दर्शन किये। कहते हैं उन्हें आचार्यश्री में बहुत श्रद्धा थी। उनके दरबार में आचार्यश्री के आगमन की एक कथा लोगों में बहुत प्रचलित है। उनके बहुत आग्रह पर एक बार आचार्यश्री अपने सेवक कमलासन को लेकर बादशाह के दरबार लाहौर पहुँचे। बादशाह ने उन्हें बहुत प्रेम आदर से रत्न जड़ित सिंहासन पर बैठाया। अगले दिन पुनः उसने पूरे नगर द्वारा आचार्यश्री के दर्शनार्थ दीवाने-आम की घोषणा की। आचार्यश्री ने नियत समय पर आकर अपनी गुदड़ी एक स्थान पर रखकर अपना आसन ग्रहण किया। किन्तु सभी यह देखकर चकित थे कि वह गुदड़ी हिलडुल रही थी; कभी फूल रही थी तो कभी सिकुड़ रही थी तथा इस प्रकार तरह-तरह की चेष्टाएं कर रही थी। बादशाह के पूछने पर आचार्यश्री ने बताया कि उस गुदड़ी में अनेक सिद्धियां भरी हैं तथा वह सदा उनके साथ रहती है। यह भी बताया कि उस समय उस गुदड़ी में रुद्र ज्वर भरा था जो प्रचण्ड शक्तिशाली था तथा उनकी आज्ञानुसार कार्य करता था। पर भगवान की इस विचित्र बात पर किसी को भी भरोसा न हुआ। तो बाबाजी ने उस ज्वर को गुदड़ी से मुक्त कर दिया। मुक्त होते ही वह ज्वर बादशाह समेत कई लोगों को जा चिपटा और सभी उसके प्रचण्ड ताप से थरथर कांपने लगे। सबके द्वारा प्रार्थना करने पर आचार्यश्री ने पुनः यथास्थिति बहाल कर दी।

आचार्य श्रीचन्द्रजी ने अपने सुदीर्घ जीवनकाल में अन्य अनेक महान् समन्वयकारी तथा दूरदर्शितापूर्ण कार्य किये। शैव, शाक्त, वैष्णव, सौर्य व गाणपत्य पंथों में विद्वेष-वैर समाप्त करने के लिये उन्होंने सूर्य, विष्णु, शिव, शक्ति तथा गणेश की पंचदेवोपासना को पुनर्जीवित किया तथा इन सभी मतावलम्बियों को एक किया।

योग की दृष्टि से इन पंचदेवों का सम्बन्ध पंच महाभूतों से माना गया है।

आकाशस्याधियो विष्णुः अग्नेश्चैव महेश्वरी
वायोसूर्यः क्षितेरीशो जीवनस्य गणाधिपः

अर्थात् आकाश तत्व का स्वामी विष्णु, अग्नि तत्व की दुर्गा, वायु तत्व का सूर्य, पृथ्वी तत्व का शिव तथा जल तत्व का स्वामी गणेश है। फलतः पंचदेवोपासना का अर्थ है विराट भगवान की पंचभूतात्मक सृष्टि के रूप में उपासना। ब्रह्माण्ड का एक-एक

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

तत्व साकार ब्रह्म के एक-एक गुण का मूर्त रूप कहा जा सकता है। इस प्रकार पंचदेवोपासना विश्वात्मवादी दृष्टि के विकास का फल है। पंचदेवों को एक ही शक्ति का मूर्तरूप कहा गया है।

श्रीचन्द्राचार्य श्रौत-स्मृति परम्परा के अर्थात् वेदों और पुराणों दोनों के प्रतिपादक थे। उन्होंने ब्रह्म की प्राप्ति हेतु ज्ञान-भक्ति के समुच्चय को साधन बताकर उसका उपदेश दिया जो उनकी विशेषता है।

आचार्य श्रीचन्द्रजी की दूरदर्शिता में वीरता और पुरुषार्थ भरा था। बहुत कम लोगों को पता है कि मध्य काल में यवनों के आक्रमण से देश की रक्षा करने वाले दो स्वाभिमानी राजाओं के प्रेरणास्रोत आचार्य श्रीचन्द्रजी ही थे। राजस्थान के महाराणा प्रतापसिंह ने अपने मंत्री भामाशा के साथ अजमेर के निकट प्रसिद्ध एकलिंग के मन्दिर में आचार्यश्री के दर्शन भी किये थे। कहते हैं उन्हीं से प्रेरणा और शक्ति प्राप्त कर उन्होंने अकबर की अधीनता स्वीकार नहीं की और ग्यारह वर्षों तक संघर्ष करते रहे। बाद में निरन्तर युद्ध के कारण अपना सब कुछ गवांकर जब वे जंगलों में रहने को विवश हो गये तब भी उनके मंत्री भामाशा को आचार्यश्री ने स्वप्न में अपनी विपुल धनराशि राणा प्रताप को अर्पण करने की प्रेरणा की। उधर राणा प्रताप को भी स्वप्न में आशीर्वाद देकर आचार्यश्री ने उन्हें पुनः युद्ध करने की प्रेरणा दी। उनकी कृपा से राणा प्रताप ने अपने जीवन काल में ही चित्तौड़ को छोडकर अन्य सभी हारे हुए गढ़ों को जीत लिया। उधर महाराष्ट्र में समर्थ गुरु रामदास को भी उनकी अट्ठारह वर्ष की आयु में श्रीचन्द्रजी ने टांकली गाँव में दर्शन दिया। तब उनका नाम नारायण था। नारायण की तप और वैराग्य की ओर तीव्र रुचि देखकर आचार्यश्री ने उन्हें कहा कि वे एकान्त में योगाभ्यास करने की बजाये तीर्थाटन करें तथा देश में समाज, धर्म तथा तीर्थों की दुर्दशा को निकट से देखें। उन्होंने ही उन्हें किसी सुयोग्य क्षत्रिय शिष्य को तैयार करने की भी प्रेरणा दी जो उस कठिन समय में विदेशी हमलावरों से देश व धर्म की रक्षा कर सके। उनकी प्रेरणा का परिणाम था — समर्थ गुरुरामदास तथा समर्थ गुरुरामदास की प्रेरणा के परिणाम थे — सदाचारी, धर्मनिष्ठ छत्रपति वीर शिवाजी। देश के लिये शिवाजी की सेवाओं और योगदान को हम सब खूब जानते ही हैं।

एक अन्य विशेषता भी आचार्यश्री में थी। हिन्दू राजाओं के साथ-साथ

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

अनेक मुस्लिम शासक भी उनके प्रति श्रद्धा रखते थे। स्वयं बादशाह हुमाँयु तथा जहाँगीर ने आकर उनके दर्शन किये थे। उनके हृदय में क्षुद्र धार्मिक आधार पर मानव-मानव में भेद नहीं था। उन्होंने हिन्दुओं को अपनी रक्षा करने की शिक्षा जरूर दी लेकिन साथ ही साथ हिन्दू-मुस्लिम भाईचारे तथा प्रेम का संदेश भी दिया।

इन सबके अतिरिक्त आचार्य श्रीचन्द्रजी सनातन वैदिक धर्म तथा सिख्र गुरुओं की गौरवशाली परम्परा की मज़बूत उभयनिष्ठ कड़ी थे। वे अपने पिता श्रीगुरुनानकदेवजी तथा सिख्र गुरुओं के प्रति बहुत प्रेम और श्रद्धा रखते थे और इसी कारण सभी उदासीन डेरों में वेदों, गीताजी, रामायणजी आदि के साथ-साथ श्रीगुरुग्रन्थसाहब को भी बराबर का सम्मान प्राप्त है। कई आश्रमों तथा डेरों में तो बाकायदा गुरुद्वारे हैं और वहाँ नित्य गुरुबाणी का पाठ होता है। हमारे परमपूज्य बाबा भूमनशाहजी के डेरे में भी श्रीगुरुग्रन्थसाहब का प्रकाश था तथा आचार्य श्रीचन्द्रजी की प्रतिमा भी थी। उनके दिव्य प्रभाव के कारण उदासीन साधुओं ने सिख्र पंथ एवं श्रीगुरुग्रन्थसाहब की पवित्र वाणी का बहुत प्रचार-प्रसार किया। श्रीगुरुअंगददेवजी, श्रीगुरुअमरदासजी, श्रीगुरुरामदासजी, श्रीगुरुअर्जुनदेवजी और श्रीगुरुहरगोविन्दजी आचार्यश्री के प्रति बहुत श्रद्धा रखते थे। श्रीगुरुअर्जुनदेवजी ने बारठ साहब के अतिरिक्त डेरा बाबा नानक में भी आचार्यजी के दर्शन किये थे।

पंजाब में पठानकोट के निकट श्रीचन्द्रजी के नाम पर एक बारठ साहब गुरुद्वारा है। कहते हैं विभिन्न समयों पर आचार्यजी ने वहाँ पर कुल मिलाकर बासठ वर्ष तपस्या की थी। अतः वह स्थान बारठ (अर्थात् बासठ) साहब नाम से प्रसिद्ध हो गया। शिरोमणी गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'इतिहास गुरुद्वारा बारठ साहब' में लिखा है कि विक्रमी सं० 1601 चैत में श्रीगुरुअमरदासजी बाबाजी के दर्शन करने बारठ में आये। (उपरोक्त पुस्तक में आचार्य श्रीचन्द्रजी को 'बाबाजी' कहकर ही सम्बोधित किया गया है।) आप दर्शन पाकर बहुत प्रसन्न हो गये और वैराग्य में आकर आपने निम्न शबद उच्चारण किया—

अनन्द भया मेरी माए, सतगुरु मैं पाया।

यह शबद सुनाकर उन्होंने बाबाजी को नमस्कार की। जब गुरुअमरदासजी ज्योति ज्योत समा गये और श्रीगुरुरामदासजी गुरुगद्दी पर बैठे तो बाबाजी उन्हें मिलने

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

अमृतसर आये। गुरुसाहब ने गुरुगद्दी से उठकर बाबाजी का अभिनन्दन किया और उन्हें गुरुगद्दी पर बैठाया। बाबाजी ने उनसे प्यारपूर्वक पूछा— "आपने इतनी लम्बी दाढ़ी किसलिये रखी हुई है ?" (गुरुरामदासजी की दाढ़ी बहुत लम्बी थी) इस पर गुरुजी ने झट अपनी दाढ़ी से बाबाजी के चरण साफ करने शुरु कर दिये। बाबाजी उनकी विलक्षण नम्रता देखकर बहुत प्रभावित हुए। गुरुसाहब ने पाँच सौ रुपये भेंट रखकर बाबाजी के चरणों में नमस्कार किया।

इसी पुस्तक में लिखा है कि विक्रमी सं० 1655 में श्रीगुरुअर्जुनदेवजी बाबाजी के दर्शन करने अमृतसर से बारठ आये। बाबाजी उस समय अखण्ड समाधि में बैठे थे जो कई महीने चली। गुरुसाहब प्रतिदिन सुबह और शाम को आकर बाबाजी के दर्शन एवं उनकी समाधि खुलने की प्रतीक्षा करते। समाधि खुलने पर गुरुसाहब ने उन्हें नमस्कार किया और बाबाजी भी बहुत प्रसन्नता से उन्हें प्यार भरे वचन कहते रहे। इस स्थान पर ही गुरुजी ने अपनी रची बानी 'सुखमनी साहब' की सोलह अष्टपदियां बाबाजी को सुनायीं जिसे सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुए और कहा यह बानी चौबीस अष्टपदियों में होनी चाहिये। तो गुरुजी ने बाबाजी से ही शेष बानी उच्चारित करने के लिये प्रार्थना की। इस पर बाबाजी ने केवल निम्नलिखित सत्रहवां श्लोक उच्चारण किया—

आदि सच, जुगादि सच, है भी सच, नानक होसी भी सच।

शेष बानी उन्होंने गुरुजी को ही उच्चारण करने का आदेश दिया। अतः श्रीगुरु अर्जुनदेवजी ने बानी को सम्पूर्ण करके बाबाजी को सुनायी तो उन्होंने उसकी बहुत सराहना की और उस बानी को 'भव तरनी' का वर प्रदान किया। बाबाजी ने गुरुमहाराजजी को वहाँ से लौटते समय बारठ में बनी बावड़ी साहब से एक गागर जल भरकर 'तरन-तारन' सरोवर में डालने को भी दी।

बारठ साहब में ही श्रीगुरुहरगोविन्दसाहबजी अपने चारों साहबज़ादों के साथ बाबाजी के दर्शन करने को आये थे और उन्होंने उन्हें पाँच सौ रुपये तथा एक सुन्दर घोड़ा भी भेंट किया। यहीं गुरुसाहब ने अपने सबसे बड़े सुपुत्र गुरुदित्ताजी को बाबाजी को भेंट कर दिया था जो बाबाजी के अनन्य सेवक बने तथा जिन्होंने आगे चलकर उदासीन पंथ के प्रचार-प्रसार में बहुत सेवा की। इस प्रकार उपरोक्त

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पुस्तक, 'इतिहास गुरुद्वारा बारठ साहब' में दी गयी बहुमूल्य जानकारियों से हमें श्रीचन्द्रजी तथा सिख पंथ में गहरी आत्मीयता का परिचय मिलता है।

हालांकि बाह्यरूप से आचार्य श्रीचन्द्रजी का जीवन उनके पिता गुरुनानकदेवजी से भिन्न था तो भी आध्यात्मिक दृष्टि से दोनों ही परम सिद्ध एवं पूर्ण संत थे। ऐसा प्रतीत होता है कि जहाँ गुरुनानकदेवजी की जीवनलीला का उद्देश्य सम्यक् गृहस्थ जीवन द्वारा भगवान/सत्य के साक्षात्कार का आदर्श जन-जन के सामने रखना था, वहीं आचार्यश्री के जीवन का उद्देश्य समाज में सर्वत्यागी उदासीन साधुओं की परम्परा के द्वारा भगवद्प्राप्ति का आदर्श समाज में स्थापित करना था। इन दोनों ही आदर्शों में आपस में कोई विरोध नहीं है बल्कि स्वस्थ एवं पूर्ण समाज के लिये वे एक दूसरे के पूरक भी हैं। जहाँ गुरुनानकदेवजी ने भगवान के निराकार भाव की उपासना पर ज्यादा जोर दिया वहीं आचार्य श्रीचन्द्रजी ने भगवान के निराकार और साकार दोनों भावों को बराबर महत्व दिया। किन्तु ध्यान देने की बात है कि दोनों के ही उपदेशों के मूल तत्त्व समान हैं तथा दोनों ने ही भगवद् प्राप्ति को जीव का सर्वोच्च लक्ष्य मानकर त्याग, वैराग्य, सदाचार, सतत भजन-स्मरण, सेवा तथा गुरुभक्ति आदि को प्रभु-प्राप्ति का साधन माना है। इधर गृहस्थ आश्रम में होते हुए भी गुरुनानकदेवजी के जीवन में पूर्ण संन्यासी जैसा अद्भुत त्याग-वैराग्य था तथा उधर त्यागी साधु होते हुए भी श्रीचन्द्रजी के जीवन में प्रभु-नाते गृहस्थियों से भी अधिक क्रियाशीलता थी।

अक्सर हम लोगों को महापुरुषों के उपदेशों के बाहरी स्वरूप में भिन्नता होने के कारण भ्रम हो जाता है। अतः अपनी सीमित समझ के अनुसार हमारा निवेदन है कि सभी भगवद् उपलब्ध महापुरुष अनन्त एवं निर्पेक्ष भगवद् चेतना में प्रतिष्ठित होने के कारण स्वयं समग्र एवं पूर्ण होते हैं। किन्तु उनके उपदेश सदा देश-काल की आवश्यकता के अनुरूप होते हैं। अतः उनके उपदेशों में देश-काल अपेक्षानुसार किसी एक विशेष भाव की प्रधानता होती है। इसलिये महापुरुषों के उपदेशों में सापेक्षिक भिन्नता का कारण उनमें स्वयं में अपूर्णता और एकांगीपन नहीं है बल्कि जनसाधारण की ग्राह्यता में एकांगीपन और अपूर्णता है। परम सत्य तो अपने आपमें पूर्ण, समग्र और निर्पेक्ष होता है। एक ही समय में अनेक विरोधाभासी भाव उसमें समन्वित होकर रहते हैं किन्तु विभिन्न पथ तो सदा एकांगी तथा सीमाओं में बँधे होंगे। अगर जनसाधारण के सामने एक ही समय परस्पर विरोधीभावों वाले बहुत से

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

मार्ग/आदर्श रख दिये जायें तो वे उनमें से कुछ भी अपना नहीं सकेंगे। यह भी हो सकता है कि उनकी उन महापुरुष में श्रद्धा भी न रह जाये। फिर एक ही समय में समाज के समक्ष अनेक आदर्श होने से लोग उनमें से अपनी-अपनी प्रकृति और रुचि के अनुसार अपना पथ चयन कर सकते हैं। भला अनन्त प्रभु की अनन्त सृष्टि में सभी देश-काल-परिस्थितियों में केवल एक ही सापेक्षिक पथ या मार्ग सभी के लिये ग्राह्य कैसे हो सकता है ? फिर यह भी देखने में आता है कि किसी महापुरुष ने जिस मार्ग/पथ द्वारा सत्य को पाया होता है उसके उपदेशों में उस पथ/भाव की प्रधानता का रंग आ जाता है। किन्तु इस कारण दूसरे पथ गलत सिद्ध तो नहीं हो जाते। वस्तुतः विभिन्न पथ तो मानो वृत्त की परिधि पर स्थित हैं तथा इस कारण उनमें भेद/भिन्नता होना स्वाभाविक है, परमात्मा का साक्षात्कार रूपी ध्येय मानो वृत्त का केन्द्र है। अतः वृत्त के केन्द्र रूपी ध्येय पर पहुँचकर ही विभिन्न पथों में आपसी भेद/भिन्नता समाप्त होती है तथा एकता होती है। एक बात और भी है। समष्टि दृष्टिकोण से प्रश्न किसी पथ के ठीक या गलत होने का नहीं बल्कि उसकी साधक के लिये प्रासंगिकता का है। वह पथ साधक की चेतना के तल पर से होकर गुजरना चाहिये; वह साधक के द्वारा अपनाये जाने योग्य होना चाहिये। कोई पथ कितना ही महान् हो, अच्छा हो पर यदि कोई साधक उस पर चल ही न सके तो वह उसके लिये किस काम का ? इसी कारण प्रतीत होता है कि भगवान की इच्छा के अनुसार सिद्ध पुरुष भिन्न-भिन्न भावों अथवा पथों पर जोर देते हैं ताकि चेतना के भिन्न-भिन्न तलों पर खड़े तथा भिन्न-भिन्न क्षमताओं व अभिरुचियों वाले सभी लोग अपने योग्य पथ का चुनाव कर सकें।

सच्चे पथ की एक सीधी सी कसौटी है— वह एक दूसरे के प्रति विद्वेष नहीं सिखाता। वह समाज में भगवद्भावना और भाईचारे का प्रसार करता है। अस्तु।

अब पुनः आचार्य श्रीचन्द्रजी की जीवनलीला के उत्तरार्ध की ओर चलते हैं। जब उनके अन्तर्धान होने की बेला आ पहुँची तो उन्होंने कश्मीर में देश को चार क्षेत्रों में विभक्त करके उसके चार मण्डलाधीश नियुक्त कर दिये—

1. कमलासन (या अलमस्त)
2. बालहास
3. गोविन्ददेव
4. पुष्पदेव (फूल साहब)

भगवान श्रीचन्द्रजी ने जिनको स्वयं मण्डलाधीश बनाया, वे अग्निकुण्ड या

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

धूने के साधु कहलाते हैं तथा जो भगवान श्रीचन्द्रजी के बाद मण्डलाधीश बने वे बख्शीश के साधु तथा उप बख्शीश के साधु कहलाते हैं। बख्शीश के साधुओं की संख्या छः तथा उप बख्शीश के साधुओं की संख्या दस बतलायी जाती है।

कुछ समय बारट में रहकर आचार्यश्री गुरुदित्ताजी को साथ लेकर पठानकोट क पास ममून गाँव चले गये। उस स्थान पर जल का अभाव रहा करता था। वहां आचार्यश्री की लीला से मीठे पानी का स्रोत फूट पड़ा। जिस सूखे वृक्ष के नीचे आचार्यश्री बैठे वह वृक्ष भी हरा-भरा हो गया। उस स्थान पर अब एक उदासीन आश्रम है। यह वही स्थान है जहाँ हमारे गुरुदेव को उनकी साधनाकाल के आरम्भ में, उनकी कश्मीर यात्रा के दौरान आचार्यश्री ने दर्शन दिये थे।

ममून से परम अवधूत श्रीचन्द्रजी चम्बा आ गये। चम्बा से उन्होंने अपने प्रिय सेवक गुरुदित्ताजी को समझा-बुझाकर वापस भेज दिया जो अब तक उनके साथ थे। कहते हैं कीरतपुर के पास पहाड़ पर पांच वर्ष कठिन तपस्या करके गुरुदित्ताजी ने अपना शरीर रूपी चोला छोड़ दिया था। ज्ञात हो कि गुरुदित्ताजी सिख गुरु श्रीहरगोविन्दसाहबजी के बड़े सुपुत्र थे जिन्हें उन्होंने बाबा श्रीचन्द्रजी की सेवा में समर्पित कर दिया था।

इधर आचार्य श्रीचन्द्रजी को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते चम्बा में भूटान निवासी उनके परमभक्त ब्रह्मकेतु उनके पास आ गये थे। विक्रम सम्वत् 1700 (सन् 1643 ई०) की बात है। पौष कृष्ण पंचमी का दिन था। सूर्योदय में अभी कुछ समय था, अन्धकार ही था। श्रीचन्द्राचार्य रावी नदी के पार जाना चाहते थे। ब्रह्मकेतु ने एक नाविक को जगाकर उससे पार ले जाने की प्रार्थना की। वहीं बैठे एक यात्री ने व्यंग से कहा कि आप तो भगवान राम के वंशज हैं जिनके नाम से पत्थर भी तैरे थे। आप भी शिला पर बैठकर पार हो जायें। तो लीलाधारी भगवान श्रीचन्द्रजी तुरन्त ही एक पत्थर की शिला पर आसीन हो गये जो उन्हें नदी में तैराकर तट के उस ओर ले गयी। उस किनारे पर पहुँचते ही वह रहस्यमय योगी शिला से उतरकर चम्बा के जंगल में अदृश्य हो गये और फिर इसके बाद कभी किसी को दिखाई नहीं दिये। इसी दिन को श्रीचन्द्रजी का निर्वाण दिवस माना जाता है। वह शिला अब भी उस स्थान पर श्रीचन्द्र-शिला के नाम से प्रसिद्ध है। आचार्य श्रीचन्द्रजी ने पूरे 149 वर्षों तक इस पृथ्वी पर रहकर नर-नारायण की अद्भुत सेवा की। जहाँ-जहाँ उनके द्वारा अलौकिक

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

घटनाएं व चमत्कार हुए आज प्रायः उन सभी स्थानों पर उनकी स्मृति में आश्रम व डेरे बने हुए हैं।

इस प्रकार भगवान श्रीचन्द्रजी ने लुप्त होती हुई सनातन उदासीन परम्परा को पुनर्जीवित किया। उनके स्वयं के समन्वयकारी प्रभाव के कारण उदासीन पंथ के साधु-संतों की एक उदार परम्परा फिर उठ खड़ी हुई। अनेक उदासीन साधु आश्रमों में रहते हैं, अनेक विरक्त भेष में भ्रमण करते रहते हैं तथा अनेक सबसे अलग वनों एवं कन्दराओं में एकान्त वास करते हैं। प्रायः उदासीन साधु बड़े उदार होते हैं। ये साधु-संत काला, पीला, सफेद— सभी रंग के वस्त्र तथा वल्कल धारण करते हैं। बाबाजी ने अपनी मात्रा में लिखा भी है—

'स्याह सफेद ज़रद सुरखाई, जो लै पहिरै सो गुरुभाई।'

कुछ जटाएं रखते हैं तथा कुछ बिल्कुल केश नहीं रखते। इस समय भारत में उदासीन साधु-संतों के तीन हजार से भी अधिक आश्रम-डेरे हैं।

सन् 1783 में उदासीन पंथ के साधुओं को संगठित करने तथा उसके लोकतांत्रिक ढाँचे की परिकल्पना की दृष्टि से निर्वाण प्रियतमदासजी महाराज ने उदासीन बड़े पंचायती अखाड़े की स्थापना की। वे स्वयं नेपाल के परम तपस्वी वनखण्डीजी से उनके धूने से पवित्र विभूति लेकर आये थे जिसकी पूजा आज भी अखाड़े में गोला साहब के नाम से होती है। अखाड़े द्वारा पंथ व धर्म की बहुत सेवा की जा रही है।

डॉ० विष्णुदत्त राकेशजी ने अपनी पुस्तक, 'आचार्य श्रीचन्द्र — साधना, सिद्धान्त और साहित्य' में कुछ विख्यात उदासीन संतों के जीवन तथा कार्य में संक्षिप्त चर्चा भी की है।

र हम आचार्य सीताराम चतुर्वेदी की पुस्तक—
रण से करेंगे जिन्होंने पंथ के संतों के बारे में निम्न

ा की इतनी विशाल, विस्तृत और भारत व्यापी परम्परा
ूर्ण विवरण प्राप्त करना भारतीय धार्मिक इतिहास की दृष्टि
र आवश्यक है। आज उदासीन साधु-महात्माओं की व्यापक
केवल उत्तर भारत में ही नहीं बल्कि पूर्व में आसाम तक तथा

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

दक्षिण में सुदूर हैदराबाद तथा नांदेड़ तक व्याप्त हो गयी है। जहाँ-जहाँ भी इन महात्माओं के शिष्य-प्रशिष्य गये वहाँ-वहाँ उन्होंने अपने आश्रमों की स्थापना की, धर्मार्थ औषधालय स्थापित किये, संस्कृत की पाठशालाएं चलायीं, मन्दिरों और गुरुद्वारों की रक्षा की और उनका निर्माण करवाया, धर्मशालाएं बनवायी
खुदवाये, कीर्तन-भजन तथा उपदेश की व्यवस्था
घूम-घूमकर धर्म प्रचार किया
की ऐसी ज्व

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

भगवान श्रीचन्द्रजी की कुछ रचनाएं

बाबाजी मध्यकालीन युग के अपनी तरह के अनूठे सिद्ध संत थे जिन्होंने शास्त्रों तथा विद्वानों की भाषा संस्कृत के अतिरिक्त, जन-जन की सरल सधुक्कड़ी तथा सरल हिन्दी भाषा में भी विपुल साहित्य सृजन किया। उनकी रचनाओं में विद्वानों की प्रांजलता, सिद्ध योगी की प्रतीकात्मक रहस्यमयता तथा बोधवान् अवधूत की क्रमहीन निरंकुशता और मस्ती है; साथ ही है माधुर्य भाव के महारस में डूबा राधाजी का श्याम मिलन तथा प्रेम दीवानी मीरा की विरह-वेदना। विषय वस्तु की दृष्टि से भी उनकी रचनाओं की सी व्यापकता बहुत कम देखने में आती है।

अब हम सबसे पहले 'श्रीचन्द्र सिद्धान्तपञ्चकम' तथा 'मुक्तिमंजरी' का हिन्दी रूपान्तरण दे रहे हैं जो आचार्यजी की सैद्धान्तिक कृतियां है। उनके अनुशीलन से हमें सहज ही बोध हो जाता है कि उदासीन पंथ भी वेद-पुराण अनुमोदित एकमेवाद्वितीय, अविनाशी, अव्यय, अनन्त सच्चिदानन्द ब्रह्म को ही स्वीकार करता है।

श्रीचन्द्र सिद्धान्तपञ्चकम

1. ब्रह्मस्वरूपम्

जगत्कृत्स्नं यस्मिन् अनवरतमेतत् स्थितमिति,
यदेवैतान् भूतान् रचयति समस्तान्नपि तथा।
यदादौ कल्पान्ते सृजति खलु संस्थापयति च,
विधत्ते संहारं प्रलय समये ब्रह्म तदिति।

समस्त जगत् जिसमें अनादि काल से स्थित रहता है और जो इन समस्त भूतों की उसी प्रकार रचना करता है जैसे पूर्व कल्प में की थी। जो कल्प के आरम्भ में रचना करता है, मध्य में स्थित रहता है और प्रलय काल आने पर उसका संहार करता है, वही ब्रह्म है।

2. जीवस्वरूपम्

जीवोऽष्टादश तत्त्वमेवविदितं स्यादिन्द्रियेभ्यः पृथक्,
प्राणेभ्यो मनसोऽन्यदेव किमसौ बुद्धेस्तथा चित्ततः।
नामुं सत्त्वरजस्तमोमयमिति प्राहुः पुराकोविदाः,
नाहं तद्विषयस्तथा हि न तथैते मायिका वस्तुतः।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, प्राण, मन, चित्त और बुद्धि ये चौदह तत्त्व हैं। सात्त्विक, राजस, तामस् —ये तीन अहंकार हैं। ये सत्रह तत्त्व माने जाते हैं। ये सब माया से उत्पन्न होते हैं। इनसे पृथक अठारहवाँ तत्त्व जीव है जो चेतन और नित्य है। वह इन्द्रियों, मन, बुद्धि तथा प्राणों से पृथक है। प्राचीन काल से विद्वानों की यह मान्यता है कि सत्त्व, रज और तम के साथ इस आत्मा का कोई सम्बन्ध नहीं है। मैं (श्रीचन्द्राचार्य) माया का विषय नहीं हूँ। ये जो संसार के पदार्थ जिस रूप में दिखाई देते हैं, वे वास्तव में वैसे नहीं हैं। वे तो मायिक हैं।

3. मायास्वरूपम्

ययालोके सृष्टं भवति खलु दृष्टं किमपि यत्,
प्रतीते र्याऽसाधारणमपि निमित्तं च जगतः।
गुणानां यो भोगो भवति सुगुणेश्चाप्यनु दिनम्,
इयं मायासत्या तदपि सकलान्मोहयति सा।

संसार में यह जो सृष्टि होती है और जो भी नाम रूपात्मक वस्तुयें दिखाई देती हैं ये सब माया के कारण है। माया अनिर्वचनीया होने पर भी जगत् की प्रतीति का निमित्त है। यह एक प्रकार से गुणों के द्वारा गुणों का भोग है। अनादि काल से यह चला आ रहा है। यद्यपि यह माया असत्य है फिर भी समस्त जीवों को मोह लेती है।

4. जीव ब्रह्म और जगत् का सम्बन्ध

सम्बन्धः परमात्मनोऽथ जगतो जीवस्य तद्वद्यथा,
sम्भोधेः स्वीय तरंग बुद्बुद् पयः फेनादिभिर्जायते,
भिन्ना नैव यथा च वारि निधितः सर्वेविकारास्तथा
ब्रह्मैवास्ति मतं समस्त जगतामालम्बवनं वस्तुतः।

जीव, ब्रह्म और जगत् का वही सम्बन्ध है जो समुद्र के साथ तरंग, बुद्बुद और फेन का होता है। जैसे विशाल समुद्र में बड़ी-बड़ी तरंगे उठती हैं, ज्वार-भाटा आता है तो बुलबुले भी उठते हैं और तट पर सफेद-सफेद झाग भी दिखाई देती है, इनके नाम रूप जुदा-जुदा हो सकते हैं पर ये पदार्थ समुद्र से पृथक नहीं हो सकते।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

भगवान श्रीचन्द्रजी की कुछ रचनाएं

बाबाजी मध्यकालीन युग के अपनी तरह के अनूठे सिद्ध संत थे जिन्होंने शास्त्रों तथा विद्वानों की भाषा संस्कृत के अतिरिक्त, जन-जन की सरल सधुक्कड़ी तथा सरल हिन्दी भाषा में भी विपुल साहित्य सृजन किया। उनकी रचनाओं में विद्वानों की प्रांजलता, सिद्ध योगी की प्रतीकात्मक रहस्यमयता तथा बोधवान् अवधूत की क्रमहीन निरंकुशता और मस्ती है; साथ ही है माधुर्य भाव के महारस में डूबा राधाजी का श्याम मिलन तथा प्रेम दीवानी मीरा की विरह-वेदना। विषय वस्तु की दृष्टि से भी उनकी रचनाओं की सी व्यापकता बहुत कम देखने में आती है।

अब हम सबसे पहले 'श्रीचन्द्र सिद्धान्तपञ्चकम' तथा 'मुक्तिमंजरी' का हिन्दी रूपान्तरण दे रहे हैं जो आचार्यजी की सैद्धान्तिक कृतियां है। उनके अनुशीलन से हमें सहज ही बोध हो जाता है कि उदासीन पंथ भी वेद-पुराण अनुमोदित एकमेवाद्वितीय, अविनाशी, अव्यय, अनन्त सच्चिदानन्द ब्रह्म को ही स्वीकार करता है।

श्रीचन्द्र सिद्धान्तपञ्चकम

1. ब्रह्मस्वरूपम्

जगत्कृत्स्नं यस्मिन् अनवरतमेतत् स्थितमिति,
यदेवैतान् भूतान् रचयति समस्तान्नपि तथा।
यदादौ कल्पान्ते सृजति खलु संस्थापयति च,
विधत्ते संहारं प्रलय समये ब्रह्म तदिति।

समस्त जगत् जिसमें अनादि काल से स्थित रहता है और जो इन समस्त भूतों की उसी प्रकार रचना करता है जैसे पूर्व कल्प में की थी। जो कल्प के आरम्भ में रचना करता है, मध्य में स्थित रहता है और प्रलय काल आने पर उसका संहार करता है, वही ब्रह्म है।

2. जीवस्वरूपम्

जीवोऽष्टादश तत्त्वमेवविदितं स्यादिन्द्रियेभ्यः पृथक्,
प्राणेभ्यो मनसोऽन्यदेव किमसौ बुद्धेस्तथा चित्ततः।
नामुं सत्त्वरजस्तमोमयमिति प्राहुः पुराकोविदाः,
नाहं तद्विषयस्तथा हि न तथैते मायिका वस्तुतः।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, प्राण, मन, चित्त और बुद्धि ये चौदह तत्त्व हैं। सात्त्विक, राजस, तामस् — ये तीन अहंकार हैं। ये सत्रह तत्त्व माने जाते हैं। ये सब माया से उत्पन्न होते हैं। इनसे पृथक अठारहवाँ तत्त्व जीव है जो चेतन और नित्य है। वह इन्द्रियों, मन, बुद्धि तथा प्राणों से पृथक है। प्राचीन काल से विद्वानों की यह मान्यता है कि सत्त्व, रज और तम के साथ इस आत्मा का कोई सम्बन्ध नहीं है। मैं (श्रीचन्द्राचार्य) माया का विषय नहीं हूँ। ये जो संसार के पदार्थ जिस रूप में दिखाई देते हैं, वे वास्तव में वैसे नहीं हैं। वे तो मायिक हैं।

3. मायास्वरूपम्

ययालोके सृष्टं भवति खलु दृष्टं किमपि यत्,
प्रतीते र्याऽसाधारणमपि निमित्तं च जगतः।
गुणानां यो भोगो भवति सुगुणेश्चाप्यनु दिनम्,
इयं मायासत्या तदपि सकलान्मोहयति सा।

संसार में यह जो सृष्टि होती है और जो भी नाम रूपात्मक वस्तुयें दिखाई देती हैं ये सब माया के कारण है। माया अनिर्वचनीया होने पर भी जगत् की प्रतीति का निमित्त है। यह एक प्रकार से गुणों के द्वारा गुणों का भोग है। अनादि काल से यह चला आ रहा है। यद्यपि यह माया असत्य है फिर भी समस्त जीवों को मोह लेती है।

4. जीव ब्रह्म और जगत् का सम्बन्ध

सम्बन्धः परमात्मनोऽथ जगतो जीवस्य तद्वद्यथा,
ऽम्भोद्येः स्वीय तरंग बुद्बुद् पयः फेनादिभिर्जायते,
भिन्ना नैव यथा च वारि निधितः सर्वेविकारास्तथा
ब्रह्मैवास्ति मतं समस्त जगतामालम्बवनं वस्तुतः।

जीव, ब्रह्म और जगत् का वही सम्बन्ध है जो समुद्र के साथ तरंग, बुद्बुद् और फेन का होता है। जैसे विशाल समुद्र में बड़ी-बड़ी तरंगे उठती हैं, ज्वार-भाटा आता है तो बुलबुले भी उठते हैं और तट पर सफेद-सफेद झाग भी दिखाई देती है, इनके नाम रूप जुदा-जुदा हो सकते हैं पर ये पदार्थ समुद्र से पृथक नहीं हो सकते।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

जैसे ये सब समुद्र के विकार हैं, वैसे ही यह सम्पूर्ण जगत् ब्रह्म का विकार है और ब्रह्म ही सबका आलम्बन है।

5. मुक्तिस्वरूपम्

यथा माला ज्ञाने भवति नहि सर्प भ्रम इह,
तथैव स्यान्मायामय मपि निवृत्तं जगदिदम्।
भिदा हेतोः कार्यस्य च किल विनश्यत्यथ तदा,
पर ब्रह्मावाप्तिः कथयति बुधो मुक्तिरितिताम्।

जैसे माला का ज्ञान होने पर अंधकार में सर्प का भ्रम निवृत्त हो जाता है, वैसे ही अद्वितीय ब्रह्म का ज्ञान होने पर यह माया निर्मित जगत् भी निवृत्त हो जाता है। जब भेद की हेतु अविद्या और उसके कार्य का विनाश हो जाता है तब परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है, विद्वान इसी को मुक्ति कहते हैं।

इति श्री श्रीचन्द्राचार्य विरचितं सिद्धान्तपञ्चकंसम्पूर्णम्।

मुक्ति मञ्जरी

रसो वै सः श्रुतिर्ब्रूते यस्यास्वादन मेदुरा,
मेदिनी मोदमानास्ते द्रुमैर्दिव्य रसैर्भृता। (1)
सोऽहं सर्वेषु भूतेषु भाव भूमिर्भवन्मुदा,
यवनो मानवो हिन्दु गौरश्वोहरिरीशिता। (2)
अज्ञान तिमिरान्धोऽपि ज्ञानाञ्जन शलाकया,
ज्योतिर्विज्ञान रूपोऽहं सर्व दर्शनतां गतः। (3)

जगत् की सभी वस्तुओं में अनुगत रस, रूप, एकाकार, जो ब्रह्म है, वही मैं हूँ। अज्ञान दशा में यह देव है, मनुष्य है, हिन्दू और मुसलमान है, यह गौ है, अश्व है — प्रतीत होता है। वस्तुतः शरीर में भेद है, चैतन्य में कोई अन्तर नहीं। सभी का आत्मा मेरा आत्मा है। मैं ज्योति रूप प्रज्ञान ब्रह्म ही हूँ।

आश्रित्यापयथ भक्ति मार्गममलं निम्बार्क रामानुजाः,
सत्यं ब्रह्म जगच्च जीवमपि ते स्वीकुर्वन्ति द्वैतिनः।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

बौद्धा अप्याखिलं जगद् बुधवराः संवृति रूपं तथा
माया संरचितं बुधैर्जगदुदासीनैः कृतं स्वीकृतम् । (4)

निम्बार्क, रामानुज, वल्लभ आदि जितने भी धर्म प्रवर्तक आचार्य हुए हैं, उन सबने निर्मल भक्ति-मार्ग का आश्रयण किया है। वे ब्रह्म, जीव और जगत् को सत्य मानते हैं अतः वे द्वैतवादी हैं, द्वैतवादी ही नहीं त्रैतवादी हैं क्योंकि ये एक साथ तीन-तीन तत्वों को सत्य मानते हैं। विद्वानों में आदर की दृष्टि से देखे जाने वाले बौद्ध भी सम्पूर्ण जगत् को संवृति सत्य के रूप में मानते हैं यानि यह दिखाई देने वाला जगत् संवृति (सम्यक् रूप से आवरण करने वाली) भ्रान्ति का विलास है पर ज्ञानवान उदासीनों का कहना है कि यह प्रतीति का विषय जगत् माया से संचरित है।

माया गुणत्रयवती परिकल्पिता सा,
निर्वाच्य भाव रहिता ss दिविहीन भावा।
तस्यां च चित्प्रतिफलत्य सम प्रकाशा,
तेनैव विश्वमखिलं परिवर्ततेऽत्र । (5)

माया त्रिगुणात्मिका है। सत्त्व, रज, तम— ये तीन गुण ही उसका स्वरूप हैं। इस कारण से यह माया निर्वाच्य भाव से रहित है, यानि अनिर्वचनीय है, इसका निर्वचन नहीं हो सकता। इसका न आदि है, न मध्य है, न अन्त है, अर्थात् तीनों कालों में इसका भाव-अस्तित्व नहीं। इस माया में जब चेतन का प्रकाश पड़ता है तो यह विषमावस्था में आ जाती है। यह समस्त विश्व इस माया का विवर्त है।

(इस माया की निवृत्ति भक्ति-ज्ञान समुच्चय से होती है। और समुच्चय का स्वरूप यह है—)

वृत्तिश्च भक्तिश्च यदैव तत्त्वं, न स्यात्तयोः साधन साध्य भावः।
अतोऽपरा भक्तिरिहास्ति हेतुः वृत्तिं प्रकल्प्यास्ते समुच्चयोऽत्र । (6)

परमात्मा की भक्ति करने से वही भक्तयाकारा चित्तवृत्ति ज्ञान का आकार ले लेती है। अतः भक्ति और ज्ञान में साध्य-साधन भाव नहीं है। पहले चित्त की वृत्ति भक्ति कहलाती थी वही भक्ति जब ज्ञान का रूप ले लेती है तो समुच्चय बन सकता है। यानि आत्मज्ञान होने पर भी भक्ति छोड़ने की आवश्यकता नहीं। भक्ति और ज्ञान दोनों साथ-साथ रह सकते हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

(भक्ति के अनेक भेद हैं। श्रीमद्भागवत में इक्यासी प्रकार की भक्ति गिनाई गयी है।) तो भी इन सबमें प्रपत्ति और शरणागति ही मुख्य हैं। प्रपत्ति और शरणागति में भी अन्तर है। प्रपत्ति में कर्ता की विशेषता होती है, यानि साधक को इसमें स्वयं प्रयास करना पड़ता है। और शरणागति में शरण्य की—जिसकी शरण ली जाती है, उसी की विशेषता होती है।

मुख्यः शरण्यः शरणागतौ च स्यात्कर्तृवैशिष्ट्यमयी प्रपत्तिः। (7)

अतः उदासीनों का यह विशिष्ट सिद्धान्त है कि जीव का मोक्ष भक्ति-ज्ञान समुच्चय से होता है। प्राणीमात्र का यह कर्तव्य है कि भक्ति-ज्ञान के अभ्यास से ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों को रोककर स्वयंप्रकाश आत्मा का प्रत्यक्ष करे। यह आत्मा मेरा स्वरूप ही है, ऐसा निश्चय करता हुआ वह उसी में स्थिर रहे। हंसोऽस्मि का यही अनुभव है। यही ब्रह्मवेत्ता का स्वरूप है।

भक्त्या खानि निभाल्य भूषितमना भासोर्यथा भास्करः
आत्मनं परमात्मनः करगतं सर्वं जगद्वज्जनः।
हंसो मानसरोवरं गत इवमुक्ताग्रहे साग्रहः स्वस्थः
स्वस्थमतिर्व्यवस्थितमनाः स्वं लक्षणं लक्षयेत्। (8)

मुक्ति होने पर फिर कोई दूसरा पदार्थ दिखाई नहीं देता। जीव अपने शुद्ध स्वभाव ज्ञानरूपता को प्राप्त हो जाता है। उपाधि के कारण पहले घटाकाश, मठाकाश आदि की प्रतीति होती थी पर उपाधियों के मिट जाने पर जैसे एक मात्र आकाश ही रह जाता है वैसे शरीर, इन्द्रिय आदि उपाधि के न रहने पर आत्मज्ञान के अनन्तर जीव निर्भय हो जाता है। यह आत्मा की स्वरूप स्थिति है।

यत्पञ्चीकरणं विनैव शरणं यद्यायजूकार्जितम्,
यच्चान्यद्विपदां चतुष्पदभृतामन्तः प्रविश्यस्थितम्।
सर्वं यज्ञमयं विवर्जितभयं यच्चात्र दृश्यं जगत्
तत्राहंकृत हुंकृतैरहमहः सर्वत्र सन्दृश्यताम्। (9)

मैं शुद्ध बुद्ध निर्लिप्त निरंजन हूँ। सर्वात्मक होने पर सारा विश्व मेरा है। जीवन्मुक्त होने से सभी लोकों में मेरा संचार होता है। सभी प्राणियों ने मेरे रूप से पञ्चदेव याग किये हैं। यजमानों के शरीर में जीव रूप से प्रविष्ट होकर उस याग को

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

मैंने ही किया है। पृथिव्यादि पाँच भूत, द्विपाद, चतुष्पाद पशुओं को मैंने ही उत्पन्न किया है। सब देहों में प्रविष्ट होकर उनमें आत्माभिमान करने वाला भोक्ता मैं ही हूँ।

अनादित्वादृतो देही बीजांकुर प्ररोहवत्
मुक्ति शुक्ति स्थितः किन्तु सादिमान्स निगद्यते।

सृष्टि का प्रवाह अनादि है। अंकुर-बीज की तरह प्राणियों के धर्माधर्म के आधार पर यह प्रवाह अनादि कहा जाता है पर मुक्त जीवात्माओं की दृष्टि से इसे सादि भी कहा जा सकता है। यह श्रुतिसम्मत तथ्य है कि मुक्तात्माओं का पुनरावर्तन नहीं होता। मुक्तावस्था के जीव पुनः लौटकर नहीं आते।

इति श्री श्रीचन्द्राचार्य विरचिता मुक्ति मञ्जरी सम्पूर्णा।

रत्न पंचकम्

रत्न पंचकम् के नाम से आचार्य श्रीचन्द्रजी ने संस्कृत में गणेशाष्टकम्, सूर्याष्टकम्, दुर्गाष्टकम्, श्रीकृष्णाष्टकम् तथा शिवाष्टकम् की अति सुन्दर रचनाएं की थीं। इन रचनाओं में पंचदेवों का स्तुतिगान है। इन पंचाष्टकों में भाव लालित्य,विद्वता और भगवान के मीठे गुणगान का अनूठा संगम है। यहाँ पंचाष्टकों का पूज्य आचार्य डॉ० किशोरदासजी स्वामी कृत हिन्दी रूपान्तरण पाठकों तक पहुँचा रहे हैं ताकि वे भी उनके दिव्य और मधुर भाव से भावित हो सकें।

अथ गणेशाष्टक

गणाधिपं प्रोज्ज्वलबुद्धिराशिम्, सिद्धिप्रदं मोदकभोगपण्डितम्।
शिवात्मजं विघ्नविनाशकारकम्, नमामि नागाननपादपंकजम्।

जो सम्पूर्ण गणों के अधिनायक हैं, अत्यन्त प्रकाशशील, चमकती हुई बुद्धि के जो राशि-भण्डार हैं, समस्त सिद्धियों को देने वाले, लड्डुओं का भोग लगाने में पण्डित, भगवान शिव की आत्मा से जन्म लेने वाले, पवित्र कर्मों में आने वाले विघ्नों को मूलतः नष्ट करने वाले और जिनके धड़ पर हाथी का मुख लगा हुआ है, उन श्रीगणेशजी के चरण-कमलों में मैं (श्रीचन्द्राचार्य) बारम्बार नमस्कार करता हूँ।

चतुर्युगे भूरिकृतोद्यतायुधम्, त्रातुं सुरेन्द्रान् बहुशोऽवतारिणम्।
अशेषकार्यप्रथमार्हणं विभुम्, नमामि नागाननपादपंकजम्।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

चारों युगों में धर्माचरणशील व्यक्तियों पर जब-जब विपत्ति आती है, तो उसके निवारण के लिये शस्त्र उठाकर रक्षा के प्रयत्न में सदा तत्पर रहने वाले तथा इन्द्र, वरुण, कुबेर आदि की रक्षा के लिये अनेक अवतार धारण करनेवाले, समस्त कार्यों को आरम्भ करने से पहले पूजा करने योग्य, आकाश के समान व्यापक, जिनके धड़ पर हाथी का मुख लगा हुआ है, उन श्रीगणेशजी के चरण-कमलों में मैं पुनः पुनः नमस्कार करता हूँ।

सुवाहनं मूषिकपृष्ठमाश्रितम्, प्रकृष्टमांगल्यफलाभिवर्षुकम्।
पुरा परिक्रान्तसुमात्रिपूजितम्, नमामि नागाननपादपंकजम्।

बड़ा ही सुन्दर मूषक जिनका वाहन है, उसकी पीठ पर विराजमान, उत्तमोत्तम, मंगलकारक फलों की चारों ओर से वर्षा करने वाले, प्राचीन समय से चारों ओर से आवेष्टित कर श्रेष्ठ माताओं द्वारा पूजित, जिनके कबन्ध पर हाथी का मुख लगा हुआ है, उन श्रीगणेशजी के चरण-कमलों में मैं नमस्कार करता हूँ।

भवच्छिदं योगविधानकोविदम्, कामात्यवाञ्छाहितकल्पपादपम्।
परात्परं युक्तमनस्यधिष्ठितम्, नमामि नागाननपादपंकजम्।

संसार के आवागमन के चक्कर का उच्छेद करने वाले, योग-युक्त होने का उपदेश देने में विशारद, प्रत्येक मानव की मनः कामना पूर्ण करने में जो साक्षात् कल्प वृक्ष के समान हैं, ज्ञान के विकास को लेकर दूसरों से यदि तुलना की जाये तो सबसे श्रेष्ठ, योगयुक्त चित्तवाले साधकों के मन में सदा निवास करने वाले और जिनके कबन्ध पर हाथी का मुख लगा हुआ है, उन श्रीगणेशजी के चरण-कमलों में मैं नमस्कार करता हूँ।

कपित्थजम्बूफलचारुरोचनम्, षट् पाशबद्धस्य जनस्य मोचनम्।
विवेक-वैराग्य-विचार-लोचनम्, नमामि नागाननपादपंकजम्।

कैथ, जामुन आदि सुन्दर-सुन्दर फल जिनको बड़े रुचिकर लगते हैं और छः पाशों में बँधे हुए मनुष्य को मुक्त करने वाले, विवेक, वैराग्य और विचार ही जिनके तीन नेत्र हैं और जिनके कबन्ध पर हाथी का सिर सुशोभित हो रहा है, उन श्री गणेशजी के पाद-पद्मों में मैं बारम्बार नमन करता हूँ।

रामेति नाम्ना वृजिनप्रणाशिनम्, भक्त्यानुरागानुयताविनाशिनम्।
सिन्दूरशोणच्छविभावभासिणम्, नमामि नागाननपादपंकजम्।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

यदि कोई व्यक्ति श्रद्धा से युक्त होकर उनके सामने 'हे राम' ऐसे नाम का उच्चारण कर ले तो उसके संसार प्रवाह का सदा-सदा के लिये उच्छेद कर डालने वाले और यदि कोई व्यक्ति पवित्र मन से सहज भक्ति कर ले तो उसकी रागात्मिका वृत्ति का नाश करने वाले, सिन्दूर लगाने से रक्तवर्ण-कान्ति से विभूषित होने वाले और जिनके धड़ पर हाथी का सिर सुशोभित हो रहा है, उन विघ्ननाशक श्रीगणेशजी के चरण-कमलों में मैं बारम्बार नमस्कार करता हूँ।

ढुण्डिं शिवं साक्षिविनायकं प्रियम्, भालेन्दुमुग्रं कपिलैकदन्तकम्।
गजश्रुतिं मञ्जुमुखं सनातनम्, नमामि नागाननपादपंकजम्।

जो ढुण्डिराज हैं, शिव अर्थात् कल्याण करने वाले, साक्षि विनायक, सबके अत्यन्त प्रिय, भगवान शिव के समान उग्र, अत्यन्त तेजस्वी, कपिलवर्ण तथा एक दाँत धारण करने वाले एवं जिनके सिर पर हाथी के कान लगे हुए हैं, जिनका मुखारविन्द बड़ा सुहावना दिखाई देता है, जो सनातन-शाश्वत विद्यमान रहने वाले, और जिनके धड़ पर हाथी का मुख लगा हुआ है, उन श्रीगणेशजी के पाद-पद्मों में मैं बारम्बार नमस्कार करता हूँ।

भागीरथी-मज्जन-मौर्त-चन्द्रिका, चमत्कृतान्तर्मणिमेखलावृतम्।
ब्रह्मादिभिर्वन्दितहेमपीठकम्, नमामि नागाननपादपंकजम्।

भागीरथी गंगा में अवगाहन करते समय ऐसा प्रतीत होता है मानो मूर्तिमति चन्द्रमा की चांदनी ही स्नान कर रही हो। अपनी चमक से चमत्कार पैदा कर देने वाली अगणित मणियों से बनी मेखला से युक्त जिनके स्वर्णपीठ को ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवता भी नतमस्तक हो नमस्कार करते हैं, ऐसे समस्त विघ्नों का हरण करने वाले एवं जिनके धड़ पर हाथी का मुख लगा हुआ है, उन श्रीगणेशजी के चरण-कमलों में मैं बारम्बार नमस्कार करता हूँ।

श्रीचन्द्रदेवप्रति निर्मिताष्टकम्,
गणेशपादाम्बुजभक्तिवर्धनम्।
पठन् जनः शम्भु-सुतं च संस्मरन्,
प्राप्नोति कामान् मनसाभिकल्पितान्।

यह जो श्रीचन्द्राचार्य के द्वारा निर्मित अष्टक है, यह श्रीगणेशजी के चरण-कमलों में भक्ति को बढ़ाने वाला है। अर्थात् यदि कोई इस अष्टक का पाठ कर ले

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

तो उसके मन में गणेशजी के प्रति उत्तरोत्तर भक्ति का विस्तार होता जाता है। यदि कोई नित्यप्रति इसका पाठ करे और शंकर-पुत्र गणेशजी का भली प्रकार स्मरण कर ले, तो सभी प्रकार के विघ्नों के सिर पर पैर रखकर अमरता की पदवी का सेवन करता है अर्थात् संसार-बंधन से मुक्त होकर परमपद को प्राप्त करता है।

अथ महेश्वराष्टक

महानटं पञ्चमुखं गजान्तकम्, शिवं शरच्चन्द्रमरीचिरोचिषम्।
स्वलीलया ध्वस्तमनोभवं भवम्, नमामिविद्याधिपतिं महेश्वरम्।

जो महानट हैं, पाँच मुख धारण करते हैं, गज का अन्त करने वाले और शरद ऋतु के चन्द्रमा के समान जिनके प्रकाश की किरणों की कान्ति है, नट के समान अपनी लीला मात्र से कामदेव को जला देने वाले तथा संसार का प्रलय कर देने वाले, विद्या के अधिपति जो देवाधिदेव महान् ईश्वर हैं, उनको मैं श्रीचन्द्राचार्य नमस्कार करता हूँ।

प्रसन्नगौरीमुखवीक्षणाकुलम्, जटास्खलग्दांगजलोर्मिमालिकम्।
तमाशुतोषं प्रणतार्तिमोचनम्, नमामिविद्याधिपतिं महेश्वरम्।

प्रसन्नता से खिले हुए श्रीगौरीजी के मुखारविन्द को देखने में सदा लीन, जिनकी जटाओं में श्रीविष्णु के चरण-नख से प्रकट होने वाली भगवती गंगाजी के जल की तरंगे उठती रहती हैं, उन तरंगों को सजाने वाले माली एवं गंगा-जल का एक लोटा, थोड़ी सी भांग, धतूरे का एक पुष्प मात्र चढ़ा देने पर जल्दी प्रसन्न हो जाने वाले, श्रद्धा-भक्ति से नत मस्तक होकर जो आपके शरणागत हो जाते हैं, उनकी समस्त पीड़ाओं को दूर करने वाले, ऐसे विद्या के अधिपति देवाधिदेव भगवान शिव को मैं नमस्कार करता हूँ।

शशांकमौलिं सितभस्मरूषितम्, भुजंगभूषावलयैर्विभूषितम्।
गजेन्द्रचर्माम्बरमम्बिकापतिम्, नमामिविद्याधिपतिं महेश्वरम्।

जिनके मस्तक पर मणिजटित मुकुट के समान चन्द्रमा सुशोभित हो रहा है, जिनके वदन पर सफेद भस्म रमी हुयी है, कंकण के समान भुजंग-सर्प ही जिनके आभूषण हैं, उनसे विभूषित, सुशोभित, गजेन्द्र-गजराज का चमड़ा ही जिनका वस्त्र

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

है, जो माता सती के पति हैं, ऐसे विद्या के स्वामी देवाधिदेव भगवान को मैं नमन करता हूँ।

वृषाकपिं क्षेमनिधिं वृषध्वजम्, मखान्तकं दक्षकृपावसायिनम्।
गिरीन्द्रकन्यार्चितपादपंकजम्, नमामिविद्याधिपतिं महेश्वरम्।

जो वृषाकपि हैं, शान्ति के भण्डार हैं, वृषभ बैल जिनका वाहन है। भेद-बुद्धि बरतने पर यज्ञ को नष्ट करने वाले, एवं जब दक्ष ने समता को अपनाकर पुनः पूजा की, तो उसे ब्रह्मदृष्टि प्रदान करने वाले, नगाधिराज हिमालय की पुत्री उमा द्वारा जिनके चरण-कमलों की पूजा निरन्तर होती रहती है, उन सब प्रकार की विद्याओं के अधिपति, देवाधिदेव भगवान शिव को मैं नमस्कार करता हूँ।

महाश्मशानादिमयूख लिंगभृत्, समस्तदेवासुरवृन्दपूजितम्।
महाप्रभावं प्रकृतेः परं विभुम्, नमामिविद्याधिपतिं महेश्वरम्।

महाश्मशान के भस्म आदि चिन्हों को धारण करने वाले, समस्त देव, दानव, मानव आदि के समूह से पूजित, अत्यन्त प्रभावशाली, प्रकृति से पर एवं जो आकाश के समान व्यापक हैं, उन विद्याओं के अधिपति देवाधिदेव भगवान शिव को मैं नमस्कार करता हूँ।

श्रियः प्रियं पत्युरभीष्टसाधकम्, गिरीश्वरं विश्ववितीर्णवैभवम्।
महोग्ररूपं पशुपं पुरान्तकम्, नमामिविद्याधिपतिं महेश्वरम्।

श्रीराधा, सरस्वती, गौरी और भक्ति आदि—ये सब श्री के ही तो रूप हैं, उस श्री को प्रिय लगने वाले आप ऐसे पति हैं कि सबके अभीष्ट सिद्ध कर देते हैं। हिमालय ने आपके चरणों का आश्रय लिया है तो वह विश्व विख्यात हो गया और अनन्त वैभव से सम्पन्न हो गया। जो नासमझ लोग आपकी बनायी मर्यादा को भंग करते हैं, उनके प्रति अत्यन्त उग्र रूप धारण करने वाले, चार पाशों में बँधे हुए जो जीव हैं, उनका पालन करने वाले, मयदानव द्वारा बनाये गये तीन पुरों को नष्ट करने वाले, ऐसे समस्त विद्याओं के अधिपति महेश्वर को मैं नमस्कार करता हूँ।

निरामयं शूलभृतं त्रिलोचनम्, परेशमीशानमनन्यसौहृदम्।
सुनीलकण्ठं शशिवर्णविग्रहम्, नमामिविद्याधिपतिं महेश्वरम्।

जिनमें कोई आधि-व्याधि नहीं है जो त्रिशूल धारण करते हैं, दो नेत्र और तीसरा ज्ञानमय नेत्र, इनको मिलाकर जो त्रिलोचन हैं, परात्पर जो ईश हैं, ईशान दिक्

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

के स्वामी जिनके समान कोई सहृदय नहीं है, परोपकार के लिये विष पीने से जिनका कण्ठ नीला है, चन्द्रमा के समान स्वच्छ श्रीविग्रह को धारण करने वाले, जो समस्त विद्याओं के अधिपति भगवान शिव हैं, उनके चरणों में मैं नमस्कार करता हूँ।

विचिन्त्यमानं शरणागतैर्जनैर्विधूतकैलाशकपर्दिकान्तिकम्।
पिनाकपाणिं परमं प्रजेश्वरम्, नमामिविद्याधिपतिं महेश्वरम्।

शरणागत भक्त अन्तर्मुख होकर जिनका सदा चिन्तन करते रहते हैं, अपने श्रीविग्रह से कैलाश पर्वत की शोभा को तिरस्कृत करने वाले, जिनके हाथ में पिंनाकी धनुष सुशोभित होता रहता है, प्रजा के जो परमेश्वर हैं, ऐसे विद्याओं के अधिपति भगवान शिव को मैं नमस्कार करता हूँ।

इदं शिवाष्टकं पुण्यं श्रीचन्द्राचार्यभाषितम्।
यः पठेत् प्रातरुत्थाय स विद्यां लभते शुभाम्।

श्रीचन्द्राचार्य द्वारा कहा हुआ यह जो पवित्र शिवाष्टक है, इसका जो व्यक्ति प्रातःकाल उठकर पाठ करता है, वह सुविद्या को प्राप्त कर लेता है।

अथ सूर्याष्टकम्

दिवाकरं दीप्तिनिधिं द्युतेः पतिम्, दिङ्मण्डलोद्योतितपद्मिनीमुखम्।
हंसं हरिं सप्तहयं विबोधकम्, सहस्रभानुं प्रणमाम्यहं रविम्।

दिन में प्रकाश करने वाले, सौन्दर्य के खजाने, कान्ति के स्वामी, चारों दिशाओं में कमलिनियों के मुखों को विकसित करने वाले, मानसरोवर झील में रहने वाले तथा दूध-पानी को अलग करने वाले हंस पक्षी के समान आत्मा-अनात्मा का ज्ञान कराने वाले, मनुष्य के सभी प्रकार के कर्म-मलों को हरने वाले, वेद के छन्दरूपी सात घोड़े जिनके रथ में सदा जुते रहते हैं, जैसे किरणें पड़ने से कमल खिल जाता है, वैसे बुद्धि को विशेष ज्ञान देकर विकसित कराने वाले तथा हजारों किरणों से युक्त भगवान् सूर्य नारायण को मैं श्रीचन्द्राचार्य बारम्बार नमस्कार करता हूँ।

मुष्णन्तमुष्णैस्तमसामभीषुभि, स्तोमं स्तुतं वेदवचोभिरव्ययैः।
दशारचक्रान्तरसुप्रतिष्ठितम, सहस्रभानुं प्रणमाम्यहं रविम्।

अपनी तीक्ष्ण प्रकाशमयी किरणों से जो अन्धकार को छितरा दिया करते हैं। अव्यय, अविनाशी सामवेद के वाक्यों द्वारा जिनकी निरन्तर स्तुति होती रहती है,

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

जिसके पहियों में दस अरे लगे हुए हैं, ऐसे सुन्दर रथ में भली प्रकार विराजमान, हजारों-हजारों प्रकाश की किरणों से सुशोभित भगवान् सूर्य नारायण को मैं बारम्बार नमस्कार करता हूँ।

आलोकयन्तं भुवनं दिशां प्रभुम्,ज्योतींषि सत्त्वानि समूहितत्विषा।
विभावयन्तं चितिजीवितप्रदम्, सहस्रभानुं प्रणमाम्यहं रविम्।

अन्तरिक्ष में विचरण करके समस्त ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करने वाले दसों दिशाओं के जो स्वामी हैं, अपनी कान्ति से आकाश में विचरने वाले मंगल-बुद्ध आदि नक्षत्रों को प्रकाशित करने वाले तथा मनुष्यों की बुद्धि को तर्क-वितर्क करने की शक्ति प्रदान करने वाले, कर्मारूढ़ समस्त प्राणियों को चेतना-शक्ति के रूप में जीवन प्रदान करने वाले, हजारों-हजारों किरणों से सुशोभित भगवान् सूर्य नारायण को मैं बारम्बार प्रणाम करता हूँ।

सत्यं जलैकाञ्जलिमात्रतुष्टम्, दयामयं द्वादशमूर्तियोगम्।
क्रियापथेष्वाततमुत्तरायणम्, सहस्रभानुं प्रणमाम्यहं रविम्।

यह बात सत्य है कि मात्र चुल्लुभर पानी से आप सन्तुष्ट हो जाते हैं। आप साक्षात् दया की मूर्ति हैं। द्वादश ज्योतिर्लिंगों के योग-फल से आपकी यह तेजोमयी आकृति प्रकट हुयी है। कर्म-मार्ग पर आरूढ़ होकर आपने उत्तरायण और दक्षिणायन मार्गों का विभाजन किया है। ऐसे हजार-हजार किरणों से सुशोभित भगवान् सूर्य नारायण को मैं प्रणाम करता हूँ।

गभस्तिमन्तं तिरयन्तमन्तरा, गोभिर्गवामुद्गतमायति गवम्।
यामाष्टभिन्नस्य भवस्य भावनम्, सहस्रभानुं प्रणमाम्यहं रविम्।

अन्तरिक्ष में अपने तेजोमय प्रकाश बिखेरते हुए जो तिरछा गमन करते हैं, अपनी किरणों से गौओं का कल्याण करनेवाले, नित्यप्रति अन्तरिक्ष में पचास करोड़ योजन की यात्रा तय करने वाले, घड़ी, पल, निमेष, दिन, रात का विभाग करने वाले, सहस्र-किरण भगवान् सूर्य नारायण को मैं श्रीचन्द्राचार्य बारम्बार नमस्कार करता हूँ।

कलिन्दजामज्जदभीष्टदायिनम्, विभुं विवस्वन्तमनन्तशासनम्।
दिनाधिनाथं द्युमणिं दशप्रभम्, सहस्रभानुं प्रणमाम्यहं रविम्।

कलिन्द पर्वत से निकलनेवाली कालिन्दी आप सूर्य की तनया ही तो हैं, उसमें यदि कोई स्नान कर ले, तो आप उस व्यक्ति को उसकी इच्छानुसार फल प्रदान करती

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

हैं। आप व्यापक, सूर्यनारायण हैं। आपका शासन अनन्त है, अर्थात् तीनों लोकों के आप शासक हैं। आप दिन के अधिनायक हैं। आकाश में मणि के समान चमकते रहकर दसों दिशाओं को आलोकित करते रहते हैं। ऐसे हजारों-हजारों किरणों से प्रकाशित होने वाले सूर्य नारायण को मैं बारम्बार प्रणाम करता हूँ।

आकृष्णवर्त्मान्तरचारिगौरवैर्गुरुं प्रसूतिस्थितिनाशकारणम्।
विद्यात्रि नारायणशंकरात्मकम्, सहस्रभानुं प्रणमाम्यहं रविम्।

अपनी महत्वपूर्ण किरणों के द्वारा राहु तक अन्तरिक्ष में विचरण करने वाले, वृहस्पति की उत्पत्ति, स्थिति, लय का कारण, वेदत्रयी—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद में जिनका साक्षात् नारायण—श्रीविष्णु एवं शंकर के रूप में वर्णन किया गया है, उन हजारों-हजारों किरणों से शोभायमान भगवान् सूर्य को मैं बारम्बार प्रणाम करता हूँ।

पुवां पुवं पुण्यनिधिं पपीं पपुम्, मित्रं मृजं मृष्ट—मयूखमालिनम्।
सावित्रिनाथं सवितारमीश्वरम्, सहस्रभानुं प्रणमाम्यहं रविम्।

संसार के पवित्र पदार्थों में जो पवित्रतम् हैं, साक्षात् पुण्य के निधि खजाना हैं। पपीं अर्थात् चन्द्रमा को प्रकाश देकर, पपुं अर्थात् पिता के समान पालन-पोषण करनेवाले हैं। जो संसार भर के मित्र हैं।

मृजं अर्थात् अन्धकार को पोंछ देनेवाले, मृष्ट, जो नितान्त स्वच्छ या निर्मल हैं, जिनमें किसी प्रकार का कलंक या धब्बा नहीं है, मयूखमालिनम् अर्थात् किरणों का बगीचा सजाने में जो चतुर माली हैं। सावित्रिनाथं अर्थात् गायत्री माता के अधिष्ठातृ देवता हैं। सवितारम् अर्थात् सृष्टि के जनक और ईश्वरम् अर्थात् उत्तम से उत्तम फल देने वाले ईश्वर हैं। ऐसे हजारों-हजारों किरणों से शोभायमान भगवान् सूर्य नारायण को मैं बारम्बार नमस्कार करता हूँ।

कृतं श्रीचन्द्रैर्यः पठति खलु सूर्याष्टकमिदम्,
प्रदोषे प्रातर्वा यदुत किल गायत्यनुदिनम्।
रुजोसाध्याः सर्वा अपि गलितगर्वाः सपदि ताः,
व्रजन्त्यन्यद् भीता भवति च रवौ भक्तिरचला।

श्रीचन्द्राचार्य द्वारा विरचित इस सूर्याष्टक को जो प्रातःकाल, सायंकाल अथवा नित्यप्रति मुख से उच्चारण करता हुआ गाता है, उसके तत्क्षण सभी असाध्य रोग अपने गर्व को त्यागकर तिरोहित हो जाते हैं। वे डरकर थर-थर काँपते हुए उन

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

लोगों के शरीर में प्रवेश करते हैं, जो सूर्य को कभी जलाञ्जलि नहीं देते। परन्तु जो व्यक्ति स्तोत्र का पाठ करते हैं, रोगों को उनकी तरफ देखने का साहस नहीं होता, उनके हृदय में भक्ति प्रवेश करके फिर कभी निकलती नहीं।

अथ दुर्गाष्टकम्

समस्तसम्पत्समवाप्तिसाधनैरनन्यचेतोभिरुपासितां सदा।
दिव्यायुधैर्दिव्यगुणैश्च शोभिताम्, नमामि दुर्गां करुणामयीं शिवाम्।

संसार की जितनी भी सम्पदायें हैं, उन्हें प्राप्त करने के लिये जो भी उपाय हैं, उनका अनुष्ठान करते हुए साधक सदा आपकी उपासना किया करते हैं। आप दिव्य आयुध और दिव्य गुणों से सदा सुशोभित होती हैं, ऐसी कल्याण करने वाली करुणामयी दुर्गा माता को मैं नमन करता हूँ।

प्रचण्डपापौघविनाशकारिणीम् प्रभूतकारुण्यसुधाविधायिनीम्।
विसर्ग-सर्गादिगुणातिशायिनीम्, नमामि दुर्गां करुणामयीं शिवाम्।

पाप चाहे छोटे हों या बड़े हों, सूखे हों या गीले हों, अर्थात् नये हों या पुराने हों, निर्बल हों या प्रचण्ड हों, पापों का कैसा भी समूह क्यों न हो, आप उन सबका विनाश कर देती हैं। सृष्टि-प्रलय करने वाले प्रकृति के गुण हैं, आप उनसे अतीत हैं। ऐसी कल्याण करने वाली करुणामयी माँ दुर्गा को मैं श्रीचन्द्राचार्य नमस्कार करता हूँ।

अनारतं यां विदुरन्नपूर्णिकाम्, विदग्धलीलोचितचारुचन्द्रिकाम्।
अशेषमांगल्यनिधिं पराम्बिकाम्, नमामि दुर्गां करुणाम्बिकां शिवाम्।

निरन्तर अन्न प्रदान करने के कारण लोग जिन्हें 'अन्नपूर्णा' के रूप में जानते हैं, सृष्टि-निर्माण में निपुण परमेश्वर की लीला सम्पन्न करने के लिये जो खिली हुई चन्द्रमा की चांदनी के समान हैं तथा मंगल प्रदान करने वाली जितनी भी ऋद्धियां-सिद्धियां हैं, उनकी निधि आप परामातृका हैं—ऐसी कल्याण करने वाली माँ दुर्गा को, जिनके हृदय में लबालब करुणा भरी हुई है, मैं श्रीचन्द्राचार्य नमस्कार करता हूँ।

विनम्र भावो चितदानतोषिताम्, कुशेशयाध्यासितपादपंकजाम्।
यज्ञेषु दानेषु सुमूर्तिधारिणीम्, नमामि दुर्गां करुणाम्बिकां शिवाम्।

यदि कोई विनम्र भाव से श्रद्धा-भक्ति से युक्त होकर छोटी-से-छोटी वस्तु भी दान-दक्षिणा के रूप में आपको समर्पित करे, तो आप सन्तुष्ट हो जाती हैं। भक्त

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

आपको इस रीति से संतुष्ट किया ही करते हैं। कुशा पर शयन करने वाले विरक्त लोग आपके चरण-कमलों को आधार मानकर उनका आश्रयण करते हैं। बड़े-बड़े यज्ञों में और दान देने के अवसर पर सुन्दर मूर्ति को धारण करने वाली, कल्याण करने वाली करुणामयी जगमाता भगवती दुर्गा को मैं श्रीचन्द्राचार्य नमस्कार करता हूँ।

प्रपन्नदीनार्तिहरीं सुभाषिणीम्,पवित्रिताभ्यन्तरलोचनोन्मुखीम्।
अनादिमायाकृतविश्वकौतुकाम्,नमामि दुर्गां करुणामयीं शिवाम्।

प्रपत्ति भक्ति करने वाले जो दीन-निरभिमान हैं, उनकी पीड़ा को हरने वाली, मधुरभाषिणी, अन्तःकरण की पवित्रता से अन्तर्मुख होकर ध्यान करने वालों की ओर उन्मुख, अनादिमाया से रचे गये विश्व के लिये कौतूहलस्वरूप, कल्याण करने वाली करुणामयी भगवती जगदम्बा को मैं श्रीचन्द्राचार्य नमस्कार करता हूँ।

प्रसन्नहासारुणलोचनोन्मदाम्, सलीलहेलादितसार्वलौकिकीम्।
स्वीयप्रभामेयपदे विजित्वरीम्, नमामि दुर्गां करुणामयीं शिवाम्।

आप प्रसन्नतापूर्ण हंसी से हंसती रहती हैं। भक्तों के मन में उन्माद पैदा करने वाले आपके अरुण वर्ण के खिले हुए नेत्र हैं तथा अपनी सुन्दर-सुन्दर लीलाओं से आप तीनों लोकों को आह्लादित करती रहती हैं। अपनी ज्ञानमयी प्रभा से प्रमाणों के द्वारा ज्ञात होने वाले मेयपद अर्थात् परमपद को अपनी महिमा से जीतने वाली, कल्याणकारी करुणायुक्त जगन्माता दुर्गा को मैं बार-बार नमन करता हूँ।

परापरब्रह्मविवेककौशलाम्, प्रदक्षिणामात्रफलप्रदां सतीम्।
विनोदवाचा रुदितश्च बालको, नमामि दुर्गां करुणामयीं शिवाम्।

परा विद्या के द्वारा परब्रह्म परमात्मा का विवेक करने में कुशल, केवल प्रदक्षिणा कर लेने मात्र से परम फल मोक्ष प्रदान करने वाली, परम सती—विनोदपूर्ण वाणी से ऊँचे स्वर से रुदन करता हुआ अल्पमति यह बालक, आपकी स्तुति कर रहा है। कल्याण करने वाली करुणामयी माँ दुर्गा को मैं नमस्कार करता हूँ।

कृतान्तभीतस्य जनस्य मुक्तिदाम्, मरालमन्दोन्मदपादपूजिताम्।
प्रपन्नभक्तार्पितदिव्यदर्शनाम्, नमामि दुर्गां करुणात्मिकां शिवाम्।

यमराज से डरे हुए व्यक्तियों को मुक्ति प्रदान करने वाली, हंसों के मन में उन्माद पैदा करने वाले दिव्य कमलों से अर्चित हैं जिनके चरण-कमल और प्रपन्न

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

भक्तों को दिव्य-दर्शन प्रदान करने वाली, कल्याणमयी, करुणायुक्त हृदयवाली माँ भगवती दुर्गा को मैं नमस्कार करता हूँ।

इदं देव्यषटकं पुण्यं श्रीचन्द्राचार्य भासितम्।
उदासीनधिया ध्यात्वा दुर्गाया विन्दते कृपाम्।

श्रीचन्द्राचार्य द्वारा कहे हुए इस पवित्र देवी के अष्टक का जो व्यक्ति उदासीन अर्थात अध्यात्म बुद्धि से ध्यान करता हुआ पाठ करता है, वह माँ दुर्गा की कृपा को प्राप्त कर लेता है।

अथश्रीकृष्णाष्टकम्

व्रजाधिपं सर्वजगद्विधायकम् वसन्तमन्तर्हृदि सर्वदेहिनाम्।
सख्रीजन प्रेमसुधासमुत्सुकम्, नमामि कृष्णं यदुवंशनायकम्।

जो व्रज के स्वामी हैं, समस्त जगत् की स्थापना करने वाले, अध्यात्म-ज्योति के रूप में सभी प्राणियों के हृदय में निवास करने वाले, सखियों से मिलने वाले, प्रेमरूपी अमृत के लिये ललकने वाले अर्थात् अत्यन्त उत्कन्ठा रखने वाले, यदु अर्थात् सात्वत् वंश के अधिनायक श्रीकृष्ण के चरणों में मैं श्रीचन्द्राचार्य बारम्बार नमस्कार करता हूँ।

चिदात्मनापालितविश्वमण्डलम्, सदात्मनाचेष्टितसर्वमंगलम्।
सदात्मनामुक्तिसुखैकदायकम्,नमामि कृष्णं यदुवंशनायकम्।

चैतन्य के रूप में समस्त ब्रह्माण्ड का पालन करने वाले और प्राणियों के अन्दर होने वाली सत्ता या अस्तित्व के रूप में सभी प्रकार की मांगलिक चेष्टाएं करने-कराने वाले और अस्तित्व के रूप में ही मुक्ति के परम सुख को देने वाले यदुवंश-शिरोमणि भगवान् श्रीकृष्ण को मैं श्रीचन्द्राचार्य नमस्कार करता हूँ।

अजं पुमांसं वसुदेवबालकम्, प्रभुं मुकुन्दं भुवनस्य पालकम्।
निजात्मयुक्तं सुसमाधियोगिनम्, नमामि कृष्णं यदुवंशनायकम्।

अजन्मा होकर भी अपनी माया से मनुष्यरूप में वासुदेव के रूप में जन्म लेने वाले, जो साक्षात् प्रभु हैं, कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थ हैं, मुकुन्द अर्थात् मुक्ति को देनेवाले, ब्रह्माण्ड का पालन करनेवाले, अपनी आत्मा में ही योगयुक्त होकर रमण करनेवाले, योगियों के लिये निर्विकल्प समाधि से प्राप्त करने योग्य, यदुवंश-मुकुटमणि

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

भगवान् श्रीकृष्ण को मैं नमस्कार करता हूँ।

प्रियां समालिंगितविग्रहश्रिया, श्रियां निधानं शिखिपिच्छशेखरम्।
क्वणत्पदाभ्योरुहनूपुरादिकम्, नमामि कृष्णं यदुवंशनायकम्।

श्रीराधाजी का आलिंगन करने से उन्हीं की कान्ति से जिनका श्रीविग्रह सुशोभित हो रहा है, जो साक्षात् सौन्दर्य की खान हैं, मोर-पंख का मुकुट धारण करने वाले, नूपुर धारण करने से जिनके चरण-कमल रुनझुन की झंकार कर रहे हैं, उन यदुवंश-नायक श्रीकृष्ण को मैं बारम्बार नमस्कार करता हूँ।

अनन्यराधाहृदयैकवल्लभम्, मनोजमानादिविकारचोरितम्।
समुक्तगुञ्जाहरिनीलहारकम्, नमामि कृष्णं यदुवंशनायकम्।

जो श्रीराधाजी सिवा कृष्ण के और किसी को जानतीं ही नहीं, उनके हृदय के एक मात्र प्रिय, काम-क्रोध, लोभ-मोह, मद-मस्तर जो चित्त के विकार हैं, उनको चुराने वाले, मोती, रत्ती, पन्ना, हीरा, नीलम आदि का हार जिनके गले में सुशोभित हो रहा है—ऐसे यदुवंश-शिरोमणि भगवान श्रीकृष्ण को मैं बारम्बार नमस्कार करता हूँ।

कलौ मलौघाह्वतलोकरक्षतम्, व्रजांगनानां नवनीतभक्षकम्।
धनञ्जयस्यन्दनयोगरक्षकम्, नमामि कृष्णं यदुवंशनायकम्।

कलिकाल में लोगों के अन्तःकरण पर होने वाले राग-द्वेष आदि मलों के समूह को हरने वाले, सम्पूर्ण चराचर जगत् की रक्षा करने वाले, व्रज की स्त्रियों का ताजा माखन खाने वाले, शत्रुओं के धन को जीतने वाले, अर्जुन के रथ के सारथि बनकर उसकी रक्षा करने वाले, यदुवंश-नायक परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्ण के चरणों में मैं बारम्बार नमस्कार करता हूँ।

कुरुं गरीयानसमन्तमव्ययम्, विभुं समेषां इतरं सनातनम्।
मनीषिवेणुध्वनिचित्तहारकम्, नमामि कृष्णं यदुवंशनायकम्।

पापी कुरुवंश के लिये जो कुरुक्षेत्र के मैदान में बड़े भारी योद्धा सिद्ध हुए, जो अविनाशी, अव्यय, सनातन हैं, अपनी वेणु के नाद से बड़े-बड़े योगियों के चित्त को हरने वाले—ऐसे यदुनायक भगवान् श्रीकृष्णजी के चरणों में मैं श्रीचन्द्राचार्य बारम्बार नमस्कार करता हूँ।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

वृषार्कजापादरजोऽभिलाषुकम्, स्वधर्मरक्षार्थमुदीरविग्रहम् ।
मदान्धकंसादिविमोक्षकारकम्, नमामि कृष्णं यदुवंशनायकम् ।

वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाजी के चरण-कमलों की धूलि की अभिलाषा रखने वाले, पुरातन-सनातन, अव्यय-अविनाशी, स्वधर्म की रक्षा के लिये शरीर धारण करने वाले, मदोन्मत्त कंस, जरासंध, शिशुपाल, दन्तव्रक आदि का संहार करके उन्हें सायुज्य मोक्ष प्रदान करने वाले यदुवंश-नायक श्रीकृष्ण भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ ।

श्रीचन्द्रसंरचिमष्टकमद्भुतं श्रीकृष्णाष्टकं पठति योष्यनिशं मनुष्यः ।
तीर्त्वा भवाब्धिमतिदुस्तरमाधिभूतम्, भीतिं जरामरणजां विधुनोति सद्यः ।

श्रीचन्द्राचार्यजी द्वारा रचा गया अत्यन्त अद्भुत जो यह श्रीकृष्णाष्टक है, इसे जो मनुष्य नित्यप्रति प्रातः व सायं पढ़ता है, वह आधि-व्याधि से युक्त इस दुस्तर संसार-सागर को पार करके शीघ्र ही जन्म-मृत्यु से होने वाले भय को उतार फैंकता है । अर्थात् वह व्यक्ति सभी प्रकार के भयों से पार हो जाता है ।

यह था श्रीचन्द्राचार्यजी द्वारा रचित दिव्य भावामृत का महाप्रसाद !

जैसा कि हम जानते हैं श्रीचन्द्रजी ने केवल संस्कृत भाषा में ही साहित्य-सृजन नहीं किया । चूँकि उन्हें तो जन-जन से आध्यात्मिक संवाद करना था; उन्हें सामाजिक व धार्मिक रूढ़ियों से मुक्त कराना था, अतः उन्होंने साधारण लोगों की भाषा में भी जन प्रतीकों के माध्यम से विपुल सद्साहित्य का सृजन किया ।

सधुक्कड़ी भाषा में लिखा गया मात्रा शास्त्र के नाम से उनकी उत्कृष्ट रचना उदासीन पंथ में वेदों की तरह समादृत है ।

मात्रा का अर्थ होता है माप, मानक, अर्थात् सच्चे संत की क्या कसौटी-माप है । मात्रा का अन्य अर्थ अलंकार है—अर्थात् सच्चे संत के आभूषण । मात्रा का अर्थ माता भी बताया गया है, अर्थात् जो भली-भाँति अनुशीलन करने पर माता के समान रक्षा करे । इस काव्य में भगवान ने आध्यात्मिक साधना के गूढ़ार्थ, भगवद्प्राप्ति, सम्यक् आचार-विचार, सच्चे संन्यासी के कर्तव्य आदि विषयों पर बहुत सरल भाषा में उपदेश किया है । लीजिये, आस्वादन कीजिये—

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

मात्रा शास्त्र

कहु रे बाल
किसने मूँडा किसने मुंडाया, किसका भेजा नगरी आया।
सद्गुरु मूँडा लेख मुंडाया, गुरु का भेजा नगरी आया।
चेतहु नगरी तारहु गावं, अलख पुरुष का सुमिरहु नावं।
गुरु अविनाशी खेल रचाया, अगम निगम का पन्थ बताया।
ज्ञान की गोदड़ी खिमा की टोपी, यत का आड़बन्द शील लंगोटी।
अकाल खिन्था निराश झोली, युक्त का टोप गुरुमुखी बोली।
धर्म का चोला सत्य की सेली, मर्याद मेखला लै गले मेली।
ध्यान का बटुआ नृत का सूईदान, ब्रह्म अन्चला लै पहिरे सुजान।
बहुरंगी मोरछड़ निर्लेप विष्टी, निर्भव जंगडोरा नाको द्विष्टी।
जाप जंगोटा सिफत उड़ानी, सिंगी शब्द अनाहद गुरुवाणी।
शर्म की मुद्रा शिव विभूता, हरिभक्ति मृगानी लै पहिरे गुरुपूता।
संतोष सूत विवेक धागे, अनेक टल्ली तहाँ लागे।
सुरत की सुई लै सद्गुरु सीवे, जो राखे सो निर्भउ थीवे।
स्याह सफेद ज़रद सुरखाई, जो लै पहिरै सो गुरुभाई।
त्रैगुण चकमक अग्नि मथि पाई, दुःख सुख धूनी देहि जलाई।
संयम कपाली शोभाधारी, चरण-कमल में सुरति हमारी।
भाव भोजन अमृत कर पाया, भला बुरा मन नहीं बसाया।
पात्र विचार फरुआ बहुगुणा, करमण्डल तुम्बा किस्ती घणा।
अमृत प्याला उदक मन दिया, जो पीवे सो शीतल भया।
इड़ा में आवे पिंगला में धावे, सुषुमन के घर सहज समावे।
निराश मठ निरन्तर ध्यान, निर्भव नगरी दीपक गुरुज्ञान।
स्थिर ऋद्धि अमर पद दण्डा, धीरज फहुड़ी तपकर खण्डा।
वशकर आसा समदृष्टि चौगान, हर्ष शोक नहीं मन में आन।
सहज वैरागी करे विराग, माया मोहनी सकल त्याग।
नाम की पाखर पवन का घोड़ा, निःकर्म जीन तत्व का जोड़ा।
निर्गुण ढाल गुरु शब्द कमान, अकल संजोह प्रीति के बान।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

अक्ल की बरछी गुणों की कटारी, मन को मार करो असवारी।
विषम गढ़ तोड़ निर्भय घर आया, नौबत शंख्र नगारा बाया।
गुरु अविनाशी सूषम वेद, निर्वाण विद्या अपार भेद।
अख्रण्ड जनेऊ निर्मल धोती, सोहं जाप सच माल पिरोती।
शिक्षा गुरु मन्त्र गायत्री हरिनाम, निश्चल आसन कर विश्राम।
तिलक सम्पूर्ण तर्पण यश, पूजा प्रेम भोग महारस।
निर्वैर सन्ध्या दर्शन छापा, वाद विवाद मिटाओ आपा।
प्रीति पीताम्बर मन मृगछाला, चीत चितम्बर रुणझुण माला।
बुद्धि बाघम्बर कुलह पोस्तीन, ख्रौस ख्रडावां इह मति लीन।
तोड़ा चूड़ा और जंजीर, लै पहिरै साधु उदासी धीर।
जटाजूट मुकुट सिर होई, मुक्ता फिरे बन्ध नहीं कोई।
नानक पूता श्रीचन्द बोले, जुगत पछाने तत्त्व विरोले।
ऐसी मात्रा लै पहिरै कोई, आवागमन मिटावे सोई।

हाल ही में अमृतसर के संगलवाड़ा अख्राड़े के पूज्य महन्त श्रीअनन्तानन्दजी उदासीन ने आचार्यश्री की हिन्दी रचनाओं का एक महत्वपूर्ण और वृहद संकलन—'श्रीचन्द्र सिद्धान्त सागर' के नाम से प्रकाशित किया है। काव्य शास्त्र की दृष्टि से आचार्य श्रीचन्द्रजी की वाणी को अलंकृत शैली की उत्कृष्ट रचनाओं में रख्रा जा सकता है। काव्यात्मक शब्दों और ध्वनियों का दोहराव, शब्दालंकारों और अर्थालंकारों में सन्तुलन-साम्य अति सुन्दर है। इसके अतिरिक्त बाबाजी की वाणी में वेदों के निर्गुण ब्रह्म, तुलसी के सगुण ब्रह्म—राम, मीरा की अपार्थिव, कचोटती विरह वेदना, कबीर की रुढ़ियों पर सटीक चोट, तत्कालीन समाज में व्याप्त कुरीतियों तथा पुरोहितों व मौलवियों के शोषण पर चोट, श्रीकृष्ण-राधा की दिव्य रासलीला का माधुर्य रस, योगमार्ग की रहस्यमय सांकेतिक भाषा, वीर रस की तेजस्विता, जात-पात का विरोध, सदाचार-संयम-तप, पंजाब के ग्राम्य जीवन की उपमाओं की सौंधी मिट्टी की छू सी लेने वाली गंध, पवित्र गुरुवाणी की रसपूर्ण शैली की छाप—इन सबका अद्भुत समावेश है। मध्यकालीन संत वाणी की सब प्रवृत्तियां बाबाजी की वाणी में हैं। फिर जितना विचार पक्ष गहन और विशाल है उतना ही काव्य पक्ष लालित्यपूर्ण! निश्चय ही बाबाजी अद्वितीय सिद्ध संत कवि हैं। स्थानाभाव के

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

बावजूद श्रीचन्द्राचार्यजी की कुछ रचनाओं का प्रसाद तो हमें पाना ही होगा। नीचे की रचना में उनका सत्यप्रेम देखिये—

साच बिना नहि कोई पूरा, साच बिना नहि कोई सूरा।
साच बिना प्रभु कला न परसै,साच बिना नहि आतम दरसै।
साचै गुरुमुख साचा नाम, साचै कै सब पूर्ण काम।
साचै को प्राप्त नवनिद्धि, साचै की दिन दिन प्रति वृद्धि।
साचै को साचै प्रतिपालै, साचै की सब पूर्ण घालै।
साच को आंच न लागै काई, सर्व सिद्धि साचै ही पाई।
साचे ही सच देव उपाया, साचहूं ते भई निर्मल काया।
साचै संत धर्म का थम्भ, साच विनासे सगला दम्भ।
साच रता साचो होय जाय, श्रीचन्द्र रचयो सच नाय।
साचे को नाही भय कोय, साचे का मुख उज्जवल होय।
साचे तीर्थ कर इस्नान, बहुड़ न होवै आवन जान।
साच नाम जप अमृत पाया, हरि रस रसना रसन समाया।
साच शब्द सुख महली वास, साच शब्द अविचल अविनाश।
साच शब्द दुन्दुभि गुरुदेव, साचो साच जनावै भेव।
साच अचार साच सब कर्मा, साचा धर्म साच बिन भरमा।
साचहुँ ते छूटे उर ग्रन्थ, साचे का सद् निर्मल पन्थ।
साच नाम ते नामी लहै, साच आराधै हरि कर गहै।
साच ऊपरै नही विचार, श्रीचन्द्र मति साच आधार।

अब झूठ-आडम्बर के प्रति चाहे वह मुसलमानों में हों या हिन्दुओं में—उसके प्रति उनकी विरक्ति पर नजर डालें—

कूड़े हिन्दु मुसलमान, कूड़े पढ़त कुराण पुराण।
कूड़ी संध्या तीन कराय, कूड़े मल-मल तीर्थ न्हाय।
कूड़े योगी पीर पैगम्बर, कूड़े यन्त्र मन्त्र आडम्बर।
कूड़े उदासी विना उदास, कूड़ो न्यासहिं विन सन्यास।
कूड़े विन वैराग्य वैरागी, कूड़ो कूड़ लागी उर आगी।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

कूड़े मन्दिर मस्जिद थापै, कूड़ो कूड़ जपावत जापै।
कूड़े पहिर दिखावत बानै, रक्त पीत नीलै भगवानै।
कूड़े अहिंसी हिंसा गही, कूड़े लेख लिखत पर बही।
कूड़े मेले पर्व सुथान, श्रीचन्द्र कूड़ो प्रधान।

अब परमात्मा के महारस में विभोर बाबाजी की निम्न रचना में डुबकी लगायें—

आवहु मीत प्यारयो ! गाइये हरि प्रभु नाम।
साधु संगत बास कै निहचल सब सुख धाम।
कामधेनु सतसंग।
पारब्रह्म की मिहर ते खीर पीये हरि रंग।
जहाँ जाण ते औण नहिं, तम विनसै बिन सूर।
दहदिसि लोका लोक ला घट घट सत भरपूर।
नित नूतन उज्जलमहा शान्त मयंक सुहाय।
शीतल परमल सरद रुति मन्द बहंती वाय।
दूख भूख प्यासा हरे आसा मनसा चूर।
मान अपमान समान गुण श्रीचन्द्र रस मूर।

निम्न रचना में श्रीचन्द्रजी ने गुरु महिमा गायी है—

आदि अनादि अगाध प्रभु गुरु पूर ते पाय।
हऊमै दुबिधा दूर करि करि हरि नाम ध्याय॥
माई री ! जाओ न यम के धाम।
अहिनिसि हरि प्रभु सिमरिये सदा सूख विश्राम।
संतां संगत पाइय चार पदारथ मोख।
गुण गोबिन्द वखानिये मन ते हरिये दोख।
साध संगत सों बासबो पुरी वैकुंठ स्थान।
आनन्द रूप अगम्य प्रभु सर्व काल सावधान।
मन बुधि जाहि न जानही वेद कतेब अनेक।
करता पुरुख चित आवई श्रीचन्द्र गुरु टेक।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

अपनी वाणी में आचार्यश्री ने अक्सर अपने मन से, स्वयं से विवेक, प्रभु-प्रेम तथा सत्यबोध के भावों से पुष्ट आध्यात्मिक संवाद किया है। एक रचना में उनके द्वारा मित्र रूपी मन को बहुत प्यार से सम्बोधित करके सीख दी गयी है। श्रीचन्द्र सिद्धान्त सागर में दिये गये 'रे मन प्यारे साजना' की तुक के विस्तृत छन्दों में से हमने कुछ नीचे संकलित किये हैं। ये सभी छन्द बहुत सुबोध हैं—

रे मन प्यारे साजना ! त्रिविध ताप संसारे राम।
रे मन प्यारे साजना ! हा हा करत पुकारे राम।
करत पुकारा हाहाकारा दोऊ लागी उर माही।
सुखन कारण दुख बिहाझे अगनि घिरत परसाही।
देव न सुखी दैत्य न सुखीये सुखीये नहि अवतारा।
श्रीचन्द्र दुख दुखीय आगे फोल होहि दुखियारा।(1)
हे मन प्यारे साजना ! डूंगी सोच विचारो राम।
हे मन प्यारे साजना ! भ्रम भ्रम जन्म न हारो राम।
जन्म न हारो सोच विचारो सुख नहीं तिहुं लोका।
जो जो.उपज्यो सो सो दुखीया बढ़े शोक पर शोका।
अश्वमुख ते किन्नर दुखीये गंधर्व गर्दभ भाये।
श्रीचन्द्र तन मन की लालस दुखन मूल कहाये।(2)
हे मन प्यारे साजना ! गुण सागर हरि नामा राम।
हे मन प्यारे साजना ! सन्तन उर विश्रामा राम।
संत हृदय महि हरि प्रभु वासा, ऊचा अगम अपारा।
अवगुण तहाँ न ठहिरन पावहि लै हैं देस निकारा।
गुण प्रकाश गुणी रस आया नारायण गुण तासा।
श्रीचन्द्र रत्ना लहि खाणी दुख दारिद्र सब नासा।(3)
हे मन प्यारे साजना ! करि न गुरु अनजानै राम।
हे मन प्यारे साजना ! पानी पीजै छाणै राम।
पाणी छाणै गुरु पछाणै मोख्र भोग दातारा।
नाम दृढ़ावै भ्रम मिटावै ब्रह्म लखावै सारा।
भेष बणाया मिथ्या काया लहया न आत्मज्ञाना।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

श्रीचन्द्र चमगिदड़ डाली जिमि लटका लटकाना। (4)
हे मन प्यारे साजना ! आनन्द मंगल सुहेले राम।
हे मन प्यारे साजना ! करत नाम रस केले राम।
केल करति मन मोहन नामहिं दूजी आस चुकाई।
ईत ऊत जन सदा सुहेला तृष्णा तृषा बुझाई।
हरि प्रभु करता अंग संग नित्त सद ही रागण हारा।
श्रीचन्द्र सुख नवनिधि पाइयै पारब्रह्म के द्वारा। (5)
हे मन प्यारे साजना ! जड़ चेतन क्या मेला राम।
हे मन प्यारे साजना ! अचरज अचरज खेला राम।
अचरज का आश्चर्य तमाशा मति बुद्धि भवी विचारी।
रक्त बिन्दु के भीतर सृष्टि विस्तारी असुमारी।
जड़ नयन महि चेतन दृष्टि जड़ रसना रस जाना।
श्रीचन्द्र जड़ चेतन ग्रन्थी छूटित भया मसाना। (6)

नीचे इसी तुक की कुछ अन्य पंक्तियाँ भी दी जा रही हैं—

हे मन प्यारे साजना ! गल्ली दूख न जाई राम।
हे मन प्यारे साजना ! कूड़ी जग चतुराई राम।।
हे मन प्यारे साजना ! एको नाम समारो राम।
हे मन प्यारे साजना ! तजि हऊमैं अहंकारो राम।।
हे मन प्यारे साजना ! जग महि कोय न तेरा राम।
हे मन प्यारे साजना ! चिड़ीयां रैण बसेरा राम।।
हे मन प्यारे साजना ! सन्तन भेद लखाना राम।
हे मन प्यारे साजना ! सब जग फिरत दिवाना राम।।
हे मन प्यारे साजना ! साच शब्द उर धारो राम।
हे मन प्यारे साजना ! जग मिथ्या व्यवहारो राम।।
हे मन प्यारे साजना ! गुरुमुख राम ध्यावै राम।
हे मन प्यारे साजना ! हऊमैं तज सुख पावै राम।।
हे मन प्यारे साजना ! एको नाम ध्यावहु राम।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

हे मन प्यारे साजना ! सहज योग निधि पावहु राम ।।
हे मन प्यारे साजना ! मन निर्मल गुरु सेवा राम ।
हे मन प्यारे साजना ! चाखहिं अमृत मेवा राम ।।
हे मन प्यारे साजना ! गुरु पूरा समझाये राम ।
हे मन प्यारे साजना ! सर संतोष न्हवाये राम ।।
हे मन प्यारे साजना ! कूड़ा मोह पसारा राम ।
हे मन प्यारे साजना ! मात पिता सुत दारा राम ।।
हे मन प्यारे साजना ! तज चिन्ता सुख सोड़यै राम ।
हे मन प्यारे साजना ! जो होवण सो होड़यै राम ।।
हे मन प्यारे साजना ! सीतल तन मन छाती राम ।
हे मन प्यारे साजना ! रसना हरि रंग राती राम ।।
हे मन प्यारे साजना ! गुरु तीर्थ मन न्हावै राम ।
हे मन प्यारे साजना ! हऊमैं मैल गवावै राम ।।
हे मन प्यारे साजना ! सन्तां संगति कीजै राम ।
हे मन प्यारे साजना ! राम रसायण पीजै राम ।।
हे मन प्यारे साजना ! निर्धन पेख न हासै राम ।
हे मन प्यारे साजना ! काल खड़ा सिर पासै राम ।।
हे मन प्यारे साजना ! मन मुख भ्रम भुलाना राम ।
हे मन प्यारे साजना ! अहिनिसि फिरै दीवाना राम ।।
हे मन प्यारे साजना ! विषयां विष लपटाया राम ।।
हे मन प्यारे साजना ! हरि हरि नाम न भाया राम ।।
हे मन प्यारे साजना ! धन की कवन वडाई राम ।
हे मन प्यारे साजना ! अन्त न संग सहाई राम ।।
हे मन प्यारे साजना ! दुर्लभ मानुष देही राम ।
हे मन प्यारे साजना ! दीनी परम स्नेही राम ।।
हे मन प्यारे साजना ! रैणु सुहेली आई राम ।
हे मन प्यारे साजना ! सिमरहि सच्चा साईं राम ।।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

हम देखें तो, भक्तों के हित चिन्तन से सराबोर कैसे दिव्य व मधुर आश्वासनों से भरे-पूरे शब्द हैं भगवान के !

अब हम नीचे श्रीचन्द्र भगवान की कुछेक और हिन्दी रचनाएं दे रहे हैं। ये रचनाएं डॉ. विष्णुदत्तजी राकेश की पुस्तक, 'आचार्य श्री श्रीचन्द्र—साधना, सिद्धान्त और साहित्य' से ली गयी हैं जिनका डॉ. साहब ने सुन्दर अनुवाद किया है। इस अनुवाद में कहीं-कहीं आवश्यकतानुसार हमनें भी कुछ शब्द जोड़े हैं।

श्रीचन्द्र शब्द-सुधा

भजुमन हरि के चरण उदार,
जिनकर नखमणि कृपा द्रवित हो ढ़री गंग की धार।
जिनकर परस सिला अघ चेतन भई अहल्या नार।
जिनकर जघन महोतल मज्जित मधु कैटभ के भार।
श्री सेवित गोपी उर उपजत जिन्हहिं पलोटत प्यार।
सुक सनकादि धरत नित नैननि जिनकर छवि रतनार।
चिन्मय धूर धरत मस्तग पर नारद बारम्बार।
श्रीचन्द्र भटकत अंधकूप महूं काढ़े न काहि मुरार।।

अर्थ : हे मेरे मन, तू परम उदार हरि के चरणों का भजन क्यों नहीं करता। भगवान के जिन चरणों के नाखूनों की मणि जैसी प्रभा ही पतितों के उद्धार के लिये कृपा के रूप में द्रवित होकर गंगा की धारा बन गयी, जिन चरणों के स्पर्श से पापों की खान (अघ) जड़ शिला चैतन्य अहिल्या नारी के रूप में परिणत हो गयी, जिनकी जंघायें मधु-कैटभ की मज्जा के भार से ठोस पृथ्वी के रूप में बदल गयी, जिन लक्ष्मीजी द्वारा सेवित चरणों को दबाते हुए गोपियों के हृदय में प्यार उमड़ पड़ता है, शुक तथा सनकादि मुनि जिन कमल जैसे लाल-लाल (रतनार) चरणों की छवि अपने नेत्रों में नित्य बसाये रखते हैं। जिन चरणों की चिन्मयी धूल को नारद बार-बार अपने मस्तक पर धारण करते हैं—उन चरणों के अतिरिक्त तू और कहीं मत जा। श्रीचन्द्रजी कहते हैं कि हे मुरारि ! मैं संसार रूपी अंधे कुएं में भटकरहा हूँ। मेरा हाथ पकड़कर मुझे इससे बाहर क्यों नहीं निकाल लेते ?

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

अलमति खोजहु पद निरवाना ।
जेहि पद पाइ बहुरि नहिं आवइ भाषइ वेद पुराना ।
सूरजमुखी खिले सूरज विनु चन्द बिना कुंमुदाणी ।
सरवर बिना हंस जंह पै रें फिरे मंछ बिनु पाणी ।
ठाकुर अगिआ मुख नहिं मोरहु साचै दरसन भावहु ।
गुरु प्रसादि श्रीचन्द महामुनि अविनासी गुन गावहु ।।

अर्थ : श्रीचन्द्रजी अलिमत्त (कमलासन) नामक शिष्य को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि अलिमत्त अथवा अलमस्त, निर्वाणपद को खोजने की चेष्टा करो। वेद-पुराण यही कहते हैं कि इस पद को प्राप्त कर फिर संसार में आना नहीं होता। इस लोक में सूर्य के बिना ही सूरजमुखी खिला करते हैं। चन्द्रमा के बिना कुमुदनियां विकसित होती हैं। सरोवर के बिना हँस तैरा करते हैं तथा बिना जल के मछलियां तैरती रहती हैं। ईश्वरीय आदेश रूपी वेद के पठन-पाठन से कभी मुख न मोड़ो। सत्य रूप भगवान के दर्शन का नित्य प्रयास करो। गुरु की कृपा प्राप्त करने के लिये महामुनि अविनाशी के गुणों का गान करो अथवा मुनि परम्परा का उद्धार करने वाले हंसावतार अविनाशी भगवान का स्मरण करो।

गोरस दान देहु गोपीता ।
तन की मटकी मनदधि मंथहु काढु विचार ग्यान नवनीता ।
व्रज वीथिन हरि खेलण आये उफन्यौ नेहु अमोल बिकाने ।
स्रुति पथ अपथ संक नहिं कीन्हीं प्यास मरत लोचन अकुलाने ।
परम भाव उज्जल रस आभा पद नख अक्षर ब्रह्म समाने ।
पीवण चह्यो विरति को प्याला नारद सुक रस लोभु लुभाने ।
तूं बौरी मुरली जनि बरजहुं सुंन सिषर मंहु सबद गुंजाने ।
श्रीचंद परम भावती सजनी अविनासी गुरु परम सयाने ।

अर्थ : श्रीचन्द्रजी गोरस दान लीला का वर्णन करते हुए दो गोपियों के संवाद के माध्यम से कुछ रहस्य की बात कहना चाहते हैं। गोपी कहती है कि हे गोरस (दूध-दही) बेचने वाली गोपी तू हरि को गोरस क्यों नहीं समर्पित कर देती। यह गोरस साधारण नहीं है। शरीर की मटकी में मन रूपी दही को मथकर तू विचार (तत्व विचार) और ज्ञान का मख्खन निकाल ले। ब्रज की गलियों में श्रीकृष्ण खेलने आये

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

हैं। तेरा मन रूपी दही उफन-उफनकर बाहर आ रहा है। उनकी छवि को देखकर यह बिना मूल्य के ही बेच देना पड़ेगा। तू राधा जैसी गोपियों को नहीं देखती। वैदिक पथ तथा सामाजिक मर्यादाओं को छोड़ देने में भी जिन्होंने शंका नहीं की, जिनके नेत्र श्रीकृष्ण की मुख छवि को देखने के लिये विरह की आंच में प्यासे मरते रहते हैं।

जिनका स्वरूप महाभावमय है। उज्ज्वल रस अर्थात् भक्ति रस की जो प्रतिमूर्ति हैं जिनके चरणों के नाखूनों की आभा में अक्षर ब्रह्म समाविष्ट हो जाता है। नारद और शुकदेव ने जिस भक्तिरस के लोभ में आजन्म वैराग्य का प्याला पीकर निवृत्ति मार्ग धारण किया, उन्हीं के रूप दर्शन और मुरली वादन से तू कतरा मत। तू पगली है, मुरली को मत रोक। शून्य शिखर में शब्द गुंजित हो रहा है। मुरली ब्रह्मरन्ध्र का अनाहद नाद ही तो है। भक्ति और योग में अन्तर कहाँ है ?

श्रीचन्द्रजी कहते हैं कि मनभावनी सखी साधिका, तू बड़ी अच्छी है जो परम रस साधना सिद्ध गुरुदेव अविनाशीजी के उपदेश से इस साधना में तल्लीन हो गयी है।

अनुगत सगल पसार एकु रसु ब्रह्मसरूपा हौं हूँ।
मिथिया देव मनुष हिन्दु अरु तुरकां सबद कथे हूँ।
सभु मंहि आपै आपु बरतदा चेतनु एकु संमाई।
स्त्री पुरुष भेद तनु करिआ चेतनु फरकि न आई।
नेरे दूरे बेदे कथिला अन्तर आत्म न आवै।
नांउ विकार देह के पेखे कारनु ब्रह्म न पावै।
सगल वियापउं जसु तिल तेला दूध मांहि नवनीता।
जोती जोत आतमा वेखिआ ग्यान अपोहन चीता।
अन्तर बाहर हौं ही पसरिआ दूजा नांहि लखावै।
श्रीचंद वेद्य वेद कई रूपा कर्ता एकु कहावै।

अर्थ : सारे जगत् (सगल-पसार) में अनुगत (समाविष्ट) एकाकार, एकरस ब्रह्म मैं ही हूँ। देव, मनुष्य, हिन्दू और तुर्क शब्द मात्र हैं अतः यह भेद झूठा है। सब प्राणियों में वह चेतन ब्रह्म समाविष्ट है और व्यवहार कर रहा है। स्त्री-पुरुष के शरीर में भेद है पर चैतन्य में कोई भेद नहीं। आत्मा-आत्मा में अन्तर नहीं होता। सभी का आत्मा मेरा आत्मा है। वेद उसे निकट भी कहता है और दूर भी। आत्मा में तब भी

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

कोई अन्तर नहीं आता। शरीर में जो विकार दिखाई देते हैं, वे नाम मात्र के हैं। सब वस्तुओं के अधिष्ठान कारण ब्रह्म में कोई विकार नहीं होता। वह परमात्म तत्व समस्त प्राणियों में वैसे ही व्याप्त है जैसे तिल में तेल तथा दही में घृत।

श्रीचन्द्रजी कहते हैं कि अन्दर और बाहर मैं ही व्यापक हूँ। मेरे अतिरिक्त किसी दूसरे की सत्ता नहीं है। सारे संसार का कर्ता वह एक है तथा वही वेदों का वेद्य है।

कुंचा ताला घरु नगरी का।
विद्या अउर अविद्या माया गढ़ कपाटु बजरी का।
व्यष्टि समष्टिडोर दुइ बाँधा जीउ भयेउ संसारी।
व्यष्टि अविद्या समसटि माया करत दुहूँ विध ख्वारी।
अविद्या कुंजी ग्यान कथीलै भगती कुंजी माया।
श्रवन मनन करि नंठ अविद्या माया भगति बिलाया।
आत्मरुप दरसै घरु खोल्हे ईसु कृपा गढ़ ढावै।
भक्ति समुच्चित ग्यान मोक्ष कर साधन एकु लखावै।
जिउ धीवरु पगु फंसै न मछरी धार अपूठी फाँसे।
सरनागति बिनु क्लेस दुनीं कंह श्रीचन्द कबहुं न नासै।

अर्थः बाबाजी की इस रचना में उनके द्वारा प्रतिपादित ज्ञान-भक्ति समुच्चय का उपदेश दिया गया है। वे कहते हैं— इस नगरी के घर में जटिल ताला लगा हुआ है। माया के दुर्ग में विद्या और अविद्या के वज्र के समान सहज न खुलने वाले दरवाजे हैं। व्यष्टि रुपी अविद्या तथा समष्टि रूप माया की दो डोरों से यह जीवात्मा बँधा हुआ है। ब्रह्म रूप होने पर भी इसी कारण वह परतंत्र है। दोनों ने ही उसे बरबाद कर दिया है। अविद्या के ताले को खोलने की चाबी ज्ञान है और माया के ताले को खोलने की चाबी भक्ति है। श्रवण-मनन आदि के अभ्यास से अविद्या नष्ट होती है तथा भक्ति से माया दूर हो जाती है। आत्म साक्षात्कार द्वारा घर खुलता है अर्थात् जीव अविद्या रुपी व्यष्टि बंधन से छूटता है तथा भगवद्कृपा से समष्टि रूप बंधन (माया) का गढ़ टूटता है। ज्ञान और भक्ति के समुच्चय से ही मोक्ष मिलता है, न कि केवल ज्ञान से अथवा न केवल भक्ति से। जैसे धींवर के जाल में वे ही मछलियां फंसती हैं जो उसके पैरों की ओर न जाकर विपरीत दिशा में (अपूठी धार) जाती हैं,

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

वैसे ही शरणागति प्राप्त आत्माएं जगत् के जाल में नहीं फंसती। श्रीचन्द्रजी कहते हैं कि बिना शरणागति के जगत् (दुनीं) का क्लेश कभी नष्ट नहीं हो सकता।

चिदचिद उभय ब्रह्म मोहि भावै।
अरुण असित छवि प्रात जगत जिउ धरमाधरमी खसमु दिखावै।
पंड्या अचरज पुस्तग खोल्हे उपादान अरु निमित बतावै।
जोती जोत सरूपा अरूपा आतम पद कहि वेदु सुणावै।
सगल पसार किओ जिउ लूता सूता अन्तर मांहि समावै।
हुकुमी मौजु अठारह फुरलै हउमे सबद कवाउ उपावै।
थिति रचणा लय आपु संकौचै अगिन फुलिंग उपाधि सतावै।
द्रिष्टा द्रिष्ट असंख्या लोआ घटु फूटे आकास जतावै।
सायर एकु तरंग अनेकहु खोटे खरे फरकु कति आवै।
सगल बिनासे रहै मूल सति श्रीचन्द तत्त विचार करावै॥

अर्थः चित् अचित् उभय ब्रह्म का स्वरूप मुझे प्रिय लगता है। वह एक सत्ता है। चित् और अचित् उसमें उसी तरह रहते हैं जैसे प्रातःकालीन आकाश में लाली और स्याही एक साथ रहती हैं। भूसी और दाना जैसे मिलकर चावल कहलाते हैं उसी प्रकार नित्य सम्बद्ध सत् असत् (चित् अचित्) उभयात्मक ब्रह्म से ही प्रपंच की रचना होती है। सत् का निर्धारण चित् अचित् के समन्वय से है। दोनों में यद्यपि भेद भासता है पर एक सत्ता से सम्बद्ध होने के कारण दोनों में अभेद भी रहता है। इनमें कौन धर्म है और कौन धर्म्मि ? यह कहना कठिन है। (ब्रह्म तो आकाश की तरह निर्मल है, अचित् रुप कालेपन से ही चित् रुप अरुण ज्योति उसमें एक साथ झलक मारती है, अन्धकार-प्रकाश वस्तुतः एक साथ नहीं रहते पर आकाश में उषःकाल में प्रतीत होते हैं।)

पण्डित आश्चर्य से शास्त्र खोलकर ब्रह्म को अभिन्न निमित्तोपादान कारण बताता है। अर्थात्, वह उपादान भी है और निमित्त भी। (उसे जगत् के निर्माण के लिये कुम्हार की तरह मिट्टी, चाक, डंडा आदि उपादान कहीं और से नहीं लाने पड़ते।) वह ज्योति रूप है। साकार तथा निराकार भी वही है। (सृष्टि न केवल चित्

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

का परिणाम है और न अचित् (अचेतन प्रकृति) का। चित् रूप में वह अदृश्य है। तथा अचित् रूप में वह दृश्य है।) वेद इसे आत्मपद कहकर सम्बोधित करते हैं।

वह ब्रह्म लूता (मकड़ी) के जाले की तरह समस्त ब्रह्माण्ड को अपने में से ही उत्पन्न करता है और फिर इस प्रपंच को अन्त में अपने में ही समाविष्ट कर लेता है। हुकमी (ब्रह्म) ने अपनी मौज से अट्ठारह तत्व स्फुरित किये। उसने हउमै कहा (अर्थात्, मैं होऊं यह संकल्प किया) और यह कवाउ (जगत्) उत्पन्न हो गया। (पाँच कर्मेन्द्रियां, पांच ज्ञानेन्द्रयां, प्राण, मन, चित्त और बुद्धि ये चौदह तत्त्व हैं तथा सात्विक, राजस् और तामस् ये तीन अहंकार हैं। इनसे पृथक अट्ठारहवां तत्त्व जीव है।)

इस जगत् की रचना, स्थिति, संकोच तथा अन्त में लय का एकमात्र कारण ब्रह्म ही है। अग्नि और स्फुलिंग में जैसे तत्त्व एक है पर नाम-रूप का भेद है इसी प्रकार यह नाम-रूपात्मक उपाधि ही है जो जीव को सताती है अर्थात् उसकी ब्रह्म से एकता में बाधक है। द्रष्टा और दृश्य का भेद भी कृत्रिम है। घट फूटने पर उपाधि नष्ट हो जाती है और आकाश रह जाता है। सागर एक है और तरंगे अनेक हैं तथा इनमें कोई खोटी या खरी नहीं अर्थात् सभी तरंगें सागर की ही हैं।

श्रीचन्द्रजी कहते हैं कि यह दृश्यमान सब कुछ नष्ट हो जाता है। केवल वह मूल सत् तत्व रहता है। मैंने इसी रूप में तत्व विचार किया है।

आतम दियरा बारु सोहागणु।
राग द्वेष मदमोह पतिंगा तिल-तिल छारु करहु बड़ भागणु।
त्रिसनां घटा घुमड़ि घणिबरसै घिरि-घिरि आवै रैणि अँधारी।
साखी जोत अकाम अरब्धा औघटु घाटु न उतरसि पारी।
गुरु प्रसाद अँचरा तर ढापहुँ बुड़ि न जाइ कंहु विषय बयारी।
सुक नारद सनकादि मुनीसा हंस रूप चढ़े कनक अटारी।
होइ निसंक सेजपरि पौढ़हुँ यहु औसरि पुनि हाथु न आसी।
श्रीचन्द खोलु कपाट बजर घटि वेखहु स्याम रूप रस रासी।

अर्थः हे सुहागिन (भक्त जीवात्मा) आत्मा रूपी दीपक जला तथा राग, द्वेष, मद, मोह रूपी पतंगों को इस दीपक की लौ में तिल-तिल जलाकर राख कर दे। यदि तू ऐसा कर सकी तो बड़भागी कहलायेगी। देख तृष्णा और लालसा की कभी

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

समाप्त न होने वाली काली-काली घटाएं घुमड़-घुमड़कर अँधेरी रात का वातावरण बना रही हैं। साक्षी चेता (ज्योति) की ज्योति के बिना केवल साखी सबदी के कथन मात्र से यह औघट बीहड़ घाट पार नहीं किया जा सकता। निष्काम (अकाम) तथा निस्पंद (अरब्धा) स्थिति के बिना इस घाट पर पहुँचना कठिन है। गुरु की कृपा के आँचल में इस ज्ञान दीप को ढक ले, कहीं विषय भोग की हवा (बयार) इसे बुझा न दे। शुक, नारद और सनकादिक मुनि हंस रूप में निर्लिप्त रूप में सोने की अटारी पर चढ़कर ऊर्ध्व गति को प्राप्त हो गये हैं। तू निःशंक होकर प्रभु मिलन रूपी सेज पर आ बैठ क्योंकि यह दुर्लभ अवसर जीवन में बार-बार नहीं आता।

श्रीचन्द्रजी कहते हैं कि हे जीवात्मा तू हृदय के वज्र जड़े किवाड़ों को खोल और रूप तथा रस के भण्डार श्यामसुन्दर की छवि का दर्शन कर।

हौं सोयी मोहि पिउ न जगायो।
कुंजा कुरल-कुरल करि रोयी थकित भई तभु पलकु झपायो।
सिर पर बैठि पीव खत लेख्या बांही गुपुत बुझाई पठायो।
आसिक सोइ कब्र जो सोआ जागत दिन अरु रैणि बितायो।
छार छांनि दिन सूरज जारै रजणी चन्द संग-संग धायो।
जभु जग सोवै जोगी जागै दस्त कलिम अफ़ताब लखायो।
श्रीचंद घुलि-घुलि मरहिं सरेखा चितु उचटत बिसरामु न पायो।

अर्थ : प्रभु प्रेम से तड़पती जीवात्मा कहती है कि मैं प्रेम के मारे रोती-रोती सो गई, पर मुझे मेरे प्रियतम ने आकर न जगाया। क्रौंच पक्षी की तरह कुर्ल-कुर्ल की ध्वनि करते हुए मैं थककर सो गयी, मेरी पलकें झपक गयीं थीं। तभी मेरा प्रियतम आया और सिरहाने बैठकर उसने एक पत्र लिखा। वह पत्र बाहों तक पहने हुए वस्त्र (बाँही) में छिपाकर चला गया। उसमें लिखा था कि सच्चा आशिक (प्रेमी) तो वह है जो कब्र में सोने के अतिरिक्त कभी न सोये। दिन और रात जागता रहे। सूरज के साथ दिनभर जलता हुआ खाक (छार) छानता रहे और रात को चन्द्रमा के साथ-साथ दौड़ता रहे। जब सारा संसार सोता है तब भी जोगी जागता है। उसे सूर्य (आफ़ताब) हस्तामलक (दस्तकमल) हो जाता है।

श्रीचन्द्रजी महाराज कहते हैं, सौभाग्यवती (सरेखा) आत्मा प्रिय प्रभु के

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

बिछोह में घुल-घुलकर मर रही है। जीवात्मा नित्य उच्चाटन का अनुभव करती है, इसे क्षणभर भी विश्राम नहीं मिला।

हउ महि नीर खीर की धारा, मोती चूर कुंड अति प्यारा।
कीच कपूर अंब्रित जल पूरा चाख्या मीठ न खारा।
कंचन विरख एक तेहि निअड़े मूल सरग पातारा।
उडुगन चंद फूल फल पाते अनुदित करत उजारा।
गुरु प्रसादि पाव यहु कोई दीसै झूठ पसारा।
श्रीचंद खाइ भयो नव जोवन हंसा पकिरि उतारा।

अर्थ : श्रीचन्द्रजी कहते हैं कि मेरे शरीर में पानी और दूध की दो धाराएं (इड़ा और पिंगला) बह रही हैं। मोतियों के चूर्ण के समान निर्मल अति मोहक कुण्ड (ब्रह्मरन्ध्र) भी है। इस कुण्ड में कपूर का कीचड़ भी है तथा अमृतोपम जल भरा हुआ है। मैंने इसे चखकर देखा है, यह न तो मीठा है और न खारा। इसके निकट सोने का एक पेड़ है जिसका मूल पाताल है (मूलाधार) तथा सिर स्वर्ग की ओर (ललाट) है। तारे (उडुगन) और चन्द्रमा ही इसके फूल पत्ते हैं। हर समय इनका उजियाला बना रहता है। यह सोने का पेड़ सुषुम्ना ही है। गुरु की कृपा से यदि यह रहस्य कोई पा लेता है तो उसे सारा पसारा (जगत्) झूठा दिखाई पड़ने लगता है। जो इस फल को ग्रहण कर चख लेता है उसे नव यौवन मिल जाता है। जरा-मरण का भय उसे नहीं व्यापता। मुझे भी इसके रस का आस्वाद मिल चुका है। मेरे परमहंस गुरुदेव ने मुझे पकड़कर, दीक्षा देकर पार उतार दिया है।



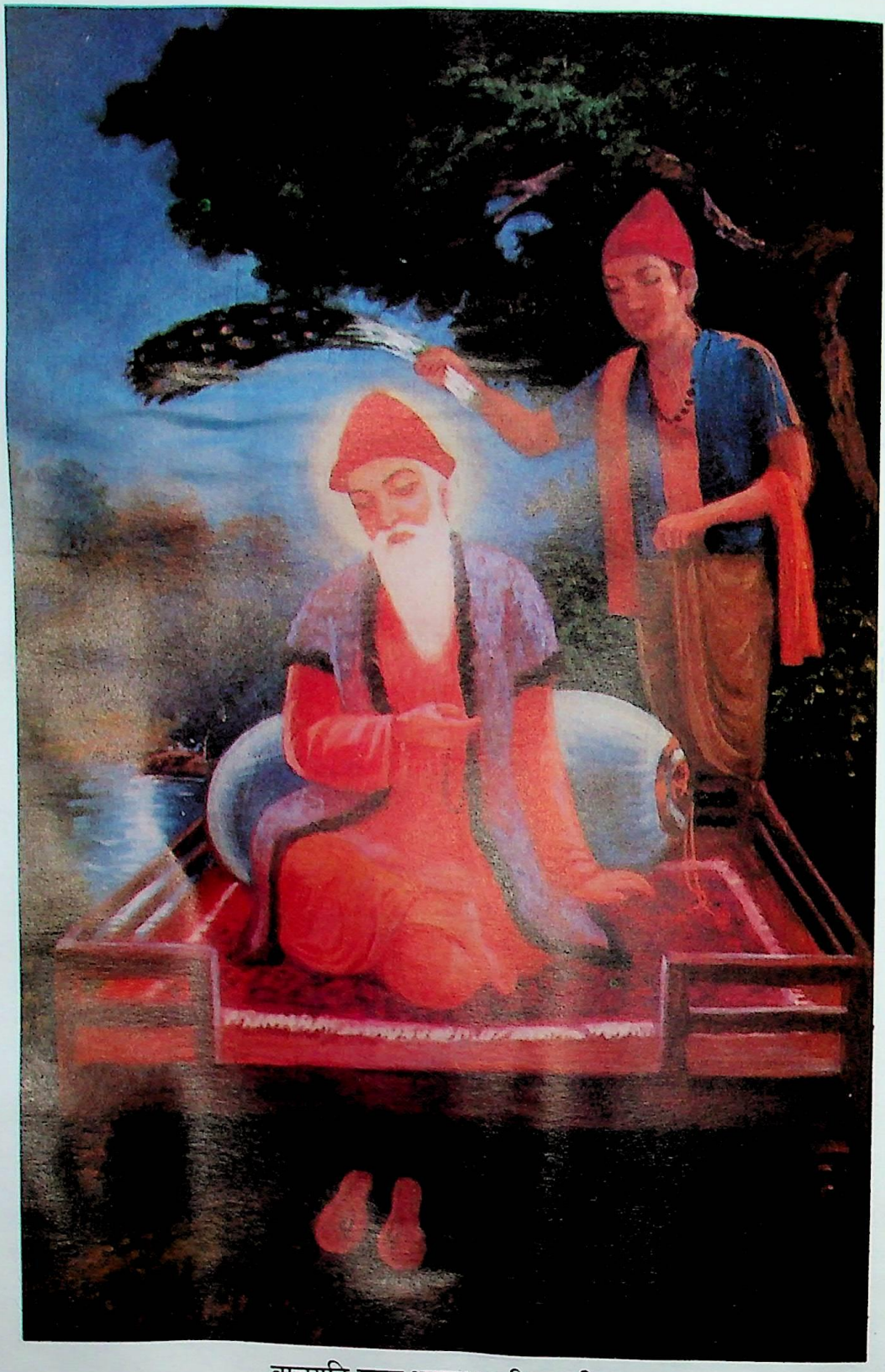
CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

बाबा भूमनशाहजी का संक्षिप्त परिचय

तीसरा भाग

कुछ वर्ष पूर्व पूज्य श्रीचन्द्रस्वामीजी ने बाबा भूमनशाहजी का संक्षिप्त जीवन परिचय एवं उनके सदोपदेशों का सार लिखकर 'आनन्द दर्पण' नाम से एक छोटी सी पुस्तिका प्रकाशित करवायी थी। पाठकों को बाबाजी के दिव्य जीवन का दिग्दर्शन कराने के उद्देश्य से उसी पुस्तिका में से यहाँ हम उनका संक्षिप्त परिचय वैसे का वैसा उद्धृत कर रहे हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



बालयति बाबा भूमनशाहजी उदासीन ।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

ॐ

सभी मनुष्य ऐसा आनन्द चाहते हैं जो कभी कोई उनसे छीन न सके, जो सदा सर्वदा उनके पास बना रहे, जिसमें कभी कमी अथवा व्यतिक्रम न हो, जो असीम और निर्बाध हो। चाहे कोई राजा हो या रंक, बालक हो या बूढ़ा, विद्वान हो या अनपढ़, सभी मनुष्य इस चाह को लेकर ही प्रवृत्त होते हैं। आनन्द की यह चाह न तो संस्कारजन्य है और न ही शिक्षा का इससे कोई सम्बन्ध है। यह किसी जाति, धर्म, देश अथवा राष्ट्र से भी परिसीमित नहीं है। यह चाह निर्विवाद रूप से सार्वभौमिक है।

वस्तुतः इसे चाह कहना भी उचित नहीं है। यह तो उस अन्तरात्मा की पुकार है जो मानो अपने उद्गम, परमात्मा से बिछुड़ गयी हो तथा उसी में लौट जाना चाहती हो। आप हजार प्रयास कर लें, पर न तो आप इस पुकार का दमन कर सकते हैं और न ही हनन। जगत् के मोह से उत्पन्न संकल्पों और वासनाओं के कोलाहल में यह पुकार किसी को सुनाई भले ही न दे, पर जब भी कोई थोड़ी देर रुककर अपने अन्दर देखता है तो उसे अपनी अन्तरात्मा की यह पुकार अवश्य सुनायी देती है। यह पुकार तभी बन्द होती है जब मनुष्य की अन्तरात्मा अपने विशुद्ध, देश-कालातीत, अनन्त सत् स्वरूप को पा लेती है।

आप्तकाम, परमात्मा के प्रेम - ज्ञान से परिपूर्ण संतों और महर्षियों के अतिरिक्त कोई भी मनुष्य अपने हृदय पर हाथ रखकर यह दावा नहीं कर सकता कि वह हर प्रकार से संतुष्ट और तृप्त है। मनुष्य मात्र की अन्तरात्मा की यह सार्वभौमिक पुकार, भगवत्ता उपलब्ध संत तथा सद्शास्त्र इस बात का प्रमाण हैं कि ऐसा शाश्वत और

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

देश-काल-वस्तु अपरिछिन्न आनन्द तत्व अवश्य है जिसे मनुष्य उपलब्ध हो सकता है। परन्तु चीनी के मीठा होने का प्रमाण स्वयं चीनी को चखकर देखना ही है। इसी वास्ते परब्रह्म सच्चिदानन्द परमात्मा को "स्वयं संवेद्य" कहा जाता है। परमात्मा को स्वयं अनुभव करना (Self verification) ही उसके अस्तित्व का अन्तिम प्रमाण है।

मनुष्य जीवन के सच्चे साध्य तथा उस साध्य की प्राप्ति के सम्यक् साधनों को शिरोमणि संत बाबा भूमनशाहजी के सूत्र रूपी आध्यात्मिक एवं व्यावहारिक सदोपदेशों को इस पुस्तक में प्रस्तुत किया गया है जो गागर में सागर भरने जैसा ही प्रयास है। इन उपदेशों में शब्द मेरे है परन्तु उपदेश पूर्णतया बाबाजी के ही हैं जो उनके भगवद्मय जीवन के सर्वथा अनुरुप हैं। यह बात मैं बाबाजी के संग, उनकी छत्र छाया में तथा उनके वरद्-हस्त के नीचे अनेक जन्मों में की गयी अपनी आध्यात्मिक साधना और उपलब्धि के आधार पर विनम्रतापूर्वक कहने का साहस कर रहा हूँ। यदि समुचित और उपयुक्त शब्दों में मैं बाबाजी के उपदेशों को अभिव्यक्त नहीं कर पाया तो इसमें मेरी ही असमर्थता का दोष है जो पाठकगण कृपया क्षमा करेंगे।

बाबाजी के उपदेशों के इन सारभूत वाक्यों को आप अपने पूर्व निर्मित विश्वासों (ready-made beliefs)और धारणाओं तथा पूर्वाग्रहों को छोड़कर, शान्त-चित्त होकर निष्पक्ष भाव से पढ़ेंगे और मनन करेंगे तो बाबाजी के सम्बन्ध में उनकी अलौकिक शक्ति एवं भगवद् ज्ञान-प्रेम पूर्ण आध्यात्मिक छवि का दिग्दर्शन आपको जरूर होगा।

प्रातः स्मरणीय बालयति बाबा भूमनशाहजी अट्ठारहवीं शताब्दी के उन महान् संतों में हुये हैं जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन परमात्मा के सतत्-स्मरण, दीन-दुखियों की सेवा करने तथा मोह-माया में सोये लोगो को जगाकर उन्हें प्रभु-स्मरण में लगाने हेतु ही समर्पित किया। "पदम् पत्रमिवाम्भसा" के भगवद्गीता के कथनानुसार वे जगत् में, जल में कमलपत्र की भाँति रहे। बाबाजी के पिता श्रीहस्सारामजी पंधु तथा उनकी माता श्रीमति राजोबाई दोनों ईश्वर के परम भक्त थे और उदासीनाचार्य बालयति बाबा श्रीचन्द्रजी, सुपुत्र श्रीगुरुनानकदेवजी महाराज, में अनन्य श्रद्धा तथा निष्ठा रखते थे। वे बहलोलपुर गाँव, तहसील दीपालपुर, जिला मिण्टगुमरी, पँजाब (अब पाकिस्तान) में रहते थे और खेती बाड़ी का काम करके संतोषपूर्वक जीवन-निर्वाह करते हुये अपना अधिकाँश समय ईश्वर की आराधना में ही व्यतीत करते थे।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

उनका जीवन एक आदर्श गृहस्थ-जीवन था। उनका तन जगत् में पर मन सदा प्रभु-स्मरण में ही लगा रहता था।

चिरकाल तक उनके घर कोई संतान नहीं हुई थी। प्रौढ़ावस्था में पहुँचने पर सन् 1687 बैसाख मास की द्वितीया तिथि को हस्सारामजी और उनकी धर्मपत्नी राजोबाई के घर एक बड़े सुन्दर, सौम्य और शान्त बालक ने जन्म लिया। इस दिव्य बालक के जन्म से ग्यारह दिन पूर्व से ही माता राजोबाई को स्वप्न में बालयति उदासीनाचार्य बाबा श्रीचन्द्रजी के दर्शन होते और वे दिन-रात बाबा श्रीचन्द्रजी के दर्शनों की मधुर-स्मृतियों में आनन्द विभोर रहतीं। प्रसव के समय भी माँ को पीड़ा का कोई अनुभव नहीं हुआ। माता-पिता का यह सुदृढ़ विश्वास था कि बाबा श्रीचन्द्रजी ने ही प्रसन्न होकर उनके घर में अवतार लिया है। बालक का नाम उन्होंने भूमिया रखा। यही दिव्य बालक भूमिया बाद में बालयति बाबा भूमनशाहजी के पावन नाम से प्रसिद्ध हुआ। बालक के मुख-मण्डल पर इतना तेज और दिव्य आकर्षण था कि जो भी उसे एक बार देख लेता वह बार-बार आकर्षित होकर उसे देखने आता। शीघ्र ही आस-पड़ोस में इस बात की चर्चा फैल गयी और चौधरी हस्साराम के घर उस बालक के दर्शनों के वास्ते लोगो की भीड़ लगने लगी। हस्साराम व माता राजोबाई भी सबका यथायोग्य प्रेमपूर्वक स्वागत करते। उनका घर, आँगन, तन-मन सब, मानो एक दिव्य आनन्द से सराबोर हो उठे; उनके घर, उनके जीवन में जैसे स्वर्ग उतर आया।

बालक जैसे-जैसे बड़ा हुआ तो उसमें सहज रूप से अलौकिक शक्तियों का आविर्भाव होने लगा। अनेक बार काले नागों को बालक से लिपटे और उसके साथ खेलते देखा गया। यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि उदासीन मत में आचार्य श्रीचन्द्रजी को भगवान शंकर का अवतार माना जाता है और उनके पिता श्रीगुरुनानकदेवजी को भगवान विष्णु का अवतार। पुराणों के अनुसार विष्णु भगवान को नाग की शैया पर विराजमान दिखाया गया है तथा भगवान शंकर के गले और भुजाओं में प्रेम से लिपटे नागों-सर्पों को चित्रित किया गया है। इस सन्दर्भ में देखें तो भूमिया बालक के साथ नागों का प्रेम से खेलना सहज ही समझ में आ जाता है। सनातन धर्म में भगवान विष्णु और शंकर भगवान में तत्वतः भेद नहीं माना जाता। उसी के अनुसार उदासीन मत में श्रीगुरुनानकदेवजी तथा आचार्य श्रीचन्द्रजी को एक रूप मानकर ही

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

उनकी पूजा-स्तुति की जाती है। बाबा श्रीचन्द्रजी के मन्दिरों में आरती के साथ प्रायः नीचे लिखा श्लोक भी पढ़ा जाता है—

विष्णु रूप नानक गुरु, शिव स्वरूप श्रीचन्द्र।
एक रूप कर जो भजे, पावे परमानन्द ॥

भूमिया बालक के माता एवं पिता का यह विश्वास कि उनके घर बाबा श्रीचन्द्रजी ने ही अवतार लिया है, मात्र विश्वास ही नहीं अपितु एक तथ्य भी सिद्ध हुआ जब धीरे-धीरे बालक भूमिया में बाबा श्रीचन्द्रजी की अलौकिक शक्तियाँ और प्रभु-ज्ञान तथा प्रेम प्रकट होने लगे। भूमिया बालक की जीवन शैली पूर्णतया बाबा श्रीचन्द्रजी की ही भाँति बनती जा रही थी। वह बालक प्रायः अन्तर्मुख होकर ध्यान में मग्न रहता। अनेक प्रकार के चमत्कार भी भूमिया द्वारा सहज रूप से घटने लगे। इन सभी अलौकिक घटनाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन करना यहाँ न तो सम्भव ही है और न ही ऐसा उद्देश्य है। फिर भी दो-तीन चमत्कारी घटनाओं को बताये बिना उनका संक्षिप्त परिचय भी नहीं दिया जा सकता। अतः उन्हें लिखना तो अनिवार्य ही है।

बालक भूमिया जब थोड़ा बड़ा हुआ तो वह अपने माता-पिता की प्रेमपूर्वक सेवा करता, खेती बाड़ी में उनका हाथ बँटाता तथा कभी भगवान श्रीकृष्ण की तरह अन्य बालकों के साथ वन में गायों को भी चराने ले जाता। परन्तु यह सब कुछ होते हुये भी वह अधिकाँश समय किसी वृक्ष के नीचे बैठकर ध्यान-स्मरण में ही व्यतीत करता। खेती-बाड़ी का काम करते समय जब कभी उसे सिर पर मिट्टी का तसला उठाना पड़ता वह यह काम बड़ी प्रसन्नता से करता, परन्तु परम आश्चर्य की बात, जो उसके घरवाले और गाँव के अनेक लोग देखते, वह यह थी कि मिट्टी या बोझे का तसला उसके सिर के साथ न छूकर जैसे हवा में तैरता हुआ उसके सिर से दो-तीन इंच ऊपर उठा रहता और उसके साथ-साथ चलता। बड़ी दूर-दूर से लोग भगवान की इस विचित्र लीला और भूमिया की विभूति को देखने आते और चकित रह जाते तथा भूमिया को जन्म-सिद्ध योगी मानकर उसके सामने माथा टेकते और आदर देते। भूमिया नम्रतापूर्वक यही कहते, "यह तो परमकर्ता भगवान की शक्ति से सहज रूप से होता है, मैं स्वयं कुछ करने-कराने वाला नहीं हूँ।" उसी समय से भूमिया की ख्याति उस पूरे क्षेत्र में फैल गयी। भूमिया बालक के सिर पर तसला न छूकर ऊपर

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

आकाश में चलने की घटना बुद्धिजीवियों (rationalists) को बड़ी अंधविश्वासपूर्ण (superstitious) लगती होगी परन्तु सर्वशक्तिमान परमेश्वर कभी-कभी अपने ही प्रकृति के बनाये नियमों के ऊपर से (transcendently) भी भक्त के जीवन में हस्तक्षेप करते हैं। भक्त प्रह्लाद को आग से तपे हुये लोहे के खम्बे के साथ बाँधने से वह खम्बा ठण्डा हो जाता है। प्रह्लाद को पहाड़ की चोटी से नीचे खड्ड में गिराने से उसको खरोंच तक नहीं आती। सभी धर्मों के शास्त्रों में ऐसी चमत्कारी घटनाओं का उल्लेख मिलता है। बाबा भूमनशाहजी की अलौकिक शक्तियों को उनकी कृपा से मैंने स्वयं अपनी आँखों से देखा है। मेरे स्वयं के साधना काल की अनेक भयावह घटनाओं में बाबाजी ने इस शरीर की रक्षा की और प्रत्येक पग पर वे मेरा पथ-प्रदर्शन और सहायता करते रहे। बाबाजी के विभूतियों से सम्पन्न होने का इससे अधिक बड़ा प्रमाण मेरे लिये भला और क्या हो सकता है? बाबाजी के प्रति तब मेरा भाव निरन्तर यही रहता —

"मैं तेरा, दरिया तेरा, किश्ती तेरी, साहिल तेरा।"

शुद्ध आध्यात्मिक दृष्टिकोण से भूमिया के सिर पर मिट्टी से भरा बोझल तसला न छूने का अर्थ यह भी लगाया जा सकता है कि भूमिया किशोरावस्था में ही उस पूर्ण आध्यात्मिक स्थिति को उपलब्ध हो चुका था जहाँ ब्रह्मविद् को जगत् एक बोझा प्रतीत न होकर सबमें परमात्मा का रूप ही दिखायी देता है तथा जगत् का कोई भी दुःख-सुख उसे छू तक नहीं पाता। दूसरा संकेत इस घटना से गीता और गुरुवाणी के अनुसार यह भी मिलता है कि अनन्य भक्त का सब प्रकार का बोझा भगवान स्वयं वहन करते हैं। महान् पुरुषों और अवतारों के जीवन की प्रत्येक घटना में निःसन्देह कोई आध्यात्मिक रहस्य अवश्य जुड़ा होता है।

भूमिया की किशोर अवस्था होने पर उसके पिता हस्सारामजी बहलोलपुर गाँव में अपनी जमीन बेचकर दीपालपुर चले गये और वहाँ मकान बनाकर रहने लगे। पास में जमीन ठेके पर लेकर उन्होंने अपना खेती बाड़ी का काम वहाँ भी जारी रखा। इधर भूमिया को उन्होंने एक पण्डितजी के पास पढ़ने के वास्ते भेजना शुरू कर दिया। भूमिया पण्डितजी से परमात्मा के बारे में ऐसे-ऐसे प्रश्न करता कि पण्डितजी असमन्जस में पड़ जाते और निरुत्तर हो जाते। परमात्मा के विषय में भूमिया के बोध-जन्य असाधारण ज्ञान तथा प्रेम को देखकर पण्डितजी को यह विश्वास हो गया

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

कि यह बालक कोई साधारण जीव नहीं है। भूमिया भी पढ़ाई की ओर अधिक ध्यान न देकर अन्तर्मुख होकर अपना अधिकाँश समय भगवद्-स्मरण में ही व्यतीत करता। धर्म और अध्यात्म के सम्बन्ध में इस किशोर बालक का अद्भुत ज्ञान-प्रेम देख-सुनकर सब लोग चकित रह जाते। दूर-दूर तक चारों ओर सभी गाँवों में यह चर्चा होने लगी कि किशोर भूमिया जन्म से ही सिद्ध महान् आत्मा है। लोग उनके पास उनके दर्शन करने व धर्म-परमात्मा के सम्बन्ध में अनेकानेक जिज्ञासायें लेकर आते और पूर्ण सन्तुष्ट होकर लौटते। भूमिया के माता-पिता का सम्मान भी खूब बढ़ा। हस्सारामजी भी प्रसन्न होकर सभी दर्शनार्थियों एवं धर्म प्रेमियों को भोजन कराते तथा उनकी सेवा करते। इस प्रकार भूमिया की दिव्य अलौकिक लीला का आस्वादन करते-करते समय बड़ी शीघ्रता से बीतने लगा।

अभी भूमिया की आयु कोई तेरह वर्ष के करीब होगी जब उन दिनों दसवीं गद्दी के गुरु श्रीगोबिन्दसिंहजी यात्रा करते हुये अपने सेवकों के साथ दीपालपुर के पास से निकले। भूमिया उनके चरणों में उपस्थित हुये और उनसे स्वयं को मंत्र-दीक्षा देने की प्रार्थना की। श्रीगुरुगोबिन्दसिंहजी ने उन्हें आशीर्वाद दिया परन्तु कहा कि आपके गुरुदेव उदासीन परमसंत बाबा प्रीतमदासजी नगर पाकपटन में जो वहाँ से तीस किलोमीटर के करीब होगा, अपने डेरे में विराजमान हैं। आप उनसे जाकर गुरुमंत्र लें। वे तुरन्त आपको पहचान जायेंगे व गुरुमंत्र देकर साधु बना देंगे। उदासीनाचार्य बाबा श्रीचन्द्रजी का यश आपसे फैलेगा। यह कहकर श्रीगुरुगोबिन्दसिंहजी अपने शिविर के साथ आगे यात्रा पर निकल गये।

भूमिया के मन में साधु बनने की अभीप्सा दिन प्रतिदिन बढ़ती गयी और अन्ततः उसने अपने माता-पिता को सब बात बताकर उनसे इस बारे में आज्ञा माँगी। उनके माता-पिता तो भगवान श्रीचन्द्रजी के अनन्य भक्त थे ही। उनके हृदय में भी आचार्य श्रीचन्द्रजी की प्रेरणा हुई और कुछ आरम्भिक संकोच के बाद उन्होंने भूमिया की बात मानकर उनको पाकपटन के लिये विदा किया। पाकपटन में बाबा प्रीतमदासजी के डेरे पर पहुँचकर भूमिया ने उनके चरणों में शीश झुकाया तो बाबाजी ने उठाकर उन्हें अपने गले लगा लिया और कहा, "मैं सब जानता हूँ, आप तो स्वयं आचार्य श्रीचन्द्रजी, मेरे आराध्य के साक्षात् अवतार हैं परन्तु शास्त्र की मर्यादा को पूरा करने और मुझे कृतार्थ करने के लिये ही आप यहाँ आये हैं।" उन्होंने भूमिया की

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

इच्छानुसार उनको गुरुमंत्र देकर उदासीन मत में दीक्षित कर लिया और भूमिया नाम बदलकर बाबा भूमनशाह रख दिया। उसके बाद से वे बाबा भूमनशाह के नाम से ही प्रसिद्ध हुये।

कुछ समय अपने गुरुदेव के चरणों में रहने के पश्चात बाबा भूमनशाहजी गाँव कुतुबकोट के पास आकर जंगल में एक कुएं के पास धूना लगाकर रहने लगे। इस क्षेत्र में उनका सुयश और सुकीर्ति तो पहले ही चारों ओर फैल चुकी थी। फलतः बाबाजी के पास हिन्दू तथा मुसलमान, सब धर्मों के लोग विशेषकर अपनी-अपनी मुरादें और जिज्ञासायें लेकर पहुँचने लगे। हर समय उनको साधक और सेवक घेरे रहते। सभी की मुरादें पूरी होती। बाबाजी के भगवद्भाव में पूर्णतया डूबे व्यक्तित्व में अत्यन्त प्रबल आकर्षण था। अधिकांश लोग तो उनके दर्शन करके ही तृप्त हो जाते थे। जो भी वहाँ उनके पास आता वह जिसकी जितनी झोली होती, अपनी भावना के अनुसार उसे भरकर ही लौटता। बाबाजी तो अहैतुकी करुणा और दया के सागर थे। सागर में कितनी भी नदियाँ आकर गिरें अथवा कितनी भी निकल जायें तो भी वह वैसे का वैसा असीम और अक्षय बना रहता है। यही तो ब्रह्मनिष्ठ महापुरुष की स्थिति शास्त्रों में वर्णित है। सुखमणि साहिब में और गीताजी में स्थितप्रज्ञ महान् संत के लक्षण जो बताये गये हैं वे सब बाबाजी में सर्वभावेन विद्यमान थे। पातंजलि योग-दर्शन में जिन-जिन असाधारण शक्तियों और विभूतियों का उल्लेख है वे सब भी बाबा भूमनशाहजी में प्रकट थीं। कभी-कभी उन्होंने लोगों की परमात्मा में श्रद्धा उत्पन्न करने के वास्ते उन विभूतियों का प्रयोग भी किया पर उनका प्रदर्शन वे स्वकीर्ति अथवा आर्थिक तथा भौतिक लाभ के लिये कभी नहीं करते थे। वे बड़े ही सरल, सौम्य (unassuming) और शान्त स्वभाव के थे।

कुतुबकोट गाँव एक मुसलमान पठान की जागीर थी। वहाँ अधिकाँश मुसलमान ही बसे थे। उन दिनों हिन्दू, मुसलमान व सिख आपस में प्रेमभाव से रहते थे। खासकर गाँव के लोग तो बिल्कुल भाईयों की तरह प्रेम से रहते। जो झगड़े लोगों में होते वह धन-सम्पत्ति को लेकर होते; काम, क्रोध, लोभ, मोह के कारण होते, परन्तु धर्म के नाम पर सामान्यजन (masses) में कभी विद्वेष की भावना के कारण झगड़े कदाचित् ही होते थे। इस प्रकार साधारणतया जनसाधारण में सामंजस्य बना हुआ था। मस्त मुसलमान सूफी फकीरों के पास हिन्दू-सिख जाते तो भगवान के प्रेम

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

के नशे में डूबे हिन्दू-सिख्र संतों के दर्शनों को हजारों मुसलमान भी आते। बाबा भूमनशाहजी ऐसे ही भगवद्-भक्ति रस और ज्ञान में डूबे संतों में से थे। अतः सभी धर्मानुयायी साधक और जिज्ञासु उनके पास आते थे।

कुतुबकोट गाँव के मुसलमान जागीरदार लक्खा वट्टू को किसी बड़े अपराध में लाहौर के सूबेदार ने लाहौर जेल में बन्द कर रखा था। बाबाजी का यश सुनकर लक्खे वट्टू की माँ, जिसका नाम बख्तावर था, अपने रिश्तेदारों को साथ लेकर बाबाजी के पास गयी और रोई, विलाप किया तथा उनसे प्रार्थना की कि आप समर्थ, पहुँचे हुये साधु हैं आप अपनी शक्ति से मेरे पुत्र लक्खा वट्टू को किसी प्रकार भी लाहौर की जेल से छुड़वायें। इस पर बाबाजी हँसने लगे और फिर कहा—"जहाँ पर कुतुबकोट गाँव बसा है वह मेरे पिछले जन्म की तपो भूमि है। तुम्हारे लड़के को तो मैं छुड़वा दूँगा परन्तु यह कुतुबकोट गाँव आप लोगों को छोड़कर दूसरी जगह बसना पड़ेगा तथा मेरे पूर्वजन्म की तपोभूमि पर पहले की ही तरह लंगर चलेगा और संत तथा साधकजन वहाँ तप तथा साधना करेंगे।" बख्तावर तो अपने पुत्र के वियोग में बहुत बैचेन थी। उसने तुरन्त कहा—"महाराज, मेरा पुत्र यदि जेल से छूटकर सुरक्षित घर आ जाये तो जो आप कहेंगे हम आपकी आज्ञा का पालन करेंगे।" सर्वशक्तिमान परमात्मा की लीला अपरम्पार है। चौथे दिन ही लक्खा वट्टू लाहौर जेल से छूटकर घर वापस आ गया। अपने पुत्र को पाकर उसकी माँ बख्तावर की प्रसन्नता का तो कोई पारावार न रहा। उसने मन ही मन बाबाजी को बार-बार प्रणाम किया। उसके पुत्र ने जो बहुत ही हतप्रभ लग रहा था, अपनी माँ और रिश्तेदारों को बताया—"एक साधु फकीर, जिसके मुख-मण्डल पर अपूर्व शान्ति और दिव्य तेज था, रात को उस जेल के कमरे में प्रकट हुआ। उसके कमरे में आते ही कमरा मन्द-मन्द प्रकाश से जगमगा उठा। पहले तो मैं डर सा गया परन्तु फकीर साधु ने बड़े प्रेम और करुणा भरे शब्दों में कहा—'डरो मत, मैं तुम्हें लेने आया हूँ; तुम्हारी माँ बड़ी परेशान है।' फिर बाबाजी ने मेरे पाँव की बेड़ियां खोल दीं और कहा—'मेरे पीछे-पीछे चले आओ'। मैं उनके कहने के अनुसार उनके पीछे-पीछे चलने लगा। वे बन्द कमरे की दीवार से बाहर निकल गये; मैं भी उनके चारों ओर फैले प्रकाश में उनके पीछे-पीछे चलता हुआ कमरे और पूरे जेल की चारदीवारी से बाहर आ गया और उनके साथ उसी प्रकाश में चलकर, हम दोनों कुछ ही क्षणों में कुतुबकोट गाँव के पास पता नहीं

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

कैसे पहुँच गये। मुझे तो ऐसे लगा जैसे मैं कोई स्वप्न देख रहा हूँ। इतने में वह साधु तो गायब हो गया और मैं चलकर अपने घर आ गया हूँ।"

दूसरे दिन ही लक्खे की माँ अपने पुत्र को लेकर बाबा भूमनशाहजी के पास गयी। वहाँ बाबाजी के अनेक सेवक भी उपस्थित थे। लक्खे ने बाबा भूमनशाहजी को देखते ही एकदम पहचान लिया और उनके चरणों में गिर पड़ा। उसने सबको बताया कि यही बाबाजी मुझे जेल से छुड़ाकर लाये हैं। यह सुन-जानकर वहाँ उपस्थित सभी लोग बाबाजी की जय-जयकार करने लगे। वहाँ का पूरा वातावरण श्रद्धा, उल्लास और परमात्मा के विश्वास से सुवासित हो उठा। एक-दो दिन में ही इस अलौकिक घटना की चर्चा चारों ओर सब गाँवों में फैल गयी। दूर-दूर से लोग बाबाजी के पास दर्शन करने आने लगे और उनके चरणों में अपना शीश झुकाकर उनकी आशीषें लेने लगे। उधर माँ बख्तावर ने अपने कबीले के सब लोगों को इकट्ठा किया और बाबाजी से कुतुबकोट गाँव उनको देने की जो प्रतिज्ञा की थी, उसके सम्बन्ध में सभी को अवगत कराया। लक्खा वट्टू जो बाबाजी की अलौकिक शक्ति को देखकर अत्यन्त प्रभावित व अभिभूत था उसने स्वयं पूरे कबीले को इस बात पर राज़ी कर लिया कि उन्हें अपना पूरा कुतुबकोट गाँव बाबाजी को भेंट कर देना चाहिये। बातचीत के दौरान ही किसी रिश्तेदार ने यह कहा कि हम सब बाबाजी के बड़े ऋणी हैं और बाबाजी में हमारा पूरा यकीन व ईमान कायम हो गया है तो भी जिस जगह बाबाजी ने अपने पूर्वजन्म में तप किया था तथा लंगर चलाया करते थे, वह जगह तो हमें वे बतायें। वहाँ कोई निशान, कोई चिन्ह तो अवश्य होना चाहिये। सब लोग सोच-विचार करने के बाद बाबाजी के पास गये और उन्होंने उनके सामने अपनी मंशा प्रकट की। इस पर बाबाजी ने मुस्कुराकर कुतुबकोट में एक विशेष स्थान को खोदने के लिये आज्ञा दी। उस स्थान को खोदने पर बाबा भूमनशाहजी के पूर्वजन्म के धूने का स्थान (जहाँ उनका चिमटा व कमण्डल थे) मिला और उसके पास थोड़ी दूर खोदने पर लंगर के बड़े-बड़े डेगचे, कड़ाहे और तवे मिले जिससे पठान कबीले के सभी लोगों का यकीन और विश्वास और भी सुदृढ़ हो गया और वे सभी बाबाजी को मानने लगे तथा उनके सेवक बन गये। पठान लोग वह गाँव बाबाजी को भेंट कर वहाँ से सात किलोमीटर दूर जाकर नया गाँव बसाकर रहने लगे। उस नये

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

गाँव का नाम हवेली लक्खा पड़ा और गाँव कुतुबकोट का नाम बदलकर धीरे-धीरे भूमनशाह गाँव पड़ गया।

बाबा भूमनशाहजी अपने पूर्वजन्म के स्थान पर आ गये और वहाँ उन्होंने लंगर भी आरम्भ कर दिया। तब तक उनके हजारों सेवक बन चुके थे जिनमें सभी जातियों और धर्मों के लोग थे। बाबाजी के अनेकों अनन्य भक्त और सेवक लंगर के वास्ते सभी आवश्यक सामग्री भेंट करते और तन-मन-धन से सेवा भी करते। बाबाजी उनको सदाचार और ईमानदारी का जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा देते और परमात्मा का सतत् स्मरण करने का उपदेश करते। बड़े-बड़े विद्वान, काज़ी और पण्डित, उनके पास आकर परमात्मा के स्वरूप के बारे में प्रश्न करते और बाबाजी के शास्त्र-सम्मत और युक्ति-संगत उत्तरों को सुनकर चकित रह जाते। बाबाजी बड़े सरल शब्दों में सबका समाधान करते और अक्सर कहा करते—

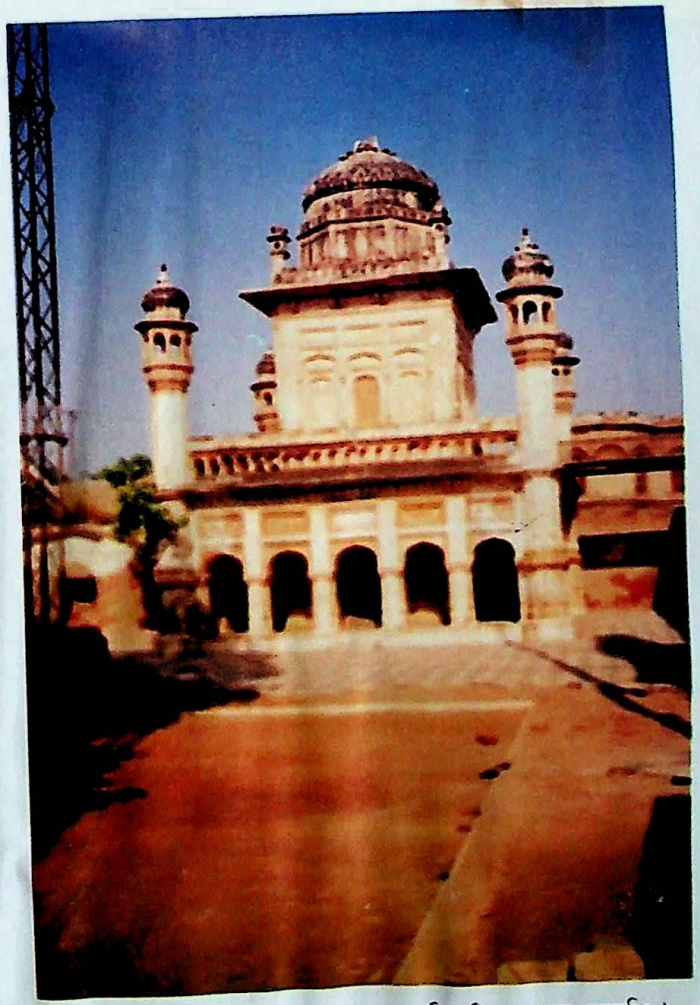
"देने को अन्न दान, लेने को हरि नाम।"

जीवन के उच्चतम मानवीय एवं आध्यात्मिक मूल्यों को अपनाने की सद्प्रेरणा निरन्तर वे सरल भाषा में देते रहे जिसमें जात-पात व सम्प्रदाय आदि का तनिक भी आभास न होता। सबसे बड़ा उपदेश तो उनका भगवद्मय और सेवामय स्वयं का आदर्श जीवन था। इसी कारण बाबाजी का डेरा खूब फला व फूला भी।

इस प्रकार एक सच्चे साधु का जीवन व्यतीत करते हुये वे विक्रमी सम्वत् 1804 ई० के पौष मास की तेरहवीं तिथि को अपनी भौतिक देह का परित्याग कर अपने आत्मस्वरूप परमात्मा की ज्योति में लीन हो गये। अपनी देह त्यागने के सात दिन पूर्व ही उन्होंने अपने सब सेवकों के सामने अपने मुख्य शिष्य बाबा निर्मलचन्दजी को अपने हाथों से तिलक लगाकर अपना उत्तराधिकारी बना दिया था। कालान्तर में बाबा भूमनशाहजी की परम्परा में बाबा महन्त दर्शनदासजी व बाबा महन्त हरभजनदासजी बड़े ही प्रभावशाली संत हुए। महन्त दर्शनदासजी के दर्शन करके उस समय का अँग्रेज कमिश्नर इतना प्रभावित हुआ था कि उसने बाबा भूमनशाहजी के लंगर के वास्ते तीन हजार एकड़ कृषि भूमि उनके डेरे के नाम लगा दी थी। महन्त हरभजनदासजी ने डेरे में बड़े-बड़े भव्य भवनों का निर्माण करवाकर डेरे व लंगर की उन्नति की। उन्होंने आचार्य श्रीचन्द्रजी का मन्दिर, बाबा भूमनशाहजी की मूलभूत समाधि और

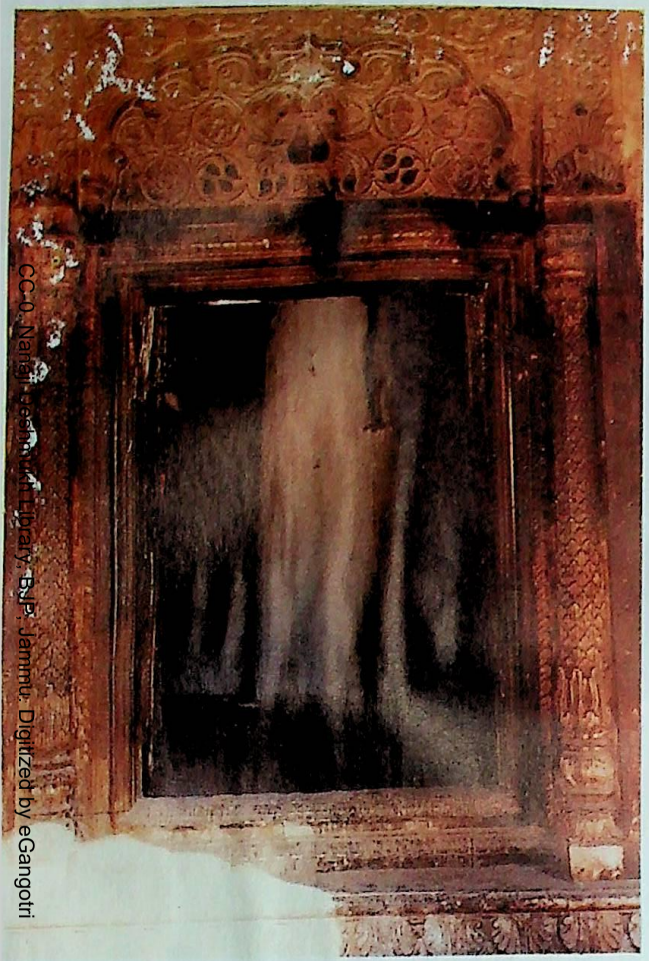
CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



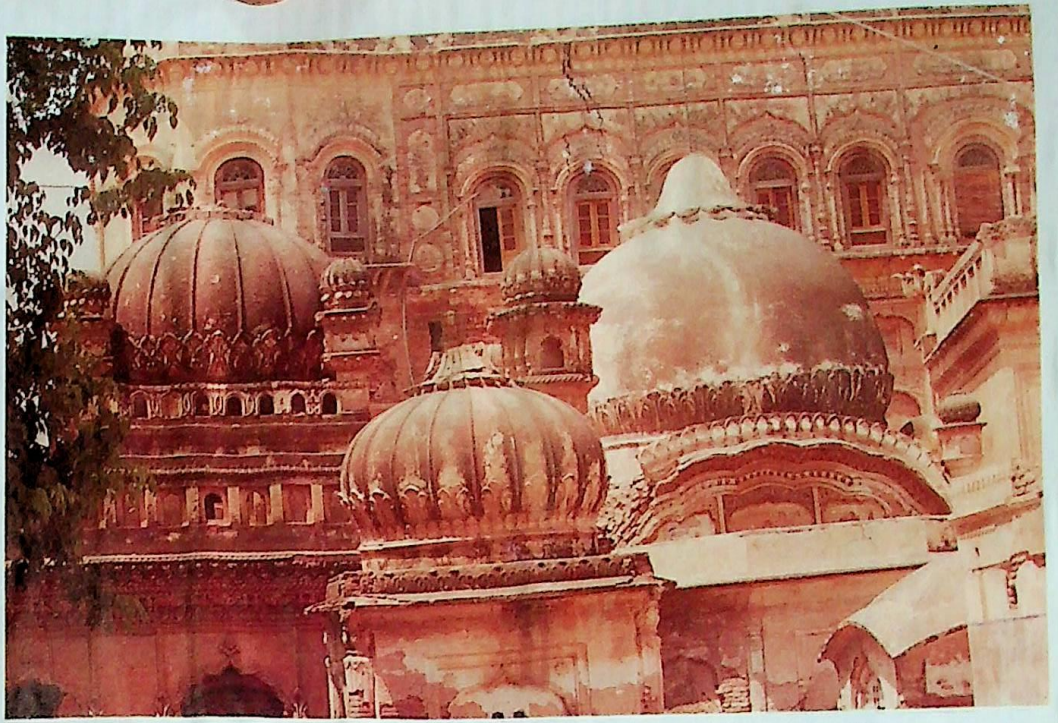


स्वामीजी के बचपन की प्रेम कहानी का केन्द्र एवं लाखों भक्तों की श्रद्धा की प्रतीक— बाबा भूमनशाहजी की मूलभूत समाधि। देश के विभाजन के बाद कोई देख-रेख न होने से समाधि तथा डेरे के अन्य भवन खस्ता और जर्जर हालत में हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



बाबाजी की समाधि के गर्भगृह में संगमरमर का बना हुआ स्तम्भ है। उसके चारों ओर भक्त परिक्रमा करते थे। इस स्तम्भ के कारण पंजाब के लोकगीतों में बाबाजी को 'चिट्टियां समाधां वाला' कहकर गाते हैं। इस स्तम्भ की सुबह-सुबह आरती उतारी जाती थी जो दूसरे महंतों की समाधियों पर भी ले जायी जाती थी।



समाधि परिसर में मुख्य समाधि बाबा भूमनशाहजी की थी। उसके अलावा डेरे के आठ पूर्व महंतों की भी समाधियां बनी थीं। चित्र में बायीं ओर से पहली समाधि पांचवें महंत दर्शनदासजी की है जिसके अन्दर बालपन में सवेर-सवेरे बैठकर बालक सूरजप्रकाश घंटों गहरे ध्यान में डूब जाता था।

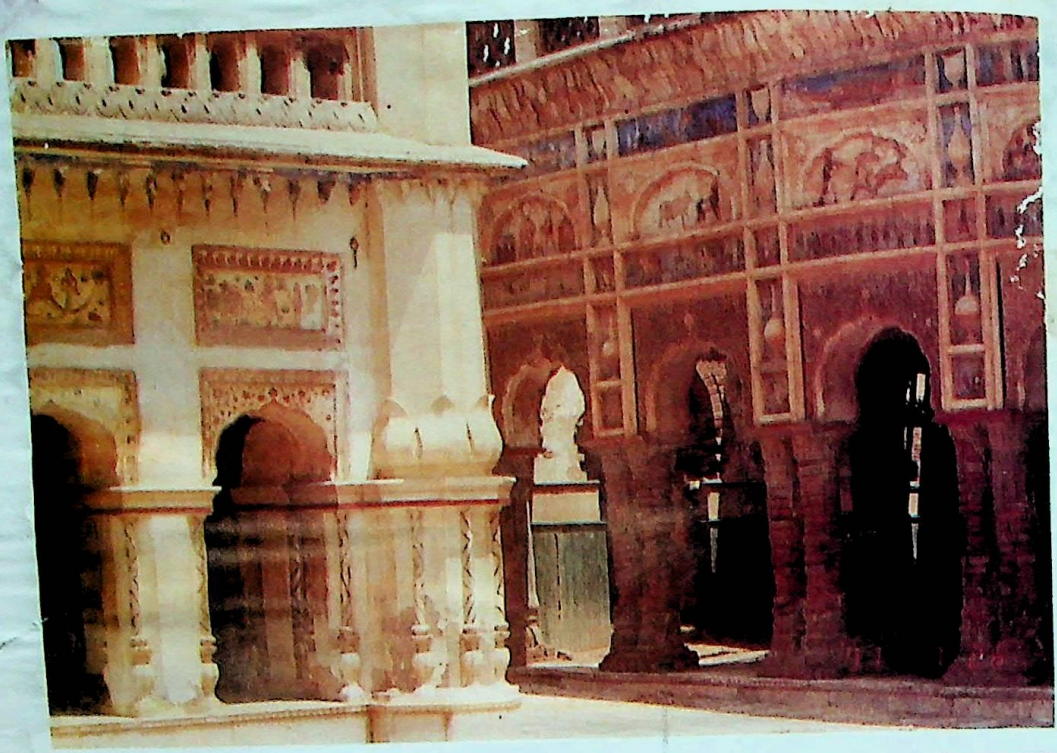
CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri





दोनों चित्रों में दिख रहा समाधि परिसर के बाहर विशाल दुमंजिला भवन, नौवें महंत श्री भजनदासजी ने बनवाया था। ऊपर की मंजिल में वे स्वयं तथा अन्य लोग रहा करते थे। नीचे लंगर के लिये बहुत से कमरे बने हुए थे।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri





दोनों चित्रों में समाधि परिसर में ही समाधि के बायीं ओर बने भव्य सत्संग हॉल का बरामदा दिख रहा है। पूरे सत्संग हॉल में अन्दर और बाहर सुन्दर चित्रकारी और नक्काशी की हुई थी।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

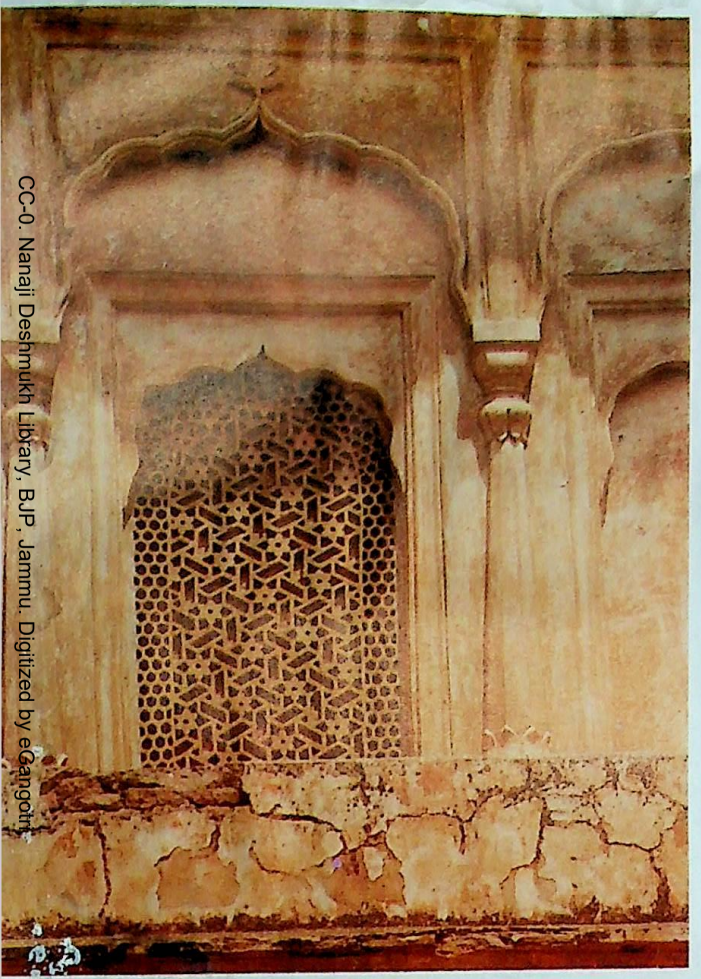


सत्संग हॉल के अन्दर एक ओर भगवान श्रीचन्द्रजी का मन्दिर तथा गुरुद्वारा एक साथ ही थे। चित्र में दिख रहे गुम्बद के नीचे बायीं ओर बाबा भूमनशाहजी की फोटो थी, बीच में बाबा श्रीचन्द्रजी की मूर्ति थी तथा दायीं ओर श्रीगुरुग्रन्थसाहब का प्रकाश था।

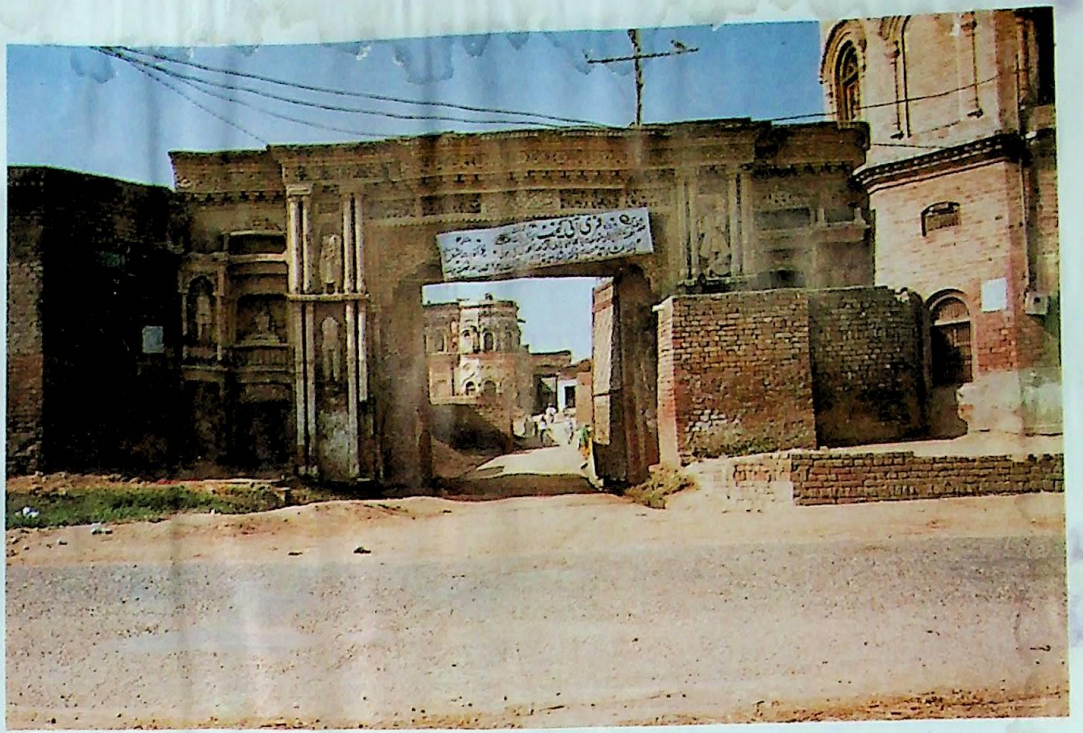


← समाधि परिसर में एक ओर झंडा साहब भी स्थापित थ

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, [illegible] Jammu. Digitized by eGangotri

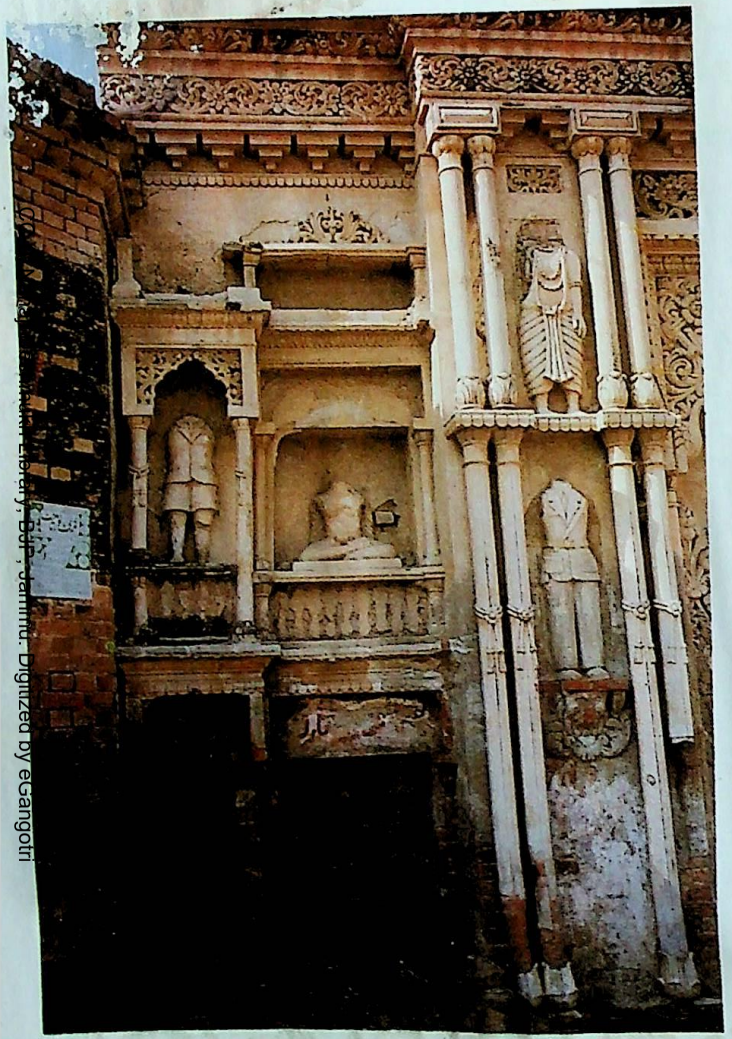


डेरे के एक भवन का चित्र। डेरे के भवनों में लकड़ी और पत्थर की सुन्दर नक्काशी तथा चित्रकारी की हुई थी।



डेरे का मुख्य द्वार। द्वार के दोनों ओर लगी मूर्तियां खण्डित कर दी गयी हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



मुख्य द्वार के निकट खण्डित मूर्तियों के चित्र।



डेरे से लगभग एक किलोमीटर दूर महंत हरभजनदासजी ने एक बड़ा तालाब बनवाया था। तालाब में चारों ओर सीढ़ियां बनी हुई थीं। उसके किनारे दो-तीन कमरे भी बने हुए थे जिनमें प्रायः साधु ठहरा करते थे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

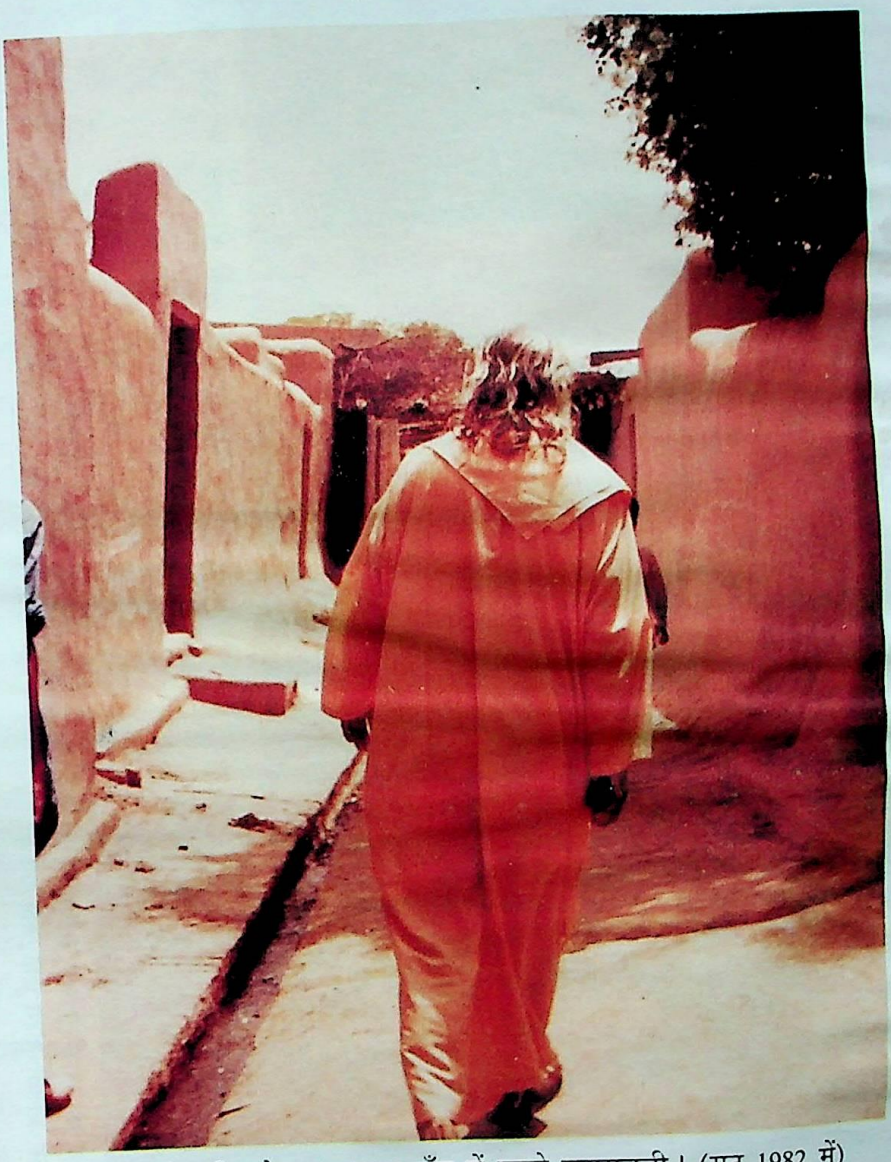


सन् 1982 में महाराजजी अपने कुछ भक्तों के साथ बाबाजी की समाधि के दर्शन करने पाकिस्तान गये थे। चित्र में वे समाधि परिसर में घूम रहे हैं।



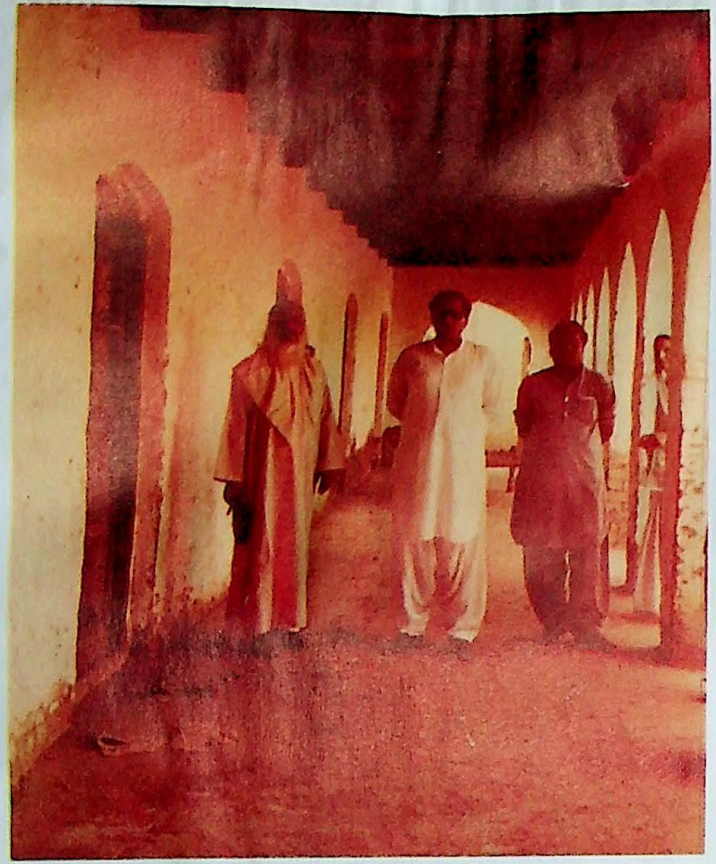
समाधि परिसर के पास बगीचे वाली सड़क पर चलते हुए।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



अतीत के गलियारे। भूमनशाह गाँव में घूमते महाराजजी। (सन् 1982 में)

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



हवेली लक्खा गाँव के होस्टल की डोरमैट्री का बरामदा। यहाँ स्वामीजी पाँचवीं से लेकर आठवीं कक्षा तक चार वर्ष रहे। (सन् 1982 का चित्र)



↑ होस्टल के कमरों के बाहर जहाँ वे नवीं व दसवीं कक्षाओं में रहे। सन् 1982 में यह स्थान उजाड़ पड़ा था।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

लंगर के वास्ते बड़े-बड़े भवन तथा भजन-साधन के वास्ते एक भजन-महल नाम का बड़ा भवन भी बनवाया।

भारत के विभाजन से पूर्व अर्थात् अगस्त, 1947 से पूर्व, भूमनशाह डेरे में प्रतिवर्ष चार उत्सव बड़े श्रद्धा व उल्लास से मनाये जाते थे। पहला बाबा भूमनशाहजी का निर्वाण दिवस जिसे तेरहवां कहा जाता था। दूसरा श्रीचन्द्र नवमी अर्थात् बाबा श्रीचन्द्रजी का जन्म-दिवस जिस पर सैंकड़ों संतों, सेवकों और जनता-जनार्दन को अनेकानेक प्रकार के व्यंजन तथा मिष्ठान सहित स्वादिष्ट भोजन कराया जाता था। तीसरा बैसाखी व चौथा माघी भी बड़े उत्साह से मनाई जाती थी।

भारत का विभाजन धर्म के आधार पर हिन्दुओं तथा मुसलमानों के बीच हुआ। बँटवारे में बाबा भूमनशाह गाँव पाकिस्तान में चला गया और सभी हिन्दुओं को वहाँ से जान बचाकर भागना पड़ा। इधर जहाँ भारत एक धर्मनिरपेक्ष देश बना उधर पाकिस्तान ने अपने आपको मुस्लिम धर्म पर आधारित देश घोषित कर दिया।

पाकिस्तान बनने के बाद बाबाजी के सेवकों ने उत्तरी भारत में अनेक स्थानों पर बाबा भूमनशाहजी के मन्दिर उनकी मधुर स्मृति में बनाये हैं जहाँ प्रतिदिन श्रद्धा एवं प्रेमपूर्वक बाबाजी की पूजा-अर्चना होती है। उनमें से सबसे बड़ा स्थान संगरसाधां गाँव, जिला सिरसा (हरियाणा) में है।

बाबा भूमनशाहजी की कृपा सब पर सदा-सर्वदा बरसती रहे और बाबाजी के डेरे से ऐसे प्रभावशाली संत निकलें जो बाबा भूमनशाहजी के दिव्य पदचिन्हों पर चलकर अपने अध्यात्मपूर्ण, भगवद्मय एवं सदाचारी जीवन से जनता का पथ-प्रदर्शन करें। इस प्रार्थना के साथ बाबाजी के चरणों की धूल,

आपका अपना
चन्द्रस्वामी



CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

स्वामीजी द्वारा लिखे कुछ पत्रों का संकलन

चौथा भाग

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

ॐ

परम प्रिय ....., सप्रेम हरि स्मरण।

आपने अपने मानसिक दुःख की बात लिखी है। इसको सम्यक् विचार से हटाया जा सकता है। मोह के कारण ऐसा है। मोह और ममता से दूर रहने पर ही शान्ति मिलती है।

"निर्ममो निरहंकारः सा शान्ति अधिगच्छति।" (गीता)

"अर्थात् जिसका मोह और अहंकार मिट जाता है उसी को शान्ति मिलती है।"

आप अपने मन को परिवार से थोड़ा उपराम रखें और इसे भजन-स्मरण में लगाने का प्रयत्न करते रहें।

सुख-दुःख के वेगों को सहन करने का नाम ही तप है। विचार और विवेक से मन को शान्त रखकर भजन-स्मरण में लगायें।

प्रभुनाते, चन्द्रस्वामी

परम प्रिय ....., सप्रेम हरि स्मरण।

शरीर की अपूर्णताएं और सीमाएं (limitations) जीवनपर्यन्त बनी ही रहती हैं। प्रारब्ध के कारण किसी का शरीर कम रोगी होता है और किसी का अधिक। संत तो यह कहते हैं कि शरीर भी एक रोग है। जब तक शरीर रहता है

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

और शरीर से तदात्मिकता (देह-अध्यास) रहती है, जीव को अपूर्णता की प्रतीति होना अनिवार्य है। इसी वास्ते विचारवान यही चाहते हैं कि दोबारा शरीर में न आना पड़े। और यह तभी सम्भव है जब शरीर का मोह पूरी तरह टूट जाए। एक बात और विचारणीय है कि जगत् में अन्य प्राणी-पदार्थों से जो राग या मोह होता है वह शरीर के मोह के कारण से ही होता है। जगत् से हमारा सम्बन्ध भी अपने शरीर के माध्यम से ही होता है। अतः देहाध्यास छूटे बिना जगत् के प्राणी-पदार्थ-परिस्थितियों से भी मोह नहीं छूटता।

शरीर का छूटना और शरीर से मोह का छूटना दोनों एक ही बात नहीं है। शरीर का मोह तो विवेक और बोध से छूट जाता है पर शरीर तो अपने प्रारब्ध भोग को भोगकर ही छूटता है।

आप अपना अधिकतम समय भजन-स्मरण में लगाते हैं, यह बहुत अच्छा करते हैं। परमात्मा के भजन-स्मरण से मनुष्य-जीवन सफल होता है। वैसे जीने को तो पशु-पक्षी भी जीते ही हैं पर उनका जीवन मात्र शरीर एवं इन्द्रियों के भोग भोगने में ही व्यतीत हो जाता है। वे आत्मा-परमात्मा के सम्बन्ध में न कुछ सोचते हैं और न सोच ही सकते हैं। उनके दुःख-सुख अधिकांशतः शारीरिक तल के ही होते हैं।

प्रभुनाते, चन्द्रस्वामी

परम प्रिय ....., सप्रेम हरि स्मरण।

वृद्धावस्था आने पर थोड़ी बहुत गड़बड़ तो शरीर में बनी ही रहती है। उसे वृद्ध होने (aging process) का अनिवार्य अंग मानकर उससे समझौता (compromise) कर लेने से मन दुःखी (disturb) नहीं होता। शरीर में विघटन (decay) या ह्रास को रोका नहीं जा सकता। शरीर का अवसान निश्चित रूप से मृत्यु में होता है, भले ही कोई कितनी बड़ी आध्यात्मिक उपलब्धि क्यों न कर ले। जो नाशवान है उसे अविनाशी नहीं बनाया जा सकता, और जो अविनाशी है

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

उसका कभी नाश नहीं होता। उस अविनाशी परमात्म तत्व की खोज और उसका अपरोक्षानुभव ही आध्यात्मिक साधना का परम उद्देश्य है। आत्मानुभव होने पर सब झूठे तादात्म्य टूट जाते हैं और जीव परमानन्द को प्राप्त कर कृतकृत्य हो जाता है।

मोह-ममता ही प्रायः भजन-साधन में बाधा डालते हैं। मोह से ही द्वेष का जन्म होता है। इच्छा-लोभ आदि तो निरन्तर विवेक करते रहने अथवा आयु अधिक होने पर अपने आप ही कम (subside) होने लगते हैं। पर मोह-ममता की जड़ें अवचेतन मन में गहरी होती हैं। वह प्रार्थना और जप-ध्यान आदि के लम्बे अभ्यास से ही कटती हैं।

आप अपनी परिस्थिति और शरीर की अवस्था के अनुसार अधिकाधिक प्रार्थना और जाप करते रहिए जिससे निरन्तर प्रभु-स्मरण बना रहे।

अपना काम पूरा हो चुका है। अब शरीर जैसे जब तक रहे अथवा न रहे, जैसे प्रभु रखें, सब ठीक है। जैसे भूख लगने पर शरीर को भोजन दिया जाता है वैसे ही शरीर रोगी होने पर उसे औषधि दी जाती है।

प्रभुनाते, चन्द्रस्वामी



परम प्रिय ....., सप्रेम हरि स्मरण।

आप अपना अधिकांश समय भजन-स्मरण में व्यतीत कर रहे हैं यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई। वृद्धावस्था में शरीर की प्रतिरोधक शक्ति कम हो जाने से उसके साथ थोड़ा बहुत रोग लगा ही रहता है। तो भी जितना बन पाये इस शरीर का भजन-स्मरण में उपयोग करते ही रहना चाहिये।

भजन-स्मरण में अधिक बाधा तो मोह और अहंकार ही डालता है। मोह के कारण मन में अनेक प्रकार की प्रतिक्रियायें होती हैं जिनके कारण मन जिस संलग्नता से भजन में लगना चाहिये वैसे नहीं लग पाता। मन के विकार तो निरन्तर प्रार्थना, भजन-स्मरण और विवेक-विचार करते रहने से ही शान्त होते हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

जगत् स्वप्नवत है पर बड़ा सत्य प्रतीत होता है। स्वप्नावस्था में स्वप्न देखने वाले को प्रायः ऐसा प्रतीत नहीं होता कि वह स्वप्न देख रहा है। जब कभी ऐसा प्रतीत होता है कि वह स्वप्न देख रहा है तो स्वप्न भंग हो जाता है और वह जग जाता है। जैसे स्वप्न के दुःख-सुख जागने पर ही दूर होते हैं ऐसे ही जगत् के दुःख-सुख जीव के तब दूर होते हैं जब वह अपने सत्यस्वरूप आत्मा में जग जाता है।

जे सपने सिर काटे कोई ,
बिन जागे दुःख दूर न होई।

मोह-माया की निद्रा से जागने का उपाय निरन्तर प्रभु चिन्तन एवं स्मरण ही है। बच्चों से जाने अनजाने अनेक अपराध होते हैं, पर माता-पिता उन्हें मन में कभी नहीं बिठाते।

"सुत अपराध करत हैं जेते, जननी चीत न राखस तेते।"

गुरु अर्जुनदेवजी यह कहकर प्रभु से विनम्र प्रार्थना करते थे। कोई भी मनुष्य हर प्रकार से पूर्ण नहीं होता। सभी में कुछ गुण-दोष रहते हैं। यह भी एक आश्चर्य है कि एक मनुष्य जो स्वयं अपने आपको perfect (पूर्ण) नहीं बना सकता परन्तु वह दूसरों को perfect (पूर्ण) ही देखना चाहता है।

साधक दूसरों के सद्गुणों को देखता है और अपने अवगुणों को मिटाने का प्रयास करता है।

यहाँ आश्रम में सभी ठीक हैं और आपको सप्रेम याद करते हैं।

प्रभुनाते, चन्द्रस्वामी

परम प्रिय ....., सप्रेम हरि स्मरण।

पूरा जगत् स्वप्नवत है, पर बड़ा सत्य प्रतीत होता है। इसी वास्ते जगत् की घटनाओं से मन प्रभावित होता है। मोह-माया की निद्रा से जब तक जीव नहीं जागता तब तक वह कैसे भी रहे, कहीं भी रहे, उसका दुःख दूर नहीं होता।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

बड़े-बड़े राजा महाराजा भी दुःखी रहते हैं।

जे सपने सिर काटे कोई ,
बिन जागे दुःख दूर न होई।

मोह-माया की निद्रा भगवान के भजन से ही टूटती है। आप जितना बन सके अधिक से अधिक हरि स्मरण करते रहा करें।

अन्त समय का क्या पता। कब किसका अन्त समय आ जाये। इस वास्ते हर समय ही भगवान का स्मरण करना चाहिये।

अन्त समय मन प्रायः उसके चिन्तन में रहता है, जीवन में जिसकी सबसे गहरी छाप मन पर पड़ी होती है।

भगवान से यही प्रार्थना रोज़ करनी चाहिये कि प्रभु मेरा मन हर समय, खास कर अन्त समय, आप में ही लगा रहे।

माण्डूक्य उपनिषद के ऋषि ने भी एक मन्त्र के द्वारा भगवान से ऐसी ही प्रार्थना की है।

प्रभुनाते, चन्द्रस्वामी



ईश्वर अनुरागी प्रिया ....., सप्रेम प्रभु स्मरण।

आशा है यह पत्र आप सबको सकुशल पायेगा। आप प्रातः और सायं नित्य भजन में बैठती होंगी। अभी आपको वही और इसी प्रकार गायत्री जप ही करते रहना चाहिये। अधिक लगन और निष्ठा से करें। लाभ लगन और एकाग्रता के अनुपात से होता है। फिर भी यह निर्विवाद है कि प्रभु-स्मरण कैसे भी किया जाये, वह कभी व्यर्थ नहीं जाता।

सायंकाल और प्रातः आप प्रिय ..... को साथ लेकर आरती किया करें। प्रार्थना को खाने-पीने आदि दैनिक कार्यों के समान आवश्यक समझना चाहिये। जिस प्रभु ने जीवन दिया उसका धन्यवाद करने के लिये प्रातः व सायं अवश्य बैठना चाहिये। और सब ठीक है।.....जी, आप भी प्रातः और सायं

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

को भजन में अवश्य बैठा करें। यदि शान्ति और एकाग्रता को उपलब्ध करना हो तो राजनीति में अधिक भाग नहीं लेना चाहिये। समाज और देश की सेवा तो शायद राजनीति में सक्रिय भाग (active part) लेने के बिना भी की जा सकती है।

प्रभुनाते, चन्द्रस्वामी

परम प्रिय....., सप्रेम हरि स्मरण।

आपका पत्र जो आप मेरे लिये सेवक निवास में छोड़ गये थे, मुझे सिंगापुर से वापिस आने पर प्राप्त हुआ। आप सेवक निवास आकर रहे हैं, यह आपका अपना घर है। आप जब भी यहाँ रहें, मेरे लिये प्रसन्नता की बात होगी। मेरी अनुपस्थिति में आपको यहाँ कोई कष्ट तो नहीं हुआ? प्रिय ..... ने आवेश में आकर आपको वैसे शब्द कह दिये होंगे, वैसे हृदय का वह वैसा नहीं है। आप इस बात को हृदय से भूल जायें, घर में ऐसी बातें हो जाया करती हैं। माँ-बाप बच्चों की बातों को हृदय में नहीं रखते। प्रिया ..... क्या कर रही है? उसका विवाह हो जाये तो आपकी बड़ी जिम्मेदारी पूरी हो जाये। गृहस्थाश्रम में विशेषकर भारत में माता-पिता के लिये बच्चों को settle करके उनके विवाह आदि करना बड़ा दायित्व माना जाता है।

आप भजन-साधना में कुछ समय रोज बैठते होंगे। मन में जब सतोगुण प्रधान होता है तो संतोष, विवेक, वैराग्य और सत्य की अभीप्सा के भाव बने रहते हैं और भजन-साधना में रस आता है। सांसारिक सुखों की भजन के रस के साथ कोई तुलना नहीं है।

सिंगापुर छोटा सा टापू है पर है बड़ा सुन्दर। वैसे भी सिंगापुर (world) दुनिया की दूसरी बड़ी sea port (बन्दरगाह) मानी जाती है। प्रिय.....मुझे तीन दिन के वास्ते मलयेशिया भी ले गये थे और वहाँ भी सब दिखाया।

सबको सप्रेम हरि स्मरण।

प्रभुनाते, चन्द्रस्वामी

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

परम प्रिय....., सप्रेम हरि स्मरण।

आपके पत्र पहले काष्ठ मौन में ही मिले थे। उत्तर नहीं लिख सका। आप क्षमा करेंगे ..... ।

समय नदी के पानी की तरह बहता चला जा रहा है और उसके साथ वह पावन अवसर भी खिसकता जा रहा है जिसका सद्लाभ उठा पाते तो संसार चक्कर के बाहर निकल पाते। इस दुःख-सुख भरे जगत् में भटकते हुये जीव के लिये परमात्मा की शरण एवं मधुर स्मरण के बिना कल्याण का दूसरा कोई मार्ग नहीं है।

प्रभुनाते, चन्द्रस्वामी



परम प्रिय ....., सप्रेम हरि स्मरण।

आपके सभी पत्र मुझे उचित समय पर मिल गये हैं। यह शरीर तो शायद नहीं आ सकेगा, इन्हीं दिनों लन्दन से एक प्रेमी आ रहे हैं। वे पिछले सात-आठ साल से आनें की सोच रहे थे, परन्तु पहले न आ सके। उनका भारत आने का प्रयोजन केवल सेवक निवास में मेरे पास रहने का है। शायद वे एक महीना रहेंगे। गाँधीधाम से भी नौ-दस लोग आ रहे हैं।

प्रिया ..... अपने घर चली जायेगी, तो आप एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी से मुक्त हो जायेंगे। तब आप दोनों अपने मन को सभी तरह से हटाकर प्रभु-सिमरन में लगाइयेगा।

भारत में परम्परा (tradition) थी कि गृहस्थाश्रम के प्राप्त कर्तव्यों और सामाजिक कर्तव्यों को पूरा करके शेष जीवन उपासना और सत्य की खोज में लगाया जाता था। अब आपको अवसर मिलेगा, एकचित्त भजन-साधना करने का। लोक में बहुत कुछ किया, कराया और देखा, आगे परलोक के लिये तैयारी भी तो करनी है। व्यावहारिक दृष्टि से परलोक वैसे ही सत्य है जैसे यह लोक। लोक में जीव कर्म करता है और जैसा आध्यात्मिक विकास उसका यहाँ होता है,

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

परलोक में उसी के अनुरूप उसकी गति होती है। शान्ति मनुष्य को कहीं बाहर से नहीं मिलती। सद्कर्मों, सद्चिन्तन, सदाचार और विवेक आदि से जब मनुष्य परियुक्त और भक्तिप्रेम से अनुप्राणित होता है तो उसे अपने भीतर शान्ति और आनन्द की प्रतीति होने लगती है।

प्रभुनाते, चन्द्रस्वामी

परम प्रिय ....., सप्रेम हरि स्मरण।

प्रिय ..... का शुभ-विवाह प्रभु की कृपा से सब प्रकार से ठीक तरह से सम्पन्न हुआ, यह जानकर प्रसन्नता हुई। इसके लिये सारे परिवार को बधायी। .....।

मनुष्य जीवन देवताओं को मिलना भी दुर्लभ होता है, चेतना अपने उच्चतम शिखर को केवल मनुष्य शरीर में ही उपलब्ध हो सकती है तो भी साधारण मनुष्य इस सुवर्ण अवसर को ऐसे ही गंवा देता है। बचपन खेलकूद, अबोधपन में बीत जाता है, जवानी धन कमाने और विषय-विकारों के क्षणिक सुख भोगों में तथा परिवार और समाज की जिम्मेदारियों को निभाने में ही चली जाती है, बुढ़ापे में परलोक की चिंता होती है परन्तु शरीर जर्जर एवं रोगी रहने के कारण और मन के अनेक मनोग्रन्थियों से ग्रसित होने के कारण, साधना-भजन जैसे होना चाहिये वैसे नहीं हो पाता। फलतः साधारण मनुष्य जब शरीर को छोड़ता है तो बड़ा हतप्रभ, उदास और चिन्ताग्रस्त होता है, उस यात्री की तरह, जिसका सब कुछ लुट गया हो।

शरीर साधन है, शरीर को प्रभु-भक्ति के मार्ग पर चलाने के लिये। इसे अपनी ओर से स्वस्थ और निरोग बनाये रखने के वास्ते संयम, नियम से रहना चाहिये और निरन्तर भजन, साधना, ध्यान, आत्मचिन्तन से अपने मन को परिष्कृत करते रहने का प्रयास करते रहना चाहिये।

प्रभुनाते, चन्द्रस्वामी

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

परम प्रिय....., सप्रेम हरि स्मरण।

आपके दोनों पत्र मुझे मिले .....। प्रवृत्ति में मनुष्य के सच्चे लक्ष्य के विस्मरण होने का भय होता है। व्यक्ति अकेला होता है तो उसे जीवन रहस्य के प्रति सोचना ही पड़ता है। कर्मों, सम्बन्धों, परिस्थितियों में खोई हुई चेतना को अपनी ओर पीछे मुड़कर देखने की सुविधा एकान्त में ही होती है।

मनुष्य चाहे कितना भी शक्तिशाली हो जाये, कभी अनुत्तेजित क्षणों में उसे अपनी असमर्थता का अनुभव और उस परमचेतन विश्व शक्ति जो गुप्त रूप से इस जगत् का संचालन कर रही है, की धुन्धली झलक भी मिलती है। पर मोह-माया की जंजीरों में फँसा प्राणी सत्य और परमात्मा की प्राप्ति के मार्ग में अपने जीवन को पूरी तरह नहीं लगाता। फलतः वह अपने अमूल्य जीवन को नश्वर एवं क्षणिक लाभों की खोज में ही गँवा देता है और सच्चे आनन्द और ज्ञान-प्रेम से उसे वंचित ही रहना पड़ता है।

आप अब यहाँ आने वाले होंगे। शायद आपको पता चल गया होगा कि मेरा विदेश जाने का प्रोग्राम कुछ विदेशी सेवकों के अनुरोध पर बना है।

प्रभुनाते, चन्द्रस्वामी

परम प्रिय ....., सप्रेम हरि स्मरण।

आपका पत्र उचित समय पर मिला। आप यहाँ आकर ठहरेंगे, हमें बड़ी प्रसन्नता होगी।

फ्राँस से तो पाँच-छः लोग आये हुए हैं, गाँधीधाम से भी तीन लोग आये हुए हैं। हम सब मिलकर सवेरे 3.30 बजे से 4.30 बजे तक और शाम को 5.30 बजे से 6.30 बजे तक भजन-ध्यान में बैठते हैं। आश्रम में वातावरण शान्त है। ध्यान-भजन में ऐसा आनन्द है जो शरीर तथा परिस्थिति और उनकी सीमाओं से निर्पेक्ष है। 'उसे' मनुष्य जीवन में ही पाया जा सकता है ; 'उसे' पाने में ही इस जीवन की सार्थकता है। संसार की मृगतृष्णा के वशीभूत होकर जीव भटकता

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

रहता है; उसकी प्यास तो बुझती नहीं और जीवन व्यर्थ में चला जाता है यही जीवन की विडम्बना है।

जगत् की असारता समझकर भी मनुष्य सत्य/परमात्मा की ओर अनन्यता से नहीं लग पाता, यही सबसे बड़ा आश्चर्य है।

प्रभुनाते, चन्द्रस्वामी



परम प्रिय..... एवं ....., सप्रेम हरि स्मरण।

आपका पत्र मिला, पूज्य महाराजजी (स्वामी कृष्णदासजी श्रीनगर कश्मीर वाले) के इस बार सेवक निवास में पुनः आने की हम प्रतीक्षा कर रहे हैं। वे इस बार सेवक निवास को पुनः पवित्र करेंगे। यह हम सबके लिये सौभाग्य और गौरव की बात है।

श्री..... जी, मैं महाराजजी के आने पर ऊपर तीसरी मंजिल पर इस वास्ते रहता हूँ कि नीचे रहने पर मैं अपने आपको किसी कमरे में बन्द करके रहूँ, वरना सारा दिन ही लोग मिलने आते रहेंगे। सेवक निवास बिल्कुल ही सड़क के किनारे है और ऐसे लोग जो भारत माता मन्दिर और दूसरे मन्दिरों को देखने आते हैं तो सेवक निवास में भी आ जाते हैं। बिना विशेष जिज्ञासा के केवल casually ही आते हैं। ऐसे तो सारा दिन मिलने में ही बीत जाये और वैसे भी मुझे एकान्त में रहने का अभ्यास सा हो गया है और तीसरी मंजिल पर मुझे एकान्त मिल जाता है। महाराजजी को किसी प्रकार की असुविधा न हो इसका उचित प्रबन्ध कर दिया जाता है। ..... ।

मोह और राग ही सब दुःखों के कारण हैं। मोह, राग चाहे किसी प्राणी से हो या किसी विशेष मत अथवा संस्था से हो, वे मनुष्य को दुःख तो देते ही हैं, साथ में बन्धन भी बनता है। मोह को भगवान की ओर मोड़ देने से वह प्रेम बन जाता है। भगवान के साथ राग को जोड़ देने से वह अनुराग में बदल जाता है।

भगवद् अनुराग जब ज्ञान से tempered (अनुप्राणित) होता है तो वह

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

जीवन को पूरी तरह रूपान्तरित कर देता है और भक्त सांसारिक और भौतिक सीमाओं के बावजूद एक विलक्षण आन्तरिक आनन्द में डूबा रहता है और अपने अन्दर निरन्तर भक्ति-रस का आस्वादन करता रहता है। सबको परिवार सहित हरि स्मरण।

प्रभुनाते, चन्द्रस्वामी



परम प्रिय ....., सप्रेम हरि स्मरण।

आपका पत्र मिला, मैं कई दिनों से आपको पत्र लिखने की सोच रहा था तो आपका पत्र मिल गया।

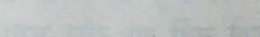
प्रत्येक संस्कारी मनुष्य को अच्छे-बुरे और आवश्यक-अनावश्यक का विवेक रहता है पर जगत् में मोह-माया के वशीभूत होकर वह पूरी निष्ठा से परमात्मा/सत्य के मार्ग पर चल नहीं पाता, यही उसका दुर्भाग्य है।

संसार की असारता के लिये क्या किसी प्रमाण की आवश्यकता है? अपने देखते-देखते कितने ही अपने बन्धु-मित्र चले गये और अब कभी दोबारा उनसे मिल भी नहीं सकते।

"देखत नैन चलो जग जाई"—कैसी विडम्बना है इस जगत् की और इस जीवन की!

जो बीत गया वह सब स्वप्न था। जो बीत रहा है और जो आगे बीत जायेगा वह भी स्वप्न से कम नहीं होगा। स्वप्नों और परछाइयों के खेल में उलझा मन सत्य के आनन्द, रस से वंचित रहता है। निरन्तर भगवद् स्मरण से ही मन जागता है। इस प्रेरणा को आत्मसात् कर जो सद्मार्ग पर चलता है उसका जीवन सफल हो जाता है। .....जी का address आपने माँगा था, नीचे लिखा है।

प्रभुनाते, चन्द्रस्वामी



CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

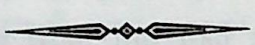
प्रिया ..... बहिन, सप्रेम हरि स्मरण।

आपने अपने भजन के बारे में लिखा। भजन में रस तब आता है जब भगवान के साथ अपने नित्य सम्बन्ध की प्रतीति होती है। माँ को बच्चे के स्मरण में जैसे रस और मधुरता का आभास होता है, ऐसे ही रस भगवान के भजन में आना चाहिये। जगत् के प्रति वैराग्य का भाव जब मन में होता है तो परमात्मा में रुचि बढ़ती है। विवेक और विचार तथा सत्संग से जगत् की असारता का बोध (awareness) बना रहता है। आप धार्मिक पुस्तकें और संतों की वाणी एवं उनकी जीवनियाँ पढ़ती रहा करें तब भजन, संध्या में मन लगेगा।

..... जी को भी सन्ध्या, प्रार्थना करने की प्रेरणा करती रहें। केवल प्रेम से सुझाव देना, अपने आपको impose (थोपना) करने की जरूरत नहीं है।

Smoking, drinking स्वास्थ्य के लिये बहुत खराब हैं। आप ..... जी को प्रेरणा करें कि वह हिम्मत करके इन व्यसनों को अवश्य छोड़ दें।

प्रभुनाते, चन्द्रस्वामी



परम प्रिय ....., सप्रेम हरि स्मरण।

आपके पत्र मिले। शायद आप हरिद्वार आने का प्रोग्राम बना रहे होंगे।

मनुष्य सोचता है कि गृहस्थ की जिम्मेवारियां पूरी हो जायें। अमुक-अमुक काम पूरे कर लूँ तो फिर पूरा समय भजन-साधना में लगाऊँगा। पर कोई विरला ही ऐसा कर पाता है। कोई न कोई प्रवृत्ति मनुष्य को जीवनपर्यन्त फँसाये रखती है, और वह बस प्रभु-भजन की योजनायें ही बनाता रह जाता है और आखिर में एक दिन सब कुछ छोड़कर जीव को आगे अनजानी यात्रा पर जाना पड़ता है।

यह शरीर जन्म से पहले नहीं था और मृत्यु के बाद भी नहीं रहेगा, केवल बीच की अवधि में सत्य जैसा प्रतीत होता है। ऐसे ही जगत् के अन्य पदार्थ,

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

सम्बन्ध और परिस्थितियाँ हैं। उनका मोह मनुष्य को सत्य का बोध नहीं होने देता और शान्ति तो सत्य के बोध से ही मिलती है।

मनुष्य की प्रवृत्ति का फैलाव जितना अधिक होता है, उतनी ही विचारों, संकल्पों, भय, चिन्ताओं, आशाओं और प्रत्याशाओं की अधिक भीड़ मन में लगी रहती है। ऐसे मन वाले मनुष्य को सत्य का बोध कैसे होगा और शान्ति कैसे मिलेगी ? परमात्मा सामने भी हो तो ऐसा मनुष्य उसे देख नहीं पायेगा और वस्तुतः यही हो रहा है। ईश्वर सामने है पर मनुष्य उसकी उपस्थिति का अनुभव नहीं कर पाता, अपने व्यस्त और तनावपूर्ण मन के कारण। नारायण स्वामी का एक दोहा याद आ रहा है।

"बहुत गयी थोड़ी रही, नारायण अब चेत।
काल चिड़िया चुग रही, निस दिन आयु खेत ॥"

प्रभु-भजन में आप रोज़ बैठते हैं। जगत् से थोड़ा वैराग्य जब मन में होता है तो भजन में मन लगता है। भजन में मन जब लगता है तभी भजन में रस आता है। प्रतिदिन प्रार्थना करिये, भगवान को पुकारते रहिये। उसका निरन्तर स्मरण करें, तब जगत् का स्वप्न टूटेगा।

सबको हरि स्मरण।

प्रभुनाते, चन्द्रस्वामी



परम प्रिय..... तथा ....., सप्रेम हरि स्मरण।

बड़े लम्बे समय तक निरन्तर और नियमपूर्वक प्रतिदिन भजन-स्मरण करने पर ही धीरे-धीरे भजन सहज बनता है। प्रवृत्ति में परमात्मा को भूल जाने की वृत्ति (tendency) मन में रहती है। बड़ी सजगता तथा लक्ष्य के प्रति ईमानदारी (sincerity of purpose) के द्वारा ही इस विघ्न को दूर किया जा सकता है। प्रमाद साधना का सबसे बड़ा शत्रु है।

आप सवेरे और शाम को भजन में अवश्य बैठा करें, जब तक भजन-

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

स्मरण में रस नहीं आने लगता — तब तक हठ से और नियमपूर्वक कर्तव्य मानकर भजन करना पड़ता है। जगत् की असारता और अनित्यता पर विचार करते रहने से मन में भजन-सिमरन करने की रुचि बढ़ती है।

सबको हरि स्मरण।

प्रभुनाते, चन्द्रस्वामी

परम प्रिय .....एवं ....., सप्रेम हरि स्मरण।

जगत् में अमीर व गरीब सभी किसी न किसी रूप में दुःखी रहते हैं। अनुकूलता व प्रतिकूलता दोनों के ही जीवन में रहती हैं। मनुष्य की सभी इच्छायें कभी पूरी नहीं होती, पर मनुष्य के अन्दर एक ऐसा दिव्य चेतन तत्व है जिसके संस्पर्श और बोध से मनुष्य दुःख-सुख के द्वन्द्व से ऊपर उठकर परम शान्ति प्राप्त कर सकता है। मनुष्य में इस दिव्य सम्भावना के कारण ही उसे अन्यान्य जीवों से श्रेष्ठ माना जाता है। मनुष्य का मन जब शुद्ध, शान्त और अन्तर्मुख होता है तब उसे उस दिव्य चेतन तत्व की अनुभूति होती है।

आप सवेरे और शाम को कुछ समय प्रार्थना और प्रभु-स्मरण में जरूर दिया करें। इससे धीरे-धीरे मन शुद्ध होगा और अन्तर्चेतना खुलेगी।

सबको हरि स्मरण।

प्रभुनाते, चन्द्रस्वामी

परम प्रिय ....., सप्रेम हरि स्मरण।

आपका पत्र प्रिय ..... जी से मिला। आश्रम में आठ-दस फ्राँसीसी सेवक इस समय यहाँ हैं। देहली से ..... भी पांच-छः दिन से यहाँ हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

नियमानुसार आश्रम में सब मिलकर प्रतिदिन दो बार ध्यान व दो बार कीर्तन में बैठते हैं।

सर्दी बहुत पड़ रही है। आप अपनी सेहत का पूरा ख्याल रखें। पचास वर्ष की आयु हो जाने के बाद शरीर की शक्ति क्षीण होने लगती है। इस वास्ते शरीर थोड़ी सी भी लापरवाही से बिगड़ जाता है। शरीर रोगग्रस्त होने पर केवल कष्ट ही नहीं होता अपितु भजन-साधना में भी विघ्न पड़ता है। और फिर भजन-साधना करके अपने आध्यात्मिक जीवन को विकसित करना ही तो साधक का ध्येय होता है।

आप प्रातः उठते और भजन में बैठते हैं, यह पढ़कर मुझे बड़ा संतोष हुआ। यही सत्य और शान्ति का पथ है। और जीवन में स्थिर है ही क्या ? जगत् में विस्तार कर आज तक किसी को शान्ति नहीं मिली। कोल्हू के बैल के मुँह के सामने थोड़ी दूर एक घास का पूला बाँध देते हैं। और घास के पूले को देखकर बैल चलता रहता है। बोझा खींचता रहता है। पर इसके चलने के साथ ही वह घास का पूला भी आगे बढ़ता जाता है और बैल उसे कभी खा नहीं पाता। वह केवल बोझा ही खींचता है। यही दशा जगत् के पीछे भागते जीव की होती है। शान्ति की आशा बनी रहती है पर उसे शान्ति नहीं मिलती। माया, प्रकृति की tentalization (माया की झूठी आशा देने की प्रवृत्ति) निरन्तर चलती रहती है। प्रभु-कृपा से और संतों के संग से मनुष्य के अन्दर विवेक का उदय होता है। उस विवेक का आदर करते हुये सत्य के पथ पर चलना तो मनुष्य को स्वयं ही पड़ता है। सत्य की यात्रा साधक को अपने पाँव से ही करनी पड़ती है। निःसन्देह उसे पथ-प्रदर्शन और आवश्यक सहायता भगवान किसी न किसी माध्यम से देते ही रहते हैं।

मैं चाहता हूँ कि आप खूब भजन करें, आपको भजन में रस और आनन्द मिले।

सबको हरि स्मरण।

प्रभुनाते, चन्द्रस्वामी



CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

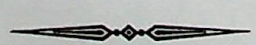
परम प्रिय ....., सप्रेम हरि स्मरण।

कल रात श्री ..... वापिस पहुँच गये हैं इससे आप सबका सुख समाचार मिला। आश्रम का पूरा समाचार आपको ..... ने दिया होगा। गौशाला का शैड तैयार हो गया है। आश्रम के पीछे जो जमीन थी उसमें दो बार ट्रैक्टर चलवा दिया है, जगह बहुत ऊँची-नीची थी। अब कुछ ठीक हो गयी है। नहर पर घाट बनाने की administration द्वारा permission मिल गयी है। 22.12.91 से पन्द्रह दिन के लिये नहर बन्द होगी, इस बीच घाट बनाना पड़ेगा। ट्यूबवेल की जगह पर भी कोई शैड बनाना पड़ेगा। अब आप कैसे हैं, सर्दी बहुत पड़ रही है, सर्दी कम हो जाये तो आप यहाँ आकर रहियेगा।

आप सवेरे व शाम रोज़ नियमपूर्वक भजन-स्मरण में बैठते होंगे। भजन में रस तो भजन में मन लगाने पर ही आता है। जगत् से जब मन उपराम होता है तो भजन में खूब लगता है। जगत् की अस्थिरता और असारता पर बार-बार मनन करने से मन में वैराग्य की भावना आती है। इन्द्रियाँ तो जगत् को सत्य के रूप में ही प्रस्तुत करती हैं, पर विवेक की आँख से देखें तो सब कुछ मृत्यु के मुख में जाता प्रतीत होता है—जीवनभर जगत् में जो भी कुछ पाते हैं और जो भी सम्बन्ध संजोते हैं सब; कितनी विडम्बना है इस जीवन की कि एक बडी गहरी सम्मोहन की अवस्था में मनुष्य का जीवन बीतता रहता है।

शरणागत भाव से प्रभु को पुकारते रहें। उनके सतत् सिमरन से ही जीव का सम्मोहन टूटता है। प्रतिदिन उनसे प्रार्थना करें, ज्ञान और प्रेम के लिये। गायत्री मंत्र के द्वारा ऋषिगण परमात्मा से यही याचना करते हैं।

प्रभुनाते, चन्द्रस्वामी



CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

परम प्रिय ....., सप्रेम हरि स्मरण।

आपका पत्र मिला ..... आजकल फ्राँस से चार लोग आये हुए हैं। अमृतसर से ..... भी आये हैं।

जीवन कितना अनिश्चित और कष्टपूर्ण है यह जानते समझते भी कितना उलझाव मन का वस्तु-व्यक्तियों के साथ हो जाता है और चित्त छोटी-छोटी बातों से उदास होने लगता है। चित्त को शान्त और स्थिर रखने के वास्ते निरन्तर विवेक, मनन और प्रभु-स्मरण की आवश्यकता होती है।

आयु बढ़ती है तो जीवन घटता जाता है, प्रत्येक पल शरीर को मृत्यु के समीप ले जा रहा है। भौतिक जगत् में जो मिलता है वह सब छूट जाता है। आध्यात्मिक उपलब्धि ही जीव के संग जाती है। अपना आध्यात्मिक विकास करते रहना चाहिये।

प्रभुनाते, चन्द्रस्वामी



परम प्रिय....., सप्रेम हरि स्मरण।

शान्ति तो प्रेम और सद्भावना से मिलती है। आप घर में और बाहर सबके प्रति सद्भावना बनायें तो शान्ति का अनुभव होगा।

आप रोज़ प्रभु से प्रार्थना भी करें, उनका स्मरण भी करें। आपको शक्ति भी मिलेगी। मेरी ओर से आपको पूरा सहयोग है।

मनुष्य एक कली (bud) की तरह है। कली धीरे-धीरे अपनी अन्तर्सम्भावना को व्यक्त करके फूल बनती है। यदि उसे जबरदस्ती खोलने का प्रयास किया जाये तो उसका सौन्दर्य नष्ट हो सकता है। और फिर यह भी ध्यान रखना चाहिये कि प्रत्येक फूल का सौन्दर्य और सुगन्ध अपनी ही होती है। सब फूल एक जैसे नहीं होते। दूसरों को तर्क (argument) से नहीं बदला जा सकता। तर्क (reasoning) से प्रेम अधिक प्रभावशाली होता है।

प्रभुनाते, चन्द्रस्वामी



CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

परम प्रिया ..... बहिन ....., सप्रेम हरि स्मरण।

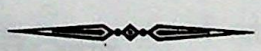
आप और प्रिय ..... आपस में प्रेम, सहयोग व शान्ति का वातावरण घर में बनाये रखें; बच्चों पर बड़ा प्रभाव पड़ता है घर के वातावरण का। बच्चे किताबों से और शिक्षा देने से इतना नहीं सीखते जितना वे माता-पिता के आचरण और रहन-सहन को देखकर सीखते हैं। बच्चों का मन बड़ा कोमल, receptive (ग्रहणशील) और sensitive (संवेदनशील) होता है।

आप सवेरे और शाम को प्रार्थना और भजन में जरूर बैठा करें। कुछ समय धार्मिक पुस्तकों का स्वाध्याय भी किया करें।

मेरा प्रोग्राम 23 अप्रैल से 10 जून तक का विदेश जाने का बना है। फ्राँस, जर्मनी, इज़राइल और यू० के० जाना है।

.....के अत्यन्त आग्रह पर यह प्रोग्राम बन गया, वैसे अब मेरा मन और शरीर दोनों ही कहीं बाहर जाने को नहीं मानते। ऐसा लगता है कि वह समय बहुत नजदीक आ रहा है कि मेरा कहीं बाहर जाना पूरी तरह छूट जायेगा।

प्रभुनाते, चन्द्रस्वामी



परम प्रिय ....., सप्रेम हरि स्मरण।

आपका पत्र ..... के द्वारा मिल गया था। जनवरी, फरवरी के महीने में मैंने किसी को पत्र नहीं लिखा, काष्ठ मौन के कारण। पर बहुत दिनों से आपको पत्र लिखने का मन कर रहा था। आपने अब शायद अपनी डाक्टरी की practice तो प्रायः बन्द कर दी है। अपना पूरा समय, दिन कैसे व्यतीत करते हैं? आपका मन खाली रहने से उदास हो जाता होगा। आप दिन में दो-तीन घण्टे स्वाध्याय किया करें। वहाँ मन उदास हो तो यहाँ आ जायें।

यहाँ गाँव में चहल-पहल तो नहीं है, फिर भी शायद आपका मन यहाँ लग जाये। आप यहाँ भजन-सिमरन में मन लगाइयेगा। अब यहाँ मौसम भी

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

सुहावना हो गया है। जगत् की असारता पर विचार करने से जो मनोदशा बनती है, उसमें भजन अधिक होता है।

मोह-माया के प्रभाव से जीव परमात्मा को भूलकर जगत् के प्रपंच में व्यस्त रहता है। जगत् की सदा बदलती हुई परिस्थितियां उसके मन को पीड़ित करती हैं। प्रतिकूलता में वह दुःखी होता ही है, अनुकूलता में अनुकूलता छूट जाने के भय से व्यथित रहता है। इस मोह-माया से बचने का एक ही उपाय है, और वह है भगवान का सतत् स्मरण। परमात्मा के शरणागत होकर सदैव उसका चिन्तन, स्मरण करने से जीव को सच्ची शान्ति मिलती है।

यहाँ सब ठीक है। घाट बन गया है, दो गायें भी आश्रम में आ गयी हैं। प्रोग्राम 23 अप्रैल से 10 जून तक विदेश जाने का है फ्राँस, जर्मनी, और यू० के०।

प्रभुनाते, चन्द्रस्वामी



प्रियात्मा ..... जी, सप्रेम हरि स्मरण।

आपका रजिस्टर्ड पत्र मिला। यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि आपने बाबा भूमनशाहजी को आत्मदान किया है। आप बड़े सौभाग्यशाली हैं। जिस पर बाबा भूमनशाहजी की कृपा होती है उसी को ही भूमनशाहजी की शरण मिलती है तथा उसका ही आत्मदान स्वीकार होता है तथा वही उनके पावन पद्चिन्हों पर चल पाता है।

बाबा भूमनशाहजी की महिमा अपार है। वे चाहें तो नीचातिनीच को भी पावनकर उसे प्रभु प्राप्ति का पात्र बना सकते हैं। उनका दिव्य प्रकाश और प्रभाव इस देश के अनेक प्रान्तों तथा बाहर के अनेक देशों में भी धीरे-धीरे फैल रहा है। भविष्य में ऐसा समय आयेगा कि देश-विदेश के सत्यप्रेमी, जिज्ञासु तथा साधकजन बाबा भूमनशाहजी के डेरे के प्रबुद्ध, संयमी, सदाचारी साधु-संतों से आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शन की अपेक्षा करेंगे। इस वास्ते भविष्य में बाबा भूमनशाहजी के डेरे को एक बहुत बड़े आध्यात्मिक दायित्व का वहन करना होगा।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

किसी भी धार्मिक डेरे या संस्थान का यश अथवा अपयश उस डेरे के साथ जुड़े हुए धर्म-गुरुओं और साधु-संतों के आचरण, ज्ञान और व्यवहार के अनुसार ही समय-समय पर घटता या बढ़ता है। समाज धार्मिक लोगों, साधु-संतों से बड़े ऊँचे, प्रबुद्ध और आदर्श जीवन की प्रत्याशा करता है। एक साधारण व्यक्ति से यदि कोई बड़ी भूल या अपराध हो जाये तो समाज कदाचित् उसे क्षमा भी कर देता है, पर किसी साधु-संत अथवा धार्मिक संस्थान से जुड़े व्यक्ति से कोई समाज विरोधी या धर्म विरोधी कार्य होता है तो समाज उसे सहन नहीं करता। फलतः संतों और धार्मिक लोगों से कोई अपराध होता है, तो समाज का विश्वास केवल ऐसे साधु-संतों पर से ही नहीं उठता अपितु धर्म और परमात्मा में भी समाज की आस्था टूटने लगती है।

बाबा भूमनशाहजी के दरबार से जुड़ने से आपका दायित्व और भी बढ़ गया है। अब तो आपको अपने जीवन को ज्ञान-प्रेम की अग्नि में परिष्कृत करके इस योग्य बनाना पड़ेगा जिसमें बाबाजी के पूर्ण भगवद्भाव की अभिव्यक्ति हो सके। इसके वास्ते आपको बड़ी कठिन साधना करनी पड़ेगी। तीव्र वैराग्य, शम, दम, तितिक्षा, सदाचार और सर्वोपरि निरन्तर भगवद्-स्मरण तथा सेवा और स्वाध्याय इस साधना में मुख्य हैं।

इस आयु में आपको विद्या प्राप्ति का भी प्रयास करना चाहिये। विद्या होगी तो आप सब धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन कर पायेंगे। धर्मशास्त्र और अध्यात्मदर्शन का पर्याप्त ज्ञान भी साधु-साधक को होना चाहिये।

आपको स्वाध्याय खूब करना चाहिये। उससे दूसरे संतों के सिद्धान्तों और विचारों का पता चलता है और अपने जीवन के सम्यक् मूल्यांकन करने में सहायता मिलती है। रमण महर्षि, श्रीअरविन्द, स्वामी दयानन्दजी, स्वामी विवेकानन्दजी तथा स्वामी रामतीर्थ आदि का साहित्य आप जरूर पढ़ें। इससे आपको सद्प्रेरणा मिलेगी।

बाबा भूमनशाहजी कृपा करें और आपको उनके पावन पद्चिन्हों पर चलने की वे सामर्थ्य दें—ऐसी शुभकामना के साथ बाबाजी के नाते,

प्रभुनाते, चन्द्रस्वामी

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

दिनाँक 10.06.95 काम्बोज फार्म हाउस, फतेहपुर (छुटमलपुर) जिला सहारनपुर में, बाबा भूमनशाहजी के नाम पर आयोजित लंगर के अवसर पर पूज्य गुरुदेव का लिखित संदेश—

चौधरी ..... तथा उनका पूरा परिवार बड़े भाग्यशाली हैं कि उन्होंने काम्बोज फार्म हाउस पर बाबा भूमनशाहजी की मधुर एवं पुण्य स्मृति में लंगर का आयोजन किया है। श्री ..... ने मुझे बताया था कि बाबाजी के नाम पर वे प्रतिवर्ष इस प्रकार के दो आयोजन किया करेंगे। उन्होंने यह भी बताया कि इधर छुटमलपुर के आस-पास पाँच-दस घर बाबाजी के सेवकों के और बस जायेंगे तो वे यहाँ बाबा भूमनशाहजी का मन्दिर बनायेंगे। इससे उनमें बाबाजी के श्रद्धा और प्रेम का पता चलता है।

बाबा भूमनशाहजी अट्ठारहवीं शताब्दी के महानतम् संतों में से थे। उनके नाम पर अनेक स्थानों पर समागम होते हैं। राजस्थान के मानकसर गाँव में भी मार्च के महीने में बाबाजी के मन्दिर पर बड़े उत्साह से मेला मनाया जाता है। इस बार मैं भी वहाँ पर गया था। मेले के अवसर पर सूरतगढ़ से आकाशवाणी की एक टीम इस समारोह को cover करने आयी हुई थी । मेरे बारे में उन्हें ज्ञात हुआ तो interview के वास्ते मेरे पास भी वे आये। उस interview का प्रसारण सूरतगढ़ के रेडियो स्टेशन से भी शायद हुआ था। उन्होंने तीन चार मुख्य प्रश्न मुझसे पूछे। वे प्रश्न बड़े महत्वपूर्ण हैं। आज यहाँ जब बाबाजी के अनेक सेवक इकट्ठे हुए हैं तो इन प्रश्नों की चर्चा करना बहुत प्रासंगिक प्रतीत होता है क्योंकि ये प्रश्न सीधे बाबाजी तथा उनके सेवकों और श्रद्धालुओं से जुड़े हुए हैं।

उनके प्रश्न कुछ इस प्रकार के थे—

1. बाबा भूमनशाहजी के सम्बन्ध में कुछ बताएं और इस मेले का उद्देश्य क्या है ?

2. बाबाजी के उपदेशों का कोई ग्रंथ तथा उनका संदेश क्या है ?

3. वर्तमान परिस्थितियों में देश, समाज और जनता के लिये ऐसे मेलों की क्या उपयोगिता है और बाबाजी के उपदेशों की आज क्या प्रासंगिकता (relevence) है ?

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

4. बाबाजी का मुख्य संदेश क्या है ?

5. बाबाजी के सेवकों और अनुयायियों में कितने लोग उनके उपदेशों का पालन करते हैं। और उनके जीवन में क्या और कैसा सुपरिवर्तन होता है या हुआ है ?

ये सब प्रश्न बड़े सार्थक हैं। बाबाजी के नाम पर आयोजित किसी समारोह में आये किसी भी विचारवान जिज्ञासु के मन में ये प्रश्न आ सकते हैं और आने चाहियें।

आप तो जानते ही हैं कि बाबा भूमनशाहजी परम प्रभावशाली संत थे। उन्होंने अपने उपदेशों का कोई ग्रन्थ तो पीछे नहीं छोड़ा परन्तु उन्होंने अपने क्षेत्र के समाज के मानस पर एक गहरी छाप अथवा प्रभाव छोड़ा। विश्व और विशेषकर भारत के महान् ऋषियों और महात्माओं के संदेशों की तरह बाबाजी का भी मुख्य सन्देश जीवन के आध्यात्मिक एवं शाश्वत मूल्यों पर ही आधारित है जो उन्होंने अपने स्वयं के जीवन द्वारा प्रतिपादित किया। आध्यात्मिकता की मनुष्य को हर देश, हर काल और हर परिस्थिति में आवश्यकता है। जिस व्यक्ति के अन्दर विवेक का उदय होता है उसे जीवन के शाश्वत मूल्य और आध्यात्मिक चेतना के प्रकाश में, जीवन की प्रतीति मृत्यु के प्रवाह के रूप में होती है। अतः सभी महान् संतों ने परम शाश्वत चेतना परमात्मा के साक्षात्कार करने पर ही बल दिया है। श्रीगुरुनानकदेवजी के शब्दों में कहें तो—

"भई प्राप्त मानुख्र देहुरिया
गोबिन्द मिलन की ऐ ही तेरी बरिया"

यही बात उपनिषद में यमराज ने परम मुमुक्षु नचिकेता को कही थी—

"इह चेत अवेदीत अथ सत्यम् अस्ति
न चेत इह अवेदीत महति विनष्टि"

अगर परमात्मा का इसी जीवन में साक्षात्कार कर लिया तो बड़ा शुभ। अगर ऐसा नहीं कर सके तो बड़ी हानि।

संतों की कृपा से और निरन्तर विचार विवेक के अभ्यास और भजन-स्मरण से जिस मनुष्य का मोह-माया का नशा उतरता है उसे ही इस सन्देश की गरिमा का पता चलता है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

बाबा भूमनशाहजी का दिव्य प्रभाव और प्रकाश धीरे-धीरे फैल रहा है; अनेक जिज्ञासु और मुमुक्षु उनके उपदेशों को जानने के लिये बड़े आतुर हैं। इस माँग को दृष्टि में रखकर मैंने बाबाजी का संक्षिप्त परिचय और उनके उपदेशों का सार एक छोटी सी पुस्तिका में प्रकाशित कराया था जो निःशुल्क सेवकों तथा साधकों में बांटी गयी। हिन्दी में आनन्द-दर्पण के नाम से तथा अंग्रेजी में Mirror of Bliss के नाम से यह पुस्तिका प्रकाशित हो चुकी है। अध्यात्म और सत्य के जिज्ञासु संतों के ऐतिहासिक जीवन में उतनी रुचि नहीं रखते जितनी अभिरुचि वे उनके सदोपदेशों तथा साधना निर्देशों में रखते हैं ताकि वे साधना के पथ पर अग्रसर हो सकें। अनेक विदेशी सत्य के साधकों ने भी बाबा भूमनशाहजी के सदोपदेशों में रुचि दिखायी है और उनसे प्रभावित हुए हैं। इसके फलस्वरूप बाबाजी में आस्था रखने वाले विदेशी भक्त दूसरी अनेक भाषाओं में भी बाबाजी के सदोपदेशों का अनुवाद कर रहे हैं। Mirror of Bliss का फ्रांसीसी भाषा में अनुवाद हो चुका है, उसका सम्पादन एक फ्रांसीसी मनोवैज्ञानिक (psychologist) और पत्रकार (journalist) ने किया है तथा यह फ्रांसीसी संस्करण जल्दी ही प्रकाशित होने वाला है। इज़राइल में इसका 'हिब्रू' भाषा में अनुवाद हो रहा है। लेबनान में एक ड्रूस साधिका महिला, बाबाजी की संक्षिप्त जीवनी और उपदेशों का अरबी (Arabic) भाषा में अनुवाद कर रही हैं। जर्मनी में भी एक भक्त जर्मन भाषा में इसका जर्मन-संस्करण प्रकाशित करेंगे। ये सब प्रकाशन इसी वर्ष सन् 1995 में हो जाने की आशा है। स्वाभाविक ही इससे बाबा भूमनशाहजी की दिव्य ख्याति बढ़ेगी और देश-विदेश में जिज्ञासु बाबाजी द्वारा आध्यात्मिक विकास हेतु दर्शाये मार्ग पर चलने में उत्सुकता दिखायेंगे। परन्तु स्थूल शरीर में तो सबको बाबाजी के दर्शन होते नहीं। बाबाजी के साथ जुड़े सेवकों और संतों से तथा साधकों के सदाचारी, शान्त और भगवद्मय जीवन से ही उनको प्रेरणा मिलेगी। किसी की करनी का प्रभाव उसकी कथनी से अवश्य ही अधिक होता है। बाबा भूमनशाहजी के सदाचार, वासुदेव कुटुम्बकम् की भावना, उदारता, जागरूकता, भगवद्भाव, आत्मनिष्ठा, दीन-दुखियों के प्रति संवेदना, शील, वीतरागता, अहिंसा, संतोष, शम-दम, अनुशासन, ईमानदारी, सेवा और निराभिमानता आदि सद्गुणों को हम सबको अपने जीवन में आत्मसात् करने का

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

सुदृढ़ता से प्रयास करना चाहिये। तभी हम बाबा भूमनशाहजी के सेवक होने का गौरव प्राप्त कर सकेंगे।

श्रीशेरसिंहजी विशाल काम्बोज पत्रिका में बाबाजी के जीवन का कथामृत हम सबको पिला रहे हैं। मैं उनके इस सद्प्रयास की सराहना (appreciate) करता हूँ। कभी-कभी इस सम्बन्ध में परम श्रद्धेय स्वामी दयानन्दजी सरस्वती के परम भक्त गुरुदत्तजी का संस्मरण याद आ जाता है।

गुरुदत्तजी स्वामी दयानन्दजी के साथ बहुत समय तक रहे। वे उनके अन्तरंग भक्त थे। गुरुदत्तजी से स्वामीजी के एक सेवक ने कहा, "आप स्वामीजी के संग और सेवा में लम्बे समय तक उनके पास रहे। आप स्वामीजी की जीवनी जरूर लिखें। आप विद्वान भी हैं, सच्चे साधक भी हैं और आपको निरन्तर स्वामीजी के संग रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। आप स्वामीजी के बारे में जो लिखेंगे वह बड़ा प्रामाणिक होगा।" गुरुदत्तजी मुस्कुराये और कहने लगे, "मैं स्वामीजी की जीवनी कई दिनों से लिख रहा हूँ।" एक दो वर्ष के बाद फिर उस सेवक ने कहा, "अब कितने पृष्ठ आपने स्वामी दयानन्दजी की जीवनी के और लिखने हैं, कितने लिख लिये हैं। कुछ पृष्ठ हमें भी पढ़ायें .....।" गुरुदत्तजी ने कहा, "मैं स्वामीजी की जीवनी अपने हृदय पर लिख रहा हूँ। मैं स्वामीजी की शिक्षा को, उनके सद्गुणों को अपने जीवन में आत्मसात् करने का प्रयास कर रहा हूँ। इसी को मैं स्वामीजी की जीवनी लिखना मानता हूँ, और कोई पुस्तक मैं नहीं लिख रहा हूँ।"

यह संस्मरण मैंने आज से चालीस साल पहले पढ़ा था और बड़ा प्रभावित हुआ था। और इतने वर्षों से लगातार मैं बाबा भूमनशाहजी की जीवनी को अपने हृदय पर लिखने का प्रयास करता रहा हूँ। इसमें बाबा भूमनशाहजी की कृपा का सहारा मुझे मिला है।

बाबाजी के ज्ञान का पार नहीं है। उनके भगवद्भाव की कोई सीमा नहीं है। उनकी दिव्य शक्ति अनन्त और शाश्वत है। उनके प्रति मेरे कोटि-कोटि प्रणाम।

बाबाजी के श्रीचरणों की धूल।

चन्द्रस्वामी, साधना केन्द्र आश्रम

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

प्रिय आत्मा ....., सप्रेम हरि स्मरण।

मन में सत्य को समग्रतया समझने या जानने की क्षमता नहीं है। मन एक देशीय है और सत्य के अनन्त आयाम हैं। सत्य अविभाजित, अविभाज्य, एक होने पर भी उसके अनन्त आयाम हैं। मन-बुद्धि की अपनी limitations हैं। इसलिये कई भाव बुद्धि को परस्पर विपरीत प्रतीत होते हैं, वह विपरीतता बुद्धिगत होती है, अस्तित्वगत नहीं।

Confusions प्रायः सभी के मन में रहते हैं भले ही वे सुप्त हों या जाग्रत। जब तक सत्य का साक्षात्कार नहीं होता तब तक श्रद्धा और शंका का द्वन्द्व चित्त में बना ही रहता है। मनुष्य की अन्तर्चेतना को जब अस्तित्व की दिव्यता, शाश्वतता, आनन्दस्वरूपता, अनन्तता, निर्पेक्षता की समग्र अनुभूति होती है तो मन के तल पर ज्ञान की अपूर्णता रहने पर भी वह परितृप्त हो जाती है।

मनुष्य की हैसियत अस्तित्व में वैसी ही है जैसी अनन्त जल सागर में जल बिन्दु की अथवा एक जल तरंग की। जगत् में हजारों-हजारों आये और चले गये। Can a part change the whole? पर इतना होने पर भी मनुष्य को अपने प्रति, परिवार के प्रति, समाज के प्रति, अस्तित्व के प्रति जो responsibility है, उसे पूरा करने का प्रयास करना ही होता है।

बाबाजी के नाते,
सदैव आपका, चन्द्रस्वामी



प्रिय आत्मा श्री ....., सप्रेम ॐ हरि स्मरण।

आपकी धारणा और राष्ट्रीय सेवा भाव अलौकिक है; प्रभु इनको दृढ़तम् बनायें—ऐसी प्रार्थना है।

प्रश्न उठता है कि जिसको पाना है क्या वह अत्यन्त निवृत्त है? जो उसको केवल निवृत्त ही मानता हो तो विशेष निवृत्ति की ओर जाने की साधना उसके

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

लिये उपयुक्त होगी। फिर तो मायावाद के वेदान्तियों की तरह परम तत्व को अत्यन्त निवृत्त मानकर संसार को कल्पना मात्र मानने की बात आ जायेगी—वहां किसी राष्ट्र या राष्ट्रीय सेवा का कोई महत्त्व नहीं रह जाता। परन्तु इससे जीवन में जैसी transformation (रूपान्तरण) होनी चाहिये वैसी नहीं हो पाती। जीवन का लक्ष्य 'पूर्ण' का 'समग्र अनुभव' है। प्रभु को अपने अन्दर अनुभव करना है; पर केवल अपने अन्दर ही नहीं, बल्कि बाहर जगत् में भी उसी को देखना है और फिर उसकी अतीतता में भी। इससे जीवन के सब क्षेत्रों में विकास होता है और भक्ति-ज्ञान का समन्वय भी।

'पूर्ण' में सब कुछ है। जो हम उसमें ढूँढते हैं वही हमें मिलता है। जो उसमें अत्यन्त निवृत्ति को खोजते हैं उनको निवृत्ति ही मिलेगी परन्तु जो पूर्ण में पूर्ण को खोजेंगे केवल वही perfect (पूर्ण) हो पायेंगे। संघर्ष में ही तो अपनी स्थिति का पता चलता है।

प्रभुनाते, चन्द्रस्वामी

परम सुहृद एवं आत्मीय श्री ....., सप्रेम हरि सुमिरन।

जीवन का वास्तविक लक्ष्य है—पुरुषोत्तम का समग्रानुभव तथा उसको अपने जीवन में अभिव्यक्त करना। प्रवृत्ति या निवृत्ति जब अपने आपमें लक्ष्य बन जाती है या लक्ष्य समझी जाने लगती है तो जीवन का सर्वांगीण विकास नहीं हो पाता।

वैसे तो साधारणतः प्रभु की विकासकारिणी चिद्शक्ति सभी को जाने में या अनजाने में भी पुरुषोत्तमत्व की ओर ले जा ही रही है। पर मनुष्य जब जग जाता है (उसकी कृपा से) तो उसी शक्ति का अपने अन्दर विशेष रूप से आवाहन करके शीघ्रातिशीघ्र अपने लक्ष्य तक पहुँच सकता है। व्यक्तिगत विचार, प्रयत्न और बल के आधार पर जिस स्थिति को वर्षों में भी प्राप्त करना कठिन होता है वही स्थिति 'महामाया' के प्रसाद से अल्पकाल में ही प्राप्त हो जाती है। महत्व

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

'स्थिति' का होता है परिस्थिति का नहीं।

प्रभु हम सबको अपना स्वाभाविक प्रेम—'अनन्त जीवन' प्रदान करें।

प्रभुनाते, चन्द्र स्वामी

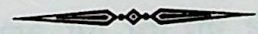


प्रियात्मा ....., सप्रेम हरि स्मरण।

भजन प्रतिदिन करते रहिये। प्रातः काफी जल्दी उठ जाना चाहिये। चार बजे तक तो अवश्य उठ जाना चाहिये। 1 से 2 घण्टे भजन के वास्ते सुविधा से निकल जाते हैं। जप मन में करते/होते हुए, जप को साथ में सुनना भी चाहिये, इससे एकाग्रता में लाभ होता है।

प्रभु-प्रेम से बढ़कर और कुछ नहीं है। उस 'अनन्त' के अनन्त प्रेम की एक किरण भी जिसके हृदय में प्रवेश कर जाती है, वह धन्य हो जाता है। धीरे-धीरे, अन्दर-बाहर का सारा अन्धकार मिट जाता है। प्रभु-प्रेम उपलब्धि का, प्रभु-नाम-स्मरण से बढ़कर और कोई श्रेष्ठ उपाय नहीं है।

आपका आत्मा,चन्द्रस्वामी



ईश्वरानुरागी परम प्रिय श्री ....., सप्रेम हरि स्मरण।

आप दत्त-चित्त होकर प्रातः व सायं को भजन में बैठते रहें। office में जाकर पूरी शक्ति से अपना कर्तव्य निभा आया करें और उसके साथ अपना कोई अधिक सम्बन्ध न मानें। यथाशक्ति अपने आचार-व्यवहार को शुद्ध और पवित्र रखें और अधिकाधिक भजन-अभ्यास करते रहें। अभी वर्तमान का पूरा-पूरा सदुपयोग करिये, बाद में जब service से retire होने का प्रसंग होगा तो उस समय फिर और कुछ सोचना।

अपने अन्दर यह भाव सदा बनाये रखना चाहिये कि आप पर प्रभु की

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

महान् कृपा है। भगवान की कृपा मानने से वह अपने जीवन में अधिक सक्रिय होती है। प्रभु को धन्यवाद देते हुए निरन्तर उसका स्मरण करना चाहिये।

प्रभुनाते, चन्द्रस्वामी



परम प्रिय श्री ....., सप्रेम हरि स्मरण।

शरीर—हमारा शारीरिक जीवन अपने आपमें पूर्ण नहीं है। स्वास्थ्य में उतार चढ़ाव आते रहना अनिवार्य है, इससे मन को अधिक प्रभावित नहीं होने देना चाहिये। अपनी ओर से यथाशक्ति शरीर को स्वस्थ बनाये रखने का प्रयास करना चाहिये। ताकि इससे भजन और सेवा ठीक तरह से बन सके। कई बार असावधानी या अतिपरिश्रम से भी शरीर बिगड़ जाता है और फिर सेवा तथा परमार्थ की साधना में बाधा डालता है।

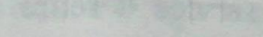
भजन और स्मरण की साधना का अधिक सम्बन्ध मन से ही है। भगवान की अनिवार्य आवश्यकता प्रतीत होने लगे तो मन सहज रूप से प्रभु की ओर प्रवाहित होने लगता है। सबसे पहले जीवन की रुचि बदलनी चाहिये। प्रभु मिल जायें तो सब कुछ मिल जाता है और प्रभु-प्रेम-ज्ञान की प्राप्ति के अभाव में सब कुछ पाकर भी कुछ नहीं मिलता—तृप्ति नहीं होती।

जितनी प्रभु-मिलन की भूख अधिक होगी उतना ही अधिक रस भजन में आयेगा। यह भूख भी जीव मात्र के अन्दर है पर हमारी मनः चेतना अन्दर देखती कहाँ है ? वह तो बाहर की प्रवृत्तियों में ही सदैव उलझी और व्यस्त रहती है।

प्रातः व सायं भजन में बैठा करिये, बहन ..... को भी अपने साथ भजन में बिठाया करिये।

प्रभुनाते, आपका अपना

चन्द्रस्वामी



CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

परम आत्मीय ....., सप्रेम हरि स्मरण।

प्रिय ..... के accident से देहावसान का दुःखद समाचार कल रात आपकी तार द्वारा मिला। एक बार तो पूरा हृदय काँप गया। आप सबको कितना दुःख होगा इस दुर्घटना से, यह मैं समझ सकता हूँ। पर अब क्या करें! विधाता के विधान के आगे किसी का बस जो नहीं चलता। इस पूर्णतया uncertain और क्षणभंगुर शरीर के साथ मोह करने में कितनी विडम्बना है।

प्रभु आपकी चीज थी, आपने वापस ले ली! तेरी इच्छा पूर्ण हो—बस यही भाव मन में रखने से शान्ति आती है। प्रभु आप सबको और हमें इस दुःखद वियोग को सहन करने की शक्ति दें—ऐसी प्रार्थना है।

आप दोनों प्रिय ..... की आत्मा की शान्ति के लिये, उसके निमित्त संकल्प करके, रोज दो-दो घण्टे गायत्री का जप करें, कम से कम चालीस दिन तक। अब हमें मन को समझाकर अधिक शोक करने की बजाय उसके लिये प्रार्थना करनी चाहिये और जिस प्रकार से उसकी आगे की यात्रा सुखद हो, उसके लिए निरन्तर अपनी सद्भावनाएं उसे भेजनी चाहिये। मैं भी यहाँ प्रिय ..... के निमित्त जाप और प्रार्थना करूँगा। प्रभु उसकी दिवंगत आत्मा को शान्ति दें और उसकी आगे की यात्रा सुखद और सरल बने—ऐसी प्रभु से बारम्बार प्रार्थना है।

आपका अपना, चन्द्रस्वामी



प्रिया .....बहन, सप्रेम हरि स्मरण।

साधना आपकी चल रही है—चलनी ही चाहिये। निरन्तर, प्रेम-पूर्वक, पूरे उत्साह से और नियमपूर्वक। भजन के समय, उठते-बैठते, चलते-फिरते, खाते-पीते सदैव श्यामसुन्दर का स्मरण-ध्यान बना रहना चाहिये। प्रभु-प्रेम-भजन धीरे-धीरे मन के सभी विकारों को धो देगा, इस पर दृढ़ विश्वास रखकर साधना करती रहें।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

क्रोध आता है तब जब दूसरा कोई अपने अनुकूल व्यवहार नहीं करता। पर हम ऐसा क्यों चाहें कि दूसरा बस हमारे अनुकूल ही बर्ताव करे? जो हमको उचित प्रतीत होता है वह दूसरे को भी उचित प्रतीत हो, यह आवश्यक तो नहीं। और फिर दूसरा कोई अनुचित बात करे तो यह उसके हाथ की बात है। हम अपनी प्रसन्नता को दूसरे पर आश्रित ही क्यों करें?

अपने प्रतिकूल जब भी कुछ प्रतीत हो तो सोचें कि दूसरे किसी के अनुकूल होगा। अनुकूलता-प्रतिकूलता, दुःख-सुख आदि सभी द्वन्द्व सापेक्ष हैं। संसार में एक का सुख, दूसरे का दुःख बन जाता है और vice versa। मात्र परमात्मा अथवा आत्मा का आनन्द ही ऐसा है, जिसे सभी पूर्णरूप से ग्रहण या share कर सकते हैं क्योंकि वह असीम है, अनन्त है।

जीवन में जो कुछ भी प्राप्त हो, उसे प्रभु नाते सहर्ष स्वीकार कर लेना एक कला है जिससे विष भी अमृत बन जाता है। भक्त लोग दुःख को सुख के रूप में परिवर्तित कर लेते हैं। प्रभु के लिये, सत्य के लिये तो सूली भी मीठी लगती है भक्त को,—और भगवान के बिना, सिंहासन भी बिल्कुल फीका।

प्रभुनाते, चन्द्रस्वामी

परमप्रिय ....., प्रेमपूर्वक श्री हरि स्मरण।

आपका जीवन तो पवित्र जीवन है—प्रभु-भक्ति है, समाजसेवा है तथा संयम-सदाचार है। यह सब प्रभु-कृपा से ही है। उसकी कृपा न होती तो यह सब कुछ न होता।

मैं ठीक हूँ। भजन-स्मरण जो वह करवा रहे हैं सो चलता है पर अपनी पूरी टेक उसी की दया-दृष्टि पर है। उसकी लीला अनन्त है। बड़े-बड़े तपस्वी उसके दर्शन को तरसते हैं और पतितों को वह गले लगा लेता है।

प्रभुनाते, चन्द्रस्वामी

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

प्रिया .....बहन, सप्रेम हरि स्मरण।

आपका स्मरण-भजन कैसे चलता है ? मैं प्रभु की असीम कृपा से ठीक हूँ। अपनी तो एक ही प्रार्थना रहती है कि हे प्रभो ! मुझे प्रवृत्ति नहीं चाहिये, न ही निवृत्ति चाहिये। मुझे तो केवल तेरी चाह है और वह केवल तेरे से ही पूरी हो सकती है, तेरे से ही पूरी होगी।

आपका, चन्द्रस्वामी



'ॐ हरि शरणम्'

ईश्वर कृपापात्र परमप्रिय ....., सप्रेम नमस्ते।

भाव को स्थिर बनाने के लिये बड़े संयम से एवं सावधान रहना पड़ता है, दीर्घकाल तक साधना करनी पड़ती है और तब भी साधना की सफलता प्रभु-कृपा पर ही निर्भर करती है। बिना उसकी कृपा के कुछ भी उपलब्ध नहीं होता। दूसरा मार्ग शरणागति का है। भाव प्रभु को दे दें वे अपने आप इसको स्थिर बना देंगे अथवा अस्थिर ही रखें यह उनकी मर्जी।

मुक्ति तो एक नीचे दर्जे की चीज है। संसार की वासना छूटते ही साधक मुक्त हो जाता है, परन्तु साधना वहां समाप्त नहीं हो जाती। पूर्ण स्थिति में वासना-निर्वासना दोनों ही रहती हैं। एक ही काल में वहाँ तो द्वन्द्वों का पूर्णरूपेण समन्वय हो जाना चाहिये।

आपकी धारणा बड़ी सुन्दर है। जब साधक में अपना कुछ नहीं रहता तब प्रभु का उसमें अवतरण-प्राकट्य होता है। ब्रह्मलीन तो बहुत हो गये परन्तु ब्रह्मानन्द को नीचे भौतिक क्षेत्र में उतारने और वितरण का प्रयास (इतिहास में) किसी एक आध ने ही किया होगा।

आपका, चन्द्रस्वामी



CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

प्रिया ..... बहन, सप्रेम हरि स्मरण।

आप प्रातः व सायंकाल प्रतिदिन भजन में बैठती होंगी—ऐसा मुझे पूरा भरोसा है। अधिक चर्चा करने-सुनने अथवा अनेक सिद्धान्तों से क्या लेना-देना है साधक को। उसे तो अपनी पूरी आत्मा से प्रभु को अपना सर्वस्व मानकर उनकी सतत् आराधना-बन्दगी में ही समय बिताना चाहिये।

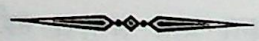
प्रभुनाते, चन्द्रस्वामी



परम प्रिय ....., सप्रेम हरि स्मरण।

प्रभु-स्मरण निरन्तर करते रहें। संकीर्तन रोज किया करें। प्रभु का हो जाने पर, पूरी तरह उनका हो जाने में कितना रस है! वे आपको अन्दर-बाहर सब ओर से घेरे हुए हैं। कोई स्थान उनसे रिक्त नहीं है, रिक्त हो नहीं सकता। हृदय पूरी तरह खुलता है तो सर्वत्र दिव्य उपस्थिति का अनुभव होता है, उनके अतिरिक्त कुछ दिखता ही नहीं। शरीर अपने प्रारब्ध भोग भोगता रहे; आप मन को सदा हरि स्मरण में लगाये रहें।

प्रभुनाते, चन्द्रस्वामी



प्रिया ....., सप्रेम हरि स्मरण।

आप नियमपूर्वक भजन-स्मरण में बैठती हैं— इस बात का मुझे बड़ा संतोष है। भजन ही तो जीवन का सार है। समुच्य जीवन को ही भजनमय बनाना होगा। सभी व्यावहारिक कर्मों को भी भगवान की प्रसन्नता प्राप्त करने की भावना से करना होगा। सारा जगत् प्रभु की लीला है—नित्य लीला है। इसमें जो पार्ट प्रभु ने दिया है उसको बड़ी सावधानी, सजगता और बिना प्रभु को भूले

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

हुए निभाना चाहिये। हरि-स्मरण सतत् चलते रहना चाहिये।

आपका अपना, चन्द्रस्वामी



परम प्रिय ....., सप्रेम हरि स्मरण।

भजन-साधन में ढील आना तो ठीक नहीं है। भजन में सबसे बड़ा विघ्न प्रमाद है। जब तक भजन में सहजता न आ जाये तब तक स्वाध्याय और सत्संग करते रहना चाहिये। इनसे नित्य नई प्रेरणा साधन की मिलती रहती है। प्रभु को पुकारिये हृदय की गहराई से। रोज प्रार्थना करिये।

प्रभुनाते, चन्द्रस्वामी



परमप्रिय श्री ....., सप्रेम हरि स्मरण।

आपकी जिज्ञासा अधिकाधिक समय प्रभु-भजन-स्मरण में बैठने की है, यह अति उत्तम है। प्रभु की असामान्य कृपा से ही ऐसे विचार और भाव बनते हैं। प्रातः व सायंकाल को शान्त व निश्चल मन से प्रतिदिन हरि-स्मरण करना ही चाहिये। दिन में भी बड़े सावधान और सजग रहकर सब कर्म प्रभु-प्रसन्नता के लिये ही करने होंगे। प्रभु का स्मरण हर पल, हर घड़ी मन ही मन बना रहे, प्रभु-दर्शन की पुकार रोम-रोम से उठे। एक ही आस, एक ही विश्वास—प्रभु मिलन का, चित्त को आन्दोलित करे। 'जनम-जनम के बिछड़े, हरि अब रहा न जाये।'

ध्यान-भजन का अर्थ है— Love affair with the Divine— भगवान के प्रेम में पड़ जाना। जिसका प्रेम होगा उसका ध्यान-चिन्तन-स्मरण अपने आप होगा, सहज रूप से—और इस चिन्तन में रस भी होगा। और भगवद-प्रेम दशा में जो भी कर्म होगा वह दिव्य हो जायेगा।

प्रभुनाते, चन्द्रस्वामी



CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

प्रिय ....., सप्रेम हरि स्मरण।

आप भजन में बैठते हैं यह बड़ी अच्छी बात है। दूसरे मजाक करें तो करें, कोई कुछ भी कहे, भजन में जरूर बैठना चाहिये। भगवान के स्मरण-चिन्तन से अन्तःकरण शुद्ध होता है और धीरे-धीरे वह परमात्मा के आलोक एवं आनन्द से स्पन्दित होने लगता है।

सब व्यक्तियों की पसन्द-नापसन्द भिन्न-भिन्न होती है अतएव एक ही परिस्थिति सबको सुखमय प्रतीत नहीं होती। सच तो यह है जो व्यक्ति आनन्द के लिये परिस्थिति पर निर्भर करता है आनन्द सदा उससे दूर ही रहता है और जिसको आनन्द के लिये परिस्थिति की अपेक्षा नहीं रहती, समस्त परिस्थितियां उसके लिये आनन्दमय हो जाती हैं। यह विरोधाभासी प्रतीत होता है पर सत्य यही है।

संन्यास का विचार आप न करें। प्राप्त परिस्थिति में अपने आपको ठीक प्रकार से व्यवस्थित करके अधिकाधिक भजन-साधन का प्रयास करें। कोई भी परिस्थिति अपने आप में पूर्ण नहीं है। प्रत्येक स्थान पर सुविधाएं भी होती हैं और साथ ही कठिनाइयां भी होती हैं। अपने मन को बाह्य प्रभावों से धीरे-धीरे ऊपर उठाना चाहिये। यह क्षमता भी भजन-साधन, विवेक-विचार से आयेगी।

सेक्स से ऊपर उठने का एक ही उपाय है और वह है प्रभु-प्रेम की अग्नि का जीवन में तीव्रता से प्रकट हो जाना। वही शक्ति जो काम बनती है, वही प्रभु-दर्शन की अभीप्सा बन जाती है।

कामोत्तेजित करने के वातावरण अथवा साधनों का परित्याग करना चाहिये। सिनेमा देखना, नॉवल पढ़ना आदि काम को जीतने में बाधा डालते हैं। भगवान का स्मरण, सद्ग्रन्थों का मनन सहायक होते हैं। उत्तेजना देनेवाला आहार भी नहीं लेना चाहिये। मन को सत्कर्मों में व्यस्त रखें और प्रातः व सायं भजन-स्मरण करते रहें। रात को सोते समय भगवान का नाम-स्मरण करते-करते ही सोना चाहिये।

प्रभुनाते, चन्द्रस्वामी

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

परम प्रियात्मा ....., सप्रेम हरि स्मरण।

आप लोग प्रातः व सायंकाल को भजन-स्मरण में जरूर बैठते रहें। जैसे शरीर के वास्ते अन्न-जल-फल का आहार आवश्यक है, वैसे ही आत्मा के वास्ते प्रभु-भजन व स्मरण है। मनुष्य का जीवन अपूर्ण होने के कारण जीवन में जो उसे दुःख-सुख के आघात लगते हैं उनको धैर्य और साहस से झेलने की शक्ति भी भजन-स्मरण से ही मिलती है। सत्कर्म, सेवा, स्वाध्याय और हरि चिन्तन-स्मरण से मनुष्य जीवन सफल होता है। प्रभु नाम-स्मरण अधिक से अधिक करना चाहिये। वह मन ही मन, चलते फिरते, काम करते भी किया जा सकता है। अभ्यास डालने की बात है। सवेरे अथवा सायंकाल भगवान की आरती करें तो बच्चों को भी साथ में ले लेना चाहिये। इससे बच्चों में भक्ति और आस्तिकता के संस्कार दृढ़ होते हैं।

प्रभुनाते, चन्द्रस्वामी



परम प्रिय ....., सप्रेम हरि स्मरण।

मनुष्य का शारीरिक-भौतिक जीवन अधिकतर पूर्व प्रारब्ध कर्मों के अधीन होता है जिससे उसकी सारी आशाएं पूरी नहीं होती। वैसे भी आशा-इच्छा से युक्त मन में प्रायः शान्ति का अभाव ही रहता है और भय और पराधीनता का एहसास बना रहता है। जीवन में व्यक्तियों से संयोग/वियोग भी पूर्व कर्माधीन होते हैं। जो हुआ वह होना ही था। अब आप उसे एक बीता स्वप्न समझकर भूल जायें। आप विचार और विवेक से अपने मन को निराशा से मुक्त करें।

जो सम्बन्ध परिस्थितियों, वस्तुओं और व्यक्तियों से बनते हैं वे शाश्वत तो हो ही नहीं सकते। वस्तुएं-परिस्थितियां स्वयं ही शाश्वत नहीं हैं तो उनसे बने सम्बन्ध कैसे शाश्वत होंगे ? तो भी इस संसार में रहकर इन सामयिक सम्बन्धों को स्वीकार करना पड़ता है। पर साधक इस सांसारिक जीवन को एक अभिनय मात्र समझता हुआ संसार में रहकर सत्य/परमात्मा की खोज में लगा रहता है

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

और अन्ततोगत्वा सत्य का साक्षात्कार कर सत्य से एकीभूत हो जाता है।

असत्य को असत्य के रूप में देखते-जानते-समझते-मानते रहने से ही धीरे-धीरे मनुष्य में सत्य को जानने एवं ग्रहण करने की क्षमता आती है। आप सम्यक् विवेक-विचार से संसार जैसा है वैसा ही उसे देखें और समझें, इससे मन में शान्ति आयेगी और आप परमात्मा की ओर भी आगे बढ़ सकेंगे।

संसार में गरीब और अमीर दोनों दुःखी हैं। जितना जिसके पास प्रेम, विचार, संतोष और ज्ञान है उतना ही वह शान्त और सुखी है। आप प्रतिदिन भजन-स्मरण में बैठते रहें।

प्रभुनाते, चन्द्रस्वामी

परम प्रिय ....., सप्रेम हरि स्मरण।

साधारण व्यक्ति के आनन्द का केन्द्र बदलता रहता है। कभी कहीं, कभी कहीं, वह आनन्द प्राप्ति के वास्ते भटकता ही रहता है— जैसे मृग कस्तूरी की खोज में। वस्तुतः आज तक जिसने भी सच्चा आनन्द पाया वह अपने अन्दर से, अपने स्वरूप के अनुभव से ही पाया। आत्म खोज या आत्मानुभव की खोज की प्रेरणा बाहर से मिल सकती है। वह कहीं से भी मिल जाये, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

गुरु वरण करने का एक प्रयोजन/लाभ यह भी होता है कि मनुष्य के मन (जो स्वभाव से चंचल है— कभी कहीं, कभी कहीं, कभी एक साधन में, कभी दूसरे साधन में, कभी एक मन्त्र में, कभी दूसरे मन्त्र में आकर्षित— होता रहता है और दुविधा में रहता है।) को एक साधन और एक ठिकाना मिल जाता है और साधक एक तरफ चल पड़ता है—बार-बार मार्ग बदलने का उसका विकल्प शान्त हो जाता है। वह प्रयोजन/लाभ शायद आपका सिद्ध नहीं हो सका।

स्थिरता के बिना कुछ नहीं मिलता, न संसार, न परमार्थ। प्रसन्नता से,

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

स्वेच्छा से अपनाया गया अनुशासन, अन्ततोगत्वा सच्ची स्वतंत्रता की ओर ही ले जाता है।

आपका आत्मा, चन्द्रस्वामी



प्रिय आत्मन् ....., सप्रेम हरि स्मरण।

आत्म साक्षात्कार — direct experience of one's essential nature सरल से सरल भी है और कठिन भी। स्वरूप का experience (अनुभव) तो सदा हर व्यक्ति को रहता है पर वह मन से मिश्रित और false identification (झूठे तादात्म्य) के कारण भ्रान्त और अशुद्ध होता है, अतः अपने स्वरूपभूत आनन्द की प्रतीति नहीं होती। वस्तुतः वही आनन्द सुख अथवा दुःख के रूप में विकृत होकर प्रतीत होता है।

मन ही दीवार है और मन ही, जब शुद्ध एवं शान्त और प्रतिक्रिया रहित होता है, तो दर्पण बन जाता है। सारी साधना का प्रयोजन मन को परिष्कृत करना है।

'मैं कौन हूँ'— इसका अनुभव बुद्धि से नहीं होता। 'मैं कौन, क्या नहीं हूँ'— यह बुद्धिगम्य है। इसे समझकर, इसका खूब मनन करना चाहिये। इससे false identification टूटती है। आपने देखा कितना गहरा तादात्म्य पदार्थ, प्राणी और कर्मों के साथ हो जाता है। किसी का मकान जल जाये, बेटा मर जाये या व्यापार में घाटा पड़ जाये तो वह कहता है— 'मैं मर गया, मेरा कुछ न बचा।' मन के सभी विकारों की—मोह, क्रोध, लोभ, काम आदि की जड़ें अचेतन मन और अवचेतन मन (subconscious and unconscious mind) में रहती हैं, अतएव मनुष्य बुद्धि से यह समझता हुआ भी कि क्रोध, लोभ, काम, मोह, आदि बुरे और दुःख देने वाले हैं, इनसे बच नहीं पाता।

जाप-ध्यान आदि ऐसी techniques हैं, जिनका आविष्कार ऋषियों ने अचेतन व अवचेतन मन की शुद्धि के लिये किया। मनुष्य जब संलग्नता से इन

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

साधनों का सेवन करता रहता है तो वह अवश्य एक दिन आत्म-साक्षात्कार कर लेता है।

प्रभुनाते, चन्द्रस्वामी



प्रियात्मा ....., सप्रेम हरि स्मरण।

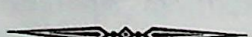
आप पर प्रभु की महान् कृपा है। प्रभु यह नहीं देखते कौन कितनी आयु का है या कौन कितना पुण्यशील है; वे तो बस प्रेम के भूखे हैं। यह भी उनका माधुर्य ही है कि वे ऐसी लीला करते हैं, अन्यथा वे स्वयं आनन्द और प्रेम के अनन्त स्रोत हैं।

आप जितना अपने आपको प्रभु के प्रति खोलेंगे, उतना ही आपको प्रतीत होगा कि प्रभु की कृपा परोक्ष रूप से कैसे सदा आपको संभाले हुए है। उनकी कृपा के बिना तो मनुष्य एक सांस भी नहीं ले सकता।

मनुष्य का अहंकार और अहंभाव ही उसे परमात्मा की कृपा-आनन्द-प्रेम-प्रकाश की अनुभूति से वंचित रखता है। अहंकार अहंभाव को छोड़कर जब, जहां से कोई प्रभु को पुकारता है, उसे प्रत्यक्ष रूप से प्रभुकृपा का अनुभव होता है .....।

आप प्रेम से भजन-साधन करें। प्रेम से न हो तो नियम बनाकर करें। निरन्तर प्रभु-स्मरण से ही मनुष्य के मोह-माया की बेहोशी टूटती है।

प्रभुनाते, चन्द्रस्वामी



प्रियात्मा ....., सप्रेम हरि स्मरण।

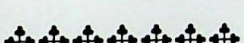
आपकी शिकायत है — एक दो घण्टे भजन में बैठने से क्या होगा ? पर यदि प्रातः आधा घण्टा भी पूरी संलग्नता से भजन में बैठ सकें तो सारा दिन हृदय

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

आनन्द-विभोर रहेगा। जीवन में क्रांन्ति आ जायेगी। भजन कोई आचार नहीं है, वह तो अन्तस् चेतना का उद्घाटन है। वह कोई कृत्य भी नहीं है। वह तो अपने प्रेमास्पद में होने (जगने) की स्थिति है।

निराश होने की कोई बात नहीं है। आप संलग्नता और स्मरण (सजगता) को बढ़ाते रहिये। बस इतना ही पर्याप्त है। श्रीकृष्ण तो सक्रिय आनन्द की परिपूर्ण चेतना हैं। उनके भक्त के जीवन का निराशा से क्या सम्बन्ध! कृष्ण-नाम रटते रहिये और सदा प्रसन्न रहिये।

प्रभुनाते, चन्द्रस्वामी



CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

प्रश्नोत्तर

पंचम भाग

प्रश्नोत्तर के भाग को पढ़ते समय पाठक कृपया ध्यान रखें कि पूज्य स्वामीजी मौन में हैं। अतः वे सभी प्रश्नों के उत्तर लिखकर ही देते हैं। इसके अतिरिक्त प्रश्नोत्तर सत्र में समय की मर्यादा होने के कारण उनके लिखित उत्तर संक्षिप्त एवं सारगर्भित होते हैं। इसलिये इन उत्तरों में पाठकों को कहीं-कहीं अपेक्षित विस्तार का अभाव सा प्रतीत हो सकता है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

ॐ

प्रश्न : जाप कैसे किया जाये ? उसके क्या लाभ हैं ? क्या जाप से अथवा सीधा, शून्य अवस्था में जाया जा सकता है ?

स्वामीजी : जाप से पहले चाहें तो पांच मिनट तक श्वास के आने जाने को देख सकते हैं। श्वास को देखने से श्वास की गति धीमी हो जाती है। श्वास की गति धीमी होने से मन की गति भी धीमी होती है। इसी तथ्य पर तो प्राणायाम की theory (सिद्धान्त) आधारित है।

श्वास की गति का मन की अवस्था से बड़ा गहरा सम्बन्ध है। जब आप चिन्ता या घबराहट में होते हैं तो श्वास की गति भी तेज हो जाती है। जाप से पूर्व पाँच मिनट सजग रहकर धीमे और गहरे सांस लेना लाभकारी है।

जाप में तो भगवान के नाम के माध्यम से भगवान का स्मरण भी होता है, यह जाप की विशेषता है।

वैसे जाप तो सभी प्रकार के साधनों में प्रयोग किया जाता है। पातन्जलि योग-दर्शन में भी जाप करने के लिये कहा गया है।

शून्य अवस्था आना तो बड़ा कठिन है। जब तक आप जाग्रत अवस्था में व्यवहार करते हैं तो नाम-रूप से ही सम्बन्ध रहता है। शून्य में जाने की सरल विधि यही है कि पहले किसी एक नाम अथवा रूप से आपका प्रगाढ़ प्रेम हो तो बाकी नाम-रूपों से मन हटकर एक ही नाम या रूप में टिकने लगेगा। बाद में एक स्थिति ऐसी आती है कि नाम या रूप विलीन हो जाता है और मन इस नाम या रूप से सम्बन्धित भाव में डूबा रहता है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

फिर भाव से आगे महाभाव और उसके आगे भावातीत स्थिति आती है। ये stages (स्तर) हैं। अगर किसी में ऐसी योग्यता हो कि वह सीधा ही निर्गुण-निराकार में या शून्य में डूब सके तो वह भी ठीक है, परन्तु ऐसा बहुत कठिन होता है।

प्रश्न : साधना के मार्ग में हम किस स्तर पर और कहाँ हैं इसका कैसे पता चले ?

स्वामीजी : आप कहाँ पर हैं, सत्य/परमात्मा के अनुभव में अभी कितना समय लगेगा, यह कुछ निश्चित नहीं कहा जा सकता। अगर आप में अभीप्सा, असंगता, प्रेम, दुःख-सुख तथा अनुकूलता-प्रतिकूलता में धीरे-धीरे अविचलित रहने की क्षमता बढ़ रही है तो आप समझ सकते हैं कि आपकी साधना ठीक दिशा में चल रही है। बस इतना ही जाना जा सकता है।

जैसे कोई अनन्त सागर में एक ऐसी नाव पर यात्रा कर रहा हो जिसमें कोई आधुनिक यन्त्र न लगे हों तो उसे दिशा का ज्ञान तो हो सकता है कि वह किस ओर बढ़ रहा है परन्तु अभी तट कितनी दूर है इसका आभास तो तभी होता है जब वह तट के इतना निकट पहुँच जाता है कि तट की भूमि और उस पर के वृक्ष आदि उसे दिखाई देने लगते हैं। वरना अपने चारों ओर जल ही जल दिखाई देता है और कुछ पता नहीं चलता कि आप सागर में किस स्थान पर हैं।

प्रश्न : भगवन्, यह सुनने में आता है कि भगवान की कृपा से ही सब हो रहा है। कई लोगों की यह धारणा है कि हमें क्या चिन्ता सद्गुरुजी पार करेगें, यह कहाँ तक सत्य है?

स्वामीजी : सद्गुरु और परमात्मा में भेद न मानकर ऐसा कहा जा सकता है। परमात्मा चाहे तो करोड़ों को पार कर दे, उसके वास्ते कौन सी बड़ी बात है। जिसका परमात्मा के प्रति पूर्ण आत्म-समर्पण हो जाता है, उसमें अबाधरूप से भगवान ही कार्य करते हैं और भगवान की शक्ति तो अनन्त, अक्षय है।

परमात्मा में स्थित सद्गुरु का परमात्मा से भिन्न स्वतन्त्र अस्तित्व ही नहीं रहता। कोई ऐसे सद्गुरु हों तो भी करोड़ों क्या अरबों सेवकों में से उद्धार तो किसी उस एक आध का ही होता है जिसका गुरु के प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण हो

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

जाता है। बाकी सब तो भेड़चाल से ही सेवक बनते हैं। किसी विरले में सत्य को पाने की सच्ची अभीप्सा होती है। वरना संतों के पास जाकर भी सेवक दुनिया की वस्तुओं को मांगते हैं।

प्रश्न : अगर एक कीड़ा भृंगी का चिंतन करते-करते भृंगी बन जाता है तो क्या शिष्य गुरु का स्मरण करते-करते उनके जैसा बन सकता है ?

स्वामीजी : वह कीड़ा भृंगी की आवाज सुनने में मगन हो जाता होगा और इतना तन्मय हो जाता होगा कि धीरे-धीरे वह भृंगी की तरह ही बन जाता है। आप गुरु का तन्मयता से चिन्तन करें तो गुरु के गुण आप में आ जायेंगे। गुरु कुछ बोलें या कहें और आप उसको सुने ही नहीं, उसका मनन न करें, उसकी शिक्षा को आत्मसात् न करें तो गुरु जैसे कैसे बन पायेंगे ?

आप अपने आपको उस कीड़े की तरह बनाएं जो भृंगी की आवाज सुनने में तन्मय हो जाता है। कहते हैं कि वह कीड़ा भयभीत होकर के तद्रूप हो जाता है। भय से तद्रूप होने से अधिक सरल है प्रेम से तद्रूप होना। जिससे आपका अनन्य प्रेम होता है आप वैसे ही बनते जाते हैं। भगवान से प्रेम होगा तो भगवान बन जायेंगे; मिट्टी से प्रेम होगा तो मिट्टी बन जायेंगे; चोर से प्रेम होगा तो धीरे-धीरे चोर बन जायेंगे।

प्रश्न : साधना करने के लिये स्वयं को कैसे तैयार करें ?

स्वामीजी : साधक परमात्मा के लिये जीता है और सांसारिक मनुष्य संसार के लिये। भगवद्प्राप्ति के मुख्य साधनों में निम्नलिखित हैं—

1. प्रभु-प्राप्ति की गहन अभीप्सा। जैसे भूखा व्यक्ति भोजन के लिये आतुर होता है ऐसे ही साधक में परमात्मा की प्राप्ति के लिये आतुरता होनी चाहिये।

2. प्राप्त परिस्थितियों, पदार्थों एवं सम्बन्धों को परमात्मा के नाते स्वीकार करके उनका परमात्मा के अनुभव के मार्ग में सदुपयोग करना।

3. प्रतिदिन नियमपूर्वक मन्त्र और भगवद्नाम के माध्यम से बैठकर भगवद्-स्मरण और ध्यान करना।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

4. सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय करना जिनसे भजन-साधन करने की प्रेरणा व उत्साह बढ़े।

5. समय-समय पर संत-महात्माओं का संग करना।

6. अपने पारिवारिक व सामाजिक कर्तव्यों को भगवान की प्रसन्नता के लिये दक्षता एवं संलग्नता से निभाना।

7. बुरे व्यसनों से बचना तथा बुरी संगत से भी बचना।

8. अपना व्यवसाय ईमानदारी से करना।

9. गरीबों तथा दीन-दुःखियों की अपनी सामर्थ्य के अनुसार सेवा करना तथा उनके जीवन स्तर को ऊपर उठाने का प्रयास करना।

10. मन के दोषों और चंचलता को दूर करने के लिये निरन्तर उपाय करते रहना। क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, वासना, राग, द्वेष, महत्वाकांक्षा आदि ही मन के दोष हैं। यही मन को चंचल और अस्थिर करते हैं।

प्रश्न : महाराजजी, जैसे माला में 108 मोती होते हैं या कहीं पर कई महापुरुषों के नाम के आगे 1008 लगाते हैं इसका क्या अभिप्राय है ?

स्वामीजी : मन की अगणित वृत्तियाँ हैं, उनका वर्गीकरण कहीं 108 तथा कहीं 1008 की संख्या में किया गया है। मन की इन वृत्तियों पर जिसका पूर्ण अधिकार हो उस महापुरुष की महानता को इंगित करने के वास्ते उसके नाम के पहले 108 या 1008 लगा देते हैं। अर्थात् जिस महापुरुष ने अपने मन को पूर्णरूपेण अपने वश में कर लिया हो उसके नाम के आगे 108 या 1008 लगा देते हैं।

प्रश्न : महाराज जी ! क्या उदासीन सम्प्रदाय बाबा श्रीचन्द्रजी से ही प्रारम्भ हुआ था या फिर उनसे पहले से ही था ?

स्वामीजी : बाबा श्रीचन्द्रजी उदासीन मत के एक सौ पैंसठवें आचार्य थे। उन्होंने उदासीन संत अविनाशी मुनिजी से दीक्षा ली थी। सनक, सनन्दन, सनातन तथा सनतकुमार ऋषि जो ब्रह्माजी के मानस पुत्र हैं, उनमें से सनत कुमार ही उदासीन मत के प्रवर्तक माने जाते हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

प्रश्न : महाराज जी ! किस मन्त्र का जाप किया जाये ? आप गुरुमन्त्र किसे देते है ?

स्वामीजी : जिस मन्त्र में आपकी अभिरुचि हो उसका जाप कर सकते हैं। सभी मन्त्रों से परमात्मा का स्मरण व आवाह्न किया जा सकता है।

मैं उस सज्जन को गुरुमन्त्र देने पर विचार करता हूँ जो सवा लाख ॐ का लिखित जाप कापी पर लिखकर पूरा करे (आजकल महाराजजी अपनी इच्छानुसार अधिक संख्या में बीस लाख तक भी ॐ लिखने को कह देते हैं।) और अगर वह मांस-मदिरा, तम्बाकू-सिगरेट आदि का सेवन करता हो तो इन सबका भी परित्याग करे। ऐसा नियम मैंने पिछले कुछ महीनों से बना दिया है।

प्रश्न : महाराजजी, कृपया बतलायें कि जीवात्मा किन-किन तलों पर वास करती है तथा वह किस प्रकार एक योनि से दूसरी योनि को प्राप्त होती है ? धन्यवाद।

स्वामीजी : यथा पिंडे तथा ब्रह्माण्डे। व्यक्ति की संरचना और विलय की प्रक्रिया के अनुरूप ही समष्टि की संरचना तथा विलय भी है। जैसे व्यक्ति की जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति की तीन अवस्थायें हैं ऐसे ही जगत् की भी तीन अवस्थायें हैं।

जाग्रत अवस्था में जीवात्मा स्थूल शरीर का अभिमानी होता है और इसकी संज्ञा जीव होती है। समष्टि के तल पर इसी के अनुरूप स्थूल या भौतिक जगत् के अभिमानी चेतन को वेदों में विराट की संज्ञा दी है।

स्वप्न अवस्था के अभिमानी जीव को तेजस कहा जाता है और समष्टि के स्तर पर सूक्ष्म जगत् के अभिमानी चेतन को हिरण्यगर्भ की संज्ञा दी गई है।

सुषुप्ति की अवस्था के अभिमानी जीव को वेद की भाषा में प्राज्ञ तथा समष्टि के स्तर पर कारण जगत् के अभिमानी चेतन को अव्याकृत कहा है।

जब मनुष्य सुषुप्ति की अवस्था में होता है तो वह अपने कारण शरीर के तद्रूप होता है। जैसे बीज में वृक्ष छिपा रहता है ऐसे ही सुषुप्ति की अवस्था में स्वप्न और जाग्रत की अवस्थाएँ तथा कारण जगत् में सूक्ष्म तथा स्थूल जगत् छिपे रहते हैं। मनुष्य जाग्रत से स्वप्न, स्वप्न से सुषुप्ति में जाता है; उसके उपरान्त फिर सुषुप्ति से स्वप्न और स्वप्न से जाग्रत अवस्था में आता है। यह दुष्चक्र तब तक

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

चलता रहता है जब तक जीव अपने देश-काल-वस्तु अपरिछिन्न दिव्य, अविनाशी स्वरूप का अनुभव करके मोक्षपद को प्राप्त नहीं कर लेता।

शरीर छूटने के बाद जीव सूक्ष्म लोकों में अपने कर्मों के अनुसार भ्रमण करता हुआ एक ऐसे लोक में पहुँचता है जहां वह पूरी तरह मूर्छित रहता है। वहां वह अपने पूर्व कर्मों के प्रभावों को आत्मसात् करता है और एक नये व्यक्तित्व को प्राप्त करता है। फिर उसे नये व्यक्तित्व को अभिव्यक्त करने के लिये दुबारा शरीर धारण कर इस पृथ्वी पर आना पड़ता है। यह लोक जिसमें जीव पूरी तरह मूर्छित अवस्था में रहता है, ही कारण जगत् है। इसे ब्रह्मलोक की संज्ञा भी दी गई है।

प्रश्न : प्रभु, भगवान तो मनातीत एवं भावातीत सुनते हैं। हम भाव-शक्ति, और चिन्तन कुछ-कुछ कर सकते हैं पर सहायता आवश्यक है, क्योंकि भाव से भावातीत और विचार से मनातीत तक जाना नहीं हो सकता। गुरुदेव, प्रभु, कृपा कर पुनः आश्वासन दें एवं उस कृपा अवतरण के चिन्हों/लक्षणों पर कृपया प्रकाश डालें।

स्वामीजी : भावातीत और मनातीत तो निगुर्ण ब्रह्म है। सगुण ब्रह्म अथवा ईश्वर तो भाव और प्रेम का भूखा है। सभी प्रार्थनाएं वह सुनता है और जो legitimate (न्यायोचित) प्रार्थनाएं हों उनको पूरा भी करता है। वह सर्वशक्तिमान भी है, कृपासिन्धु भी है, न्यायकारी भी है, कठोर भी है, मधुर भी है तथा सुहृद भी है। वह बिना कारण ही कृपा करने वाला है। उसकी कृपा निरन्तर सभी के पास आती है, परन्तु सभी को मिलती नहीं है। मिलती उन्हीं को है जो उसे स्वीकार करने को तैयार होते हैं। प्रभुकृपा aggressive (आक्रामक) नहीं होती। वह प्रकाश की तरह कोमल है। अगर कोई कमरे में दरवाज़े और खिड़कियां बन्द करके बैठ जाये तो प्रकाश उस तक नहीं पहुंचता। जो अपने अहंकार और प्रयत्न को ही मुख्य मानकर आत्म-साक्षात्कार के लिये उन पर निर्भर होता है उसके जीवन में प्रभुकृपा विशेष रूप से सक्रिय नहीं होती। सच्ची पुकार और प्रार्थना प्रभु की कृपा विशेष को आकर्षित करती है।

प्रभुकृपा का मुख्य कार्य तो जीव को प्रभु से मिलाना है अथवा जीव का विकास करना है न की जीव की प्रत्येक इच्छा को पूरा करना। जैसे Spiritual

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

Musings ('सहज उपदेश माला' पुस्तिका) में लिखा है कि प्रभकृपा पीड़ा, प्रतिकूलता, आदि का भी जीव के कल्याण के लिये कभी-कभी उपयोग करती है। प्रभु जानते हैं कि किस जीव का किस प्रकार से विकास होगा। दुःख-सुख, हानि-लाभ, जन्म-मृत्यु, पाप-पुण्य सबका उपयोग प्रभुकृपा जीव के कल्याण के लिये कर सकती है अतः प्रभुकृपा को किसी भी बाह्य परिस्थिति अथवा चिन्ह से परिलक्षित नहीं किया जा सकता।

जैसे भगवान के लक्षण पूरी तरह नहीं बताए जा सकते, ऐसे ही भगवान की कृपा के लक्षणों को भी निर्धारित नहीं किया जा सकता।

प्रश्न : अहंकार को निर्बल कैसे करें और उससे मुक्ति कैसे पायें ?

स्वामीजी : प्रभु-स्मरण से अहंकार निर्बल होता है और मिटता है, प्रभु-विस्मरण से अहंकार जन्मता और प्रबल होता है। दीनता भी अहंकार से होती है और अभिमान भी अहंकार से। अगर मन में दीनता आये तो अपने से नीचे स्तर के लोगों की ओर देखना चाहिये। अगर अपने में अभिमान आए तो अपने से बड़े, ऊँचे स्तर के लोगों की ओर देखना चाहिये। अभिमान और दीनता का भाव तभी आता है जब मनुष्य अपने आपको एक छोटे से दायरे में मानकर ही अपना मूल्यांकन करता है। जब मनुष्य भगवान की सम्पूर्ण सृष्टि में अपने आपको उसका अंग माने तो उसमें अभिमान और दीनता का भाव नहीं आएगा। बहुत लोग हमसे श्रेष्ठ व ऊँचे हैं, इसलिये अभिमान को कोई स्थान नहीं है और बहुत से लोग हमसे भी नीचे हैं, अतः दीन होने की भी जरुरत नहीं है।

प्रश्न : भगवन्, दीनता तो भक्त का लक्षण भी कहा जाता है ?

स्वामीजी : दीनता के भाव का यहाँ अर्थ है — Inferiority complex (स्वयं के क्षुद्र होने की ग्रन्थि) लेकिन एक भक्त के सन्दर्भ में दीनता का अर्थ विनम्रता है। भक्त यह मानता है कि मेरा प्रयत्न भी प्रभुकृपा से होता है।

प्रश्न : प्रभु, ऐसा क्यों कहा जाता है कि भगवान के श्रीविग्रह एवं गुरुदेव के चरणों में ध्यान लगाना चाहिये। क्या यह इसलिये है कि हम उनसे आँख मिलाने के योग्य नहीं, अथवा इसका कोई वैज्ञानिक/आध्यात्मिक रहस्य है ? कृपया प्रकाश डालें।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

स्वामीजी : गुरुदेव के श्रीचरणों में प्रीति होने से ही प्रायः भगवान के विग्रह पर ध्यान लगाने की योग्यता साधक में आती है। भगवान से अगर कोई directly communicate कर सके (सम्बन्ध जोड़ सके) तो न गुरु की आवश्यकता रहती है और न ही भगवान के विग्रह पर ध्यान लगाने की।

अगर आँख मिलाने का अर्थ direct communication लिया जाये तो आँख तो तभी मिलाई जाती है जब face to face encounter (आमना-सामना) हो, तो यह कहा जा सकता है कि सामान्य साधक में वैसी योग्यता नहीं होती।

वैज्ञानिक संदर्भ भी इस उक्ति में हो सकता है। सद्गुरु के चरणों में तो vibrations (दिव्य स्पन्दन) अभिव्यक्त होते हैं। उनको श्रद्धा से स्पर्श करना ही पर्याप्त है, ध्यान की भी जरूरत नहीं।

भगवान के विग्रह में ध्यान और भावना से भगवत्ता को जाग्रत करने के बाद उसकी पूजा की जाती है। प्राण प्रतिष्ठा की विधि सम्पन्न होने पर ही मूर्ति भगवान का विग्रह बनती है।

प्रश्न : कार्य छोड़े बहुत समय हुआ। पुत्र व्यापार देखता है। हरिद्वार रहता हूँ तो मन कर्तव्य-बोध से पुत्र की सहायता करने का रहता है। यह मोह है या कर्तव्य ?

स्वामीजी : अगर आपके मन में कर्तव्य-भावना (बच्चे के प्रति) अभी है, और हरिद्वार रहने पर भी उसका चिन्तन होता है तो आपको वह कर्तव्य निभाना चाहिये।

मनुष्य की चेतना का स्तर बदलने से और परिस्थिति बदलने से जीवन में उसके कर्तव्य भी बदलते रहते हैं। पारिवारिक और सामाजिक कर्तव्यों के साथ मनुष्य का आत्मा/परमात्मा के प्रति भी तो कर्तव्य है। सद्शास्त्र और महात्मा कहते हैं कि अगर मनुष्य का मन पूरी तरह परमात्मा में लग जाये तो वह अन्य सब कर्तव्यों से मुक्त हो जाता है। उसका और कोई कर्तव्य शेष नहीं रह जाता—

"यस्त्वात्मरतिदेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः।
आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥"

गीता 3 (17)

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

अर्थात् जो मनुष्य, आत्मा में ही रमण करने वाला और आत्मा में ही तृप्त तथा आत्मा में ही सन्तुष्ट हो, उसके लिये कोई कर्तव्य नहीं है।

आपका अभी लगाव बना हुआ है तो आपको कुछ समय और वहाँ लगाना चाहिये और कुछ समय भजन-साधन में लगाना चाहिये।

स्वामी हंसदेवजी का उदाहरण आपके सामने है। वे भी गृहस्थ जीवन से ही संन्यास में आये हैं। इनका लड़का और परिवार भी है। महात्मा बुद्ध तो अपने छोटे से बच्चे को छोड़कर सत्य की खोज में निकल गये थे।

मनुष्य के मन में कितना वैराग्य है, विवेक की कितनी परिपक्वता है और तीव्र प्रारब्ध कैसा है—इन सब बातों पर निर्भर करता है कि उसका जीवन कब कैसा हो जायेगा।

भारत में प्राचीन काल में एक विशेष आयु प्राप्त करने पर राजा लोग भी अपना राज-पाट छोड़कर वन में तप करने चले जाते थे। आयु बड़े होने की ही बात नहीं, तीव्र वैराग्य भी होना चाहिये।

प्रश्न : क्या ज्ञान-प्राप्ति से ही भगवान का अनुभव होता है ?

स्वामीजी : दोनों प्रक्रियाएँ अलग हैं। साधना के कई रूप हैं। कोई किसी भी साधना से परमात्मा का अनुभव करे उसमें कोई फर्क नहीं पड़ता।

सरोवर में किसी भी घाट से कोई स्नान करे, उसमें कोई फर्क नहीं होता। वेदान्त की प्रक्रिया में भी अपरोक्षानुभूति को महत्व दिया है। बुद्धि का संशय-विपर्यय पूर्णरूपेण दूर ही नहीं होता जब तक समाधिजन्य ज्ञान उदय नहीं होता। गीता में बताया है कि जब तक साक्षात् अतिमानसिक बोध नहीं होता तब तक न बुद्धि निश्चयात्मक होती है और न श्रद्धा-भावना ही संदेह रहित होती है। अतिमानसिक का अर्थ है कि जब मन और बुद्धि पूरी तरह चुप हो जाते हैं—जब न मन संकल्प-विकल्प करता है और जब बुद्धि के भी सब विचार बन्द हो जाते हैं—तब एक अतिमानसिक चेतना का उदय होता है। उस चेतना में सत्य/परमात्मा का साक्षात्कार होता है।

प्रश्न : साधु/पुजारी विशेष पहनावा क्यों पहनते हैं ?

स्वामीजी : मुझे इसका पता नहीं है। मैं तो समझता हूँ कि यह एक

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

प्रकार की uniform (पोशाक) का हिस्सा है। जैसे सिपाही की uniform (पोशाक) से ही पता चल जाता है वह व्यक्ति कौन है, उसका profession (व्यवसाय) क्या है, उसका सामाजिक status (स्तर) क्या है — इसी प्रकार कुछ outer signs (बाहरी चिन्हों) से व्यक्ति का पता चल जाता है।

प्रश्न : माथे पर चन्दन का टीका लगाने का क्या लाभ ?

स्वामीजी : वह टीका तो भगवान के चरणों को छुआया हुआ चन्दन होता है जो पुजारी लगाता है। यह तो विश्वास और श्रद्धा की बात है। विश्वास और श्रद्धा हो तो लगवाने से लाभ ही होता है। न लगवायें तो कोई नुकसान भी नहीं होता है। जैसे श्रीअमृतसर के सरोवर में या गंगाजी में लोग श्रद्धा से स्नान करते हैं। जिनको श्रद्धा नहीं है उनके वास्ते साधारण जल है। श्रद्धा में बड़ी शक्ति है। श्रद्धा से चमत्कार भी घट जाते हैं।

प्रश्न : क्या ज्ञानी/भक्त को सामाजिक (सांसारिक) रस्मों रिवाज़ से कुछ लेना देना नहीं रहता ?

स्वामीजी : बाह्य कर्मकाण्ड और मर्यादायें समय के साथ बदलती रहती हैं। पुराने रस्मों-रिवाज़ मिटते जाते हैं। नये-नये रस्मों-रिवाज़ बनते जाते हैं। साधारण व्यक्ति बिना रस्मों-रिवाज़ के रह ही नहीं सकता।

पूर्ण ज्ञान या पूर्ण भक्ति को प्राप्त व्यक्ति के लिये बाहर के रस्मों-रिवाज़ का महत्व नहीं रहता, तो भी समाज में रहते हुए उसे समाज की मर्यादा के अनुसार ही चलना चाहिये। जो जिस समाज या देश में है उसको वहाँ की मर्यादा का पालन करना चाहिये।

प्रश्न : (पूज्य स्वामीजी गत सोलह वर्षों से अनिश्चित मौन में हैं। अनेक आगन्तुक, जिज्ञासु तर्क की दृष्टि से, औचित्य की दृष्टि से तथा आध्यात्मिक दृष्टि से स्वामीजी से उनके मौन के बारे में पूछते हैं। नीचे इस विषय पर उनके द्वारा दिये गये कुछ उत्तरों का संकलन किया गया है।)

स्वामीजी : मौन के दो परिप्रेक्ष्य होते हैं। एक तो साधना का परिप्रेक्ष्य है। साधना के अंग के रूप में मौन का महत्त्व और लाभ है। पर सब साधकों के लिये

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

मौन आवश्यक नहीं है। जो exclusively (केवल मात्र) अपने आपको भजन-स्मरण में लगाना चाहता है, मौन लेने से उसके साधना के बहुत से बाहरी विघ्न दूर हो जाते हैं। बाहर का सम्पर्क कम हो जाता है। भजन के लिये समय अधिक मिलता है। मनन-शक्ति बढ़ती है। चेतना के unification (एकीकरण) में सुविधा होती है। संकल्प में बल आता है। वाणी में बल आता है, आदि-आदि।

—वस्तुतः सच्चा मौन तो उस स्थिति का नाम है जिसमें व्यक्ति आत्म-तृप्ति का अनुभव करता है। उसका कोई भी उद्देश्य नहीं रहता। सच्चा मौन सदा उद्देश्य के अतीत (motiveless) होगा। जब तक कोई उद्देश्य या motive रहता है, मन चुप ही नहीं होता।

—बोलने की बजाए लिखी हुई statement (वक्तव्य) अधिक authentic (प्रामाणिक) होती है। बोलने में आप अपने statement (वक्तव्य) को distort (तोड़-मोड़कर बोलना) भी कर सकते हैं। आप जो लिखेंगे तो वह बड़ी concise statement (सारगर्भित वक्तव्य) होगी। उसे आप बदल भी नहीं सकते। बदलेंगे तो आप inconsistent (असंगत) हो जायेंगे। जितना बोला जा सकता है, उतना लिखा नहीं जा सकता।

—ऐसा कुछ भी नहीं है जो मौन से न मिल सकता हो। जब परमात्मा मौन से मिल सकता है तो सभी कुछ मिल सकता है। परन्तु मौन कुछ पाने के लिये किया जाये यह जरूरी नहीं। मौन से ही पूरा जगत् प्रकट हुआ है और अन्ततोगत्वा मौन में ही लीन हो जाता है।

—मेरे मौन का कोई भी कारण नहीं है। मुझे मौन से प्रेम हो गया है, और प्रेम का कोई कारण नहीं होता है। क्या होता है ?

प्रश्न : मोक्ष प्राप्ति का क्या साधन है ? पुनर्जन्म के झंझटों से कैसे बचा जा सकता है?

स्वामीजी : वासना, ममता और मोह बार-बार जीव को संसार में लाते हैं। मोह-ममता को छोड़ने का सरल साधन प्रभु-नाम स्मरण है। परमात्मा के निरन्तर स्मरण से मन शुद्ध होता है और उसमें दिव्य-ज्ञान का प्रकाश होता है, जिससे मोह-ममता छूट जाते हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

प्रश्न : कुण्डलिनी का क्या अर्थ है ? उसे किस प्रकार जाग्रत किया जा सकता है ? क्या इसमें गुरु सहायता कर सकते हैं ?

स्वामीजी : कुण्डलिनी का अर्थ है मनुष्य के अन्दर परमात्मा की शक्ति जो मनुष्य में पूरी तरह विकसित अथवा जगी हुई नहीं है।

गुरुदेव सब कुछ कर सकते हैं। शिष्य जिस-जिस अवस्था को सहन करने के योग्य होता जाता है, वैसी स्थिति गुरुकृपा से प्राप्त होती जाती है। अगर अनाधिकारी में कुण्डलिनी जाग्रत हो जाये तो वह उस शक्ति को सहन नहीं कर पायेगा। वह शक्ति भगवान के अनन्य और तीव्र प्रेम से, प्राणायाम के साधन से अथवा ध्यान-योग से जाग्रत होती है। भक्ति-मार्ग सभी मार्गों में से सरल है। ज्ञान और योग के लिये अधिकारी चाहिये।

प्रश्न : प्रभु-प्राप्ति के कौन-कौन से मार्ग हैं ? क्या श्वास-श्वास से प्रभु सुमिरन हो सकता है ?

स्वामीजी : प्रभु-प्राप्ति के अनेक प्रकार के साधन हैं। सभी साधनों का वर्गीकरण करके ऋषियों ने मुख्य रुप से चार योग बता दिये हैं। भक्ति योग, कर्म योग, ज्ञान योग, राज योग। बाकी जितनी भी गुप्त या प्रचलित साधन क्रियायें हैं वे सब इन्हीं चारों योगों के अन्तर्गत आ जाती हैं।

ऐसा हो जाये तो जीव का कल्याण हो जाये। श्वास-श्वास से ध्यान तो उसका होता है जिससे अत्यन्त प्रेम होता है। श्वास-श्वास से उसके नाम के जाप का अभ्यास करें। धीरे-धीरे उसका प्रेम हृदय में प्रगट होगा तो अपने आप उसका ध्यान होने लगेगा।

प्रश्न : क्या प्रभु-प्राप्ति के लिये साधु बनना आवश्यक है ?

स्वामीजी : जो साधु बनना चाहते हैं वे किसी से मश्वरा नहीं करते। जिसके मन में अत्यन्त तीव्र वैराग्य की आँधी होती है उसके सब पारिवारिक सम्बन्ध अपने आप टूट जाते हैं।

प्रश्न : भगवन्, मनुष्य जीवन सार्थक कैसे बने?

स्वामीजी : संलग्नता से सत्य/परमात्मा की खोज करने से ही मनुष्य

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

जीवन सार्थक व सफल बनता है। अन्यथा पशु-पक्षियों को भी इन्द्रियों के सुख मिल जाते हैं। वे भी अपना जीवन यापन कर ही लेते हैं।

प्रश्न : मेरा ध्यान कहीं नहीं लगता।

स्वामीजी : आपका अपने बच्चों में ध्यान लगता है या नहीं? या किसी दूसरी जगह लगता होगा। मनुष्य का ध्यान कहीं न कहीं लगता ही है। जब कहीं, किसी में भी ध्यान न लगे, तो अच्छा है। फिर भगवान में जरूर लग जायेगा।

प्रश्न : ध्यान कैसे लगता है?

स्वामीजी : जिसकी आवश्यकता प्रतीत होती है उसका चिन्तन होता है। चिन्तन होते-होते उससे लगाव हो जाता है। लगाव होने से मन वहीं लगा रहता है।

यह नियम जगत् के प्राणी-पदार्थों के लिये भी सत्य है और परमात्मा के लिये भी। परमात्मा की वैसी ही आवश्यकता प्रतीत होनी चाहिये जैसे भूखे आदमी को भोजन की और प्यासे को जल की आवश्यकता प्रतीत होती है।

प्रश्न : एक ओर कथन है ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या, दूसरी ओर परमात्मा को सर्वरूपमय कहा है। इस विरोधाभास को कैसे समझें ?

स्वामीजी : जगत् परमात्मा की अभिव्यक्ति है। परन्तु साधारणजन जगत् को स्वतन्त्र रूप में अनुभव करते हैं। ऐसा जगत् जिसका परमात्मा आधार न हो, सामान्य मनुष्य की प्रतीति है। पर ऐसा स्वतन्त्र, बिना परमात्मा के आधार के कोई जगत् नहीं है। ऐसे परमात्मा से विहीन जगत् को मिथ्या जगत्, शास्त्र में कहा है। अगर जगत् को परमात्मा की अभिव्यक्ति मानें तो इसे मिथ्या कहने की जरूरत नहीं। तब तो यह परमात्मा का रूप ही है। पर ऐसी अनुभूति तो करोड़ों में किसी एक आध को ही होती है।

वैसे भी सृष्टि के दो रूप हैं—एक ईश्वर-सृष्टि और एक जीव-सृष्टि। जीव-सृष्टि तो जीव की मान्यता से है। जब जीव का अज्ञान दूर होता है तो भी ईश्वर-सृष्टि तो उसके लिये रहती है, परन्तु जीव-सृष्टि उसके लिये बाधित हो जाती है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

जैसे एक शरीर है। ईश्वर ने किसी जीव को उसके कर्मों का फल देने और उसके विकास के लिये एक मनुष्य का शरीर दिया। उस शरीर की रचना ईश्वर ने की। पर उस शरीर के साथ अनेक जीवों ने अपने सम्बन्ध मानकर स्थापित किये। वही एक शरीर, एक का मित्र बन गया दूसरे का शत्रु बन गया। एक का बाप, दूसरे का भाई, तीसरे का बहनोई, चौथे का बेटा, पाँचवें का साला आदि-आदि। अनेक जीवों ने उस एक शरीर के साथ अपने-अपने सम्बन्धों की रंचना की। यह सब जीव-सृष्टि है। ऐसे जगत् को ही शास्त्र में मिथ्या कहा है। जीव के दुःख का कारण जीव-सृष्टि होती है, ईश्वर-सृष्टि नहीं।

प्रश्न : भगवन्, कृपा कर इन तीन साधनों—एकाग्रता, स्मरण और ध्यान से सम्बन्धित अंतर प्रक्रिया और अन्तर अवस्था पर प्रकाश डालें। कृपया पुनः बता दें कि भगवद् प्रेम कैसे इन सभी साधनों को साधक में स्वतः क्रियान्वित कर देता है।

स्वामीजी : एकाग्रता तो स्मरण और ध्यान में उभयनिष्ठ (common factor) है। एकाग्रता के द्वारा ही स्मरण और ध्यान सफल होते हैं।

स्मरण और ध्यान की प्रक्रिया में थोड़ा अन्तर है। स्मरण में प्रायः किसी मन्त्र अथवा भगवद् नाम को आधार बनाकर प्रभु-स्मरण किया जाता है। ध्यान की प्रक्रिया में भगवान के किसी दिव्य-रुप को आधार बनाकर ध्यान किया जाता है। स्मरण की प्रक्रिया में वृत्ति को हृदय-स्थान पर तथा ध्यान की प्रक्रिया में वृत्ति को भ्रूमध्य पर (भृकुटी पर) केन्द्रीभूत किया जाना चाहिये।

मन्त्र-जाप द्वारा स्मरण, dynamic (सक्रिय) प्रक्रिया है। ध्यान की प्रक्रिया में भृकुटी पर भगवान के दिव्य-रूप को देखना मात्र, एक passive (निष्क्रिय) प्रक्रिया है।

मन्त्र-जाप द्वारा स्मरण से अथवा ध्यान की प्रक्रिया से (दोनों से ही) अर्धचेतन मन की भी शुद्धि होती है। ध्यान शान्ति-प्रधान होता है, जाप शक्ति-प्रधान होता है।

प्रभु प्रेम से तो स्पष्ट है कि, भगवान का स्मरण व ध्यान स्वाभाविक होगा। जिससे प्रेम होता है उसका स्मरण और ध्यान बिना प्रयास के होता है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

प्रेम से जो स्मरण-ध्यान होता है उसमें रसानुभूति भी होती है। प्रेम किसी भी क्रिया अथवा सम्बन्ध को रसपूर्ण बना देता है।

प्रेम की अनेक अवस्थायें हैं। भाव और महाभाव प्रेम की अभिव्यक्तियां हैं। प्रभु प्रेम होगा तो स्वभावतः आप प्रभु मिलन का साधन करेंगे जिससे प्रभु प्रेम और भी गहरा होता जायेगा। प्रेम की पूर्णता में तो भगवान से मिलन हो जाता है और सब साधनों का अवसान भी। जहाँ मन्ज़िल मिल जाती है वहाँ मार्ग समाप्त हो जाता है।

ध्यान का उद्देश्य— मनुष्य के अन्दर एक देखने की आत्मा है, एक करने की (प्राण)। यह दोनों एक-दूसरे से इतने identified (तादात्मित) हैं कि दोनों एक ही लगते हैं। इन दोनों को अलग-अलग करना ही ध्यान का मुख्य लक्ष्य है।

तप—तप में मन के आवेगों को सहन करना व उनमें अविचलित रहना होता है।

प्रश्न : Passions (आवेगों) को कैसे नियन्त्रित करें ?

स्वामीजी : Passions (आवेग/तीव्र इच्छा) हर समय नहीं होते। जब कोई passion हो तो उसके साथ अपने आपको identify (तदात्म) न करें। उसे resist करें (उसका विरोध करें)। इससे संघर्ष होगा। ऐसे संघर्ष से व्यक्तित्व निखरता है। passion का उदय होना कोई पाप नहीं है। उनमें guilty feel (अपराध बोध) नहीं करना चाहिये। उसके वशीभूत होने में ही degradation (गिरावट) है।

प्रश्न : हमें सत्य का साक्षात्कार क्यों नहीं होता ?

स्वामीजी : मनुष्य की सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि वह अपने आपको नहीं जानता और जानने का दत्तचित्त होकर प्रयास भी नहीं करता। अपनी ready made beliefs (बने बनाये विश्वासों) और convictions (बुद्धिगत मान्यताओं) के साथ उसकी सतत preoccupations (व्यस्त रहना) ही उसकी स्वानुभूति में बाधा बन जाती है। शान्त, राग-द्वेष रहित और unoccupied (विचार रहित) मन में ही सत्य यथावत प्रकाशित होता है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

प्रश्न : बिना अहंकार के कार्य करना आसान प्रतीत नहीं होता।

स्वामीजी : बिना अहंकार के कार्य करना साक्षात् आत्मानुभूति के बिना संभव नहीं है। उससे पहले शुद्ध अथवा सात्विक अहंकार से कार्य करने होते हैं। परहित भावना से, प्रभु नाते से, निजी स्वार्थ को छोड़कर, नम्रतापूर्वक जो कार्य किये जाते हैं वे अहंकार विसर्जन में सहायक होते हैं। आत्मानुभूति के फलस्वरूप व्यक्ति तुष्टि और परितृप्ति का अनुभव करके जब आनन्द से भरता है और वह आनन्द/प्रेम जब कर्म के रूप में द्रवीभूत होकर बाहर प्रवाहित होता है तो केवल वही कर्म पूरी तरह से निःस्वार्थ और अहंकार से रहित होता है।

समग्र आध्यात्मिक साधना में जाप, meditation और contemplation (ध्यान) व सेवा का समावेश होता है। जब तक साधना में प्रेम और आनन्द नहीं आता तब तक नियम बनाकर हठ से साधना करनी होती है।

प्रश्न : कभी-कभी साधक को सभी तरह के सम्बन्ध टूट जाने से भय होता है। सब नीरस सा लगता है।

स्वामीजी : सम्बन्ध कम करने से तो limitations (सीमायें) ही खत्म होगीं। सत्ता तो खत्म नहीं होगी। सत्ता और निखरेगी। शरीर के साथ identification (तादात्म्य) होने से मृत्यु का भय होता है। शरीर के साथ अपना तादात्म्य होता है फिर शरीर के माध्यम से दूसरों से सम्बन्ध होते हैं।

प्रश्न : हमें अपने शरीर से कितना प्यार है—जब आईने के सामने हम अपने आपको निहारते हैं तो ऐसे लगता है मानो हमसे सुन्दर कोई है ही नहीं !

स्वामीजी : क्योंकि आपसे सुन्दर कोई भी नहीं है। वह जो आपके स्वरूप की सुन्दरता है वह शरीर पर आरोपित हो रही है। जब कोई आदमी मरता है तो चाहे वह कितना भी प्रिय हो, उसके मृतक शरीर से भय लगने लगता है। जब कोई मरता है तो उसके पास किसी को अकेला नहीं बैठने देते।

प्रश्न : अहंकार क्या है ?

स्वामीजी : अहंकार का अर्थ है identify (तदात्मिकता) करने की वृत्ति। 'कुछ बनना'। मैं पिता हूँ, भाई हूँ, मित्र हूँ, शत्रु हूँ, छोटा हूँ, पापी हूँ— ये सब

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

अहंकार हैं। जीव ही identify करता है। मन के साथ आत्मा मिलकर 'जीव' कहलाती है, या यों कहें कि जीवात्मा का मन में आभास होता है। जहाँ मन होगा वहाँ जीव भी होगा। मन नष्ट हो जाये तो जीव-भाव भी खत्म हो जाये। तब शुद्ध आत्मा की अनुभूति होगी। जीव तथा ईश्वर, दो भाव हैं ब्रह्म के।

दुःख-सुख किसी परिस्थिति पर निर्भर नहीं है। वह अपनी अंतःस्थिति पर निर्भर करता है। यही तो अध्यात्मवाद का भौतिकवाद से अन्तर है। गृहस्थ और संन्यास दोनों ही परिस्थितियाँ हैं। सुख की इच्छा ही दुःख है।

गीता में बताया है कि जब तक साक्षात् अतिमानसिक बोध नहीं होता तब तक न बुद्धि निश्चयात्मक होती है और न श्रद्धा-भावना ही संदेह रहित होती है। अतिमानसिक का अर्थ है— जब मन संकल्प-विकल्प नहीं करता है और जब बुद्धि के भी सब विचार बन्द हो जाते हैं, तब एक अतिमानसिक चेतना का उदय होता है। उस चेतना में सत्य/परमात्मा का साक्षात्कार होता है।

प्रश्न : प्रभु ! विपशना के अभ्यास तथा जाप में क्या अन्तर है ? क्या इन्हें साथ-साथ भी किया जा सकता है।

स्वामीजी : साक्षीभाव का अभ्यास हिन्दू शास्त्रों में भी निर्देशित है परन्तु बौद्ध धर्म में इसे [विशेषकर इसकी हीनयान शाखा जो East Asia (पूर्वी एशिया) के श्रीलंका, थाईलैण्ड, बर्मा आदि देशों में अधिक प्रचलित है, के अनुयाई ही] अधिक अपनाते हैं।

साक्षीभाव के अभ्यास से शुभ एवं अशुभ दोनों प्रकार के भाव तथा विचार subside (विलीन) होने लगते हैं।

यह मार्ग भगवान बुद्ध के पुरुषार्थ प्रधान (effort-oriented) साधना से मेल खाता है। इसमें भक्ति अथवा सद्विचार एवं विवेक का स्थान न होने के बराबर है।

भक्ति-भाव से अथवा सर्व पदार्थ-प्राणियों में एकता के मनन से जो रस की प्रतीति होती है वह केवल साक्षीभाव के अभ्यास से नहीं होती। मन में शान्ति इस अभ्यास से अवश्य आती है। क्योंकि साक्षी होने से दृश्य से तदात्मिकता टूटती है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

बौद्ध मत का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष ही है। परन्तु मोक्ष किसको होता है उसका उत्तर उनके धर्म/मीमांसा में नहीं मिलता। बड़े सुन्दर और श्रेष्ठ अनुभव को 'जो' अनुभव कर रहा है 'उसका' ज्ञान नहीं होगा तो ज्ञान की पूर्णता नहीं होगी और न परितृप्ति होगी। साधना का वास्तविक लक्ष्य तो अनुभव करने वाले को देखना है। इसलिये उपनिषद् का ऋषि कहता है 'देखने वाले को कैसे देखें ?'

यदि साधक एक ही अभ्यास में पूरी तरह डूब सके तो किसी दूसरे अभ्यास की आवश्यकता ही नहीं है। परन्तु मनुष्य किसी भी क्रिया को लगातार नहीं कर सकता। इसलिये जाप और विपशना का अभ्यास अलग-अलग समय पर करने में कोई हर्ज नहीं है। विपशना के अभ्यास से शान्ति अधिकाधिक बढ़ेगी। भक्ति-भाव से जाप करने से भगवद्-भाव का उदय होगा और वह आगे धीरे-धीरे महाभाव में रूपान्तरित होगा। सभी अभ्यास अन्ततोगत्वा एक ही 'स्थान' पर ले जाते हैं।

इन दोनों अभ्यासों में कोई परस्पर विरोध नहीं है। ये परस्पर complementary (पूरक) हैं।

विपशना की साधना से attention (सजगता) में acuteness (पैनापन) आ जाता है, इसलिये शरीर में होने वाली क्रियाओं का भान होने लगता है। मन में जो थोड़े बहुत विकार होते हैं वे मानसिक stress (तनाव) दूर होने और मन के शान्त होने से दूर हो जाते हैं।

विपशना साधना की प्रक्रिया एक प्रकार से passive meditation (निष्क्रिय ध्यान) है। इससे शक्ति नहीं मिलती बल्कि शान्ति ही मिलती है। passive meditation और dynamic meditation (सक्रिय ध्यान) के प्रभावों में अन्तर होता है। dynamic meditation में शक्ति का प्रादुर्भाव पहले होता है जिसके कारण शरीर में परिवर्तन भी होते हैं। शक्ति-प्रधान अनुभव और चेतना प्रधान अनुभव भी अलग-अलग होते हैं। शक्ति-प्रधान अनुभवों में शरीर में कम्पन, शरीर में गर्मी, प्रकाश का दिखना, किसी सूक्ष्म शब्द का प्रगट होना, अश्रुपात होना, रोमांच होना आदि-आदि हैं।

चेतना प्रधान अनुभवों में मुख्य हैं— दृश्य जगत् से असंगता, पदार्थों में अस्थिरता और परिवर्तन का आभास, साक्षीभाव में प्रगाढ़ता आदि-आदि। जाप

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

अथवा किसी वृत्ति विशेष पर चेतना को concentrate (केन्द्रित) करना ये dynamic meditation (सक्रिय ध्यान) में आते हैं। किसी ज्योति, विचार, श्वास, शरीर आदि को तटस्थ होकर मात्र देखना passive meditation है।

प्रश्न : महाराजजी ! कर्म और विवेक-विचार से उस परमसत्य को, जो सब कर्मों और विचारों से परे है, कैसे पा सकते हैं ?

स्वामीजी : निष्काम कर्म से मन की मलिनता मिटती है, भक्ति-प्रेम-योग से मन का विक्षेप दूर होता है और ज्ञान के संपादन से अज्ञान का आवरण दूर होता है। सत्य/परमात्मा की पूर्ण, अपरोक्ष अनुभूति शुद्ध, शान्त और स्थिर अंतःकरण में ही होती है।

हिन्दू धर्म में बुद्धि का परित्याग नहीं बताया। एक सीमा तक बुद्धि का सदुपयोग है। एक सीमा के आगे जहां बुद्धि का प्रवेश नहीं वहां intuition या समाधिजन्य ज्ञान ही उसकी पूर्ति करता है।

बुद्धि सत्य की प्रतिष्ठा नहीं कर सकती। परन्तु असत्य से सत्य को अलग भी तो बुद्धि करती है। असत्य को test (जांच-परख) करने का साधन क्या है ? उसे ही तो विवेक कहते हैं।

शुद्ध भावना का दर्जा बुद्धि से ऊँचा है। जो calculate (नाप-तौल) करने वाली बुद्धि है उससे शुद्ध भावना ऊँची है।

वस्तुतः परमात्मा की अनुभूति के बिना जीना कोई जीना ही नहीं है। और परमात्मा के बोध के बिना सब कुछ जानते हुए भी व्यक्ति मूर्ख ही होता है।

साधक को किसी आन्तरिक अनुभूति से भयभीत नहीं होना चाहिये। अगर किसी अनुभूति से आप भयभीत होंगे तो वह अनुभूति बन्द हो जायेगी। कई बार तो साधक को बड़े कष्टदायक अनुभव होते हैं। नरक का अनुभव भी हो सकता है। स्वर्ग का अनुभव भी हो सकता है। अनेक लोकों के अनुभव हो सकते हैं, और होते हैं। साधक को घबराना नहीं चाहिये। न किसी अनुभव से excited (उत्तेजित) होना चाहिये। ये बीच के अनुभव आते और चले जाते हैं।

प्रश्न : वह कौन सी पुस्तक है जिसे पढ़ने के बाद कुछ पढ़ना शेष न रहे ?

स्वामीजी : वह पुस्तक अपने आत्मा की ही पुस्तक है जिसे पढ़कर और

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

किसी पुस्तक को पढ़ने की जरूरत नहीं रह जाती। आत्मा को पढ़ें, आत्मा को सुनें और आत्मा से ही प्रेम करें तो आत्म-तृप्ति होगी।

प्रश्न : ध्यान करते समय दोनों हाथों के अंगूठों से और उंगलियों से कान और आंख बन्द करने पर सूर्य का प्रकाश, सुदर्शन चक्र और सितारे नज़र आते हैं। आगे के लिये रास्ता नहीं मिलता।

स्वामीजी : इस तरह के दर्शन होना अच्छी बात है। साधक का उत्साह बढ़ता है मगर इस तरह के अनुभव शुद्ध आध्यात्मिक अनुभवों में नहीं माने जाते। आध्यत्मिक अनुभव तो मनुष्य की चेतना को बदलते हैं जिससे वह मोह-माया और दुःख-सुख के प्रभावों से उपर उठने लगता है।

आध्यात्मिक अनुभव परमात्मा और आत्मा के स्मरण और चिन्तन से होते हैं। इनका प्रभाव मनुष्य की चेतना पर बहुत गहरा होता है। उसका मन परमात्मा के आनन्द में हमेशा डूबा रहता है और वह अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थितियों में कभी डोलता नहीं है। मन में अपूर्व शान्ति रहती है और अन्त समय में शरीर छोड़कर वह परमात्मा में ही मिल जाता है। ऐसी रोशनी को देखने या किसी प्रकार की आवाजों को सुनने का क्या लाभ जो मनुष्य के मन को शान्त न कर सकें।

प्रश्न : मन क्या है? मन में संकल्प-विकल्प क्यों उठते रहते हैं? निर्विकल्प स्थिति में मन को कैसे लगाया जा सकता है?

स्वामीजी : संकल्प-विकल्प करने की शक्ति का नाम ही मन है। मनुष्य इन्द्रियों के माध्यम से जब पदार्थ-परिस्थिति को देखता-सुनता है तो उसका मूल्यांकन अपने मन के पूर्व संस्कारों से करता है। परिस्थिति अनुकूल प्रतीत हो तो उसे प्राप्त करने और बनाए रखने के संकल्प करता और योजनाएँ बनाता है, तदनुसार कर्म भी करता है। परिस्थिति प्रतिकूल प्रतीत हो तो उससे बचने के वास्ते संकल्प-विकल्प करता तथा तदानुसार कर्म भी करता है। मन को संकल्प रहित करने की मनुष्य में संभावना है। सर्वप्रथम तो उसे अपने मन-इन्द्रियों को tame करके अपने वश में करने की जरूरत है। उसके लिये अनुशासन और विवेक चाहिये। जो संकल्प आप करना चाहें वही संकल्प करें जो विचार न करना चाहें

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

वे विचार आपके मन में न आऐं। बहुत लम्बे काल और निरन्तर अभ्यास के बाद ही साधक इस स्थिति को प्राप्त करता है।

निर्विकल्प स्थिति तो तब प्राप्त होती है जब मनुष्य सविकल्प समाधि को पहले उपलब्ध हो। उसके बाद निर्विकल्प समाधि की stage (स्थिति) आती है। भक्ति-योग, राज-योग तथा ज्ञान-योग — इन तीनों मार्गों से निर्विकल्प समाधि तक पहुँचा जा सकता है।

प्रश्न : Meditation (ध्यान) के तुरन्त पश्चात क्या सोना चाहिये या नहीं ? क्या सोने से कोई हानि तो नहीं होती ?

स्वामीजी : Meditation (ध्यान) के तुरन्त पश्चात कोई physical activity (शारीरिक क्रिया) नहीं करनी चाहिये। बल्कि दस से पन्द्रह मिनट के लिये relaxed (तनाव रहित) होकर बिना कुछ सोचते हुए लेट जाना चाहिये। उसका कारण यह है कि जब तक meditation effortless (प्रयास रहित) और सहज नहीं हो जाता तो concentrate (केन्द्रित) करने के effort (प्रयास) के कारण थोड़ी tension (तनाव) ध्यान अवस्था में बनी रहती है। ध्यान के बाद जब आप शारीरिक और मानसिक रूप से कुछ भी न करते हुए (both physically and mentally relaxed) होकर लेट जाते हैं तो वह tension (तनाव) भी नहीं रहती। इससे कई बार उस relaxed (विश्राम की) अवस्था में कोई आध्यात्मिक अनुभव भी घटित हो सकते हैं जो ध्यान करने की अवस्था में नहीं होते।

दूसरा कारण — कि meditation (ध्यान) में ऊर्जा शरीर में किसी एक स्थान या बिन्दु पर केन्द्रीभूत होती है। शरीर के बाकी भागों में ऊर्जा बहुत ही कम मात्रा में सक्रिय रहती है। इसलिये अगर आप ध्यान के बाद तुरन्त किसी hard physical activity (कठोर शारीरिक क्रिया) में लगेंगे तो वह काम सुचारु रूप से नहीं कर पायेंगे। प्रगाढ़ ध्यान की अवस्था से उठने के बाद तो कई बार चलने पर पाँव लड़खड़ाने लगते हैं।

ध्यान के तुरन्त बाद सोने से कोई विशेष हानि नहीं होती। परन्तु ध्यान के बाद सजग और relaxed होकर न रहने के कारण अगर कोई spiritual अनुभव बाद में हो तो उससे आप वंचित रह सकते हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

वैसे तो ध्यान के बाद सोने की tendency (प्रवृत्ति) नहीं होती, ध्यान में सोने की tendency (प्रवृत्ति) रहती है और ध्यान में न सोने का संकल्प ले कर बैठते हैं।

प्रश्न : क्या meditation (ध्यान) के एक session (सत्र) की जो उपलब्धियाँ होती हैं उन्हें दूसरे session (सत्र) तक सतत रखा जा सकता है ?

स्वामीजी : ध्यान की अवस्था में जाने से आपके चित्त पर प्रभाव होता है। (शरीर तक भी वह प्रभाव आ सकता है।) वह संचित प्रभाव चाहे आपके physical mind (भौतिक मन अथवा सतही मन) को प्रतीत न हो, परन्तु आगे दोबारा ध्यान में बैठने पर वह प्रभाव कार्य करता है। इसीलिये तो निरन्तर और नियमित ध्यान में बैठने से आप प्रगति करते हैं। वरना अगर हर बार आप ने A B C से ही शुरु करना हो तो प्रगति क्या होगी। ध्यान जब रोज नियमित रुप से नहीं करते तो वह प्रभाव dissipate (नष्ट) होता रहता है और आपकी प्रगति उतनी तीव्र गति से नहीं होती जैसी होनी चाहिये।

इसलिये योग-दर्शन में इस सम्बन्ध में एक सूत्र है जिसका अर्थ है कि अभ्यास लम्बे समय तक, निरन्तर, नियमित रुप से और संलग्नता से करना चाहिये तब ही वह अभ्यास "दृढ़भूमि" बनता है अथवा परिपक्व अवस्था को प्राप्त होता है।

प्रश्न : अकेले होने पर नकारात्मक सोच (negative thinking) हो जाती है और घबराहट होने लगती है। जब तक व्यस्त हूँ, ठीक अनुभव होता है।

स्वामीजी : नकारात्मक सोच (negative thinking) को दूर करने का उपाय तो सकारात्मक सोच (positive thinking) ही है। परमात्मा पर भरोसा रखें। उनकी सहज कृपा के गुण पर बार-बार मनन करें। ऐसी पुस्तकें पढ़ें जिनके अध्ययन से परमात्मा पर भरोसा और श्रद्धा बढ़े। अथवा आत्म-विश्वास अपने में निर्मित करें। वैसा अनुशासनमय जीवन व्यतीत करने से होगा। बहुत बड़े-बड़े संकल्प न करें जिनको आप पूरा न कर सकते हों। जब कोई शुभ संकल्प करके आप उसे पूरा करते हैं तो मनोबल और आत्म-विश्वास बढ़ता है। जब आप कोई संकल्प करके उसे पूरा नहीं करते तो मनोबल गिरता है और आत्म-विश्वास में

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

कमी आती है। इसलिये ऐसे छोटे और अपनी सामर्थ्य के अनुसार ही संकल्प करें जिनको आप पूरा कर सकें और उन्हें अवश्य पूरा करें तो आपका आत्म-विश्वास बढ़ेगा। फिर नकारात्मक सोच (negative thinking) नहीं होगी।

प्रश्न : शिवलिंग को जल क्यों चढ़ाया जाता है ? तथा शिवजी की मूर्ति व शिवलिंग में क्या अन्तर है ?

स्वामीजी : परमात्मा मन से परे है। किसी प्रतीक (symbol) के द्वारा उसका चिन्तन होता है। अतः प्रतीक उपासना है। प्रतीक का कोई मनुष्य रूप हो तो उसमें gender की भावना आ जाती है कि प्रतीक पुरुष है या स्त्रीलिंग है। शिवलिंग की उपासना में यह भावना नहीं आती। परमात्मा का क्या gender है ? परमात्मा तो निराकार है पर प्रत्येक आकार धारण कर सकता है। निराकार और साकार का भेद तो मन बनाता है। फिर परमात्मा के साकार रूप में भी male और female का भेद भी मन ही बनाता है। शिवलिंग की उपासना में male या female की भावना नहीं आती। वस्तुतः शिवलिंग का कोई विशेष आकार भी नहीं है। सभी आकार उसमें समाहित हो जाते हैं। साकार मनुष्य निराकार की कल्पना नहीं कर सकता। निराकार उपासना करने वाले प्रायः शिवलिंग की उपासना करते हैं। शिवलिंग निराकार का प्रतीक है।

जल चढ़ाना तो अपनी परमात्मा के प्रति कुछ अर्पित करने की भावना को व्यक्त करता है। जल गरीब से गरीब व्यक्ति भी अर्पित कर सकता है।

प्रश्न : महाराजजी ! ब्रह्म कुमारियों के सिद्धान्त में शिवजी और शंकर इन दोनों को भिन्न मानते हैं। वास्तविकता क्या है ?

स्वामीजी : ब्रह्म कुमारियों के सिद्धान्त बड़े भिन्न हैं। सृष्टि की आयु वे केवल पांच हजार वर्ष मानते हैं जो मान्यता विज्ञान और इतिहास से मेल नहीं खाती। गीता के बारे वे कहते हैं कि गीता श्रीकृष्ण ने उच्चारण नहीं की बल्कि ब्रह्माजी ने उच्चारण की है। ईश्वर को वे सर्वव्यापक नहीं मानते। उनका एक मुख्य ग्रन्थ उनके एक भक्त ने मुझे लाकर दिया था, उसमें यह सब बातें लिखी थीं। अब हिन्दू धर्म में तो छूट है कि परमात्मा के सम्बन्ध में जो जैसे मानना चाहे मान ले। हिन्दू धर्म का कोई एक founder (संस्थापक) भी नहीं है। आप राम,

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

कृष्ण, शिव, ब्रह्मा के बारे में कुछ भी कह दें आपको मारने के वास्ते धमकी नहीं दी जाती न ही आपके सिर काटने का पुरस्कार रखा जाता है। सो जिसकी जो मरजी परमात्मा के बारे में हो वैसा माने। हिन्दुओं ने तो नास्तिकों के दर्शन-शास्त्र (चार्वाक) पर भी आपत्ति नहीं की।

प्रश्न : भगवन्, शास्त्रों में लिखा है कि किसी भगवद् प्राप्त संत या महापुरुष का संग करने, दर्शन करने, सम्भाषण सुनने तथा उनके निकट के वातावरण से जीव का कल्याण होता जाता है किन्तु हमारा तो कल्याण हो नहीं रहा, उसमें अधिकारी के सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा ?

स्वामीजी : आपने जो लिखा है अगर आप उसको literally (शब्दशः) ठीक समझते हैं और आपका कल्याण नहीं हो रहा है, तो इसके दो ही कारण हो सकते हैं। पहला तो यह कि मैं वैसा महापुरुष नहीं हूँ। दूसरा यह कि जैसे दर्शन-स्पर्श करने को लिखा है वैसे आप नहीं करते।

मैंने पढ़ा और सुना है कि भगवान श्रीकृष्ण के समय केवल बारह लोग ही जानते थे कि वे साक्षात् भगवान का अवतार हैं। पर उनके दर्शन तो हजारों लोग करते थे और स्पर्श भी असंख्य लोग करते होगें। पर क्या उन सबका कल्याण हो गया ? दुर्योधन तो उनको magician (जादूगर) मानता था।

मेरे ख्याल में किसी के दर्शन मात्र से उतना प्रभाव नहीं पड़ता जितना उसकी पहचान से। आपके सामने यू. पी. का गवर्नर आ जाये पर आप उसे पहचानते न हों तो आप उठकर उसका अभिनन्दन भी नहीं करेगें।

प्रश्न : तो फिर महापुरुष की पहचान कैसे की जाये ?

स्वामीजी : स्पर्श का अर्थ होता है communication, संवाद। वह दो व्यक्तियों में तब होता है जब वे दोनों एक ही wave length (तरंग दैर्ध्य) तल पर हों। जैसे ऊर्जा एक pole से दूसरे pole की ओर स्वभावतः प्रवाहित होती है (from the pole of high voltage to that of low voltage) ऐसे ही आध्यात्मिक ऊर्जा महापुरुष से समर्पित साधक, सेवक की ओर सहज रूप से प्रवाहित होती रहती है। पर इसका अनुभव साधक-सेवक के भौतिक मन को हो ही, यह जरूरी नहीं है। उसके वास्ते बड़ा शुद्ध और संवेदनशील मन चाहिये।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

कल्याण का अर्थ पूर्ण रुपान्तरण (total spiritual transformation of the personality) मानें तो उसमें तो कई वर्ष लग सकते हैं। विशेषकर भौतिक मन और शरीर के रुपान्तरण में तो बहुत लम्बा समय लगता है।

महात्मा बुद्ध, रमण महर्षि, परमहंस रामकृष्ण आदि की कोटि के महापुरुषों को भी दस या पन्द्रह वर्ष का समय लगा हालांकि उनको 'योग भ्रष्ट' माना जाता है अर्थात्, पूर्व जन्मों में उन्होंने तकरीबन 99 % आध्यात्मिक उपलब्धि पहले ही कर ली थी। उनकी तुलना में हममें साधना, तड़प, मुमुक्षता कितनी तीव्र व गहरी है ?

परमहंस रामकृष्ण के सम्पर्क में हजारों सेवक साधक आये किन्तु जितना विवेकानन्द ले पाये उतना दूसरे नहीं ले पाये। जितना कोई ले सकता है, ले लेता है। जितनी जिसकी झोली है उतना ही तो वह ले पायेगा।

प्रश्न : हम जब से संसार में आये हैं ऊपर उठने के अत्यन्त प्रयत्न करते हैं, आध्यात्मिकता की ओर जाने के, किन्तु पुनः-पुनः प्रकृति के वशीभूत होकर फिर से संसार में रहते हैं। सब कुछ हम समझते हैं कि हम जानते हैं किन्तु फिर भी कुछ नहीं जान पाये।

स्वामीजी : अपने शरीर का पालन-पोषण अथवा अपने बच्चों का पालन-पोषण तो पशु-पक्षी भी किसी प्रकार कर ही लेते हैं। यह एक प्राकृत instinct (अन्तर्प्रेरणा) है।

परन्तु मैं कौन हूँ, यह जगत् क्या है। मैं कहाँ से आया हूँ और कहाँ जाऊँगा। मेरे जीवन का सच्चा उद्देश्य क्या है — इस प्रकार के प्रश्न केवल मनुष्य के मन में ही पैदा होते हैं और मनुष्य इनका समाधान खोजने का प्रयास करे तभी उसका जीवन सार्थक होता है। वरना अधिकांश मनुष्य पशुवत् ही जीते हैं। इन प्रश्नों का समाधान खोजने वाले को जिज्ञासु कहते हैं। Sincere (सच्चा) जिज्ञासु होना भी एक बड़ी बात है। जिज्ञासा जब तीव्र होती है तब जिज्ञासु सत्य की खोज के पथ पर चलता है। पहले तो अपने को और सत्य को जानने की तीव्र और गहन अभीप्सा होनी चाहिये। वह अभीप्सा स्वाध्याय, सत्संग, विचार-मनन और जगत् की घटनाओं को सूक्ष्मता से observe (अवलोकन) करने से जाग्रत होती है। किसी-किसी में पूर्व जन्मों के संस्कारों के कारण बचपन से ही वैसी तीव्र अभीप्सा

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

होती है और वे बचपन से ही सत्य की अनुभूति के पथ को अपना लेते हैं।

जगत् की असारता और नश्वरता तो प्रत्यक्ष है। पर हम उसे देखते हुए भी नहीं देख पाते। जैसे कोई नशे की अवस्था में हो तो वह कुछ का कुछ देखने लगता है। ऐसे ही जीव की अवस्था है। मोह-माया के नशे में वह असार जगत् को ही सब कुछ मानकर जीवन व्यतीत करता है।

सत्य के प्रति हमारी जानकारी second hand (परोक्ष) है। अपने अनुभव के आधार पर मनुष्य जो जानता-समझता है वही समझ उसके जीवन को बदलती है।

हम वस्तुतः जानते हुए भी नहीं जानते और देखते हुए भी नहीं देखते। बुद्ध ने एक बार एक बूढ़े आदमी को देखा तो उनके मन में अनेक प्रश्न पैदा हो गये कि कभी मेरी भी ऐसी दशा होगी कि मैं ठीक तरह से चल भी नहीं पाऊँगा। फिर एक मरे हुए आदमी को देखा तो उनकी चेतना जग गई। उनके अन्दर से अपने शरीर और परिवार का मोह तिरोहित हो गया — यह वास्तविक देखना है। यही वास्तविक जानना है। ज्ञान वही सच्चा और सार्थक होता है जो मनुष्य के जीवन को बदलकर सत्य के मार्ग पर लगा दे। वरना बड़े-बड़े पंडित जो बहुत जानते हैं और दूसरों को भी निरन्तर उपदेश देते हैं वस्तुतः वे भी मोह के वशीभूत होकर जीवन व्यतीत करते हैं। बड़े-बड़े पण्डित भी एक साधारण मनुष्य की तरह मोह-ममता के कारण दुःखी-सुखी होते हैं।

जो जाना है उसका खूब, निरन्तर मनन करें। साथ ही शास्त्र में जो साधन सत्य को जानने के बताए हैं उनका दृढ़ता से पालन करें।

आप पूछते हैं कि जानते हुए भी क्यों नहीं करते। तो इसका उत्तर तो यही है — जगत् का आकर्षण-मोह टूटा नहीं है। इसलिये आप अपनी जानकारी के अनुसार अपना जीवन नहीं बना पा रहे। विवेक और वैराग्य से सत्य की साधना का आरम्भ होता है। केवल कुछ पढ़कर या सुनकर जान लेने से ही जीवन में परिवर्तन नहीं हो जाता।

प्रश्न : गृहस्थ जीवन जीने वाले व्यक्ति किस प्रकार से अपनी ऊर्जा का सदुपयोग करें कि गृहस्थ में रहते हुए उसकी अन्ततोगत्वा ऊर्ध्वगति हो ?

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

स्वामीजी : प्रातः व सायं को नियमपूर्वक प्रभु-स्मरण में बैठें। पारिवारिक व सामाजिक कर्तव्यों को प्रभु-नाते शास्त्रानुसार पूरा करते रहें। मनुष्य में अनन्त संभावनाएँ हैं। वह एक ही समय जीवन में अनेक roles (भूमिकायें) कर सकता है। पिता का role, पुत्र का role, पति का role, दामाद का role आदि जब वह सब एक ही समय में कर सकता है तो इनके साथ-साथ, प्रभु के साथ सम्बन्ध स्थापित कर प्रभु-भक्ति क्यों नहीं कर सकता ?

परमात्मा के स्मरण में तो किसी क्रिया-विशेष की भी अनिवार्यता नहीं है। उसमें परमात्मा के प्रति केवल सजग व aware रहना होता है। ब्रह्म तो अपने अत्यन्त निकट है, अपना वास्तविक स्वरूप है। उसकी उपलब्धि का अर्थ है उसके प्रति सजग होना। अपना लक्ष्य अपने सामने स्पष्ट रहे कि जीवन में परमात्मा को पाना है और उस लक्ष्य के प्रति पूरी commitment (प्रतिबद्धता और लगन) हो तो गृहस्थ-जीवन भी प्रभु-प्राप्ति का साधन बन जाता है।

प्रश्न : प्रभु, धर्म का क्या स्वरूप है ? क्या ईश्वर की पूजा करना या पारिवारिक कर्तव्यों का पालन करना ही धर्म है ?

स्वामीजी : धर्म के अनेक रूप हैं। अपने पारिवारिक व सामाजिक कर्तव्यों को निभाना भी धर्म है। परमात्मा का स्मरण करना, पूजा-पाठ करना भी धर्म है। धर्म के अनेक आयाम हैं। जैसे-जैसे मनुष्य की चेतना का स्तर बदलता है उसका धर्म भी बदलता जाता है।

पिता का धर्म अपना है, पुत्र का धर्म अपना है। गृहस्थ का अलग धर्म है, ब्रह्मचारी का दूसरा धर्म है, संन्यासी का अपना धर्म है। गीता में लिखा है कि जो अपने स्वरूप और आत्मा में सदा संतुष्ट रहता है उसका कोई भी कर्तव्य बाकी नहीं रह जाता।

प्रश्न : ब्रह्मानुभूति क्या है ?

स्वामीजी : ब्रह्मानुभूति को भक्त तुकारामजी ने गूंगे के गुड़ के समान बताया है। गूंगा गुड़ खाकर चाहे कितना भी यत्न करे उसका स्वाद नहीं बता सकता।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

ब्रह्म स्वयं संवेद्य है। मेरे भोजन खाने से आपकी भूख नहीं मिटेगी। आपको स्वयं भोजन खाना पड़ेगा तब आपकी भूख मिटेगी। मैं आपको भोजन खाने की प्रेरणा दे सकता हूँ।

प्रश्न : जब बाहर अपने इष्ट की तस्वीर या मूर्ति देखकर उस पर मन को एकाग्र किया जा सकता है तो ध्यान करके उसके image (रूप) पर मन को एकाग्र करने की क्या जरूरत है ?

स्वामीजी : वैसे भी लोग करते हैं। साधना की अनेक stages (स्तर) हैं। कई लोग अपने इष्ट की मूर्ति या तस्वीर सामने रखकर उसकी पूजा या उसके गुणों का चिन्तन करते हैं। वे आँखें बन्द करके अपने इष्ट का अपने अन्दर image (प्रतिरूप) बनाकर ध्यान नहीं करते। यह सबसे आसान है क्योंकि इस प्रक्रिया में स्थूलता है। स्थूल वस्तु पर मन को टिकाना आसान होता है। परमहंस रामकृष्ण ने इसी तरह साधना आरम्भ की थी। पर जब साधक की साधना की stage (अवस्था) आगे बढ़ती है तो उसमें स्थूल से सूक्ष्म और सूक्ष्म से आगे abstract (निर्पेक्ष) का ध्यान करने की योग्यता भी आ जाती है।

जिस स्तर का साधक होता है वैसी साधना वह करता है। अन्त में absolute (परब्रह्म) का अनुभव करना ही लक्ष्य होता है।

बच्चा जब पढ़ाई शुरू करता है तो उसको क, ख, ग बहुत बड़ा-बड़ा लिखकर बताया जाता है और उसे उसको सीखने की प्रक्रिया बताई जाती है परन्तु जैसे-जैसे वह ऊँची कक्षा में जाता है तो शिक्षा का रूप बदलता जाता है। इसी तरह से साधना का रूप भी आगे बढ़ने पर बदलता जाता है।

साधना में पूजा जो rituals (कर्म-काण्ड) से की जाती है वह साधना का स्थूल रूप है। पूजा से जप सूक्ष्म है। जप से ध्यान सूक्ष्म है। फिर ध्यान की भी कई stages (स्तर) हैं। ध्यान की परिपक्व अवस्था का नाम समाधि है। फिर समाधि की भी कई stages (स्तर) हैं। पूजा से भी अधिक स्थूल क्रिया धार्मिक पुस्तकों का पढ़ना है। पूजा में मन एकाग्र न हो तो धार्मिक पुस्तकें पढ़ें। पुस्तकें पढ़ने से भी अधिक स्थूल क्रिया सेवा है। पढ़ने में मन न लगे तो सेवा करें। सेवा-

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

कार्य भगवान के नाते करें तो उससे भी भगवान के साथ एक सूक्ष्म सम्बन्ध जुड़ता है।

प्रश्न : प्रभु ! मृत्यु के बाद जीव किस प्रकार आगे की यात्रा करता है, इस बारे में बताने की कृपा करें।

स्वामीजी : मृत्यु का अर्थ है स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर का वियोग। मृत्यु होने पर जीव अन्तःकरण सहित उदान प्राण पर सवार होकर अपने कर्मों के अनुसार अन्तःवाहिक सूक्ष्म शरीर धारण करके अपने कर्मों का फल भोगने के लिये आगे की यात्रा पर चला जाता है। उसके जाने के बाद स्थूल शरीर सड़ने-गलने लगता है और नष्ट हो जाता है क्योंकि जीव के आधार पर ही यह शरीर टिका है।

सो जीव ही शरीर को छोड़ता है या दोबारा ग्रहण करता है। जब जीव को ज्ञान होने से उसका जीवभाव नष्ट हो जाता है तो उसके सब कर्म भी नष्ट हो जाते हैं। उसका स्थूल शरीर छूटने पर वह कहीं आता जाता नहीं; वह परमात्मा में लीन हो जाता है जिसे मुक्ति कहते हैं। उसका स्थूल शरीर पाँच महाभूतों में मिल जाता है और उसका सूक्ष्म व कारण शरीर समष्टि सूक्ष्म व कारण शरीरों में मिल जाता हैं। वह सदा के लिये शरीर और जीवभाव से मुक्त हो जाता है।

प्रेत वह बनता है जिसकी इस जगत् के साथ अत्यन्त आसक्ति होती है। वह जीव आसक्ति के कारण आगे की यात्रा पर नहीं जाना चाहता, पर शरीर के भोग समाप्त हो जाने के कारण और शरीर के नष्ट हो जाने के कारण वापस भी नहीं आ सकता। अतः वह जीव प्रेत लोक में, जो पृथ्वी लोक के साथ का लोक है, उस प्रेतलोक में भटकता रहता है।

मृत्यु के बाद जीव के आगे की गति इस बात पर निर्भर नहीं करती कि शरीर किस तरह से छूटता है। उसकी गति तो उसके कर्मों, उसके संस्कारों और उसकी आन्तरिक स्थिति के अनुसार ही होती है।

वैसे सब जीवों को प्रेतलोक से होकर ही आगे जाना पड़ता है। जितना जीव अधिक विकसित और शुद्ध अवस्था में होगा उतने ही कम समय में वह प्रेत लोक को पार कर जाएगा।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

प्रश्न : महाराजजी, कृपा करके हमें कुछ सरल शब्दों में समझायें कि जीव किन-किन उपादानों से बना है।

स्वामीजी : करण का अर्थ होता है tools या instruments (यन्त्र)। अन्तःकरण का अर्थ है अन्दर के साधन या tools जिनके द्वारा मनुष्य जगत् का अनुभव करता, सोचता, समझता, संकल्प करता तथा निर्णय आदि लेता है। दस इन्द्रियां बाह्य करण हैं, सापेक्ष अनुभूति के। मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार इन चारों को अन्तःकरण माना है।

प्राण तो क्रिया-शक्ति का नाम है जिसके द्वारा शरीर के अंग-प्रत्यंग में क्रिया का संचार होता है। पाँच प्रकार के प्राण होते हैं उनका शरीर में रहने का अपना-अपना स्थान है।

अहम प्रत्यगोचर चेतना को जीव कहते हैं। दृष्टान्त के रूप में कहना हो तो जीव को अन्तःकरण में पड़ने वाले आत्मा के प्रतिबिम्ब की संज्ञा दी जाती है।

स्थूल शरीर तो प्रत्यक्ष है। सूक्ष्म शरीर स्थूल आँखों से नहीं दिखता। सूक्ष्म शरीर में अन्तःकरण और प्राण भी आ जाते हैं। जब तक मन है तब तक जीवभाव बना रहता है। मन के नाश हो जाने पर जीवभाव भी नष्ट हो जाता है। स्थूल शरीर के नाश होने पर सूक्ष्म शरीर का नाश नहीं होता। परन्तु सूक्ष्म शरीर के स्थूल शरीर को छोड़ देने पर स्थूल शरीर का नाश हो जाता है। मृत्यु के उपरान्त जीवात्मा अन्तःकरण के साथ, उदान प्राण पर सवार होकर परलोक की यात्रा पर अपने कर्मों के अनुसार चला जाता है।

मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार में तात्विक भेद नहीं है। वह एक ही शक्ति के चार रूप हैं। वही शक्ति इन चारों रूपों में भिन्न-भिन्न कार्य करती है। मन के द्वारा संकल्प-विकल्प करती है, बुद्धि से सोचती है व निर्णय लेती है चित्त के रूप में वह जन्म-जन्मान्तरों के संस्कारों का संग्रह कर उनके टिकने का आधार बनाती है तथा अहंकार, अनात्म पदार्थों और परिस्थितियों से तद्रूप होने का कार्य जीवात्मा के लिए करता है।

जीवात्मा अनेक हैं। आत्मा/परमात्मा एक ही है। जैसे जल भरे दस पात्रों में सूर्य का प्रतिबिम्ब पड़े तो सूर्य के दस प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ेगें परन्तु सूर्य तो एक ही होता है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

प्रश्न : मन स्थिर नहीं है, तो क्या करें ?

स्वामीजी : अपना मन भगवान को दे दीजिये। वे जो ठीक समझेंगे आपके मन से करवा लेंगे।

प्रश्न : कभी-कभी ऐसा होता है कि रात को सोचते हैं कि कल से काम करूँगा, दूसरे दिन हालत बदल जाती है, विचार भी बदल जाते हैं और कुछ कर नहीं पाते।

स्वामीजी : मनुष्य का मन बंटा रहता है, unified (अखण्ड) नहीं है। कभी मन का एक भाग dominate करता है, (अर्थात् प्रबल होता है।) तो कभी दूसरा भाग। मन को unify (अखण्ड) करने का उपाय भगवान का चिन्तन है। भगवान एक हैं। एक का चिन्तन करने से मन unified होता है। जगत् diversity (विविधता) है। diversity (विविधता) का मन चिन्तन करता रहेगा तो मन विभाजित होगा, कई भागों में बंट जायेगा। इसलिए अधिकाधिक भगवान का चिन्तन-स्मरण करें तो मन धीरे-धीरे शुद्ध, स्थिर और unified (अखण्ड, एकीकृत) होने लगेगा।

प्रश्न : मन को शुभ प्रेरणा कैसे मिले ?

स्वामीजी : अच्छी प्रेरणा देने वाली पुस्तकें पढ़े। अच्छे लोगों का संग करें। परमात्मा से रोज प्रार्थना करें कि हमें सद्‌बुद्धि दें। इससे मन को शुद्ध प्रेरणा मिलेगी और शुभ-कर्म करने का बल मिलेगा।

प्रश्न : प्रभु, आप भक्तों को अपने चरण छूने के लिये मनह क्यों करते हैं ?

स्वामीजी : संतों के चरण छूने से भक्त अपनी श्रद्धा को अभिव्यक्त करता है। चरण न छूने से उसकी श्रद्धा कम नहीं हो जाती। श्रद्धा आवश्यक होती है न कि श्रद्धा की अभिव्यक्ति।

अगर किसी संत के चरण न छूने पर भी वह संत सेवक या भक्त पर प्रसन्न है तो चरण छूने की आवश्यकता भी नहीं है। कई लोग तो एक tradition या रस्मी तौर पर ही चरण छूते हैं, यही मानकर, कि संतों के चरण छूने चाहिये।

कोई संत जिस प्रकार प्रसन्न हो उसकी प्रसन्नता के अनुसार ही सेवक या

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

भक्त को व्यवहार करना चाहिये। आखिर चरण छूने पर भी तभी लाभ हो सकता है अगर कोई संत उससे प्रसन्न होकर चरण छूने वाले के प्रति कोई सत्य संकल्प करे। वरना शरीर तो पंचभूतों का बना है; चरणों को हाथ से छूना मानो वैसा होगा जैसे मिट्टी, मिट्टी को छू रही है। मूल्य तो भावना और श्रद्धा से होता है। उसमें चरण छूना अथवा न छूना अत्यावश्यक नहीं है। अवधूत स्वामी नित्यानन्दजी, जिनके परमशिष्य स्वामी मुक्तानन्दजी ने गणेशपुरी में बड़ा विशाल international (अन्तर्राष्ट्रीय) आश्रम बनाया, वे परम अनुभवी व सिद्ध संत माने जाते थे परन्तु किसी को चरण छूने देने की बात तो दूर रही वे लोगों को पत्थर मारते थे। अगर कोई उनके पास आता तो जिसको उनका पत्थर लग जाये वह उसी में अपना कल्याण मानता था। तो महत्व तो श्रद्धा और भावना का होता है न कि किसी बाह्य क्रिया का। वहाँ हरिद्वार में जब मेरा वर्ष में छह महीने मौन नहीं रहता था तो सायं एक घन्टा सत्संग के लिये रखा था। सत्संग जब चल रहा होता था तो भी कई लोग आगे आकर चरण छूते थे जिससे सत्संग का प्रवाह भी रुकता था और श्रोताओं का ध्यान भी बंट जाता था। लोग मनह करने पर भी नहीं मानते थे। तो वहाँ यह sign board (संकेत पट्ट) लगाना पड़ा था। वही sign board यहाँ आने पर भी लग गया है।

प्रश्न : साधु-संत तो ईश्वर के ही समान होते हैं तो संतों के दर्शनों से मन की प्यास कम क्यों नहीं होती ?

स्वामीजी : केवल ईश्वर के दर्शन ही पर्याप्त नहीं होते, ईश्वर की पहचान भी होनी चाहिये। आत्म-शांति तो आत्मा का सहज स्वभाव है। परन्तु जब तक जीव, आत्मा में स्थित नहीं होता तब तक वह शान्ति पास होते हुए भी उसका अनुभव नहीं कर सकता।

सत्पुरुषों के दर्शन से, उनकी प्रेरणा से, आत्मानुभूति के पथ पर चलने की प्रेरणा मिलती है। परन्तु साधक को स्वयं भी पूरी commitment (समर्पण) से सत्य के पथ पर चलने का प्रयास करना पड़ता है। इसीलिये तो जैन धर्म में साधक को श्रमण कहते हैं। साधक की ओर से पूरा प्रयास (साधक आत्मानुभव को जीवन-मरण का प्रश्न समझकर प्रयास करे) और ईश्वर-सतगुरु की कृपा का

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

जब मिलन होता है, तब साधन सफल होता है। वस्तुतः श्रमण के मार्ग में पुरुषार्थ की प्रधानता रहती है, और ब्राह्मण के मार्ग में समर्पण की प्रधानता रहती है।

किसी अपने स्वयं के दोष के कारण से ही तो अनुभव नहीं होता। मनुष्य के अवचेतन व अचेतन में अनेक दोष होते हैं, जो साधक को दिखाई भी नहीं देते। अपने पुरुषार्थ से और सत्पुरुषों की कृपा से वे दोष धीरे-धीरे मिटते हैं।

प्रश्न : साधक को आत्मा का अनुभव कैसे होता है ? और उससे साधक में क्या परिवर्तन होते हैं ?

स्वामीजी : अनात्म की आसक्ति, मोह छोड़ दें। मन जब अनात्म पदार्थों से preoccupied (संलग्न) नहीं होता, परन्तु सजग होता है, तो आत्म-साक्षात्कार होता है। परन्तु वह अनुभव एक flash (झलक) की तरह होता है। आता और चला जाता है। जब वह अनुभव बार-बार होता रहता है तो कालांतर में settle (स्थिर) हो जाता है। तब इन्द्रियों और मन से सक्रिय रहते हुए भी उस अनुभव का बोध बना रहता है। इसे उपलब्धि कह सकते हैं। self-experience — आत्म-साक्षात्कार, self-realization — आत्म-उपलब्धि। प्रत्येक अनुभव मनुष्य के मन पर एक छाप छोड़ जाता है। प्रत्येक अनुभव का मनुष्य के व्यक्तित्व पर एक impact (प्रभाव) होता है।

आत्म-अनुभव जब बार-बार होता है तो वह अवचेतन और अचेतन मन में छिपे संस्कारों को मिटाने का काम करता है। जब मन पूरी तरह शुद्ध व unconditioned (संस्कारों के प्रभाव से मुक्त) हो जाता है तब आत्मानुभव settle (स्थिर) हो जाता है। अनात्मा के अनुभव चित्त पर संस्कार छोड़ते हैं। आत्मा का अनुभव संस्कारों को मिटाता है। आत्मा के अनुभव का impact (प्रभाव) तो बहुत तीव्र होता है। जैसे प्रकाश होने से अंधकार तिरोहित होता है, ऐसे ही आत्मानुभव से होता है।

आत्मानुभव settle (स्थिर) होने पर बाह्य वातावरण का प्रभाव चित्त पर न के बराबर होता है। परन्तु साधन काल में तो साधन अनुकूल वातावरण ही लाभकारी होता है। जिसको तैरना पूरी तरह आया नहीं वह सागर में कूद पड़े तो उसके डूबने की संभावना ही अधिक होती है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

प्रश्न : प्रभु ! भजन-साधन में बैठने पर भी न तो रस आता है न प्रगति ही होती है। ऐसा क्यों ?

स्वामीजी : सत्य के साक्षात्कार की गहरी, तीव्र और निरन्तर अभीप्सा ही साधना को सफल बनाती है जैसे भूख होने पर ही भोजन में रस आता है ऐसे ही तीव्र अभीप्सा होने पर साधना तीव्र गति से आगे बढ़ती है।

विवेक, विचार और वैराग्य से सत्य की अभीप्सा पुष्ट होती है। जगत् की क्षण-भंगुरता और असारता पर भी विचार करते रहना चाहिये। जो दिखाई देता है नाम-रूप, उसका मोह, निरन्तर वैराग्य धारण करने से ही छूटता है।

प्रश्न : महाराजजी, गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को अनेक-अनेक सिद्धान्तों का उपदेश क्यों दिया ? क्या सत्य एक नहीं अनेक हैं ?

स्वामीजी : अर्जुन मोह के कारण से अपने कर्तव्य का पालन करने से घबरा रहा था। उसे लगता था कि युद्ध करने से हत्या होगी। कई लोग मारे जायेगें। कई प्रकार के तर्क देकर वह लड़ना नहीं चाहता था। श्रीकृष्ण ने उसे तर्क से, भक्ति के सिद्धान्त बताकर समझाया कि भक्त तो कर्ता बनता ही नहीं, वह तो भगवान की दैवी शक्ति का यन्त्र बन जाता है, उसकी अपनी self-will (स्वयं की इच्छा) रहती ही नहीं। फिर ज्ञान की दृष्टि से भी समझाया कि जीव का वास्तविक स्वरूप अकर्ता-अभोक्ता और द्रष्टा मात्र है। कर्म तो सब प्रकृति द्वारा होते हैं। फिर योगी की स्थिति भी बताई कि योगी किस प्रकार निष्काम कर्म करता है और कर्म के फल क्या होंगे, उस पर वह ध्यान नहीं देता। सब प्रकार समझाने पर भी अर्जुन इतना सम्मोहित हो चुका था कि वह न्याय के लिए लड़ने को तैयार ही नहीं होता था। अर्जुन की श्रीकृष्ण में श्रद्धा भी थी पर सखा भाव भी था। श्रीकृष्ण ने उसे convince करने के लिये (विश्वास दिलाने के लिये) अपना विराट रूप भी दिखाया। अन्त में श्रीकृष्ण ने कहा कि तुम मेरी शरण ग्रहण करके जो मैं कहता हूँ वह करो, तुम्हें जो पुण्य-पाप लगेगा उस सबकी जिम्मेदारी मैं अपने ऊपर लेता हूँ। पहले भी कई स्थानों पर श्रीकृष्ण ने स्पष्ट संकेत किया कि वे स्वयं भगवान हैं। कई श्लोकों में ईश्वर की जगह उन्होंने 'मैं' शब्द का प्रयोग किया है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

अन्त में अर्जुन convince (विश्वस्त) हुआ तो उसने युद्ध करना स्वीकार किया। गीता में जहाँ कहीं विरोधाभास दिखाई देता है उसका कारण यह है कि परमात्मा के कई स्वरूप हैं जो दिखने में विरोधी लगते हैं। पर विरोधी हैं नहीं। वाणी की असमर्थता के कारण 'अनन्त' का वर्णन करने के लिये विरोधी शब्दों का प्रयोग करना पड़ता है। अगर वैसा न करें तो परमात्मा की अनन्तता सीमित तथा दोषपूर्ण प्रतीत होती है।

उपनिषदों में भी ऐसा है। गीता के कई श्लोक आत्मा के सम्बन्ध में अक्षरशः वैसे ही हैं जैसे उपनिषदों में हैं। उपनिषदों में भी वैसा ही विरोधाभास प्रतीत होता है जैसे गीता में।

कहीं निर्गुण का वर्णन है तो कहीं सगुण का वर्णन है। कहीं कहा है कि परमात्मा सब कुछ करता है; कहीं कहा है कि परमात्मा कुछ भी नहीं करता।

वेदान्त की दृष्टि से पूर्ण को अद्वैत माना जाता है, कि परमात्मा के अतिरिक्त कुछ है ही नहीं। अगर यह कहें कि परमात्मा निगुर्ण है तो प्रश्न होगा कि अगर परमात्मा निर्गुण है तो सगुण क्या है। सगुण को दूसरा मानोगे तो अद्वैत नहीं रहेगा। अगर कहो कि परमात्मा निराकार है तो जो आकार दिखाई देता है वह किसका है ? या यह कहें कि (जगत्) आकार दिखता तो है पर है नहीं, केवल निराकार परमात्मा ही सत्य है। या कहें कि परमात्मा निराकार भी है—और साकार भी है। पर ऐसा कहने से logically (तर्क की दृष्टि से) विरोध प्रतीत होता है। इसलिये परमात्मा के सम्बन्ध में 'नेति-नेति' भी कहा है, जिसका अर्थ है यह भी नहीं, यह भी नहीं, अर्थात् परमात्मा वाणी और तर्क का विषय ही नहीं है।

प्रश्न : क्या जीव को अपने पूर्वजन्म की स्मृति रहती है ? क्या दिवंगत आत्माओं के लिये पूजा-पाठ करने से उन्हें सहायता मिल सकती है ?

स्वामीजी : सामान्य नियम यह है कि शरीर छूटने पर नया जन्म मिलने पर जीव को अपने पूर्वजन्म की स्मृति नहीं रहती। उसका नाम बदल जाता है, शरीर बदल जाता है और personality (व्यक्तित्व) भी बदल जाती है। वह यदि दूसरे रूप में आपके सामने भी हो तो न आप उसे पहचानेंगे और न ही वह आपको पहचानेगा।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पर शरीर छूटने पर जीव को तुरन्त नया जन्म नहीं मिल जाता। उसे अन्तःवाहिक शरीर धारण करके अपने कर्मों के अनुसार कई लोकों से गुजरना पड़ता है। उस समय उसके निकट के सम्बन्धी यदि उसकी आगे की सुखद यात्रा के लिये प्रार्थना करें या शास्त्रानुसार कर्म-काण्ड उसके निमित्त करें तो दिवंगत आत्मा को उससे लाभ होता है। परन्तु उसे यह बोध नहीं होता कि आप उसके लिये कुछ कर रहे हैं। उसकी चेतना का स्तर ही बदल जाता है। जैसे कोई जाग्रत अवस्था से स्वप्न अवस्था में जाए तो उसकी चेतना का स्तर ही बदल जाता है। जाग्रत में तो राजा है, स्वप्न में वह अपने आपको भिखारी भी महसूस कर सकता है। उसके पास घर में चाहे कितने ही भोज्य पदार्थ क्यों न पड़े हों परन्तु स्वप्न में वह अपने आपको भूखा, भिखारी भी प्रतीत कर सकता है।

शरीर छूटने के बाद और नया जन्म लेने पर जीव की चेतना का स्तर बदल जाता है, उसका शरीर बदल जाता है, उसका नाम बदल जाता है। उसका नया जीवन आरम्भ होता है तो भी पूर्व जन्मों के कर्मों के संस्कार उसके नये जन्म को प्रभावित करते हैं।

प्रश्न : क्या दिवंगत आत्माओं से सम्पर्क किया जा सकता है ?

स्वामीजी : यह बड़ा complex (जटिल) मामला है। ऐसे मामलों में एक प्रतिशत बातें ही ठीक होती हैं। अधिक तो मनुष्य का अवचेतन मन ही उसे संदेश देता है। अवचेतन मन में बड़ी शक्ति है। तो भी वे संदेश गलत भी हो सकते हैं।

ऐसी विद्या अवश्य है जिससे दिवंगत जीवात्माओं से सम्पर्क किया जा सकता है। परन्तु जो जीव मुक्त हो गया, वह तो जैसे तरंग सागर में मिलकर सागर हो गयी। उससे सम्पर्क नहीं हो सकता। अगर उसके संस्कारों की छाप कहीं आकाश में अभी भी विद्यमान हो तो उन संस्कारों को अवचेतन मन पकड़ सकता है। परन्तु जो जीव मुक्त हो गया उससे सम्पर्क संभव नहीं। कुछ संत स्वेच्छा से मोक्ष को स्वीकार नहीं करते परन्तु जीवों की सहायता के लिए सूक्ष्म शरीर धारण किये रहते हैं। ऐसे संतों से, जो भौतिक शरीर छोड़ गये हैं, भी सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है। वे स्वयं ही सच्चे साधकों से सूक्ष्म सम्पर्क बनाकर उनकी सहायता करने के लिए तत्पर रहते हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

प्रश्न : ध्यान-साधना करते समय हमें किसका ध्यान करना चाहिए ? भगवान के किसी स्वरूप विशेष का अथवा उनके नाम जप का या किसी महावाक्य का मनन करना चाहिए जैसे तत्वमसि, अहम् ब्रह्मास्मि इत्यादि या किसी abstract (निर्पेक्ष) विषय का ध्यान करना चाहिए जो परमात्मा से सम्बन्धित हो ?

स्वामीजी : ये सभी साधन ठीक और शास्त्र सम्मत हैं। आप ध्यान भी कर सकते हैं, आत्म-चिन्तन भी कर सकते हैं, जाप भी कर सकते हैं, प्रार्थना भी कर सकते हैं, स्वाध्याय भी कर सकते हैं। इन साधनों में आपस में कोई विरोध नहीं है, अपितु सब एक दूसरे के सहायक हैं। आप थोड़ा-थोड़ा समय सभी को दे सकते हैं। ये सभी साधन लाभकारी हैं।

सामान्यतया स्थूल से आरम्भ करके सूक्ष्म और फिर abstract (सूक्ष्मतर) की ओर बढ़ा जाता है। यह साधक की योग्यता, सामर्थ्य और अधिकार पर निर्भर करता है कि वह किस साधन को मुख्य रूप से अपनाता है।

मन धीरे-धीरे लम्बे अभ्यास के बाद मनन-ध्यान में टिकने लगता है। उसके लिए साधक को निरन्तर और बड़े धैर्य से नियमपूर्वक साधन करना पड़ता है।

विचार और विवेक भी बड़े आवश्यक हैं। जगत् की अस्थिरता और नश्वरता का मनन करने से मन की गति slow-down (धीमी) होने लगती है।

आपने देखा होगा कि जब कोई मरता है और उसके दाह-संस्कार के समय श्मशान में जाते हैं तो मन की क्या स्थिति होती है। उस थोड़े समय में इस अस्थिर जीवन-जगत् का भाव मन में बना रहता है। मन की दशा कुछ समय के लिये बदल जाती है। जीवन स्वप्नवत लगने लगता है।

प्रश्न : क्या परमात्मा का कोई प्रमाण भी है ?

स्वामीजी : अवश्य ही है। प्रमाण मुख्यतः तीन प्रकार के होते हैं—

1. प्रत्यक्ष प्रमाण, 2. अनुमान प्रमाण और 3. शब्द प्रमाण।

1. प्रत्यक्ष प्रमाण—परमात्मा का अपरोक्ष अनुभव समाधि में होता है। ऋषियों ने किया, आप भी चाहें तो कर सकते हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

2. अनुमान प्रमाण — जगत् की रचना, नियमों और मनुष्य की शक्ति के बाहर तथा ऊपर से घटनाओं के घटित होने से एक अनन्त शक्तिरूप परमात्मा के अस्तित्व का अनुमान होता है, इसे अनुमान प्रमाण कहते हैं।

3. शब्द प्रमाण — किसी वस्तु, स्थान अथवा तत्व को किसी दूसरे ने देखा है या अनुभव किया है पर आपने नहीं किया तो उसके शब्दों को ही प्रमाण मानना पड़ेगा।

परमात्मा का सबसे बड़ा प्रमाण तो संतों के बताए मार्ग पर चलकर स्वयं परमात्मा के दर्शन करना ही है। परमात्मा के अपरोक्ष अनुभव और दर्शन से जीव को शाश्वत शान्ति मिलती है और उसका जीवन कृतकृत्य हो जाता है। परमात्मा के दर्शन से ही मनुष्य का जीवन सार्थक बनता है।

मृत्यु और जीवन दोनों परमात्मा के रूप हैं और परमात्मा इन दोनों से परे भी है। उपनिषद में परमात्मा के सम्बन्ध में कहा है — 'वह काल का भी काल है।'

अर्थात् परमात्मा काल (मृत्यु) की भी मृत्यु है। केवल परमात्मा के बोध से ही जीव मृत्यु को जीत सकता है अथवा जन्म-मृत्यु के vicious circle (दुष्चक्र) से बाहर जा सकता है।

मृत्यु और परमात्मा दोनों को नहीं भूलना चाहिये। मृत्यु का स्मरण बना रहेगा तो किसी में आसक्ति नहीं होगी, राग नहीं होगा; मोह, लोभ नहीं होंगे। मन में वैराग्य की भावना बनी रहेगी। जीवन स्वप्नवत लगेगा। इससे मन शुद्ध होगा तो परमात्मा के दर्शन की योग्यता आयेगी।

हिन्दू धर्म में तो शंकर भगवान (संहारकर्ता) को भी परमात्मा का रूप माना है। परमात्मा सबको जीवन देता है। और वही जीवन वापस भी ले लेता है। जीवन और मृत्यु दोनों परमात्मा के हाथ में हैं। मृत्यु को याद रखने से भी मनुष्य के जीवन में रूपान्तरण होता है, यह सत्य है।

प्रश्न : गृहस्थ में शान्ति कैसे मिले ?

स्वामीजी : गृहस्थ में तो ऐसे बड़े-बड़े ऋषि हुए हैं जिनकी वेदों में वाणी को पढ़कर लोगों को शान्ति मिलती है। सद्गृहस्थ बनें तो मन शान्त रहेगा। सब

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

वस्तुओं, सम्बन्धों को भगवान के नाते स्वीकार करें। अपना कुछ न मानें। अशान्ति का कारण ममता-मोह तथा झूठा अहं है। इनका त्याग करने से ही शान्ति मिलती है।

गीता में भगवान ने कहा—

'निर्ममो निरहंकारः सा शान्तिमधिगच्छति'

अर्थात् जिसकी ममता और अहंकार छूट जाता है केवल उसी को शान्ति मिलती है चाहे वह गृहस्थ हो या साधु हो। आप अपनी अशान्ति का कारण विचार से देखें और उस कारण को दूर करें।

परमात्मा का भजन-स्मरण करने से मनुष्य को विवेक तथा शक्ति/बल प्राप्त होते हैं जिससे उसका अज्ञान व मोह-ममता छूट जाती है। वह संसार में रहता है पर सांसारिकता उसमें नहीं रहती। वह सब कुछ भगवान के नाते, भगवान के स्मरण में डूबा हुआ ही करता है। परमात्मा का विस्मरण ही अशान्ति का मुख्य कारण है।

प्रश्न : आत्मा व शरीर का सम्बन्ध क्या है ? शरीर कार्य करता है, जल जाता है मगर आत्मा को मोक्ष मिलता है, उसका कारण क्या है ?

स्वामीजी : मनुष्य शरीर, मन और आत्मा से बना है। मन और आत्मा के प्रतीयमान (apparent) तादात्म्य से जीव का आविर्भाव होता है। यह जीव ही कर्त्ता-भोक्ता है। न शरीर कुछ करता है और न ही शुद्ध आत्मा कर्त्ता है। जीव ही कर्त्ता-भोक्ता है और जीव को ही दुःख-सुख होते हैं।

मन का जब नाश हो जाता है या मन के साथ जब आत्मा का प्रतीयमान (apparent) तादात्म्य छूट जाता है तो जीव-भाव समाप्त हो जाता है। ऐसे मनुष्य का शरीर छूटने पर उसे दोबारा जन्म नहीं लेना पड़ता। मन की वासनाओं के कारण से जीव को बार-बार जन्म लेना पड़ता है।

प्रश्न : प्रभु ! भगवद् अनुभव के बाद लौकिक व्यवहार किस प्रकार सम्भव होता है ?

स्वामीजी : अनुभव तो ध्यान की अवस्था में होता है। पर उसका प्रभाव ध्यान से बाहर आने पर अनुभव कर्त्ता की दृष्टि पर बड़ा गहरा होता है। जैसे

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

बाहर सब कुछ बदल गया हो। सब कुछ जीवन्त प्रतीत होता है और आनन्द की धारा अपने अन्दर व बाहर भी, सब नाम-रूप के पीछे बहती अनुभव होती है।

जैसे आप समझें कि actor (अभिनेता) चाहे अपना part (अभिनय) कितना भी अच्छा करे पर अपनी वास्तविकता को नहीं भूल पाता। जैसे सागर में तरगें केवल सतह पर होती हैं ऐसे ही व्यवहार चेतना के बाह्य तल पर चलता है। अन्दर गहराई में वही आनन्द चलता है।

प्रश्न : कृपया ॐ शब्द की व्याख्या बतलाएं।

स्वामीजी : ॐ शब्द में अ, उ, म, अर्ध चन्द्रिका और बिन्दी होते हैं। अ, उ और म — ये तीन समष्टि के स्तर (universal level) पर तथा व्यष्टि (individual) के स्तर पर स्थूल, सूक्ष्म और कारण रूप तथा इनमें ब्रह्म की स्थिति के प्रतीक हैं। समष्टि के तल पर परमात्मा के तीनों स्वरूपों को विराट, हिरण्यगर्भ और अव्याकृत कहा गया है और व्यष्टि के तल पर ब्रह्म के तीनों स्वरूपों को जीव, तेजस और प्राज्ञ कहा गया है।

अर्ध चन्द्रिका माया का तथा बिन्दु निर्गुण, निराकार ब्रह्म का प्रतीक है।

ॐ परमात्मा के सभी स्वरूपों — निर्गुण, सगुण, निराकार, साकार, निर्गुण-निराकार, सगुण-निराकार, सगुण-साकार, — सभी रूपों का प्रतीक है।

एक बार हम बम्बई गये तो उसके निकट लोनावाला भी गये थे। वहाँ एक कैवल्य धाम योग आश्रम है। वहाँ योग पर वैज्ञानिक शोध भी होती है। वहाँ एक सरदारजी ने हमें अपनी प्रयोगशाला दिखायी थी और यह बताया था यहाँ प्रयोग करके ज्ञात हुआ है कि सभी शब्द वातावरण में क्षोभ (disturbance) उत्पन्न करते हैं लेकिन ओंकार शब्द मन को शान्त करता है।

परमात्मा से जब जगत् प्रकट होता है तो जो शब्द होता है वह ॐ की ध्वनि के समान होता है।

आप बोलकर देखेंगे तो पायेंगे कि ॐ शब्द के भीतर सभी भाषाओं के सारे स्वर और व्यंजन समाहित हैं।

ॐ शब्द परमात्मा का नाम है। वैसे इसका कोई अर्थ नहीं है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

प्रश्न : जो जीवात्मा एक बार मुक्त हो गयी वह भक्तों के आवाह्न पर उन्हें दर्शन किस प्रकार देती है ? क्योंकि देहत्याग के बाद तो मुक्तात्मा जैसे तरंग जल में लीन हो गयी हो तो फिर वह किस प्रकार पुनः जगत् में आती है ?

स्वामीजी : कारक आत्माएं (अर्थात् ऐसी शक्तिशाली दिवंगत आत्माएं जो कार्य-कारण सिद्धान्त के अन्तर्गत वशीभूत होकर नहीं बल्कि स्वेच्छा से जगत् में आती हैं।) पुनः-पुनः जगत् में विकास की गति को तेज करने के लिये आती रहती हैं। जैसे स्वामी विवेकानन्द।

फिर जब किसी संत को अपने गुरुदेव की कृपा से अध्यात्म की उपलब्धि होती है तो जगत् की वासना क्षीण होने पर भी इस अनुग्रह के भाव के कारण उनके मन में जगत् में सत्य के जिज्ञासुओं की सत्य के मार्ग पर सहायता करने का दिव्य संकल्प बना रहता है।

वह सत्संकल्प ही उनको जगत् में लाता है या वे स्वेच्छा से किसी भी रूप में प्रकट होकर जिज्ञासुओं का पथ-प्रदर्शन करते हैं।

एक अन्य उत्तर इस प्रश्न का यह भी हो सकता है। सब घटनाओं को बुद्धि द्वारा समझा नहीं जा सकता। आप ऐसी घटनाओं को चमत्कार कह सकते हैं। जो घटना कार्य-कारण नियम से परे घटती है उसी को चमत्कार कहते हैं।

स्वामी विवेकानन्द को एक बार ऐसा experience (दर्शन) हुआ कि उनका कमरा प्रकाश से भर गया और वहाँ बुद्ध प्रकट हुए। बुद्ध के हाथ में भिक्षा-पात्र था। अब यदि बुद्ध निर्वाण को प्राप्त हो गये थे तो दोबारा विवेकानन्दजी को उन्होंने दर्शन कैसे दिये ?

मुझे जब रमण महर्षि के दर्शन हुए तो उनका शरीर दो-तीन वर्ष पहले ही छूट गया था। मैंने न तो उनके बारे में उस समय कभी कुछ पढ़ा था और न ही सुना था। तो क्या रमण मोक्ष को उपलब्ध नहीं थे। मैंने यही प्रश्न कई महान् संतों से किये थे। सबने अलग-अलग उत्तर दिये। उनमें से एक संत ने यह कहा था कि जैसे शब्द का नाश नहीं होता, ऐसे ही कोई आकृति भी जब एक बार जगत् में प्रकट हो जाती है तो महाप्रलय तक उसका नाश नहीं होता। आज का विज्ञान भी इसे स्वीकार कर रहा है। वैज्ञानिक प्रयास कर रहे हैं कि जीसस ने जो दो हजार वर्ष पहले बोला वह अभी भी universal mind (समष्टि चित्त) में

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

विद्यमान है, उसे फिर सुन सकें। महाभारत को परदे पर पुनः वैसा का वैसा देखा जा सकता है ऐसा आधुनिक विज्ञान का विश्वास है।

प्रश्न : मुझे अपनी आध्यात्मिक यात्रा की सफलता पर बहुत संदेह रहता है। मुझमें इतनी दुर्बलताएं हैं तथा यह मार्ग इतना कठिन है कि हमेशा सफलता पर संदेह बना रहता है।

स्वामीजी : जीवन को दांव पर लगाना पड़ता है। भगवद्मार्ग पर नुकसान तो कुछ भी नहीं है। सांसारिक सफलता—जिसको लोग सांसारिक सफलता कहते हैं—वह तो अन्ततोगत्वा विफलता ही बन जाती है।

भय की क्या बात है ? योग्यता तो अर्जित करनी पड़ती है सफलता और विफलता की चिन्ता छोड़कर अपनी ओर से सद्प्रयास करना ही अपना कर्तव्य होता है।

भगवद् प्राप्ति के मार्ग में असफल व्यक्ति को योगभ्रष्ट कहते हैं। योगभ्रष्ट को भी बड़ी ऊँची पदवी दी गयी है। जहाँ पर वह इस जन्म में छोड़ता है, वहाँ से अगले जन्म में आगे के लिये अपनी आध्यात्मिक यात्रा शुरु करता है।

प्रश्न : क्या जीवनमुक्त संत और अवतार उनकी मृत्यु के बाद भी अपना विशिष्ट व्यक्तित्व बनाये रखते हैं ?

स्वामीजी : हाँ, वे अगर चाहें तो रख सकते हैं—तब तक, जब तक कि ब्रह्मा (सृष्टिकर्ता) का विलय परब्रह्म में नहीं हो जाता।

प्रश्न : साधना के पथ पर अक्सर हताशा घेर लेती है। मन टूट सा जाता है। क्या करें ?

स्वामीजी : भगवदानुभूति का मार्ग बड़े धैर्य का मार्ग है। समुद्र को सुखाने जैसा कठिन कार्य है। बुद्ध जैसे व्यक्ति को बीस-पच्चीस वर्ष लगे मन को वश में करने में ।

प्रश्न : हिन्दू लोग इतने सारे देवी-देवताओं की मूर्तियों की पूजा करते हैं, पर भगवान तो एक हैं। कुछ समझ नहीं आता, कृपया समाधान करें।

स्वामीजी : किसी भी नश्वर तथा सीमित पदार्थ-परिस्थिति या उद्देश्य की

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

प्राप्ति के लिये कोई भी विधि या अभ्यास या साधन मूर्तिपूजा की श्रेणी में आयेगा। इसके विपरीत यदि अनन्त भगवान की प्राप्ति के लिये नाम-रूप-मूर्ति आदि के प्रतीकों का सहारा लिया जाये तो उसे मूर्तिपूजा नहीं कहा जाना चाहिये। वस्तुतः उसे प्रतीक-उपासना कहना अधिक ठीक है।

मूर्तिपूजा अपने आपमें गलत नहीं है यदि उसके माध्यम से साधक परमात्मा का स्मरण करता है तो।

प्रश्न : क्या जाप करते-करते भी समाधि लग सकती है ?

स्वामीजी : जाप तो सभी मार्गों में किया जा सकता है। परन्तु समाधि में पहुँचने से पहले ही जाप बन्द हो जाता है। वाचक जाप तो बहुत पहले ही बन्द हो जाता है। बाद में मानसिक जाप होता रहता है। जिसमें जाप करने वाला और शब्द दोनों बने रहते हैं। उसके बाद शब्द भी बन्द हो जाता है। केवल उसका भाव ही बना रहता है।

प्रश्न : ऐसा सुना है कि यदि कोई साधक तीन घण्टे लगातार स्थिरता से एक ही आसन पर बैठ जाये तो उसकी समाधि लगने लग जाती है, क्या यह सत्य है ?

स्वामीजी : समाधि कई प्रकार की होती है। किन्तु मुख्य रूप से दो प्रकार की होती है।

1. सविकल्प
2. निर्विकल्प

सविकल्प समाधि में ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय अथवा ध्याता, ध्यान और ध्येय की त्रिपुटी बनी रहती है। परन्तु निर्विकल्प समाधि में ध्याता, ध्यान और ध्येय एक हो जाते हैं। निर्विकल्प समाधि को उच्चतम समाधि माना है। समाधि का सम्बन्ध मन से है। आसन की स्थिरता तो मन को स्थिर करने में सहायक होती है।

ऐसा कोई नियम नहीं है कि तीन घण्टे एक आसन पर बैठने से समाधि लग जाती हो। वैसे ढाई घण्टे तक निश्चल और बिना किसी कष्ट की प्रतीति के एक ही आसन पर बैठे तो उसे हठ-योग में आसन की सिद्धि माना गया है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

एक भाव समाधि होती है जिसका अर्थ है कि कोई किसी एक भाव में इतना डूब जाये कि उस काल में उसे बाह्य जगत् का बोध ही न रहे। परन्तु भाव कई प्रकार के हो सकते हैं

समाधि का सीधा अर्थ तो होता है पूर्ण समाधान हो जाना, अथवा कोई भी शंका-सन्देह न रहना। वेदान्त में संशय-विपर्यय रहित ब्रह्म आत्मैक्य के ज्ञान होने को ही समाधि मानते हैं। परन्तु यह ज्ञान निर्विकल्प समाधि होने पर ही होता है।

परोक्ष ज्ञान—जो पढ़-सुनकर हो।

अपरोक्ष ज्ञान—जो पढ़ा सुना है उसका स्वयं साधन-अभ्यास द्वारा अनुभव करने से होता है। जैसे आपने हरिद्वार के विषय में पुस्तकों में पढ़ा हो या किसी से सुना हो तो वह हरिद्वार का परोक्ष ज्ञान हुआ। जब कोई स्वयं हरिद्वार जाकर उसे प्रत्यक्ष रूप से देख ले तो वह हरिद्वार का अपरोक्ष ज्ञान होगा।

प्रश्न : गुरुदेव आपने बताया कि ढाई घण्टे तक बिना किसी कष्ट की प्रतीति के निश्चल किसी एक आसन पर बैठने को हठ-योग में आसन की सिद्धि कहते हैं। आसन सिद्धि आध्यात्मिक पथ पर किस प्रकार से सहायक होती है?

स्वामीजी : जब कोई अधिक समय तक किसी आसन पर बैठेगा तो ध्यान-भजन अधिक समय तक कर सकेगा। बार-बार अभ्यास करते-करते ध्यान परिपक्व हो जाता है और ध्यान की परिपक्वता के लिये आसन बहुत उपयोगी होता है।

पाँच यम, पाँच नियम, आसन, प्रत्याहार और प्राणायाम इनका पालन करने से धारणा/ध्यान/समाधि में जाने की साधक की अच्छी भूमिका बनती है।

उपरोक्त में ब्रह्मचर्य और प्राणायाम भी मुख्य हैं उस साधक के लिये यदि कोई समाधि में जाना चाहे।

प्रश्न : मुझे क्रोध बहुत आता है। ऐसा क्यों?

स्वामीजी : जो मनुष्य स्वयं को बड़ा मानता है, जैसे बुद्धि की दृष्टि से, धन सम्पत्ति की सम्पन्नता से अथवा विद्या आदि की दृष्टि से—उसको क्रोध अधिक आता है। क्योंकि जब कोई उसके प्रतिकूल व्यवहार करता है अथवा

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

उसकी इच्छा के विपरीत कार्य करता है तो उसके अभिमान अथवा अहंकार को चोट पहुँचती है और उसे क्रोध आ जाता है। 'क्रोधाभवति सम्मोहः' अर्थात् क्रोध में व्यक्ति सम्मोहित हो जाता है उस समय उसकी विवेक शक्ति ठीक कार्य नहीं करती, इस कारण उस अवस्था (क्रोध में) में व्यक्ति जो निर्णय लेता है वह प्रायः गलत ही होता है। यही बात काम, लोभ, मोह और भय आदि के आवेशों के साथ भी होती है।

प्रश्न : यदि कोई व्यक्ति realised (भगवद् उपलब्ध) होने का दावा करके अलग-अलग तरह की बातें कहे तो—

स्वामीजी : कोई realised है कि नहीं इसे वही जाने। आपको अपनी साधना में उसकी कही बात उपयोगी लगती है तो आप उसे ग्रहण करें।

आप उसकी अच्छी बातों पर नजर रखेंगे तो वही आपके जीवन में विकास के उपयोग में आयेंगी। दोषों का स्मरण करने से चित्त में व्यर्थ की प्रतिक्रिया होगी और आपका मन भजन में न लगकर उन्हीं दोषों की आलोचना में लगा रहेगा।

प्रश्न : Should one, follow the truth uncompromisingly ?

(क्या व्यक्ति को जीवन में सत्य का बिना कोई भी समझौता किये पूर्णतः पालन करना चाहिये ?)

स्वामीजी : जहाँ तक सत्य पर चलने के वास्ते uncompromising attitude की बात है—समाज ने ऐसे नियम और law (नियम) बना रखे हैं—वकीलों का बनाया हुआ संविधान—जो स्वयं उसके अनुसार नहीं चलते। मैं समझता हूँ कि अगर कभी कोई सामाजिक law साधक को आध्यात्मिक साधना के विकास अथवा सुविधा के वास्ते तोड़ना या escape करना पड़े तो उसमें कोई हर्ज नहीं। आखिर वह law मनुष्य का बनाया हुआ है और अपने बनाये हुए law अपनी सुविधा के लिये बदलते भी तो रहते हैं।

सामाजिक सत्य और ईश्वरीय सत्य का भेद जहाँ न हो वहाँ सत्य के प्रति uncompromising attitude होना चाहिये।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

प्रश्न : काम भावना तो प्राणी मात्र में प्रकृति ने दी है। यह तो बहुत सहज प्रतीत होती है। फिर अध्यात्म में इसके निषेध पर या इसके नियंत्रण पर इतना बल क्यों दिया जाता है ?

स्वामीजी : Sex (कामभाव) मनुष्य के लिये सहज नहीं है यदि ऐसा होता तो मनुष्य को sex से कभी frustration या ऊब नहीं होती। पशुओं के वास्ते sex सहज है। sex पाप नहीं है पर मनुष्य के अन्दर जिन आन्तरिक सुखों को पाने की सम्भावना है वह उनमें सबसे निम्न कोटि का है। पशु जीवन में sex बिना किन्हीं प्रतिबन्धों के उपलब्ध होता है। क्योंकि मनुष्य अभी अपनी मानसिक विकास की चरम सीमा को प्राप्त नहीं कर सका है। इस वास्ते उसमें sex का आकर्षण अभी तक बना है। जैसे युवावस्था आरम्भ होती है तो भी उसमें किशोर अवस्था की tendencies (प्रवृत्तियां) शेष रह जाती है जो युवावस्था की परिपक्वता में ही दूर होती है।

प्रश्न : कभी-कभी किसी पर क्रोध आ जाता है।

स्वामीजी : सोचो ! क्या हम पूर्ण हैं ? परन्तु हम दूसरों से expect (आशा) करते हैं कि उनका व्यवहार हर तरह से पूर्ण हो। दूसरे के किसी दोष पर क्रोध आये तो सोचना चाहिये कि हममें भी तो दोष हैं।

प्रश्न : क्या मन को भी हर समय देखते रहें ?

स्वामीजी : मन को बैठकर देखें। जब स्थूल क्रिया कर रहें हैं तो वह consciously (सजगतापूर्वक) करें। विचार भी mechanical (यांन्त्रिक) हो सकते हैं। emotions तो प्रायः involuntary (अनैच्छिक) ही होती है। emotions को देखेंगे तो emotions की intensity (तीव्रता) कम हो जायेगी।

प्रश्न : जब कोई बात objectively सोचनी हो तो क्या उस समय भी मन को देखते रहना चाहिये ?

स्वामीजी : एक ही काल में सोचेंगे और देखेंगे कैसे ? सोचने के समय गहराई से सोचिये — unprejudiced (पक्षपात रहित) होकर — arguments & counter arguments — हर पक्ष से सोचिये (किन्तु) विचार mechanical न हो,

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

मैं सोच रहा हूँ यह awareness तो रहनी चाहिये।

प्रश्न : कभी-कभी मन में सत्य का निराकार आयाम अधिक अच्छा लगता है तो कभी सगुण ब्रह्म का। क्या इससे साधक की एकनिष्ठा में कमी नहीं आयेगी ?

स्वामीजी : इनमें विरोध नहीं है; दो प्रक्रियाएं हैं चिन्तन की। दोनों एक साथ भी चल सकती हैं। यह भाव करें बार-बार कि जो निराकार है वही साकार भी है।

प्रश्न : बिना आकार के गुण किसके आश्रय से रहेंगे; अतः सगुण-निराकार कैसे सम्भव है ?

स्वामीजी : मन निराकार है पर सगुण है। गुण तो सत्ता के आश्रित होते हैं, न कि आकार के। शरीर छूटने पर भी मन रहता है तभी तो फिर शरीर लेना पड़ता है।



CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

सुवचन

छठा भाग

इस भाग में पूज्य स्वामीजी की लगभग चालीस वर्ष पुरानी हस्तलिखित डायरी में लिखे ढेरों दिव्य उद्‌गारों में से कुछेक का संकलन किया गया है। साथ ही प्रसंगवश उनके द्वारा लिखी गयी कुछ सदुक्तियों को भी इसमें सम्मिलित किया गया है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

ॐ

अपने आपको कर्ता मानकर कर्मफल, दुःख व सुख से बचना, या पार जाना संभव नहीं है। कर्ता सात्विक भी हो सकता है, राजसिक भी, तामसिक भी।

एक चोर बड़ी सुन्दर बांसुरी बजाता है। धार्मिक आदमी कहेगा, इतनी सुन्दर बांसुरी बजाता है वह चोर कैसे हो सकता है! अधार्मिक आदमी कहेगा, वह चोर है वह ऐसी सुन्दर बांसुरी क्या बजायेगा!

काम, क्रोध मन की स्थितियां हैं, घटनायें नहीं हैं।

शास्ता : शासन देने वाला।
शास्त्र : शास्ता की वाणी।

शरीर को अत्यधिक निकट होकर देखने से शरीर की सुन्दरता का भाव समाप्त हो जायगा। आत्मा को निकटता से देखने पर उसकी सुन्दरता का भाव गहरा होगा, उसका महत्व बढ़ेगा।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

परमात्मा और जगत् का सम्बन्ध नर्तक और नृत्य की तरह है। नृत्य नर्तक के बिना नहीं हो सकता, परन्तु नर्तक सदा नृत्य के बाहर भी बना हुआ है। नर्तक चाहे नृत्य करे, चाहे न करे।

माया और ब्रह्म के बीच कोई भी सम्बन्ध नहीं। दोनों एक दूसरे के सम्मुख कभी हुए ही नहीं। प्रक्षेपण ही माया है। परन्तु प्रक्षेपण जिसको हो रहा है उसकी दृष्टि से ही वह सत्य है।

'काम' जवानी की पीड़ा है और 'लोभ' बुढ़ापे की पीड़ा है।

साधारण मनुष्य opinions (विचारों) का एक पुंज ही है। वह सदा यही सोचता है कि दूसरे क्या कहेंगे। वस्तुतः वह तनिक भी स्वात्मा रहता ही नहीं; वह दूसरों की opinions ही बन जाता है।

कर्मठ व्यक्ति बिना कर्म के नहीं रह सकता। क्रिया-प्रधान प्रकृति वाला पुरुष यदि खाली भी बैठेगा तो पाँव ही हिलाता रहेगा।

मन को वश में करने का पहला सोपान है कि जो मन से पार है उसमें जागना। मालिक के आ जाने की खबर से ही घर में व्यवस्था अपने आप होने लगती है, शोर बन्द होता है। मन से मन को लड़ाकर आप मन को कैसे वश में करियेगा ?

मौत का स्मरण मन को अन्तर्मुखी करता है ; वासना को क्षीण करता है ; इसके स्मरण से सांसारिक रुचि में अवश्य कमी आयेगी।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

'मेरे' का मतलब है 'झूठे मैं' की छाया।

सत्य अकेला खड़ा हो जाता है। झूठ को खड़ा होने के वास्ते सौ झूठों का सहारा चाहिये।

जिसने परमात्मा को जाना उसके लिये संसार नहीं है; जो संसार को जान रहा है उसके लिये परमात्मा अपरोक्ष नहीं है। संसार और परमात्मा एक ही काल में अनुभव में नहीं आते।

समस्त भिन्नता का बोध विचार-मन-संस्कारों के माध्यम से देखने के कारण है। सीधा और गहरा देखने से राम और रावण में भी भेद नहीं दिखेगा। वहाँ द्वैत है ही नहीं।

वही अस्तित्व मन के माध्यम से देखने पर संसार दिखता है और मन के पार से, सीधा देखने पर परमात्मा दिखता (अनुभव होता) है।

असुरक्षा की भावना चिन्ता पैदा करती है। सुरक्षा होने पर सुरक्षा दूर न हो जाये इस बात की चिन्ता रहती है और साथ ही व्यक्ति में आलस्य की वृत्ति भी आ सकती है।

जो चिन्तित हैं वे बचा लेते हैं और जो बचा लेते हैं वे चिन्तित हो जाते हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

आप कहाँ हैं और क्या कार्य कर रहे हैं यह प्रश्न महत्वपूर्ण नहीं है। आप क्या हैं और किस भावना-दृष्टि से कार्य कर रहे हैं, यही बात महत्वपूर्ण है।

क्योंकि विरक्ति, आसक्ति की विपरीत धारा है वह कभी पूर्ण नहीं हो सकती। वह सापेक्ष है। आसक्ति भी सापेक्ष, विरक्ति भी सापेक्ष। दोनों सम्बन्ध हैं वस्तुओं या व्यक्तियों के साथ। एक में पीछे भागने की प्रवृत्ति; दूसरे में दूर भागने की प्रवृत्ति। सच्ची अनासक्ति का अर्थ है आसक्ति और विरक्ति दोनों के पार जाना। विरक्ति या आसक्ति व्यवहार है, स्वभाव नहीं है। स्वभाव अनासक्ति है।

अनासक्ति हमारा स्वभाव है यही कारण है कि हम आसक्त भी बन सकते हैं और विरक्त भी। यदि विरक्ति हमारा स्वभाव हो तो हम आसक्त नहीं बन सकते; यदि आसक्ति हमारा स्वभाव होता तो हम विरक्त नहीं बन सकते!

परमात्मा प्रकट क्यों नहीं होता?—इसलिये कि यदि वह प्रकट हो जाये तो आपका उससे मिलन पूरा व हमेशा नहीं हो सकता, कुछ दूरी रह जायेगी। अप्रकट (आकार रहित) से ही पूर्ण मिलन संभव है।

जो त्याग investment (निवेश) की तरह किया जाये वह कैसा त्याग! वह तो व्यापार है।

अज्ञानी का प्रत्येक कर्म भोग है भले ही वह नैतिक अथवा अनैतिक हो। ज्ञानी का प्रत्येक कर्म योग है भले ही वह नैतिक दिखाई दे अथवा अनैतिक।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

उचित चुनाव से सुख मिलता है, अनुचित चुनाव से दुःख। चुनावरहित रहने से आनन्द।

परमानन्द स्वानुभूति से होता है, आत्म-विश्वास से नहीं।

सहज जीवन यान्त्रिक नहीं होगा, वह सदा नया, unpredictable (अप्रत्याशित) होगा। आबद्ध जीवन स्मृति पर आधारित होगा। सहज जीवन स्मृति का उपयोग तो करेगा परन्तु उसमें स्मृति की दासता नहीं होगी।

पारमार्थिक दृष्टि से आत्मा और शरीर तत्वतः दो नही हैं। शरीर आत्मा का वह छोर है जो मनुष्य की आंखों की पकड़ में आता है; आत्मा शरीर का वह छोर है जो इन्द्रियों की पकड़ से बाहर रह जाता है।

अनुभव द्वारा सीखने से वैराग्य होता है। सुख के पीछे दौड़ की व्यर्थता का निश्चय होने से भी वैराग्य होता है।

सच्ची सुख-शान्ति देश, काल और वस्तु निर्पेक्ष ही है क्योंकि वह आत्मा का स्वरुप है।

अरबी कहावत है — परमात्मा जब किसी मनुष्य को बनाता है तो वह चुपके से उसके कान में कह देता है कि तेरे जैसा सुन्दर, सुशील व बुद्धिमान और किसी को नहीं बनाया।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

राग का अभ्यास रोज़ होता है, वैराग्य का कभी नहीं। वैराग्य के क्षणों को हम भूलने की कोशिश करते हैं।

एक विशिष्ट सुख या विशिष्ट पदार्थ, खोजने की व्यर्थता का पता चल जाना सामान्य है, पर सुख मात्र की व्यर्थता का अनुभव अपूर्व है। मन धोखा देता रहता है। एक बार की असफलता से मनुष्य सीखता नहीं। फिर सोचता है कि आगे जरूर सफलता मिलेगी, परन्तु सुख कभी मिलता नहीं। दौड़ जारी रहती है।

बाहर का पदार्थ नहीं बांधता; मन का पदार्थ बांधता है। पदार्थ की आसक्ति बाँधती है।

मनुष्य निन्दा में रस लेता है केवल अपने को (मैं को) ऊँचा प्रमाणित करने के लिये। यदि कोई किसी को बुरा कहे तो आप प्रमाण नहीं पूछते; किन्तु यदि कोई किसी की स्तुति करे तो आप प्रमाण मांगते हैं।

मन का प्रभु की ओर प्रवाहित होना भजन है; पदार्थ की ओर प्रवाहित होना भोग है। मन का द्रष्टा की ओर उन्मुख होना योग है; मन का दृश्य की ओर उन्मुख होना भोग है। सामान्य नियम यह है कि मन उसी की ओर प्रवाहित होता है जो अपने पास नहीं है।

आसक्ति मन का ख्याल है, सम्बन्ध है। आसक्ति का अर्थ है पदार्थ, परिस्थिति अथवा व्यक्ति को गलत मूल्य देना, गलत मूल्यांकन। बंधन सारा रस का, आसक्ति का है, राग का है — पदार्थ का नहीं। बंधन का हेतु पदार्थ नहीं,

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

संसार नहीं, संसार का मोह है। मोक्ष संसार के त्याग से नहीं होता, मोह और अज्ञान के त्याग से होता है।

पदार्थ का उचित उपयोग करने से by product के रूप में रस स्वतः मिल जाता है, परन्तु रस ढूँढने जायें तो केवल दुःख ही मिलता है। पदार्थ से सीधा रस लेने के भाव का अर्थ है आसक्ति।

आत्मा को पदार्थ नहीं बांधते, आत्मा स्वयं ही पदार्थों से बंधती है। वस्तुतः वह कभी बंधी ही नहीं पर वह यह ख्याल कर सकती है कि मैं बंधी हूँ।

भोजन नहीं करते हैं परन्तु मन भोजन में लगा रहता है — जैसे उपवास में भूख लगने पर। जैसे भोजन न करने पर भी मन भोजन में लग सकता है। इसी प्रकार भोजन करते समय भी मन भोजन से अलग रह सकता है। यही हर बात के सम्बंध में संभव है।

मन क्रियाशील होना ही चाहिये, अन्यथा संसार, व्यवहार में जीना असंभव है। परन्तु इतनी क्षमता होनी चाहिये कि जब चाहें आप मन को रोक सकें ।

अहंकार, मन कोई वस्तु नहीं बल्कि एक घटना है; पदार्थ नहीं, एक event (घटना) है।

एक शिक्षक ने बच्चे से पूछा कि तुम क्या बनना चाहते हो। उसने कहा

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

मैं बड़ा confused हूँ। मां कहती है तुम्हें नेता बनना है, बाप कहता है कवि, बड़ा भाई कहता है, संगीतज्ञ, और चाचाजी इंजीनियर बनाना चाहते हैं।

ध्यान का आरम्भ होता है समय में; ध्यान की पूर्णता होती है समय के बाहर।

समय का बोध तनावग्रस्त चित्त को होता है।

स्मृति अथवा वृत्ति तादात्म्य से ही कार्य करती है। साक्षीभाव से मन की गति धीमी हो जाती है। परन्तु मन के पूरा रुक जाने से स्मृति व वृत्ति का लोप हो जाता है।

पृथ्वी पर पशु हार गया, मनुष्य जीत गया इसका कुल कारण है कि मनुष्य का मन चंचल है पशु का मन चंचल नहीं है, लचकदार नहीं है।

दौड़ती हुई चेतना है मन, रुकी हुई चेतना का नाम है आत्मा। मन सदैव सुख की ओर दौड़ता है। अतएव क्षणभंगुर जीवन दुःखमय है यह प्रतीति प्रथम सोपान है। यह दुःख की प्रतीति प्रतिपल हो रही है, परन्तु हम सुख की आशा नहीं छोड़ते। यह अनुभव पर आशा की विजय है।

विज्ञान पदार्थ की खोज है। धर्म या योग परमात्मा की खोज है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

अपने आपको भूलने का एक ही संभव तरीका है और वह है अपने आपका गलत स्मरण होना, अपने आपको गलत समझ लेना, पदार्थ के तदरूप होना अथवा परिस्थितियों और व्यक्तियों के सम्बन्ध से अपने होने को जानना।

आशावादी दो दिनों के बीच में एक रात्रि देखेगा। फूल को देखेगा और कांटों को देखेगा उसकी रक्षा के वास्ते। कहेगा प्रभु तेरा धन्यवाद कि आधा गिलास भरा है। निराशावादी दो रातों के बीच में एक दिन देखेगा। इतने कांटों में इतने कम फूल। कहेगा, हाय! आधा गिलास खाली है।

स्वभाव को, परमात्मा को खोया तो नहीं जा सकता, परन्तु भुलाया जा सकता है। परन्तु भूलने से परमात्मा में कुछ अन्तर नहीं आ जाता। इस विस्मरण को तोड़ने के लिये स्मरण का अभ्यास है।

विस्मरण का प्रयोजन?— जो भी हम हैं उसे एक बार करीब-करीब भूले बिना उसका पता नहीं चलेगा। जो कभी बीमार नहीं पड़ा उसे अपने स्वस्थ होने का भी पता नहीं।

किसी व्यक्ति पर मालकियत कर लेना कठिन है, वस्तु पर मालकियत करना आसान है क्योंकि वस्तु कोई प्रतिक्रिया नहीं करती। आज जबकि राजनैतिक और सामाजिक वातावरण व्यक्ति पर मालकियत में बाधक है इसलिये मनुष्य (मालकियत के भाव वाला) अधिक वस्तुएं संग्रह करेगा।

वस्तु का उपयोग और वस्तु के साथ रागात्मक सम्बंध भिन्न-भिन्न बातें हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

नशा कई प्रकार का होता है, धन का, कुल का, पद का, परिवार का, शराब आदि का। प्रत्येक नशा मूर्छा में ले जाता है और मनुष्य से कुछ भी करवा सकता है, अच्छे कर्म भी और बुरे भी। परन्तु भगवतार्थ कर्म तो आन्तरिक जागृति में ही हो पाते हैं।

ध्यान की परमगति तो समय से बाहर होगी ही परन्तु ध्यान का आरम्भ समय के भीतर होगा। अतएव अनुकूल समय-स्थान ध्यान में उपयोगी है। किन्तु साधना के अनुकूल व प्रतिकूल परिस्थितियों का निर्णय आप अपने पूर्वाग्रहों से ग्रस्त मन द्वारा ही न कर लें। इसका निर्णय तो कोई अनुभवी संत अथवा महापुरुष ही कर सकता है।

समर्पित जीवन का अर्थ है— चुनाव रहित होकर जीना।

चिन्ता से बचना एक बात है और निश्चिन्त होना दूसरी बात। चिन्ता से बच तो सकते हैं tranquilliser (निद्रा लाने की दवाएं) लेकर भी, परन्तु निश्चिन्तता तो भगवद् ज्ञान-प्रेम से ही आती है।

हमारा अपना द्वन्द्व ही हमारे लिये द्वार बनेगा। जिसको यश के लिये weakness (कमजोरी) है उसे यश और अपयश में समत्व लाना होगा। किसी को मित्रता का मूल्य अधिक हो तो उसे मित्र और शत्रु में समभाव बनाना ही साधना होगा।

समझ का दर्जा ताकत से बड़ा है। विवेक जहाँ काम कर जाता है वहाँ

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

शक्ति निरोपयोगी सिद्ध होती है। शक्ति से निश्चय ही अंहकार दृढ़ होता है यदि विवेक का अभाव हो तो।

एक तरीका जानने का यह है कि पूंछ लें और उत्तर ले लें — यह विज्ञान का तरीका है। न पूछ कर जानने का, मौन में जानने का ढंग, धर्म का ढंग है, साधना की पद्धति है।

एक आदमी कोई चीज ख़रीदने बाजार जाता है तो कपड़े में गांठ लगा लेता है। वह गांठ उसे दिन भर याद दिलाती है। संन्यास के वस्त्र, मन्दिर, नियमादि सब परमात्मा की याद दिलाने के वास्ते हैं।

मन मनुष्य का गौरव भी है और उसका कष्ट भी। मन के कारण मनुष्य ने पशुओं पर विजय पाई परन्तु मन के कारण ही वह परमात्मा से दूर भी बना रहता है।

सुख-शान्ति (अपने या दूसरों की) परिस्थितियों को बदलने में है — यह राजनीति का सिद्धान्त है। राजनीतिज्ञ सदा भविष्य में सुख की कल्पना करता रहता है अतः 'वर्तमान' के सुख से सदा वंचित रहता है। सुख-शान्ति अपने को बदलने में है। अपने को बदलो — यह धार्मिक मनुष्य का मत है।

स्वार्थ बुरा है — सो ठीक। परन्तु गहराई से देखें तो पूर्ण आनन्द की पूर्ण उपलब्धि के बिना स्वार्थ मिटता नहीं है।

स्वार्थ का मूल कारण पूर्ण आनन्द की अनुपलब्धि मात्र है। और उपलब्ध पूर्ण आनन्द की अभिव्यक्ति का नाम है प्रेम। अतएव स्वार्थ को पूर्णतः मिटाना

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

और विशुद्ध प्रेममय जीवन को प्राप्त करना, बिना स्वरूप बोध के संभव ही नहीं है।

मैं सत्य बोलने के लिये नहीं कहता हूँ, सत्य होने के लिये कहता हूँ। सत्य का अर्थ है—ब्रह्म, परमात्मा, ईश्वर। जब आप ईश्वर हो जायेंगे तो आपका आचरण भी ईश्वर के आचरण जैसा होगा। सत्य होए बिना सत्याचरण संभव ही नहीं है। सत्य होए बिना जो सत्य बोला जाता है वह सत्याचरण नहीं परन्तु सत्याचरण का नाटक है अथवा अधिक से अधिक प्रयास है।

बोधवान न सत्य बोलता है न झूठ। सत्य उससे सहजतः बोला जाता है, झूठ की उसे खबर ही नहीं। ऐसा नहीं है कि बोधवान झूठ न बोलने के लिये सत्य न बोलता हो। क्या सूर्य को अंधकार का कभी पता चला है ?

ज्ञात शत्रु से अज्ञात शत्रु अधिक खतरनाक होता है। अज्ञान ही मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है।

कोई भी व्यक्ति पूरे चौबीस घन्टे दुःखी नही रह सकता; निद्रा में नहीं रह सकता; क्रियाशील नहीं रह सकता। क्योंकि दुःख, निद्रा, क्रिया उसका स्वभाव नहीं है। परन्तु वह सदैव आनन्दित, अमूर्छित और निष्क्रिय अवश्य रह सकता है। कोई भी व्यक्ति चौबीस घन्टे चोर नहीं हो सकता। अगर कोई चोरी भी करता है तो इसलिये कि कुछ समय वह बिना चोरी के हो सके। यदि कोई कर्म करता है तो इसलिये कि बाद में बिना कर्म किये हो सके; दुःख लेता है तो इसलिये कि वह कुछ समय बिना दुःख के हो सके आदि। हिंसक हिंसा भी करता है तो किसी दूसरे के प्रति अहिंसक रहने के लिये।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

तत्व-ज्ञानी सूली पर चढ़कर भी सिंहासन पर होता है और अज्ञानी सिंहासन पर होकर भी सूली पर ही चढ़ा रहता है।



कहीं-कहीं संसारियों के वेष में संन्यासी भी मिल जाते हैं और कहीं-कहीं संन्यासियों के वेष में संसारी भी। सांसारिकता और संन्यास वस्तुतः मन की दशाएं हैं।



एक बेईमान व्यक्ति जब सफल होता है तो बेईमानी की वजह से नहीं बल्कि अपने दूसरे सद्‌गुणों के कारण से सफल होता है। एक ईमानदार व्यक्ति यदि असफल होता है तो अपनी ईमानदारी की वजह से नहीं बल्कि अपनी दूसरी निर्बलताओं के कारण से असफल होता है।



एक बच्चा सदा भविष्य की ओर देखता है, युवा केवल वर्तमान की ओर और बूढ़ा अतीत की ओर!



जीवन को कारागार न समझो। इसमें अनन्त संभावनायें भरी हैं। जीवन में ही परमात्मा की उपलब्धि हो सकती है। अपने दृष्टिकोण को बदलना आवश्यक है।



स्वतन्त्र होने से ही कोई ऊँचा नहीं उठ जाता है, बल्कि ऊँचा उठने से ही मनुष्य स्वतन्त्र होता है। किसी व्यक्ति का मन वृक्ष की जड़ों की तरह है और उसका आचार-विचार उसके बाहरी फैलाव की भाँति।



CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

चरित्रहीन व्यक्ति गरीब हो जाता है न कि गरीब व्यक्ति चरित्रहीन।



परतन्त्र होने से ही कोई मनुष्य पतित नहीं होता, पतित होने से ही वह परतन्त्र होता है।



सत्य के साक्षात्कार के वास्ते चाहिये— स्वतन्त्रता, सरलता, जागरूकता, शान्ति, मौन, और पवित्रता।



बीमारी को मिटाना उतना कठिन नहीं होता, जितना बीमारी का (diagnosis) निदान।



एकान्त में जाओ, अथवा एकान्त को अपने अन्दर लाओ—एक ही बात है।



निषेध आकर्षण है। रोकना बुलाना है—निमंत्रण है।



दूसरों के साथ ईमानदार होना उतना कठिन नहीं, जितना अपने साथ ईमानदार होना।



पिछले पांच हजार साल में चौदह हजार छः सौ युद्ध हुए। यह है पांच हजार साल में मानव की वृत्ति का विकास—!



CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

सम्यक् आहार, सम्यक श्रम, सम्यक निद्रा, सम्यक् आचार-विचार सफल जीवन की कुँजी है।

श्रम से जी मत चुराओ। आज के लोग तो प्रार्थना भी दूसरों से करवाते हैं। हो सकता है कभी वह अपनी जगह प्रेम भी नौकरों से करवाना आरम्भ कर दें। श्रम में लज्जा न मानों।

एक छोटा बच्चा और एक बड़ा बालक बाहर धूप में खेल रहे हैं। मां यह देखकर वहां आयेगी। छोटे को तो प्यार करके, पसीना पोंछकर गोद में उठा लेगी और बड़े को दो चांटे मारकर कहेगी—नज़र नहीं आता इतनी धूप में खेल रहे हो, चलो अन्दर छाया में। भक्त छोटे बालक के समान, ज्ञानी बड़े बालक के समान।

आकाश में बादल उठे, वर्षा आई। एक वैज्ञानिक कहेगा, सूर्य की गर्मी से पानी भाप बनकर आकाश में गया, वहाँ ठण्डी वायु से टकराकर वर्षा के रूप में नीचे गिरा। परन्तु भक्त कहेगा यह भगवान की कुदरत है, लीला है।

एक व्यक्ति ने खेत में चने बोये। कुछ दिन बीतने पर किसी ने कहा, "भई आलू बोवो तो ज्यादा लाभ होगा।" उसने चने उखाड़ दिये और आलू बो दिये। जब पौधे थोड़े-थोड़े निकले ही थे तो किसी ने कहा, "भई आलू की फसल लेने में तो बहुत कष्ट होता है और फिर आलू कोई आवश्यक वस्तु भी नहीं है, इससे गंधम बोते तो अच्छा था।" उसने आलू भी उखाड़ दिये और गंधम बो दी। परन्तु गंधम समय अनुसार नहीं बोई जा सकी, विलम्ब हो गया इसलिये समय न रहने से वह उगी नहीं। वह व्यक्ति सब प्रकार के लाभ से वंचित रह गया। अस्थिर बुद्धि न बनिये।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

चावल पक जाता है तो वह नर्म हो जाता है। वह गलता भी नहीं और कणिका भी उसमें नहीं रहती। इसी प्रकार व्यक्ति तो बना रहता है परन्तु उसमें अभिमान नहीं रहता। यही सिद्ध पुरुष की पहचान है।

संसार में जो भी महत्वपूर्ण है वह इन आंखों से दिखाई नहीं देता। बुद्धि दिखाई नहीं देती, प्रेम दिखाई नहीं देता। चाहे दिल को या मस्तिष्क को चीर फाड़कर देख लो, इनका कहीं पता नहीं लगता।

परमात्मा सबसे महत्वपूर्ण है, इसी वास्ते वह इन्द्रियों-मन का विषय नहीं बन पाता।

भगवान कहाँ है ? वहाँ पर जहाँ भगवान को देखने की आँख है। असली प्रश्न यह नहीं है कि परमात्मा है कि नहीं। प्रश्न तो यह है कि आपके पास उसको देखने की आँख है कि नहीं।

भगवान को सर्वज्ञ आपने कैसे जाना ?— स्वयं सर्वज्ञ होकर। भगवान को सर्वव्यापक होकर ही सर्वव्यापक के रूप में जाना जा सकता है।

प्रवचन सुनने से और पुस्तकें पढ़ने से सत्य के सम्बंध में जाना जा सकता है सत्य को नहीं। पुस्तकों से विचार मिलते हैं विचार करने की शक्ति नहीं मिलती।

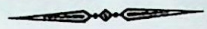
मनुष्य सम्बन्धों में खो गया है। इन सम्बंधों से जब वह अलग होकर अपनी वास्तविकता को देखेगा तो उसे शान्ति मिलेगी।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

आप क्या चाहते हैं ? — धन या धर्म, भोग या भगवान, पद या प्रभु, मद या मोक्ष।



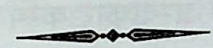
'मैं' है सत्ता; मैं का भाव है अहंकार।



विश्वास या विचार परोक्ष वस्तु का होता है, अपरोक्ष का नहीं।



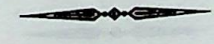
संसार के विरोधभाव में जीने का नाम वैराग्य नहीं है। संसार को सब कुछ मानकर उसमें सन्तुष्ट न होने का नाम वैराग्य है।



एकाग्रता से शक्ति मिलती है तथा विरलता-शिथिलता से शान्ति।



परमात्मा संसार का विरोधी नहीं वरन् संसार से अतीत है।



छोड़ो यह भ्रान्ति कि मृत्यु के समय प्रभु-स्मरण कर लेंगे। जो जीवन का ही सम्यक् उपयोग नहीं कर सकता वह मृत्यु का सम्यक् उपयोग तो भला कर ही कैसे पायेगा ? जो जीवन में ही बेहोश है वह मृत्यु में सजग कैसे होगा ?



कर्म सबके भिन्न-भिन्न, पर अकर्म सबका एक। कर्म विषयगत (object oriented) होते हैं पर अकर्म द्रष्टागत (subject oriented)। कर्म आपको अपने से बाहर ले जाते हैं। अकर्म से आप अपने केन्द्र में लौट आते हैं।



CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पहले समीपता, फिर संवाद, फिर विलय, फिर एकता।

शरीर के साथ (संसार के साथ) तद्रूप होने पर दुःख से नहीं बचा जा सकता। और परमात्मा/आत्मा के साथ तद्रूप होने पर दुःख-सुख नहीं बच सकता।

आप किसी को भी उसके अनुभव के विरूद्ध आश्वस्त नहीं कर सकते।

आप किसी भाव को पूरी तरह तब तक नहीं देख पाते जब तक आप उसे स्वीकार नहीं कर लेते। आप उसे अस्वीकार करेंगे (बुरा मान लेंगे) तो यह छिपेगा, दमित होगा और आप पूरी तरह उसे देख नहीं पायेंगे। जब वह दमित नहीं होगा और छिपेगा नहीं तो आप उसे देखेंगे और वह विदा हो जायेगा। क्योंकि देखने मात्र से आप अपने स्वरूपभूत केन्द्र में प्रतिष्ठित होने लगते हैं और जिसको देखते हैं वह बाह्य प्रतीत होने लगता है। पर हाँ, आपको किसी भाव के साथ बहना नहीं है, उसके अधीन नहीं हो जाना है। उसे देखना है, देखना भर है।

जो आपका है वह आपसे छीना नहीं जा सकता। जो आपका नहीं है वह सदा आपके पास रह नहीं सकता।

दुःख प्रतिछाया है मोह, ममता, अहंकार की, अज्ञान की; शान्ति, मोक्ष प्रतिछाया है ज्ञान की।

जब बाहर का सब कुछ हो पर उसका महत्व न लगता हो और साथ ही

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

अन्दर का धन प्राप्त न हो पर उसका बड़ा महत्व प्रतीत हो। ऐसी वृत्ति को ही वैराग्य समझना चाहिये।

सबसे बड़ा आश्चर्य यह है कि मनुष्य परमात्मा का अभाव कैसे अनुभव कर रहा है, न कि यह कि उसे परमात्मा का अनुभव कैसे हो सकता है!

जब भी आपको सुख की प्रतीति होती है, आप जानना ही नहीं चाहते कि यह सुख की अवस्था सत्य है या झूठी।

सारा समय एवं सारी शक्ति इन्द्रियों और मन से लड़ने में ही न लगाकर इस अमूल्य निधि को रचनात्मक ढंग से प्रयोग करने में ही बुद्धिमता है।

कुछ लोग जीवन का आयोजन करने में लगे रहते है और कुछ सचमुच जीते है।

बोधवान व्यक्ति न अहंकारी होता है न विनम्र। विनम्रता अहंकार का ही परिष्कृत रूप है।

मैं और तू, स्व और पर, मेरा और पराया — यह द्वन्द्व परस्पर अवलम्बित है। 'पर' के भाव के स्मरण से पर दृढ़ होगा तो मैं शिथिल नहीं होगा — 'मैं' भी उतना ही दृढ़ होगा। 'मैं' के भाव के विसर्जित करने के वास्ते उस चेतना में जीना एवं जागना होगा जिसमें 'मैं' और 'पर' दोनों ही नहीं हैं। परोपकार से 'मैं' का भाव शिथिल नहीं होता अपितु अहंकार बड़े सूक्ष्म तरीके से दृढ़ होता है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

रुका हुआ मन जगा हुआ है, भाग रहा है तो मूर्छित है। जितनी सजगता बढ़ती है उतनी ही मन की गति शिथिल होती है।

मुक्ति यदि किसी पर जबरदस्ती थोपी जाये तो वह उसके लिये गुलामी बन जायेगी। मुक्त होने के लिये आपकी रजामंदी पहले होना जरूरी है, अनिवार्य है।

झूठा आदमी बाहर होता है, सच्चा आदमी अन्दर होता है। भीड़ में झूठा आदमी प्रगट होता है, एकान्त में सच्चा आदमी प्रकट होता है।

अंहकार कोई अचल वस्तु नहीं है। वह एक घटना है। उसे समाज बनाता है, बदलता है। आपका नाम पुकार-पुकारकर समाज आपको आपके नाम-रूप से तद्रूप होने में सहायता करता है। समाज नाम है आपके अहंकार के विस्तार का।

गुरु केवल सत्य का उपदेश देने वाला ही नहीं होता; वह सत्य में जीता है। उसका आचार-व्यवहार उसके शिष्यों पर उसके उपदेश से भी अधिक प्रभावकारी होता है।

देखने के वास्ते रुकना आवश्यक है। किसी भी भाव को अथवा शक्ति को बुरा मानोगे तो उससे दूर भागने की क्रिया आरम्भ हो जायेगी। उसे अच्छा मानोगे तो उसके पीछे भागना शुरू हो जायेगा। परिणामतः रुकना संभव नहीं रहेगा। अतएव क्रोध आदि विकारों को जानना और जीतना नहीं हो सकेगा।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

अहंकार को जो मिलता है उससे उसे तृप्ति नहीं होती लेकिन जो उसे नहीं मिलता उससे दुःख अवश्य होता है।

मूल्य और कीमत में बहुत अन्तर है। बुद्ध का मूल्य अधिक है और आइन्सटीन की कीमत। बुद्ध से आप कोई काम नहीं निकाल सकते, वे आपके किसी काम के नहीं हैं पर उनके अस्तित्व के अन्दर दिव्य वीतरागता की सुगन्ध है। आइन्सटीन की बड़ी उपयोगिता है, वे एटम बम्ब बना सकते हैं। उनकी कीमत ज्यादा है। हीरे की कीमत अधिक है मूल्य कम है; घोड़े का मूल्य अधिक है और कीमत कम है।

चालाक, होशियार आदमी वह है जो कर्म के परिणाम पर दृष्टि रखकर उसमें प्रवृत्त हो।

प्रार्थना ऐसी हो कि, प्रभो ! मैं वैसा करूं जिसमें आप आनन्दित हों, न कि यह—प्रभो ! जिसमें मैं आनन्दित हूँ आप वैसे करें।

काम, क्रोध, लोभ आदि को हम बुरा कहते हैं परन्तु उनमें रस लेते हैं। अगर वे हमें पीड़ा देते प्रतीत हों तभी तो हम उनसे बचने का प्रयास करेंगे। जैसे आग से जलन की पीड़ा होती है तो हम आग में पैर नहीं रखते।

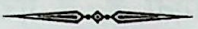
जो दुःखदायी है, उसमें आप खड़े नहीं रह सकते। आग में आप खड़े नहीं रह सकते। क्रोध में, मोह में, वासना में यदि आपको पीड़ा का अनुभव उस समय हो तो आप उससे बाहर कूद जायेंगे। परन्तु उनको justify करने की हम

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

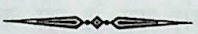
तरकीब करते हैं; उनमें रस का अनुभव करते हैं।



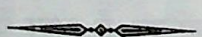
बोध-आत्मज्ञान की स्थिति ऐसी है जैसे आप निपट अकेले ही हों। अकेले होने में सहजता आती है। मन relaxed (विश्राम में) हो तो ज्ञान का उदय हो सकता है पर हम मन में तो अकेले हो ही नहीं पाते। मन में अकेले होने पर आप साधु या असाधु नहीं रह जाते।



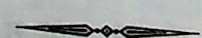
कई असत्य भी उपयोगी होते हैं, पर उपयोगी होने से ही वे सत्य नहीं हो जाते। शरीर और आत्मा दो हैं — यह व्यवहारिक सत्य है और उपयोगी भी, परन्तु इससे व्यक्तित्व विभाजित हो जायेगा। नियन्ता और नियन्त्रित भिन्न हो जायेंगे।



कर्त्तव्य का अर्थ ही है कि आप प्रेम से वह कार्य करना तो नहीं चाहते, करने में आपको आनन्द नहीं है, पर मजबूरी से कर रहे हैं चाहे वह मजबूरी किसी सामाजिक या नैतिक बन्धन की ही क्यों न हो।



कार्य स्वयं ही आनन्द होना चाहिये। जब कार्य खेल हो जाता है तो आनन्द होता है। जब खेल भी कार्य बन जाता है तो बोझ और थकावट पैदा करता है।



आप क्या मानते हैं, क्या पढ़ते हैं या क्या उपदेश करते हैं, यह परमात्मा के दरबार में महत्वपूर्ण नहीं होगा। महत्वपूर्ण तो यह होगा कि आपने क्या किया और आप कैसे जिये।



CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

दुःख और अशान्ति का सदैव कारण होता है, पर आनन्द सदा अकारण।

कर्तव्य प्रेम का विकल्प (substitute) है। प्रेम हो तो कर्तव्य भावना की जरूरत नहीं रहती। प्रेम से किये गये कार्य में और कर्तव्य-भावना से किये गये कार्य में भला कैसी तुलना!

सारा श्रम विश्राम के लिये है और सारी दौड़ ठहर जाने के लिये है। परन्तु सबसे बड़ी विडम्बना जीवन की यह है कि हम श्रम करते-करते ही समाप्त हो जाते हैं पर विश्राम मिलता नहीं। दौड़ते-दौड़ते ही मर जाते हैं और ठहरने के आनन्द से वंचित रह जाते हैं। जिन्दगी भर इस आशा से मनुष्य कमाता है कि आराम से बैठकर खायेंगे, पर जब कमा लेते हैं तो डाक्टर मनपसन्द खाना खाने को मनह कर देते हैं; जब बिस्तर जुटा पाते हैं तब तक नींद आना बन्द हो चुकी होती है; जब भोजन का प्रबन्ध हो जाता है तो भूख लगनी समाप्त हो चुकी होती है। नींद का बिस्तर से कोई सम्बन्ध नहीं है, न स्वाद का भोजन से, न शान्ति का सम्पत्ति से—सम्पत्ति पाने से या छोड़ने से।

शास्त्र, संत आपको सत्य-अनुभव की प्रेरणा दें तो ठीक, परन्तु उनके शब्दों को पकड़कर सत्य की मानसिक धारणा बनाना उचित नहीं। वे आपके अन्दर सत्य की प्यास जगा दें यही उनकी सार्थकता है। सत्य का ज्ञान तो आपको अपने लिये स्वयं पाना होगा।

वासना अपने से बाहर ले जाती है। सारी दौड़ का कारण वासना है। निर्वासना अपने में ठहरा देती है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

अगर आप पर मजबूरी न हो, कोई पाबन्दी या नियम न हो तो आप क्या करेंगे ?— वह आपका असली चरित्र होगा। मजबूरी की वजह से आप जो करते हैं वही आप नहीं हैं। आप असली वह नहीं हैं जो आप दूसरों के सामने बने रहते हैं। आपका असली रूप तो तब प्रगट होता है जब आप अकेले होते हैं।

जगत् की किसी भी घटना को हम आगे या पीछे link (तारतम्य बिठाकर) करके नहीं देख सकते। तब हमें उसे बुरा या अच्छा कहने का, उसके प्रति निर्णय लेने का कोई अधिकार नहीं है।

सब ठीक कैसे हो सकता है ? साधारणतया जो हमें पसन्द होता है वही ठीक लगता है। 'सब ठीक है' का भाव दो प्रकार की मनोदशा से निकलता है। एक तो उसके मन में जिसे परमात्मा का अनुभव हो और दूसरा उसके मन से जिसकी कोई नापसन्द नहीं रह जाती।

मूल्य वक्तव्यों का नहीं होता, वरन् जिस मनोदशा से कोई वक्तव्य निकलता है वह ही विचारणीय है। मोहपूर्ण चित्त से यदि त्याग (संन्यास) की बात भी निकले तो वह सच्चे त्याग की बात नहीं होती।

जो बदलता है वह लक्ष्य नहीं है, वह लक्ष्य हो नहीं सकता। उसे हमेशा के वास्ते पाया नहीं जा सकता। जो नहीं बदलता है वही मूल्यवान है।

सच्चा आनन्द, सच्चा प्रेम, सच्चा ज्ञान निश्चय ही अकारण होता है। सत्य स्वाश्रित एवं अकारण होता है। जिसका कारण होता है वह सच्चा हो ही नहीं सकता।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

राजनीति का सारा जोर परिस्थिति को बदलने पर है, व्यवस्था को बदलने पर। धर्म का बल व्यक्ति को बदलने पर।



वासना-पूर्ति का बल न हो तो वासना तो होती है पर वासना नहीं है, ऐसा भ्रम पैदा हो जाता है। वासना-पूर्ति का बल न होना वासना का न होना नहीं है। बल आते ही वासना प्रकट हो जायेगी।



जब तक आपके लिये दुःख-सुख में अन्तर है, तब तक आपके लिये भला-बुरा भी रहेगा ही। तब सोचने के लिये भले ही सब रास्ते ठीक हों पर चलने के लिये एक ही रास्ता ठीक होता है।



आप अशान्त हैं और मन को शान्त करने चले हैं तो कैसे शान्त करेंगे। जितना उसे शान्त करने की कोशिश करेंगे उतना वह और अशान्त होगा। आप केवल उसके किनारे बैठ जाइये। मन को तटस्थ होकर देखिये। उससे तद्रूप न होइये तो शान्ति आ जायेगी।



ज्ञान, बोध, सजगता—सब संतों की एक होती है परन्तु उनकी शक्ति, उनकी बाहरी व्यवस्था, आचरण, रहन-सहन आदि भिन्न-भिन्न हो सकती है। रामकृष्ण परमहंस, रमण महर्षि, अरविन्द, स्वामी विवेकानन्द, बाबा भूमनशाह, आचार्य श्रीचन्द्र, गुरुनानक देव—सभी बोधवान् संत थे परन्तु सबकी बाहरी व्यवस्था और रहन-सहन भिन्न-भिन्न थे।



एक है सदाचारी, दूसरा दुराचारी और तीसरी कोटि है संत की, शान्त पुरुष की। आवश्यक नहीं कि सदाचारी शान्त हो। शान्त वही हो सकता है जो

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

सदाचारी भी हो और संत भी।

आप जो भी कर्म करते हैं वह इस बात पर निर्भर करता है कि आप किस स्थिति में हैं। अशान्ति की स्थिति में किया गया कोई भी कर्म कभी सुन्दर नहीं हो सकता।

सजगता में गलत अपने आप गिर जाता है और ठीक ही रह जाता है। मूर्छा की दशा में किया गया कार्य गलत भी हो सकता है और ठीक भी, पर वे दोनों ही बाँधते हैं। पाप और पुण्य का वास्तविक निर्णय व्यक्ति में सजगता और मूर्छा पर निर्भर करता है।

प्रत्येक मनोरंजन की कामना खालीपन की सूचक है। अतृप्त आदमी मनोरंजन की खोज में रहता है। तृप्त और आनन्दित व्यक्ति कभी भी मनोरंजन की चाह नहीं करेगा। कोई व्यक्ति यदि मनोरंजन के बहुत साधन इकट्ठे करता है तो समझ लो कि वह आनन्द से वंचित है।

प्रेम सम्बन्ध नहीं है वरन् आनन्द की संवेदना है। प्रेमपूर्ण व्यक्ति एक से प्रेम करे और दूसरे से घृणा, यह संभव नहीं है। वह अकेला बैठा होगा तो भी प्रेमपूर्ण ही होगा। सच्चा प्रेम अनिवार्यरूप से अकारण होता है। जहाँ प्रेम का कारण होगा वह प्रेम अधिक समय तक नहीं चल सकता।

'स्मृति' को 'स्मरण' समझने की भूल मत करियेगा। स्मृति है भूतकाल की राख ! और स्मरण है नित्य-वर्तमान के सतत-अनुभव का प्रकाश !

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

मूर्छित अवस्था में किया गया योग भी भोग बन जाता है और सजगता की अवस्था में घटित हुआ भोग भी योग हो जाता है। मूर्छा में किया गया प्रत्येक कर्म भोग-कर्म है और सजगता की स्थिति में घटित हुआ प्रत्येक कर्म योग है।



अन्दर मूर्छा होती है तो जीव भी जड़ दिखाई पड़ता है या प्रतीत होता है, और अन्दर जागृति होती है तो जड़ वस्तु भी सजीव प्रतीत होती है।



अन्दर प्रेम हो तो आप वस्तुओं से भी सजीव व्यक्तियों जैसा व्यवहार करने लगते हैं और अन्दर शुष्कता हो तो व्यक्तियों से भी वस्तुओं जैसा व्यवहार करने लगते हैं।



बंधे हुए व्यक्ति का कर्म कैसे स्वतन्त्र हो सकता है। स्वतन्त्र कर्म तो मुक्त पुरुष का ही होगा। परन्तु बन्धन में पड़े व्यक्ति के अन्दर भी जैसे स्वतन्त्रता की सम्भावना है ऐसे ही उसके अन्दर स्वतन्त्र कर्म की भी सम्भावना है।



जिसका अभाव होता है उसकी आवश्यकता प्रतीत होती है तथा उसका चिन्तन होता है। चिन्तन के वास्ते चिंत्य के साथ थोड़ी दूरी अवश्य चाहिये।



जो करने के बिना नहीं रह सकता उसे अवश्य अच्छे कर्म करने चाहियें अन्यथा वह बुरे कर्म करने लगेगा। जो संग के बिना नहीं रह सकता उसे अवश्य ही सत्संग करना होगा वरना वह अवश्य ही कुसंग में जायेगा। जो समय का सदुपयोग नहीं कर सकता वह उसका दुरुपयोग अवश्य करेगा। समय के बोध में रहते हुए समय का सदुपयोग ही श्रेष्ठ है।



CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

क्राइस्ट से किसी ने पूछा कि तुम्हारे स्वर्ग में ख़ास बात क्या होगी? उत्तर मिला, 'वहाँ समय नहीं होगा।'

वासना की धारा मृत्यु के ख्याल मात्र से ही टूटने लगती है।

मात्र बुद्धि की जानकारी जीवन में रूपान्तरण नहीं करती क्योंकि बुद्धि तो मनुष्य का छोटा सा हिस्सा है। व्यक्तित्व का दसवाँ हिस्सा। उससे नौ गुणा ताकत का अचेतन मन पीछे रहता है। उस अचेतन मन तक जब तक प्रकाश, समझ नहीं पहुँचती तब तक रूपान्तरण संभव नहीं है।

बुद्धि का, पहरेदार का काम है— समझना और पश्चाताप करना। क्रोध मालिक को आता है। आप पहरेदार को समझाते हैं कि क्रोध बुरा है। वह समझ भी लेता है परन्तु मालिक के आगे उसका बस नहीं चलता। बुद्धि व्यक्तित्व की परिधि है। ताकत परिधि में नहीं होती, पहरेदार में नहीं होती, केन्द्र में होती है।

उपदेश, कथा आदि से परिवर्तन क्यों नहीं होता? क्योंकि उनसे केवल बुद्धि, पहरेदार तक ही संवाद होता है। मालिक जिसको बदलना है, उससे संवाद होता ही नहीं।

अचेतन मन के प्रबुद्ध होने पर बुद्धि प्रबुद्ध हो जाती है पर बुद्धि के प्रबुद्ध होने पर अचेतन मन प्रबुद्ध नहीं होता वैसे ही जैसे वृक्ष की जड़ों को पानी दें तो पत्तों को पानी पहुँच जाता है परन्तु पत्तों पर पानी छिड़कने से जड़ों तक पानी नहीं पहुँचता।

काम, क्रोध, लोभ आदि समस्त दोषों की जड़ें हैं अचेतन मन में। इसलिये बुद्धि के समझ जाने पर कि ये बुरे हैं इनसे छुटकारा नहीं मिलता। बुद्धि

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

केवल इन्हें कुछ समय के वास्ते दबा सकती है। इन्हें विसर्जित करने का, जीवन के रूपान्तरण का मात्र उपाय है ध्यान अथवा जप जिसके द्वारा अचेतन मन शुद्ध हो सके।

यदि दूसरा मुझ पर क्रोध करता है तो मैं कहता हूँ वह बड़ा क्रोधी है, उसका स्वभाव खराब है। जब मैं दूसरे पर क्रोध करता हूँ तो कहता हूँ कि परिस्थिति ही ऐसी है कि मुझे क्रोध करना पड़ा। सारा दोष दूसरे को, अपने क्रोध का दोष भी दूसरे पर!

जो कर्म किसी प्रयोजन से अथवा किसी आवश्यकता या अभाव की प्रतीति से आरम्भ होता है उस कर्म का कर्त्ता पूर्ण नहीं हो सकता। अपूर्ण कर्त्ता का कर्म पूर्ण कैसे हो सकता है? इससे सिद्ध होता है कि मनुष्य के ऐसे कर्मों का कर्त्ता मनुष्य ही है न कि भगवान।

जो चित्त शब्दों की जानकारी से भरा है उसमें ज्ञान उदय होने का स्थान ही कहाँ होगा!

ज्ञान प्राप्ति के लिये क्या करें — यह मुख्य सवाल नहीं है, बल्कि जीवन को कैसे देखें यह सवाल है। जीवन को देखने की दृष्टि समुचित हो तो ज्ञान का आविर्भाव होने लगता है।

वक्त पड़ने पर शास्त्रीय ज्ञान काम नहीं आता, अपितु अपना अनुभव-जन्य ज्ञान ही काम आता है। शास्त्र की जानकारी से कुछ विशेष आचरण बनाना पड़ता है, ज्ञान से आचरण स्वयं होता है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

'कल' सुख भोगने की वृत्ति (इच्छा) का अभ्यास करते-करते ही व्यक्ति आज और अभी के अपूर्व आनन्द से वंचित है। इस 'कल' के सुख की वृत्ति का अभ्यास (आदत) पड़ जाने पर 'कल' का सुख यदि आ भी गया (जो आज बनकर ही आयेगा) तो भी इस पूर्व आदत के कारण हम उसे अनुभव न कर पायेंगे बल्कि फिर आगे के 'कल' के सुख की तलाश शुरु हो जायेगी।

जो मिला है उसके प्रति धन्यवाद का भाव, जो नहीं मिला है उसके लिये शिकायत या दौड़ भी नहीं—यह है शान्त पुरुष की स्थिति।

ज्ञान और चिन्ता कभी एक दूसरे के सम्मुख नहीं हुए। ज्ञान के उदय होते ही चिन्ता-वासना विदा हो जाती हैं।

इच्छित वस्तु होती है देश और काल की दृष्टि से दूर, और परमात्मा है 'अभी और यहीं'। अतएव 'इच्छा' से परमात्मा का मिलन कभी हो नहीं सकता।

पदार्थ को पा लेने पर भी प्रतीत होता है कि कुछ नहीं पाया और न पाने पर पाने की दौड़ से अशान्ति तो बनी ही रहती है। पदार्थ को पा लेने पर भी कुछ नहीं मिलता और पा लेने की कोशिश में वह अवसर हाथ से निकल जाता है जिससे 'वह' पाया जा सकता था जो 'है'।

अधिकार का भाव, मालकियत ही मात्र दुःख का हेतु है। अधिकार की पूर्ति से सुख नहीं मिलता। धन्यवाद का भाव भी पैदा नहीं होता, परन्तु अधिकार के पूरा न होने पर दुःख होता है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

परमात्मा 'एक' होने पर भी सबको मिल सकता है, जबकि 'एक पदार्थ' सभी को नहीं मिल सकता, एक व्यक्ति को ही मिल सकता है।

सुख और दुःख में वस्तुतः भेद नहीं है। सुख थोड़ा कम दुःख है; दुःख जरा कम सुख है।

वैराग्यशील वह नहीं जो केवल जंगल में सरलता से रह सके, वैराग्यशील वह है जो जितनी सरलता से जंगल में रह सके उतनी ही सरलता से नगर में भी रह सके।

यदि आप सजग नहीं हैं तो त्याग आपके लिये वही काम कर सकता है जो विषयी पुरुष के लिये भोग।

सब परमात्मा है अथवा सब कुछ ईश्वर करता है— यह अन्तिम निष्कर्ष है। यह कोई मान्यता या अवधारणा (proposition) नहीं है जिसके द्वारा आप किसी दूसरे निष्कर्ष पर पहुँचने की गलती करते हैं

प्रक्रिया से आरम्भ करके निष्कर्ष पर पहुँचा जाता है, निष्कर्ष से शुरु करके निष्कर्ष पर कैसे पहुँचेंगे ? यह तो वैसी ही बात होगी जैसे एक विद्यार्थी प्रश्न (problem) का उत्तर पहले देख ले और बाद में प्रश्न को हल करने का प्रयास करे। उत्तर अथवा निष्कर्ष का पहले से ही पूरा पता लग जाने से प्रक्रिया चलाने में असुविधा होती है।

जिस चीज को आप बुरा मानेंगे तो उससे दूर भागने में लग जायेंगे; उसे अच्छा मानेंगे तो उसके पीछे भागने लग जायेंगे। फलतः उस वस्तु को आप जान

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

नहीं पायेंगे क्योंकि जाना-देखा तो रुककर ही जा सकता है। जो देखता है वह सदा रुका हुआ है और बिना देखे-जाने किसी से मुक्ति संभव नहीं हैं। किसी चीज से बच जाना उससे मुक्त हो जाना नहीं है; वस्तुतः बच भी नहीं सकते, कुछ समय के लिये उसे भूलने में सफल हो जाते हैं। दुःख को भूलना एक बात है और दुःख से मुक्त होना दूसरी बात है।

सर्दी और गर्मी तथा जीवन और मृत्यु आदि एक दूसरे के विपरीत प्रतीत होते हैं। परन्तु आध्यात्मिक दृष्टिकोण से वे विपरीत नहीं हैं बल्कि एक ही वस्तु के दो पहलू हैं। या दोनों रहेंगे, या दोनों नहीं रहेंगे।

सच्चा पुण्य वह है जो पाप और पुण्य से पार है; सच्ची सुन्दरता वही जो सुन्दरता और कुरूपता के पार होगी।

जीवन का परम धन दौड़ने से नहीं मिलता—ठहरने पर, रुकने पर ही मिलता है।

ज्ञानी वह है जिसे यह भ्रम हो कि मैं परमात्मा को जानता हूँ। अज्ञानी वह है जिसे यह भ्रम हो कि मैं परमात्मा को नहीं जानता हूँ। परमात्मा न ज्ञेय है और न अज्ञेय ही।

चमत्कार वह है जहाँ घटना कार्य-कारण के नियम से बाहर घटे।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

कुछ बनने का दण्ड अवश्य भोगना पड़ता है— 'कर्त्ता' अथवा 'वस्तु' बनने का दण्ड।

चेतना, अनुभूति शब्दहीन ही होती है, शब्द के आते ही वह पदार्थ का रूप लेने लगती है अथवा विकृत हो जाती है।

नाम देते ही अस्तित्व पदार्थ (वस्तु) हो जाता है, अस्तित्व सीमित हो जाता है।

समाधान अनुभव से ही होता है। बाहर से, दूसरों से मिले उत्तरों से, चाहे वे उत्तर कितने ही उचित अथवा संगत हों, केवल बुद्धि का कौतूहल ही दूर होता है, कोई गहरा समाधान नहीं होता।

मन के आते ही परमात्मा वस्तु (संसार) प्रतीत होता है, मन के विदा होते ही संसार परमात्मा प्रतीत होता है। मन (मनुष्य) न हो तो वस्तुओं में कोई भेद नहीं होगा।

सच्चे क्रोध से झूठा प्रेम अधिक खतरनाक है, वैसे ही जैसे सच्चे असंत से झूठा संत।

राग का अर्थ है स्वीकारात्मक आसक्ति, वैराग्य का अर्थ है नकारात्मक आसक्ति। राग में संसार के पीछे भागना है—संसार की तरफ मुँह करके; वैराग्य में संसार से दूर भागना है पर मुँह संसार की तरफ ही रखकर। वैराग्य भी संसार

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

से एक प्रकार का (सूक्ष्म) लगाव है। वीतराग होने में न राग रहता है, न वैराग्य।

कुछ मंजिलें ऐसी होती हैं जहाँ व्यक्ति चलकर पहुँचता है, वे सब मंजिलें सांसारिक हैं। परमात्मा की मंजिल पर तो रुककर ही पहुँचा जा सकता है क्योंकि वह 'अभी' और 'यहीं' है। परमार्थ की बात बहुत अद्‌भुत है जहाँ चलना मंजिल से दूरं ले जाता है, जहाँ रुकना (ठहर जाना) स्वंय मंजिल पर पहुँच जाना है। संसार कर्म से, गति से उपलब्ध होता है और आत्मा अगति से, अकर्म में।

काल (समय) का बोध वस्तुओं की बदलाहट से होता है। परिवर्तन का बोध ही समय है। मनुष्य को यदि अपने शरीर में परिवर्तन अथवा बाह्य वातावरण के परिवर्तन का भान न हो तो उसे 'मैं जवान हूँ, बूढ़ा हूँ' आदि का बोध ही नहीं हो सकता।

योग वह कला है जिससे संसार परमात्मा दिखने लगता है। भोग वह प्रतिक्रिया है जो परमात्मा को संसार बनाकर दिखाती है।

निराकार और साकार दो नहीं हैं। वही जो इन्द्रियों के द्वार से साकार के रुप में अनुभव में आता है वही इन्द्रियों के बाहर होकर देखने से (अनुभव करने से) निराकार अनुभव में आता है। भेद केवल उसके दिखने में है, apparent (प्रतीयमान) है, अस्तित्व में नहीं है।

ज्ञानी बीमारी में, दरिद्रता में भी प्रसन्न रहता है, अज्ञानी स्वस्थ और समृद्ध होकर भी दुःखी ही रहता है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

सच्चा पुण्य वह नहीं जो पाप के विरोध में खड़ा हो। पाप जब पूरी तरह तिरोहित हो जाता है तो जो शेष बचता है वह पुण्य है। पुण्य की आकांक्षा मत करो। पाप को समझो कि पाप से नरक पैदा होता है तो इस समझ से पाप तिरोहित हो जायेगा।

अहंभाव का चेतना में केन्द्रीभूत होना उत्थान, मोक्ष का हेतु है; चेतना का अहंभाव में केन्द्रीभूत (घनीभूत) होना संसार का द्वार, संकोच, बंधन का द्वार है।



मन को एकाग्र नहीं करना वरन् विसर्जित करना है। परन्तु विसर्जित यह तब होता है जब चेतना के सन्मुख होता है।



संसार के सम्बन्ध में सूचनाएं एकत्र करने से काम चल जाता है, अध्यात्म के सम्बन्ध में अनुभव जरूरी है।



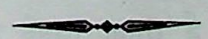
ज्ञानी मरने के समय भी चिन्तित नहीं होते और अज्ञानी जीते हुए भी चिन्तित रहते हैं।



चेतना की जितनी ऊँचाई होगी उतना वर्तमान, भूत और भविष्य का फासला कम होता जायेगा। चेतना की पराकाष्ठा की स्थिति में समय का बोध ही नहीं है।



ईश्वर को अथवा मोक्ष को 'विषय' (object) की भाँति कभी नहीं पाया जा सकता। यदि उसे ऐसे पाया जा सके तो ईश्वर या मोक्ष भी अनित्य हो जायेगा।



CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

विचारवान वह जो असफलता में भी प्रसन्न रहे। सफलता में प्रसन्न तो सभी रहते हैं।

विश्वास और अविश्वास complementary (परस्पर परिपूरक) हैं। विश्वास ऊपर होगा तो अविश्वास नीचे होगा। पदार्थ के लिये हम कभी नहीं कहते कि पदार्थ पर हमें विश्वास है क्योंकि पदार्थ पर हमें अविश्वास नहीं है। श्रद्धा प्रकाश की वह स्थिति है जहाँ विश्वास और अविश्वास का अंधकार तिरोहित हो जाता है।

श्रद्धा और विश्वास में फर्क है। विश्वास, श्रद्धा का नकली रूप है। विश्वास उस पर करना पड़ता है जो परोक्ष हो परन्तु श्रद्धा तब होती है जब चेतना के गहरे तल पर परमात्मा की झलक मिलती है।

दुःख में दुःख न मानना बड़ा तप है। परन्तु सुख में सुख न मानना और उसमें अविचलित रहना उससे भी बड़ा तप है।

तपश्चर्या बाहरी कृत्य है, तप एक मनोदशा है। तपश्चर्या दृश्य है, तप अदृश्य है। पहली आसान है दूसरा कठिन!

विज्ञान की अणु से, खण्ड से शुरू करने की पद्धति है। धर्म की विराट से, पूर्ण से शुरू करने की पद्धति है। अणु को पकड़ने से उसका बोध होगा। विराट को पकड़ा नहीं जा सकता; विराट का बोध उसमें लीन होने से, उसमें मिटने से ही होगा।

विज्ञान की खोज पदार्थ की खोज है; धर्म की खोज है चेतना की गहराईयों तक पहुँचने की।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

राजनीति व विज्ञान का उद्देश्य है वस्तु या परिस्थिति का रूपान्तरण; धर्म का उद्देश्य है व्यक्ति का रूपान्तरण।

बाहर की पकड़ जब ढीली पड़ती है तो अन्दर जाने का मार्ग मिलता है। बाहर की परिस्थितियों में लोभ न हो, दुनियाँ की चीजों का लोभ न हो तो ही अन्दर किसी गहरी वस्तु की खोज की जिज्ञासा पैदा होती है।

संदेह से भरा चित्त नकारात्मक (negative), अप्रामाणिक होगा। श्रद्धा से भरा चित्त विधायक, प्रामाणिक, positive होगा।

जो मेरा है वही सत्य है, इससे कलह उत्पन्न होती है। 'जो सत्य है' वही बस मेरा होगा, बस उसे ही मैं वरण करूंगा— यही दृष्टि होनी चाहिये।

श्रद्धावान व्यक्ति में यदि शंका भी उठेगी तो अपने पर, अपनी दृष्टि पर — भगवान पर नहीं। संशयवान व्यक्ति संशय को सदा दूसरे पर ही आरोपित करेगा। श्रद्धारहित व्यक्ति उलटे पात्र के समान है; चाहे कितनी भी वर्षा होती रहे उसमें जल नहीं जायेगा।

तपस्या, त्याग अपने आप में कोई आध्यात्मिक गुण नहीं हैं और न ही वे आध्यात्मिक जीवन के सार हैं। उनका वास्तविक प्रयोजन तो केवल उन विघ्नों को हटाना है जो प्रायः जीव और परमात्मा के बीच खड़े रहते हैं अथवा जो मनुष्य, साधक के जीवन में भागवती क्रिया और इच्छा को स्वतन्त्र रूप से सक्रिय नहीं होने देते। परन्तु तप, त्याग को जहाँ अपने आप में लक्ष्य समझ लिया जाता है, अथवा अध्यात्म का सार मान लिया जाता है और इनमें ही अपने अहम् की

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

संतुष्टि प्रतीत होने लगती है वहाँ साधक के वास्ते वे वैसा ही काम करते हैं जैसा भोगी मनुष्य के लिये भोग। वे तपस्वी में अहंकार की भावना जगा देते हैं जिससे वह उन लोगों के प्रति हीन दृष्टि रखने लग जाता है जिनके जीवन में त्याग और तपस्या आदि सद्‌गुण दृष्टिगोचर नहीं होते। इस प्रकार वे त्याग और तपस्या भी परमात्मा के अनुभव की ओर ले जाने के बजाय स्वयं विघ्न बन जाते हैं।

जो आए और चला जाए—चाहे वह सुख कितना ही बड़ा हो उससे वैराग्य बना रहे तभी शाश्वत तक पहुँचा जा सकता है।

परमात्मा को पकड़ने की प्रवृत्ति दूसरे प्राणी-पदार्थों को पकड़ने की प्रवृत्तियों को हटाने के लिये है। पकड़ने की प्रवृत्ति छूट जाने पर परमात्मा पकड़ में आ जाता है। संसारी लोग किसी को तो पकड़ने में लगे बिना रह ही नहीं सकते।

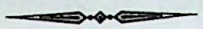
प्रायः लोगों को अपने दोष दिखायी नहीं देते; दूसरों के ही दिखायी देते हैं। किसी से कोई बात हो तो लगता है उसकी बात के कारण मुझे दुःख हुआ, होता अपनी निर्बलता से है। गलती दूसरे की और दण्ड हमको। क्रोध एक प्रकार से self punishment है।

संसार कर्मों से मिलता है, परमात्मा अकर्म से। कर्म से कुछ बनाया जा सकता है। परमात्मा तो पहले से ही है, उसे केवल पहचानना भर है।

शरीर का धर्म है inertia (जड़ता), प्राण का धर्म है movement (गति),

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

मन का धर्म है संकल्प-विकल्प, बुद्धि का धर्म है निर्णय करना। आत्मा इन सबसे परे है। इन सब गुणों का निषेध करने पर जो बचता है वह आत्मा है।



सेवा तो आध्यात्मिक साधना का एक अंग है। परन्तु सेवा दो प्रकार से की जाती है— एक सामाजिक दृष्टि से की जाती है जिसमें आप लोगों की sufferings (दुःख, पीड़ा) को देखकर दया भाव से उनकी सेवा करते हैं। ऐसी सेवा सत्वगुणी कर्म है जिससे समाज का लाभ होता है और सेवा करने वाले का चित्त शुद्ध होता है।

दूसरी सेवा किसी की आप भगवान के नाते से, भगवान की प्रसन्नता के वास्ते करते हैं। उस सेवा से दूसरे का लाभ तो होता ही है पर आपको उस सेवा के माध्यम से भगवान का स्मरण भी होता है। इस कारण से ऐसी सेवा भगवत्प्राप्ति का साधन भी बन जाती है।

सामाजिक सेवा तो एक नास्तिक व्यक्ति भी कर सकता है। दोनों सेवाओं में कर्म तो सेवा का होता है पर उस कर्म के पीछे भावनाएँ भिन्न होती हैं। इसलिये उनके फल अलग-अलग हो जाते हैं। दृष्टान्त के रूप में—

दो व्यक्ति गंगा में स्नान करते हैं। एक श्रद्धा से गंगाजी को परमात्मा के साथ जोड़कर स्नान करता है तो उसका शरीर तो शुद्ध होगा ही, पर स्नान के समय उसे परमात्मा का स्मरण भी होगा।

दूसरा व्यक्ति बिना श्रद्धा के, केवल जल समझकर गंगा में नहाता है तो उसका शरीर ही शुद्ध होगा, मन प्रफुल्लित भी हो सकता है, पर उसे परमात्मा का स्मरण उस समय गंगा स्नान से नहीं होगा।

साधारण आदमी जब किसी के हित के वास्ते कार्य करता है तो उसके मन में सेवा का भाव न आकर सहायता का भाव आ जाता है जिससे उसे लगता है कि मैं उस पर उपकार कर रहा हूँ। ऐसी सहायता से मन में अहंकार भी आ सकता है और जो सहायता लेता है, किसी मजबूरी के कारण, उसके मन में भी एक बोझ सा रहता है। दूसरों की सहायता करने से सहायता देने वाले की प्रतिष्ठा होती है और सहायता लेने वाले को भौतिक (material) लाभ होता है। परन्तु सूक्ष्म

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

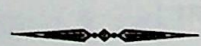
दृष्टि से देखा जाये तो इस प्रकार की सहायता की भौतिक उपयोगिता ही है। सहायता करने वाले की प्रतिष्ठा बढ़ने से उसके अभिमान की पुष्टि भी हो सकती है। परन्तु इससे परमात्मा का स्मरण हो यह जरूरी नहीं है।

जैसे कुछ लोग इसलिये अच्छे काम करते हैं कि प्रतिष्ठा होगी और मरने के बाद भी अपना नाम दुनिया में बना रहेगा। यह भावना बड़ी अज्ञान मूलक है क्योंकि मरने के बाद दूसरे जन्म में तो आपका नाम ही बदल जाता है। और फिर पूर्वजन्म की स्मृति भी नहीं रहती कि लोग आपको याद रख रहे हैं या नहीं।

क्या आपको पता है कि आपका पिछले जन्म में क्या नाम था। अगर आपने पिछले जन्म में अपने नाम के यश के लिये कोई बड़ा मन्दिर/आश्रम बनवा दिया हो या यश के लिये सेवा की हो, तो इस जन्म में तो आपका नाम ही दूसरा है और आपको पिछले जन्म की स्मृति भी नहीं है। वह यश आपके लिये पिछला शरीर छोड़ने के साथ ही समाप्त हो गया। अब उस यश से आपको कोई सुख नहीं मिल सकता।



परमात्मा की शक्ति से बड़ी कोई शक्ति नहीं है। आप उनकी शरण लेकर उनका नाम-स्मरण करते रहें तो आप पूर्णरूप से ठीक हो जायेंगे। इस बात का आप पूरा भरोसा रखें।



गायत्री मन्त्र तो वेदों का प्राण माना जाता है। गायत्री मन्त्र के जाप द्वारा परमात्मा से ऋतम्भरा प्रज्ञा के लिये प्रार्थना की गई है। ऋतम्भरा प्रज्ञा के द्वारा ही परमात्मा का साक्षात्कार होता है। ऋतम्भरा प्रज्ञा का अर्थ है परिष्कृत, शुद्ध और unified (अखण्डित) अतिमानसिक चेतना। गायत्री के जाप से साधक ऐसी चेतना को उपलब्ध होता है।

एक बहुत वृद्ध और अनुभवी महात्माजी ने मुझे बताया था (जो बाद में एक पुराण में भी पढ़ा और अपने अनुभव से भी देखा) कि गायत्री मन्त्र को अगर सप्त व्यवहृतियों से सम्पुट करके उसका जाप किया जाये तो अधिक व शीघ्र लाभ

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

होता है। अर्थात् गायत्री मन्त्र के पहले

"ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महाः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यम् ॐ"

व अन्त में (आगे व पीछे) लगाकर गायत्री मन्त्र का जाप करना चाहिये।

मन की चेतना तो एक transition stage (संक्रमण अवस्था) है। मन जब शुद्ध, शान्त और unified (समग्र) होता है तो उसका नाम व गुण बदल जाते हैं। जैसे जल को 100^0 सेन्टीग्रेड तक गर्म करें तो वह भाप बन जाता है। उसका नाम -गुण दोनों बदल जाते हैं। ऐसे ही अतिमानसिक चेतना मन का अत्यन्त परिष्कृत और unified रूप है। इस स्थिति में मन का नाम अतिमानस हो जाता है।

जैसे किसी दवाई को दूसरी किसी उचित दवाई से मिलाकर सेवन करने से दवाई का प्रभाव बढ़ जाता है ऐसे ही किसी भी मन्त्र को ॐ से सम्पुट करने (मन्त्र के आगे और पीछे ॐ लगाकर जपने) से उस मन्त्र की शक्ति और बढ़ जाती है और शीघ्र लाभ होता है।

मनुष्य के अन्दर एक देखने की आत्मा है और एक करने की (प्राण)। यह दोनों एक दूसरे से इतने identified हैं कि दोनों एक ही लगते हैं। इन दोनों को अलग-अलग करना ही ध्यान का मुख्य लक्ष्य है।

अधिकार का विषय बदलने से कोई फर्क नहीं पड़ता — फर्क पड़ता है अधिकार की भावना छूटने से। अधिकार की भावना से प्रत्याशा का जन्म अवश्य होगा। कर्तव्य की भावना से सेवाभाव उत्पन्न होगा।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

जिसको तुम छोड़ना चाहो तो भी न छोड़ सको वह परमात्मा। जिसे तुम पकड़ना चाहो लेकिन अन्त में ख़ाली हाथ रह जाओ—वह संसार।

सपने में जागना—सपने में जब ऐसी प्रतीति होने लगे कि मैं स्वप्न देख रहा हूँ तो स्वप्न तिरोहित होने लगता है।

परमात्मा के नाम में रस आयेगा तब जब परमात्मा से सकारात्मक सम्बन्ध की प्रगाढ़ भावना होगी या बोध होगा।

माँ को अपने बच्चे का नाम सुनने या कहने में एक प्रकार का रस आता है—सम्बन्ध के कारण। जहाँ सम्बन्ध की गहन भावना या प्रतीति नहीं रहेगी वहाँ रस नहीं आयेगा।

माँ-बच्चे के सम्बन्ध का आधार तो पति-पत्नी के सम्बन्ध से ही पैदा होता है जो केवल माना हुआ सम्बन्ध है। पति-पत्नी का सम्बन्ध विवाह के साथ ही बनता है; दोनों इस सम्बन्ध को मान लेते हैं। उसके पहले यह सम्बन्ध नहीं होता है। अगर वे न मानें तो कोई सम्बन्ध नहीं है। और इसी मानें हुए सम्बन्ध से सन्तान होती है।

जीव और परमात्मा का सम्बन्ध माना हुआ नहीं है या assumed नहीं होता। वह तो सत्य सम्बन्ध है even if you are not aware of it (चाहे आपको उसका ज्ञान न भी हो।).

जीव और परमात्मा का सम्बन्ध माँ-बच्चे के सम्बन्ध से भी अधिक real (वास्तविक) है। जो असत्य सम्बन्ध हैं, उनको सत्य मानने से वे सत्य प्रतीत होने लगते हैं तो जो सम्बन्ध सत्य ही है उसे मानने से वह सत्य प्रतीत क्यों नहीं होगा ?

परमात्मा को अपना सर्वस्व समझें और मनन करें। रोज बोलते हैं प्रभो ! आप ही पिता हो, आप ही माता हो, आप ही सखा हो। अगर परमात्मा को सर्वस्व नहीं मान सकते तो एक सम्बन्ध ही उनसे जोड़ें—पिता का, माता का, सखा का, स्वामी का।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

अभ्यास चाहे भजन-ध्यान का हो चाहे और किसी बात का। उसको दृढ-भूमि करना हो तो पांच-सात घण्टे लगातार बैठना उतना लांभकारी नहीं होता जितने short practice sessions लाभकारी होते हैं। यह पढ़ने के अभ्यास और भजन के लिये तो नितान्त जरूरी है कि एक ही बहुत लम्बे समय में बैठने की बजाये दिन में नब्बे-नब्बे मिनट करके चार बार बैठा जाये। अगर छः-सात घण्टे भजन में बैठेंगे तो भजन की quality उतनी अच्छी नहीं रह सकेगी। इसके पीछे बड़ा मनोवैज्ञानिक रहस्य है। इसी वास्ते दिन में तीन-चार बार संध्या हिन्दुओं में और पांच बार की नमाज़ मुसलमानों में प्रचलित है। और फिर जाप, ध्यान, सेवा, स्वाध्याय आदि में समय बाँटकर यदि साधना की जाये तो मनुष्य का सर्वांगीण विकास होता है।

मनुष्य चाहे प्रवृत्ति में रहे चाहे निवृत्ति में, प्रभु नहीं भूलना चाहिये। उसकी याद बनी रहे।

गुस्सा आये तो उसे झेल लेना चाहिये। रोकना नहीं। supress नहीं करना।

आपका स्वरूप तो सत्-चित्-आनन्द है। बाकी सब जगत् शरीर सहित असत्य। नाशवान को, असत्य को असत्य के रूप में देखते रहने से सत्य हृदय में प्रकट होने लगता है। प्रभु-स्मरण से असत्य तिरोहित होता है और सत्य प्रकट होता है—यह नियम है।

हृदय में प्रभु का गहरा प्रेम होना चाहिये और भजन के समय मन की पूरी तल्लीनता—बस ये ही दो बातें भजन का सार हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

सजगता का अर्थ है कि कोई क्रिया यांत्रिक नहीं होनी चाहिये—चाहे वह शरीर से होने वाली कोई क्रिया हो या मन से होने वाली चिन्तन की क्रिया।

जब व्यक्ति के अन्दर कोई इच्छा बड़ी तीव्र और शक्तिशाली हो जाती है तो उसकी reasoning (तर्कशक्ति) केवल उस इच्छा की पूर्ति के लिये rationalisation (संगतता बिठाने) का काम करती है, reasoning (तर्कशक्ति) का काम नहीं करती।

शरीर से बड़ा कोई आश्रम नहीं है। जब आप अन्तर्मुख होंगे तो आपको पता लगेगा कि आप कितनी forces (शक्तियों) से घिरे हैं जो आँखों से आपको दिखायी नहीं देतीं। सबसे बड़ी संस्था यह शरीर है। इसके साथ जुड़ा होने से सब द्वन्द्व पैदा होते हैं।

सापेक्ष जगत् में रहकर किसी नियम को भी absolute (निर्पेक्ष) नहीं बनाया जा सकता और न सापेक्ष सत्य को शाश्वत सत्य ही बनाया जा सकता है। जो ऐसा सोचते हैं और करते हैं वे कभी सफल नहीं होते और उनमें उस सापेक्ष सत्य को निरपेक्ष सत्य न बना पाने का अपराध बोध (self guilt) किसी न किसी अंश में बना ही रहता है।

ज्ञान तो अज्ञान को दूर करता है, किसी पदार्थ को दूर नहीं करता। ज्ञान तो जीवभाव को दूर करता है न कि जगत् की प्रतीति या शरीर को ही मिटा देता है। शरीर तो प्रारब्ध के पूरा होने से मिटेगा न कि अज्ञान के दूर होते ही मिट जायेगा। अगर शरीर अज्ञान के मिटते ही मिट जाता तो बुद्ध ज्ञान की प्राप्ति के बाद चालीस वर्षों तक जीवित कैसे रहते और ऋषिजन वेदों का ज्ञान कैसे प्रदान करते ?

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

Awareness (चेतना) तो तत्व है। सजगता (alertness) को उसका गुण या अभिव्यक्ति कह सकते हैं। सजगता भाव में भी चाहिये और witness में भी चाहिये। सजगता का अर्थ यहाँ attention (ध्यान) है।

भाव में अगर सजगता नहीं होगी तो रस कैसे आयेगा ? रस का बोध भी तो एक तरह से सजगता है। भाव (प्रेम) और सजगता दोनों एक साथ होंगे तभी तो प्रेम रस के रूप में बदलेगा।

सजगता और द्रष्टा में तो भेद है। आप बैठे हुए mechanically पाँव हिला रहे हैं तो उसमें पाँव हिलाने का बोध (सजगता) आपको कहाँ है।

जाप के शब्द का अर्थ आपके conscious mind (चेतन मन) में ही है। जाप में एकाग्रता होगी तो वह subconscious mind (अर्धचेतन मन) में भी जल्दी पहुँचेगा।

सात्विक भजन उसे कहते हैं कि जब भजन से उठें तो ऊबकर न उठें बल्कि उठने के साथ यह भाव आये कि मैं फिर जल्दी से जल्दी भजन में बैठूं। अर्थ है कि इतना खाओ कि भूख बनी रहे।

बिना सोचे 'स्मरण' करें। विश्लेषण न करें, स्मरण करें। विश्लेषण करेंगे तो दार्शनिक बन जायेंगे। स्मरण करेंगे तो विस्मरण टूटेगा, बेहोशी टूटेगी। विश्लेषण का अर्थ है analysis।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

सद्शास्त्र और संतों-ऋषियों के उपदेशों में दो elements होते हैं — एक eternal, शाश्वत, देश-काल-वस्तु-परिस्थिति-व्यक्ति निरपेक्ष। और दूसरा देश-काल-व्यक्ति-परिस्थिति सापेक्ष (temporal)।

भूखे को रोटी देना, अभ्यागत अतिथि को सत्कारपूर्वक भोजन खिलाना, लंगर चलाना आदि ये बड़े शुभ व नैतिक कार्य हैं। परन्तु आज की परिस्थिति के अनुसार लंगर चलाने से भी अधिक अच्छा है गरीब निस्सहायों को अपने पाँव पर खड़ा करने का प्रयास करना ताकि उनको किसी पर निर्भर न रहना पड़े और वे एक सम्मानजनक जीवन व्यतीत कर सकें, तथा गरीब बच्चों को नैतिक, आध्यात्मिक संस्कार देना ताकि वे बड़े होकर अच्छे नागरिक बन सकें और जीवन के सच्चे उद्देश्य की प्राप्ति के मार्ग पर चलकर अपने जीवन को सार्थक कर सकें।

जो किसी मन्दिर में या महात्मा को देते हैं उसे दान नहीं कहना चाहिये। उसे भेंट कहना चाहिये। देने वाला तो परमात्मा है। परमात्मा जो जीवों को देता है वह दान होता है। जीव तो भेंट ही कर सकता है।

हिन्दू धर्म में बुद्धि का परित्याग नहीं बताया। एक सीमा तक बुद्धि का सदुपयोग है। एक सीमा के आगे जहाँ बुद्धि का प्रवेश नहीं वहाँ intution या समाधिजन्य ज्ञान ही उसकी पूर्ति करता है। बुद्धि सत्य की प्रतिष्ठा नहीं कर सकती। परन्तु असत्य से सत्य को अलग भी तो बुद्धि ही करती है। असत्य को test करने का साधन क्या है ? उसे ही तो विवेक कहते हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

ज्ञान की तीन श्रेणियां हैं

इन्द्रिय-जन्य ज्ञान

बुद्धि-जन्य ज्ञान

समाधि-जन्य ज्ञान

शुद्ध भावना का दर्जा बुद्धि से ऊँचा है। जो हिसाब-किताब करने वाली बुद्धि है उससे शुद्ध भावना ऊँची है।

निष्काम कर्म से मन की मलिनता मिटती है, भक्ति-प्रेम-योग से मन का विक्षेप दूर होता है और ज्ञान के सम्पादन से अज्ञान का आवरण दूर होता है। सत्य/परमात्मा की पूर्ण, अपरोक्ष अनुभूति शुद्ध, शान्त और स्थिर अन्तःकरण में ही होती है।

दु:ख है प्रभुदत्त स्वतन्त्रता का दुरुपयोग। चुनाव की क्षमता का दुरुपयोग। साधन का मूल है — इस प्रभुदत्त स्वतन्त्रता का सदुपयोग।

जो स्वतन्त्र होगा वह unpredictable (अप्रत्याशित) होगा ही। उस पर भरोसा भी नहीं किया जा सकता। भविष्यवाणी वस्तु की हो सकती है, चेतना की नहीं।

प्रत्येक इन्द्रिय के पीछे मन की शक्ति कार्य करती है। मन जिस इन्द्रिय से अपने को हटा लेता है वह इन्द्रिय निश्चेष्ट हो जाती है। मन अगर अपनी पूरी शक्ति को एक ही इन्द्रिय में केन्द्रीभूत करे तो उस इन्द्रिय की शक्ति कई गुना हो जाती है।

साधारण मनुष्य अपने मन की शक्ति के दसवें भाग का प्रयोग भी नहीं

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

करता। मन-इन्द्रियों की सम्पूर्ण शक्तियों को एकत्रित करके साधक अगर उन्हें परमात्मा की प्राप्ति के मार्ग में लगाए तो उसे बड़ी शीघ्र सफलता मिल सकती है।



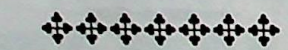
भक्ति के अनेक भाव होते हैं। दास्य-भाव, शान्त-भाव, वात्सल्य-भाव, सख्या-भाव और माधुर्य-भाव। ये सभी भाव श्रेष्ठ हैं। भिन्न-भिन्न भक्तों के भिन्न-भिन्न स्वभाव के अनुसार किसी को कोई भाव suit करता है तो किसी को कोई भाव।

दास्य-भाव में भक्त भगवान को अपना स्वामी मानता है और अपने को भगवान का दास। ऐसे भाव वाले भक्त को तो भगवान के चरणों का ध्यान करना ही अच्छा लगेगा। दूसरे भक्तों में दूसरे प्रकार का ध्यान या भक्ति प्रकट करने का तरीका होगा। सभी भाव उत्तम हैं।



परमात्मा एक ही है। वह अनन्त है। दो अनन्त सत्ताएं नहीं हो सकती। विभिन्न धर्मों के लोग उसी परमात्मा को विभिन्न नामों से पुकारते हैं।

कुछ स्वार्थी लोग परमात्मा के नाम पर लोगों को exploit (भड़काकर) करके झगड़े करवाते हैं। जिसको परमात्मा का बोध होता है वह तो सबमें परमात्मा का अनुभव करके आनन्द विभोर रहता है और आनन्द को radiate (विकीर्ण) भी करता है।



CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

बोध कथाएं

सातवां भाग

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

ॐ

1. एक बार संत फ्राँसिस अपने शिष्यों सहित यात्रा पर जा रहे थे। रास्ते में भीषण आँधी व तूफान आ गया। उस तूफान में फँसकर कई दिन उन्हें भूखे-प्यासे ही रहना पड़ा। ऐसी हालत में एक दिन उनका अपने एक शिष्य से कुछ इस प्रकार वार्तालाप हुआ—

संत फ्राँसिस : क्या आप जानते हैं कि संत किसे कहते हैं ?

शिष्य : जी नहीं, कृपा करके आप ही बतलाएं।

संत फ्राँसिस : वह व्यक्ति संत नहीं जो रोगियों को रोग मुक्त कर दे। संत उसे भी नहीं कहते जो मरे हुये व्यक्ति को कहे कि जिन्दा हो जाओ तो वह जीवित हो जाये। संत वह भी नहीं जो राजा को रंक बना सके; जो पशु-पक्षियों की भाषा जानता हो। संत वह भी नहीं जो पानी पर चल सके अथवा हवा में उड़ सके।

शिष्य : (घबराकर) तो महाराज, फिर संत कौन है ?

संत फ्राँसिस : मान लो आप आधी रात को वर्षा में थके मांदे एक नगर की धर्मशाला के दरवाजे पर आवाज लगाते हो; चौकीदार बाहर आता है और पूछता है कि क्या बात है। आप उससे भोजन की याचना करते हो तथा रात में रुकने के वास्ते आश्रय मांगते हो। वह आपकी वेष-भूषा देखकर कहता है, "भागो यहाँ से, भिखारी कहीं के", और दरवाजा बन्द कर लेता है। उस परिस्थिति में भी यदि आपका चित्त शान्त, उस व्यक्ति के प्रति बिना किसी दुर्भाव के बना रहता है तथा परमात्मा के प्रति आपके भक्ति-भाव में कोई व्यभिचार नहीं आता तो आप संत हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

भावार्थ : संत की पहचान उसकी चमत्कारी शक्तियों से नहीं होती। ऐसी शक्तियां तो असुरों के पास भी रहती हैं। संत के सच्चे लक्षण हैं — मान-अपमान में सम-भाव, विनम्रता, सहनशीलता तथा भगवान में अनन्य भक्ति-भाव।

2. प्रसिद्ध संगीत सम्राट तानसेन के संगीत गुरु थे संत हरिदास। तानसेन अकबर बादशाह के दरबार में संगीतज्ञ थे। एक बार अकबर ने तानसेन से कहा — "सुना है आपके गुरु हरिदासजी बड़े ही महान् संगीतज्ञ हैं। मेरी इच्छा उनका संगीत सुनने की है। आप जाकर उन्हें मेरी ओर से निमंत्रित करें तथा उन्हें यहाँ लायें तो मैं उनका गायन सुनूं।"

तानसेन : "जनाब, संत हरिदासजी तभी गाते हैं जब वे अपनी मौज में होते हैं। वे यहां आपके दरबार में आकर गाने के लिये राज़ी नहीं होंगे। आप एक बादशाह के रूप में नहीं बल्कि एक साधारण व्यक्ति के वेष में मेरे साथ उनके दर्शन करने चलें। वहां पर हो सकता है उनकी मौज गाने की हो जाये और आपको उनका गायन सुनने का सौभाग्य प्राप्त हो जाये।"

सम्राट अकबर समझ गये और एक साधारण व्यक्ति के रूप में वे तानसेन के साथ संत हरिदासजी के पास गये। दोनों ने नतमस्तक होकर संत को प्रणाम किया और उनके सामने बैठ गये। कुशल समाचार के बाद तानसेन ने अनेक प्रकार से प्रयास किया कि संत हरिदासजी गायें परन्तु वे सफल न हो सके। अन्त में तानसेन को एक तरकीब सूझी। उसने स्वयं गाना शुरु किया तथा चतुराई से जानबूझकर अपने गायन में गलतियां कर दीं। इस पर तानसेन को शुद्ध गायन समझाने के लिये हरिदासजी स्वयं गाने लगे। उनका गायन सुनकर अकबर आनन्द विभोर हो जैसे मन्त्र मुग्ध होकर लम्बे समय तक वहां बैठे रहे।

बाद में जब वापस आये तो अकबर ने तानसेन से कहा — "तानसेन! तुम्हारा गायन तो मीठा और रसपूर्ण होता ही है परन्तु जैसी मिठास और रस संत हरिदासजी के गायन में है वह तुम्हारे गायन में नहीं है।"

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

तानसेन ने मुस्कुराकर उत्तर दिया—"हुजूर, मैं आपको प्रसन्न करने के लिये गाता हूँ, परन्तु संत हरिदासजी भगवान को प्रसन्न करने के लिये गाते हैं। इसीलिये उनके गायन में अधिक मिठास व रस है।"

भावार्थ : भगवान के लिये जिये गये जीवन में जो मिठास और रस है वह रस संसार के लिये जिये गये जीवन में भला कहां !

3. बगदाद की रहने वाली रबिया नाम की सूफी संतनी का नाम भला किसने नहीं सुना होगा ! वे नगर से दूर एकान्त में कुटिया बनाकर रहतीं तथा अन्दर से दरवाजा बन्द रखकर सदा परमात्मा के भजन-स्मरण में मग्न रहा करतीं। बड़े-बड़े सूफी संत भी उनके दर्शनों के लिये आया करते थे।

एक दिन जब आसमान पर बादल छाये हुए थे और मौसम बड़ा सुहावना था तो एक सूफी संत रबिया की कुटिया पर आये और बाहर से आवाज़ लगायी, "रबिया अन्दर बैठकर क्या कर रही हो ? बाहर आकर अल्लाह की कुदरत को देखो। देखो बाहर कितना सुहावना दिन है और तुम अन्दर बैठी हो !"

रबिया ने अन्दर से ऊँचे स्वर में उत्तर दिया—"बाहर अल्लाह की कुदरत है और अन्दर अल्लाह स्वयं है। बाहर रहकर अल्लाह की कुदरत को देखा जा सकता है, परन्तु स्वयं अल्लाह को देखना है तो अन्दर आ जाओ।"

भावार्थ : अगर भगवान को देखना हो तो भीतर आना होता है, अपने अन्दर की गहनतम चेतना में डूबना पड़ता है।

4. एक प्रेमी ने अपनी प्रेमिका को एक लम्बा भावुक पत्र लिखा, प्रिये, मैं तुम्हारे बिना जीवित नहीं रह सकता। मैं दिन-रात तुम्हारे ही बारे में सोचता रहता हूँ, आदि आदि।" फिर अन्त में यह भी लिख दिया, "मैं तुमसे अमुक-अमुक दिन जरूर मिलूँगा, अगर उस दिन वर्षा न हुई तो।"

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

भावार्थ : जिस प्रेम के साथ कोई भी शर्त लगी हो वह सच्चा प्रेम नहीं है। परमात्मा को सचमुच मिलना है तो परमात्मा से बेशर्त (unconditional) प्रेम होना चाहिये।

5. एक महात्मा बाजार से गुजर रहे थे। रास्ते में भीड़ इकट्ठी होने से मार्ग अवरुद्ध था। देखा तो एक नवयुवक एक बूढ़े आदमी को जूते से पीट रहा था। पता चला कि पिता और पुत्र में किसी बात पर कहा-सुनी हो गयी और बेटा अपने पिता की जूते से पिटाई कर रहा था। महात्मा को दया आयी, वे आगे बढ़े और पिता की रक्षा की तथा कहा— "आपने देखा जगत् कैसा है! जिस पुत्र को तुमने पाल पोसकर बड़ा किया वही आज तुमको जूते से पीट रहा है। छोड़ो इस झूठे संसार को। चलो मेरे साथ। अब अपना शेष जीवन परमात्मा के भजन-स्मरण में व्यतीत कर जीवन को सफल बनाना। तुम्हारे रहने-सहने और भोजन की व्यवस्था मैं करूँगा।"

पिता ने महात्माजी की ओर व्यंगभरी दृष्टि से देखा और कहा— "आपको उपदेश देने के लिये किसने बुलाया है? क्या हुआ जो जूते मारे? आखिर है तो मेरा ही बेटा।"

भावार्थ : मोह की प्रबलता से जीव अन्धा हो जाता है तथा उचित-अनुचित और हित-अहित में अन्तर नहीं कर पाता।

अनाधिकारी को उपदेश देना व्यर्थ है।

6. एक निर्धन व्यक्ति था। इतना निर्धन कि उसे दो समय की रोटी भी खाने को नहीं मिलती थी। एक बार एक महात्मा उसके घर आये। उन्होंने उसे बताया—"तुम्हारे घर में अमुक स्थान पर अक्षय धन गढ़ा हुआ है। तुम उस स्थान को खोदो तो तुम्हारी दरिद्रता दूर हो जायेगी।" उस व्यक्ति ने महात्माजी की

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

बात पर विश्वास किया तथा गैंती-फावड़ा लेकर उस धन को प्राप्त करने के लिये उस जगह पर खुदाई आरम्भ कर दी। उसको वह जगह खोदने में बड़ा परिश्रम करना पड़ा। परन्तु उसे महात्माजी की बात पर पूरा भरोसा था। उसको उस स्थान को खोदने के परिश्रम में भी एक प्रकार का रस मिल रहा था। तब उसकी गैंती जमीन के अन्दर किसी बर्तन से टकराई तो आवाज को सुनकर उसे दबा धन मिलने की प्रत्याशा से हर्ष हुआ। फिर उसने वह बर्तन निकालकर उस धन को देखा तो उसके आनन्द का पार न रहा। बाद में उस धन का प्रयोग किया। उसकी सब दरिद्रता और दुःख मिट गये।

भावार्थ : संतजन और सद्शास्त्र बताते हैं कि आपके अन्दर परमात्मा रूपी आनन्द का अक्षय स्रोत है। आप उन पर दृढ़ विश्वास और श्रद्धा रखकर अपने अन्दर छिपे परमात्मा की खोज करें तो उस खोज में भी रस आयेगा और परमात्मा के मिल जाने पर तो तीनों तापों की निवृत्ति तथा परमानन्द की प्राप्ति होती ही है।

परमात्मा की खोज में भी रस है और परमात्मा की प्राप्ति में भी।

---

7. भीष्म पितामह तीरों की शैय्या पर मरणासन्न पड़े हैं। भगवान श्रीकृष्ण के आदेश से पांडव उनके पास उपदेश लेने आये हुए हैं। पितामह पांडवों के प्रति ज्ञानोपदेश कर रहे हैं। उपदेश के समय द्रौपदी भी वहीं पर है। वह हंस पड़ी और हृदय में टीस लिये कहने लगी—"पितामह, अब आप बड़े-बड़े उपदेश दे रहे हैं, परन्तु जब मुझे भरी सभा में नग्न किया जा रहा था तब आप चुप क्यों रहे ? आप स्वयं अधर्मी दुर्योधन के पक्ष में लड़ते रहे, तब आपका धर्म कहाँ था ?" पितामह ने गम्भीर वाणी में उत्तर दिया—"बेटी, दुर्योधन का अन्न खाकर मेरे अन्दर धर्म लुप्त हो गया था। अब उस अन्न से बना खून बह जाने से वह पुनः प्रकट हो गया है।"

भावार्थ : आहार का चित्त पर गहरा प्रभाव पड़ता है। व्यक्ति को न्याय

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

और धर्मपूर्वक कमाये गये धन से बना आहार ही ग्रहण करना चाहिये। जैसा अन्न, वैसा मन।

8. कश्मीर की प्रसिद्ध संतनी ललेश्वरी के पास अनेक ऋद्धियां-सिद्धियां थीं। एक बार उनके गुरुदेव ने कहा—"तुम्हारे पास अनेक ऋद्धि-सिद्धि हैं। कोई एक-आधी मुझे भी दिखाओ।" ललेश्वरी ने दो बड़ी रकाबियां मंगवाईं। एक रकाबी उसने नीचे जमीन पर रखी तथा दोनों पाँव उसमें रखकर बैठ गयीं। दूसरी रकाबी को उल्टा अपने सिर पर रख लिया। फिर आँखें बन्द कीं और ध्यान मग्न हो गयीं। उनका शरीर घटने लगा और धीरे-धीरे लुप्त हो गया तथा ऊपर की रकाबी नीचे की रकाबी के साथ लग गयी। उनके गुरुदेव ने ऊपर की रकाबी को उठाकर देखा तो बीच में एक सुनहरे रंग का द्रव था जो थर-थर काँप रहा था। गुरुजी ने ऊपर की रकाबी से उसे पहले की तरह ही ढक दिया। थोड़ी देर के बाद ऊपर की रकाबी ऊपर उठने लगी और धीरे-धीरे ललेश्वरी का शरीर उसमें प्रकट हो गया और वह सुनहरा द्रव गायब हो गया।

गुरुजी ने ललेश्वरी से पूछा—"सुनहरा द्रव रकाबी में थर-थर काँप रहा था—ऐसा क्यों?"

ललेश्वरी ने उत्तर दिया—"योग की इस अवस्था में पहुँचकर भी मैं भय से काँप रही थी कि भगवान के दरबार में स्वीकृत होऊँगी या नहीं।"

भावार्थ : सच्चे संत ध्यान साधना की उच्च विस्मयकारी अवस्था को पाकर भी अभिमान रहित एवं विनम्र बने रहते हैं।

9. एक सम्राट अपने कर्मचारियों के साथ भ्रमण पर निकला तथा संयोगवश नगर की श्मशान भूमि पर चला गया। वहाँ एक मस्त फकीर रहता था। राजा ने उससे पूछा—"आप श्मशान में क्यों रह रहे हो?" फकीर ने तुरन्त

CC-0. Vanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

कहा—"जो नगर में रहते हैं वे भी तो यहाँ ही आते हैं।" राजा ने उसके उत्तर से खीझकर उसे एक कीमती छड़ी दी और कहा—"जब तुम्हें स्वयं से भी बड़ा कोई अन्य मूर्ख मिल जाये तो यह छड़ी उसे दे देना।"

कई वर्षों के बाद राजा बीमार होकर मरणासन्न हो गया और यह खबर चारों ओर फैल गयी। उस फकीर को भी इसका पता चला। वह फकीर उस कीमती छड़ी को लेकर राजा के पास पहुँचा। राजा ने फकीर को पहचान लिया। उन दोनों में फिर बातचीत हुई। फकीर ने पूछा, "राजन्, जीवन यात्रा समाप्त सी प्रतीत होती है, आगे कहाँ जाओगे ?" राजा ने लड़खड़ाते शब्दों में उत्तर दिया, "मालूम नहीं।" फकीर ने फिर पूछा, "जब आप कहीं यात्रा पर जाते थे तो अनेक प्रकार के साधन, कर्मचारी, सेवक, रानियों को अपने संग ले जाते थे, अब अपने संग कितने कर्मचारी, रानियाँ लेकर जाओगे ? आपका राजकुमार बहुत प्यारा है, उसे संग न ले चलोगे ?" उत्तर देने के बजाय राजा अश्रु टपकाने लगा। तो अपने झोले से वही छड़ी निकालकर फकीर ने राजा के आगे रख दी और कहा कि यह छड़ी आपके लिये है। आपही की आज्ञा पालन के लिये आया हूँ। आप मुझे स्वयं से भी अधिक मूर्ख प्रतीत हुए जिन्होंने अपनी सारी आयु व्यतीत कर दी किन्तु अपने साथ कुछ भी ले जाने का बन्दोबस्त नहीं किया।

भावार्थ : मूर्ख वह नहीं जो संसार की असारता को पहचानकर तथा वैराग्य को प्राप्त होकर शाश्वत आनन्दस्वरूप परमात्मा की अनुभूति-उपलब्धि की साधना में संलग्न है। मूर्ख तो वह है जो सारी आयु उन पदार्थ-परिस्थितियों को प्राप्त करने तथा सामयिक सम्बन्धों को संजोने में ही व्यतीत कर देता है जिनमें से एक भी परलोक में साथ नहीं जाता।

---

10. एक राजा ने एक बकरी पाली हुई थी। वह बकरी खाती बहुत थी। उसने डोंडी पिटवा दी कि जो कोई इस बकरी को खिलाकर तृप्त कर देगा उसका विवाह राजा की पुत्री से किया जायेगा। परन्तु अगर कोई अपने प्रयास में असफल रहता है तो उसे मृत्युदण्ड भोगना होगा। तरीका यह था कि इच्छुक व्यक्ति

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

को उस बकरी को अपने घर पन्द्रह दिन रखना होता था। उस दौरान वह व्यक्ति उस बकरी को चाहे जैसे जितना खिलावे। पन्द्रह दिन बाद भरी सभा में बकरी के सामने घास का पूला रखा जाता था। यदि बकरी उसकी तरफ से मुँह फेर ले तो इसका अर्थ था कि वह तृप्त हो गयी।

राजकुमारी के साथ विवाह के इच्छुक कई युवकों ने अपना भाग्य आजमाया किन्तु उस पेटू बकरी को वे तृप्त न कर सके और उन्हें फाँसी पर चढ़ना पड़ा। अन्त में एक बुद्धिमान युवक ने उस बकरी को साधा। वह उसे रात्रि में केवल एक बार घास देता तथा दिन में भी उसके सामने घास का पूला रखता। रात में तो वह बकरी को घास खाने देता लेकिन दिन में बकरी के घास की ओर बढ़ते ही वह उसके मुँह पर जोर से एक छड़ी मारता। दस दिन में ही वह बकरी को प्रशिक्षित करके राजा के पास ले गया।

भरी सभा में बकरी को राजा के सामने लाया गया और उसके समक्ष घास का पूला रखा गया। पास में वह व्यक्ति वही छड़ी हाथ में लिये खड़ा था। बकरी ने उसकी तरफ देखा और घास के पूले को छुआ तक नहीं। उस व्यक्ति ने शर्त जीत ली।

भावार्थ : यदि मन रूपी बकरी कोई गलत माँग करे तो उसकी माँग पूरी न करके उसे उसी समय विवेक रूपी छड़ी से मारना चाहिये।

मन को tame करना (वश में करना), इन्द्रियों और मन को शुद्ध करना तथा उन्हें वश में करना आध्यात्मिक साधना का अनिवार्य अंग है।

---

11. एक साधु बहुत कठिन तपस्वी थे। उन्होंने पूरे तीन वर्ष तक एक शिला पर बैठकर घोर तप किया किन्तु उनकी मनोकामना सिद्ध न हो सकी। एक दिन उनका धीरज टूट गया। रुष्ट होकर जोर-जोर से चिल्लाकर वे कहने लगे, "प्रभु, आपने मेरे साथ न्याय नहीं किया। मेरे घोर तप का आपने मुझे क्या प्रतिफल दिया ?" तो इस पर आकाशवाणी हुई कि साधु, यदि न्याय ही माँगते

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

हो तो फिर जितने वर्ष तुम इस शिला पर बैठे हो, उतने वर्ष अब यह शिला तुम्हारे ऊपर बैठनी चाहिये। तपस्वी का अहंकार चूर-चूर हो गया।

भावार्थ : भगवान से उनकी कृपा की याचना करो, न्याय की नहीं। कार्य और कारण से परे परमात्मा को किसी भी कर्म से पाया नहीं जा सकता चाहे वह कितना ही महान् हो।

12. एक राजा विदेश यात्रा पर गया। जब वह स्वदेश लौटने लगा तो उसने अपनी सब रानियों को अलग-अलग पत्र लिखे और पूछा कि वह उनके लिये विदेश से क्या-क्या उपहार लाये। किसी रानी ने उत्तर में लिखा—"मेरे लिये अमुक-अमुक स्वर्ण के भूषण लाना।" किसी ने सबसे बढ़िया विदेशी कार (वाहन) की माँग की। किसी ने बहुमूल्य विदेशी वस्त्रों को लाने के लिये लिखा। परन्तु एक रानी ने लिखा—"प्रिय स्वामी! मुझे केवल आपकी चाह है। मैं सदैव आपका चिन्तन करती रहती हूँ। आप जल्दी आ जायें। आपके मिलने से मुझे सभी कुछ मिल जायेगा। मुझे आपके बिना और कुछ नहीं चाहिये।" जब राजा वापिस स्वदेश लौटा तो उसने सभी रानियों को उनके मनचाहे बहुमूल्य उपहार भेज दिये और वह स्वयं उस रानी के महल में रहने के लिये चला गया।

भावार्थ : केवल प्रभु की चाह रखो। भगवान के दरबार में जो चाहो वही मिल जाता है। अगर उनसे कुछ न मांगो तो वे स्वयं को ही अपने भक्त को दे देते हैं।

13. एक महात्मा भगवन्नाम जप के बहुत प्रेमी थे। अनेक भक्त उनके दर्शन करने और अपनी शंका समाधान करने उनके पास आते थे। एक दिन एक न्यायाधीश उनके पास आये तथा नाम-जप की शक्ति पर सन्देह व्यक्त करने लगे। भगवन्नाम में उनकी बिल्कुल श्रद्धा नहीं थी। वे उन महात्माजी से तर्क करने लगे।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

न्यायाधीश : हरि शब्द में क्या रखा है ? हरि-हरि करने से क्या हो जाता है ?

महात्मा : चुप कर साले।

न्यायाधीश महोदय को अपशब्द सुनकर बहुत बुरा लगा। बहुत देर तक वे महात्माजी को भला-बुरा कहते रहे। तब वे महात्मा प्रेम से उन्हें समझाने लगे, "देखो, यह शब्द 'साला' का ही प्रभाव है कि जिसने तुम्हारे अन्दर तीव्र क्रोध के भाव को जाग्रत कर दिया। मैं तो बाल ब्रह्मचारी हूँ। तुम मेरे साले न कभी थे, न कभी हो सकते हो।" इसी प्रकार प्रत्येक शब्द का मन पर अपना-अपना प्रभाव होता है तथा वह विशेष-विशेष भाव जाग्रत करता है। प्रभु-नाम सुनने या जपने से अन्तर में प्रभु-भक्ति का भाव जाग्रत होता है।

भावार्थ : हर शब्द में एक प्रकार की शक्ति होती है। शब्द शक्ति का प्रतीक होता है। प्रभु-नाम में अनन्त शक्ति समाविष्ट होती है। प्रभु-नाम का जाप चित्त को शुद्ध करता है तथा परमात्मा को स्मरण करने का सर्वसरल तथा प्रभावशाली साधन है। भगवद्नाम-जाप को सभी धर्मों में स्वीकार किया गया है।

---

14. किसी गाँव में एक मन्दिर बन रहा था। अपनी-अपनी सामर्थ्य और योग्यता के अनुसार सभी लोग मन्दिर-निर्माण में अपना सहयोग दे रहे थे। कोई ईंटें ढो रहा था, कोई मसाला बना रहा था और कोई पानी ला रहा था, आदि-आदि। लेकिन एक आदमी पास ही वृक्ष के नीचे आराम से लेटा हुआ था। किसी ने उससे भी कहा कि भई, तुम भी मन्दिर निर्माण में अपना सहयोग दो, ऐसे बेकार क्यों लेटे हुए हो ? वह आदमी कहने लगा—"पेट में कुछ नहीं है, भूखा हूँ, भूखे पेट भी कहीं काम होता है ?" तब किसी व्यक्ति ने उस पर दया करके उसे भोजन करा दिया। भोजन करके वह व्यक्ति फिर वृक्ष के नीचे लेट गया। अब जब उसे सेवा करने के लिये कहा गया तो वह कहने लगा, "मैं थोड़ा सुस्ता रहा हूँ, कहीं भरे पेट भी भला काम होता है ?"

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

भावार्थ : प्रायः लोग भजन-साधन करने की आवश्यकता, अनिवार्यता जानते हुए भी भजन नहीं करते, और कारण ठहराते हैं किसी न किसी प्रतिकूलता को। मन भजन न करने के अनेक झूठे बहाने ढूँढ लेता है।

15. एक वैरागी महात्मा थे। उनके पास सोने की एक-एक तोले की दो सुन्दर मूर्तियाँ थीं। एक हनुमानजी की तथा दूसरी श्रीरामजी की। एक बार वे महात्मा किसी आर्थिक संकट में फंस गये। अतः इच्छा न होते हुए भी वे दोनों मूर्तियों को बेचने सुनार के पास ले गये। सुनार ने दोनों मूर्तियों का वजन तोला और उन दोनों की एक ही कीमत बतायी। महात्मा क्रुद्ध होकर कहने लगे—"यह कैसे हो सकता है ? श्रीरामजी स्वामी हैं, हनुमानजी सेवक हैं। आप दोनों की एक ही कीमत कैसे लगा रहे हो।" सुनार ने हंसकर कहा—"मैं तो सोने को देखता हूँ, मूर्ति को नहीं।"

भावार्थ : ज्ञानी सारे नाम-रूपात्मक जगत् के पीछे उसी एक, अविनाशी, आनन्दस्वरूप, चेतन परमात्मा को देखता है।

16. ईसा एक कहानी अपने भक्तों से कहा करते थे। एक मजदूर अपने घर से तड़के ही काम की तलाश में निकला। एक जमींदार के खेत पर काम चल रहा था। उस मजदूर ने दो रुपये दिहाड़ी मांगी जो जमींदार ने मान ली और उसे खेत पर काम करने के लिये रख लिया। वह मजदूर काम करने लगा। दोपहर को उस जमींदार के पास एक अन्य मजदूर आया और कहने लगा कि उसे सवेरे से कोई काम नहीं मिला तथा उसने भी जमींदार से काम पर लगाने की प्रार्थना की। जमींदार ने उसे भी काम पर रख लिया तथा अपने खेत पर काम करने के लिये कहा। उसी जमींदार के पास सायं चार बजे फिर एक तीसरा मजदूर आया और कहा—"मैं सुबह से खाली हूँ तथा मेरे घर में खाने कि लिये कुछ भी नहीं है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

मुझे भी कोई काम दीजिये।" जमींदार ने दया करके उसे भी अपने खेत में काम पर लगा लिया।

शाम को छः बजे जमींदार अपने खेत पर गया और उसने तीनों मजदूरों को बुलाकर तीनों को ही दो-दो रुपये मजदूरी के दिये। यह देखकर पहले मजदूर को बड़ी तकलीफ़ हुई। वह कहने लगा—"यह मेरे साथ बड़ा अन्याय है। मैं सुबह से काम पर लगा हुआ हूँ। मुझे भी दो रुपये की मजदूरी तथा इन दोनों को भी मेरे बराबर की मजदूरी। यह अन्याय है।" जमींदार ने कहा—"तुम्हारे साथ अन्याय कहाँ हुआ ? तुमसे दो रुपये मजदूरी के तय किये थे और वे मैंने तुम्हें दे दिये। दूसरों ने मुझसे कुछ तय नहीं किया था। अतः उनको चाहे मैं जितना दूँ। मेरी सम्पत्ति पर मेरा अधिकार है।"

भावार्थ : अगर भगवान से न्याय मांगोगे तो मिलेगा; जैसा कर्म करोगे, वैसा फल पाओगे। किन्तु अनन्त प्रभु से उनकी कृपा की याचना करोगे तो वे तुम्हें अपने ज्ञान-प्रेम से माला-माल कर देंगे। इसलिये भगवान से बनिये की तरह हिसाब-किताब न रखो।

17. समर्थ गुरुरामदासजी एक दिन भिक्षा करने छत्रपति शिवाजी के पास जाते हैं और 'हरि नारायण' करते हैं। शिवाजी को पता लगते ही वे महल के द्वार पर दौड़कर आते हैं। बड़े प्रेम से गुरु की आवभगत करते हैं। फिर कुछ देर सोचकर एक कागज के टुकड़े पर कुछ लिखकर नम्रतापूर्वक वह टुकड़ा समर्थ रामदास की झोली में डाल देते हैं। उस कागज पर लिखा था—"मेरे पास जो कुछ भी है जिसे मैं मेरा कहता हूँ—मेरा तन, मन, धन, परिवार, राज्य और सब कुछ—यह सब कुछ आपको अर्पित करता हूँ।" समर्थ ने पढ़ा और हंसने लगे। फिर कहा—"मुझे स्वीकार है। जो कुछ भी तुम्हारा था अब मेरा हो गया। तुम्हारा यह राज्य भी मेरा है। किन्तु अब तुम मेरे प्रतिनिधि बनकर इसे संभालो तथा धर्म के अनुसार इसका संचालन करो।"

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

तत्पश्चात् शिवाजी जीवनपर्यन्त संघर्ष में बरतते रहे किन्तु सब कुछ समर्थ रामदास का मानकर, उनके नाते से, उनके प्रतिनिधि बनकर।

भावार्थ : साधक को जीवन में कुछ भी अपना नहीं मानना चाहिये। उसे चाहिये कि वह यहाँ प्रभु का प्रतिनिधि बनकर रहे तथा सेवाभाव से, भगवद्नाते से प्रदत्त कर्तव्य का प्रेम और तत्परता से पालन करे।

18. महान् संत सुकरात गहन विचार में मग्न बैठे थे। बाहरी जगत् की कोई खबर नहीं थी। उनकी पत्नी स्वभाव की बहुत तेज थी। उसने सुकरात को भोजन करने के लिये कई बार आवाज दी लेकिन ध्यान-मग्न होने के कारण वे उसकी आवाज को सुन नहीं पाये। पत्नी क्रोध से आगबबूला हो गयी तथा एक बाल्टी पानी की भरकर सुकरात के ऊपर उड़ेल दी। सुकरात बिल्कुल क्रोधित नहीं हुए। बल्कि हंसकर बोले— "सुना था, जो गरजते हैं वे बरसते नहीं। आज पता लगा कि कभी-कभी बरस भी पड़ते हैं।"

भावार्थ : क्रोध पर विजय अवश्य प्राप्त की जा सकती है। सुकरात अथवा अन्य प्रबुद्ध लोग क्रोध पर विजय पा सकते हैं तो आप भी पा सकते हैं। अपने अन्दर छिपे आत्म-प्रकाश को उजागर करें तो अन्धकार जनित काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार तुरन्त ही भाग जायेंगे।

19. महान् संत नामदेव के जीवन की घटना है। वे अपने खेत से गन्ने का एक गट्ठा अपने घर ला रहे थे। गाँव की गलियों से गुजर रहे थे तो बच्चों ने गट्ठे में से एक-एक करके सारे गन्ने निकाल लिये। केवल एक गन्ना उस गट्ठे में बच गया जिसे लेकर वे घर पहुँचे। घर पहुँचने पर पत्नी ने गट्ठे की ओर देखा और कहा कि तुम तो भरा गट्ठा लाने वाले थे, यह क्या है ? नामदेवजी ने बताया कि गाँव के बच्चों ने सब गट्ठा खाली कर दिया। एक ही गन्ना बचा था। यह

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

सुनकर उनकी पत्नी को इतना क्रोध आया कि उसने उस बचे हुए गन्ने को नामदेव के सिर पर दे मारा। संत को चोट तो लगी साथ ही गन्ने के दो टुकड़े भी हो गये। नामदेवजी हंसकर कहने लगे—"तुम बड़ी समझदार हो, तुमने गन्ने के दो भाग कर दिये—एक तुम्हारे लिये और एक मेरे लिये।"

भावार्थ : जिसके हृदय में अनन्त प्रेम स्वरूप परमात्मा का वास हो वहाँ क्रोध के लिये स्थान कहाँ !

---

20. फकीर बुल्लेशाह गली के बीचों-बीच होकर चल रहे थे। सामने से घोड़ा बग्गी वाला आ रहा था तथा जोर से आवाज लगा रहा था, "एक तरफ होकर चलो।" फकीर को, बग्गी वाले का वह वाक्य तीर की तरह लग गया। उन्होंने उस वाक्य के अर्थ पर खूब चिन्तन-मनन किया तथा अनन्यतापूर्वक संसार से मन को हटाकर भगवद्प्राप्ति के मार्ग पर चलने लगे।

भावार्थ : खंडित चित्त से कोई काम मत करो। परमात्मा को पाना है तो अनन्यभाव से उसे भजो।

---

21. आधी रात का समय था—एक घर में पति-पत्नी सोये हुए थे। बाहर कुछ खटका सा हुआ तो पत्नी की नींद खुल गई। वह पति को जगाने का प्रयास करने लगी। उन्हें हिलाकर बोली—

पत्नी : "अजी जागते हो, बाहर दरवाजे पर खड़का हुआ है, मालूम होता है कोई चोर है।"

पति : "मैं जाग रहा हूँ, चिन्ता मत करो।"

पत्नी (थोड़ी देर बाद) : "ऐसा लगता है कि चोर ने दीवार फाँद ली है और अन्दर आ गया है।"

पति : "मुझे मालूम है, फिकर की कोई बात नहीं।"

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

पत्नी (फिर): "अब तो ऐसा लगता है जैसे चोर दूसरे कमरे का दरवाजा भी तोड रहा है।"

पति : "हां हां, सब पता है मुझे।"

पत्नी (जोर से): "अब तो चोर सामान ले जा रहा है।"

पति (खीझकर) : "ओ हो, तुम बहुत बोलती हो, मुझे सब ज्ञान है।"

अन्त में पत्नी ने चिल्लाकर कहा, "घर लुट रहा है और तुम निष्चेष्ट पड़े हो; भाड़ में जाये तुम्हारा ऐसा जागना, ऐसा जानना!"

भावार्थ : वह जागना किस काम का जिसमें अपने घर की सम्पत्ति को चोर लूट ले जायें! वह ज्ञान किस काम का जो मन के विकारों और चंचलता को दूर न कर सके! केवल वाचक ज्ञान से न अपना ही कल्याण होता है न किसी दूसरे का।

---

22. श्रीतीर्थरामजी (जो बाद में परमसंत स्वामी रामतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हुए) अपनी पत्नी सहित टिहरी के ऊपर उत्तराखण्ड में एकान्तवास और भजन के लिये जा रहे थे। रास्ते में कई दिन निकल गये, खाने को कुछ नहीं मिला। आखिर उनकी पत्नी ने अपने पास से सोने की अंगूठी निकाली जो उसने मुसीबत के दिनों के लिये बचाकर रखी हुई थी। अंगूठी स्वामी रामतीर्थ को देकर कहा कि इसे पास के गाँव में बेचकर कुछ खाने को ले आइये। स्वामीजी ने अंगूठी लेकर कहा, "तुम्हारी इसी अंगूठी ने तो हमें अभी तक भूखा रखा क्योंकि तुम्हारा भरोसा भगवान में नहीं इस अंगूठी में रहा।" स्वामीजी ने अंगूठी नदी में फेंक दी। और उसी समय प्रभु-प्रेरणा से स्वादिष्ट भोजन का थाल लेकर स्वयं महाराजा टिहरी संत के पास पहुँच गये।

भावार्थ : भगवान पर भरोसा न रखकर धन पर भरोसा रखने वाले, धन पास होने पर भी भूखे ही सोते हैं।

भगवान पर पूरा भरोसा रखने वाले भक्त का योग-क्षेम भगवान सदा स्वयं वहन करते हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

23. फकीर बुल्लेशाह एक बार घूमते-घूमते एक गांव के बाहर पहुँच गये। तो देखा कि कुछ स्त्रियाँ एक घेरे में घूम-घूमकर कुछ-कुछ गा रही थीं। पता चला कि किसी व्यक्ति की मृत्यु हो गयी थी और इसलिये वे स्त्रियाँ छाती पीट-पीटकर विलाप कर रही थीं। गोले के बीच में एक स्त्री (नाइन) थी। पहले वह रो-रोकर, छाती पीट-पीटकर कहती थी, **"तोड़ गयो क्यों लाइयां।"** पीछे से घेरे की स्त्रियां कहती थीं, **"हाय-हाय साइयां।"** बुल्लेशाह को यह जानकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि बीच में खड़ी जो नाइन थी वह मृतक की कुछ नहीं लगती थी तो भी सबसे अधिक रोना-पीटना वही कर रही थी। विलाप करना नाइन का व्यवसाय था। वह ऐसे रोना-पीटना कर रही थी जैसे कोई नाटक में रोता और पीटता है। मृतक के लिये उस प्रकार से विलाप करना उस समय की परम्परा थी। वह दृश्य देखकर बुल्लेशाह को जीवन जीने की कला का बहुमूल्य सूत्र हाथ लग गया। उनके मुख से कविता के रूप में फूट पड़ा—

मन्दिर ना मिलया, मस्जिद ना मिलया,
मिल गया बिच माइयां, हाय-हाय साइयां।

भावार्थ : जगत् में अभिनेता की तरह रहो। भीतर से निर्लिप्त रहकर परिस्थिति और मर्यादा के अनुसार लोक-व्यवहार करो।

---

24. एक गुज्जर दूध में पानी मिलाकर बेचा करता था। एक बार वह मिलावट के अपराध में पकड़ा गया। उस पर मुकद्दमा चला। लेकिन न्यायाधीश ने गुज्जर को छोड़ दिया क्योंकि सबूत न होने से उसका अपराध साबित न हो पाया था। गुज्जर ने बहुत खुश होकर न्यायाधीश के लिये दुआ मांगी और कहा, "प्रभु आपको जल्दी ही forest guard (वन रक्षक) बना दे।" उस गुज्जर के लिये forest guard ही सब कुछ था।

भावार्थ : अज्ञानी भगवान से प्रार्थना भी करेगा तो किसी क्षुद्र वस्तु की मांग ही करेगा, जिसका उसके मन में बहुत मूल्य और महत्व होगा।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

25. एक किसान की बैलगाड़ी कीचड़ में फंस गयी। किसान हनुमानजी का अनन्य भक्त था। उसने बैलों को तो खोलकर एक ओर बाँध दिया और स्वयं बैठकर हनुमान चालीसा का पाठ करने लगा तथा हनुमानजी का आवाहन करने लगा। बहुत समय बाद उसकी अटूट निष्ठा और पुकार सुनकर हनुमानजी वहां प्रकट हो गये और कहा, "कहो प्रिय भक्त, मुझे किसलिये याद किया ?"

किसान ने उत्तर दिया, "भगवन्, मेरी बैलगाड़ी कीचड़ में फंस गयी है। कृपा करके इसे निकलवा दें।"

हनुमानजी : "आपकी गाड़ी तो मैं निकलवा देता हूँ परन्तु उचित तो यह था कि आप अपनी बैलगाड़ी को कंधा लगाकर कीचड़ से निकालने के लिये जोर भी लगाते और मुझ पर भरोसा रखकर मुझे याद भी करते। ऐसा करते तो बैलगाड़ी उसी समय निकल जाती। अब दोबारा मैं नहीं आऊंगा वरना ऐसे तो लोग आलसी हो जायेंगे।"

भावार्थ : सच्चा भक्त वही है जो किसी कार्य की सिद्धि के लिये स्वयं भी पुरुषार्थ करे तथा प्रभु-कृपा, प्रभु सहायता की भी याचना करे।

---

26. लाहौर के श्रीगुरुदत्तजी स्वामी दयानन्दजी के परम भक्त थे तथा बहुत समय वे उनके संग-सहवास में भी रहे। किसी ने उनसे कहा कि वे स्वामी दयानन्दजी की जीवनी लिखें क्योंकि वे उनके बहुत निकट रहे हैं। श्रीगुरुदत्तजी ने कहा ठीक है। इसके बाद कई बार उन सज्जन ने गुरुदत्तजी से पूछा कि वह जीवनी पूर्ण हो गयी कि नहीं। हर बार गुरुदत्तजी उन्हें यही कहते कि वे अभी भी जीवनी लिख रहे हैं। तो एक बार वे सज्जन उनसे पूछ ही बैठे कि वे कैसी जीवनी लिख रहे हैं जो खत्म ही होने में नहीं आती। गुरुदत्तजी ने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया, "हाँ स्वामी दयानन्दजी की जीवनी मैं अभी भी लिखने का प्रयत्न कर रहा हूँ, लेकिन किसी कापी पर नहीं। स्वामीजी का सद्चरित्र मैं अपने जीवन, अपने हृदय, अपने स्वभाव पर लिखने का निरन्तर प्रयत्न कर रहा हूँ।"

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

भावार्थ : संतों का जीवन-चरित्र अपने हृदय पर लिखें। अपना जीवन भी उनके पद्चिह्नों के अनुसार पवित्र व दिव्य बनाने का प्रयास करें। यदि हम ऐसा कर सकें तो ही हमनें उन्हें ठीक-ठीक पहचाना है।

27. भक्त प्रह्लाद को श्रीभगवान ने कृपा करके दर्शन दिये। प्रभु अपने भक्त को अपने लोक में ले चलने के लिये बडे आतुर थे। किन्तु कोमल हृदय प्रह्लाद ने कहा—**"नैतान विहाय कृपणान् विमुभुक्ष एकः"**—अर्थात् प्रभु! "दुःख में फंसे, डूबे हुए इन लोगों को छोड़कर मैं अकेला आपके धाम नहीं जाऊंगा। यदि आप इन सबको भी अपने धाम ले चलें तो ही मैं जा सकूँगा।"

भगवान ने कहा, "यदि कोई चलना चाहे तो मैं उसे ले जा सकता हूँ। किन्तु किसी को भी बलपूर्वक मैं कैसे ले जाऊं। बलपूर्वक ले जाने से तो जीव दुःखी ही होंगे। तुम उनको सुखी बनाना चाह रहे हो, लेकिन वे दुःखी हो जायेंगे। ऐसा करो, तुम उनसे पूछकर आओ। जो भी चलना चाहे, मैं उसे ले चलूँगा।"

प्रह्लाद भगवान की बात सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। वे एक-एक करके सबको पूछने लगे। सभी भगवान के धाम जाने को तैयार थे। लेकिन जब प्रह्लाद ने उनसे चलने को कहा तो सभी घबराकर कहने लगे "अभी नहीं, अभी नहीं।" कोई कहता था अभी लड़का छोटा है, कोई कहता था अभी बेटी की शादी करनी है, कोई कहता था कारोबार बहुत फैला हुआ है, कोई कहता था अमुक जिम्मेदारी निभानी हैं—आदि-आदि। अभिप्रायः यह है कि कोई भी चलने के लिये तैयार नहीं हुआ। अन्त में एक शूकर ने प्रह्लाद से पूछा, "मेरे पत्नी और बच्चे भी वहाँ चल सकेंगे या नहीं।" प्रह्लाद ने कहा, "ठीक है, इन्हें भी ले चलो।" तो उसने फिर पूछा, "वहाँ हमें हमारा खाना मिलेगा या नहीं। अगर नहीं, तो ऐसा वैकुण्ठ हमें नहीं चाहिये।"

भावार्थ : प्रभु-भजन अथवा प्रभु-प्राप्ति के मार्ग में अपने लिये मोहवश निर्धारित कर्तव्य-जिम्मेदारी की भावना तथा अपनी क्षुद्रताओं से लगाव सबसे

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

बड़े विघ्न हैं। परमात्मा से मिलने में देरी जीव की ओर से ही होती है, परमात्मा की ओर से नहीं।

28. रोम के एक प्रसिद्ध चित्रकार ने एक भोले-भाले बालक का चित्र बनाया। वह चित्र बालवत् सरलता, निष्कपटता और भोलेपन का साक्षात् मूर्तिमान रूप था। चित्र लोगों को इतना मनभाया कि हजारों की संख्या में बाजार में बिका।

कोई बीस वर्ष बाद उस व्यक्ति के मन में एक ऐसे व्यक्ति का चित्र बनाने की इच्छा हुई जिससे क्रूरता, दुष्टता और अपराध के भाव झलकते हों। बहुत तलाश करने पर उसे एक जेल में इन्हीं भावों को चेहरे पर लिये सजा काट रहा एक भयानक अपराधी मिल गया। चित्रकार उसका चित्र बनाने लगा। बातचीत हुई तो चित्रकार आश्चर्यचकित होकर कांप उठा — यह अपराधी तो वही सरल, भोला-भाला बालक था जिसका बीस वर्ष पहले उसने चित्र बनाया था। उस व्यक्ति ने चित्रकार को बताया कि कुसंग में पड़कर ही उसकी वैसी दशा हो गयी।

भावार्थ : हमेशा कुसंग से बचो।

व्यक्ति में शैतान और भगवान दोनों बनने की सम्भावनाएं छुपी हुई हैं। अतः यत्नपूर्वक, सजगता एवं साहसपूर्वक अपने अन्दर बैठे उस शैतान का वध कर दो।

कुसंग से सदा बचना चाहिये। कुसंग से बचने का सरल उपाय है सत्पुरुषों का संग करना।

29. एक व्यक्ति को एक दिन सिरदर्द हो गया तो वह सिर पर पट्टी बाँधे एक महात्माजी के पास गया। महात्माजी ने उससे पूछा, "भई, क्या हुआ है।" उसने कहा, "महाराज! सिर में दर्द है — जैसी भगवद् इच्छा!"

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

महात्माजी ने जरा जोर से कहा, "इतने दिन भगवान ने स्वस्थ रखा तो आपने कभी उनका धन्यवाद नहीं किया, आज जरा सिर दर्द हो गया है तो सिर पर झंडा लगाये फिर रहे हो, उन पर लांछन लगा रहे हो।"

भावार्थ : भगवान तो आनन्दस्वरूप हैं, सुखस्वरूप हैं, उनमें वास करने से व्यक्ति को दुःख हो ही नहीं सकता। भगवान की कृपाओं को पहचानकर उनका धन्यवाद करना सीखो, उन पर व्यर्थ लांछन न लगाओ।

साधारणतः जीवन में कोई भी दुःख आये तथा व्यक्ति प्रयास करके भी उसका निराकरण न कर सके तो कह उठता है, "जैसी भगवान की इच्छा"— मानो भगवान की इच्छा केवल लोगों को दुःख देने की ही होती है।

---

30. एक राजकुमार ऋषिकुल में विद्याध्ययन करता था। कई वर्षों बाद जब उसकी शिक्षा पूर्ण हुई तो उस राजकुमार के पिता तथा राजा स्वयं पुत्र को लेने ऋषिकुल में पहुँचे। विदाई के समय गुरु ने राजा के सामने ही राजकुमार को बुलाया और जोर से एक छड़ी जमा दी। छड़ी के आघात से राजकुमार के शरीर पर छड़ी की चोट का निशान उभर आया। इस पर भी राजकुमार तो शान्त और विनम्र बना रहा किन्तु राजा से नहीं रहा गया। उसने ऋषि से पूछा, "क्या मैं जान सकता हूँ कि किस अपराध के लिये राजकुमार को यह दण्ड दिया गया।" गुरु ने उत्तर दिया, "राजकुमार बहुत ही सुशील है। इसे दण्ड नहीं शिक्षा दी गयी है। बालक इतना नम्र, सावधान, आज्ञाकारी, परिश्रमी और बुद्धिमान है कि उसे यह शिक्षा देने का आज तक अवसर ही नहीं मिला। अतः इतनी शिक्षा इसकी बाकी रह गयी थी। इस बालक को राजा बनना है — दूसरों को दण्ड देना है। इसे स्वयं अनुभव होना चाहिये कि दण्ड से अपराधी को कितना कष्ट होता है।" ऋषि का उत्तर सुनकर राजा सन्तुष्ट हो गया।

भावार्थ : स्वयं कष्ट का अनुभव किये बिना दूसरे के कष्ट का ज्ञान नहीं होता। जीव के प्रशिक्षण और विकास में कष्ट और दुःख की भी भूमिका रहती है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

31. चीन में एक प्रसिद्ध संत च्वांगत्से हो गये हैं। उन्हें कभी किसी ने उदास नहीं देखा था। वे हमेशा प्रसन्न रहते थे। किन्तु एक दिन सवेरे लोगों ने देखा कि वे उदास बैठे थे। जब प्रियजनों ने उनसे उनकी उदासी का कारण पूछा तो वे बताने लगे, "मैंने बीती रात एक सपना देखा कि मैं एक बगीचे में तितली हो गया हूँ।" लोगों ने कहा तो इसमें क्या हो गया, सपने में तो कुछ भी दिखायी दे सकता है। च्वांगत्से ने कहा, "आप ठीक कहते हैं। हो सकता है किसी बाग में कोई तितली सो गयी हो और वह सपने में स्वयं को च्वांगत्से के रूप में देख रही हो। मेरा अस्तित्व वास्तविक नहीं है तथा मैं किसी तितली का सपना हो सकता हूँ, यही विचार करके मैं उदास हो गया हूँ।"

भावार्थ : जिउं सुपना अरु पेखना, ऐसे जग कउ जानि।
इनमें कछु सांचो नहीं, नानक बिनु भगवान ॥

32. बंगाल के प्रसिद्ध विचारक एवं समाजसेवी श्रीईश्वरचन्द्र विद्यासागर एक बार एक नाटक देखने गये। नाटक के एक दृश्य में एक अभिनेता एक लड़की को इतना तंग करता है कि ईश्वरचन्द्र विद्यासागर उसे सहन नहीं कर सके। आवेग में उठकर वे मंच पर पहुँच गये तथा उस अभिनेता को जूता दे मारा। सारे दर्शकगण यह देखकर हैरान रह गये।

भावार्थ : जगत् को स्वप्न के रूप में न देखने से या तो दुःख होगा या सुख। किन्तु इसे असत्य मानने से शान्ति मिलती है।

दुःख-सुख का कारण जगत् का सत्य प्रतीत होना है। नाटक भी जब सच्चा लगता है तो वहाँ भी अशान्ति हो जाती है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

33. एक नेत्रहीन व्यक्ति सूर्य की सत्ता को नहीं मानता था। कोई कितना ही समझाये वह मानता ही नहीं था। तो लोग उसे भगवान बुद्ध के पास ले गये। और उनसे प्रार्थना की कि वे उसे समझा दें। भगवान ने लोगों से कहा, "इसे आँखों के डाक्टर के पास ले जाकर इसकी आँखें बनवाइये तब यह सूर्य की सत्ता मानेगा। वैसा ही हुआ। नेत्र लौट आने पर वह व्यक्ति सहज ही सूर्य का अनुभव कर सका।"

भावार्थ : रूप का ज्ञान चक्षु से ही हो सकता है, न कि कानों से, जिह्वा से या नाक से। शब्द का ज्ञान कानों से ही होता है। इसी प्रकार परमात्मा की सत्ता तर्क या वाद-विवाद से सिद्ध नहीं की जा सकती। परमात्मा का साक्षात्कार तो ऋतम्भरा प्रज्ञा से होता है जो मन से ऊपर की चेतना है।

34. शेख फरीद से एक भक्त ने पूछा, "ईसा को सूली पर चढ़ाया, शमस तबरेज़ की जीवित ही खाल उतारी गयी तथा मन्सूर के अंग-अंग काट डाले गये, किन्तु इन लोगों ने उफ तक नहीं की। ऐसी भयानक पीड़ा सहन करने की योग्यता उनमें कहाँ से आ गयी?" शेख साहब ने अपने भक्त को कच्चा नारियल देकर कहा कि इसकी गिरी अलग कर दो। लेकिन वह व्यक्ति वैसा नहीं कर सका। अब शेख साहब ने उसे एक पका हुआ आधा नारियल देकर गिरी अलग कर देने को कहा। अबकी बार भक्त ने गिरी अलग कर दी बिना उसे तोड़े हुए ही। तो फरीदजी ने कहा कि ज्ञानी पके हुए नारियल की तरह होता है। वह अपने शरीर और शरीर के सुख-दुःख से अपने आपको अलग कर सकता है।

भावार्थ : प्रभु-प्रेम या आत्मा में स्थित होने के कारण ही ज्ञानी को शारीरिक कष्ट को आनन्दपूर्वक सहन करने में कठिनाई नहीं होती।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

35. एक बड़े पण्डितजी बहुत तर्कवादी थे। परमात्मा के अस्तित्व को नहीं मानते थे। वे सभी से कहा करते थे, "दूसरों को सुख दो, उनकी सेवा करो, यही सर्वश्रेष्ठ कार्य है। भगवान के भजन-स्मरण में कुछ नहीं रखा है। भले बनो और भला करो। भगवान को मानने की आवश्कता नहीं है।"

एक बार किसी ने देखा कि पण्डितजी बैठे हुए माला फेर रहे हैं। उस व्यक्ति ने उन्हें पूछा, "पण्डितजी आज आपके हाथ में माला कैसे ?" पण्डितजी बोले, "भगवान को तो मैं अब भी नहीं मानता, परन्तु सोचता हूँ कि अगर वह कहीं निकल आया तो क्या होगा ?"

भावार्थ : शंका-संशय रखकर भजन न करो। प्रभु पर पूरी निष्ठा-विश्वास रखकर ही भजन करो।

---

36. फकीर बुल्लेशाह भ्रमण पर कहीं जा रहे थे। एक गाँव के बाहर उन्होंने देखा कि तीन स्त्रियां पानी भरकर एक पंक्ति में एक दूसरे के पीछे चल रही हैं। उनमें जो सबसे आगे चल रही थी वह बालिका थी। बीच में एक युवती और उसके पीछे एक बूढ़ी स्त्री थी। फकीर अपनी ही मस्ती में बोलने लगे—"अगली दे न पिछली दे, सदके जावां बिचली दे।" आस-पास से गुजरते कुछ लोगों ने जब यह सुना तो उनको मनचला समझकर उन्हें मारने लगे। तो फकीर ने उन्हें स्पष्ट किया कि उनका अभिप्राय तो यह था कि भजन के लिये आयु न आगे की अच्छी होती है न पीछे (बुढ़ापे) की, बीच की ही अच्छी होती है।

भावार्थ : युवावस्था ही जीवन में कुछ सार्थक करने के लिये सबसे उपयुक्त है। युवावस्था में बल और उत्साह होता है। भजन-साधन भी जितना युवावस्था में किया जा सकता है उतना न तो बचपन में किया जा सकता है न वृद्धावस्था में। वृद्धावस्था में तो अनेक प्रकार के रोग शरीर को प्रायः घेरे रहते हैं जो भजन-साधन में बाधा डालते हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

37. फकीर नसरुद्दीन रोज सीमा पार गधों पर घास लादकर ले जाते थे। कस्टम (सीमा शुल्क) अधिकारियों को संदेह था कि घास में कोई बहुमूल्य वस्तुएं छिपाकर नसरुद्दीन उनकी तस्करी करते थे। अतः वे लोग उन पर कड़ी निगरानी रखते थे। तथा उन्होंने उन्हें पकडने की भी बहुत कोशिश की किन्तु कभी सफल न हो सके।

कई वर्षों बाद एक सेवानिवृत्त इन्सपैक्टर (निरीक्षक) को फकीर ने बताया कि वे वास्तव में गधों की तस्करी करते थे। इन्सपैक्टर तो सुनकर हैरान हो गया क्योंकि इस सम्भावना की ओर तो कभी किसी का ख्याल तक नहीं गया।

भावार्थ : पूर्वाग्रहों से ग्रस्त तथा सिद्धान्तों, धारणाओं और बनी बनायी मान्यताओं के कारण स्पष्ट सत्य को देखना भी कठिन हो जाता है।

---

38. तीन भिक्षु खड़े होकर एक बौद्ध मन्दिर के ऊपर फहराते झंडे को देख रहे हैं तथा उसके बारे में बातें कर रहे हैं—

पहला भिक्षु : झंडा हिल रहा है।

दूसरा भिक्षु : हवा हिल रही है।

तीसरा भिक्षु : मन हिल रहा है।

तीसरा भिक्षु बोधवान है।

भावार्थ : मन चलता है तो अस्तित्व की प्रतीति जगत् के रुप में होती है। मन के रुकने पर सब ठहरा हुआ प्रतीत होता है।

---

39. एक बार एक सम्राट बहुत बीमार पड़ गया। बहुत उपचार कराया लेकिन कोई औषधि काम नहीं आयी। उन्हीं दिनों एक फकीर भी गाँव के बाहर एक वृक्ष के नीचे ठहरा हुआ था। उससे भी एक मन्त्री ने राजा का जीवन बचाने

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

की प्रार्थना की। फकीर ने कहा, "एक ही रास्ता है। यदि राजा किसी ऐसे व्यक्ति की कमीज पहने जो पूर्ण रूप से आनन्दित हो तो उसकी जान बच सकती है।"

राजा के मन्त्रियों ने कई बार सब स्थानों में तलाश करवायी लेकिन ऐसा व्यक्ति नहीं मिल सका जो पूर्ण रूप से आनन्दित हो। अन्त में एक ऐसा व्यक्ति मिल भी गया जो पूर्ण रूप से आनन्दित था, लेकिन उसके तन पर कमीज तक नहीं थी।

भावार्थ : आनन्दित व्यक्ति वह भी हो सकता है जिसके पास कुछ भी न हो। और सब कुछ होते हुए भी व्यक्ति दुःखी हो सकता है। सच्चे आनन्द का पदार्थ-परिस्थितियों से क्या लेना-देना ? सच्चा आनन्द सदा पदार्थ-परिस्थिति निर्पेक्ष होता है।

---

40. एक बौद्ध गुरु अपने एक शिष्य को जागरूकता की शिक्षा दे रहे थे। उन्होंने शिष्य को एक बहुत ऊँचे वृक्ष पर चढ़ने की आज्ञा दी। बड़ी सावधानी से धीरे-धीरे चढ़ते हुए वह शिष्य वृक्ष के बिल्कुल ऊपर पहुँच गया। अब उसने सावधानीपूर्वक नीचे उतरना आरम्भ किया। जब वह उतरकर बिल्कुल भूमि के पास ही पहुँच गया तो गुरु ने कहा, "पुत्र, संभलकर, सावधानी से उतरना।" शिष्य बहुत सावधानी से भूमि पर उतर गया तथा चकित होकर आदरपूर्वक गुरुदेव से पूछने लगा, "गुरुदेव, जब मैं वृक्ष के शिखर पर, सबसे अधिक खतरे वाली स्थिति में था, तब तो आपने मुझे सावधान नहीं किया लेकिन तब जब कि कोई खतरा नहीं था और मैं लगभग भूमि पर सुरक्षित उतरने वाला ही था, आपने मुझे सावधान किया। कृपया इसका रहस्य मुझे बतायें।" गुरु ने कहा, "वत्स, जब कोई अपने आपको खतरे में महसूस करता है तो वह स्वयं ही सजग और सावधान होता है। असली खतरा तो तब होता है जब वह समझता है कि खतरा नहीं है और असावधान हो जाता है।"

भावार्थ : कठिनाई में, खतरे की स्थिति में व्यक्ति स्वाभाविक ही सजग होता है। जहाँ सुरक्षा का भाव होता है वहाँ प्रमाद और निद्रा घेर लेते हैं।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

किसी भी कार्य के समापन के निकट अक्सर व्यक्ति असावधान होकर गलतियाँ कर जाता है तथा पूरे कार्य पर की गयी मेहनत बेकार हो जाती है।

वस्तुतः सब मृत्यु की ओर अग्रसर हो रहे हैं। अतः अज्ञान, मृत्यु, अंधकार आदि खतरों के प्रति सजग होकर अपना अधिकाधिक समय प्रभु-स्मरण में लगाना चाहिये।

41. जापान में एक बैंकई नाम के महात्मा रहते थे। उनके पास एक साधक आया और कहने लगा, "मेरा स्वभाव बड़ा क्रोधी है। बहुत परेशान हूँ। कोई उपाय बतायें।" तो उन दोनों में आपस में चर्चा होने लगी।

महात्मा : क्रोध ? आपके पास तो बड़ी अजीब चीज है। जरा दिखाओ तो।

साधक : अभी तो मैं आपको नहीं दिखा सकता।

महात्मा : तो अपने क्रोध को आप मुझे कब दिखा सकते हो ?

साधक : समय का तो मुझे भी पता नहीं, वह तो अचानक आता है।

महात्मा : तो फिर विचार करो—क्रोध आपका स्वभाव नहीं है। वरना उसे अपनी इच्छानुसार दिखाना आपके लिये कठिन न होता।

भावार्थ : क्रोध आपका स्वभाव नहीं है। क्रोध आये तो उसे साक्षी बनकर देखो। वह विसर्जित हो जायेगा। होश और तैश, जागरूकता और क्रोध कभी आमने-सामने नहीं होते।

42. एक धनी व्यक्ति किसी महात्मा के पास गये और बार-बार उनसे कहने लगे कि वे उन्हें कुछ ऐसा मंगलदायक लिखकर दे दें जिसे पीढ़ी दर पीढ़ी संभालकर रखा जा सके। महात्मा ने कुछ सोचा और फिर एक कागज पर लिख दिया—"पिता मरे, पुत्र मरे, पौत्र मरे।" यह पढ़कर वह धनी व्यक्ति तो बहुत भयभीत हो गया और कहने लगा—"महाराज, मैंने तो आपसे परिवार के मंगल

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

के लिये कुछ लिख देने को कहा था आपने ये अभिशाप सूचक शब्द क्यों लिख दिये।" संत ने गम्भीर स्वर में कहा—"गहराई से सोचो, मरना तो एक दिन सभी को है ही। लेकिन पिता की मृत्यु के पहले पुत्र अथवा पौत्र की मृत्यु होती है तो यह अमंगलकारी है। बचने वाला तो वैसे भी कोई नहीं है अतः यदि पहले पिता, फिर पुत्र, फिर पौत्र—इस क्रम से परिवार में मृत्यु हो तो यह आशीर्वाद ही है।"

भावार्थ : संतों के वचनों में रहस्यपूर्ण आशीर्वाद निहित रहता है। जो जन्मता है वह मरता जरूर है। मृत्यु विकास के लिये आवश्यक भी है परन्तु पुत्र की मृत्यु पिता की मृत्यु से पहले होना अमंगलकारी ही समझा जाता है।

---

43. भगवान कृष्ण अर्जुन के साथ अपने एक समृद्ध भक्त के घर गये। भक्त ने उनकी बहुत आवभगत की। भगवान ने उसे आशीर्वाद दिया तथा वह और भी समृद्ध हो गया। इसके बाद भगवान अपने एक निर्धन भक्त के पास गये। उसने भी अपनी सामर्थ्य अनुसार बहुत श्रद्धा और प्रेम से भगवान की सेवा की परन्तु उसकी एकमात्र गाय मर गयी। अर्जुन भगवान का यह न्याय समझ न सके। उन्होंने भगवान से कहा, "प्रभु निर्धन भक्त की एक मात्र गाय भी आपने क्यों छीन ली ?" भगवान ने कहा, "अर्जुन उस निर्धन भक्त की मुझमें दृढ़ भक्ति है, किन्तु यह गाय ही उसके और मेरे बीच में बाधा बनी हुई थी। अब वह बाधा भी दूर हो गयी।"

भावार्थ : भगवान भक्त तथा स्वयं के बीच में किसी भी वस्तु अथवा व्यक्ति को बाधा नहीं बनने देते। वे सदैव अपने भक्त के आध्यात्मिक हित में तत्पर रहते हैं।

हम अपनी सीमित बुद्धि से भगवान के कामों को नहीं समझ सकते। जिस विधान में हम अपना अहित समझते हैं उसमें हमारा हित छुपा रहता है।

भगवान का विधान न्यायकारी तो होता ही है, हितकर भी होता है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

44. एक बड़ा काफिला कहीं जा रहा था। सामान लादने के लिये पचास गधे भी थे। रास्ते में रात व्यतीत करने के लिये काफिला एक गाँव के बाहर रुका। उन्चास गधों को तो खूँटी से बाँध दिया परन्तु पचासवें गधे की खूँटी और रस्सी रास्ते में कहीं गुम हो गयी। अतः उसे बाँधा नहीं जा सका। पास में ही एक फकीर की कुटिया थी। तो काफिले का मालिक उससे रस्सी माँगने के लिये उसकी कुटिया पर गया। फकीर ने कहा, "मेरे पास रस्सी तो नहीं है लेकिन एक युक्ति आपको बताता हूँ। उस गधे के पास जाकर उसके निकट पत्थर से इस प्रकार चोट करो मानो खूँटी गाड़ रहे हों। फिर हाथों को गधे के गले के चारों ओर फिरा कर झूठमूठ की रस्सी बाँध दो।" फकीर के निर्देशानुसार वैसा ही किया गया। वह गधा पूरी रात वहीं झूठे खूँटी और रस्सी से 'बंधा' खड़ा रहा। प्रातः जब काफिला आगे को चला तो वह गधा चले ही ना। काफिले का मालिक फिर फकीर के पास आया और कहा, "साईं साहिब! अब एक नई समस्या बन गई है। जैसे आपने फरमाया था वैसे ही मैंने गधे को बाँध दिया था और रातभर वह खड़ा रहा परन्तु अब वहां से चलता ही नहीं और काफिला जाने के वास्ते तैयार है।" फकीर ने कहा, "जैसे आपने उसे इशारों से बाँधने का झूठ-मूठ का नाटक किया था, अब उसे खोलने का झूठा नाटक करो। झूठ-मूठ की खूँटी को उखाड़ो, उसके गले में से झूठ-मूठ की बँधी रस्सी को भी खोलो।" काफिले के मालिक ने वैसा ही किया। गधा चल पड़ा।

भावार्थ : जीव के सब बन्धन, दुःख तथा परतंत्रता काल्पनिक हैं। वे अज्ञान-जनित हैं। यदि वे सत्य होते तो उनको मिटाना-दूर करना सम्भव ही न होता। बन्धन, दुःख माने हुए हैं। स्वतंत्रता और आनन्द आत्मा का सच्चा स्वभाव है।

---

45. एक नेत्रहीन व्यक्ति को एक दिन उसके मित्र ने भोजन पर आमंत्रित करके उसे स्वादिष्ट खीर खिलायी। खीर उस व्यक्ति को बहुत अच्छी लगी। उसने मित्र से कहा, "यह बहुत स्वादिष्ट व्यंजन है; क्या चीज है।" मित्र ने कहा, "यह

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

खीर है, दूध से बनायी है।" उसने पूछा, "यह दूध कैसा होता है ?" मित्र ने उत्तर दिया, "बगुले जैसा एकदम सफेद।" उसने फिर प्रश्न पूछा, "यह बगुला कैसा होता है ?" अब वह बेचारा अपने नेत्रहीन मित्र को कैसे समझाये। तो उसने एक उपाय सोचा। उसने अपने मित्र के हाथ को टेड़ा करके उसे समझाया कि बगुले की गर्दन ऐसे हाथ की तरह टेढ़ी होती है। फिर तो उसका मित्र आश्वस्त होकर बोला, "ओह, अब मैं समझा। दूध हाथ की तरह टेढ़ा होता है। और इसलिये वह जो स्वादिष्ट खीर आपने मुझे खिलायी वह टेढ़ी खीर थी।"

भावार्थ : अन्धे व्यक्ति को प्रकाश का बोध तो तब होगा जब उसकी आँखों का सफल उपचार हो। आत्म-साक्षात्कार तर्क-वितर्क से नहीं होता। उसके लिये चित्त शुद्धि तथा चित्त की शान्ति और स्थिरता अपेक्षित है।

आत्मा अथवा सत्य का विचार नहीं साक्षात्कार चाहिये।

---

46. पश्चिम के देशों में काले-गोरे का बहुत भेद रहा है। एक चर्च में एक काला आदमी जाना चाहता था। वहाँ अधिकांश गोरे लोग ही रहते थे। उस चर्च का पादरी बहुत कट्टर था और किसी भी काले आदमी को चर्च में नहीं घुसने देता था। (जैसे भारतीय समाज में व्याप्त एक कुरीति के अनुसार हरिजन मन्दिरों में प्रवेश नहीं कर सकते थे।) तो पादरी ने उस काले आदमी से कहा, "देखो, तुम्हारा हृदय अभी शुद्ध नहीं है। चर्च में अभी आओगे तो भी तुम्हें कोई लाभ नहीं होगा। अतः पहले अपना चित्त शुद्ध कर लो।" वह सरल व्यक्ति अपना चित्त शुद्ध करने की साधना में लग गया। कई वर्षों की साधना के उपरान्त उसका अन्तःकरण शुद्ध हो भी गया। तो वर्षों बाद उस पादरी ने उस काले व्यक्ति को एक चौराहे पर खड़े देखा। वह बहुत शान्त था, आनन्दित था। पादरी ने उससे पूछा, "फिर तुम चर्च में दुबारा नहीं आये ?" उसने उत्तर दिया, "एक रात परमात्मा स्वयं मेरे स्वप्न में आये और मुझसे कहा, तू उस चर्च में जाने की आशा छोड़ दे। दस साल से मैं खुद उस चर्च में घुसने की कोशिश में हूँ लेकिन पादरी मुझे अन्दर जाने ही नहीं देता, तुमको कैसे जाने देगा।"

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

भावार्थ : मन्दिर, मस्ज़िद, गुरुद्वारे, चर्च आदि धर्मस्थान जब मनुष्य-मनुष्य के बीच भेदभाव करने लगते हैं तो परमात्मा की दिव्य-शक्ति वहाँ से लुप्त हो जाती है।

47. मुल्ला नसरुद्दीन को अपनी पत्नी की हत्या करने के आरोप में फांसी की सजा हुई। जिस दिन उसे फांसी दी जानी थी, उस दिन फांसी के समय से ठीक कुछ देर पहले कुछ लोग मुल्ला से मिलने जेल में आये। बहुत देर तक मुल्ला की उन लोगों से बहस हुई, कुछ सौदेबाजी सी होती रही। आखिर उनमें आपस में कुछ तय हो गया।

मुल्ला काफी चर्चित व्यक्ति था। तो हजारों की संख्या में लोग उसे फांसी पर चढ़ते देखने के लिये उपस्थित थे। फांसी देने से पहले मुल्ला से कहा गया कि अगर अन्तिम समय उसकी कोई इच्छा है तो वह कहे। मुल्ला फांसी के तख्ते पर खड़ा होकर लोगों को गम्भीर स्वर में कहने लगा, "मेरा अन्तिम समय आ गया है। मुझे आपको केवल एक ही बात कहनी है और वह यह है कि हरक्यूलिस की साइकिल दुनिया की सर्वश्रेष्ठ साइकिल है। यह बात मैं अपने जीवनभर के अनुभव के आधार पर कह रहा हूँ। अतः आप सब हमेशा हरक्यूलिस ब्रांड की साइकिल का ही प्रयोग करें।"

मुल्ला ने अपनी बात पूरी की और उसे फांसी पर चढ़ा दिया गया। फांसी के फन्दे से उसके शरीर को उतारा गया तो उसकी जेब से बीस टके जमीन पर गिरे। उन बीस टकों की खातिर ही मुल्ला अपनी मृत्यु को भूलकर साइकिल के विज्ञापनकर्त्ताओं से सौदेबाजी करता रहा था। आज के मनुष्य की यही कहानी है।

भावार्थ : धन का लोभ मृत्यु और परमात्मा को भुला देता है।

संसार स्वार्थी है। वह आपके दुःख, आपकी मृत्यु का भी अपने स्वार्थ के लिये उपयोग कर लेता है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

48. एक फकीर थे। वे काफी समय भजन-स्मरण में व्यतीत करते थे। उन फकीर की दाढ़ी बहुत सुन्दर थी जो उन्हें बहुत प्रिय थी। अतः भजन-स्मरण के साथ-साथ वे अपनी दाढ़ी संवारने में भी काफी समय लगाते थे। हज़रत मूसा सिनाई की तरफ जा रहे थे तो रास्ते में उस फकीर के पास रुके। फकीर ने उनसे कहा, "कि आप कृपया भगवान से पूछें कि इतना भजन-साधन करने के बाद भी मुझे भगवद् उपलब्धि क्यों नहीं हो रही है ?" जब हज़रत मूसा ने भगवान से उस बारे में पूछा तो भगवान ने कहा, "यह सच है कि वह फकीर अच्छा साधक है, बहुत इबादत करता है, परन्तु वह अपनी दाढ़ी पर काफी ध्यान/समय देता है।" मूसा ने अपनी यात्रा से लौटते समय उस फकीर को भगवान का उत्तर बता दिया। फकीर ने जब यह सुना तो उसे मन ही मन पश्चात्ताप हुआ। उसने अपने आपको बहुत कोसा। अब उसने अपनी दाढ़ी के बालों को नोचना शुरु कर दिया। उसके बाद अनेक वर्ष बीत गये परन्तु उस फकीर को फिर भी भगवान के दर्शन नहीं हुए। जब दुबारा मूसा से भेंट हुई तो फकीर ने फिर प्रार्थना की कि वे भगवान से दुबारा पूछें कि अब उसे भगवान के दर्शन क्यों नहीं होते। तो उस फकीर के बारे में गैब्रील (यहूदी धर्म के एक देवदूत) ने मूसा से कहा, "यह फकीर पहले अपनी दाढ़ी को संवारने में बहुत समय देता था, अब यह अपनी दाढ़ी को नोचने में उससे भी अधिक समय देता है। दोनों ही परिस्थितियों में इसका ध्यान दाढ़ी की ओर ही है।"

भावार्थ : क्या नहीं करना चाहिये, यह जानकर भी जरूरी नहीं कि मनुष्य यह जान सके कि उसे क्या करना चाहिये।

संसार के पीछे भागना या संसार से दूर भागना, पदार्थ को पकड़ने में लगे रहना या पदार्थ को त्यागने में लगे रहना, एक ही बात है। दोनों स्थितियों में दृष्टि पदार्थ पर ही लगी रहती है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

49. चीन में दो व्यापारियों ने एक ही बाजार में आमने-सामने अपनी-अपनी दुकानें खोलीं। दोनों ही व्यापारियों का काम अच्छा चल निकला। दोनों धनवान हो गये। किन्तु हैरानी की बात यह थी कि धन वैभव बढ़ने के बावजूद भी दोनों अधिक दुःखी और अस्वस्थ हो गये। दोनों ने ही बहुत उपाय किये किन्तु कुछ लाभ नहीं हुआ; दुःख-रोग बढ़ते ही गये। अन्त में उन्हें किसी ने चीन के प्रसिद्ध रहस्यवादी कन्फ्यूशियस के पास जाने की सलाह दी। तो वे अपनी समस्या लेकर कन्फ्यूशियस के पास पहुँचे। कन्फ्यूशियस ने उनकी पूरी समस्या, जीवन-शैली आदि सबके बारे में ध्यान से सुना और फिर एक बड़ा विचित्र उपाय बताया। उन्होंने उन दोनों से कहा कि वे अपनी-अपनी दुकानों पर अपने-अपने काउंटर (दुकान पर दुकानदार के बैठने का स्थान) बदल लें। बात यह थी कि दोनों व्यक्तियों की दुकानों के काउंटर एक दूसरे के ठीक सामने थे। इसलिये दोनों ही व्यक्तियों की नजर हमेशा एक दूसरे की दुकान पर जाने वाले ग्राहकों पर रहती थी। दूसरे की दुकान पर ग्राहकों को जाते देख उन्हें बड़ी ईर्ष्या और तकलीफ होती थी। उन दोनों के दुःख-रोग का कारण इतना भर था।

संत के कहने से दोनों नें अपने-अपने काउंटर बदलकर ऐसी जगह बनाये जहाँ से दूसरी दुकान पर जाते हुए ग्राहक दिखायी नहीं देते थे। बस, दोनों स्वस्थ हो गये।

भावार्थ : जीवन में आगे बढ़ने की दौड़, आशा, प्रतिस्पर्धा, ईर्ष्या—यही मनुष्य को दुःखी बनाते हैं।

अज्ञानी मनुष्य अपने दुःख से उतना दुःखी नहीं होता जितना दूसरे को सुखी देखकर दुःखी होता है।

---

50. विश्व-विख्यात वैज्ञानिक आइन्स्टीन को उनके एक मित्र ने अपने घर पर रात्रि-भोज पर आमंत्रित किया। भोजन समाप्त होने पर दोनों मित्र बैठकर आपस में बातचीत करने लगे। गप-शप होने लगी। इधर रात बढ़ती गयी। रात के बारह बजे, फिर एक भी बज गया। गृहस्थी मित्र को नींद भी आने

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

लगी लेकिन आइंस्टीन जैसे व्यक्ति को वह कैसे कहे कि समय बहुत हो गया है, अब आप जायें। इधर आइन्स्टीन भी बार-बार घड़ी देख रहे हैं। पर उठकर जाते नहीं। मित्र बड़ा परेशान हो गया। आखिर रात के दो बजे आइन्स्टीन ने अपनी घड़ी की ओर देखकर अपने मित्र से कहा—"क्षमा करें, रात के दो बज चुके हैं; बहुत समय हो गया है, मेरा ख्याल है कि अब आप अपने घर लौट जायें।" मित्र चकित होकर बोला—"क्षमा करें, यह घर तो मेरा है। मैं तो आपके जाने की प्रतीक्षा कर रहा था।"

भावार्थ : जो व्यक्ति यह तक भूल जाता है कि यह मेरा घर है या दूसरे का, उसके जीवन पर वासना की पकड़ नहीं हो सकती।

बुद्धि/विचार प्रधान व्यक्ति को परमार्थ में वासना-इच्छा उतनी बड़ी बाधा नहीं है जितनी कि उसके मन में सोचने-विचारने की प्रक्रिया का चलते रहना।

---

51. लाओत्से सिद्ध संत थे। उनके पास एक व्यक्ति उन्हें आदर-मान देने के लिये आता है। लाओत्से उस व्यक्ति से कहते हैं, "क्षमा करें, मैं अपमान नहीं चाहता।" वह व्यक्ति चकित होकर कहता है, "महाशय, मैं तो आपको आदर-सम्मान देने आया हूँ, न कि आपका अपमान करने।" लाओत्से ने कहा, "सम्मान आ गया तो अपमान बाहर ड्योड़ी के द्वार पर खड़ा इन्तजार कर रहा है।"

भावार्थ : जीवन में सम्मान और अपमान, दुःख और सुख आदि या तो इकट्ठे रहते हैं या दोनों ही नहीं रहते। सम्मान की आशा रखेंगे तो अपमान बिना चाहे ही चला आयेगा; फिर उससे बचने का कोई उपाय नहीं है।

---

52. एक महात्मा झील के किनारे विचरण कर रहे थे। एक स्थान पर देखा कि एक व्यक्ति झील में कूदता है, गोता लगाता है और बाहर आ जाता है।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

वह बार-बार ऐसे ही कर रहा था। महात्मा ने उससे पूछा कि वह ऐसे क्यों कर रहा था। उस व्यक्ति ने कहा, "देखिये उस स्थान पर झील की तलहटी में वह आम पड़ा हुआ है। परन्तु जब मैं उसे लेने के लिये गोता लगाता हूँ तो वह आम पता नहीं कहाँ गायब हो जाता है, मिलता ही नहीं है।" महात्मा ने उस व्यक्ति को झील के तट पर लगा आम का वृक्ष दिखाया और समझाया, "आम पानी में नहीं वृक्ष पर लगा है। पानी में तो केवल उसका प्रतिबिम्ब पड़ रहा है जिससे वहाँ आम होने का भ्रम हो रहा है। इसलिये आम पाना हो तो उसे प्राप्त करने का सही स्थान वृक्ष है।" इसी प्रकार मनुष्य का मन, भ्रमवश सुख को पदार्थ, परिस्थितियों में, संसार में दिखाता है जबकि सच्चा सुख केवल आत्मा में है।

भावार्थ : यदि मन-इन्द्रियों से सुख मिलता प्रतीत होता है लेकिन मिलता नहीं है तो मन-इन्द्रियों पर शंका करो कि वे जीव को धोखा देते हैं। किसी ज्ञानवान व्यक्ति की शरण में जाकर सच्चे आनन्द की खोज के लिये सद्प्रयत्न करो।

---

53. एक व्यक्ति भागा जा रहा था। रास्ते में किसी दूसरे से पूछता है, "यहाँ से दिल्ली कितनी दूर है?" दूसरे व्यक्ति ने कहा—"पहले मेरी बातों का उत्तर दो, फिर बता सकूँगा कि दिल्ली कितनी दूर है। यदि तुम इसी दिशा में जाना चाहते हो जिस तरफ मुँह करके तुम अभी जा रहे हो ? यदि हाँ, तो फिर दिल्ली बहुत-बहुत दूर है। तुम्हें दिल्ली पहुँचने के लिये सारी पृथ्वी का चक्कर लगाना पड़ेगा। और यदि तुम मुँह पीछे की ओर कर लो, और चलो, तो दिल्ली यहाँ से केवल पाँच किलोमीटर है क्योंकि वह पाँच किलोमीटर पीछे छूट गयी है। फिर यदि तुम्हारे चलने की दिशा भी ठीक है तो भी तुम्हारा पहुँचना केवल दूरी पर ही नहीं तुम्हारी गति पर भी निर्भर करेगा।"

भावार्थ : पदार्थ की दिशा में जाओगे तो परमात्मा कैसे मिलेगा ?

परमात्मा कब मिलेगा यह कई बातों पर निर्भर करेगा—आपके जीवन की दिशा, गति, अभीप्सा, आदि-आदि पर।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

54. एक महात्मा अपने शिष्य के साथ जंगल में से होकर कहीं जा रहे थे। शिष्य एक झोला संभाले हुये था। वह बार-बार कह रहा था—"पता नहीं आगे का गाँव कितनी दूर है, कहीं मार्ग में ही रात न पड़ जाये। वह बार-बार कहता था कि खतरा है।" तो गुरु को शंका हुई। कुछ दूर चलकर शिष्य ने गुरु से कहा—"मैं जरा शौच होकर आता हूँ। आप यह थैला ध्यान से संभालकर रखें।" गुरु ने उसके पीछे से झोले में से सोने की पाँच गिन्नी निकालकर कहीं छुपा दी तथा उनके स्थान पर कुछ मिट्टी भर दी। कुछ देर बाद दोनों फिर आगे को चले। शिष्य फिर खतरा अनुभव करने लगा तथा बार-बार पूछने लगा—"कब पहुँचेंगे ?" गुरु ने हँसकर कहा—"खतरा तो मैं रास्ते में ही छोड़ आया हूँ।" शिष्य ने झोला खोलकर देखा तो उसमें सोने की गिन्नियों के स्थान पर मिट्टी थी। तब उसका भय समाप्त हुआ। इससे पहले झोले में सोना न होने पर भी भय था क्योंकि मन में सोना था।

भावार्थ : बाहर का पदार्थ या व्यक्ति नहीं बाँधता, न चिन्ता अथवा दुःख-सुख ही देता है। मन का पदार्थ व्यक्ति की दुःख-सुख, चिन्ता का कारण है।

---

55. यूनान देश की बात है। एक व्यक्ति गाय के गले में रस्सी बाँधकर जंगल में जा रहा था। रास्ते में उसे संत डायोज़नीज मिले। संत ने उससे कहा, "भाई, एक बात तो बताओ, तुम गाय से बँधे हो या गाय तुमसे बँधी है ?" व्यक्ति ने उत्तर दिया—"मैंने ही गाय को बाँध रखा है। मैं ही इसका मालिक हूँ।" संत ने कहा—"ऐसा करता हूँ कि मैं इस गाय की रस्सी खोल देता हूँ। फिर देखेंगे कि गाय तुम्हारे पीछे जाती है या तुम गाय के पीछे भागते हो। जो पीछे चले वह नौकर, जो आगे चले वह मालिक।"

भावार्थ : जिसको दूसरों पर निर्भर होना पड़ता है वह मालिक कैसे हो सकता है ? जिसके मन में जितनी अधिक इच्छाएं और अपेक्षाएं होगीं उतना ही

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

अधिक वह अन्दर से गरीब होगा, भले ही बाहर से वह कितना ही अमीर क्यों न हो। असली दास तो वह है जिसके इन्द्रियां और मन अपने वश में नहीं हैं।

---

56. एक व्यक्ति ने अपनी जमीन पर खुदायी के लिये एक मजदूर को दो रुपये प्रति घण्टे के हिसाब से तय किया। तथा उसे काम समझाकर कहीं चला गया। जब वह वापस आया तो क्या देखा कि वह मजदूर आराम से जमीन पर लेटा हुआ था। उस व्यक्ति ने उससे पूछा, "क्या बात है, काम छोड़कर खाली क्यों पड़े हुए हो ?" मजदूर ने लापरवाही से उत्तर दिया—"आपका काम हो रहा है। मैंने एक दूसरे मजदूर को दो रुपये प्रति घण्टे के हिसाब से काम पर लगा रखा है। वहाँ देखिये, वह काम कर रहा है।" जमीन वाले ने हैरान होकर पूछा—"बड़े मूर्ख हो। इससे तुम्हें क्या लाभ ?" मजदूर ने पड़े-पड़े कहा—"सोचा, आज जरा मालिक बनने का रस ही लेंगे। सो उसे काम पर लगा दिया है। यह क्या कम लाभ है ? मालिक बनने का रस ले रहा हूँ।"

भावार्थ : जैसे पदार्थों को प्राप्त करने, धन को पाने में रस की प्रतीति हो सकती है ऐसा ही धन-पदार्थों को त्यागकर अपने आपको बड़ा या श्रेष्ठ समझने अथवा कहलाने में भी कोई रस ले सकता है। अहंकार की चालाकियों को समझना बड़ा कठिन है। अहंकार बड़े-बड़े बुद्धिमानों को भी मूर्ख बना देता है।

---

57. एक बड़े सेठ थे। उनका काफी लम्बा-चौड़ा कारेबार था। उनको सन्देह हुआ कि उनका मुनीम कुछ पैसे की, माल की गड़बड़ कर रहा है। जाँच पड़ताल के बाद उन्हें निश्चय हो गया कि मुनीम बेईमानी करता है। मुनीम का वेतन 1000/- रुपये प्रति माह था। जब उन्होंने मुनीम को निकालने का मन बना लिया तो एक दिन उसे बुलाकर कहा—"आज से तुम्हारा वेतन 1500/-रुपये प्रतिमाह।" मुनीम बहुत खुश हुआ। कुछ दिन के बाद सेठ ने उसे फिर बुलाया

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

और कहा–"तुम्हारा वेतन 2000/-प्रति माह किया जाता है।" अपराध बोध से ग्रस्त मुनीम को शंका मिश्रित खुशी हुई। उसके दो दिन के बाद सेठ ने मुनीम को फिर बुलाकर कहा—"तुम्हें नौकरी से निकाला जाता है।" मुनीम सेठ के इस निर्णय पर हतप्रभ रह गया। इस बारे में सेठ को किसी ने पूछा कि यदि मुनीम को नौकरी से निकालना ही था तो फिर उसका वेतन क्यों बढाया ? सेठ ने कहा, "ताकि बेईमान मुनीम को अधिक दुःख हो। 1000/- रुपये प्रतिमाह की नौकरी से हटाये जाने के दुःख की अपेक्षा 2000/- रुपये प्रतिमाह की नौकरी से हटाये जाने का दुःख ज्यादा होगा।"

भावार्थ : आपसे कोई 1000/- रुपये छीन ले तो आपको दुःख होगा। 2000/- रुपये छिन जायें तो उससे अधिक दुःख होगा। आपका सुन्दर भवन छिने तो और भी अधिक दुःख होगा। किन्तु मृत्यु तो व्यक्ति का सब कुछ छीन लेती है—धन, मकान, प्रिय सम्बन्धी, मान-प्रतिष्ठा, सब कुछ। एक धनवान और सांसारिक दृष्टि से सफल व्यक्ति को मृत्यु का भय भी अधिक होता है और मृत्यु के समय मन की पीड़ा भी अधिक होती है।

---

58. एक स्त्री ने अपनी पड़ोसन के पास हीरों का बड़ा सुन्दर हार देखा। उसके मन में भी वैसा ही हार लेने का लोभ पैदा हुआ। उसने अपने पति से कहा, "मुझे भी वैसा ही हार चाहिये।" पति ने कहा, "हमारे पास इतना धन नहीं है।" परन्तु पत्नी ने हठ पकड़ ली। घर में झगड़ा होने लगा। आखिर पति ने कहा—"वह हार माँगकर लाओ, बिल्कुल वैसा ही हार खरीद दूँगा, कर्जा ले लूँगा।" पत्नी अपनी पड़ोसन से वह हार दिखाने के वास्ते मांग लाई। उस हार को लेकर पति सुनार के पास गया और कुछ ही रुपयों में वैसा ही नकली हीरों का हार बनवा लाया और पत्नी को दे दिया। पत्नी बड़ी खुश हुई। पत्नी को पति ने कहा हजारों रुपये लग गये इस हार को बनवाने में। अब संभालकर रखना। कुछ समय बाद घर में चोरी हो गयी। वह हार भी चोरी हो गया। पत्नी के तो जैसे प्राण ही निकल गये हों, वह तड़पने लगी। सिर जमीन पर पीट-पीटकर बेहाल हो गयी।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

इतनी देर में पति घर आया तो देखा, भीड़ लगी है घर में। पत्नी जमीन पर लेटी बेहाल जमीन पर सिर पीट-पीटकर रो रही थी। पति ने उसके कान में जाकर कुछ कहा और वह एकदम हँसने लगी। पति ने कहा—"हार नकली था।"

भावार्थ : जगत् के पदार्थ-परिस्थितियों में सत्य बुद्धि होने से न तो मन कभी स्थिर ही हो सकता है और न शान्त ही। संसार झूठा है, स्वप्नवत है, ऐसा बार-बार मनन करो तो मन शान्त और स्थिर होगा।

---

59. एक यहूदी फकीर हसीद ने एक पुस्तक लिखी और एक व्यक्ति को देकर धर्म पुरोहित के पास देने भेजा और कहा—"बस यह पुस्तक उन्हें दे देना और कुछ कहना नहीं। केवल देखते रहना क्या होता है, कुछ कहना या करना नहीं।" उस व्यक्ति ने वह पुस्तक पुरोहित को दे दी। पास में पुरोहित की पत्नी भी थी। पुरोहित ने पुस्तक ली परन्तु हसीद का नाम सुनते ही पुस्तक दूर फेंक दी और कहा—"मुझे इस पुस्तक से कुछ नहीं सीखना है।" पूरा क्रोध जागा हसीद के विरोध में पुरोहित के हृदय में। परन्तु उसकी पत्नी ने कहा—"नहीं पढ़ना चाहते तो मत पढ़िये परन्तु पुस्तक रखने में क्या हर्ज है। जहाँ इतनी पुस्तकें घर में रखी हैं तो यह भी पड़ी रहेगी; इतनी जोर से इसे दूर पटकने की क्या आवश्यकता थी। और फिर इसे पटकना भी था तो कम से कम इस आदमी के सामने तो ऐसा नहीं करना चाहिये था।" वह आदमी वहाँ खड़ा होकर सब सुनता रहा और फिर वापिस आकर हसीद को सब बात बतायी। हसीद ने मुस्कुराकर कहा—"वह पुरोहित तो कभी जरूर मुझे सुनेगा, पढ़ेगा, परन्तु पत्नी को सहमत करना बड़ा कठिन है।" फकीर ने दोबारा उस व्यक्ति को पुरोहित के पास भेजा और कहा, "जाकर देखो वह जरूर मेरी पुस्तक को पढ़ रहा होगा।" उसने जाकर देखा तो पुरोहित एक कोने में बैठा वही पुस्तक पढ़ रहा था।

भावार्थ : विपरीत प्रतिक्रिया इस बात का संकेत है कि प्रतिक्रियावादी के अन्दर गहराई में उस बात का गुप्त आकर्षण है जिस बात के विपरीत वह क्रिया

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

कर रहा है। विकर्षण के पीछे आकर्षण छिपा रहता है और आकर्षण के पीछे विकर्षण। परन्तु उपेक्षा तो राग और द्वेष दोनों से विलक्षण गुण है उपेक्षावादी को विचलित करना अपेक्षाकृत कठिन होता है।

60. भगवान बुद्ध को किसी ने गाली दी। बुद्धों को गाली देने वाले भी होते हैं। वह व्यक्ति उन्हें गाली देता ही जा रहा था। बुद्ध के साथ में आनन्द थे। गुरु का अपमान उनसे सहन नहीं हुआ। उन्होंने क्रोध में आकर बुद्ध से कहा, "यह व्यक्ति बहुत बकवास कर रहा है। आप आज्ञा दें तो इसे मैं ठीक कर दूं।" बुद्ध हँसे और कहा, "अपराध वह कर रहा है और परेशान होकर दण्ड तुम भुगत रहे हो, क्रोध के रूप में।"

भावार्थ : जिस व्यक्ति पर क्रोध किया जाता है उस पर क्रोध का कैसा और कितना प्रभाव होगा यह तो उस व्यक्ति पर निर्भर करेगा। परन्तु क्रोध करने वाले के मन एवं शरीर पर निश्चित ही बुरा प्रभाव पड़ता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि क्रोध करना एक प्रकार की self-punishment है, स्वयं अपने आपको दण्ड देने जैसा है।

61. बुद्ध एक पहाड़ी प्रदेश में यात्रा कर रहे थे। उनके परम शिष्य आनन्द यात्रा में उनके साथ थे। रास्ते में बुद्ध को प्यास लगी तो उन्होंने अपने प्रिय शिष्य आनन्द को निकट के एक तालाब से पानी लाने के लिये भेजा। आनन्द पानी लेने गये। पानी गंदला था। वे जैसे ही पानी साफ करने की कोशिश करते, पानी और गन्दा हो जाता। आनन्द ने बहुत प्रयास किया लेकिन साफ पानी न मिल सका। हार कर वे बिना पानी लाये ही वापस लौट आये और बुद्ध को बताया कि उस तालाब का पानी पीने योग्य नहीं है। बुद्ध ने आनन्द को समझाकर दुबारा भेजते हुए कहा — "पानी को साफ करने की कोशिश मत करना। किनारे

CC-0. Vanaprastha Vidyapeeth Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

बैठकर प्रतीक्षा भर करना। बस इतना ही।" आनन्द ने वैसा ही किया। गन्दगी नीचे बैठ गयी। जल साफ हो गया।

भावार्थ : मन की चंचलता को, मन के विकारों को, काम-क्रोध आदि के भावों को तटस्थ होकर देखें—उनके साथ संघर्ष न करें। उनके साथ मल्ल-युद्ध में प्रवृत्त न हों। ऐसा करने से सब चंचलता, विकार आदि दूर हो जायेंगे।

---

62. एक लोमड़ी ने अंगूरों से लदी अंगूर की बेल देखी। लोमड़ी के मुँह में पानी आ गया। अंगूर ऊँचे लगे हुए थे। लोमड़ी ने कूदकर बार-बार प्रयास किया लेकिन अंगूरों तक पहुँच न सकी। तो वह सबसे कहने लगी कि ये अंगूर तो खट्टे हैं। परन्तु अन्दर ही अन्दर अंगूर खाने की उसकी इच्छा और भी प्रबल हो गयी। उसने कुछ दिन व्यायाम किया, खूब अभ्यास किया और बलवती हो गयी। उसने फिर प्रयास किया और गुच्छे को पा लिया। किन्तु वे अंगूर तो वास्तव में खट्टे निकले। तो वह सबसे कहने लगी, "सुनो, ये अंगूर तो बड़े मीठे हैं।" अहंकार कभी भी अपनी पराजय स्वीकार नहीं करता।

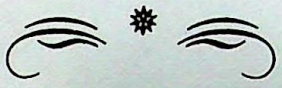
भावार्थ : अपने अहंकार को बचाने के वास्ते व्यक्ति क्या नहीं करता ! वह झूठ बोलेगा, लड़ाई-झगड़ा भी कर सकता है, हिंसा भी कर सकता है।

---

63. कहते हैं नसरुद्दीन ने अपने हाथ में अपनी पहचान के वास्ते एक धागा बाँध रखा था। एक बार वह गाड़ी के प्लेटफार्म पर कुछ लोगों के साथ सोया हुआ था। उस समय एक मित्र ने धागा नसरुद्दीन के हाथ से उतारकर पास में सोये व्यक्ति के हाथ में बाँध दिया। नसरुद्दीन की जाग खुली तो उसने पास लेटे आदमी के हाथ पर बँधा वह धागा देखा तो बहुत देर तक सोच-सोचकर कहने लगा, "अगर यह आदमी नसरुद्दीन है तो फिर मैं कौन हूँ ?"

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

भावार्थ : आप किसी से पूछो कि आप कौन हो—तो वह अपने सम्बन्धों को बताने लग जाता है। कहेगा—मैं अमुक देश का रहने वाला हूँ, मैं अमुक व्यक्ति का यह लगता हूँ, मैं यह काम करता हूँ आदि-आदि। अर्थात् वह अपना देश के साथ, व्यक्तियों के साथ तथा अपने कार्य के साथ सम्बन्ध बताने लगता है। "मैं कौन हूँ"—यह वह न तो जानता है और न ही बता सकता है। आपमें और नसरुद्दीन में इस दृष्टि से क्या कोई भेद है ?



CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

श्रीचन्द्रस्वामीजी का आध्यात्मिक साहित्य

- The Practical Approach to Divinity
  - अनुवाद
    - हिन्दी (भगवद्प्राप्ति)
    - गुजराती
    - फ्रेंच {"L' Art de la Realisation" (Albin Michel) France}
    - जर्मन {"Expendition Erwachen" (Argos Verlag), Germany}
    - हिब्रू (इज़राइल में उपलब्ध)
    - अरबी (बेरूत, लेबनान में उपलब्ध)
- सुवचन
  - अनुवाद
    - अंग्रेजी (Spiritual Gems)
    - फ्रेंच (Le Rosaire des Instructions Spontanees)
- आनंद दर्पण (बाबा भूमनशाहजी का संक्षिप्त जीवन एवं उपदेश)
  - अनुवाद
    - अंग्रेजी (Mirror of Bliss)
    - फ्रेंच (En Compagnie de Babaji)
- अमृतवाणी (स्वामीजी के पत्रों का संकलन)
- Les Entretiens De La Bergerie (Homo Ludens, France)
  सन् 1987 में स्वामीजी के योरोप प्रवास की अवधि में हुए प्रश्नोत्तरों का (अंग्रेजी/फ्रेंच–दो भाषाओं में) संकलन
- Song of Silence – I (Life sketch of Swamiji & questions-answers)
  - अनुवाद
    - फ्रेंच (Le Chant Du Silence I)
- Song of Silence – II (questions & answers) – under publication

भारतीय संस्करण निम्न पते पर उपलब्ध

साधना केन्द्र आश्रम
ग्राम–डुमेट, पोस्ट–अशोक आश्रम,
जिला–देहरादून, उत्तरांचल, पिन–248125
फोन–01360–22204

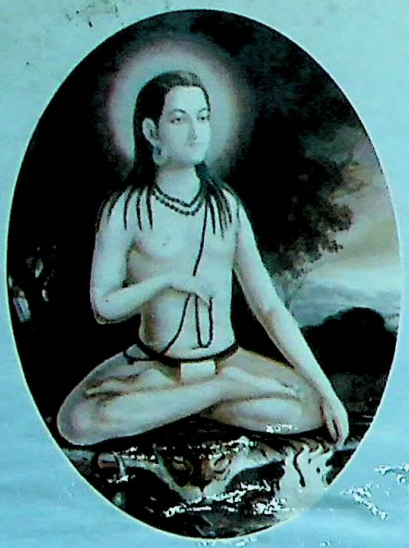
CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

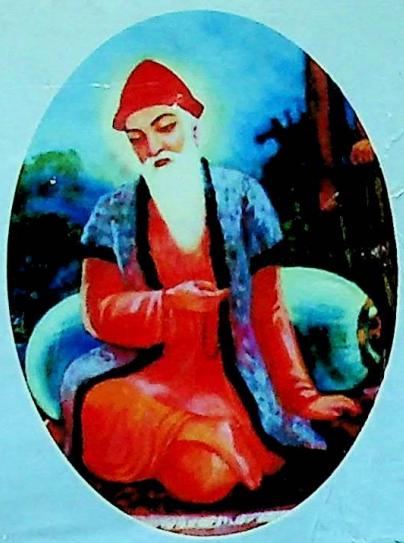
CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri



उदासीनाचार्य श्रीचन्द्र भगवान



बालयति बाबा भूमनशाहजी उदासीन

सजग और सचेत रहें।

प्रसन्न व प्रफुल्ल रहें।

सरल व विनम्र बनें।

स्वयं एवं दूसरों के आध्यात्मिक विकास के लिये अपने समस्त साधनों व शक्तियों का पूर्ण सदुपयोग करें।

प्रतिदिन परमात्मा से प्रार्थना करें और नियमित रूप से उसके ध्यान-स्मरण में भी बैठें।

ऐसे सद्ग्रन्थों को पढ़ें जिनसे आपको सद्प्रेरणा मिलती है।

सचेतन व गहरे श्वास-प्रश्वास का अभ्यास करें।

समय-समय पर प्रभु-प्रेमी संतों-महात्माओं का सत्संग किया करें एवं सरल व श्रद्धापूर्ण चित्त से ध्यानपूर्वक उनके सद्वचनों को सुनें।

भगवद्नाते निर्धनों व निस्सहायों की सेवा करें।

-चन्द्रस्वामी

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by eGangotri